जीवराज जैन ग्रंथमालाका परिचय

सोलापूर निवासी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशी कई वर्षोंसे संसारसे उदासीन होकर धर्मकार्यमें अपनी वृत्ती लगा रहा थे। सन १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी, कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्तिका उपयोग विशेष रूपसे धर्म और समाजकी उन्नतिके कार्यमें करें। तदनुसार उन्होंने समस्त देशका परिभ्रमण कर जैन विद्वानोंसे साक्षात् और लिखित सम्मतियां इस बातकी संग्रह कीं कि कौनसे कार्यमें संपत्तिका उपयोग किया जाय। स्फुट मतसंचय कर लेनेके पश्चात् सन १९४१ के ग्रीष्म कालमें ब्रह्मचारीजीने तीर्थक्षेत्र गजपंथा (नासिक) के शीतल वातावरणमें विद्वानोंकी समाज एकत्र की और ऊहापोह पूर्वक निर्णयके लिए उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत्सम्मेलनके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजीने जैन संस्कृति तथा साहित्यके समस्त अंगोंके संरक्षण उद्धार और प्रचारके हेतुसे 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' की स्थापना की और उसके लिए ३००००) तीस हजारके दानकी घोषणा कर दी। उनकी परिग्रहनिवृत्ति बढ़ती गई और सन १९४४ में उन्होंने लगभग २,००,०००) दो लाखकी अपनी संपूर्ण संपत्ति संघको ट्रस्ट रूपसे अर्पण की। इस तरह आपने अपने सर्वस्वका त्याग कर दि. १६-१-५७ को अत्यन्त सावधानी और समाधानसे समाधिमरणकी आराधना की। इसी संघके अंतर्गत 'जीवराज जैन ग्रंथमाला'का संचालन हो रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ इसी ग्रंथमालाका सप्तम पुष्प है।

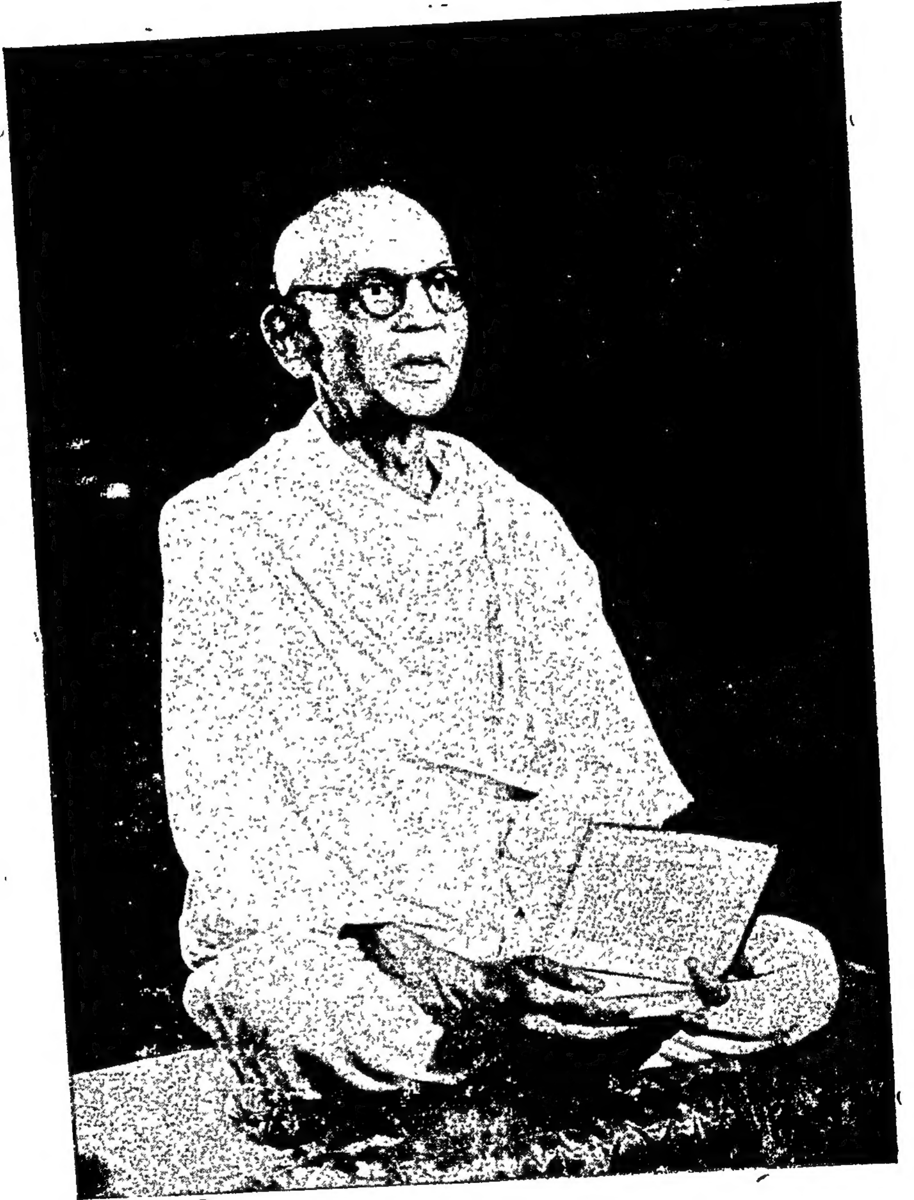
प्रकाशक-

गुलाबचंद हिराचंद दोशी,
जैन संस्कृति संरक्षक संघ,
सोलापूर.

मुद्रक-

१) पृ. १-१६, लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्णयसागर प्रेस, २६-२८ कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई २.
२) पृ. १-१०९, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, वाराणसी.
३) पृ. ११०-१५४, वर्धमान प्रेस, सोलापुर.
४) पृ. १-२५४, सरस्वती मुद्रणालय, अमरावती.
५) पृ. १-५४, (परिशिष्ट) सरला प्रेस, गुदौलिया, वाराणसी.

जंबूदीव--पण्णत्ति--संगहो



स्व. ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंद दोशी

संस्थापक, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर

जीवराज जैन ग्रंथमाला, ग्रन्थ ७

ग्रंथमाला-सम्पादक

प्रो० आ. ने. उपाध्ये & प्रो० हीरालाल जैन

पउमणंदिकओ

जंबूदीव-पण्णत्ति-संगहो

(जैन करणानुयोग विषयक महत्त्वपूर्ण प्राचीन प्राकृत-रचना)

आलोचनात्मक रीतिसे पाठान्तरों व परिशिष्टों आदि सहित, प्रथम वार सम्पादित

सम्पादक

प्रो. आ. ने. उपाध्ये,
एम. ए., डी. लिट्.
राजाराम कालेज, कोल्हापुर

प्रो. हीरालाल जैन, एम. ए.
एल्एल्. बी., डी. लिट्.,
डायरेक्टर, प्राकृत जैन विद्यापीठ, वैशाली, मुजफ्फरपुर

त्रिलोकप्रज्ञप्तिके गणितपर हिन्दीमें प्रास्ताविक निबन्धलेखक
प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम्. एस्सी.,
महाकोशल महाविद्यालय, जबलपुर

हिन्दी अनुवादक
पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रकाशक
श्री. गुलाबचन्द हिराचन्द दोशी
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
सोलापुर

वी. नि. संवत् २४८४ | सन १९५८ | विक्रम संवत् २०१४

मूल्य रु. १६ मात्र

विषय-सूची

सम्पादकीय

तिलोय-पण्णत्तिका सम्पादन पूर्ण होते ही (प्रका. भा. २. १९५१) सम्पादकोंके सन्मुख उसी विषयका एक और ग्रंथ उपस्थित रह गया जिसने अभी तक दिनका प्रकाश नही देख पाया था। यह था पउमणंदिकृत जंबूदीवपण्णत्ति। सम्पादकोंमेंसे एक (प्रो. ही. ला. जैन) को इस कठिन ग्रंथके सम्पादन व अनुवादका कार्य हाथमें लेनेकी बुद्धिमत्तामें सन्देह था, क्योंकि इसका पाठ अनेक स्थलोंपर अनिश्चित दिखाई देता था और उसकी प्राप्य प्रतियां बहुत दोष पूर्ण पाई जाती थीं। किन्तु अपेक्षा कृत कम वृद्ध सम्पादक (प्रो. आ. ने. उपाध्ये) इन कठिनाइयोंसे डरना नही चाहते थे। अन्ततः इस ग्रंथको भी स्मृतिशेष रह जानेसे बचाना तो अवश्य ही है। और जब यह बात है तो अन्य कौन और कब इस कार्यको करेगा? अतः दोनों सम्पादक इस निर्णय पर पहुंचे कि वे सदैवके अनुसार इस कार्यको भी कंधेसे कंधा मिलाकर हाथमें लें, और उपलभ्य सामग्रीका यथाशक्ति सदुपयोग कर इस ग्रंथको भी प्रकाशमें लावें। पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीको इसके हिन्दी अनुवादका कार्य सौंपा गया, क्योंकि उन्हें ति. प. के अनुवादका भी अनुभव था।

इस सम्मिलित प्रयासका फल प्रस्तुत ग्रंथ पाठकोंके सन्मुख है। वे ही देखकर कह सकेंगे कि सम्पादक कहां तक अपने दीर्घकालीन प्रयासमें सफल हो सके हैं।

इस ग्रंथके मूल और अनुवादका मुद्रण सरस्वती प्रेस, अमरावती, में किया गया था। किन्तु प्रो. लक्ष्मीचन्द्रजीके गणित सम्बंधी महत्त्वपूर्ण लेखके लिये शेष सामग्रीका मुद्रण रोक रखना पड़ा। जब वह लेख पूरा हुआ तब तक धवलाका कार्यालय अमरावतीसे उठकर बनारस चला गया था। और धवला कार्यालयसे ही इस ग्रंथके मुद्रणकी भी सम्हाल की जाती थी। अतः वह लेख बनारसके ज्योतिषप्रकाश प्रेस (विश्वेश्वरगंज), में तथा परिशिष्टोंको बनारसके सरला मुद्रणालयमें छपवाना पड़ा। उसमेंके कुछ यूनानी अक्षरों, संकेतों तथा चित्रोंके बनवानेका विशेष प्रयास करना पड़ा जिसमें भी बहुत समय लगा। गणित लेख, तथा परिशिष्टोंका मुद्रण समाप्त होते ही पं. बालचन्द्र शास्त्री बीमार हो गये और वे बनारस छोड़कर अपने घर बीना चले गये। इससे प्रस्तावनादिका शेष भाग बनारसमें न छप सका और उसे निर्णयसागर प्रेस, बम्बई और वर्धमान प्रेस, सोलापूर में छपाना पड़ा। ऐसी परिस्थितिमें यदि पाठकोंको इस ग्रंथमें कागज व मुद्रण आदिकी बहुरूपता दिखाई दे तो वे कृपाकर क्षमा करेंगे।

सम्पादकों और अनुवादकने तिलोयपण्णत्ति और जंबूदीवपण्णत्ति ग्रंथोंके गणित भागको सम्हालनेका अपनी शक्तिभर प्रयास किया था। किन्तु उन्हें इस विषयमें अपनी सीमाका भान था। अतएव इन ग्रंथोंके गणित भागका समुचित रीतिसे किसी गणितके अधिकारी विद्वान् द्वारा अध्ययन करानेकी सम्पादकोंको इच्छा हुई। सौभाग्यसे उन्हें ऐसी योग्यता गणितके नवयुवक प्रोफेसर श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम. एसूसी. में दिखाई दी। उन्हें इस विषयमें स्वयं भी रुचि उत्पन्न हुई। अतः उन्होंने विशेषतः तिलोयपण्णत्तिके गणित भागका अध्ययन कर मुद्रित १०४ पृष्ठोंका वह लेख लिखा है जो इस ग्रंथके साथ प्रकाशित है। जैन

ग्रंथोंमें प्रयुक्त विशेष संकेतों व चित्रों सहित गणितकी नाना प्रक्रियाओंके अतिरिक्त उन्होंने जो यूनानी, चीनी आदि लेखोंके साथ इनकी तुलना की है (देखिये गणित लेख पृ. १०, १३ आदि) वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वर्तमानमें यह कह सकना तो कठिन है कि इस ज्ञानका प्राचीन कालमें क्या कोई आदान प्रदान हुआ था, और कौनने किसे कितना दिया व कितना लिया था। किन्तु यह विषय आगे अनुसन्धान करने योग्य है। इस दिशामें प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्रजी प्रयत्नशील भी हैं।

इस प्रकाशनके पश्चात् जैन खगोल विषयक दो और ग्रंथ अप्रकाशित रह जाते हैं। वे हैं संस्कृत लोकविभाग और त्रैलोक्य-दीपिका। इन ग्रंथोंको भी इसी ग्रंथमालामें प्रकाशित करानेका प्रयत्न किया जा रहा है।

हमें महान् दुःखके साथ कहना पड़ता है कि जैन संस्कृति संरक्षक संघकी प्रवृत्तियों पर उसके संस्थापक और आजीवन अध्यक्ष ब्रह्मचारी जीवराज भाईके निधनसे बड़ा वज्राघात हुआ है। संघके स्थापन कालसे मृत्युपर्यन्त संघकी साहित्यिक प्रवृत्तियोंके विकासकी ओर उनकी बड़ी तीव्र दृष्टि रहती थी। उसके किसी कार्यक्षेत्रमें वे किसी प्रकारकी ढिलाईको सहन नही करते थे। मार्गमें जो कठिनाइयां आतीं उन्हें वे अपने नैतिक बल और भौतिक साधनोंसे तुरंत दूर करनेका भरपूर प्रयत्न करते थे। उनकी मृत्युसे धार्मिक प्रवृत्तियों तथा जैन संस्कृतिकी सेवामें असीम दानशीलताका एक चमत्कारी जीवन समाप्त हो गया। हमारी यही भावना और प्रार्थना है कि उनकी आत्माको स्वर्गमें शान्ति मिले, तथा उनके आदर्शसे वर्तमान और भविष्यकी धनी पुरुषोंकी पीढियोंको स्वामित्व रहते अपने धनको सत्कार्यमें लगानेकी प्रेरणा मिलती रहे।

हम अपने नये अध्यक्ष श्रीमान् सेठ गुलाबचन्द हीराचन्दका स्वागत करते हैं। वे पहलेसे ही ट्रस्ट कमेटीके सदस्यके नाते संघकी प्रवृत्तियोंसे भली भांति परिचित हैं, और उनसे पूर्ण सहानुभूति रखते आये हैं। हमें पूरा भरोसा है कि ट्रस्टके अन्य सदस्योंके सहयोगसे वे अपने महान् पूर्वाध्यक्ष द्वारा स्थापित परम्पराओंके संरक्षणमें कोई प्रयत्न शेष नहीं रखेंगे।

वर्तमानमें हम बड़े संकटाकीर्ण और साथ ही आशाजनक कालमें चल रहे हैं। संकटाकीर्ण इसलिये क्योंकि आजकल धार्मिक बातोंमें प्रवृत्तियोंमें क्षीणता, वैयक्तिक दानशीलतामें शुष्कता तथा नवयुवकोंमें तत्त्वज्ञानकी अपेक्षा भौतिक विज्ञान व यंत्रचातुरीकी ओर अधिक आकर्षण दिखाई पड़ता है। और इससे भी ऊपर, सर्वनाशी अस्त्रशस्त्र आकाशमें मंडरा रहे हैं व समस्त विद्वत्ता और संस्कृतिको एक फूंकमें हवा बना कर उड़ा देनेकी धमकी दे रहे हैं। किन्तु फिर भी यह युग आशाजनक इसलिये है क्योंकि पूर्वोक्त कारणोंसे ही, एक ऐसी भी विचारधारा उत्पन्न हो गई है जो उक्त बहावका रुख बदल देना चाहती है। देशके तथा संसारके चिन्तन-शील विद्वान् मानवताके संरक्षण तथा जगत्की शान्ति व समृद्धिके लिये अब अपने चित्तको प्राचीन तत्त्वज्ञानकी ओर फेर रहे हैं। इस विचारशीलतामें हमारे साहित्यके प्रत्येक पृष्ठ और प्रत्येक पंक्तिसे उद्भूत होनेवाला संदेश बहुत बलदायक सिद्ध हो सकता है। वह संदेश है जीव और प्रकृतिकी अनश्वरशीलता एवं भौतिक लाभोंकी अपेक्षा आध्यात्मिक तत्त्वोंकी परमश्रेष्ठता।

हमें आशा करना चाहिये कि इस दृष्टिकोणसे न केवल हमारे इस उपलब्ध साहित्यके अध्ययनका प्रसार होगा, किन्तु जो साहित्य अभी भी प्राचीन भंडारों और मंदिरोंकी अंधेरी कोठरियोंमें बन्द पड़ा है उसे प्रकाशमें लानेकी ओर भी अधिक ध्यान दिया जायगा। भारतीय संस्कृतिको अभी भी अपना उचित स्थान प्राप्त करना है।

अन्तमें हम कृतज्ञतापूर्वक उन सब संस्थाओं और व्यक्तियोंके प्रति अपना ऋण स्वीकार करते हैं, जिन्होंने किसी न किसी प्रकार इस सम्पादनमें अपना सहयोग प्रदान करने की कृपा की है। विशेषतः संघके ट्रस्ट व व्यवस्थापक मंडलके सदस्य इस ओर उत्साह और अभिरुचिके लिये हमारे धन्यवादके पात्र हैं। जिन्होंने हमें अपनी हस्तलिखित प्रतियाँ उधार दीं और जिन विद्वानोंने अपने परामर्श आदि द्वारा हमें उपकृत किया उन सबका हम बहुत आभार मानते हैं।

सम्पादक,

सोलापूर
५–१–५८

ही. ला. जैन
आ. ने. उपाध्ये

INTRODUCTION

1. Jaina Authors on Cosmography

Indian Cosmography is a subject of immense interest and an independent branch of study by itself; and it is evident from earlier studies (W. Kirfel: Die Kosmographie der Inder, Bonn u. Leipzig 1920, pp. 208–340) that Jaina cosmography occupies an important position therein. Jaina texts dealing with cosmography have a manifold interest: first, the cosmographical details are worked out in an elaborate plan which shows a remarkable consistency and vision; secondly, these details have a close connection with Jaina metaphysical and ethical doctrines; thirdly, the entire range of Jaina literature, especially of the Prathamānuyoga group, is so much permeated by these details that a clear understanding of them needs constant reference to standard works on cosmography; and lastly, there is found in them a good deal of knowledge of contemporary mathematics. A historian of the growth of human knowledge in different countries and ages has, therefore, a special interest in these works.

In the Ardhamāgadhī canon there are some works dealing with this subject: the Sūrapaṇṇatti (Skt. Sūryaprajñapti, published with the Ṭīkā of Malayagiri, Āgamodaya Samiti, Surat 1919), Jambuddīva-paṇṇatti (Skt., Jambūdvīpa-prajñapti, pub. with Śānticandra's Ṭīkā, Devachanda Lālabhāi Jaina Pustakoddhāra, 52 & 54, Bombay 1920) and Caṁdapaṇṇattī (Skt., Candraprajñaptiḥ). Besides the commentaries on the Tattvārthasūtra, which present good many cosmographical details especially in chapters 3–4, there are available many post-canonical texts: Umāsvāti's Jambūdvīpa-samāsa with the commentary of Vijayasiṁha (Ahmedabad 1922); Jinabhadra's Saṁghāyaṇī with the commentary of Malayagiri (Bhavanagar Saṁvat 1973), Bṛhatkṣetra-samāsa with the comm. of Malayagiri (Bhavanagar Saṁ. 1977); Haribhadra's Jambuddīva-saṁghāyaṇi (Bhavanagar 1915) etc. (Schubring: Die Lehre der Jainas, Berlin u. Leipzig 1935, p. 216).

Then there is a small but well-knit group of the pro-canonical texts to which belongs the Tiloya-paṇṇatti, already published, in two volumes, in the Jīvarāja Jaina Granthamālā, Sholapur 1943 and 1951. The Loyavibhāga was another ancient text but only a Sanskrit digest of it, the Lokavibhāga, has come down to us. The Tiloyasāra of Nemicandra (Bombay 1917) with the comm. of Mādhavacandra is an important text of this group. To this category of texts belongs the Jambūdīva-paṇṇatti-saṁgaha (JPS) an authentic edition of which, along with the Hindī paraphrase etc., is being presented in this volume. (See JPS, The Indian Historical Quarterly, Calcutta, XIV, 1938, pp. 188 ff.)

*

2. JPS: Mss., Contents, Form etc.

There are very few Mss. of JPS preserved in public libraries (Jinaratnakośa, Poona 1944, p. 131); still, through the efforts of the editors, some Mss. could be secured from unexpected quarters. The text constituted here is based on five Mss. which are fully described in the Hindī Introduction. The readings from the sixth Ms. are noted in an appendix. The Prākrit text is defective in many places; and in the absence of any commentary etc., the editors had to face many difficulties. In all those few cases, wherever the editors have improved upon the text, the actual readings are duly noted in the foot-notes. It is hoped that this authentic vulgate will serve the purpose of all critical studies for the present.

The Mss. often call this text by the name Jambūdvīpa-prajñapti, but the real title of the work, as mentioned in the colophons of various Uddeśas is Jambūdīva-paṇṇatti-saṁgaha (Skt. Jambūdvīpa-prajñapti-saṁgraha). The word *Saṁgraha* indicates that the author is compiling the contents from some earlier source the name of which was perhaps Dīvasāgara-paṇṇatti as indicated by gāthā Nos. I, 6 & 18, XIII, 142. In the absence of more evidence it is not possible to say whether this reference applies to the Śrutāṅga of the same name included under Parikarma which was a part of the 12th Aṅga, Diṭṭhivāda, according to one tradition.

In this work there are 2429 gāthās divided into thirteen Uddeśas. The title of each Uddeśa, mentioned in the colophon at its close, is quite significant and gives a fair idea of its contents.

The First Uddeśa (Uvagghāya-patthāvo, in gāthās 74) opens with the Maṅgala consisting of salutations to five Parameṣṭhins. Then the author declares his object to present the contents of this work as they are traditionally received from Mahāvīra, through a series of teachers, Gautama to Lohācārya. Then follows a description of the extent, circumference and area of the Jambūdvīpa which stands at the centre of a series of oceans and islands. Then are detailed the Gopura-dvāras, Kṣetras, mountains, rivers, and images of Jinas on their banks etc.

The Second Uddeśa (Bharaherāvaya-vaṁsa-vaṇṇaṇo, in gāthās 210) contains the descriptions of the seven Kṣetras, Bharata etc., and of the six Kula-parvatas which divide them: in all there are 190 Khaṇḍas or sectors the extent etc. of which are described in details. Then the Vijayārdha mountain, with so many Vidyādhara towns on both of its Śreṇīs and with numerous Jinabhavanas on its different peaks, is described extensively. It is from this that the rivers Gaṅgā and Sindhū flow out into the southern Bharata. The various ages, Suṣamā etc., are mentioned, along with the religious aptitude of the inhabitants.

The Third Uddeśa (Pavvada-ṇadī-bhogabhūmi-vaṇṇaṇo, in gāthās 246) describes the Kulaparvatas, their peaks and temples on them. Then follow the glories of the deities Śrī etc. who dwell in the lotus temples in the lakes on them, as well as those of the presiding gods residing on the Jambūvṛkṣas etc. The great river Gaṅgā flows from the Padmahṛd on the Himavān mountain. Flowing for 500 yojanas it rushes into a big lake at the foot of that mountain: in its course it washes many an image of Jina. Incidentally we get the description of lakes, streams, temples etc.

The Fourth Uddeśa (Mahāvidehāhiyāra, in gāthās 292) begins with the description of the Mandara mountain which stands at the centre of Jambūdvīpa. There are on it parks like Nandana etc. which are decked with gorgeous temples of Jina. It is in the Pāṇḍuka park that the birth-consecration of a Tīrthakara is celebrated by the gods. Incidentally the military glories of Sudharmendra are depicted here.

The Fifth Uddeśa (Mandaragiri-Jiṇabhavaṇa-vaṇṇaṇo, in gāthās 125) presents a detailed description (dimensions etc.) of the Jinabhavanas on the Mandara mountain, with their various items of decoration, articles of worship and architectural sectors. The Indras of various grades carry on different forms of worship here.

The Sixth Uddeśa (-Devakuru-Uttarakuru-viṇṇāsa-patthāro, in gāthās 178) gives a detailed description of Devakuru and Uttarakuru with regard to their mountains, rivers, lakes, deities dwelling therein and the various trees there. There dwell various Nāgakumāras in different quarters and sub-quarters which have got special names. Some specific characteristics of the inhabitants are also noted in conclusion.

The Seventh Uddeśa (–Kacchāvijaya-vaṇṇaṇo, in gāthās 153) sets forth a description of the Videha-kṣetra located in between the two Kulaparvatas, Niṣadha and Nīla. It is divided into various sections due to mountains and rivers. The Kacchāvijaya is divided into Khaṇḍas, one of which is Āryakhaṇḍa and five others Mlecchakhaṇḍas. Here dwell Cakravartins whose glories are elaborately noticed. The three Varṇas, excepting the Brāhmaṇa, are there; and they are all devoted to Jinas. The rivers have given rise to certain islands the presiding gods of which are conquered by Cakravartins who are honoured by Mleccha rulers. The Cakravartin is made to realize that there were many Cakravartins in the past.

The Eighth Uddeśa(–puvva-videha-vaṇṇaṇo, in gāthās 198) describes the Pūrvavideha with reference to its mountains, rivers, territories and capitals.

The Ninth Uddeśa(*–avara-videha-vaṇṇaṇo, in gāthās 197) describes* the Aparavideha with reference to its mountains, rivers, territories, and

their capitals which bear different names and have their specific dimensions. On the banks of these rivers, there are twenty Vakṣāra-parvatas the peaks of which are decked with the temples of Jina in which gods and Vidyādharas carry on regular worship.

The Tenth Uddeśa (Lavaṇa-samudda-vāvaṇṇaṇo, in gāthās 102) describes the Lavaṇa-samudra which surrounds the Jambūdvīpa on all the sides. Its dimensions, along with those of the Pātālas therein, are duly noted, and the seasonal tides are indicated. There are eight mountains of Velaṁdhara gods. Then there are the Antardvīpas which are inhabited by strangely figured human beings of abnormal habits. Those who lapse in their pious practices and religious standards are reborn among these.

The Eleventh Uddeśa (-bāhira-uvasaṁhāra-dīvasāyara-narayagadi-devagadi-siddhakhetta-vaṇṇaṇo, in gāthās 365) describes the oceans and islands and lower and upper worlds. Detailed measurements of the Dhātakīkhaṇḍa, of its mountains and of the oceans round about are given. It is due to Puṇyas and Pāpas that the beings go to the upper and lower worlds, of which the regions, residents (with their periods of life, heights etc.) etc. are elaborately discussed.

The Twelfth Uddeśa (Joisaloya-vaṇṇaṇo, in gāthās 193) describes the Vimānas of the Jyotiṣa or astral regions, the number of moons for different regions, the periods of life etc. of astral gods.

The Thirteenth Uddeśa (Pramāṇa-pariccheda, in gāthās 176) enumerates and defines the various units of Time and Space and discusses their currency or use in different walks of life. Then follows an exposition of the means of valid knowledge with a view to establish the validity of omniscience, incidentally shedding light on different forms of knowledge. The glories of an omniscient divinity who is free from a number of physical wants and mental weaknesses are fully elaborated.

This brief resumé of the chapters of JPS gives us a fair idea of the range of its contents. The Prākrit text is not well preserved: if a few more independent Mss. are available for collation, one can be more confident about its authenticity and come nearer the text as it left the hand of the author. Then alone one can explain the inconsistency and irrelevancy seen in some contexts (for instance, the description of the Kalpas in Uddeśa XI). The present text shows also some traditions different from those found in the Sarvārthasiddhi, Harivaṁśa etc. This JPS shows close relation with a number of other texts dealing with kindred topics. Comparing this work with the Jambūdiva-paṇṇatti of the Ardhamāgadhī canon, one is struck with some common contents: the canonical text of course is quite encyclopaedic. It is already known that JPS has a number of resemblances with the Tiloyapaṇṇatti (See the Hindi Intro. of TP, pp. 168 ff.) from which it has taken a good

deal of subject matter often expressed in identical or nearly identical gāthās. Similarly it has some gāthās common with the Mūlācāra of Vaṭṭakera, the Bṛhat-kṣetrasamāsa of Jinabhadra, the Trilokasāra of Nemicandra and the Jyotiṣkaraṇḍaka (for details, see the Hindī Intro.) : some of these gāthās might have been a part of traditional memory of cosmographical knowledge current among Jaina monks.

The entire work is written in gāthā metre, and the Prākrit dialect used by the author can be called Jaina Śaurasenī according to the terminology of Pischel (Grammatik der Prākrit-Sprachen, Strassburg 1900, pp. 19-20). In this work there are heavy descriptions of some regions, and they remind us of the long compounds in the Ardhamāgadhī canon.

3. Padmanandi: The Author

Though no date of the composition is mentioned, the author Paümaṇaṁdi or Padmanandi has supplied us with some information about his spiritual genealogy in the concluding verses (XIII. 155 ff.). There was a great saint Vīranandi who was endowed with five Mahāvratas, pure in faith, possessed of knowledge and the merits of self-control and penance, free from attachment etc., heroic, full of fivefold conduct, kind to six classes of living beings, free from infatuation and above joy and sorrow (158-59). His great disciple was Balanandi, who was well-versed in the Sūtras and their interpretations, who was of deep wisdom, who abstained from scandalising others, who was free from attachment, who was endowed with faith, knowledge and conduct, and whose mind was free from anxieties round about (160-61). And his disciple was Paümaṇaṁdi or Padmanandi, endowed with many a virtue, free from Daṇḍas, pure with reference to three Śalyas, free from three Gāravas, who had reached the other end of Siddhānta, who was endowed with penances and other vows, who was devoted to faith, knowledge and conduct, and who was free from preliminary sins (162-63). Padmanandi tells us that he received instructions in the scriptures from Śrīvijaya who was a great teacher of Paramāgama and endowed with spiritual values; and it is through his benign favour that he composed in short the various sections in this work (144-45, 153, 164).

There was a famous and learned monk Māghanandi who was free from attachment and aversion, who had crossed the ocean of scriptural knowledge, who was endowed with deep wisdom, austerities and self-control. His eminent pupil was Sakalacandra who had washed his sins in the ocean of Siddhānta, who was meritorious, and who practised austerities and various rules of conduct. Sakalacandra's great and famous pupil was Śrīnandi who was endowed with *spotless knowledge and conduct, and who was pure in his* right faith. It is for the sake of this Śrīnandi that Padmanandi wrote this JPS

while he was staying in the town of Bārā (Bārā-ṇayara) in the country of Pāriyatta or Pāriyātra which was rich in lakes and wells, charming with residential buildings, populated by different people, full of wealth and corn, and further attractive on account of pious householders and hosts of monks. The king of that place was Śakti- or Śānti- (Pkt. Satti- or Saṁti-) bhūpāla who was pure with right faith, who practised various vows, was endowed with good conduct, was ever generous in his gifts, was partial to Jainism and heroic, was endowed with many a virtue and honoured by many kings, and who was expert in various arts.

4. Padmanandi's Age

The time when Padmanandi lived is a problem in the absence of any mention of the date in the work itself. Obviously we have to piece together bits of external evidence and try to put broad limits for his age.

a) The earliest Ms. of JPS, known to us, is that from Āmera, and it is written in Saṁvat 1518 (−57 = 1461 A. D.).

b) It is seen that JPS is indebted to a number of earlier works, some of which of authentic authorship and date, like the Mūlācāra, Tiloya-paṇṇatti, Bṛhat-Kṣetrasamāsa and Trilokasāra. The Trilokasāra of Nemicandra is to be assigned to the 10th century A. D.

c) The Sanskrit text, Lokavibhāga, specifically mentions JPS and quotes a gāthā from it; but the date of it is not definite (Tiloyapaṇṇatti, part ii, Hindī Intro. p. 73).

The evidence set forth above allows us to conclude that JPS of Padmanandi was composed after Trilokasāra, i. e., after the 10th century A. D., but before 1461 A. D., that being the age of the Āmera Ms. Some more evidence has to be sought to narrow down this period and put a specific date.

Pāriyātra stands for the territory above the Vindhya, and also for its western range. Pt. Premi has suggested (Jaina Sāhitya aura Itihāsa, pp. 256 ff.) that Bārā-nagara might be the same as Bārā in the Kota area of Rajasthān; and it was a seat of the Bhaṭṭārakas in the 11th and 12th century A. D. He further suggests that Śakti-bhūpāla might be the same as Śakti-kumāra of the Guhilot dynasty of Rajasthān, roughly at the close of the 10th contury A. D. Śakti-kumāra seems to have been partial to Jainism, though he was a Pāśupata by faith. So Padmanandi might have composed this JPS at the close of the 10th or at the beginning of the 11th century A. D. at the time of Śaktikumāra.

5. General Editorial

As soon as the edition of Tilloyapaṇṇatti was completed (Vol. II published in 1951), the editors had before then one more Prākrit work on the same subject to see the light of day, the Jambūdīva-paṇṇatti of Paümaṇaṁdi.

One of them (Prof. H. L. Jain) had his doubts about the wisdom of taking in hand for edition and translation a very difficult text like it, obscure at many places, the available Mss. of which were very corrupt. But the younger of the two editors (Prof. A. N. Upadhye) would not be deterred by these apprehensions. After all, this text has to be rescued from oblivion. And if so, who else would do the job and when? So at last the two agreed to put their shoulders together as usual and make as best use of the available material as possible. Pt. Balchandra Shastri who already had the experience of translating the Tiloyapaṇṇatti was harnessed for the Hindī paraphrase.

The result of their joint labours is now before the world of scholars to see how far they have succeeded in their long drawn efforts.

The printing of the text was done at the Saraswati Press, Amraoti. But the completion of the volume had to be delayed for the important essay on the mathematics of the Tiloyapaṇṇatti (TP) by Prof. Laxmichandra Jain, the printing of which had to be done at Banaras, owing to the shifting of the Dhavalā Office through which the printing work was being looked ofter. For the printing of this essay many Greek letters and signs had to be specially cast and the figure blocks had to be made: this again required much labour and delay. Immediately after the printing of the mathematical essay and the appendices was over, but before this introduction could be sent to the press, Pt. Balchandra Shastri fell ill and had to leave Banaras for his home in Bina. Therefore the printing of the rest of this work had to be done at Bombay and Sholapur. Under these circumstances, if the readers find any odd variety of paper and printing in this volume they would kindly excuse us.

The editors and the translator had done their best to handle the mathematical material as it occurred in these texts, viz., TP & JPS. But they were conscious of their limitations in this subject, and they desired to have the material studied adequately by a competent scholar of Mathematics. Luckily, they found a willing intellect in the young Professor of Mathematics, Shri Laxmichandra Jain. He has mainly studied the mathematical portions of the Tiloyapaṇṇatti and given his exposition in his Hindi Essay of 104 pages. Besides explaining the numerous mathematical processes of the Jaina works, with proper signs, symbols and diagrams, he has drawn pointed attention to certain peculiarities of Jaina Mathematics which have a similarity with ancient Greek and Chinese writings (for example see pp. 10 & 13). It would be hazardous at this stage to draw inferences regarding giving and borrowing. The points, however, deserve further study and investigation. Prof. Laxmichandra is himself continuing his studies in this direction.

After this publication, there remain two more unpublished texts on the subject of Jaina Cosmology. They are the Lokavibhāga and Trailokyadīpikā in Sanskrit. Attempts are being made to include them also in this series.

The activities of the Sanskriti S. Saṃgha have received a very severe blow by the sad demise of its founder Brahmachari Jivarajbhai, who, during the whole period of its functioning so far, was the Chairman of the Trust and of the Managing Committee, and kept a very vigilant watch on the progress of its work. He never allowed any slackness creeping into any sphere of its working, and tried to resolve every difficulty that came in the way, with the whole force of his moral power and material resources. With his death, a brilliant career of pious pursuits and unreserved charity in the cause of Jaina Culture, has come to an end. May his soul rest in peace, and may his example inspire the present and future generations of wealthy men to use their wealth for the right cause, so long as they are the masters of it! We welcome Seth Gulabchand Hirachand as our succeeding Chairman. As an old member of the Trust Committee, he was already well acquainted with the activities of the Sangha and had full sympathy for the same. We have no doubt that with the best co-operation of his colleagues on the Trust Board, he will not spare any pains to maintain the traditions built up by his noble predecessor.

We are now passing through very difficult and yet hopeful times: difficult because religious values are on the decline, sources of private charities are drying up, young men have more attraction for science and technology than for humanities, and, above all, destructive weapons are hovering over our heads, threatening to turn all intellect and culture into vapour any moment; hopeful, because, for those very reasons, a thought process has started which wants to reverse the movement. Sober people in our country as well as the world over are turning their mind to old values for the safety of humanity, for the peace and prosperity of the world. In this process of thought, much strength can be derived from the message emanating from every page and every sentences of our ancient literature, the message of eternity of life and nature, and supremacy of spiritual values over material gains.

Let us hope that from this point of view not only this literature would continue to be studied, but more attention would be paid to bring to light what remains still hidden in the obscure corners of ancient Bhandars and temples. The great Indian Heritage has still to come in to its own.

In the end, we gratefully acknowledge our debt to all those institutions and persons who have, in one way or another, helped in the edition and publication of this volume. In particular, our best thanks are due to the members of the Board of Trustees and Managing Committee of the Sangha for their interest and zeal, the owners of the Mss. utilized here and the scholars who have co-operated with us in this task.

Sholapur
5-1-58

A. N. Upadhye
H. L. Jain

तिलोय-पण्णत्तिका गणित

परम्परा के आधार पर त्रिकालवर्ती विश्व-रचना का सार रूप से परिचय कराने वाला यह (तिलोय पण्णत्ति नामक) ग्रंथ मुख्यतः गणित ग्रंथ नहीं है। सूत्रबद्ध प्ररूपणा में केवल फलों का वर्णन तथा कहीं कहीं उपयोग में लाये गये सूत्रों का वर्णन रहता है। इस ग्रंथ में कहीं कहीं गणित की झलक होने से, गणना की शैली का कुछ वर्णन सम्भव हो सका है। ऐतिहासिक दृष्टि से, यह ग्रंथ महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। अन्य समकालीन अथवा कुछ पूर्वोत्तर ग्रंथों की तुलना में, इस ग्रंथ में कुछ ऐसे प्रकरण तथा निरूपण दिये गये हैं जिनके आधार पर तिलोय-पण्णत्ति की रचना से शताब्दियों पूर्व प्रचलित ज्ञान के विषय में आभास मिल जाता है। सबसे महत्वपूर्ण वस्तु असंख्यात विषयक संख्याओं की प्रतीकों के आधार पर प्ररूपणा है। इन प्रतीकों के आधार पर भाषा विज्ञान शास्त्री उनके उपयोग में लाये जाने वाले काल को निश्चित कर सकता है। यतिवृषभ के द्वारा कब इसकी रचना हुई, यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि इन क्रियात्मक प्रतीकों के उपयोग का रचना काल। दूसरी महत्वपूर्ण वस्तु, विविध वेत्रासन आदि आकार के सांद्रों का घनफल, छेदविधि निरूपण तथा वृत्त सम्बन्धी माप हैं। ज्यामिति के क्षेत्र में भारतवर्ष बहुत पीछे रहा है। परन्तु इन ज्यामिति विधियों के आधार पर मिश्र, बेबीलोन, यूनान, चीन, आदि देशों की रेखागणित से सह सम्बन्ध नहीं तो तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। इसके पश्चात् संख्या प्ररूपणा, श्रेणि-प्ररूपणा और अल्पबहुत्व तथा ज्योतिष सम्बन्धी सिद्धान्तों का मात्र प्रतिपादन गणितज्ञ के लिये कितने रोचक होंगे, यह निम्न लिखित विवेचन से स्पष्ट हो जावेगा।

संख्या सिद्धान्त

आधुनिक गणितज्ञ के लिये संख्या शब्द की स्पष्ट परिभाषा की आवश्यकता नहीं रहती। तिस पर भी, व्यापक रूप से सर्व प्रकारकी संख्याओं, वास्तविक और काल्पनिक, परिमेय और अपरिमेय, पूर्णांक और भिन्न आदि का निरूपण करने के लिये यह कहा जा सकता है कि संख्या केवल समान राशियों (ढेरों) की राशि है, और कुछ नहीं। गणित के इतिहास से प्रतीत होता है कि सबसे पहिले महावीराचार्य ने काल्पनिक संख्याओं को पहिचान कर उनको उपयोग में न लाने का कथन किया था। तथापि, जैसे $\frac{1}{2}$ आदमी का अर्थ आदमी की आधी ऊँचाई लेकर उसका उपयोग किया जा सकता है, उसी प्रकार काल्पनिक संख्याओं का आधुनिक-युगीन विभिन्न विद्वानों में विस्तृत और महत्वपूर्ण उपयोग हो चुका है। पायथेगोरियन युग में भी अनन्त के विषय में वार्तायें चल पड़ीं थीं, परन्तु ज़ीनो के तर्कों ने बाद के गणितज्ञों को उस ओर आगे जाने में भय उत्पन्न कर दिया था। जब गेलिलियो के पश्चात् उन्नीसवीं सदी में जार्ज कैंटर ने अनन्त विषयक गणित की संरचना प्रारम्भ की, उस समय गणितज्ञों ने कहा था[1] कि यह विषय १०० वर्ष अति पूर्व लाया गया है। किन्तु भारतवर्ष में यह विषय ईसा से कुछ शताब्दियों पूर्व प्रतिपादित हो चुका था। पुष्पदंत और भूतबलि के ग्रंथ षट्खंडागम तथा उनके पश्चात् के प्रायः सभी ग्रंथों में असंख्यात और अनन्त शब्द बिलकुल साधारण शैली में उपयोग में लाये जाते हैं, मानों ये हमसे अपरिचित ही नहीं हैं। तिलोय-पण्णत्ति में, असंख्यात और अनन्त के वास्तविक दर्शन को क्रमशः अवधिज्ञान तथा केवलज्ञानी का विषय बनाया है। वीरसेन ने अनन्त संज्ञा उस राशि को दी है, जो व्यय के होते रहने पर भी अनन्त काल में समाप्त न हो। संख्यात अथवा असंख्यात प्रमाण राशि, अनन्त

१ Fraenkel, p. 2.

में से व्यय कर दी जाने पर भी, अनन्त का प्रमाण अनन्त रहता है, अथवा उसकी अनन्त संज्ञा नष्ट नहीं हो सकती है। यद्यपि संख्या के २१ भेदों का उल्लेख तथा उन्हें उत्पन्न करने का पूर्ण विवरण तिलोय-पण्णत्ति में है, तथापि उन भेदों का वास्तविक अर्थ समझना वांछनीय है। संख्यात से उत्कृष्ट संख्यात की प्राप्ति होने पर, केवल १ जोड़ने पर जघन्य परीत असंख्यात प्राप्त हो जावे, पर उस संख्या में यह असंख्यात संज्ञा उपचार रूप में दी गई है। वास्तविक असंख्यात वहाँ से प्रारम्भ होता है, जहाँ उत्कृष्ट असंख्यात की प्राप्ति के लिये, वास्तविक असंख्यात संज्ञाधारी धर्म द्रव्यादि राशियों को क्रमबद्ध गणना से प्राप्त संख्यात में जोड़ा जाता है। इसी प्रकार, उत्कृष्ट असंख्यात-असंख्यात में १ जोड़ने पर जघन्य परीत अनन्त की जो उत्पत्ति है वह अनन्त संज्ञा की धारी इसलिये है कि वह संख्या अब अवधिज्ञानी का विषय नहीं रही। इसलिये औपचारिक रूप से अनन्त शब्द द्वारा बोधित है, वास्तविक अनन्त नहीं है। अनन्त की प्राप्ति के लिये इस संख्या से क्रमबद्ध गणना के पश्चात् जो असंख्यात से ऊपर प्रमाण राशि उत्पन्न होती है, उसमें उपधारित (Postulated) अनन्त राशियां जब मिलाई जाती हैं तभी वह वास्तविक अनन्त संज्ञा की अधिकारिणी होती है। इनके आधार पर द्रव्य, क्षेत्र और काल के आधार पर कहे गये प्रमाण तथा उनका अल्पबहुत्व (Calculus of relations) मौलिक हैं, मनोरंजक भी है। यहाँ अल्पबहुत्व (Comparibility) के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य संक्षेप में बतलाना आवश्यक है। वह यह कि किसी अनन्त से अपेक्षाकृत बड़ा अनन्त भी होता है। उदाहरणतः यह बात मन में साधारणतः नहीं बैठती है कि क्या अनन्त काल के एक एक करके बीतनेवाले समयों में संसारी जीव राशि कभी समाप्त नहीं होती। इस सत्य का दर्शन करने के लिये और समाधान के लिये हम पाठकों को कॅंटर द्वारा प्रस्तुत दशमलव तथा एक एक संवाद पर आधारित संततता (Continuum) के गणात्मक और प्राकृत संख्याओं की राशि (१, २, ३,......) के गणात्मक का अल्पबहुत्व पठन करने के लिये आग्रह करते हैं[१]। (जिनागम प्रणीत अल्पबहुत्व एवं आधुनिक राशि सिद्धान्त के अल्पबहुत्व के तुलनात्मक अध्ययन के लिये सन्मति सन्देश, वर्ष १, अंक ४ आदि देखिए)।

संख्याओं के विभाजन का यह विषय लौकिक गणित का नहीं है, वरन् अलौकिक अथवा लोकोत्तर गणित का है, जैसा श्री अकलंक देव के तत्त्वार्थवार्तिक में उल्लेख है। यूनान में भी, पायथेगोरियन युग में मथीमतिकी (μαθηματικη) शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसके विभिन्न अर्थ लगाये जाते हैं, तथापि यह निश्चित है कि लोगिस्तिकी (λογιστικη)—गणना कला तथा अर्थमितिकी (αριθμητικη)—संख्या सिद्धान्त, ग्रीक गणित में मूलभूत था[२]। प्लेटो ने कहा है—"But the art of calculation (λογιστικη) is only preparatory to the true science; those who are to govern the city are to get a grasp of λογιστικη, not in the popular sense with a view to use in trade, but only for the purpose of knowledge, until they are able to contemplate the nature of number in itself by thought alone.[३]"

ज्यामिति अवधारणायें

ति. प. में प्रथम महाधिकार की गाथा ९१ से लेकर १३५ वीं गाथा तक, ज्यामिति अवधारणाओं को इस शैली से रखा गया है कि ये ४४ वाक्य अथवा सूत्र जैन सिद्धान्त शास्त्री के लिये इतने सुपरिचित प्रतीत होंगे कि उनका महत्व दृष्टिगोचर नहीं होगा। जैन सिद्धान्तों को न जाननेवाले के लिये ये इतने अपरिचित सिद्ध होंगे कि उन्हें भी ये महत्व-विहीन प्रतीत होंगे। इनसे परिचित कराने में तो

१ Fraenkel, p. 64. २ Heath, vol. i, pp. 12 to 14. ३ Heath, vol. i. p. 13

एक ग्रंथ बनाना पड़ेगा, तथापि, यहां बहुत ही संक्षेप में सार रूप वर्णन ही झलक मात्र देने के लिये पर्याप्त होगा। अभेद्य पुद्गल परमाणु जितना आकाश व्याप्त करता है, उतने आकाशप्रमाण को प्रदेश कहा गया है। अमूर्त आकाश में इसके पश्चात् भेद की कल्पना का त्याग होना प्रतीत होता है, तथा मूर्त द्रव्य में ही भेद अथवा छेद की कल्पना के आधार पर मुख्य रूप से आकाश में प्रदेशों की कल्पना की गई है, जो अनुश्रेणिबद्ध है। आकाश जहां कथंचित् अखंड (Continuous) है, वहां कथंचित् प्रदेशवान भी है। इस प्रदेश (खंड, Point) के आधार पर, संख्याओं का निरूपण करने के लिये उपमा-मान भी स्थापित किये गये हैं। पल्योपम और सागरोपम उपमा प्रमाण समय की परिभाषा के आधार पर स्थापित किये गये हैं। चौथे महाधिकार में गाथा २८४, २८५ में समय का स्पष्टीकरण किया गया है। सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, जगश्रेणी, रज्जु आदि केवल एक महत्ता की सूचक नहीं हैं, वरन् जहां *संख्या मान का प्ररूपण होता है, वहां इनका अर्थ, इन लम्बाइयों में स्थित प्रदेश बिन्दुओं की* गणात्मक संख्या है। एक स्कंध में अनन्त परमाणुओं के होने का अर्थ, संख्या प्ररूपणा के आधार पर, एक स्कंध (उवसन्नासन्न) की लम्बाई में स्थित प्रदेश बिन्दुओं की संख्या अनन्त नहीं है, वरन् कुछ और ही है। एक आवलिमें समयोंकी संख्या जघन्य युक्तासंख्यात होती है। इस प्रकार कथन कर, संख्या मान के लिये उपमा से काल प्रमाण और आयाम प्रमाण में सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

$$(\text{अं}) = (\text{प})^{\log_2 (\text{अ})}$$

जहां अं, सूच्यंगुलके प्रदेशोंकी गणात्मक संख्या है, प पल्योपम काल में स्थित समयोंकी संख्या है तथा अ, अद्धापल्य काल राशि (कुलक) में स्थित समयों की संख्या है। ऐसे प्रदेश की अवधारणा के आधार पर धर्मादि द्रव्यों में संख्या स्थापित कर, तथा शक्ति के अविभागी अंश के आधार पर केवलज्ञान आदि अनन्त राशियों की स्थापना कर, उनके सूक्ष्म विवेचनों को संख्या मान अथवा द्रव्यप्रमाण का विषय बनाया गया है।

आधुनिक गणितज्ञ बिन्दुकी परिभाषाकी भी उपेक्षा करता है और बिन्दु कहलाई जानेवाली वस्तुओं की राशि से समारम्भ करता है। ऐसी अपरिभाषित वस्तुएँ एक उपराशि या उपकुलक (Subset) की रचना करती हैं जो सरल रेखा कहलाती है, इत्यादि। ऐसे अपरिभाष्य बिन्दु को लेकर, बोलज़ेनोंके साध्य के आधार पर, जार्ज केन्टर ने अनन्त विषयक गणित की संरचना की, जिसे अमूर्त राशि सिद्धान्त (Abstract set theory) कहा जाता है। जार्ज केन्टर ने, परिमित और पारपरिमित (Trans finite) राशियों पर कार्य करने में असंख्यात की उपेक्षा की है। परन्तु, पारपरिमित गणात्मक संख्याओं के विभिन्न प्रकार बतलाये गये हैं। इस प्रकार, पारपरिमित गणात्मकों और अखण्ड फैलाव (Continuum) के सिद्धान्तों से प्राप्त गणितीय दक्षता, अमूर्त राशि सिद्धान्त को जन्म दे चुकी है, परन्तु उसकी वृहद संरचना करते समय, गणितज्ञों के सम्मुख विभिन्न मिथ्याभास (Paradox) उपस्थित हुए हैं, जिनका सर्वमान्य समाधान नहीं हो सका है। समाधान के लिये, इस शताब्दी में गणितीय दर्शन में विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर परि गणित (Meta-mathematics) की संरचना, गणितीय तर्क के रूप में हो चुकी है। यह केवल प्रतीक रूप में है। ज़ीनों के तर्क भी सर्वमान्य समाधान को प्राप्त नहीं हो सके हैं, जहाँ परिमित रेखा में अनन्त विभाज्यता का खण्डन किया गया है। और मेरी समझ में अन्तिम दो तर्कों में समय की अवधारणा को अन्यथा युक्ति खंडन के आधार पर पुष्ट किया गया है[१]। पायथेगोरियन युग में, बिन्दु की परिभाषा, "स्थिति वाली इकाई" थी। पायथेगोरियन सिद्धान्त के अनुसार, फिलोलस (Philolaus) ने कहा है "*All things which can be known have*

१ सन्मतिसन्देश, वर्ष १, अंक २, पृ० ७.

number; for it is not possible that without number anything can either be conceived or known.[१]"

एरिस्टाटिल ने वस्तुओं के लक्षणों और संख्याओं के बीच दार्ष्टान्त[२] आधारित कर, पायथेगोरियन सिद्धान्त को निम्न लिखित शब्दों में व्यक्त किया था—

"They thougt they found in numbers, more than in fire, earth or water, many resemblances to things which are and become; thus such and such an attribute of numbers is justice, another is soul and mind, another is opportunity, and so on; and again they saw in number the attributes & ratios of the musical scales. Since, then, all things seemed in their whole nature to be the first things in the whole of nature, they supposed the elements of numbers to be the elements of all things, and the whole heaven to be a musical scale and a number.[३]"

जहां यूक्लिड ने बिन्दु को भाग रहित, विमाओं रहित कहकर छोड़ दिया है, वहां पायथेगोरियन परिभाषा, "monad having position" बहुत कुछ वैज्ञानिक प्रतीत होती है। प्लेटो द्वारा प्रतिपादित "चौड़ाई रहित श्रेणि breadthless length" की परिभाषा प्लेटो ने स्वयं दी है, "That of which the middle covers the end" (i. e. to an eye placed at either end and looking along the straight line);......"[४]

रूप (Figure) की परिभाषा मनोरंजक है, जिसे सुकरात (Socrates) ने इस प्रकार कहा है, "Let us regard as figure that which alone of existing things is associated with colour.' यहां रंग (Colour) के विषय में विवाद उठने पर, सुकरातका उत्तर यह है, "It will be admitted that in geometry there are such things as what we call a surface or a solid, & so on; from these examples we may learn what we mean by figure; figure is that in which a solid ends, or figure is the limit (or extremity, περασ) of a solid."[५]

περασ शब्द का उच्चारण परस होता है। यहां चौड़ाई रहित श्रेणि के समान ही एकानन्तकी परिभाषा वीरसेन ने दी है। रूपी अथवा मूर्तिक पदार्थों (पुद्गल) के विषय में अवधारणाएं पठनीय हैं। इस प्रकार, यूनानी ज्यामिति में परिभाषायें, स्वसिद्ध, उपधारणायें, आधारभूत थीं जिनके विषय में यही कहा जाता है कि उन्हें पायथेगोरियन वर्ग ने खोजा था। जिस प्रकार जैनाचार्यों ने स्वलिखित ग्रंथों में आचार्य परम्परागत ज्ञान का ही आधार सर्वत्र लिया है[६], उसी प्रकार पायथेगोरियन वर्ग ही आविष्कारकों का नाम हुआ करता था[७]।

---

१ Heath, vol. 1, p. 67.

२ इस सम्बन्ध में धवलाकार वीरसेन द्वारा उद्धृत अंक एवं रैखिकीय का निरूपण देखने योग्य है। षट्खंडागम (पु. १०) ४, २, ४, १७३; पृ. ४२१-४३०, (१९५४)। तेजस्कायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, जीवराशि की गणना भी त्रिलोक-प्रज्ञप्ति आदि ग्रंथों में विस्तृत रूप से वर्णित है।

३ Heath, vol. 1, Sc. 66.

४ Heath, vol. I. Sc. 293.

५ Heath, vol. 1, Sc. 293.

६ ति. प. १, ८४.

७ Coolidge2, p. 26.

पायथेगोरियन वर्ग के विषय में प्लेटो के कुछ कथन अति मनोरंजक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं—

"They have in view practicality, and are always speaking in a narrow and ridiculous manner of squaring and extending and applying and the like..........., Then, my noble friend, geometry will draw the soul towards truth and create the spirit of philosophy, and raise up that which is now, unhappily, allowed to fall down............ And do you not know also that although they make use of visible forms and reason on them they are thinking not of those but of the ideal which they resemble, not of the figures which they draw, but of the absolute square, the absolute diameter and so on........... And when I speak of the other division of the intelligible you will understand me to speak of that other sort of knowledge which reason herself attains by the power of dialectic, using the hypotheses, not as first principles, but as base hypotheses, in order that she may soar beyond them to the first principle of the whole, and clinging to this and then to that which depends on this by successive steps. She may descend again without the aid of any sensible object from ideas through ideas, and in ideas she ends.[१]"

उपर्युक्त वर्णन, ऐसा प्रतीत होता है, मानो आत्मा, आयत चतुरस्राकार लोक (जिसका तल वर्गाकार होता है), जम्बूद्वीप (जो वृत्ताकार होता है) के विष्कम्भ, आदि के विषय में किया जा रहा हो। वास्तव में, यूनान का पायथेगोरियन वर्ग अथवा बाद के दर्शनशास्त्री, गणित में क्या व्यावहारिक गणना के लिये रुचि रखते थे? नहीं, वे वास्तविक सत्य (absolute truth) के सम्बन्ध में ही रुचि रख कर, गणना करते थे[२]। यही भारतवर्ष में वीरसेन तथा यतिवृषभ के परिकर्म ग्रंथादि विषयक उल्लेख से प्रतीत होता है।

यदि जैनागम प्रणीत पुद्गल परमाणु के आधार पर कथंचित् प्रदेश संरचित आकाश की अवधारणाओं को लेकर आधुनिक ज्यामिति क्षेत्र में नये सुझाव दिये जावें तो प्रश्न उठता है कि अविभागी पुद्गल परमाणु किसे माना जावे। अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं का एक क्षेत्रावगाही होना, स्पर्श (contact) के सिद्धान्त के लिये उपधारित हो, वह तो ठीक है, परन्तु क्या हम अणुविभंजन विधियों से उस अन्तिम परमाणु को प्राप्त करने की चरम सीमा तक पहुँच सकते हैं, अथवा नहीं? डेन्टन का विचार है, "In fact, the ultimate particle of matter presents great difficulties; it need not be the electron—probably is not—but the atomic notion of the constitution of matter does surely demand an ultimate particle, and such reasoning as has been suggested shows that to this ultimate particle no properties of any sort—not even magnitude can be assigned. The alternative of pushing the responsibility on to the last member of an unending series of particles can hardly be said to satisfy the mind which demands a clear physical conception of nature.[३]"

१ Coolidge, pp. 26, 27. २ Coolidge, p. 24. ३ Denton, p. 42.

क्या यह पुद्गल परमाणु, वह है जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने उपधारित किया है, "Besides possessing extension in space and time, matter possesses inertia. We shall show in due course *that inertia, like extension; is expressible in terms of the intervol relation*; but that is a development belonging to a later stage of our theory. Meanwhile we give an elementary treatment based on the empirical laws of conservation of momentum and energy rather than any deep-seated theory of the nature of inertia.

For the discussion of space and time we have made use of certain ideal apparatus which can only be imperfectly realized in practice—rigid scales and perfect cyclic mechanisms or clocks, which always remain similar configurations from the absolute point of view. Similarly for the discussion of inertia we require some ideal material object, say a perfectly elastic billiard ball, whose condition as regards inertial properties remains constant from an absolute point of view. The difficulty that actual billiard balls are not perfectly elastic must be surmounted in the same way as the difficulty that actual scales are not rigid. To the ideal billiard ball we can affix a constant number, called the invariant mass, (proper mass) which will denote its absolute inertial properties; and this number is supposed to remain unaltered throughout the vicissitudes of its history, or, if temporarily disturbed during a collision, is restored at the times when we have to examine the state of the body.[१]" यहां, अचल मात्रा (invariant mass—m) तथा सापेक्ष मात्रा (relative mass—M) के विषय में, किये गये प्रयोगों के आधार पर मात्रा को शून्य से उत्पन्न करना तथा मात्रा को शून्य में बदल देना (विनष्ट कर देना) जैसी कल्पनाएं पाठक न बना लें, उसके लिये हम अगला अवतरण पढ़ने के लिये बाध्य करते हैं—"It will thus be seen that although in the special problems considered the quantity m is usually supposed to be permanent, its conservation belongs to an altogether different order of ideas from the universal conservation of M.[२]"

पुनः, क्या बिन्दु विद्युन्मय कण (Point Electron) को पुद्गल परमाणु कहा जाय, जिसके विषय में यह कहा गया है, "Accordingly, I am of opinion that the point-electron is no more than a mathematical curiosity, and that the solution (78. 6) should be limited to values of r greater than a.[३]" इसके विषय में अभी हम कहने में असमर्थ हैं। निश्चित कार्य हो जाने पर हम निर्धारण करेंगे।

इस प्रकार, आकाश में प्रदेशों की श्रेणियाँ मुख्य रूप से मानकर, विग्रहगति (कर्म निमित्तक योग)

---

१ Eddington, The mathematical Theory of Relativity, pp. 29, 30.

२ Eddington, p. 33   ३ Eddington p. 33.

में, जीव और पुद्गलों की गति मानी गई है। डिस्कार्टीज् और फरमेट के समान, यहाँ अकलंक ने तत्त्वार्थवार्तिक में निरूपण किया है कि चार समय (the now of Zeno) से पहिले ही मोड़े वाली गति होती है, क्योंकि संसार में ऐसा कोई स्थान (कोनेवाला, टेढ़ा मेढ़ा) नहीं है जिसमें तीन मोड़े से अधिक मोड़ा लेना पड़े। जैसे षष्टिक चावल साठ दिन में नियम से पक जाते हैं, उसी तरह विग्रहगति भी तीन समय में समाप्त हो जाती है[१]। इस आधार पर यदि बिन्दु की परिभाषा दी जावे और घटना को x, y, z और t यामों से निरूपित किया जावे तो भी, जैनागम प्रणीत वचनों का पूरा अर्थ नहीं निकल सकता। यहां तो अनन्तानन्त अलोकाकाश के बहुमध्यभाग में स्थित, जीवादि पांच द्रव्यों से व्याप्त और जगश्रेणी के घन प्रमाण लोकाकाश बतलाया गया है। ऐसे असंख्यात प्रमाण प्रदेशोंवाले काल, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य, जीव और पुद्गलों के स्वभाव से घटनायें परिणमन करने में स्वभावानुसार परिणत होते हैं। यहां प्रश्न उठता है कि क्या पायथेगोरियन युग के पांच नियमित सांद्र (the five regular solids) ये ही हैं जिनके विषय में कहा गया है, "The same parenthetical sentence in Proclus.........also states that he (Pythagoras) discovered the 'putting together (ovoτασιo) of the cosmic figures' (the five regular solids.)"[२]

इस सम्बन्ध में हम ईशस (Aetius) के शब्दों को उद्धृत कर, हीथ का विचार प्रस्तुत करना उपयुक्त समझते हैं।

'*Pythagoras* seeing that there are five solid figures, which are also called the mathemetical figures, says that the earth arose from the cube, fire from the pyramid, air from the octahedron, water from the icosahedron and the sphere of the universe from the dodecahedron'.

It may, I think, be conceded that Pythagoras or the early Pythagoreans would hardly be able to 'construct' the five regular solids in the sense of a complete theoretical construction such as we find in Eucl. XIII;.........But, there is no reason why the Pythagoreans should not have 'put together' the five figures in the manner in which Plato puts them together in the *Timaeus,* namely, by bringing a certain number of angles of equilateral triangles, squares or pentagons severally together at one point so as to make a solid angle, and then completing all the solid angles in that way."[3]

पुनः, "According to Heron, however, Archemedes, who discovered thirteen semi-regular solids inscribable in a sphere, said that, 'Plato also knew one of them, the figure with fourteen faces, of which there are two sorts, one made up of eight triangles and six squares, of earth and air, and already known to some of the ancients, the other again made up of eight squares and six triangles, which seems to be more difficult."[४]

१ तत्त्वा. वा. २, २८, १. २ Heath, vol. 1. p. 158.

३ Heath, vol. 1., p. 159 ४ Heath vol. 1., p. 295.

इनके विषय में हम पाठकों का ध्यान प्रथम महाधिकार की १६८ वीं गाथा से लेकर, महाधिकार के अन्त तक गाथाओं के रैखिकीय निरूपण की ओर आकर्षित करते हैं। कहा नहीं जा सकता, कि ये रैखिकीय विधियां कहां तक पांच सांद्रों सम्बन्धी उलझे हुए प्रश्न को सुलझा सकेंगी। समाधान अनुसंधान पर आश्रित है।

अंक गणना

इस ग्रन्थ से भी पूर्व के ग्रन्थों, अनुयोगद्वार सूत्र[१] (१०० ई०पू०), तथा षट्खण्डागम[२] में मनुष्य पर्याप्तों में मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा से कोड़ाकोड़ाकोड़ि से ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ि से नीचे, अथवा छटवें और सातवें वर्गों के बीच की संख्या बतलाई गई है। यहां शून्य का स्थानार्हा पद्धति में प्रयोग किया गया है। भारतीय गणित में ऐसा निरूपण पूर्व के ग्रन्थों में अभी अन्यत्र कहीं नहीं दिखा है। बख्शाली हस्तलिपि में O प्रतीक का प्रयोग शून्य (Emptiness) अथवा अग्राह्यता (Omission) के लिये हुआ प्रतीत होता है। वीरसेन के पूर्व के सूत्रों में कई शैलियों से संख्या का कथन किया गया है जिसके लिये सूत्र ५२, ७१, ७२ आदि देखने योग्य हैं[3]। तिलोय-पण्णत्ति में प्रायः सभी स्थानों में स्थानार्हा पद्धति का उपयोग है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इसकी संरचना के समय तक दसार्हा संकेतना पूरी तरह उपयोग में आ चुकी थी। गाथा ३०८ (चतुर्थ महाधिकार) में अचलात्म नामक काल की संकेतना दी गई है जो $(८४)^{३१} \times (९०)^{९०}$ प्रमाण वर्षों के तुल्य होता है[४]। आगे निर्देशित किया है कि यह संख्यात काल वर्षों की गणना, उत्कृष्ट संख्यातकी प्राप्ति तक ले जाना चाहिये। यह नहीं कहा जा सकता कि, आर्यभट्ट से भी पूर्व वर्गमूल या घनमूल निकालने की रीतियां भारत वर्ष में प्रचलित थीं, परन्तु तिलोय-पण्णत्ति तथा षट्खंडागम में आये हुए उल्लेखों से प्रतीत होता है कि यहां ऐसे कथन भी थे, "जगश्रेणी को जगश्रेणी के बारहवें वर्गमूल से भाजित करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह वंशा पृथ्वी के नारकियों का प्रमाण होता है[५]"।

यद्यपि यूनानमें दशमलव पद्धति का प्रचलन ऐतिहासिक काल में सबसे पूर्व हुआ प्रतीत होता है, तथापि मिश्र में उनसे भी पूर्व दसार्हा पद्धति के आधार पर १, १०, १००, १००० आदि के लिये चिन्ह थे। इसी प्रकार बेबीलोन में भी दशमलव और षाष्ठिक पद्धतियों पर संख्याओं के निरूपण के लिये चिन्ह थे। आर्कमिडीज़ पद्धति उल्लेखनीय है। $(१०)^{८}$ पर आधारित यह पद्धति काल के विषय में बड़ी संख्याओं की प्ररूपणा के लिये थी जिसके सम्बन्धमें कहा गया है, "This system was, however, a tour-de-force, and has nothing to do with the ordinary Greek numerical notation.[६]"

इन सबकी तुलना में उत्कृष्ट संख्यात, गणना द्वारा उत्पन्न करने की रीति, जो तिलोय-पण्णत्ति में वर्णित है, वह दूसरे ग्रंथों के आधार पर पाथयेगोरियन युग की प्रतीत होती है। एक और नवीन रीति का वर्णन अत्यंत रोचक है। वह है वर्गण-संवर्गण विधि। इस विधि को शलाका निष्ठापन विधि भी

---

१ अनु. सूत्र १४२.

२ द्रव्यप्रमाणानुगम (पु. ३) सूत्र ४५.

३ द्रव्यप्रमाणानुगम

४ यह संकेतना वर्णन अनुयोगद्वारसूत्र में भी है, और उसका प्रचलन उससे भी पूर्व काल में हुआ होगा।

५ तिलोयपण्णत्ति २, १९६.

६ Heath, vol 1, p. 41.

कहते हैं। यदि २ को तीसरी बार वर्गित संवर्गित किया जावे तो $\overline{२}|^{३}$ अथवा $(२५६)^{२५६}$ राशि प्राप्त होती है। सोचिये, कि यदि हम $\overline{Aaj}|^{(Aaj)}$ का मान निकालने जावेंगे तो क्या प्राप्त होगा[१]?

पुनः अर्द्धच्छेदों तथा वर्गशलाकाओं के द्वारा, इन संख्याप्रमाणों द्वारा प्ररूपित राशियों के अल्प-बहुत्व का विश्लेषण किया जाता था। अर्द्धच्छेद आधुनिक $\log_{२}$ है तथा वर्गशलाका आधुनिक $\log_{२}\log_{२}$ है। वीरसेन ने तो द्रव्यप्रमाणानुगम में इस विधि का उपयोग इस तरह किया है कि बीजगणित के लिये अभूतपूर्व सामग्री का नवीं शताब्दि में उपस्थित होना एक आश्चर्यपूर्ण बात प्रतीत होती है। जहां इस गणित के नियमों से नवीं सदी के जैनाचार्य पूर्ण दक्षता को प्राप्त हो चुके थे वहां यूरोप में जान नेपियर और बर्जी द्वारा इसके पुनः आविष्कार की पुनरावृत्ति सत्रहवीं सदी में होती दिखाई देती है। ईसा से १०० वर्ष पूर्व ही अनुयोगद्वारसूत्र में $(२)^{९६}$ को वह संख्या प्ररूपित किया है जो २ के द्वारा ९६ बार छेदी जा सके[२]। तिलोय-पण्णत्ती के प्रथम अधिकार की १३१, १३२ वीं गाथाओं से ही अर्द्धच्छेद के नियमों का परिचय हो जाता है। आगे सातवें महाधिकार में गाथा ६१३ के पश्चात् सपरिवार चन्द्रों के बिम्बों का प्रमाण निकालने में, वीरसेन ने (?) अथवा यतिवृषभ ने (?) जो प्ररूपण दिया है वह जिस प्रकार हम सरल विधि से आधुनिकता लाकर प्रदर्शित करने में प्रयत्न कर सके हैं वह अति मनारंजक और ऐतिहासिक महत्व की वस्तु है[३]।

आगे श्रेढियों में समान्तर और गुणोत्तर श्रेढियों के योग, विभिन्न रूप से श्रेढियों की संरचना कर, उनके योग निकालकर, तथा विभिन्न रूप में अल्पबहुत्व का निरूपण, जैनाचार्यों की मौलिक वस्तु प्रतीत होती है। दूसरे महाधिकार में गाथा २७ से लेकर गाथा १०४ तक, नारक बिलों के विषय में उनके संकलन का विवरण महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार पांचवें महाधिकार में पृष्ठ ५६३ से लेकर पृष्ठ ५९६ तक, द्वीप-समुद्रों के क्षेत्रफलों का अल्पबहुत्व उनकी दक्षता का प्रमाण प्रतीक है। श्रेढियों को इतने विस्तृत रूप में वर्णन करने का श्रेय जैनाचार्यों को है। यदि तिलोय-पण्णत्ती का यह विवरण पूर्वाचार्यों से लिया गया है तो आर्यभट्ट से पूर्व श्रेढि संकलन सूत्रों का होना सिद्ध होता है। इस सम्बन्ध में यूनानी इतने आगे नहीं आये तथापि ऐतिहासिक अभिलेखों के आधार पर पायथेगोरियन वर्ग काल में भी प्राकृत संख्याओं के संकलन का प्रमाण मिलता है[४]।

निकोमेकस (Nicomachus) ने प्रायः १०० ईस्वी पश्चात् श्रेढियों के संकलन के विषय में, जो कुछ प्रदर्शित किया उसे देखकर आश्चर्य होता है कि जहाँ रोमन खेत गणकों (agrimensores) को प्राकृत संख्याओं के घनों का योग निकालने के लिये सूत्र ज्ञात था, वहाँ उसने सूत्र प्ररूपणा नहीं की है। इस आविष्कार के सम्बन्ध में कहा गया है—"It may have been discovered by the same mathematician who found out the proposition actually stated by Nicomachus, which probably belongs to a much earlier time[५]." यथोचित सामग्री के अभाव में इस विषय में और कुछ कहना उपयुक्त नहीं है।

---

१ सरल स्पष्टीकरण के लिये, $\overline{व}|^{अ}$ किसी संख्या व की अ बार वर्गित संवर्गित राशि का प्रतीक है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे जान नेपियर के लागएरिद्म के आधारभूत ग्रंथ 'The Constructio' से जैनाचार्यों की श्रेढियों पर आधारित अर्द्धच्छेद, वर्गशलाका आदि का समन्वय तथा सहसम्बन्ध अवलोकन करने का प्रयत्न करें।

२ B. B. Datta & A. N. singh P. 12 Part I.

३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी इसकी झलक का उल्लेख मात्र है (११, ९६-१०२)।

४ Heath vol. 1. P. 76, vol. ii, PP. 515 & 516.

५ Heath vol. 1. P. 109.

हो सकता है कि नवीं सदी में हुए महावीराचार्य और प्रायः ३०० वर्ष पूर्व हुए यतिवृषभ की गणनाविधियों में अन्तर रहा हो, तथापि यतिवृषभ कालीन जैनाचार्य का गणित ग्रंथ न होने से इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

अन्त में, यह भी उल्लेखनीय है कि जैनाचार्यों की भांति यूनान में संख्याओं को २^n के रूप में प्ररूपण करने का प्रचलन था। "The Neo-Pythagoreans improved the classification thus. With them the 'even-times even' number is that which has its halves even, and so on till unity is reached'[3]; in short, it is a number of the form 2^n"[१]

बीजगणित

इस ग्रंथ में उपयोग में आये हुए प्रतीकों का उपयोग केवल संख्या निरूपण के लिये ही नहीं वरन् कुछ क्रियाओं के लिये भी हुआ है। वीरसेन द्वारा अर्द्धच्छेदों और वर्गशलाकाओं के प्रमाण को शब्दों में व्यक्त करना सरल सा प्रतीत होता है, तथापि यह कथन करना कि $\log_२ \log_२ \overline{Iij}|^3$ राशि $\overline{Iij}|^1$ से १ वर्ग स्थान भी ऊपर नहीं पहुँची है, वास्तव में यह निरूपण है[२] —

$$\log_२ \log_२ \overline{Iij}|^3 = [Iij]^{Iij+१} \log Iij + (Iij+१) \log Iij + \log \log Iij$$

स्पष्ट है, कि ऐसे निरूपणों से भरे हुए इस ग्रंथ के रचने में वीरसेन के पास क्रियात्मक प्रतीकत्व अवश्य रहा होगा। यतिवृषभ के द्वारा जगश्रेणी का प्रतीक एक आड़ी रेखा होना, तथा उसके घन का ≡ रूप में प्ररूपित होना, नानाघाट शिलालेख काल से लेकर कुशन काल अथवा उससे भी बाद के क्षत्रप और आन्ध्र शिलालेख कालीन प्रतीत होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है, कि घटाने के लिये ऋण शब्द (रिंण) का उपयोग, पृष्ठ ६०२ से लेकर ६१७ तक हुआ है। बखशाली हस्तलिपि में रिंण के + उपयोग में लाया गया है। + प्रतीक की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मतों को हम प्रस्तुत करते हैं,

"The origin of the Bakhshali minus sign (+) has been the subject of much conjecture. Thibaut suggested its possible connection with the supposed Diophantine negative sign ⋔ (reversed ψ, tachygraphic abbreviation for λειψιϲ meaning wanting). Kaye believes it. The Greek sign for minus, however, is not ⋔ but ↑. It is even doutful if Diophantus did actually use it; or whether it is as old as the Bakhshali cross.[4] Hoernle[5] presumed the Bakhshali minus sign to be the abbreviation ka of the Sanskrit word kanita, or nu (or nu) of nyuna, both of which mean diminished and both of which abbreviations in the Brahmi characters would be denoted by a cross. Hoernle was right, thinks Datta,[6] so far as he sought for the origin of + in a tachygraphic abbreviation of some Sanskrit word. But, as neither the word kanita or nyuna is found to have been used in the Bakhshali work in connection with the subtractive operation, Datta finally, rejects the theory of Hoernle and believes it to be the abbre-

---

१ Heath vol. 1. P. 72.   २ षट्खंडागम—द्रव्यप्रमाणानुगम पृष्ठ २४.

viation ksa, from ksaya (decrease) which occurs several times, indeed, more than any other word indicative of subtraction. The sign for ksa, whether in the Brahmi characters or in Bakhshali characters, differs from the simple cross (+) only in having a little flourish at the lower end of the vertical line. The flourish seems to have been dropped subsequently for convenient simplification[१]."

तिलोय-पण्णत्ती में उपयोग में आये हुए प्राकृत शब्द 'रिण' के आधार पर हम भी अपना सुझाव रख सकते हैं। + चिह्न, रिण शब्द के रि अक्षर से ब्राह्मी लिपि के अनुसार (ी) लिया गया है। इस रिण शब्दको केवल परम्परागत आचार्यों द्वारा प्राप्त कार्य मार्गणाओं में स्थित जीवों की संख्या प्ररूपणा करने तथा उनमें अल्पबहुत्व दिखलाने के लिये प्रतीक निरूपण रूप में लिया गया है। हम यह कह सकते हैं कि रिण शब्द का उपयोग यतिवृषभ कालीन नहीं वरन् उनके पूर्व काल का है। इसके लिये प्रमाण हम और आगे चलकर बतलावेंगे। रिण शब्द का प्रयोग उस काल का निरूपण करता है जब कि + उपयोग में लाया गया होगा। और इस प्रकार रिण शब्द के उपयोग से, उपयोग में आये हुए अन्य प्रतीकों का काल निर्धारण हो सकता है। स्पष्ट है कि रिण शब्द से + धीरे धीरे किस प्रकार उपयोग में आने लगा होगा और यदि ऐसा हुआ है तो प्रतीकत्व का उपयोग बख्शाली काल से बहुत पूर्व का होना चाहिये। यह निर्णय करना भाषाविज्ञान शास्त्रियों के लिये है। उल्लेखनीय है कि धवलाकार वीरसेनाचार्य ने भी ऋण के लिये + प्रतीक का उपयोग किया है[२]।

पुनः, चौथे महाधिकार में गाथा १२८७ से लेकर १९९१ तक कोठों में शून्य का उपयोग क्या अग्राह्यता के लिये हुआ है, यह अभी नहीं कहा जा सकता। बख्शाली हस्तलिपि में भी ० का उपयोग खाली स्थान अथवा अग्राह्यता (omission) के लिये हुआ है। तथापि, शून्य का यह उपयोग खाली स्थान के लिये ही हुआ होगा, यह सम्भव प्रतीत होता है। भिन्न-भिन्न असंख्यात संख्याओं के निरूपण के लिये भिन्न-भिन्न प्रतीक लिये गये हैं। जैसे असंख्यात के लिये a, असंख्यात लोक प्रमाण राशि के लिये ९, तथा 'असंख्यात लोक ऋण एक' के लिये ८ को उपयोग में लाया गया है, इत्यादि। संख्यात के लिये...(यह चिह्न ति. प. पृ. ६०३ पंक्ति २ में देखिये) प्रतीक उपयोग में आया है। मिश्र में इसका उपयोग १०० की लिये प्रतीक रूप में हुआ है। मिश्र में खड़ी लकीर १ का, ग्रीस में खड़ी लकीर १० का निरूपण करती थ तथा ☰ ६० के लिये प्रतीक था। ९, १०० का प्रतीक था। आगे मू. अक्षर का उपयोग केवल निम्न लिखित स्थान में दिखाई देता है[३]—

=५८६४ रिण रा. = ४|४|६५६१ ४|६५५३६ ५	−२ मू.	॰ ॰ ——— १|३ मू.	= ४|६५५३६|५

यह स्थापना कैसे उत्पन्न की गई है, यह समझने में हम अभी समर्थ नहीं हैं। तथापि, बख्शाली हस्तलिपि में मू. प्रतीक का उपयोग मूल के लिये हुआ है। इसी प्रकार यहां तथा और दूसरी जगह भी σ का उपयोग योग के लिये किया गया प्रतीत होता है। Ω का अर्थ हम नहीं समझ सके हैं। इस प्रकार α, ο, Ω, ९ में यूनानी झलक दिखाई देती है, तथापि, निम्न लिखित अवतरण पढ़ना वांछनीय है।

---

१ B. B. Datta & A. N. singh Part I. PP. 14, 15.

२ षट्खंडागम पु. १०, ४, २, ४, ३२, पृ. १५१.   ३ ति. प. भाग २, पंचम अधिकार, पृष्ठ ६०९,

"Ssade, a softer sibilant (= σ σ), also called San in early times, was taken over by the Greeks in the place it occupied after π......... The Phoenician alphabet ended with T; the Greeks first added Υ, derived from Vau apparently (......), then the letters Φ, X, Ψ and, still later, Ω.........Now, as Ω is fully established at the date of the earliest inscriptions at Miletus (about 700 B. C.) and Naucratis (about 650 B. C.), the earlier entension of the alphabet by the letters Φ X Ψ must have taken place not later then 750 B. C."[1]

इस प्रकार, σ, Ω, ≡, के उपयोग के आधार पर रिण का उपयोग भी तिलोय-पण्णत्ती की संरचना से पूर्व का प्रतीत होता है।

रज्जु के लिये र, पल्य के लिये प, आदि प्रतीक ग्रहण करना स्वाभाविक है। द्वीन्द्रिय के लिये बीइंदिय शब्द का उपयोग प्राकृत में होता रहा है। सूच्यंगुल के लिये और कहीं कहीं आवलि के लिये २ प्रतीक चुना है— इसका कारण, तथा उपयोग में लाये जाने के काल का निर्धारण करना अभी शक्य नहीं है। भिन्नों के लिखने की शैली वख्शाली हस्तलिपि के समान ही है। मिश्र में भी यही शैली प्रचलित थी।

जैसे, $\frac{१}{२३}$ को ∩∩ ||| और $\frac{१}{३२४}$ को ९९९∩∩ |||| लिखा जाता था। बेबीलोन में भी खड़ी और आड़ी खूंटियों के द्वारा संख्या निरूपण होता था, जैसे I<........का अर्थ $(६०)^{८}$ + १०. $(६०)^{७}$ होता था। जिस तरह द्वि के लिये प्राकृत में बी है, उसी प्रकार यूनानी अक्षर β दो का प्रतीक है। अन्य चिह्न प्राप्त नहीं हुए हैं।

प्रतीकत्व के उपयोग के सिवाय, विभिन्न स्थानों में सूत्रों का उपयोग, तथा सूत्र द्वारा अल्पबहुत्व का निरूपण ही विभिन्न समीकारों की उत्पत्ति करता है, जो पठनीय हैं, तथा जिनसे पर्याप्त मात्रा में खोज की जा सकती है। अल्पबहुत्व का निरूपण ही विश्लेषण अथवा बीजगणित है, जिसके कुछ उदाहरण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, और जिनके पूर्वापर विरोध का खंडन करने के लिये वीरसेन अथवा यतिवृषभने अपने समय की प्रचलित युक्तियों की झलक दिखा दी है। वही झलक ऐतिहासिक दृष्टिसे कितने महत्व की है, यह स्वयं प्रकट हो जावेगा।

मापिकी या ज्यामिति विधियां

तिलोय-पण्णत्ती के विवरणसे स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने जो भी खोजें कीं वे परम्परागत ज्ञान को सुलझाने, स्पष्ट करने के लिये ही कीं हैं। जम्बूद्वीप आदि द्वीप-समुद्रों के वृत्तरूप क्षेत्रों के क्षेत्रफल, धनुष, जीवा, बाण पार्श्वभुजा तथा उनके अल्पबहुत्वों का प्रमाण निकालने के लिये उन्होंने वृत्त और सरल रेखा पर बहुत कार्य किया। यूनानियों ने भी वृत्त और सरल रेखा पर आधारित अंशदान दिया है। पुनः लोक के चतुरस्र आकार के कारण उन्होंने वेत्रासन के आकार के सांद्रों का छेदविधिसे विभिन्न प्रकार के ज्ञात क्षेत्रों में प्राप्त कर, घनफल निकाला है, जिनमें वातवलयों से वेष्टित आकाशका घनफल निकालना, उनकी पटुता का द्योतक है। क्षेत्रावगाहना के वर्णन के आधार पर उन्होने वेलनाकार, शंक्वाकार, क्षेत्रों के घनफल भी निकाले हैं। ये विधियां भारतीय शैली के आधार पर सूत्रबद्ध निरूपित हैं। यह सब होते हुए, गोल क्षेत्र के घनफल का निरूपण न होना एक आश्चर्यपूर्ण बात प्रतीत होती है, क्योंकि गोलार्द्ध बिम्बों की अवगाहना तथा चंद्रादि की कलाओं के क्षेत्रफल आदि विषयों की चर्चाओं को भी

१ Heath vol. 1. PP. 32-34.

गणितीय निरूपण प्राप्त होना था। यूनानमें गोलके सम्बन्धमें (पायथेगोरियन युग से अथवा उसके बाद के सूत्र की) प्ररूपणा है, तथा जैनाचार्यों द्वारा उसका उपयोग न करना इस बातका सूचक है कि उन्होंने जो कुछ किया वह उनकी स्वतः की मौलिक प्रतिभाका अंशदान था जिसके बहुत से उदाहरण धवला टीका तथा तिलोय-पण्णत्तीमें बिखरे पड़े हैं। दृष्टिवाद अंगके आधार पर जम्बूद्वीपकी परिधिका उल्लेखितरूप में कथन ही इस बात का सूचक है कि तिलोय-पण्णत्तिकी संरचनाके पूर्व ही, $\sqrt{१०}$ का उपयोग π के लिये हो चुका था[1]। तथा ख ख पदसंसख पुढं का गुणकार $\frac{२३२१३}{१०५४०९}$ निश्चित करना एक अति कठिन गणनाके आधार पर प्राप्त हुआ होगा[2]। यदि यह गणना बौद्धायन के शुल्व सूत्र कालीन है तो बौद्धायन द्वारा निश्चित $\pi = ३'०८८$, का मान इससे स्थूल है[3]। यूनान में, आर्कमिडीज् का प्रयत्न अति प्रशंसनीय माना जाता है। उसने π का मान इस रूपमें निश्चित किया था[4] :—

$$\frac{१३५१}{७८०} > \sqrt{३} > \frac{२६५}{१५३}$$

तथापि, वीरसेनाचार्य द्वारा उपयोग में लाया गया सूत्र, 'व्यासं षोडशगुणितं ....' चीन के त्सुशुंग चिह (Tsu-chung-chih) के द्वारा दिये गये π के प्रमाण से मिलता जुलता है, जो षोडश सहित को निकाल देने पर एक सा हो जाता है। वास्तव में यह अत्यंत सूक्ष्म प्रमाण है जहाँ $\pi = \frac{३५५}{११३} = ३'१४१५९३$ आदि प्राप्त होता है। इसकी विधि चीन में प्राप्य नहीं है, तथापि उसका उद्गम वीरसेनाचार्य द्वारा दिये गये सूत्र में निबद्ध है। जहां वीरसेन ने यह सूत्र नवीं सदी में उल्लेखित किया है, वहां त्सु शुंग चिह ने प्रायः ४७६ ईस्वी पश्चात् में लिया है[5]। इससे प्रतीत होता है, कि चीनियों ने

$$\frac{१६\ \text{व्यास} + १६}{११३} + ३\ (\text{व्यास}) = \text{परिधि}$$

सूत्र को प्रथम पद में से १६ निकाल कर सुधार किया होगा। अथवा, भारत में वह सूत्र चीन से लिया गया हो, जो १६ अधिक होने से गलत रूप में सूत्र बद्ध हो गया हो। यह एक ऐतिहासिक महत्व रखता है तथा चीन से गणितीय सम्बन्ध की परम्परा स्थापित करता है[6]।

तिलोय-पण्णत्ती के चतुर्थ अधिकार में गाथा १८० और १८१ में दिये गये सूत्र अति महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। ये सूत्र, जीवा और धनुष का प्रमाण निकालने के लिये हैं, गणना $\sqrt{१०}$ के आधार पर इन सूत्रों की संरचना का प्रमाण मिलता है। जीवा के विषय में बिलकुल ऐसा ही सूत्र,[7]

$$\text{जीवा} = \sqrt{४\left[\left(\frac{\text{व्यास}}{२}\right)^{२} - \left(\frac{\text{व्यास}}{२} - \text{बाण}\right)^{२}\right]}$$

रूप में, बेबीलोन में अभिलेखों के आधार पर २६०० वर्ष ईस्वी पूर्व उपस्थित होना, हमें आश्चर्य में डाल देता है।[8] जहां π का मान निश्चित रूप से ३ होना स्वीकृत हो चुका है[9] वहां पायथेगोरियन

---

१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कुछ भिन्न मान हैं। भिन्नता हाथ प्रमाण से प्रारम्भ होती है और इसके पश्चात् प्रमाण का कथन नहीं है (१–२३)। २ ति. प. ४, ५५–५६. ३ Coolidge P. 15.
४ Coolidge P. 61. ५ Coolidge P. 61.

६ इस सूत्र की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० अवधेशनारायणसिंह के विचार देखने योग्य हैं जो उन्होंने "वर्णी अभिनन्दन ग्रंथ", सागर, (वीर नि. सं० २४७६) में प्रकाशित अपने "भारतीय गणित के इतिहास के जैन-स्रोत" में पृष्ठ ५०३ पर व्यक्त किये हैं।

७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में इस रूप में सूत्र मिलता है— $\text{जीवा} = \sqrt{४\cdot \text{बाण}\ (\text{विष्कम्भ} - \text{बाण})}$ २-२३, ६-९.

८ Coolidge P. 7. ९ Coolidge P. 6.

साध्य के आधार पर इस सूत्र का होना उपयुक्त है। धनुष के सम्बन्ध में जैनाचार्यों द्वारा दिया गया सूत्र π का $\sqrt{१०}$ मान लेने के आधार पर है, जो बेबीलोन में अप्राप्य प्रतीत होता है। सूत्रों की ऐसी क्रमबद्धता के आधार पर, मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो Cuneiform texts[१] की तिथि २६०० वर्ष ईस्वी पूर्व निश्चित करना शंकास्पद है। $\sqrt{१०}$ का मान π रखकर, उपर्युक्त दो समीकारों द्वारा, कुछ ऐसे सम्बन्ध प्राप्त किये जा सकते हैं जो हाइजिन्स ने धनुष और जीवा के बीच, टेलर के साध्य के आधार पर प्राप्त किये हैं। आश्चर्य है कि महावीराचार्य ने इन सूत्रों को कुछ दूसरे ही रूप में दिया है[२]।

$$\text{धनुष की लम्बाई} = \sqrt{५ (\text{बाण})^२ + (\text{जीवा})^२}$$

अवधा के क्षेत्रफल निकालने के लिये महावीराचार्य ने जो सूत्र दिया है,

$$\text{क्षेत्रफल} = (\text{जीवा} + \text{बाण}) \times \frac{\text{बाण}}{२}$$

वह चीन में चिउ-चांग सुआन चु (Chiu-Chang suan-chu) ग्रंथ से लिया गया प्रतीत होता है, जिसकी तिथि पुस्तकों के जलाये जाने की घटना के कारण निर्णीत नहीं हो सकी है। वहां, उनसे भी पूर्व के ग्रंथ तिलोय-पण्णत्ती में धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{\text{बाण} \times \text{जीवा}}{४}\sqrt{१०}$ रूप में प्राप्त होना आश्चर्यजनक है[३]। यूनान में, सिकन्दरिया के हेरन ने, इनके प्रमाण और कुछ प्राप्त किये हैं[४]।

इनके पश्चात् महत्त्वपूर्ण सूत्र अनुपात सिद्धान्त (Theory of proportion) सम्बन्धी हैं। यतिवृषभ ने इन्हें, गाथा १७८१ (महाधिकार चौथा), से लेकर गाथा १७९७ तक शंकु समच्छिन्नकों (frustrums of cone) की पार्श्वभुजाओं (Slant lines) के सम्बन्ध में व्यक्त किये हैं[५]। इनके सिवाय, वेत्रासन तथा अन्य आकार के वातवलय सम्बन्धी क्षेत्रों (लोक का वेष्टन करनेवाले क्षेत्रों) का घनफल निकालने में जो निरूपण दिया है वह सिकन्दरिया के हेरन (ईसा की तीसरी सदी) के βωμιоκоς सम्बन्धी घनफल के निरूपण की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं है[६]। इसके आधार पर वेत्रासन (छोटी वेदी) सदृश आकार के सांद्रों का वर्णन अन्य धर्मग्रंथों में भी मिलना मनोरंजक है, और उनमें सम्बन्ध स्थापित करना इतिहासकारों का कार्य है[७]। पुनः लोक का घनफल विभिन्न आकारों के क्षेत्रों में व्यक्त करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जो पायथेगोरियन कालीन विधियों से सम्पर्क स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। चौथे अधिकार में गाथा २४०१ आदि का निरूपण हेरन की Anchoring या tore की स्मृति स्पष्ट करती है[८]।

हेरन ने शंकु समच्छिन्नक का घनफल दो विधियों से निकाला है, परन्तु वीरसेन ने शंक्वाकार मृदंग रूप लोक की धारणा को अन्यथा सिद्ध करने के लिये जिस विधि का प्रयोग किया है, वह अन्यत्र देखने में

---

१ Coolidge P. 7.

२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में इसका मान $\sqrt{६ (\text{बाण})^२ + (\text{जीवा})^२}$ दिया है (२–२८, ६–१०). गणितसारसंग्रह अध्याय ७, सूत्र ४३.

३ ति. प. ४, २३७४.

४ Heath vol. (II) PP. 330, 331.

५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ३।२१३-२१४; ४।३९, १३४-१३५, १०।२१; ११२८.

६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में इस सम्बन्ध में दी गई विधि तिलोयपण्णत्ती में दी गई विधि के समान है (११–१०९).

७ गाथा २७० आदि, प्रथम महाधिकार।

८ Heath vol. (ii) P. 334,

नहीं आई है। उस विधि से, घनफल निम्न लिखित श्रेढि का योग निकालने पर प्राप्त होता है जो बिलकुल ठीक है,

$$\pi\left(\frac{\text{व्यास}_1}{2}\right)^2 \text{उत्सेध} + \left(\pi.\ \text{व्या}_1.\text{उ}.\ \frac{\text{व्या }2-\text{व्या }1}{2^2}\right)$$
$$+\left(\pi\ \frac{\text{व्या}_2-\text{व्या}_1}{2^2}.\ \frac{\text{उ}}{2}.\ \frac{\text{व्या}_2-\text{व्या}_1}{2}\right)$$
$$+\left(\pi\ \frac{\text{व्या}_2-\text{व्या}_1}{2^3}.\ \frac{\text{उ}}{2^2}.\ \frac{\text{व्या}_2-\text{व्या}_1}{2}\right)+\cdots \text{असंख्यात तक,}$$

क्योंकि अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या, अंतिम प्रदेश प्राप्त करने तक अनन्त नहीं हो सकती है[1]। हम अभी नहीं कह सकते कि यह विदारण विधि यूनानियों की विधियों के आधार पर है अथवा सर्वथा मौलिक है। वीरसेन ने क्षेत्र प्रयोग विधि के आधार पर जो बीजीय समीकारों का रैखिकीय निरूपण दिया है वह भी क्या यूनानसे लिया गया है, यह भी हम नहीं कह सकते; क्योंकि हो सकता है कि पारपरिमित गणात्मक संख्याओंके निरूपण के लिये ये विधियां भारत में पहिले भी प्रचलित रहीं हों[2]।

ज्योतिष सम्बन्धी एवं अन्य गणनायें

त्रिलोक संरचना के विषय में कुछ भी कहना विवादास्पद है। यहाँ केवल दूरियों के कथन तथा बिम्बों के अवस्थित एवं विचरण सम्बन्धी विवरण, पूर्वापर विरोध रहित एवं सुव्यवस्थित रखे गये हैं। रज्जु के कितने अर्द्धच्छेद लिये जावें, इस विषयमें वीरसेन अथवा यतिवृषभ ने बिम्बों के कुल प्रमाण को परम्परागत ज्ञान के आधार पर सत्य मान कर, परिकर्म नामक गणित ग्रंथ में दिये गये कथन में 'रूपाधिक' का स्पष्टीकरण किया है। यह विवेचन वीरसेन अथवा यतिवृषभकी दक्षता का परिचय देता है। सातवें महाधिकार में चंद्रमा के बिम्ब की दूरी एवं विष्कम्भ के आधार, आंख पर आपतित कोण का माप आधुनिक प्राप्त सूक्ष्म मापों से १० गुणा हीन है[3]। गोलार्द्ध रूप चंद्रमा आदि के बिम्बों का मानना, उनकी अवलोकन शक्ति का द्योतक है, क्योंकि ये बिम्ब सर्वदा पृथ्वी की ओर केवल वही अर्द्धमुख रखते हुए विचरण करते हैं। सूर्य के विषय में आधुनिक धारणा धब्बों के आधार पर कुछ दूसरी ही है। उष्णतर किरणों तथा शीतल किरणों का क्या अर्थ है, समझ में नहीं आ सका है। इनका अर्थ कुछ और होना चाहिये, जिनके अधार पर, चंद्रमा आदि के गमन के कारण ही उसकी कलाओं का कारण सम्भवतः प्रकट हो सके (?) बृहस्पति से दूर मंगल का स्थित होना आधुनिक मान्यता के विपरीत है। गाथा ११७ आदि में समापन और असमापन कुंतल (Winding and Unwinding Spiral) में चंद्र और सूर्य का गमन, सम्भव है, आर्कमिडीज के लिये कुंतल के सम्बन्ध में गणना करनेके लिये प्रेरक रहा हो[4]।

पायथेगोरसके विषयमें किसी सिकंदरियाके कवि ने प्रायः ३०० ई. पू. में कहा है—

"What inspiration laid forceful hold on Pythagoras when he discovered the subtle geometry of (the heavenly) spirals and com-

---

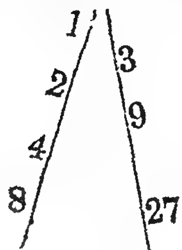
१ षट्खंडागम पु. ४, पृ. १५. २ षट्खंडागम पु. ३, पृ. ४२–४३. ३ ति. प. ७, ३९.

४ Heath vol (ii) 64. तथा मन्सर के शिल्प शास्त्र के आधार पर लिखे गये ग्रंथ, "The way of the Silpis" by G. K. Pillai (1948) के शिल्पीसूत्र में इस कुन्तल को यज्ञस्थ सिद्ध किया गया है।

pressed in a small sphere the whole of the circle which the aether embraces.[1]"

पुनः, निम्न लिखित अवतरण विचारणीय है :—

"As regards the distances of the sun, moon and planets Plato has nothing more definite than the seven circles 'in the proportion of the double intervals, three of each'[3]: the reference is to the Pythagorean τετϛακτυσ represented in the annexed figure,··· what precise estimate of relative distances Plato based upon these figures is uncertain.[2]"



विविध गणनायें, गणित के प्रसंगानुसार, सुव्यवस्थित एवं उपयुक्त हैं। ग्रहों के सम्बन्धमें, उनके गमनविषयक ज्ञान का कालवश विनष्ट होना बतलाया है, तथापि वह अपोलोनियस तथा हिपरशस की खोजों के आधार पर व्यवस्थित हो सकता है। जैनाचार्यों के चांद्र दिवस व मास के समान यूनान में भी एरिस्टरशस (Aristarchus) द्वारा २८१ अथवा ० ई. पू. में, और हिपरशस द्वारा १६१ ई. पू.–१२६ ई. पू. में चंद्र मास और चंद्र वर्ष की गणनाएं की गई थीं। इसके सम्बन्ध में निम्न लिखित विचार पठनीय है।

"We now learn that the length of the mean synodic, the sidereal, the anomalistic and the draconitic month obtained by Hipparchus agrees exactly with Babylonian cuneiform tables of date not later than Hipparchus, and it is clear that Hipparchus was in full possession of all the results established by Babylonian astronomy[3]."

परन्तु; जहां तक पायथेगोरियन युग के बाद की (प्लेटो कालीन एवं उपरांत के) ज्योतिष का सम्बन्ध है, तिलोय-पण्णत्ती सदृश मूल ग्रंथ, उस यूनानी ज्योतिष के प्रभाव से सर्वथा अछूते दृष्टिगत होते हैं। साथ ही, ऐसे ज्योतिष मूल ग्रंथों के भारतीय ज्योतिष के लिये प्रदत्त अंशदान सम्बन्धी विवेचन के लिये पाठकगण, पं० नेमिचंद्र जैन ज्योतिषाचार्य द्वारा लिखित "भारतीय-ज्योतिष का पोषक जैन-ज्योतिष" नामक लेख (जो 'वर्णी अभिनन्दन ग्रंथ' सागर में प्रकाशित हुआ है) देख सकते हैं। इस लेख में सुविज्ञ लेखक मुख्यतः निम्न लिखित निष्कर्षों पर पहुँचे प्रतीत होते हैं।

(१) पञ्चवर्षात्मक युग का सर्व प्रथमोल्लेख जैन ज्योतिष-ग्रंथों में प्राप्त होना।

(२) अवम-तिथि क्षय सम्बन्धी प्रक्रिया का विकास जैनाचार्यों द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाना।

(३) जैन मान्यता की नक्षत्रात्मक ध्रुवराशि का वेदाङ्गज्योतिष में वर्णित दिवसात्मक ध्रुवराशि से सूक्ष्म होना तथा उसका उत्तरकालीन राशि के विकास में सम्भवतः सहायक होना।

(४) पर्व और तिथियों में नक्षत्र लाने की विकसित जैन प्रक्रिया, जैनेतर ग्रंथों में छठी शती के बाद दृष्टिगत होना।

(५) जैन ज्योतिष में सम्वत्सर सम्बन्धी प्रक्रिया में मौलिकता होना।

---

१ Heath vol. (i) P. 163. २ Heath vol. 1. P. 313. ३ Heath vol. (ii) PP. 254, 255.

(६) दिनमान प्रमाण सम्बन्धी प्रक्रिया में, पितामह सिद्धान्त का जैन प्रक्रिया से प्रभावित प्रतीत होना।

(७) छाया द्वारा समय निरूपण का विकसित रूप इष्ट काल, भयाति आदि होना।

यहां मन्सर (सम्भवतः ५००-७०० ईस्वी पश्चात् अथवा इससे कुछ पूर्व ?) के शिल्प शास्त्र पर आधारित श्री पिल्लई के खोजपूर्ण ग्रन्थ, "The way of the Silpis" (1948) में वर्णित ज्योतिष सम्बन्धी खोजों का उपर्युक्त के साथ तुलनात्मक अध्ययन सम्भवतः उपयोगी सिद्ध हो।

इनके अतिरिक्त आतप और तम क्षेत्र तथा चक्षुस्पर्शध्वान सम्बन्धी कथन, गणना के क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। इन सब अवधारणाओं के हेतुओं का सिद्धान्तबद्ध स्पष्टीकरण करना, इस दशा में अशक्य है।

मुख्यतः त्रिलोकप्रज्ञप्ति विषयक गणित का यह कार्य, परम श्रद्धेय डॉ. हीरालाल जैन के सुसंसर्ग में समय समय पर प्रबोधित होकर रचित हुआ है। उनके प्रति तथा जिन सुप्रसिद्ध निस्पृही लेखकों के ग्रंथों की सहायता लेकर यह कार्य किया गया है उनके प्रति भी हम आभार प्रकट करते हैं।

निर्देशित ग्रंथ एवं ग्रंथकारों की सूची —

(१) श्री यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोय-पण्णत्ती भाग १, २.
सम्पादक प्रो. हीरालाल जैन, प्रो. ए. एन्. उपाध्ये, १९४३, १९५०.

(२) श्री धवला टीका समन्वित षट्खंडागम पुस्तक ३, पुस्तक ४.
सम्पादक हीरालाल जैन, १९४१, १९४२.

(३) A History of Geometrical methods, by Julian Lowell Coolidge Edn. 1940.

(४) A History of Greek Mathematics, part I & II.
by sir thomas Heath. Edn. 1921.

(५) History of Hindu Mathematics, Part I & II.
by Bibhutibhusen Datta, & Awadhesh Naryan singh, Edn. 1935, 1938.

(६) Abstract Set theory, by Abraham A. Fraenkel, Edn. 1953.

(७) The Mathematical Theory of Relativity by A. S. Eddington Edn. 1923.

(८) The Development of Mathematics by E. T. Bell. Edn. 1945.

(९) तत्त्वार्थराजवार्तिक, 'श्री अकलंकदेव'

(१०) Relativity and commonsense.
by F. M. Denton.

(प्रथम महाधिकार गा. ९१)

जगश्रेणी का मान ७ राजू होता है। राजू एक असंख्यात्मक दूरी का माप है। इसीलिये जगश्रेणी को दर्शाने के निमित्त ग्रंथकार ने प्रतीक की स्थापना की जो कि अंग्रेजी के Dash (—) के समान है। इस जगश्रेणी का घन करने पर लोकाकाश का घनफल प्राप्त होता है। जगश्रेणी का घन ग्रंथकार ने एक के नीचे एक स्थापित तीन आड़ी रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया है (≡)। इन तीन आड़ी रेखाओं का अर्थ तीन जगश्रेणी नहीं, किन्तु जगश्रेणी का घन होता है। परस्पर गुणन के लिये यह प्रतीक असाधारण है। ≡ १६ ख ख ख इस प्रतीक के स्पष्टीकरण का निम्न प्रकार से अनुमान किया जा सकता है। ≡ यह लोकाकाश की स्थापना है जो एक (१) है। लोकाकाश सहित पांच द्रव्य ६ हुए, जिसकी स्थापना १ के बाद है। तत्पश्चात् ख ख ख की स्थापना अनंतानंत अलोकाकाश के लिये है, जिसके बहुमध्य भाग में यह लोकाकाश स्थित है। बहुमध्य भाग के कथन से यह अर्थ निकलता है कि अनन्तानन्त रूप में विस्तृत आकाश का मध्य निश्चित किया जा सकता है। तात्पर्य यह कि अनन्तानन्त एक बिलकुल ही अनिश्चित प्रमाण नहीं माना गया, जैसी कि आज के गणितज्ञों की धारणा है[२]।

(गा. १, ९३-१३२)

जगश्रेणी का प्रमाण प्रदर्शित करने के लिये [जो कि एक दिश माप (Linear Measure) है], अन्य ज्ञात मापों की परिभाषायें दी गई हैं। दूरत्व के माप के लिये उवसन्नासन्न नाम से प्रसिद्ध एक स्कंध अथवा उसके विस्तार को दूरत्व की इकाई (Unit) माना गया है। इस स्कंध की रचना नाना प्रकार के अनन्तानन्त परमाणु[३] द्रव्यों से होती मानी गई है। इस स्कंध के अविभागी अंश को भी परमाणु

---

१ इस सम्बन्ध में आक्सफोर्ड के प्रसिद्ध गणितज्ञ F. H. Bradley के विचार निम्न प्रकार हैं—

"We may be asked whether Nature is finite, or infinite...... if Nature is infinite, we have the absurdity of a something which exists, and still does not exist. For actual existence is, obviously, all finite. But, on the other hand, if Nature is finite, then Nature must have an end, and this again is impossible. For a limit of extension must be relative to an extension beyond. And to fall back on empty space will not help us at all. For this (itself a mere absurdity) repeats the dilemma in an aggravated form. But we can not escape the conclusion that Nature is infinite....... Every physical world is essentially and necessarily infinite." The Encyclopedia Americana, Vol. 15, p. 121, Edn. 1944.

२ "With the intrusion of irrational numbers to disrupt the integral harmonics of the Pythagorean cosmos, a controversy that has raged of and on for well over two thousand years began : is the mathematical infinite a safe concept in mathematical reasoning, safe in the sense that contradictions will not result from the use of this infinite subject to certain prescribed conditions ? (The 'infinities' of religion and philosophy are irrelevant for mathematics)"—Development of Mathematics, E. T. Bell, Page 548.

३ ग्रंथकार द्वारा प्रतिपादित परमाणु का अर्थ अन्यथा न ले लिया जावे, तथैव श्री जी. आर. जैनी की Cosmology Old and New के ९४वें पृष्ठ पर दिया गया यह अवतरण पढ़ना लाभदायक होगा—

"It follows that a paramanu can not be interpreted and should not be inter-

कहा गया है और एक स्कंध के अर्द्ध भाग को देश तथा चतुर्थ भाग को प्रदेश कहा गया है। स्कंध के अविभागी अर्थात् जिसका और विभाग न हो सके ऐसे अंश को परमाणु कहा है (गाथा ९५)। यह परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को घेरे (रोके) उसको प्रदेश कहते हैं[1]।

अन्य मापों का निरूपण इस भांति है —

८ उवसन्नासन्न स्कंध	=	१ सन्नासन्न स्कंध
८ सन्नासन्न स्कंध	=	१ त्रुटिरेणु स्कंध
८ त्रुटिरेणु "	=	१ त्रसरेणु "
८ त्रसरेणु "	=	१ रथरेणु "
८ रथरेणु "	=	१ उत्तम भोगभूमि का बालाग्र
८ उ. भो. बा.	=	१ मध्यम भोगभूमि " "
८ म. भो. बा.	=	१ जघन्य " " "
८ ज. भो. बा.	=	१ कर्मभूमि का बालाग्र
८ कर्मभूमि के बालाग्र	=	१ लीक
८ लीकें	=	१ जूँ
८ जूँ	=	१ जौ
८ जौ	=	१ अंगुल

इस परिभाषा से प्राप्त अंगुल, सूची अंगुल (सूच्यंगुल) कहलाता है, जिसकी संदृष्टि (Symbol) २ मान ली गई है। यह अंगुल उत्सेध सूच्यंगुल भी कहा जाता है, जिसे शरीर की ऊँचाई आदि के प्रमाण जानने के उपयोग में लाते हैं।

पांच सौ उत्सेध अंगुलों का एक प्रमाणांगुल माना गया है जिससे द्वीप, समुद्र, नदी, कुलाचल आदि के प्रमाण लेते हैं।

एक और प्रकार का अंगुल, आत्मांगुल भी निश्चित किया गया है जो भरत और ऐरावत क्षेत्रों में होनेवाले मनुष्यों के अंगुल प्रमाणानुसार भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न हुआ करता है। इसके द्वारा छोटी वस्तुओं (जैसे झारी, तोमर, चामर आदि) की संख्यादि का प्रमाण बतलाते हैं।

जहां जिस अंगुल की आवश्यकता हो, उसे लेकर निम्न लिखित प्रमाणों का उपयोग किया गया है —

६ अंगुल = १ पाद ; २ पाद = १ वितस्ति ; २ वितस्ति = १ हाथ ; २ हाथ = १ रिक्कू ; २ रिक्कू = १ दण्ड ; १ दण्ड या ४ हाथ = १ धनुष = १ मूसल = १ नाली ;

२००० धनुष = १ कोश ; ४ कोश = १ योजन.

---

preted as the atom of modern Chemistry, although originally the word was invented by the Greek philosopher Democritus (420 B.C.) to denote something which could not be sub-divided (atom—α, not ; τεμνω I cut)………But since the atom of chemistry has now been proved to be a Conglomeration of proton, neutrons and electrons, I venture to suggest that Parmanus are really these elementary particles wich exist by themselves, or if at any future date a subelectron were to be discovered that should then be interpreted as the Paramanu of the Jains."

१ प्रदेश को त्रिविम आकाश (Three Dimensional Space) की इकाई माना गया है जिसे पदार्थों का क्षेत्रमाप लेने के उपयोग में लाते हैं।

इसके आगे बढ़ने के पहिले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस योजन की दूरी आज-कल के रैखिक माप में क्या होगी ?

यदि हम २ हाथ = १ गज मानते हैं तो स्थूल रूप से १ योजन ८०००००० गज के बराबर अथवा ४५४५'४५ मील (Miles) के बराबर प्राप्त होता है।

यदि हम १ कोश को आजकल के मील के समान लें, तो १ योजन ४००० मील (Miles) के बराबर प्राप्त होता है।

कर्मभूमि के बालाग्र का विस्तार आज-कल के सूक्ष्म यंत्रों द्वारा किये गये मापों के अनुसार १/८०० इंच से लेकर १/२०० इंच तक होता है। यदि हम इस प्रमाण के अनुसार योजन का माप निकालें तो उपर्युक्त प्राप्त प्रमाणों से अत्यधिक भिन्नता प्राप्त होती है। बालाग्र का प्रमाण १/८०० इंच मानने पर १ योजन ४९६४८'४८ मील प्रमाण आता है। कर्मभूमि का बालाग्र १/३०० इंच मानने से योजन ७४४७२'७२ मील के बराबर पाया जाता है। बालाग्र को १/२०० इंच प्रमाण मानने से योजन का प्रमाण और भी बढ़ जाता है।

ऐसी स्थिति में, हम १ योजन को ४५४५'४५ मील मानना उपयुक्त समझकर, इस प्रमाण को आगे उपयोग में लावेंगे।

(गा. १, ११६ आदि)

पल्य की संख्या निश्चित करने के लिये ग्रंथकार ने यहां बेलन (पृ. २१ पर आकृति–१ देखिये) का घनफल निकालने के लिये सूत्र दिया है जो $\pi r^2 h$ के ही समान है। प्रथम, लम्ब वर्तुलाकार ठोस बेलन के आधार का क्षेत्रफल निकालने के लिये उसकी परिधि को प्राप्त किया है। परिधि को प्राप्त करने के लिये व्यास को $\sqrt{१०}$ से गुणित किया है, अर्थात् $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ की निष्पत्ति को $\sqrt{१०}$ माना है, जो ३'१६२२··· के बराबर प्राप्त होता है। इसका उपयोग प्रायः सभी जैन शास्त्रों में जहां वृत्त क्षेत्र का गणित आया है, किया गया है। ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व भी इस प्रमाण के भिन्न भिन्न रूप उपयोग में लाये गये। ईसासे १६५० वर्ष पूर्व मिश्र के आह्मस के पेपीरसमें इस प्रमाण को ३'१६०५ लिया गया है। भास्कराचार्य ने भी स्थूल मान के लिये $\sqrt{१०}$ उपयोग किया है[1]।

---

१ एच. टी. कालब्रुक ने अनुमान रूप से लिखा है —

"Brahmgupta gave $\sqrt{10}$ which is equal to 3·1622······. He is said to have obtained this value by inscribing in a circle of unit diameter regular polygons of 12, 24, 48 and 96 sides & calculating successively their perimeters which he found to be $\sqrt{9{\cdot}65}$, $\sqrt{9{\cdot}81}$, $\sqrt{9{\cdot}86}$, $\sqrt{98{\cdot}7}$ respectively and to have assumed that as number of sides is increased indefinitely, the perimeter would approximate to $\sqrt{10}$".—

ब्रह्मगुप्त (६२८ वीं सदी) और भास्कर (११५० वीं सदी) की बीजगणित के अनुवाद में पृष्ठ ३०८ अध्याय १२ वां अनुच्छेद ४०.

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रीस में एंटीफोन के द्वारा ईसा से प्रायः ४०० वर्ष पूर्व दी गई Method of Exhaustion (निश्शेषण की रीति) से भारतीयों ने प्रेरणा ली है; क्योंकि, श्री सेनफोर्ड ने लिखा है—

"This was the method of exhaustion, due in all probability to Antiphon (C 430 B. C). This method was developed in connection with the 'quadrature' of the circle. It consisted of doubling & redoubling the number of sides of a regular inscribed polygon, the assumption being that, as this process continued, the

इस प्रकार प्राप्त करणी गत (irrational) राशि को ग्रंथकार ने $\frac{१९}{६}$ मान लिया है। त्रिज्या $\frac{१}{२}$ है, जिसका वर्ग $\frac{१}{४}$ प्राप्त हुआ। ऊँचाई १ योजन है। इस प्रकार घनफल $\frac{१९}{२४}$ प्राप्त किया गया है। भिन्न $\frac{१९}{२४}$ को लिखने के लिये आजकल के भिन्नों को लिखने की रीति का उपयोग नहीं होता था, वरन् $\frac{१९}{२४}$ का अर्थ $\frac{१९}{२४}$ लेते थे। इस माप के गड्ढे को विशिष्ट मैंढ़े के रोमों के अविभागी खंडों से भरें तो उन खंडों की संख्या जितनी होगी वह व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या है। अथवा $\frac{१९}{२४}$ घन प्रमाण योजनों में जितने उत्तम भोगभूमि के बालाग्र होते हैं वह संख्या है। यहां संख्या निदर्शन के लिये रैखिकीय निरूपण प्रशंसनीय है।

१यो.

आकृति – १

(गा. १, १२३–२४)

इन रोमों की संख्या $= \frac{१९}{२४} (४)^3 \times (२०००)^3 \times (४)^3 \times (२४)^3 \times (५००)^3 \times (८)^{२१}$ प्राप्त होती है।

यह गणना करने के लिये ग्रंथकार ने अपने समय में प्रचलित व्यवहार गणित का उपयोग किया है। इस गुणन क्रिया को तीन पंक्तियों में लिखा गया है जिनमें परस्पर गुणन करना है। गुणन का कोई प्रतीक नहीं दर्शाया गया है, केवल एक खड़ी लकीर का उपयोग प्रत्येक संख्या के पश्चात् किया है जो गुणन का प्रतीक हो भी सकती है और नहीं भी। एक पंक्ति यह है —

ଃ०|९६|५००|८|८|८|८|८|८|८|८| इत्यादि

ଃ० इस प्रतीक का अर्थ यह प्रतीत होता है कि गुणन के पश्चात् प्रथम पंक्ति में तीन शून्य बढ़ा दिये जावें। इसका गुणन किया जाय तो वह $(१०००) \times ९६ \times ५०० \times (८)^८$ के सम होगा। ऐसी ऐसी तीन पंक्तियां ली गई हैं जिनका आपस में गुणन करने से एक संख्या प्राप्त की है जिसे मूल ग्रंथ में दहाई अथवा स्थानार्हा पद्धति (Place value notation) का उपयोग करके शब्दों में और फिर अंकों में लिखा गया है। शब्दों में सबसे पहिले इकाई के स्थान और तब दहाई, सैकड़े आदि के स्थानों का उल्लेख किया गया है।

व्यवहार पल्य से व्यवहार पल्योपम कालको निकालने के लिये व्यवहार पल्य राशि में १०० का गुणा करते हैं। जो राशि उत्पन्न होती है उतने वर्षों का एक व्यवहार पल्योपम काल माना गया है।

इसके पश्चात् उद्धार पल्य = (व्यवहार पल्य × असंख्यात करोड़ वर्षों के समयों की राशि)

---

difference in area between the circle and the polygon would at last be exhausted."
—"A Short History of Mathematics" p. 310.

श्री बेल ने अपना मत व्यक्त किया है—

"The Greeks called it exhaustion; Cavalieri in the seventeenth century called it the method of indivisibles and, as will appear in the proper place, got no closer to proof than the ancient Egyptions of at latest 1850 B. C. To us it is the theory of limits &, later, the integral calculus."

—Development of Mathematics p. 43. Edn. 1945.

जितना गुणनफल प्राप्त हो उतने समयों का एक उद्धार पल्योपम माना गया है। यह गुणनफल राशि उद्धार पल्य कही गई है।

और फिर अद्धा पल्य = (उद्धारपल्य राशि × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि)

जितना गुणनफल प्राप्त हो उतने समयों का एक अद्धा पल्योपम माना गया है और इस गुणनफल राशि को अद्धा पल्य माना गया है। इसे पल्य भी कहा गया है। इसके आगे —

१० कोड़ाकोड़ी व्यवहार पल्योपम = १ व्यवहार सागरोपम

१० कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्योपम = १ उद्धार सागरोपम

१० कोड़ाकोड़ी अद्धा पल्योपम = १ अद्धा सागरोपम

(गा. १, १३१)

अब सूच्यंगुलादि का प्रमाण निकालने के लिये अर्द्धच्छेद का उपयोग किया है। यह रीति गुणन को अत्यन्त सरल कर देती है। छेदागणित का[1] प्रचुर उपयोग नवीं सदी के वीरसेनाचार्य द्वारा धवला टीका में हुआ है। आजकल की संकेतना में[2] यदि किसी राशि य (x) के अर्द्धच्छेद प्राप्त करना हो तो—

य के अर्द्धच्छेद = छे$_2$य अथवा $\text{Log}_2 x$ होंगे।

वास्तव में किसी संख्या के अर्द्धच्छेद उस संख्या के बराबर होते हैं जितने बार कि हम उसका अर्द्धन कर सकें। उदाहरणार्थ, यदि हम २$^{\text{अ}}$ = य लें तो य के अर्द्धच्छेद अ होंगे।

यदि अद्धापल्य के अर्द्धच्छेद $\text{Log}_2 P$ से दर्शाया जाय, (जहां P अद्धापल्य है) तो

जगश्रेणी = [घनांगुल]$^{(\text{Log}_2 P / \text{असंख्यात})}$

और सूच्यंगुल = $[\,P\,]^{(\text{Log}_2 P)}$

इस तरह से प्राप्त सूच्यंगुल का प्रतीक पहिले की भांति २ और जगश्रेणी का प्रतीक एक आड़ी रेखा (—) दिया है। जगश्रेणा का मान इस सूत्र से निकाला जा सकता है, पर प्रश्न उठता है कि

---

१ जैनाचार्यों के द्वारा उपयोग में लाये गये छेदागणित को यदि आजकल की Logarithms (Gk : logos = reckoning, arithmos = number) की गणित का सर्वप्रथम और कुछ दृष्टियों से सदृश रूप कहा जाय तो गलत न होगा। इस गणित के दो स्वतंत्र आविष्कारक माने जाते हैं— एक तो स्काटलैंड के बेरन नेपियर (१५५० – १६१७) और दूसरे प्रेग देश के जे. बर्जी (१५५२ – १६३२)। इस गणित के आविष्कार के विषय में गणित इतिहासकार सेनफोर्ड का मत है, "The discovery of logarithms, on the other hand, has long been thought to have been independent of contemporary work, and it has been characterised as standing 'isolated, breaking in upon human thought abruptly without borrowing from the work of other intellects or following known lines of mathematical thought."

—A short history of mathematics, P. 193.

२ आज की संकेतना में यदि बेरन नेपियर के अनुसार n के Logarithm के प्रमाण को दर्शाया जाय तो वह $10^7 \, \text{Log}_e \, (10^7 . n^{-1})$ होगा। यहाँ, प्रोफेसर प्लेफेअर के शब्दों में यह अभिव्यञ्जना स्पष्टतर हो जावेगी।

"The numbers which indicate (in the Arithmetical Progression) the places of the terms of the Geometrical Progression are called by Napier, the logarithm of those terms."—Bulletin of Calcutta Mathematical Society vol. VI. 1914-15.

असंख्यात वर्षों की राशि कितनी ली जाय, क्योंकि असंख्यात कोई विशिष्ट संख्या नहीं है, किन्तु सीमा रूप दो असंख्यात संख्याओं के बीच में रहनेवाली कोई भी संख्या है।

(गा. १, १३२)

इसके पश्चात् प्रतरांगुल = (सूच्यंगुल)^2 = ४ (प्रतीक रूपेण)

और घनांगुल = (सूच्यंगुल)^3 = ६ (प्रतीक रूपेण)

इस स्पष्टीकरण से ज्ञात होता है कि लिये हुए प्रतीकों में साधारण गणित की क्रियायें उपयोग में नहीं लाई गईं, जैसे सूच्यंगुल का प्रतीक २, तो सूच्यंगुल के घन का प्रतीक ८ नहीं, अपि तु ६ लिया गया। इसी प्रकार जगप्रतर का प्रतीक (=) और जगश्रेणी का घन लोक होता है, जिसका प्रतीक (≡) है। इस प्रकार की प्रतीक-पद्धति के विकास को हम जर्मनी के नेसिलमेन के शब्दों में Syncopated और Symbolic Algebra का मिश्रण कह सकते हैं।

इसके पश्चात् राजू[1] का प्रमाण = $\frac{\text{जगश्रेणी}}{७}$

---

१ Raju (=Chain, a linear astrophysical measure), is according to Colebrook, the distance which a Deva flies in six months at the rate of 2,057, 152 Yojanas in one क्षण, ie. instant of time.

—Quoted by von Glassnappin
"Der Jainismus".
—Foot Note—Cosmology Old & New p. 105,

इस परिभाषा के अनुसार राजु का प्रमाण इस तरह निकाला जा सकता है— ६ माह = (५४००००) × ६ × ३० × २४ × ६० प्रति विपलांश या क्षण

क्योंकि,
६० प्रति विपलांश = १ प्रति विपल
६० प्रति विपल = १ विपल
६० विपल = १ पल
६० पल = १ घड़ी = २४ मिनिट (कला)

∴ १ मिनिट (कला) = ५४०००० प्रतिविपलांश

और १ योजन = ४५४५·४५ मील (या क्रोशक) लेने पर,

∴ ६ माह में तय की हुई दूरी = ४५४५·४५ × २०५७१५२ × ६ × ३० × २४ × ६० × ५४०००० मील

∴ १ राजू = (१·३०८६६६६२···) × (१०)^{२१} मील

श्री जी. आर. जैनी ने डॉ. आइंसटीन के संख्यात (Finite) लोक की त्रिज्या लेकर उसका घनफल निकाल कर लोक के घनफल (३४३ घन राजु) के बराबर रखकर राजु का मान १.४५ × (१०)^{२१} मील निकाला है जो उपर्युक्त राजु मान से लगभग मिलता है। पर डॉ. आइंसटीन के संख्यात फैलनेवाले लोक की कल्पना को पूर्ण मान्यता प्राप्त नहीं है— वह केवल कुछ उपधारणाओं के आधार पर अवलम्बित है। भिन्न २ कल्पनाओं के आधार पर भिन्न २ लोकों (universes) की कल्पनायें कई वैज्ञानिकों ने की हैं।

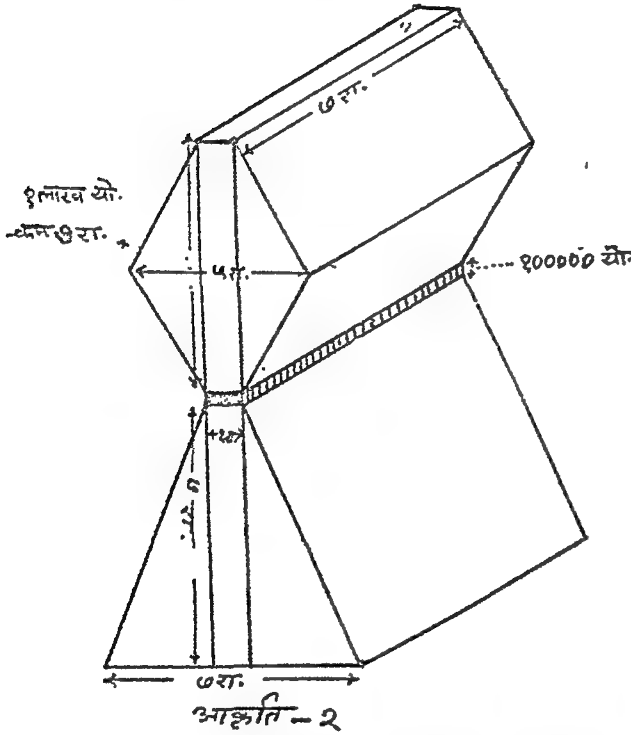
रिसर्च स्कालर पंडित माधवाचार्य ने राजू की परिभाषा निम्न तरह से कही है— "एक हजार भार का लोहे का गोला, इंद्रलोक से नीचे गिरकर ६ मास में जितनी दूर पहुँचे उस सम्पूर्ण लम्बाई को एक राजू कहते हैं।"—अनेकान्त vol. 1, 3.

इस तरह दी गई परिभाषा से राजू की गणना नहीं हो सकती, क्योंकि इन्द्रलोक से वस्तुओं (Bodies) के गिरने का नियम ज्ञात नहीं है।

प्रतीक रूप में राजू को (७) लिखा जाता है।

(गा. १, १४९–५१)

[1]वर्ग आधार पर स्थित त्रिलोक के चित्र के लिये आकृति–२ देखिये—



आकृति–2

यहां, ऊर्ध्व लोक,

मध्यलोक (काले रंग द्वारा प्रदर्शित) १००००० यो. × १रा. × ७रा.,

एवं अधोलोक स्पष्ट है।

बाहल्य ७ रा. अर्थात् ७ राजु है। ऊँचाई १४ राजु है। ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ७ रिण जो. १००००० लिखा है। अर्थात् ग्रंथकार के समय में ऋण के लिये कोई प्रतीक नहीं रहा होगा, ऐसा प्रतीत होता है। ऋण और धन के लिये क्रमशः आड़ी रेखा (–) और (+) प्रतीकों के आविष्कार का श्रेय जर्मनी के जे. विडमेन (१४८९) को है। ग्रंथकार ने दूसरी जगह रिण के लिये रि. का उपयोग भी किया है। धवलाकार वीरसेन ने मिश्र शब्द के लिये + प्रतीक दिया है[2]।

(गा. १, १६५)

अधोलोक का घनफल निकालने के लिये लम्ब संक्षेत्र (Right Prism) का घनफल निकालने का सूत्र दिया है, जिसका आधार समलम्ब चतुर्भुज है। वह सूत्र है— (आधार का क्षेत्रफल × संक्षेत्र की ऊँचाई) = संक्षेत्र का घनफल। आधार का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र दिया गया है :

$$\left[\frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{२} \times (\text{इन दो समांतर रेखाओं की लम्ब दूरी})\right]$$

---

१ मिस्र देश के गिज़े में बने हुए महास्तूप (Great Pyramid) से यह लोकाकाश का आकार किंचित् समानता रखता हुआ प्रतीत होता है। विशेष सहसम्बन्ध के विवरण के लिये सन्मति सन्देश, वर्ष १, अंक १२ आदि देखिये।

२ षट्खंडागम पुस्तक ४, पृष्ठ ३३०, ई. स. १९४२.

यह सूत्र आज भी उपयोग में लाया जाता है।

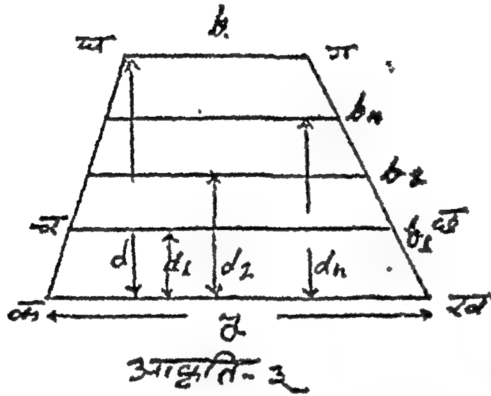
(गा. १, १६६)

अधोलोक का घनफल = $\frac{4}{7}$ × पूर्ण लोक का घनफल[1]।

(गा. १, १६९)

ऊर्ध्वलोक का घनफल भी इसी विधि के आधार पर दो वेत्रासनों में विदीर्ण कर निकाला गया है।

(गा. १, १७६–७९)



इन गाथाओं में[2] समानुपाती भागों के सिद्धान्त का उपयोग है[3]।

आकृति २ में क ख ग घ एक समलम्ब चतुर्भुज है जिसमें कख और गघ समांतर हैं तथा कघ और खग बराबर हैं। कख का माप a और घग का माप b है। कख भूमि और घग मुख है।

यदि कख से उसी के समांतर d_1 ऊँचाई पर मुख की प्राप्ति करना हो तो सूत्र दिया है,

$$a - \left[\frac{a-b}{d}\right]d_1 = b_1$$ जहां b_1 चछ है।

इसी प्रकार, $a - \left[\frac{a-b}{d}\right]d_2 = b_2$ और साधारण रूप से,

---

१ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति ११, १०९–१०.

२ ये विधियाँ और नियम जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी उल्लेखित हैं। १।२७ ; ४।२९ ; १०।२१.

३ समानुपात के सिद्धान्त के आविष्कार के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेखनीय है,

"It is true that we have no positive evidence of the use by Pythagoras of proportions in geometry, although he must have been conversant with similar figures, which imply some theory of proportion".

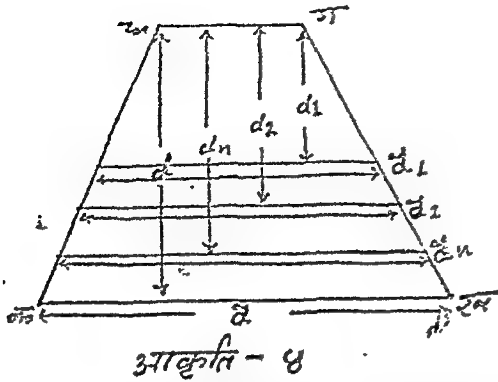
पुनः, "The anonymous author of a scholium to Euclid's Book V, who is perhaps Proclus, tells us that 'some say' that this Book, containing the general theory of proportion which is equally applicable to geometry, arithmetic, music and all mathematical science, 'is the discovery of Eudoxus, the teacher af Plato.' 3—Heath, Greek Mathematics, Vol. 1, pp. 85 & 325, Edn. 1921.

साथ ही, कम से कम २१३ ईस्वी पूर्व के अभिलेखों के आधार पर, इस सम्बन्ध में चीनी अभिज्ञान पर कूलिज का अभिमत यह है,

"The Chinese, be it noted, were familiar with the properties of similar triangles and invented many problems connected with them".

—Coolidge, A History of Geometrical Methods, p. 22, Edn. 1940

$a-\left[\frac{a-b}{d}\right]d_n=b_n$, जहाँ d_n कोई भी इच्छित ऊँचाई है, और मुख b_n है।


आकृति – ४

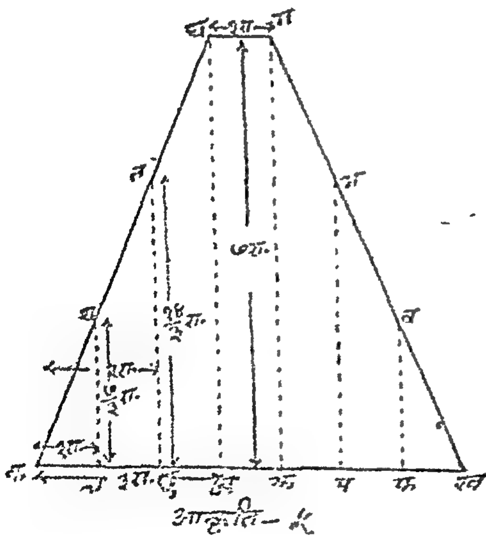
इसी प्रकार आकृति–४ में वही आकृति है और घग के समांतर किसी विवक्षित निचाई पर भूमि निकालने का साधारण सूत्र लिखा जा सकता है।

$$b+\left[\frac{a-b}{d}\right]d_n=a_n.$$

इस प्रकार, भूमि ७ राजु (१ जगश्रेणी) तथा मुख १ राजु लेकर ग्रंथकार ने ऊँचाई सात राजु को १ राजु प्रमाण से विभक्त कर सात पृथ्वियाँ प्राप्त कर उनके मुख और भूमि उपर्युक्त सूत्र से निकाले हैं। फिर, उनका घनफल अलग अलग लम्ब संक्षेत्र (जिसका आधार समलम्ब चतुर्भुज है) सूत्र द्वारा निकाला है। इस रीति से कुल घनफल का योग १९६ घन राजु बतलाया है।

(गा. १, १८०–८३)

अधोलोक का घनफल एक और रीति से निकालकर बतलाते हैं। आकृति ५ में लोक के अंत अर्थात् क ख से दोनों पार्श्वभागों अर्थात् क घ और ख ग की दिशाओं से, क्रमशः ३ राजु, २ राजु और १ राजु भीतर की ओर प्रवेश करने पर उनकी क्रमशः ७ राजु, १४/३ राजु और ७/३ राजु ऊँचाईयाँ प्राप्त होती हैं।



आकृति – ५

इस प्रकार यह क्षेत्र, भिन्न भिन्न आकृतियों के क्षेत्र में विभक्त हो जाता है। ये आकृतियाँ त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुज हैं, तथा मध्य क्षेत्र आयत ज झ ग घ है। ऐसे क्षेत्रों के क्षेत्रफल निकालने के लिये दो सूत्र दिये गये हैं[१]।

त्रिकोण क च थ का क्षेत्रफल निकालने के लिये समलम्ब चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालने के उपयोग में लाये जानेवाले सूत्र का उपयोग है[२]।

१ इस सम्बन्ध में मिश्र में प्रचलित विधि के विषय में यह विवादास्पद मत है—

"The triangles in their pictures look like long and undernourished isosceles triangles, and some commentators have assumed that the Egyptians believed that the area of an isosceles triangle is one-half the product of two unequal sides."

—Coolidge, A History of Geometrical Methods, p 10, Edn. 1940.

२ इस सूत्र को महावीराचार्य ने गणितसारसंग्रह के सातवें अध्याय में ५० वीं गाथा द्वारा निरूपित किया है।

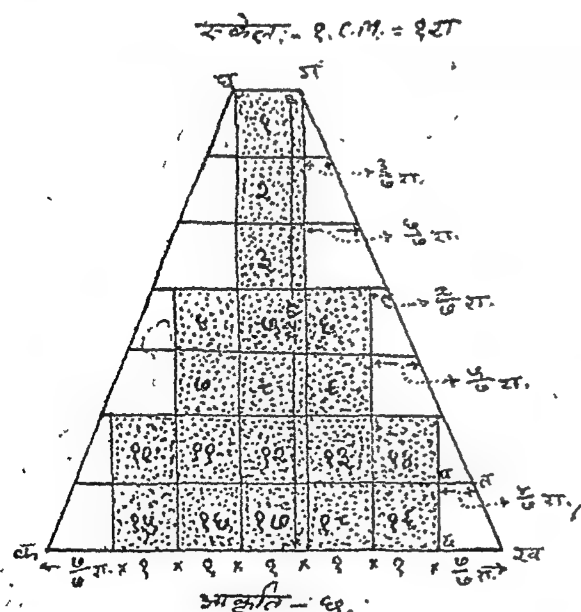
यहाँ भुजा क च मान ली जाय तो सम्मुख भुजा शून्य होगी और ऊँचाई च थ होगी, इसीलिये इस समकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल $=(\frac{१+०}{२})\frac{७}{३}=\frac{७}{६}$ वर्ग राजु प्राप्त होता है। दूसरा सूत्र इस प्रकार है—लम्ब बाहु युक्त क्षेत्र क च थ है। यहाँ व्यास क च तथा लम्ब बाहु च थ मान लेने पर, क्षेत्रफल $=$ लम्बबाहु $\times\frac{\text{व्यास}}{२}$ होता है।

शेप क्षेत्रों के लिये "भुज-पडिभुजमिलिदद्धं······" सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार क च थ प्रथम अभ्यंतर क्षेत्र, च छ त थ द्वितीय, और छ ज घ त तृतीय अभ्यंतर क्षेत्र हैं जिनके क्षेत्रफल क्रमशः $\frac{७}{६}$, $\frac{७}{२}$ और $\frac{३५}{६}$ वर्ग राजु हैं। चूँकि प्रत्येक का बाहल्य ७ राजु है इसलिये इन तीनों क्षेत्रों का (जो बाहल्य लेने से सांद्र संक्षेत्रों (लम्ब संक्षेत्र) में बदल जाते हैं उनका) घनफल क्रमशः ८$\frac{१}{६}$, २४$\frac{१}{२}$ और ४०$\frac{५}{६}$ घन राजु होता है। इसी तरह, पूर्व पार्श्व ओर से लिये गये क्षेत्रों का घनफल होता है। शेष मध्य क्षेत्र का घनफल १ × ७ × ७ = ४९ घन राजु होता है। सबका योग करने पर १९६ घन राजु अधोलोकका घनफल प्राप्त होता है।

(गा. १, १८४–१९१)

अधोलोक का घनफल निकालने के लिये तीसरी विधि भी है (आकृति–६ देखिये)।

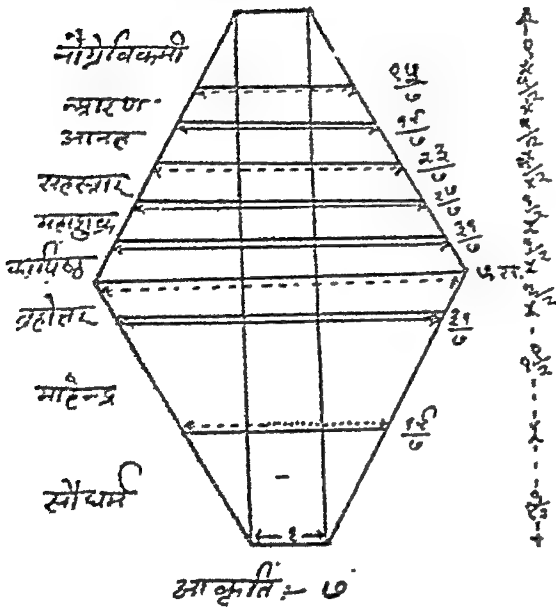


आकृति–६.

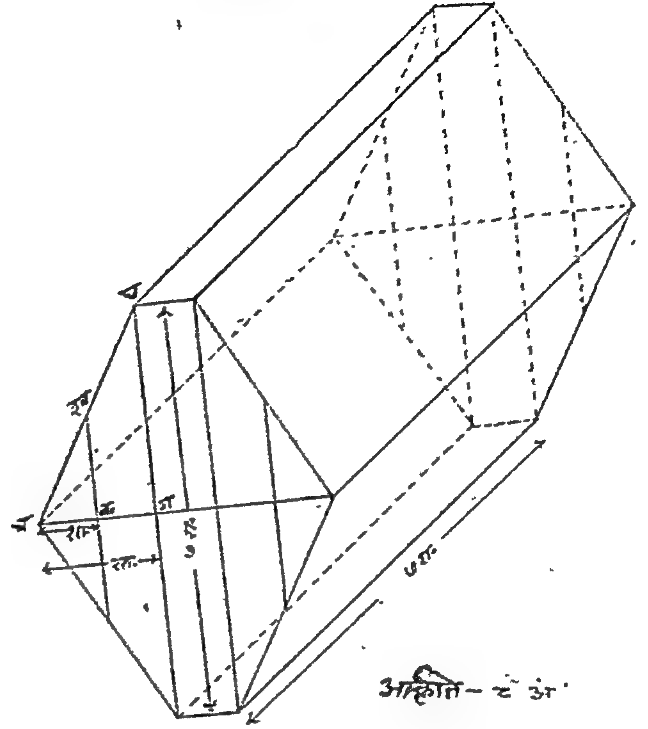
इस प्रशंसनीय विधि में क्षेत्र क ख ग घ में से १ वर्ग राजुवाले १९ क्षेत्रों को अलग निकाल कर शेष आकृतियों का क्षेत्रफल निकाला गया है और अंत में प्रत्येक के ७ राजु बाहल्य से उन्हें गुणित कर अंत में सबका योग कर अधोलोक का घनफल निकाला गया है। आकृति में छाया वर्ग अलग दर्शाये गये हैं और बची हुई भुजायें समानुपात के प्रमेय द्वारा निकाल कर क्रमशः ऊपर से दोनों पार्श्वों में $\frac{३}{७}$, $\frac{६}{७}$, $\frac{२}{७}$, $\frac{५}{७}$, $\frac{१}{७}$, $\frac{४}{७}$ तथा अंत में $\frac{७}{७}$ या १ राजु प्राप्त की गई हैं। लोक के अंत की आकृति ख त थ द का क्षेत्रफल $=$ $[\{(\frac{४}{७}+\frac{७}{७})\div२\}\times$ दथ $]$ वर्ग राजु है, और घनफल $=\{(\frac{४}{७}+\frac{७}{७})\div२\}\times१\times७$ घन राजु है। इसी प्रकार, समस्त शेष क्षेत्रों का घनफल, ६१ घन राजु प्राप्त होता है। इसमें, १९ वर्ग क्षेत्रों का घनफल १९ × ७ = १३३ घन राजु जोड़ने पर, कुल १९६ घन राजु, अधोलोक का घनफल प्राप्त होता है।

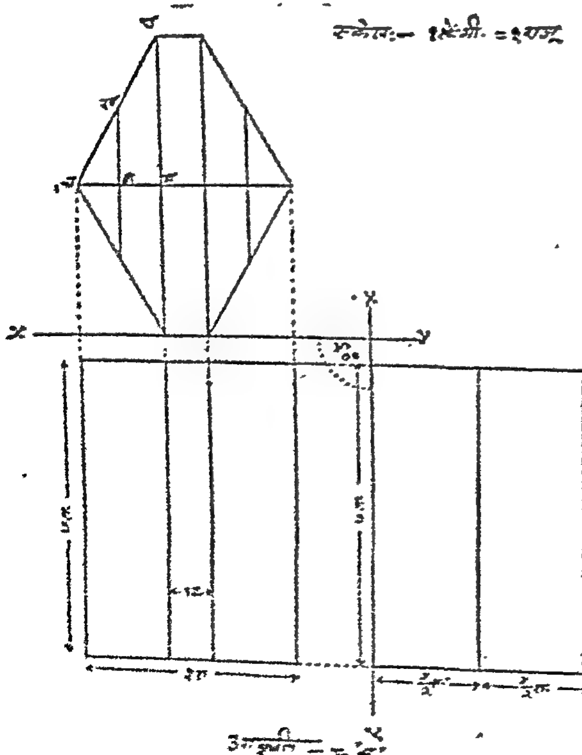
(गा. १, १९३–९९)

समानुपात के नियम के अनुसार भूमि से $१\frac{१}{२}$, $१\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$, ... आदि ऊँचाइयों पर उपर्युक्त नियम द्वारा विभिन्न मुखों के प्रमाण निकाले गए हैं जो आकृति–७ में दिये गये हैं। इसी प्रकार, यहाँ समलम्ब चतुर्भुज आधारवाले ९ लम्ब संक्षेत्र प्राप्त होते हैं जिनके घनफलों का योग करने पर ऊर्ध्व लोक का घनफल १४७ घन राजु प्राप्त होता है।



आकृति – ७


आकृति – ८ अ


आकृति – ८ ब

(गा. १, २००–२०२)

(आकृति–८ में) पूर्व और पश्चिम से क्रमशः १ राजु और २ राजु ब्रह्म स्वर्ग के उपरिम भाग से प्रवेश करने पर स्तम्भोत्सेध क्रमशः क ख = $\frac{७}{४}$ राजु और ग घ = $\frac{७}{२}$ राजु प्राप्त होते हैं। शेष प्रक्रिया इस प्रकार है कि च क ख क्षेत्र का क्षेत्रफल

$$= १ \times \frac{७}{४} \times \frac{१}{२}$$

∴ च क ख संक्षेत्र का घनफल

$$= १ \times \frac{७}{४} \times \frac{१}{२} \times ७ = \frac{४९}{८} = ६\frac{१}{८}$$ घन राजु

इसी तरह संक्षेत्र क ख घ ग का घनफल

$$= \left[\frac{\frac{७}{४} + \frac{७}{२}}{२}\right] \times १ \times ७$$

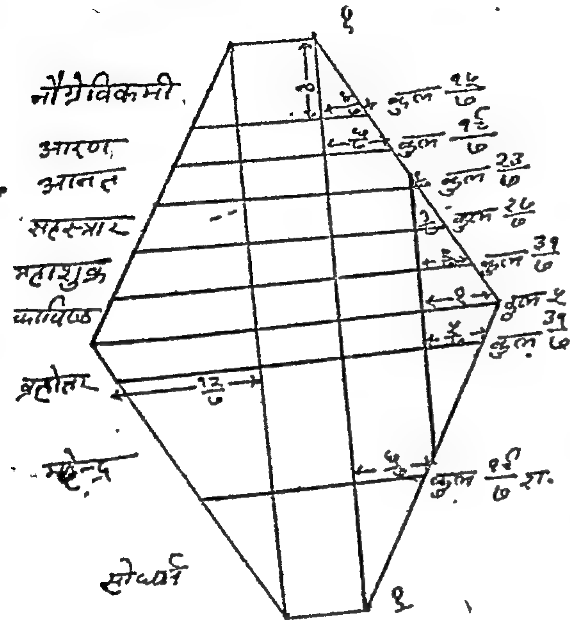
$= १८\frac{३}{८}$ घन राजु

$= ३$ (संक्षेत्र च क ख)

इनके योग का चौगुना करके उसमें अवशेष मध्यभाग का घनफल जोड़ कर ऊर्ध्व लोक का घनफल निकाला गया है।

(गा. १, २०३–१४)

आकृति–९ में ऊर्ध्व लोक को पूर्व पश्चिम से, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के ऊपर से क्रमशः १ और २ राजु प्रवेश कर स्तंभों द्वारा विभक्त कर दिया है। इस प्रकार विभक्त करने से बाह्य छोटी भुजायें चित्र में बतलाये अनुसार शेष रहती है। निम्न लिखित स्पष्टीकरण से, इस छेदविधि द्वारा निकाला गया ऊर्ध्व लोक का घनफल स्पष्ट हो जावेगा।



आकृति -९

(प्रत्येक क्षेत्र का बाहल्य ७ राजु है)

सौधर्म के त्रिभुज (बाह्य क्षेत्र) का घनफल

$= \frac{१}{२} \times \frac{६}{७} \times \frac{३}{२} \times ७ = ४\frac{१}{२}$ घन राजु।

सानत्कुमार के बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रों का घनफल

$= (\frac{१२}{७} + \frac{६}{७})\frac{१}{२} \times ७ \times \frac{३}{२} = \frac{२७}{२} = १३\frac{१}{२}$ घनराजु।

और इसके बाह्य त्रिभुज का घनफल =

$\frac{५}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{५}{४} \times ७ = \frac{२५}{८} = ३\frac{१}{८}$ घन राजु।

(यहाँ, $\frac{५}{४}$ राजु उत्सेध प्राप्त करना उल्लेखनीय है जो माहेन्द्र के तल से $\frac{१}{४}$ रा. ऊपर से लेकर ब्रह्मोत्तर के तल तक सीमित है।)

∴ अभ्यन्तर क्षेत्र का घनफल $= \frac{२७}{२} - \frac{२५}{८} = \frac{८३}{८}$ घन राजु।

ब्रह्मोत्तर क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}(\frac{५}{७} + १) \times \frac{१}{२} \times ७ = ३$ घन राजु।

यही, कापिष्ठ क्षेत्र का भी घनफल है।

महाशुक्र का घनफल $= (\frac{५}{७} + \frac{३}{७})\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times ७ = २$ घनराजु।

सहस्त्रार का बाह्य घनफल $= \frac{१}{२}(\frac{३}{७} + \frac{१}{७}) \times \frac{१}{२} \times ७ = १$ घनराजु।

आनत का बाह्य और अभ्यंतर घनफल $= (\frac{८}{७} + \frac{६}{७})\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times ७ = \frac{७}{२}$ घनराजु।

$= \frac{१}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{४} \times ७ = \frac{१}{८}$ घनराजु।

,, बाह्य घनफल

$= \frac{७}{२} - \frac{१}{८} = \frac{२७}{८} = ३\frac{३}{८}$ घनराजु।

∴ अभ्यंतर का घनफल

$= (\frac{६}{७} + \frac{४}{७})\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times ७ = \frac{५}{२}$ घनराजु।

आरण का घनफल

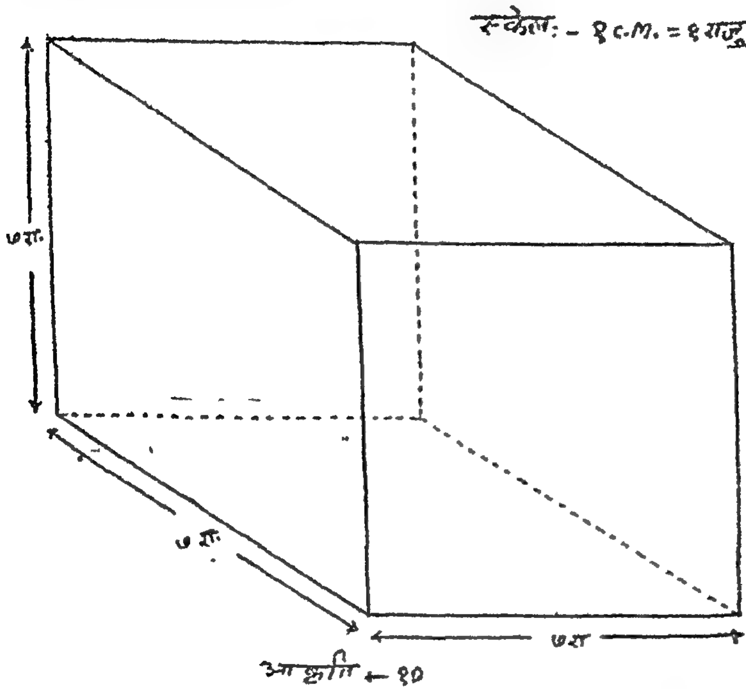
$= \frac{४}{७} \times \frac{१}{२} \times १ \times ७ = \frac{४}{२}$ घनराजु।

नौ ग्रैवेयकादि का घनफल

पूर्वोक्त घनफलों का योग = ३५ घनराजु है, इसलिये पूर्व पश्चिम दोनों ओर के ऐसे क्षेत्रों का घनफल ७० घनराजु होता है। इनके सिवाय, अर्द्ध घन राजुओं (दल घनराजुओं) का घनफल $= २ \times ४ \times [\frac{१}{२} \times १ \times ७] = २८$ घनराजु और मध्यम क्षेत्र (त्रसनाली) का घनफल $= १ \times ७ \times ७ = ४९$ घनराजु।

∴ कुल घनफल $= २८ + ४९ + ७० = १४७$ घनराजु।

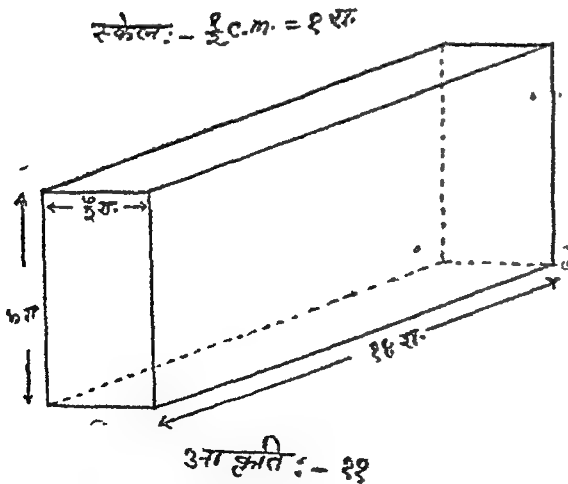
यहाँ सांद्र घन क्षेत्रों को समान घनफलवाले अन्य नियमित सांद्र क्षेत्रों में बदलकर, तत्कालीन क्षेत्रमिति और सांद्र रैखिकी का प्रदर्शन किया गया है। सम्पूर्ण लोक को आठ प्रकार के समान घनफल (३४३ घन राजु) वाले सांद्रों (Solids) में परिणत किया है। इनमें से जिन क्षेत्रों का रूप चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है, वे अनुमान से बनाये गये हैं, क्योंकि मूल गाथा में इन क्षेत्रों के केवल नाम दिये गये हैं, चित्र नहीं।



आकृति - १०

(१) सामान्य लोक— इसका वर्णन पहिले ही दे चुके हैं। चित्रण के लिये आकृति-२ देखिये।

(२) घनाकार सांद्र— यह आकृति-१० में दर्शाया गया है। इसका घनफल = ७ × ७ × ७ = ३४३ घनराजु है।



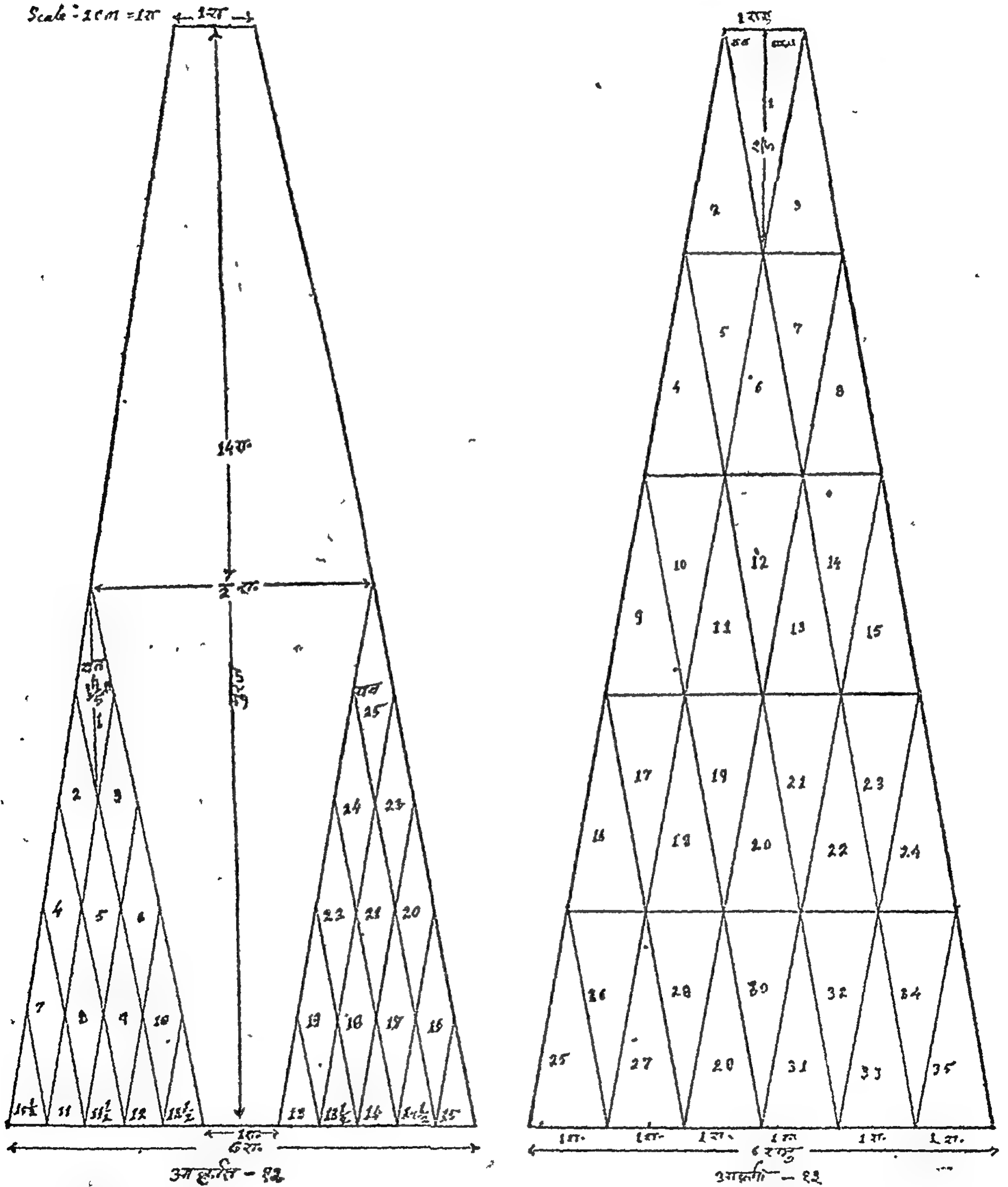
आकृति :- ११

(३) तिर्यक्आयत चतुरस्र या Cuboid (आयतज)— इसका घनफल ३½ × ७ × १४ या ३४३ घन राजु है। (आकृति ११ देखिये)

(गा. १, २१७–१९)

(४) यवमुरज क्षेत्र—(आकृति–१२ देखिये)। यह आकृति, क्षेत्र के उदग्र समतल द्वारा प्राप्त छेद (Vertical Section) है। इसका विस्तार ७ राजु यहाँ चित्रित नहीं है।

यहाँ मुरज का क्षेत्रफल $\{(\frac{७}{२}$ रा $+$ १ रा$) \div २\} \times$ १४ रा $= \{\frac{९}{२} \times \frac{१}{२}\} \times १४$
$= \frac{९}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{६३}{२}$ वर्ग राजु



आकृति – १२ आकृति – १२

इसलिए, मुरज का घनफल $= \frac{६३}{२} \times ७ = \frac{४४१}{२}$ घन राजु $=$ २२० $\frac{१}{२}$ घन राजु।

एक यव का क्षेत्रफल $(\frac{१}{२}$ रा. $\div २) \times \frac{१४}{५}$ राजु $= \frac{१}{२} \times \frac{७}{५} = \frac{७}{१०}$ वर्ग राजु,

इसलिये, २५ यव का क्षेत्रफल $= \frac{७}{२} \times \frac{५}{१} = \frac{३५}{२}$ वर्ग राजु;

इस प्रकार २५ यव का घनफल $= \frac{३५}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{२४५}{२}$ घन राजु $=$ १२२$\frac{१}{२}$ घन राजु।

(५) यवमध्य क्षेत्र—(पृ. ३१ पर आकृति-१२ देखिये)। यह आकृति, क्षेत्र के उदग्र समतल द्वारा प्राप्तछेद (Vertical section) है। इसका आगे-पीछे (उत्तर-दक्षिण) विस्तार ७ राजु यहाँ चित्रित नहीं है।

यहाँ, यवमध्य का क्षेत्रफल (१ ÷ २) × $\frac{१४}{५}$ = $\frac{७}{५}$ वर्ग राजु,

इसलिये, ३५ यवमध्य का क्षेत्रफल = $\frac{७}{५}$ × $\frac{३५}{१}$ = ४९ वर्ग राजु;

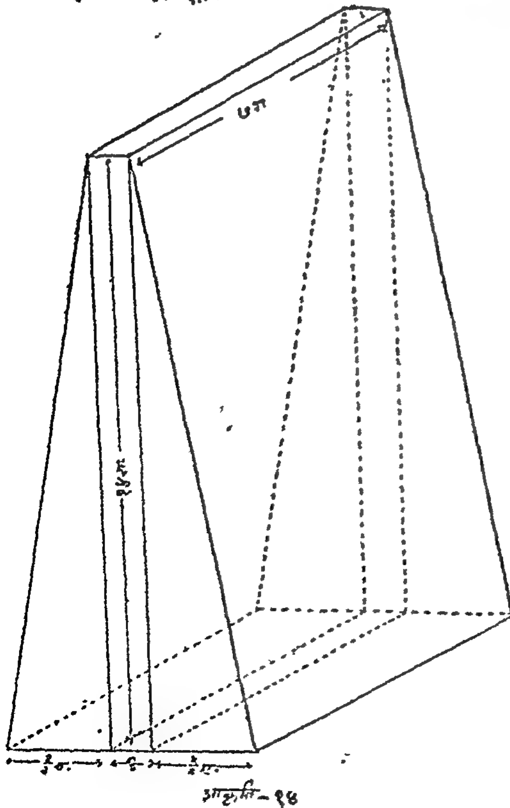
इस प्रकार, ३५ यवमध्य का घनफल = ४९ × ७ घन राजु = ३४३ घन राजु;

और, एक यवमध्य का घनफल = $\frac{३४३}{३५}$ = १९$\frac{३}{५}$ घन राजु।

इस गाथा के उपरान्त दिया गया निदर्शन $\frac{\equiv}{३५}$ | ☰|☰ | इस चित्र से ही स्पष्ट है। $\frac{\equiv}{३५}$ एक यवमध्य का घनफल है तथा ☰|☰ का अर्थ यह है कि १४ राजु ऊँचाई को पाँच बराबर भागों में विभक्त कर ३५ यवमध्यों को प्राप्त करना है।

(गा. १, २२०)

(६) मन्दराकार क्षेत्र—(आकृति-१४ देखिये)। इस क्षेत्र की भूमि ६ राजु, मुख १ राजु, ऊँचाई १४ राजु, और मुटाई ७ राजु ली गई है।



आकृति-१४

पुनः, समानुपात के सिद्धान्तों के द्वारा क्रमशः भूमि से $\frac{४}{३}$, $\frac{४}{३}+\frac{२}{३}+\frac{३}{२}$, $\frac{४}{३}+\frac{२}{३}+\frac{३}{२}$, $\frac{४}{३}+\frac{२}{३}+\frac{३}{२}+\frac{३१}{६}$, $\frac{४}{३}+\frac{२}{३}+\frac{३}{२}+\frac{३१}{६}+\frac{३}{२}$ और अंत में $\frac{४}{३}+\frac{२}{३}+\frac{३}{२}+\frac{३१}{६}+\frac{३}{२}+\frac{२३}{६}$ राजुओं की ऊँचाईयों पर मुखों के विस्तार निकाले हैं। ये ऊँचाइयाँ साधित करने पर, क्रमशः $\frac{४}{३}$, २, $\frac{७}{२}$, $\frac{५२}{६}$, $\frac{६१}{६}$ और $\frac{८४}{६}$ अर्थात् १४ राजु प्राप्त होती हैं। [यहाँ २२१ से २२४वीं गाथाओं का स्पष्टीकरण बाद में करेंगे।]

ऐसे मन्दाकार क्षेत्र का घनफल = $\frac{६+१}{२}$ × १४ × ७ = ३४३ घन राजु है। दूसरी रीति से, इस क्षेत्र को ऊपर दी गई ऊँचाइओं पर विभक्त करने से ६ क्षेत्र प्राप्त होते हैं।

जब ऊँचाई $\frac{४}{३}$ राजु ली जाती है तो उस ऊँचाई पर व्यास उपर्युक्त नियम के अनुसार ६–[$\frac{६-१}{१४}$] × $\frac{४}{३}$ = $\frac{११६}{२१}$ राजु प्राप्त होता है। इसी प्रकार जब ऊँचाई $\frac{६}{३}$ या २ राजु ली जाती है तो विस्तार ६ – {($\frac{६-१}{१४}$) × २} अर्थात् $\frac{३७}{७}$ या $\frac{१११}{२१}$ राजु प्राप्त होता है। इस प्रकार, इसी विधि से उन भिन्न भिन्न ऊँचाइओं पर विस्तार क्रमशः $\frac{३९९}{८४}$, $\frac{२४४}{८४}$, $\frac{१९९}{८४}$, $\frac{८४}{८४}$ प्राप्त होते हैं। अन्तिम माप, $\frac{८४}{८४}$ अर्थात् १ राजु, मंदराकार क्षेत्र का मुख है और भूमि $\frac{१२६}{२१}$ या ६ राजु है। इस प्रकार प्राप्त विभिन्न क्षेत्रों के घनफल निम्न लिखित रीति से प्राप्त करते हैं।

प्रथम क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}\left[\frac{१२६}{२१} + \frac{११६}{२१}\right] \times \frac{४}{३} \times ७ = \frac{४८४}{९}$ घनराजु।

द्वितीय क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}\left[\frac{११६}{२१} + \frac{१११}{२१}\right] \times \frac{२}{३} \times ७ = \frac{२२७}{९}$ घनराजु।

तृतीय क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}\left[\frac{१११}{२१} + \frac{३९९}{८४}\right] \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{८४३}{१६}$ घनराजु।

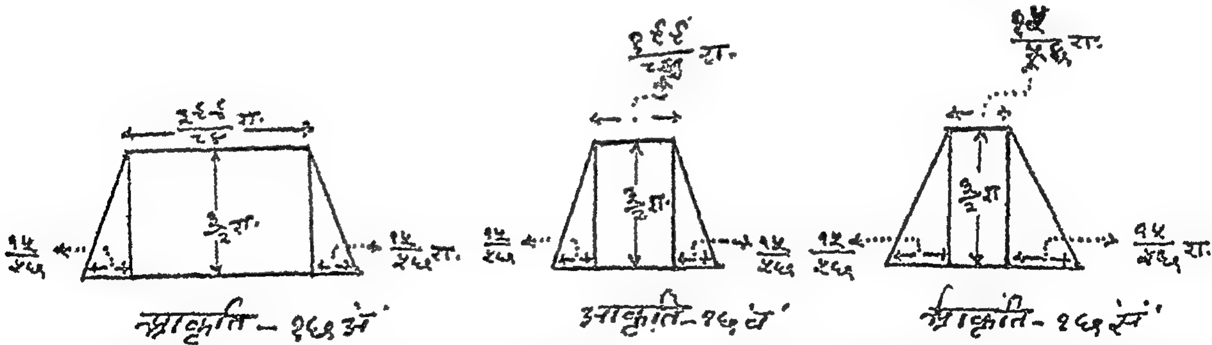
चतुर्थ क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}\left[\frac{३९९}{८४} + \frac{२४४}{८४}\right] \times \frac{३१}{६} \times ७ = \frac{१९९३३}{१४४}$ घनराजु।

पंचम क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}\left[\frac{२४४}{८४} + \frac{१९९}{८४}\right] \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{४४३}{१६}$ घनराजु।

षष्ठम क्षेत्र का घनफल $= \frac{१}{२}\left[\frac{१९९}{८४} + \frac{८४}{८४}\right] \times \frac{२३}{६} \times ७ = \frac{६५०९}{१४४}$ घनराजु।

इन सबका योग ३४३ घनराजु प्राप्त होता है। यह प्रमाण सामान्य लोक के घनफल के तुल्य है।

तृतीय और पंचम क्षेत्र के घनफलों को प्राप्त करने की विधि मूल गाथा से नहीं मिलती है। इसका स्पष्टीकरण करते हैं (आकृति–१६ 'अ', 'ब' देखिये)—



आकृति – १६ 'अ' आकृति–१६ 'ब' आकृति–१६ 'स'

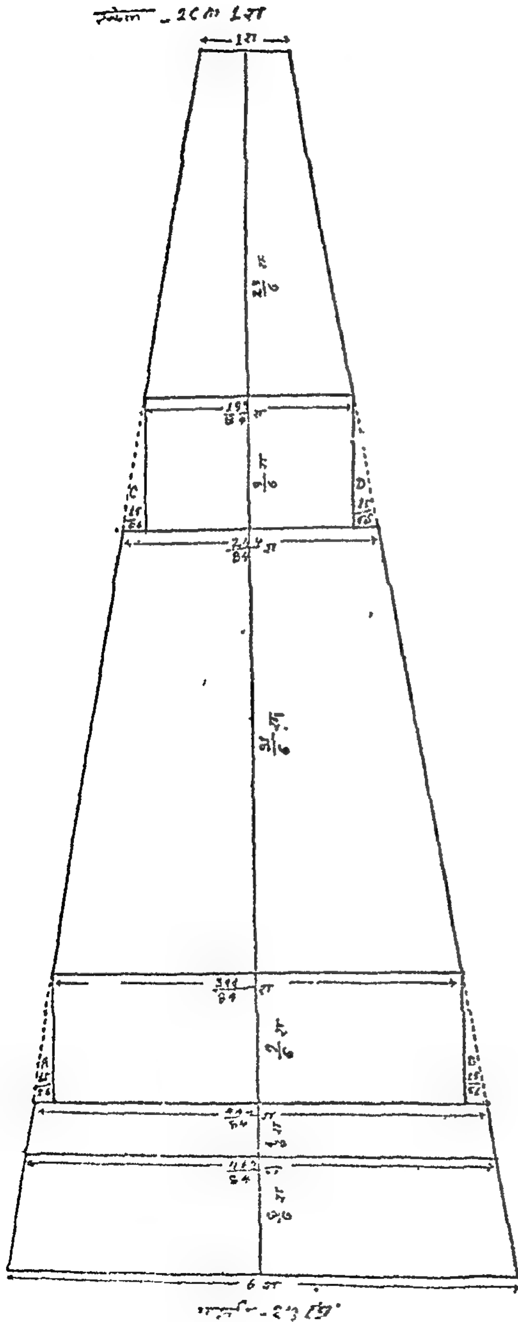
तृतीय क्षेत्र और पंचम क्षेत्र में से अंतर्वर्ती करणाकार क्षेत्रों को अलग कर, एक जगह स्थापित करने से, निम्न लिखित आकृति प्राप्त होती है,

जिसका घनफल $\frac{१}{२}\left[\frac{१५}{५६} + \frac{४५}{५६}\right] \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{४५}{८}$ घनराजु प्राप्त होता है। आकृति–१६ 'स' देखिये।

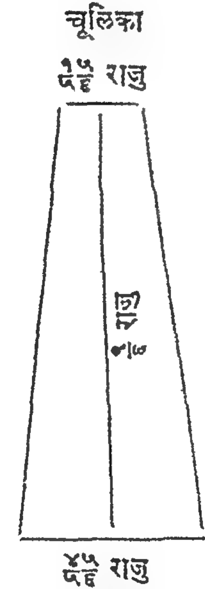
इस प्रकार ग्रंथकार ने तृतीय और पंचम क्षेत्रों में से चार ऐसे त्रिभुजों को (जिनकी : $\frac{१५}{५६}$ योजन लम्बाई और $\frac{३}{२}$ योजन ऊँचाई है) निकाल कर, अलग से, मंदराकार क्षेत्र में सबसे ऊपर स्थापित किया है। तृतीय क्षेत्र में से जब २ × ($\frac{१५}{५६}$ × $\frac{३}{२}$) × $\frac{१}{२}$ × ७ अर्थात् $\frac{४५}{१६}$ घन राजु घटाते हैं तो $\frac{८४३}{१६}$ – $\frac{४५}{१६}$

अर्थात् $\frac{३९९}{८}$ घन राजु बच रहता है। यही प्रमाण मूलगाथा में दिया गया है[1]। इसी प्रकार पंचम क्षेत्र में से $२(\frac{१५}{५६}\times\frac{३}{२})\times\frac{१}{२}\times७$ अर्थात् $\frac{४५}{५६}$ घन राजु घटाते हैं तो मूलगाथानुसार $\frac{४४३}{५६}-\frac{४५}{५६}$ अर्थात् $\frac{१९९}{८}$ घन राजु प्राप्त होते हैं। अंतिम उपरिम भाग में स्थित क्षेत्र का घनफल $\frac{४५}{८}$ रहता है। इस प्रकार, कुल घनफल ३४३ घन राजु प्राप्त किया गया है।

(गा. १, २२०–२३१)



यहां आकृति–१५ मन्दराकार क्षेत्र का उदग्र छेद (vertical section) है। त्रिभुज क्षेत्र A. B. C. D. से वह चूलिका बनी है, प्रत्येक त्रिभुज क्षेत्र का आधार $\frac{१५}{५६}$ राजु तथा ऊँचाई $\frac{१}{२}$ राजु है।

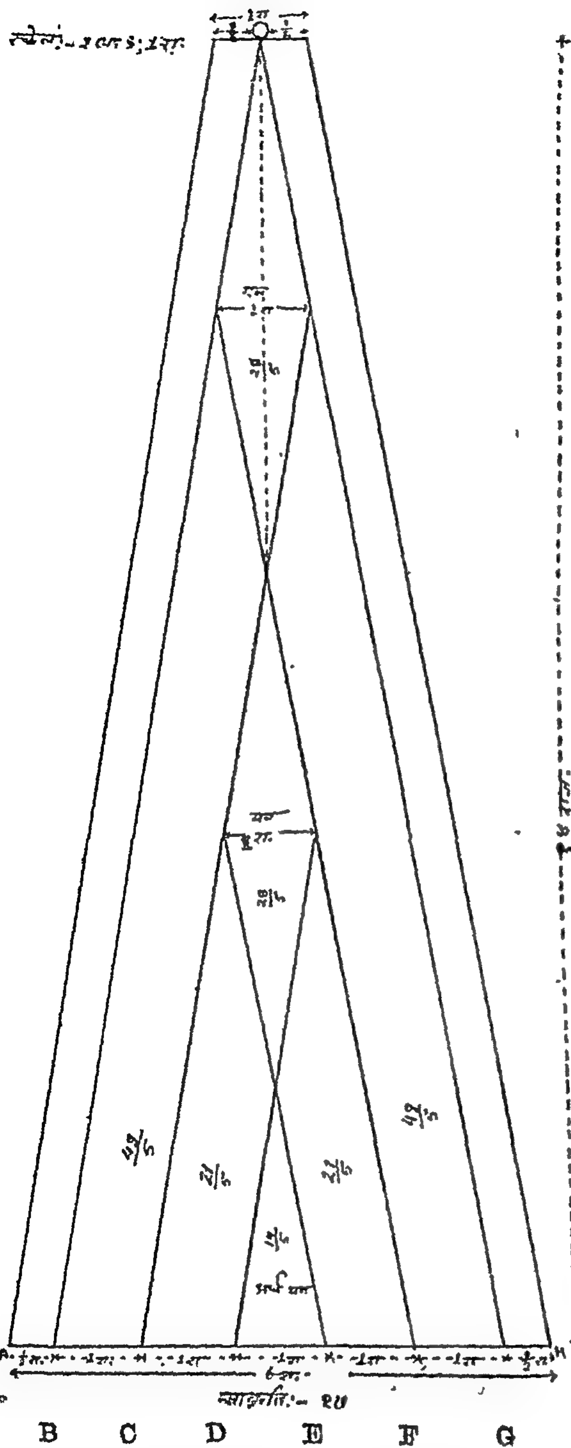


इन चार त्रिभुज क्षेत्रो में से तीन क्षेत्रों के आधार से चूलिका का आधार ($\frac{१५}{५६}\times३=\frac{४५}{५६}$) बना है और एक त्रिभुज क्षेत्र के आधार से चूलिका की चोटी की चौड़ाई $\frac{१५}{५६}$ राजु बनी है।

१ मूल में दिये हुए प्रतीकों (२२० वीं गाथा) का स्पष्टीकरण इस तरह से हो सकता है। $\frac{३}{१४}-\frac{१५}{३९२}$ का अर्थ $\frac{३}{१४}\times७$ ऊँचाई और $\frac{१५}{३९२}\times७$ आधार है। समलम्ब चतुर्भुज के चित्र का

(शेष पृ. ३५ पर देखिये)

(गा. १, २३२–३३)



(७) दूष्य क्षेत्र— यह आकृति–१७ कथित क्षेत्र का उदग्र छेद (vertical section) है। इसके आगे पीछे (उत्तर दक्षिण) के विस्तार ७ राजु का चित्रण यहाँ नहीं हुआ है।

बाहरी दोनों प्रवण क्षेत्रों का घनफल $\frac{१}{२}$ राजु × १४ राजु × ७ × २ ie O J A B + O I H G = ९८ घनराजु।

भीतरी दोनों प्रवण क्षेत्रों का घनफल $\frac{४९}{५}$ × ७ × २ X K C B + Y K F G = $\frac{६८६}{५}$ = १३७$\frac{१}{५}$ घन राजु।

दोनों लघु प्रवण क्षेत्रों का घनफल $\frac{२१}{५}$ × ७ × २ L N D C + M N E F $\frac{२९४}{५}$ = ५८$\frac{४}{५}$ घन राजु।

यव क्षेत्र = $\frac{५}{२}$ यव का घनफल

O X K Y + K L N M + N D E ($\frac{२८}{१०}$ + $\frac{२८}{१०}$ + $\frac{१४}{१०}$) + ७ = $\frac{७०}{१०}$ × ७ = ४९ घनराजु।

(गा. १, २३४)

(८) गिरिकटक क्षेत्र— पांचवीं आकृति, यव मध्य क्षेत्र, को देखने पर ज्ञात होता है कि उसमें २० गिरियां हैं। एक गिरि का घनफल $\frac{४९}{५}$ घनराजु है, इसलिये २० गिरियों का घनफल २० × $\frac{४९}{५}$ = १९६ घन राजु प्राप्त होता है। ३५ यवमध्यों का घनफल ३४३ घन राजु आता है जो (२० गिरियों के समूह में शेष उल्टी गिरियों के घनफल को मिला देने पर) कुल गिरिकटक क्षेत्र का मिश्र घनफल कहा गया है। इस प्रकार हमें गिरिकटक क्षेत्र और यवमध्य क्षेत्र के निरूपण में विशेष भेद नहीं मिल सका है।

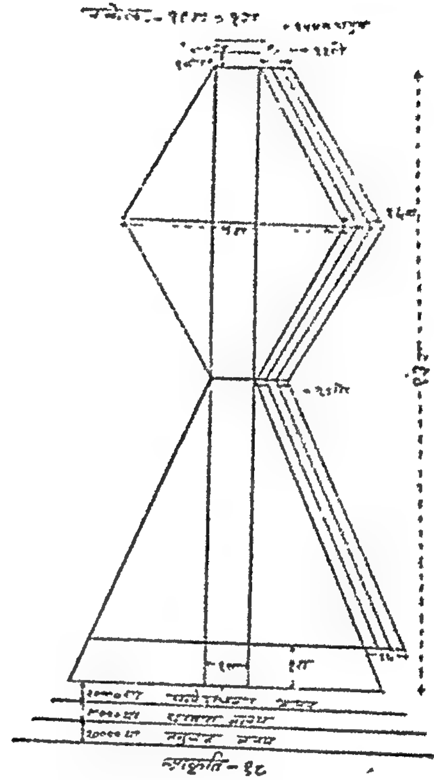
अर्थ इस भांति है कि भूमि ६ योजन को $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$ भागों, १ भाग और $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$ राजुओं में विभक्त किया है। ऊँचाई को समान रूप से विभक्त करने पर विस्तार ३ राजु लिखा हुआ है और १४ राजु ऊँचाई को ७, ७ राजु में विभक्त कर लिखा गया है।

प्र. $\frac{५—२}{७१}$ । $\frac{१}{७२}$ का अर्थ $\frac{५ \times ७ \times २}{७ \times २}$, $\frac{१}{७ \times २}$.

अर्थात् $\frac{५}{१४}$ राजु हानि-वृद्धि प्रमाण हो सकता है। शेष स्पष्ट नहीं है।

अगली गाथाओं (२२४-२६६) में ऊर्ध्व और अधोलोक क्षेत्रों को इन्हीं आठ प्रकार की आकृतियों (figures) में बदल कर प्ररूपण किया गया है। उपर्युक्त विवरण, यूनानियों की क्षेत्र प्रयोग विधि (method of application of areas) के विवरण के सदृश है।

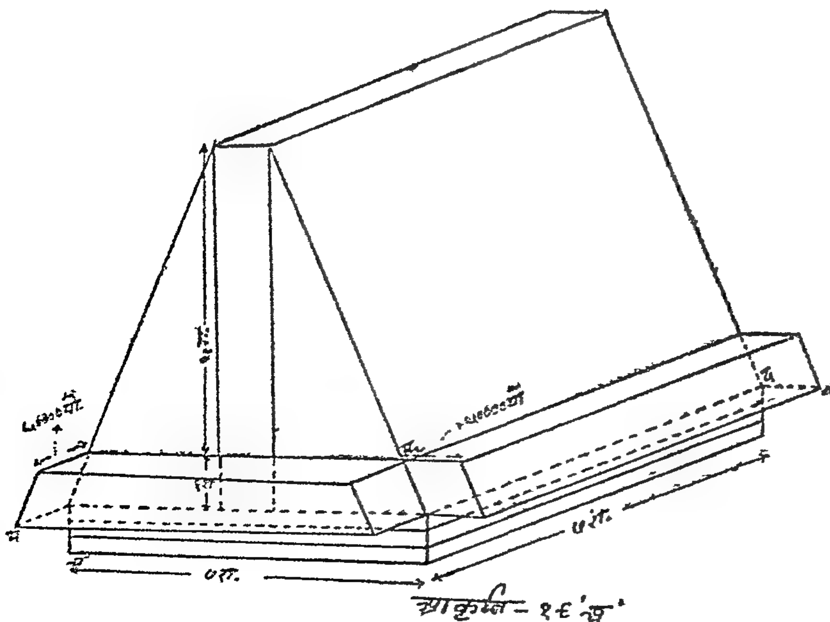
इन गाथाओं में भिन्न भिन्न घनफल लेकर, सामान्य लोक अथवा उसके भागों (जैसे, अधोलोक और ऊर्ध्व लोक) के घनफल के तुल्य उपर्युक्त आकृतियों को प्राप्त करने के लिये वर्णन दिया गया है। प्रक्रियाएँ और आकृतियाँ वही होंगी। (गा. १-२६८)



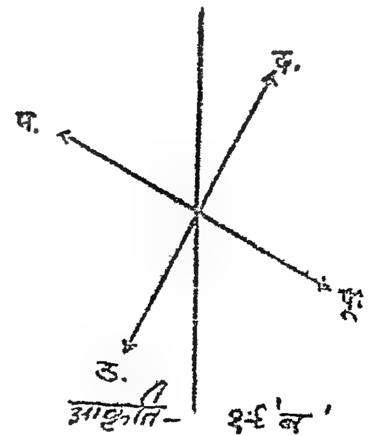
आकृति-१८

इन चित्रों में निदर्शित लम्बाइयों के प्रमाण मान रूप नहीं लिये गये हैं। (आकृति-१८ देखिये)

गा. २७० में वातवलयों से वेष्टित लोक १८ और १९ वीं आकृतियों से स्पष्ट हो जावेगा। ग्रंथकार ने जिन स्थानों का वर्णन किया है उन्हीं को आकृति-१९ और २० में ग्रहण किया गया है।



आकृति- १६ 'अ'



आकृति- १६ 'ब'

(गा. १, २६८)

सर्व प्रथम, (आकृति १९ 'अ' और 'ब') लोक के नीचे वातवलयों द्वारा वेष्टित क्षेत्रों का घनफल निकालते हैं[१]।

च द एक आयतज (cuboid) है लम्बाई ७ राजु, चौड़ाई ७ राजु और उत्सेध या गहराई ६०००० योजन है, ∴ उसका घनफल = ७ राजु × ७ राजु × ६०००० यो.

= ४९ वर्ग राजु × ६०००० यो. होता है।

इसे ग्रन्थकार ने मूलगाथा में प्रतीक द्वारा स्थापित किया है, यथा :

= ६००००............(१)

अब पूर्व पश्चिम में स्थित क्षेत्रों को लेते हैं। वे हैं, फ ब पूर्व की ओर और फ ब सदृश क्षेत्र पश्चिम की ओर। फ ब एक समान्तरानीक (parallelepiped) है, जिसका घनफल लम्बाई × चौड़ाई × उत्सेध होता है।

इस क्षेत्र में उत्सेध १ राजु है, आयाम ७ राजु और बाहल्य या मुटाई ६०००० योजन है ∴ दोनों पार्श्व भागों में स्थित वातक्षेत्रों का घनफल

= २ × [७ राजु × १ राजु × ६०००० योजन] = ७ वर्ग राजु × १२०००० योजन

= ४९ वर्ग राजु × $\frac{१२००००}{७}$ योजन होता है।

इसे मूल में, = $\frac{१२००००}{७}$ लिखा गया है। ....(२)

(१) और (२) परिणामों को जोड़ने पर ४९ वर्ग राजु × (६०००० योजन + $\frac{१२००००}{७}$ योजन) अर्थात् (४९ वर्ग राजु) × ($\frac{५४००००}{७}$ योजन) घनफल प्राप्त होता है जिसे ग्रंथकार ने = $\frac{५४००००}{७}$ लिखा है। I

अब उत्तर दक्षिण की अपेक्षा (अर्थात् सामनेवाला वातवलय वेष्टित लोकांत भाग) पफ तथा पफ के सदृश पीछे स्थित लम्ब संक्षेत्र समच्छिन्नक (frustrum of a right prism) हैं। यहां उत्सेध १ राजु (vertical height 1 raju), तल भाग में आयाम ७ राजु, मुख ६$\frac{१}{७}$ राजु और बाहल्य ६०००० योजन है।

∴ इसका घनफल = २ × $\frac{१}{२}$ × १ राजु × ($\frac{४९}{७}$ + $\frac{४३}{७}$ राजु) × ६०००० योजन

= $\frac{९२}{७}$ वर्ग राजु × ६०००० योजन

---

१ वातवलयों से वेष्टित वरिमाओं के घनफल निकालने की रीति क्या ग्रीस से प्राप्त हुई, यह नहीं कहा जा सकता। पर, ग्रंथकार द्वारा उपयोग में लाये गये नियमों की तुलना श्री सेन्फोर्ड द्वारा प्रतिपादित विषय "The Study of Indivisibles" से करने योग्य है। "Cavalieri (1598—1647) made extensive use of the idea of indivisibles, that is, of considering a surface the smallest element of a solid, a line the smallest element of a surface, and a point that of a line. This concept was the foundation of Cavalieri's famous theorem which reads as follows : If between the same parallels, any two plane figures are constructed, and if in them, any straight lines being drawn equidistant from the parallels, the enclosed portions of any one of these lines are equal, the plane figures are also equal to one another, and if between the same parallel planes any solid figures are constructed, and if in them, any planes being drawn equidistant from the parallel planes, the included plane figures out of any one of the planes so drawn are equal, the solid figures are likewise equal to one another."—"A Short History of Mathematics", By Sanford, p. 315.

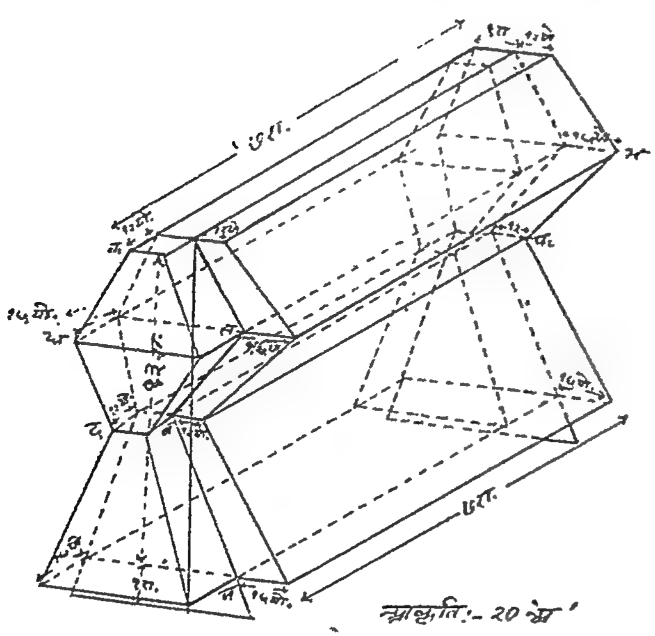
$= ४९ \text{ वर्ग राजु} \times \frac{५५२००००}{३४३}$ योजन होता है।

इसे ग्रंथकार ने $= \frac{५५२००००}{३४३}$ लिखा है।.........(३)

I में (३) जोड़नेपर ४९ वर्ग राजु $\times \left(\frac{४९ \times ५४००००}{३४३} + \frac{५५२००००}{३४३} \text{ योजन} \right)$

अर्थात् ४९ वर्ग राजु $\times \frac{३१९८००००}{३४३}$ योजन प्राप्त होता है।

इसे ग्रंथकार ने $= \frac{३१९८००००}{३४३}$ लिखा है।.........II



आकृति:- 20 अ'

लोक के अन्त से १ राजु ऊपर तक ६०००० योजन बाहल्यवाले वातवलय क्षेत्रों की गणना के पश्चात् उनसे ऊपर स्थित क्षेत्रों की गणना करते हैं। यहां (आकृति २० 'अ') वातवलयों का बाहल्य पूर्व पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण में क्रमशः १६ योजन, १२ योजन, १६ योजन और लोकशिखर पर १२ योजन चित्र में बतलाये अनुसार है।

पूर्व में आकृतियां प फ, ब भ और त थ हैं; तथा ऐसी ही पश्चिम में आकृतियां हैं जो संक्षेत्रों के समच्छिन्नक (frustrum of triangular prisms) हैं। इनका कुल उत्सेध १३ योजन है, हानि वृद्धि क्रमशः १६, १२, १६, १२ योजन हैं, तथा आयाम ७ योजन है। इसलिये इन आकृतियों का कुल घनफल $= २ \times ७ \text{ राजु} \times १३ \text{ राजु} \times \left(\frac{१६ + १२}{२} \text{ योजन} \right)$

$= २ \times ७ \text{ राजु} \times १३ \text{ राजु} \left(१४ \times \frac{३४३}{३४३} \text{ योजन} \right) = ४९ \text{ वर्गराजु} \times \frac{१७८३६}{३४३}$ योजन होता है।

इस प्रकार की गणना, राजु और योजन में सम्बन्ध अव्यक्त होने से बिलकुल ठीक तथा प्रशंसनीय है।

इसे ग्रन्थकार ने $= \frac{१७८३६}{३४३}$ लिखा है।.........(४)

अब, उत्तर दक्षिण अर्थात् सामने के भागों में स्थित प द, ब ध, और त क तथा ऐसे ही पीछे के क्षेत्रों का घनफल निकालते हैं। ये भी त्रिभुजीय संक्षेत्रों के समच्छिन्नक हैं।

प द के घनफल के लिये उत्सेध ६ राजु, मुख १ राजु, भूमि $६\frac{६}{७}$ राजु तथा बाहल्य क्रमशः १६, १२ योजन है, इसलिये इसका तथा ऐसी ही पीछे की आकृति का कुल घनफल

$$=२\times(६\ \text{राजु})\times\left(\frac{६\frac{६}{७}+१}{२}\ \text{राजु}\right)\times\left(\frac{१६+१२}{२}\ \text{योजन}\right)$$

$$=\frac{३००}{७}\ \text{वर्ग राजु}\times१४\ \text{योजन}=४९\ \text{वर्ग राजु}\times\frac{४२००}{३४३}\ \text{योजन होता है।}$$

इसे ग्रन्थकार ने $=\frac{४२००}{३४३}$ लिखा है।.........(५)

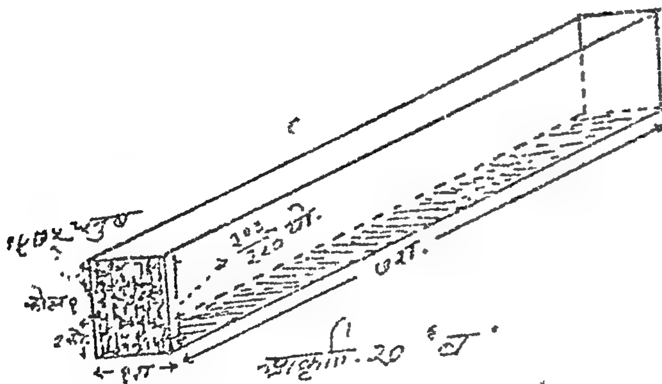
इसी प्रकार, ब घ तथा त क और उनके समान दक्षिण में स्थित क्षेत्रों के घनफल के लिये कुल उत्सेध ७ राजु है; हानि-वृद्धि १, ५, १ राजु है तथा बाहल्य में भी हानि-वृद्धि १२, १६, १२ है। ऐसे संक्षेत्र समछिन्नकों का कुल घनफल $=२\times७\ \text{राजु}\times\left(\frac{५+१}{२}\text{राजु}\right)\times\left(\frac{१६+१२}{२}\ \text{योजन}\right)$

$$=४२\ \text{वर्ग राजु}\times१४\ \text{योजन}$$

$$=४९\ \text{वर्ग राजु}\times\frac{५८८}{४९}\ \text{योजन होता है।}$$

इसे ग्रंथाकार ने $=\frac{५८८}{४९}$ लिखा है। ......(६)

अब लोक के ऊपर के घनफल को निकालते हैं (आकृति २० 'ब')।



यहां उत्सेध २ कोस + १ कोस + १५७५ धनुष $=\frac{७५७५}{८०००}$ योजन $=\frac{३०३}{३२०}$ योजन है।

आयाम १ राजु, चौड़ाई ७ राजु है

∴ इस आयतज (Cuboid) का घनफल

$$=१\ \text{राजु}\times७\ \text{राजु}\times\frac{३०३}{३२०}\ \text{योजन}$$

$$=४९\ \text{वर्ग राजु}\times\frac{३०३}{२२४०}\ \text{योजन होता है।}$$

इसे ग्रन्थकार ने $=\frac{३०३}{२२४०}$ लिखा है।............(७)

शेष भागों के विषय में ग्रन्थकार ने नहीं लिखा है। शायद वह घनफल इनकी तुलना में उपेक्षणीय गिना गया हो अथवा उनकी गणना ही न की गई हो। यह बात स्पष्ट नहीं है। जहां तक उस उपेक्षित घनफल का सम्बन्ध है, वह भी सरलता से निकाला जा सकता है।

उपर्युक्त ७ क्षेत्रों का कुल घनफल

$$=४९\ \text{वर्गराजु}\times\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}\ \text{योजन प्राप्त होता है।}$$ III

इसे ग्रन्थकार ने $= \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ लिखा है ।......(८)

इसके पश्चात् आठों पृथ्वियों के अधस्तन भाग में वायु से अवरुद्ध क्षेत्रों के घनफल निकाले गये हैं जिनकी गणना मूल में स्पष्ट है। समस्त पृथ्वियों के अधस्तन भाग में अवरुद्ध क्षेत्रों का कुल घनफल ४९ वर्ग राजु $\times \left(\frac{१०९२००००}{४९}\right.$ योजन$\left.\right)$ होता है जिसे ग्रंथकार ने $= \frac{१०९२००००}{४९}$ स्थापित किया है ।...IV

आठ पृथ्वियों का भी कुल घनफल मूल में बिलकुल स्पष्ट है जो

४९ वर्ग राजु $\times \left(\frac{४३६६४०५६}{४९}\right.$ योजन$\left.\right)$ है, जिसे......V

ग्रन्थकार ने $= \frac{४३६६४०५६}{४९}$ लिखा है ।

जब III, IV, और V के योग को सम्पूर्ण लोक (≡) में से घटाते हैं तो अवशिष्ट शुद्ध आकाश का प्रमाण होता है। उसकी स्थापना जो मूल में की गई वह स्पष्ट नहीं है। आकृति–२१ देखिये।



आकृति – २१

यहां एक उल्लेखनीय बात यह है कि सिकन्दरिया के हेरन ने (प्रायः ईसा की तीसरी सदी में) वेत्रासन सदृश सांद्र (wedge shaped solid, βωμισκοσ, 'little altar') के घनफल को लगभग उपर्युक्त विधियों द्वारा प्राप्त किया है। यदि नीचे का आधार 'a' और 'b' भुजाओंवाला आयत है तथा ऊपर का मुख 'c' और 'd' भुजाओंवाला आयत है तो उत्सेध 'h' लेने पर घनफल निकालने का सूत्र यह है—

$$\{ \tfrac{1}{4}(a+c)(b+d) + \tfrac{1}{12}(a-c)(b-d) \}h$$

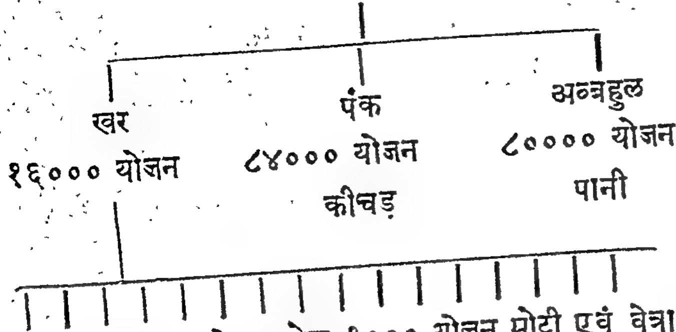
यह घनफल, वेत्रासन को समान्तरानीक (parallelepiped) और त्रिभुज संक्षेत्र (triangular prism) में विदीर्ण कर, प्राप्त किया गया है[१]।

पुनः बेबीलोनिया में, प्रायः ३००० वर्ष पूर्व, पृथ्वी माप के (Γεωμετρια) विषय में उपर्युक्त विवरण से सम्बन्ध रखनेवाला चतुर्भुज क्षेत्र सम्बन्धी अभिमत कूलिज के शब्दों में यह है।

"When four measures are given the area stated is in every case greater than possible no matter what the shape. de la Fuye explains this by the ingenious hypothesis that the Babylonians used for area in terms of sides the incorrect formula $F = \frac{1}{4}(a+a')(b+b')$. This gives the correct result only in the case of the rectangle. It is curious that we find the same incorrect formula in an Egyptian inscription that scarcely antedated the christian era.[२]

१ Heath, Greek Mathematics, vol (ii) p. 333, Edn, 1921.

२ Coolidge, A History of Geometrical Methods, p. 5, Edn. 1940.



चित्रादि १६ भेद प्रत्येक १००० योजन मोटी एवं वेत्रासन आकार की।

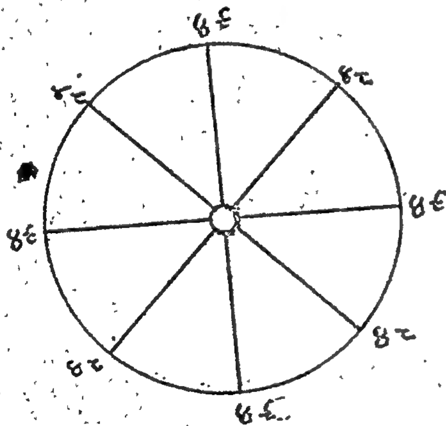
गा. २, २६–२७— कुल बिल ८४ लाख हैं। वे इस प्रकार हैं—

र. प्र.	श. प्र.	वा. प्र.	पं. प्र.	धू. प्र.	त. प्र.	म. प्र.
३००००००	२५०००००	१५०००००	१००००००	३०००००	९९९९५	५

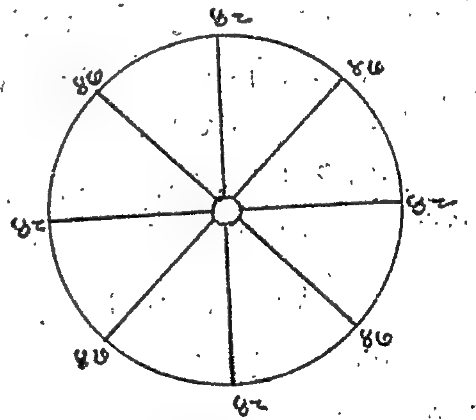
गा. २, २८— सातवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में नारकी बिल हैं। अब्बहुल पर्यंत शेष छः पृथ्वियों में नीचे व ऊपर एक एक हजार योजन छोड़कर पटलों (discs) में क्रम से नारकियों के बिल हैं।

गा. २, ३६— पटल के सब बिलों के बीचवाला इन्द्रक बिल और चार दिशाओं तथा विदिशाओं के पंक्तिबद्ध बिल श्रेणिबद्ध कहलाते हैं। शेष श्रेणिबद्ध बिलों के इधर उधर रहनेवाले बिल प्रकीर्णक कहलाते हैं।

गा. २, ३७— इन्द्रक बिल, सात पृथ्वियों में क्रमशः १३, ११, ९, ७, ५, ३, १ हैं। प्रथम इंद्रक बिल और द्वितीय इंद्रक बिल के लिये आकृति–२२ 'अ', और 'ब' देखिये।



आकृति 22 अ



आकृति 22 ब

गा. २, ३९— कुल इंद्रक बिल ४९ हैं।

गा. २, ५५— दिशा और विदिशा के कुल प्रकीर्णक बिल (४८×४)+(४९×४)=३८८ हैं। इनमें सीमन्त इन्द्रक बिल को मिलाने पर प्रथम पाथड़े के कुल बिल ३८९ होते हैं।

गा. २, ५८— रूपरेखिक वर्णन देने के पश्चात्, ग्रंथकार श्रेणीव्यवहार गणित का उपयोग कर समान्तर श्रेढि (Arithmetical Progression) के विषय में, इस प्रकरण से सम्बन्धित अज्ञात की गणना के लिये सूत्र आदि का वर्णन करते हैं।

यदि प्रथम पाथड़े में बिलों की कुल संख्या a हो और फिर प्रत्येक पाथड़े में क्रमशः d द्वारा उत्तरोत्तर हानि हो तो n वें पाथड़े में कुल बिलों की संख्या प्राप्त करने के लिये $\{a-(n-1)d\}$ सूत्र का उपयोग किया है। यहाँ $a = ३८९$ है, $d = ८$ है और $n = ४$ है ∴ चौथे पाथड़े में इन्द्रक सहित श्रेणिबद्धबिलों की संख्या $\{३८९-(४-१)८\} = ३६५$ है।

गा. २, ५९— n वें पाथड़े में इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या निकालने के लिये ग्रंथकार साधारण सूत्र देते हैं: $\left(\frac{a-५}{d}+१-n\right)d+५$

यहां $a = ३८९$ है; इष्ट प्रतर अर्थात् इष्ट पाथड़ा n वां है।

गा. २, ६०— यदि प्रथम पाथड़े में इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या a और n वें पाथड़े में a_n मान ली जाय तो n का मान निकालने के लिये इस साधारण सूत्र (general formula) का उपयोग किया है: $\left[\frac{a-५}{d}-\frac{a_n-५}{d}\right]=n$

गा. २, ६१— यहां 'd' प्रचय (common difference) है।

किसी श्रेढि में प्रथम स्थान में जो प्रमाण रहता है उसे आदि, मुख (वदन) अथवा प्रभव (first term) कहते हैं। अनेक स्थानों में समान रूप से होनेवाली वृद्धि अथवा हानि के प्रमाण को चय या उत्तर (common difference) कहते हैं और ऐसी वृद्धि हानिवाले स्थानों को गच्छ या पद (term) कहते हैं।

गा. २, ६२— यदि श्रेढियों को वृद्धिमय मानें तो रत्नप्रभा में प्रथम पद २९३ आदि (first term) है, गच्छ (number of terms) १३ है और चय (common difference) ८ है। इसी प्रकार अन्य पृथ्वियों का उल्लेख अलग अलग है, चय सबमें एकसा है।

ऐसी श्रेढियों का कुल संकलित धन अर्थात् इंद्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों की कुल संख्या निकालने के लिये सूत्र दिया गया है।

गा. २, ६४— यहां कुल धन को हम S, प्रथम पदको a, चय को d और गच्छ को n द्वारा निरूपित करते हैं तो सूत्र निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है[१]।

$$S=[(n-\dot{१})d+(\dot{१}-१)d+(a.२)]\frac{n}{२}$$

यहां इच्छा $\dot{१}$ है अर्थात् पहिली श्रेढि के बिलों की कुल संख्या प्राप्त की है। इसे हल करने पर हमें साधारण सूत्र (general formula) प्राप्त होता है: $S=\frac{n}{२}[२a+(n-१)d]$

इसी प्रकार दूसरी श्रेढि के लिये जहाँ इच्छा $\dot{२}$ है

$$S=[(n-\dot{२})d+(\dot{२}-१)d+(a.२)]\frac{n}{२}$$

अर्थात् वही साधारण सूत्र फिर से प्राप्त होता है:

$$S=\frac{n}{२}[२a+(n-१)d]$$

---

१ मूल गाथाको देखने से ज्ञात होता है कि (१३ − १) लिखने के लिये ग्रंथकार ने $\dot{१}$३ लिखा है। इसी प्रकार (१ − १) लिखने के लिये $\dot{१}$ लिखा है।

संकलित धन निकालने के लिये ग्रंथकार दूसरे सूत्र का कथन करते हैं। उसे उपर्युक्त प्रतीकों से निरूपित करने पर, इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

$$S = \left[\left\{\left(\frac{n-१}{२}\right)^२ + \left(\frac{n-१}{२}\right)\right\}d + ५\right]n$$

यह समीकार ऊपर दी गई सब श्रेढियों के लिये साधारण है। उपर्युक्त संख्या "५" महातमःप्रभा के बिलों से सम्बन्धित होना चाहिये।

इन्द्रक बिलों की कुल संख्या ४९ है, इसलिये यदि अंतिम पद ५ को l माना जाय, a को ३८९; और d (प्रचय) ८ हो तो $l = a - (४९ - १)d$

अर्थात् $५ = ३८९ - ३८४$

$= ५$

इस प्रकार जो यहां ५ लिया गया है, वह सब श्रेढियों के अंत में जो श्रेढि है, उसका अंतिम पद है।

गा. २, ६९— सम्पूर्ण पृथ्वियों के इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों के प्रमाण को निकालने के लिये आदि पांच (first term A) चय आठ (common defference D) और गच्छ का प्रमाण उनंचास (number of terms N) है।

गा. २, ७०— यहां सात पृथ्वियां हैं जिनमें श्रेढियों की संख्या ७ है। अंतिम श्रेढि में एक ही पद ५ है। इन सब का संकलित धन प्राप्त करने के लिये ग्रंथकार ने यह सूत्र दिया है।

$$S' = \frac{N}{२}[(N+७)D - (७+१)D + २A]$$

$$= \frac{N}{२}[२A + (N-१)D],$$ यहां ७ इष्ट है।

गा. २, ७१— ग्रंथकार ने दूसरा सूत्र इस प्रकार दिया है।

$$S' = \left[\frac{N-१}{२} \times D + A\right]N$$

$$= \frac{N}{२}[२A + (N-१)D]$$

यहां $N = ४९$, $A = ५$, $D = ८$ है।

गा. २, ७४— इन्द्रक रहित बिलों (श्रेणीबद्ध बिलों) की संख्या निकालने के लिये इन्द्रकों को अलग कर देने पर पृथ्वियों में श्रेणीबद्ध बिलों की श्रेढियों के आदि (first term in the respective prathvi beginning from the Ratnaprabha) क्रमशः २९२, २०४ इत्यादि हैं। गच्छ (number of terms) प्रत्येक के लिये क्रमशः १३, ११,··· इत्यादि हैं और चय ८ है।

यहां भी साधारण सूत्र दिया गया है, जो सब पृथ्वियों के अलग अलग धन को (श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या) निकालने के लिये निम्न लिखित रूप में प्रतीकों द्वारा दर्शाया जा सकता है।

$$S'' = \frac{[n^२ \cdot d] + [२n \cdot a] - nd}{२} = \frac{n^२ d + २na - nd}{२} = \frac{n}{२}[(n-१)d + २a]$$

जहां n गच्छ, d प्रचय और a आदि हैं।

गा. २, ८१— इंद्रकों रहित बिलों (श्रेणिबद्ध बिलों) की समस्त पृथ्वियों में कुल संख्या निकालने के लिये ग्रंथकार सूत्र देते हैं। यहां आदि ५ नहीं होकर ४ है, क्योंकि महातमःप्रभा में केवल एक इन्द्रक और चार श्रेणिबद्ध बिल हैं। यही आदि अथवा A है; ४९, N है और प्रचय ८, D है। इसके लिये प्रतीक रूप से सूत्र यह है:—

$$S''' = \frac{(N^२ - N)D + (N \cdot A)}{२} + \left(\frac{A}{२} \cdot N\right)$$

$$= \frac{N}{२}[A + (N-१)D + A]$$

$$= \frac{N}{२}[२A + (N-१)D]$$

गा. २, ८२–८३— आदि [first term A) निकालने के लिये ग्रंथकार सूत्र देते हैं:—

$$A = \frac{\left[S''' \div \frac{N}{२}\right] + [D \cdot ७] - [७ - १ + N]D}{२}$$

जिसका साधन करने पर पूर्ववत् साधारण सूत्र प्राप्त होता है।

यहां इच्छित पृथ्वी ७ वीं है जिसका आदि निकालना इष्ट था।

इच्छा कोई भी राशि हो सकती है।

गा. २, ८४— चय [common difference D] निकालने के लिये ग्रंथकार सूत्र देते हैं,

$$D = S''' \div \left([N-१]\frac{D}{२}\right) - \left(A \div \frac{N-१}{२}\right)$$

इसे साधित करने पर पूर्ववत् साधारण सूत्र प्राप्त होता है।

गा. २, ८५— इसके पश्चात् ग्रंथकार रत्नप्रभा प्रथम पृथ्वी के संकलित धन (श्रेणिबद्ध बिलों की कुल संख्या) को लेकर पद १३ को निकालने के लिये निम्न लिखित सूत्र का प्रयोग करते हैं; जहां $n = १३$, $S'' = ४४२०$, $d = ८$ और $a = २९२$ आदि है।

$$n = \left\{\sqrt{\left(S'' \cdot \frac{d}{२}\right) + \left(\frac{a - \frac{d}{२}}{२}\right)^२} - \left(\frac{a - \frac{d}{२}}{२}\right)\right\} \div \frac{d}{२}$$

इसे साधित करने पर पूर्ववत् समीकार प्राप्त होता है।

गा. २, ८६— उपर्युक्त के लिये दूसरा सूत्र भी निम्न लिखित रूप में दिया गया है।

$$n = \left\{\sqrt{(२ \cdot d \cdot S'') + \left(a - \frac{d}{२}\right)^२} - \left(a - \frac{d}{२}\right)\right\} \div d$$

इसे साधित करने पर पूर्ववत् समीकार प्राप्त होता है।

गा. २, १०५— इन्द्रकों का विस्तार समान्तर श्रेढि (Arithmetical progression) में घटता है। प्रथम इन्द्रक का विस्तार ४५०,००००० योजन और अंतिम इंद्रक का १०,०००० योजन है। कुछ इंद्रक बिल ४९ हैं। यह गच्छ की संख्या है जिसे प्रतीक रूप से हम n द्वारा निरूपित करेंगे। आदि ४५००००० (a) और अंतिम पद १००००० (l) तथा चय (Common difference) d है तो d निकालने के लिये सूत्र ग्रंथकार ने यह दिया है :

$d=\frac{a-l}{(n-१)}$ यहां n अंतिम पद के लिये उपयोग में आया है।

प्रथम बिल से यदि nवें बिल का विस्तार प्राप्त करना हो तो उसे प्राप्त करने के लिये निम्न लिखित सूत्र का उपयोग किया गया है :

$a_n=a-(n-१)d.$

यदि अंतिम बिल से n वें बिल का विस्तार प्राप्त करना हो तो सूत्रको प्रतीक रूप से निम्न प्रकार निबद्ध किया जा सकता है :—

$b_n=b+(n-१)d.$

जहां a_n और b_n उन n वें बिलों के विस्तारों के प्रतीक हैं।

यहां विस्तार का अर्थ व्यास (diameter) किया जा सकता है।

गा. २, १५७— इन बिलों की गहराई (बाहल्य) समान्तर श्रेढि में है। कुल पृथ्वियां ७ हैं। यदि nवीं पृथ्वी के इंद्रक का बाहल्य निकालना हो तो नियम यह है :—

$$n \text{ वीं पृथ्वी के इंद्रक का बाहल्य}=\frac{(n+१)\times ३}{(७-१)}$$

$$\text{इसी प्रकार, } n \text{ वीं पृथ्वी के श्रेणिबद्ध बिलों का बाहल्य}=\frac{(n+१)\times ४}{(७-१)}$$

$$\text{इसी प्रकार, } n \text{ वीं पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों का बाहल्य}=\frac{(n+१)\,७}{(७-१)}$$

गा. २, १५८— दूसरी रीति से बिलों का बाहल्य निकालने के लिये ग्रंथकार ने उनके 'आदि' के प्रमाण क्रमशः ६, ८ और १४ लिये हैं।

पृथ्वियों की संख्या ७ है। यदि n वीं पृथ्वी के इंद्रक का बाहल्य निकालना हो तो सूत्र यह है :—

$$n\text{वीं पृथ्वी के इंद्रक का बाहल्य}=\frac{(६+n\cdot\frac{६}{२})}{(७-१)}$$

$$\text{यहां ६ को आदि लिखें तो दक्षिणपक्ष}=\left(\frac{a+n\cdot\frac{a}{२}}{७-१}\right) \text{ होता है।}$$

$$\text{इसी प्रकार, } n\text{वीं पृथ्वी के श्रेणिबद्ध बिलों का बाहल्य}=\frac{(८+n\cdot\frac{८}{२})}{(७-१)} \text{ होता है।}$$

$$\text{यदि ८ को आदि लिखें तो दक्षिण पक्ष}=\frac{a+n\frac{a}{२}}{(७-१)} \text{ होता है।}$$

प्रकीर्णक बिलों के लिये भी यही नियम है।

आगे गाथा १५९ से १९४ तक इन बिलों के अन्तराल (inter space) का विवरण दिया गया है जो सूत्रों की दृष्टि से अधिक महत्व का प्रतीत नहीं हुआ है।

गा. २, १९५— घर्मा या रत्नप्रभा के नारकियों की संख्या निकालने के लिये पुनः जगश्रेणी और घनांगुल का उपयोग हुआ है। प्रतीक रूप से, घनांगुल के लिये ६ लिखा गया है और उसका घनमूल सूच्यंगुल २ लिखा गया है[1]।

आज कल के प्रतीकों में घर्मा पृथ्वी के नारकियों की संख्या

$$= \text{जगश्रेणी} \times (\text{कुछ कम}) \sqrt{\sqrt{६}}$$

$$= \text{जगश्रेणी} \times [\text{कुछ कम } (६)^{\frac{१}{४}}]$$

$$= \text{जगश्रेणी} \times [\text{कुछ कम } (२)^{\frac{३}{४}}]$$

$$= \text{जगश्रेणी} \times [\text{कुछ कम } \sqrt[४]{(२)^{३}}]$$

मूल गाथा में इसका प्रतीक $—\frac{१२}{१२}$ दिया गया है। आड़ी रेखा जगश्रेणी है।

$\frac{१२}{१२}$ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। वास्तव में उन्हीं प्राचीन प्रतीकों में $—\frac{६}{२}|$ लिखा जाना था (?)।

गा. २, १९६— इसी प्रकार, वंशा पृथ्वी के नारकी जीवों की संख्या आजकल के प्रतीकों में

$$= \text{जगश्रेणी} \div (\text{जगश्रेणी})^{\left(\frac{१}{२^{१२}}\right)}$$

$$= \text{जगश्रेणी} \div (\text{जगश्रेणी})^{\frac{१}{४०९६}}$$

इसे ग्रंथकार ने प्रतीक[2] रूप में $\overline{१२}|$ लिखा है। स्पष्ट है कि इसमें प्रथम पद जगश्रेणी नहीं है जिसमें कि $(\text{जगश्रेणी})^{\frac{१}{२^{१२}}}$ का भाग देना है। यह प्रतीक केवल जगश्रेणी के बारहवें मूल को निरूपित करता है।

---

१ यहां जगश्रेणी का अर्थ जगश्रेणी प्रमाण सरल रेखा में स्थित प्रदेशों की संख्या से है। जगश्रेणी असंख्यात संख्या के प्रदेशों की राशि है। असंख्यात संख्यावाले प्रदेश पंक्तिबद्ध संलग्न रखने पर जगश्रेणी का प्रमाण प्राप्त होता है। प्रदेश, आकाश का वह अंश है जो मूर्त पुद्गल द्रव्य के अविभाज्य परमाणु द्वारा अवगाहित किया जाता है। इसी प्रकार सूच्यंगुल (२) उस संख्या का प्रतीक है जो सूच्यंगुल में स्थित पंक्तिबद्ध संलग्न प्रदेशों की संख्या है। सूच्यंगुल भी जगश्रेणी के समान, एक दिश, परिमित रेखा-माप है।

२ करणी का चिह्न तथा उसके उपयोग के विषय में गणित के इतिहासकारों का मत है कि इटली और उत्तर यूरोप के गणितज्ञों ने पंद्रहवीं सदी के अन्त से उसे विकसित करना आरम्भ किया था। मिस सेन्फोर्ड ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है,

"Radical signs seem to have been derived from either the Capital latter R or from its lower case form, the former being preferred by Italian writers and tha latter by those of northern Europe. Before the addition of the horizontal bar which showed the terms affected by the radical sign, varions symbols of aggregation were developed"—"A Short History of Mathematics" p. 158.

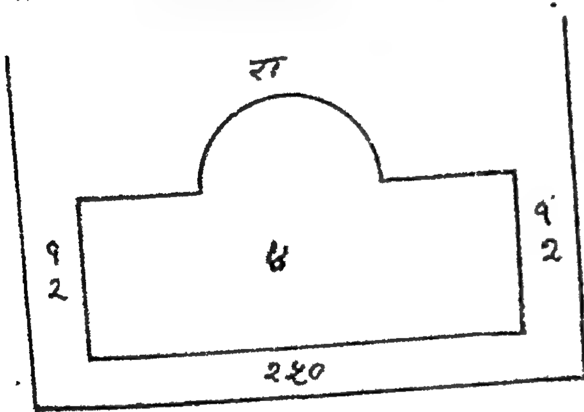
गा. २, २०५— रौरुक इन्द्रक में उत्कृष्ट आयु असंख्यात पूर्वकोटि दर्शाने के लिये ग्रंथकार ने
प्रतीक निरूपण इस तरह की है : पुव्व । a ।

गा. २, २०६— प्रथम पृथ्वी के शेष ९ पटलों में उत्कृष्ट आयु समान्तर श्रेढि में है, जिसका चय
(हानि वृद्धि प्रमाण) = $\frac{१ - \frac{१}{१०}}{९} = \frac{१}{१०}$ है।

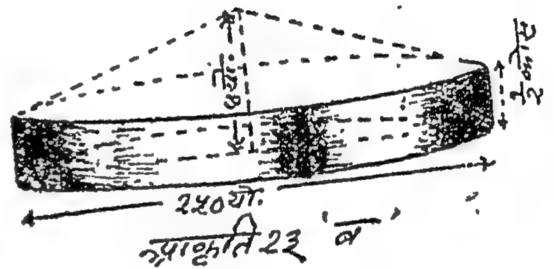
चतुर्थ पटल में आदि $\frac{१}{१०}$ है, पंचम पटल में $\frac{२}{१०}$, षष्ठम पटल में $\frac{३}{१०}$ सागरोपम, इत्यादि। शेष वर्णन मूल में स्पष्ट है। यहां विशेषता यह है कि आयु की वृद्धि विवक्षित (arbitrary) पटलों में समान्तर श्रेढि में है।

इसी प्रकार गाथा २१८, २३० में दिया गया वर्णन स्पष्ट है।

गा. ३, ३२— चैत्यवृक्षों के स्थल का विस्तार २५० योजन, तथा ऊंचाई मध्य में ४ योजन और अंत में अर्ध कोस प्रमाण है। इसे ग्रंथकर ने आकृति—२३ अ के रूप में प्रस्तुत किया है।

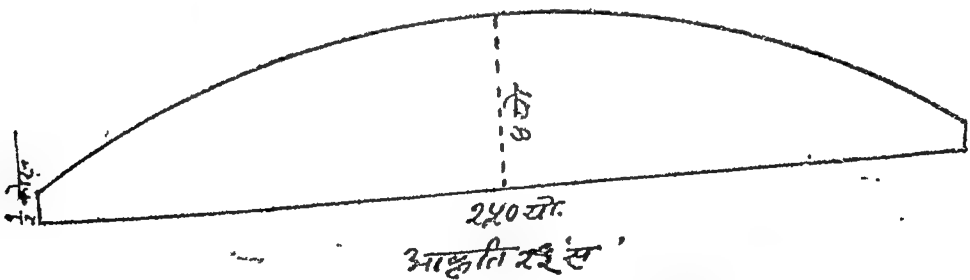


आकृति-२३ अ



आकृति २३ 'ब'

रा का अर्थ स्पष्ट नहीं है। १/२ का अर्थ १/२ कोस है। २५० विस्तार अर्थात् २५० व्यासवाला वृत्त त्रिविमा रूप लेने पर (Taken as a three dimensional figure) होता है। ४, मध्य में उत्सेध है। इस प्रकार यह चित्र (आकृति—२३ ब) नीचे एक स्तम्भ के रूप में है जिसकी ऊंचाई १/२ कोस है। उसके ऊपर ४ योजन ऊंचाईवाला शंकु स्थित है। आकृति—२३ (स) से वर्णित वृक्ष का स्वाभाविक रूप स्पष्ट हो जाता है।



आकृति २३ 'स'

इन्द्र के परिवार देवों में से ७ अनीक (सेनातुल्य देव) भी होते हैं। सात अनीकों में से प्रत्येक अनीक सात सात कक्षाओं से युक्त होती है उनमें से प्रथम कक्षा का प्रमाण अपने अपने सामानिक देवों के बराबर है। इसके पश्चात् अंतिम कक्षा तक उत्तरोत्तर, प्रथम कक्षा से दूना दूना प्रमाण होता गया है।

असुरकुमार की सात अनीकें होती हैं। नागकुमार की प्रथम अनीक में ६ भेद होते हैं, शेष द्वितीयादि अनीकें असुरकुमार की अनीकों के समान होती हैं।

यदि चमरेन्द्र की महिषानीक (भैंसों की सेना) की गणना की जाय तो कुल धन एक गुणोत्तर श्रेढि (geometrical progression) का योग होगा।

यहां गच्छ (number of terms) का प्रमाण ७ है,

मुख (first term) का प्रमाण ४००० है,

और गुणकार (common ratio) का प्रमाण २ है।

संकलित धन को प्राप्त करने के लिये सूत्र का उपयोग किया गया है[१]। यदि S_n को n पदों का योग माना जाय जब कि प्रथमपद a और गुणकार (Common Ratio) r होवें तब,

$$\{(r \cdot r \cdot r \cdot r \cdot r \cdot r \cdots \text{upto n terms}) - १\} \div (r - १) \times a = S_n$$

अथवा, $$S_n = \frac{(r^n - १)a}{(r - १)}$$

इस प्रकार ७ अनीकों के लिये संकलित धन ७ (S_n) आ जाता है।

वैरोचन आदि के अनीकों का संकलित धन इसी सूत्र द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

गा. ३, १११— चमरेन्द्र और वैरोचन इन दो इन्द्रों के नियम से १००० वर्षों के वीतने पर आहार होता है।

गा. ३, ११४— इनके पन्द्रह दिनों में उच्छ्वास होता है।

गा. ३, १४४— इनकी आयु का प्रमाण १ सागरोपम होता है[२]।

इसी प्रकार भूतानन्द इन्द्र का १२½ दिनों में आहार, १२½ मुहूर्त में उच्छ्वास होता है। भूतानन्द की आयु ३ पल्योपम, वेणु एवं वेणुधारी की २½ पल्योपम, पूर्ण एवं वशिष्ठ की आयु का प्रमाण २ पल्योपम है। शेष १२ इन्द्रों में से प्रत्येक की आयु १½ पल्योपम है।

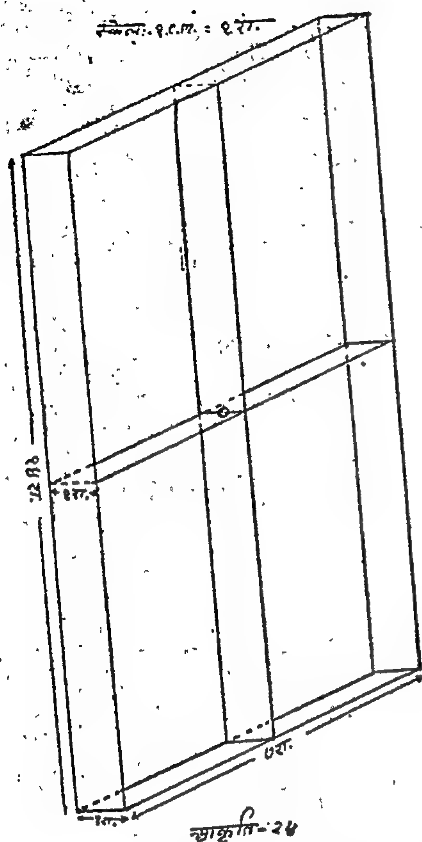
---

१ गुणोत्तर श्रेढि के संकलन के लिये जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी नियम दिये गये हैं। २।९; ४।२०४, २०५, २२२ आदि।

२ इसके सम्बन्ध में Cosmolgy Old & New में दिये गये Prologue का footnote यहाँ पर उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है।

"Judge, J. L. Jaini, in the "Jaina Hostel Magazine" Vol. VII, Number 3, page 10, has observed that there is a fixed proportion between the respiration, feeling of hunger and the age of the celestial beings. The food interval is 1,000 years and the respiration one fortnight for every Sagar of age. The proportion of food interval to respiration is thus, 1 to 24000. He has further observed that if a man lived like a god, we should have a legitimate feeling of hunger only once in the day. A Normal person has 18 respirations to the minute, or $18 \times 60 \times 24 = 25920$ in 24 hours, roughly 24,000".—G. R. JAIN, "Cosmology Old and New", P. XIII, Edn. 1942.

गा. ४, ६— त्रसनाली के बहुमध्य भाग में चित्रा पृथ्वी के ऊपर ४५००००० योजन विस्तार (diameter) वाला अतिगोल मनुष्यलोक है (आकृति—२४)। अतिगोल का अर्थ वेलनाकार हो सकता है, क्योंकि अगली गाथा में उसका बाहल्य १ लाख योजन दिया है। (A right circular cylinder of which base is of rad. 2250000 and height is 100000 yojans)।


आकृति-२४

गा. ४, ९— व्यास से परिधि निकालने के लिये π का मान $\sqrt{१०}$ लिया गया है और सूत्र दिया है: परिधि = $\sqrt{(\text{व्यास})^2 \times १०}$ अथवा circum. = $\sqrt{(\text{diam.})^२ . 10.}$ यहां व्यास को d, त्रिज्या को r और परिधि को c माना जाय तो

$$c = \sqrt{१०}.\ d = २\ r \sqrt{१०}$$

वृत्त का क्षेत्रफल निकालने के लिये सूत्र दिया गया है:—

परिधि $\times \frac{\text{व्यास}}{४}$ अर्थात् क्षेत्रफल = $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} . \frac{(\text{व्यास})^2}{४}$ = $\sqrt{१०}.$ (त्रिज्या)^2. अथवा, area = π. (radius)^2.

इसी प्रकार, लम्ब वर्तुल स्तम्भ का घनफल निकालने का सूत्र यह है:—

आधार का क्षेत्रफल × (उत्सेध या बाहल्य)

घनफल (volume) को मूल में 'विंदफल' लिखा गया है।

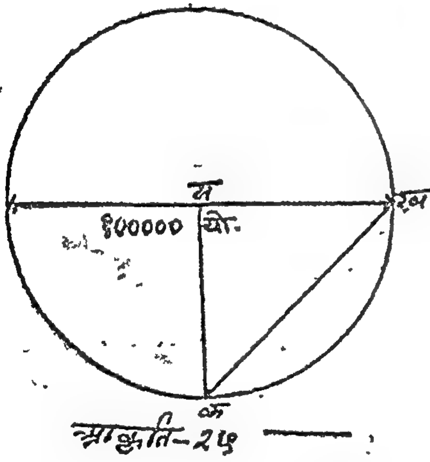
परिधि जैसी बड़ी संख्या १४२३०२४९ को अंकों में लिखने के साथ ही साथ शब्दों में इस तरह लिखा गया है : परिधि क्रमशः नौ, चार, दो, शून्य, तीन, दो, चार और एक, इन अंकों के प्रमाण हैं— यह दसाहों पद्धति का उपयोग है।

गा. ४, ५५-५६— सम्भवतः, यहां ग्रंथकार का आशय निम्न लिखित है:— जम्बूद्वीप का विष्कम्भ १००००० योजन है। उसकी परिधि निकालने के लिये π का मान $\sqrt{१०}$ लिया गया है। १० का वर्गमूल दशमलव के ५ अंक तक निकालने के पश्चात् छठवें अंक से ३ कोश की प्राप्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि छठवां अंक ७ होने से योजन को कोश में परिवर्तित करने पर २.८ की ही प्राप्ति होगी। और भी आगे गणना करने पर प्रतीत होता है कि १० के वर्गमूल को आगे के कई अंकों तक निकालने के पश्चात्, क्रमशः धनुष, किष्कू, हाथ, आदि में परिधि की गणना की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ३ उवसन्नासन्न प्रमाण के पश्चात् $\frac{२३२१३}{१०५४०९}$ प्रमाण उवसन्नासन्न बच रहता है। उवसन्नासन्न नामक स्कंध में अनन्तानन्त परमाणुओं की कल्पना के आधार पर, ग्रंथकार ने उक्त भिन्नीय प्रमाण में परमाणु की संख्या को, दृष्टिवाद अंग से $\frac{२३२१३}{१०५४०९}$. ख ख द्वारा निरूपित करना चाहा है। परन्तु, दूरी का प्रमाण निकालने के लिये उवसन्नासन्न के पश्चात् अथवा पहिले ही, प्रदेश द्वारा निरूपण होना आवश्यक है। सूच्यंगुल में प्रदेशों की संख्या के प्रमाण के आधार पर १ उवसन्नासन्न द्वारा व्याप्त आकाश में अनन्तानन्त संख्या प्रमाण परमाणु भले ही एकावगाही होकर संरचकरूप स्थित हों, पर उतने

व्याप्त आकाश का प्रमाण अनन्तानन्त प्रदेश कदापि नहीं हो सकता। इस प्रकार, इस सीमा तक किया गया यह प्ररूपण लाभप्रद न हो, पर उनके द्वारा खोजे गये पथ का प्रदर्शन करता है। इसके पूर्व अनन्तानन्त आकाश का निरूपण ग्रंथकार ने ख ख ख द्वारा किया था। यहां परमाणुओं की अनन्तानन्त संख्या बतलाने के लिये $\frac{२३२१३}{१०५४०९}$ द्वारा निरूपण किया गया है और इसे "खखपदस्संखस्स पुदं" का गुणकार बतलाया है ताकि परिभाषानुसार अंतिम महत्ता प्रदर्शित की जा सके। यह कहा जा सकता है कि ख[1] अनंत का प्रतीक था और उसमें गुणनभाग की कल्पना उसी तरह सम्भव थी जैसी कि परिमित संख्याओं (finite quantities) में मानी जाती है।

गा. ४, ५९-६४— इसी प्रकार, क्षेत्रफल की अंत्य महत्ता को प्रदर्शित करने के लिये, $\frac{४८४५५}{१०५४०९}$ उवसन्नासन्न में परमाणुओं की संख्या ग्रंथकार ने $\frac{४८४५५}{१०५४०९}$ ख ख द्वारा निरूपित की है[2]। ऐसा प्रतीत होता है मानों पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊर्ध्व अधः, इन तीन दिशाओं में अंत न होनेवाली श्रेणियों द्वारा संरचित अनन्त आकाश की कल्पना से ख ख ख की स्थापना की गई हो।

गा. ४, ७०— यहां आकृति-२५ देखिये।



आकृति-२५

यदि विष्कम्भ (व्यास) को d मानें, परिधि को c मानें और त्रिज्या को r मानें तो (द्वीप की चतुर्थांश परिधि रूप धनुष की जीवा $)^२ = \left(\frac{d}{२}\right)^२ \times २$

अथवा, (chord of a quadrant arc $)^२$

$$= \left(\frac{d}{२}\right)^२ \times २ = २r^२$$

पायथेगोरस के साध्यानुसार भी इसे प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि $(म\ क)^२ + (म\ क)^२ = (क\ ख)^२$ होता है।

ग्रंथकार ने फिर इस चतुर्थांश परिधि तथा उसकी जीवा में सम्बन्ध बतलाया है। यथाः—

---

१ सम्भवतः 'ख ख ख' अनंतानंत आकाश के प्रतीक के लिये ख शब्द से लिया गया है जहां ख का अर्थ आकाश होता है। ∞ या आधुनिक अनंत का प्रतीक मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि के अनुसार ख से लिया गया प्रतीत होता है।

२ वास्तव में आयाम सम्बन्धी एक दिश निरूपण के लिये 'ख' पद लेना आवश्यक है, तथा क्षेत्र सम्बन्धी द्विदिश निरूपण के लिये 'ख ख' पद लेना आवश्यक है। इसी प्रकार का प्ररूपण कोस, वर्ग कोस आदि में होना आवश्यक था, जिसे ग्रंथकार ने संक्षिप्त निरूपण के कारण न किया हो। उवसन्नासन्न के अंतिम परिणाम को लेकर, हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उन्होंने १० का वर्गमूल दशमलव के किस अंक तक निकाला था, पर अति क्लिष्ट होने से, तथा π का सूक्ष्म निरूपण न होने से इस दिशा में अब प्रयत्न करना लाभप्रद नहीं है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ११२३, में आनुपूर्वी के अनुसार (११८; ११९८), π का प्रमाण केवल हाथ प्रमाण तक दिया गया है, जो कुछ भिन्न है।

$(\text{चतुर्थांश परिधि की जीवा})^2 \times \frac{५}{४} = (\text{चतुर्थांश परिधि})^2$

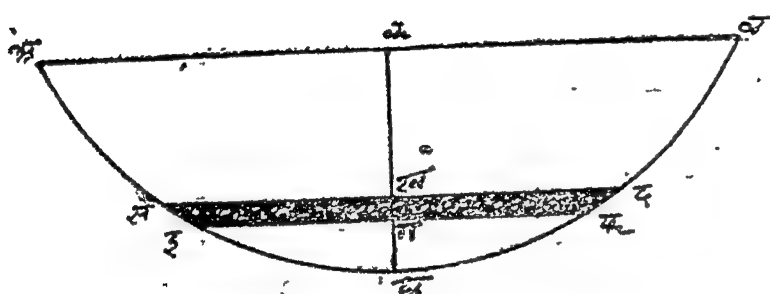
अथवा, यदि जीवा का ऊपर दिया गया मान लेकर साधन करें तो (चतुर्थांश परिधि)²

$$= \left[२ \times \frac{d^2}{४}\right] \times \frac{५}{४} = \frac{५d^2}{८} = \frac{१० r^2}{४}$$

अथवा, चतुर्थांश परिधि $= \sqrt{१०} \cdot \frac{r}{२}$

आजकल, इस (Quadrant arc of a circle) को $\frac{\pi r}{२}$ लिखा जाता है जहां π का मान ३·१४१५९··· है।

(गा. ४, ९४–२६९)



आकृति–२७ अ

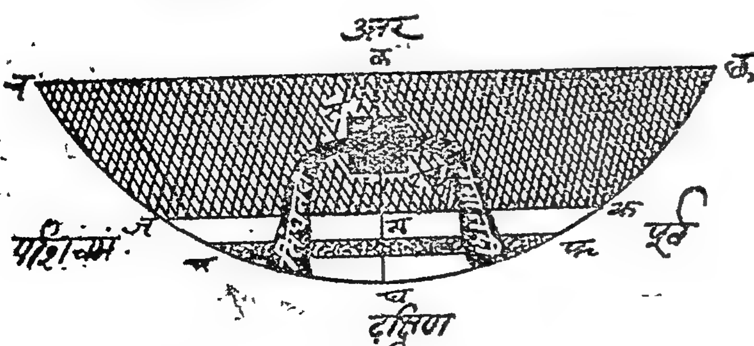
भरत क्षेत्र : (आकृति–२७ अ देखिये।) यहां विस्तार क घ = ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है।
चित्र में स द इ फ विजयार्द्ध-पर्वत है।
ग घ = २३८$\frac{३}{१९}$ योजन है।
दक्षिण विजयार्द्ध की जीवा इ फ = ९७४८$\frac{१२}{१९}$ योजन है, तथा विजयार्द्ध की जीवा स द = १०७२०$\frac{११}{१९}$ योजन तथा धनुष स इ घ फ द = १०७४३$\frac{१५}{१९}$ योजन है। चूलिका $= \left(\frac{\text{स द} - \text{इ फ}}{२}\right) =$ ४८५$\frac{३७}{३८}$ योजन है।

क्षेत्र और पर्वत की पार्श्वभुजा = स इ = द फ = ४८८$\frac{३३}{३८}$ योजन है।

भरत क्षेत्र के उत्तर भाग की जीवा का प्रमाण = अ ब = १४४७१$\frac{५}{१९}$ योजन है तथा धनुपृष्ठ अ घ ब = १४५२८$\frac{११}{१९}$ योजन है।

चूलिका $= \frac{\text{अ ब} - \text{स द}}{२} =$ १८७५$\frac{१३}{३८}$ योजन है। इत्यादि।

साथ ही पार्श्वभुजा अ स = ब द = १८९२$\frac{१५}{३८}$ योजन है।



आकृति २७ 'ब'

यहां चित्र मान प्रमाण पर नहीं बनाये जा सकते हैं क्योंकि १००००० योजन विस्तार की तुलना में ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन के प्ररूपण से चित्र स्पष्ट न हो सकेगा। यहां (अकृति–२७ ब) अवघा ज घ झ भरत क्षेत्र है और उससे दुगुने विस्तार 'क ख' वाला च छ झ ज हिमवान् पर्वत है।

स सरोवर ५०० योजन पूर्व पश्चिम में तथा १००० योजन उत्तर दक्षिण में विस्तृत है। गंगा, प्रथम, पूर्व की ओर ५०० योजन बहती है और तब दक्षिण की ओर मुड़कर सीधी ५२३$\frac{३}{१९}$ योजन हिमवान्

पर्वत के अंत तक जाकर, विजयार्द्ध भूमि प्रदेश में मुड़ती है। वहां वह पूर्व पश्चिम से आई हुई उन्मग्ना और निमग्ना से मिलती है। पुन: वह विजयार्द्ध को पार कर दक्षिण भरत क्षेत्र में ११९$\frac{3}{8}$ योजन तक जाकर, पूर्व की ओर मुड़कर, मागध तीर्थ के पास समुद्र में प्रवेश करती है। इसी प्रकार सम्मितीय गमन सिंधु नदी का है।

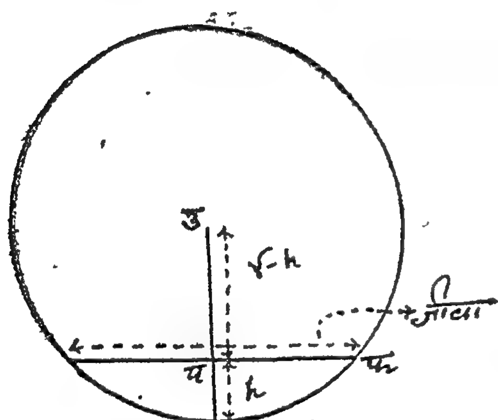
गा. ४, १८०— इस गाथा में ग्रंथकार ने उस दशा में जीवा निकालने के लिये नियम दिया है जब कि बाण और विष्कम्भ दिया गया हो।

बाण (height of the segment) को यहां h द्वारा, विस्तार (diameter) को d द्वारा प्ररूपित कर जीवा (chord) का मान निम्न लिखित सूत्र रूप में दिया जा सकता है।

$$\text{जीवा}[1] = \sqrt{४\left[\left(\frac{d}{२}\right)^२ - \left(\frac{d}{२} - h\right)^२\right]}$$

$$= \sqrt{४\left[(r)^२ - (r-h)^२\right]}$$

यहां भी पायथेगोरस के नाम से प्रसिद्ध साध्यका उपयोग है।



आकृति २६

यहां आकृति–२६ से स्पष्ट है कि—

$$(\text{उफ})^२ = (\text{उप})^२ + (\text{पफ})^२$$

$$\therefore (\text{पफ})^२ = (\text{उफ})^२ - (\text{उप})^२$$

$$\therefore २\,\text{पफ} = \sqrt{४\left[(\text{उफ})^२ - (\text{उप})^२\right]}$$

गा. ४, १८१— इस गाथा में ग्रंथकार ने उस दशा में धनुष का प्रमाण निकालने के लिये सूत्र दिया है जब कि बाण और विष्कम्भ का प्रमाण दिया गया हो।

धनुष (Length of the arc bounding the segment) का प्रमाण निम्न लिखित रूप में दिया जा सकता है :—

---

१ वृत्त की जीवा प्राप्त करने के लिये, बेबीलोनिया निवासी भी प्रायः इसी रूप के सूत्र का उपयोग करते थे जिसके विषय में कूलिज का अभिमत यह है,

"The Pythagorean theorem appears even more clearly in Neugebauer and Struve's translation of another of the cuneiform texts, which we may date somewhere around 2600 B. C."—Coolidge, A History of Geometrical Methods, p. 7, Edn. 1940.

सूत्र प्रतीकरूपेण यह है :—

$$\text{जीवा} = \sqrt{\{d^२ - (d - २h)^२\}}$$

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में, जीवा $= \sqrt{४.\ \text{बाण}\ (\text{विष्कम्भ} - \text{बाण})}$ रूप में दिया गया है। २।२३; ६।९ आदि। इसी प्रकार धनुष $= \sqrt{६\ (\text{बाण})^२ + (\text{जीवा})^२}$ प्ररूपित है। २।२४, २९; ६।१०.

$$\text{धनुष} = \sqrt{२\left[(d+h)^२ - (d)^२\right]}$$

यह देखने के लिये कि यह कहां तक शुद्ध है, हम अर्द्ध वृत्त का धनुष प्रमाण निकालने के लिये $h = r$ रखते हैं।

$$\text{इस दशा में धनुष} = \sqrt{२\{[d+r]^२ - (d)^२\}}$$

$$= \sqrt{२[९r^२ - ४r^२]} \qquad = \sqrt{१०r^२}$$

$= \sqrt{१०}\, r$ प्राप्त होता है, जिसे आजकल के प्रतीकों में πr लिखा जावेगा। यह सूत्र अपने ढंग का एक है[१]। उन गणितज्ञों ने π का मान $\sqrt{१०}$ मानकर इस सूत्र को जन्म दिया। अनु कल कलन से यदि इसका मान ठीक निकालें तो इस सूत्र को साधित करना पड़ेगा :—

$$\text{Total Arc} = २\int_{o}^{\sqrt{r^२ - (r-h)^२}} \sqrt{१ + \left(\frac{x^२}{r^२ - x^२}\right)}\, dx.$$

अथवा, बाण के आधार पर, केन्द्र पर आपतित कोण प्राप्त कर धनुष का प्रमाण निकाला जा सकता है।

गा. ४, १८२— जब जीवा (chord), और विस्तार (diameter) दिया गया हो तो बाण (Height of the segment) निकालने के लिये यह सूत्र दिया है[२]:—

$$h = \frac{d}{२} - \left[\frac{d^२}{४} - \frac{(\text{chord})^२}{४}\right]^{\frac{१}{२}}$$

$$= r - \left[r^२ - \left(\frac{\text{chord}}{२}\right)^२\right]^{\frac{१}{२}}$$

---

१ हालैण्ड के प्रसिद्ध गणितज्ञ और भौतिकशास्त्री हाइजिन्स (१६२९–१६९५) ने धनुष और और जीवा से सम्बन्धित निम्न लिखित सूत्र दिये हैं।

(१) $\text{Arc} = \frac{8[\text{Half the Arc}] - \text{Chord of the whole Arc}}{3}$ nearly

(२) $\text{Arc} = \frac{\text{Chord} + 256(\text{quarter the arc}) - 40(\text{Half the arc})}{45}$ nearly

इन सूत्रों में Chord का मान $\sqrt{४[r^२ - (r-h)^२]}$ रखा जा सकता है तथा ग्रन्थकार द्वारा दिये गये सूत्र से तुलना की जा सकती है।

२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति २।२५, ६।११.

स्पष्ट है, कि यह सूत्र, निम्न लिखित समीकरण को साधित करने पर प्राप्त किया गया होगा:—
$४h^२ + (\text{जीवा})^२ - ८r \cdot h = o,$

जहां $h = r \pm \left[r^२ - \left(\frac{\text{जीवा}}{२}\right)^२\right]^{\frac{१}{२}}$ प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सूत्र में ± की जगह केवल – (ऋण) ग्रहण करना उल्लेखनीय है। प्राप्त होनेवाले दो प्रमाणों में से छोटी अवधा के लिये प्रमाण प्राप्त करना उनके लिये इष्ट था।

पुनः, गाथा, १८० और १८१ में दिये गये सूत्रों में से r निरसित (eliminate) करने पर धनुष, जीवा और बाण में सम्बन्ध प्राप्त होता है :—

$$(\text{धनुष})^2 = 6h^2 + (\text{जीवा})^2$$

तथा, $4h^2 + 4\left(\frac{\text{जीवा}}{2}\right)^2$ को ४ (अर्द्ध धनुष की जीवा)^2 लिखने पर हमें निम्न लिखित सम्बन्ध प्राप्त होता है :—

$$(\text{धनुष})^2 = 2h^2 + 4(\text{अर्द्ध धनुष की जीवा})^2$$

इसी प्रकार अन्य सम्बन्ध भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

गा. ४, २७७-२८३— इन गाथाओं में निश्चय काल का स्वरूप बतलाया गया है।

गा. ४, २८५-८६— व्यवहार काल की इकाई 'समय' मानी गई है। इसे अविभागी काल भी माना है जो उतने काल के बराबर होता है, जितने काल में पुद्गल का एक परमाणु आकाश के दो उत्तरोत्तर स्थित प्रदेशों के अन्तराल को तय करता है[१]।

असंख्यात समयों की एक आवलि और संख्यात आवलियों का एक उच्छवास होता है— इसे ग्रंथकार ने निम्न लिखित रूप में अंकसंदृष्टियों द्वारा प्रदर्शित किया है $\frac{१}{२}\big|\frac{१}{६}\big|\,१$; हो सकता है कि असंख्यात का निरूपण २ तथा संख्यात का ६ के द्वारा किया हो। आगे,

७ उच्छ्वास = १ स्तोक; ७ स्तोक = १ लव, ३८½ लव = १ नाली, २ नाली = १ मुहूर्त, ३० मुहूर्त = १ दिन, १५ दिन = १ पक्ष, २ पक्ष = १ मास, २ मास = १ ऋतु, ३ ऋतु = १ अयन, २ अयन = १ वर्ष, और ५ वर्ष = १ युग होता है। इस प्रकार, आगे बढ़ते हुए, एक बड़ा व्यवहार

---

१ यहाँ स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि किस गति से परमाणु गमन करता होगा, क्योंकि मंदतम गति कहना भी आपेक्षिक निरूपण है प्रकेवल नहीं। वीरसेन के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है, कि परमाणु ऐसे एक समय में १४ राजु प्रमाण दूरी भी अतिक्रमण कर सकता है। पर, पुनः समय अपरिभाषित ही रहता है, क्योंकि एक समय में विभिन्न दूरियों का अतिक्रमण गति को स्पष्ट कर देता है, पर स्वयं अस्पष्ट रहता है। यदि समय को अविभागी मानते हैं तो एक समय में १४ राजु अतिक्रमण होने से, ७ राजु अतिक्रमण कब हुआ होगा— इस तर्क का स्पष्टीकरण नहीं होता, क्योंकि ½ समय, "अविभाज्य" कल्पना के आधार पर सम्भव नहीं है। इस प्रकार यह कथन एक उपधारणा (postulate) बन जाता है, जहां तर्क और विवाद को स्थान नहीं है। डाक्टर आइंसटीन ने भी प्रकाश की अचल गति के सिद्धान्त को उपधारित कर, माइकेलसन मारले प्रयोग आदि को समझाया है, जहां यदि प्रकाश की लहर पर ही बैठकर, प्रकाश के समान गतिमान होकर कोई अवलोकन कर्त्ता गमन करे तो वह यही अनुभव करेगा कि प्रकाश उसके आगे वही गति से जा रहा है, जैसा कि उसने गतिहीन अवस्था में अनुभव किया था। ऐसे लोक सत्य (universal truth) का अनुभव छद्मस्थ नहीं कर सकते। पर, गणितीय अंतर्दृष्टि से यह सम्भव है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो एलिया के ज़ीनो ने अंतिम दो तर्कों द्वारा इसी प्रश्न का समाधान करने का प्रयास किया हो। ज़ीनो (४९५ ? ४३५ ? ईस्वी पूर्व) के चार तर्कों का सर्वमान्य समाधान गत प्रायः २३०० वर्षों से नहीं हो सका है। विशेष विवरण के लिये "Greek Mathematics by Heath, pp. 271-283, Edn. 1921". द्रष्टव्य है।

काल प्राप्त किया गया है। यह अचलात्म है जो $(८४)^{३१} \times (१०)^{९०}$ वर्षों के समान है। मूल में दो बीच के नाम नहीं दिये गये हैं जिससे $(८४)^{२९} \times (१०)^{८०}$ वर्ष ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह संख्यात काल के वर्षों की गणना द्वारा, उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त हो जाने तक ले जाने का संकेत है। अगले पृष्ठ पर उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त करने की रीति दी गई है।

गा. ४, ३१०-१२—यहां यह बात उल्लेखनीय है कि जैनाचार्यों ने प्राकृत संख्याओं एवं राशि (set) सिद्धान्त के द्वारा असंख्यात और अनन्त की अवधारणाओं का दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। असंख्यात और अनन्त की प्राप्ति प्राकृत संख्याओं पर क्रमबद्ध क्रियाओं द्वारा तथा असंख्यात एवं अनन्त गणात्मक संख्यावाली राशियों की सहायता से की है। यह बात भी सूचित कर दी गई है कि 'संख्यात' चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रुतकेवली का विषय है (देखिये पृ० १८०), 'असंख्यात' अवधिज्ञानी का विषय है (पृ० १८२), और 'अनन्त' केवली का विषय है (पृ० १८३), अर्थात् इन्हीं निर्दिष्ट व्यक्तियों को इनका दर्शन (perception) हो सकता है। जैसे, असंख्यात प्रदेशों युक्त सूच्यंगुल की सरल रेखा का दर्शन हमारे लिये सहज है, उसी तरह 'अनन्त रूप में अवस्थित' ज्ञान की सामग्रियां केवली के लिये अनन्त रूप में दृष्टिगोचर होती होंगी। इस पर सभी एक मत न हों, पर ज्ञान के विकास के इतने उच्च श्रेणियुक्त आदर्श की कल्पना करना भी हानिप्रद नहीं है।

अनन्त (infinite)[१] के कई प्रकार[२] जैनाचार्यों ने स्थापित किये हैं : जैसे, (१) नामानन्त (Infinite in Name), स्थापनानन्त (A ttributed Infinite), (३) द्रव्यानन्त (Infinity of substances), (४) गणनानन्त[३] (Infinite in Mathematics), (५)

१ "In history of Western philosophy the term. 'Infinite' τo απειρov is met with, apparently for the first time, in the teaching of Anaximander (6th cent. B.C.). He used it to describe what he conceived to be the primal matter, 'principle', or origin of all things."—Encyclopaedia Brittannica, Vol. 12, p. 340, Edn. 1929.

२ "The chief types of infinitude which come to the attention of the mathematician and philosopher are cardinal infinitude, ordinal infinitude, the infinity of measurement, the ∞ of algebra, the infinite regions of geometry and the infinite of metaphysics".—The Encylopedia Americana, vol. 15, p. 120. Edn. 1944.

३ आगे, गणितीय अनन्त धारणा को निम्न लिखित रूप से इस तरह प्रदर्शित किया है, "If the law of variation of a magnitude is such that x becomes and remains greater than any preassigned magnitude however large, then x is said to become; infinite, and this conception of infinity is denoted by ∞ " इसी के सम्बन्ध में जेम्स पायरपांट (James Pierpont) लिखते हैं, "Historically the first number to be considered were the positive integers 1, 2, 3, 4, 5, 6...we shall denote this system of numbers by ω. This system is ordered, infinite......The symbols +∞, —∞ are not numbers; ie, they do not lie in ω. They are introduced to express shortly certain modes of variation which occur constantly in our reasonings." The Theory of Functions of Real Variables, Vol. 1, p. 86.

एक प्रसिद्ध गणितज्ञ का अनन्त के सम्बन्ध में विचार इस प्रकार उल्लेखित है :—"An infinite number," says Bosanquet, "would be a number which is no particular number, for every particular is finite. It follows from this that infinite number is unreal." The Encyclopedia Americana, Vol. 15, p. 121. पर जैनाचार्यों द्वारा दी गई अनन्त की

(आगे के पृष्ठ पर देखिये)

अप्रदेशिकानन्त (Dimensionless Infintesimal), (६) एकानन्त (One directional Infinity), (७) उभयानन्त (Two directional Infinity), (८) विस्तारानन्त (Superficial Infinity), (९) सर्वानन्त (Spatial Infinity), (१०) भावनानन्त (Infinity of Knowledge), (११) शाश्वतानन्त (Everlasting).

आगे, गणनानन्त का विशद विवेचन दिया गया है।

सबसे पहिले स्थूल रूप से संख्या को जैनाचार्यों ने तीन भागों में विभाजित किया है; (१) संख्यात Finite or numerable, (२) असंख्यात Innumerable, और (३) अनंत Infinite.

यहां हम, सुविधा के लिये, वैज्ञानिक ढंग से प्रतीकों द्वारा इन विभाजनों का निरूपण करेंगे। संख्यात को S, असंख्यात को A, तथा अनन्त को I के द्वारा निरूपित करेंगे। संख्यात को तीन भागों में विभाजित किया गया है : जघन्य संख्यात, मध्यम संख्यात और उत्कृष्ट संख्यात जिन्हें हम क्रमशः Sj, Sm, और Su लिखेंगे। असंख्यात को पहिले परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात में विभाजित कर, पुनः प्रत्येक को जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट में विभाजित किया गया है, जिन्हें हम क्रमशः Ap, Ay, Aa और Apj, Apm, Apu; Ayj, Aym, Ayu और Aaj, Aam, Aau द्वारा निरूपित करेंगे। इसी प्रकार, अनन्त का पहिले परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त में विभाजन के पश्चात् इनमें से प्रत्येक को जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट श्रेणी में रखा है। हम इन्हें क्रमशः Ip, Iy, Ii और Ipj, Ipm, Ipu; Iyj, Iym, Iyu तथा Iij, Iim, Iiu द्वारा निरूपित करेंगे।

उत्कृष्ट संख्यात (Su) को प्राप्त करने के लिये निम्न लिखित क्रिया का वर्णन है:— जम्बूद्वीप के समान लम्ब वर्तुल रम्भाकार १ लाख योजन विष्कम्भ (Diameter) वाले तथा १ हजार योजन उत्सेध (height) वाले चार कुंड स्थापित करते हैं। ये क्रमशः शलाका कुंड, प्रतिशलाका कुंड, महाशलाका कुंड और अनवस्थित कुंड कहलाते हैं।

अन्तिम अनवस्थित कुंड को यदि दो सरसों से भरा जावे तो इस राशि प्रमाण जघन्य संख्यात होता है। Sj=२। यहां यह उल्लेखनीय है कि १ की गणना, संख्यात में नहीं है। यह प्रथम विकल्प है। २ से ऊपर की वे सब संख्याएं जो उत्कृष्ट संख्यात तक प्राप्त नहीं होतीं, मध्यम संख्यात [Sm > २ पर Sm < Su] के विकल्प हैं। इस अनवस्थित कुंड को पूरा भरकर एक एक सरसों उत्तरोत्तर द्वीपों और समुद्रों में देता चला जाय। (त्रिलोकसार [गा. २८] में कुंड इस प्रकार भरने को कहा गया है कि सर्वोच्च सतह पर एक सरसों समावे जिससे रम्भ के ऊपर एक शंकु भी स्थित हो जाती है और इस तरह कुल समाये हुए सरसों के बीजों की गणना १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६$\frac{४}{११}$ प्राप्त होती है। यहां यह नहीं ज्ञात है कि शंकु की ऊँचाई कितनी और क्यों ली गई। केवल रम्भ में (१९७९१२०९२९९९६८)×(१०)^{३१} सरसों समाते हैं।) चूँकि सरसों

परिभाषा इन परिभाषाओं और अवधारणाओं से भिन्न है। फिर भी, वह अवधारणा गेलिलियो (१५६४–१६४२) और जार्ज कैंटर (१८४५–१९१८) के "Continuum of indivisibles" तथा "Theory of real numbres" से किस प्रकार सम्बन्धित है यह निम्न लिखित से कुछ स्पष्ट हो जावेगा। अनन्त राशियों के सम्बन्ध में गेलिलियो के लेख का अवतरण श्री बेल द्वारा रचित "Development of mathematics" के पृष्ठ २७३ से उद्धृत किया जाता है—

"Salv.—I see no other decision that it may admit, but to say, that all Numbers are infinite; Squares are infinite; and that neither is the multitude of squares less than all Numbers, nor this greater than that : and in conclusion, that the Attributes

(आगे के पृष्ठ पर देखिये)

की संख्या युग्म (Even Number) है, इसलिये अन्तिम सरसों उपर्युक्त संख्या के द्वीप, समुद्रों का अतिक्रमण कर समुद्र में गिरेगा। जिस समुद्र में गिरे उसके विष्कम्भ के बराबर फिर से बेलनाकार १००० योजन गहरा कुंड खोदकर उसे सरसों से पूर्ण भरे और इसी समय ऊपर लिखी हुई क्रिया की समाप्ति को दर्शाने के लिये शलाका कुंड में एक सरसों डाले। इस प्रकार की क्रिया फिर से की जाय ताकि यह दूसरा कुंड भी खाली हो जाय; तभी शलाका कुंड में दूसरा सरसों डाले और जिस द्वीप या समुद्र में उपर्युक्त कुंड का अन्तिम सरसों पड़े उसी के विष्कम्भ का और १००० योजन गहराई का बेलनाकार कुंड खोदकर फिर उसे सरसों से भरकर पुनः खाली कर शलाका कुंड में तीसरा सरसों डाले।

यह क्रिया करते करते जब शलाका कुंड भी भर जाये तब प्रतिशलाका कुंड भरना आरम्भ करे। जब वह भी भर जाये तब एक एक सरसों उसी प्रकार महाशलाका कुंड में भरना आरम्भ करे। उसके पूरा भरने पर संख्यात द्वीप समुद्रों का अतिक्रमण कर अन्तिम सरसों जिस द्वीप या समुद्र में पड़े उसी के विस्तार का और १००० योजन गहराई का कुंड खोदकर उसे सरसों से पूर्ण भर दे। जितने सरसों इस गड्ढे में समावेंगे वह जघन्य परीतासंख्यात Apj है और इसमें से १ घटा देने पर उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त होता है।

$$Su = Apj - १$$

इस प्रकार $Su > Sm > Sj > १$

और $Apj > Su$ तथा परिभाषानुसार

$Apu > Apm > Apj$ है।

Apu अर्थात् उत्कृष्ट परीत असंख्यात प्राप्त करने के लिये इसी का विरलन करके, एक एक रूप के प्रति वही संख्या देकर परस्पर गुणन करने से जघन्य युक्तासंख्यात प्राप्त होता है, जो उत्कृष्ट परीत असंख्यात से केवल १ अधिक होता है :—

$$[Apj]^{Apj} = Ayj = Apu + १$$

इसके पश्चात् परिभाषा के अनुसार,

$Ayu > Aym > Ayj > Apu$ है।

उत्कृष्ट युक्त असंख्यात प्राप्त करने के लिये, जघन्य युक्त असंख्यात का वर्ग करने से जो जघन्य असंख्यात प्राप्त होता है, उसमें से १ घटाना पड़ता है:—

$$[Ayj]^{२} = Aaj = Ayu + १$$

तथा $Aau > Aam > Aaj > Ayu$ है।

Aau का मान Ipj से १ कम है। इस Ipj (जघन्य परीत अनंत) को प्राप्त करने के लिये निम्न लिखित क्रिया है—

---

of Equality, Majority, and Minority have no place in Infinities, but only in-terminate quantities......". यहां Numbers का आशय केवल प्राकृत संख्याओं १, २, ३...इत्यादि से है।

अब, इसी पुस्तक में पृष्ठ २७५ पर अंकित यह अवतरण देखिये—

"Resolving Simplicius' doubt about the conceit of 'assigning an Infinite bigger than an Infinite,' Cantor proceeded to describe any desired number of such bigger Infinities. First, there is said to be no difficulty in imagining an orderd infinite class; the natural numbers 1. 2, 3,......themselves suffice. Beyond all these, in ordinal numeration, lies ω; beyond ω lies $\omega+1$; then $\omega+2$, and so on, until $\omega 2$ is reached, when $\omega 2+1$, $\omega 2+2$,......are attained; beyond all these lies ω^2, and

आरम्भ में Aaj की दो प्रतिराशियां स्थापित करते हैं, इनमें से एक Aaj राशि को शलाका प्रमाण स्थापित करते हैं। दूसरी Aaj राशि को विरलित कर उतनी ही राशि पुंज को १, १, रूप में स्थापित कर, परस्पर में गुणन कर b राशि उत्पन्न करते हैं, और Aaj शलाका प्रमाण राशि में से १ घटा देते हैं। अब b राशि का विरलन कर १, १, रूप को b राशि ही देकर परस्पर गुणन करके c राशि उत्पन्न करते हैं और अब Aaj शलाका प्रमाण राशि में से १ और घटा देते हैं। यह क्रिया तब तक करते जाते हैं, जब तक कि शलाका प्रमाण राशि Aaj समाप्त नहीं हो जाती। प्रतीक रूप से;

$[Aaj]^{Aaj} = b \; ; [b]^{b} = c \; ; [c]^{c} = d \; ; [d]^{d} = e;$

इसी प्रकार करते जाने के पश्चात् जब Aaj बार यह क्रिया हो चुके तब मान लो j राशि उत्पन्न होती है।

फिर से, j राशि की दो प्रति राशियां करके, एक को शलाका रूप स्थापित कर और दूसरी को विरलित कर, एक, एक अंक के प्रति j ही स्थापित कर परस्पर गुणन करने से जो k राशि उत्पन्न हो तो शलाका प्रमाण राशि j में से एक घटा देते हैं। फिर इस k को लेकर उसी प्रकार विरलित कर, १, १ रूप के प्रति k, k, स्थापित करने पर जो l राशि उत्पन्न हो तो शलाका प्रमाण स्थापित राशि j में से १ और घटा देते हैं। इस प्रकार यह क्रिया तब तक करते जाते हैं, जब तक कि j शलाका राशि समाप्त नहीं हो जाती। प्रतीक रूप से;

$[j]^{j} = k \; ; [k]^{k} = l \; ; [l]^{l} = m, \ldots$ इत्यादि जब तक करते जाते हैं, जब तक कि j बार यह क्रिया न हो जावे, और अंत में मान लो P राशि उत्पन्न होती है।

अब फिर से P राशि की दो प्रतिराशियां करके, एक को शलाकारूप स्थापित कर और दूसरी को विरलित कर, एक, एक अंक के प्रति P ही स्थापित कर परस्पर गुणन करने से जो Q राशि उत्पन्न

---

beyond this ω^2+1, and so on, it is said, indefinitely and for ever. If the first step— after which all the rest seems to follow of itself— offers any difficulty, we have to grasp the scheme 1, 3, 5,...' 2n+1,......12, in which, after all the odd natural numbers have been counted off, 2, which is not one of them, is imagined as the next in order. One purpose of Cantor in constructing these transfinite ordinals. ω, $\omega+1$......was to provide a means for the counting of well ordered classes. a class being well-ordered if its members are ordered and each has a unique 'Successor'."

इसके पश्चात् दूसरे अवतरण में इसी पृष्ठ पर उल्लिखित है—

"For cardinal numbers also Cantor described 'an Infinite bigger than an Infinite' to confound the Simpliciuses....... He proved (1874) that the class of all algebraic numbers is denumerable, and gave (1878) a rule for constructing an infinite non-denumerable class of real numbers. Were we to make a list of specta cularly unexpected discoveries in mathmatics, there two might head our list."

परन्तु, जहां जैनाचार्यों ने वरिमा में स्थित प्रदेश बिन्दुओं की संख्या समतल या सरल रेखा पर, स्थित प्रदेश बिन्दुओं की संख्या से भिन्न मानी है, वहां जार्ज कैंटर ने असद्भासी-सा दिखनेवाला प्रतिपादन किया है जो इसी पुस्तक में पृष्ठ २७७ पर इस प्रकार अंकित है— "Cantor proved that in each instance all the points in the whole space can be put in one-one correspondence with

हो, तो शलाका प्रमाण राशि P में से एक घटा देते हैं। फिर Q को लेकर उसी प्रकार विरलित कर, १, १ रूप के प्रति Q, Q स्थापित करने पर जो R राशि उत्पन्न होती है, तो शलाका प्रमाण स्थापित राशि P में से १ और घटा देते हैं। इस प्रकार यह क्रिया तब तक करते जाते हैं, जब तक कि शलाका राशि P समाप्त नहीं हो जाती। प्रतीक रूप से;

$[P]^{P} = Q,\ [Q]^{Q} = R$ इत्यादि

और जब यह क्रिया P बार की जा चुके तब अंत में उत्पन्न हुई राशि मान लो T है। ऐसा प्रतीत होता है कि वीरसेनाचार्य ने D को Aaj की तीसरी बार वर्गित सम्वर्गित राशि कहा है। हम, इस तीसरी बार वर्गित सम्वर्गित प्रक्रिया के लिये $\overline{\ \ }|^{3}$ संकेतना का उपयोग करेंगे।

---

all the points on any straight-line segment. In a plane, for example, there are precisely as many points on a segment an inch long as there are in the entire plane. (?) This, of course, is contrary to common sense; but common sense exists chiefly in order that reason may have its simpliciuses to contradict & enlighten".

और, अभिनयावधि में ही प्रसाधित वह प्रश्न जिसने कैंटर को भी स्तब्ध कर दिया था, यह था, "Another problem which baffled Cantor was to prove or disprove that there exists a class whose cardinal number exceeds that of the class of natural numbers and is exceeded by that of the class of real numbers..." इस प्रकार के अल्पबहुत्व (comparability) सम्बन्धी प्रकरण में जैनाचार्यों ने जो परिणाम सूत्रों द्वारा उल्लिखित किये हैं वे खोज की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

विशद विवेचन के लिये Fraenkel की "Abstract Set Theory" द्रष्टव्य है।

आगे, जैनाचार्यों की अनन्ती की अवधारणा से हारवर्ड के प्रोफेसर रायस की निम्न लिखित कुछ अवधारणाओं से तुलना करिये, जो Encyclopedia Americana vol. 15 के पृष्ठ १२० आदि से यहां उद्धृत की गई है :

"1) The true infinite, both in magnitude and in organisation, although in one sense endless, & so incapable in that sense of being completely grasped, is in another, and precise sense, something perfectly determinate.

2) This determinateness is a character which indeed, includes and involves the endlessness of an infinite series, but the mere endlenness of an infinite series is not its primary character, but simply a negatively result of the self representative character of the whole system.

3) The endlessness of this series means that by no merely successive process of counting in God or in man, is its wholeness ever exhausted.

4) In consequence the whole endless series in so far as it is a reality must be present, as a determinate order, but also all at once, to the absolute experience. It is the process of successive counting, as such, that remains, to the end incomplete so as to imply that its own possibilities are not yet realized........"

गणित के इतिहासकारों द्वारा कहा जाता है कि सबसे पूर्व प्राकृत संख्याओं के द्वारा इस संहति से दूसरी नवीन संहति (भिन्नों) की खोज बेबीलोन और मिश्र के निवासियों ने व्युत्क्रम करने की रीति (Method of Inversion) से की थी। प्राथमिक व्युत्क्रम की अन्य रीतियां योग और वियोग;

यहां उल्लेखनीय है कि तिलोयपण्णत्ति की उपर्युक्त शलाका निष्ठापन विधि से जो राशि प्राप्त होती है वह उपर्युक्त तीसरी बार वर्गित सम्वर्गित राशि से कई कदम (steps) आगे जाकर प्राप्य है। इस प्रकार वीरसेन तथा यतिवृषभ की इस विषयक निरूपणा (treatment) भिन्न भिन्न है जिससे परिकलित औपचारिक असंख्यात एवं औपचारिक अनन्त की अर्हाएं भिन्न प्राप्त होती हैं। यह तथ्य ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

ग्रंथकार कहते हैं कि इतने पर भी उत्कृष्ट असंख्यात-असंख्यात प्राप्त नहीं होता। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, लोकाकाश और एक जीव; इन चारों की प्रदेश (Spatial Points) संख्या लोकाकाश में स्थित प्रदेशों की गणात्मक संख्या प्रमाण है। प्रत्येक शरीर और बादर प्रतिष्ठित राशियां (अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशि और प्रतिष्ठित प्रत्येक राशि) दोनों क्रमशः असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इन छहों असंख्यात राशियों को T में मिलाकर प्राप्त योग से पहिले के समान तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि प्राप्त करते हैं। फिर भी, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात राशि उत्पन्न नहीं होती। मान लो उपर्युक्त क्रिया करने पर U राशि उत्पन्न होती है।

इस तरह प्राप्त U राशि में स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान, मन, वचन, काय योगों के अविभागप्रतिच्छेद और उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के समय[१], इन राशियों को मिलाकर पूर्व के ही समान तीन बार वर्गित सम्वर्गित करने पर जो राशि V उत्पन्न होती है वह जघन्य परीतअनंत (lpj) प्रमाण संख्या होती है। इसमें से १ घटाने पर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात प्रमाण संख्या प्राप्त होती है। प्रतीक रूप से

$$lpj = Aau + १ = V + १$$

और $lpu > lpm > lpj$

इसके पश्चात् जघन्य युक्तानन्त प्राप्त करते हैं।

घात बढ़ाना और मूल निकालना हैं। ये सभी क्रियाएं प्राचीन काल में ज्ञात थीं। मूल निकालने की क्रिया से अपरिमेय संख्याओं का तथा ऋणात्मक संख्याओं के मूल निकालने से काल्पनिक संख्याओं का आविष्कार हुआ। जैनाचार्यों ने शलाकात्रय निष्ठापन विधि से तथा उपधारित असंख्यात राशियों के योग से ऐसी संख्याओं को निकालने का प्रयत्न किया जिन्हें उन्होंने असंख्यात संज्ञा दी, तथा उपधारित अनन्त राशियों के मिश्रण द्वारा प्राप्त राशियों से प्राप्त प्रमाण संख्याओं को अनन्त संज्ञा दी— अनन्त अर्थात् जिसे उत्तरोत्तर गिनकर अथवा व्यय कर या एक अथवा संख्यात अलग कर कभी भी समाप्त न किया जा सके।

१ "The biggest unit of time is the Maha-kalpa (महाकल्प) made up of two aeons Avsarpni and Utsarpni, each consisting of 413452630308203177749512192000000000000000000000000000000000000000000000-0000 (77 digits) solar years. (The Brahm Kalpa of the Hindus also consits of 77 digits but the digits do not agree)", Cosmology Old and New, Page 231.

धर्म द्रव्य के प्रदेश असंख्यात, अधर्म द्रव्य के प्रदेश असंख्यात तथा उस एक जीव के (जो केवलीसमुद्घात के समय सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है) प्रदेश भी असंख्यात माने गये हैं। लोक के प्रदेश असंख्यात हैं। असंख्यात लोक प्रमाण का अर्थ लोक के प्रदेशों की गणात्मक संख्या असंख्यात राशि की असंख्यातगुनी राशि। प्रत्येक शरीर और बादरप्रतिष्ठित जीवों को Souls in ordinary vegetation और Souls in vegetable parasitic groups कहा जा सकता है।

$Iyj = [Ipj]^{Ipj}$ = अभव्य सिद्ध राशि

और $Iyj = Ipu + १$

फिर $Iyu > Iym > Iyj > Ipu$

तथा $Iij = [Iyj]^२ = Iyu + १$

Iij से उत्कृष्ट अनन्तान्त प्राप्त करने के लिये जघन्य अनन्तानन्त को पूर्ववत् तीसरी बार वर्गित सम्वर्गित करने पर भी Iiu प्राप्त नहीं होता[1]। मान लो ∝ प्रमाण संख्या प्राप्त होती है। इस ∝ में सिद्ध, निगोद जीव, वनस्पति, काल, पुद्गल और समस्त अलोकाकाश की छह अनन्त गणात्मक संख्याओं को मिलाकर योग को पूर्ववत् तीन बार वर्गित संवर्गित करते हैं, तिस पर भी उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त न होकर मान लो β राशि उत्पन्न होती है। इस β में, तब, केवलज्ञान अथवा केवलदर्शन के अनन्त बहुभाग (उक्त प्रकार से प्राप्त राशि से हीन ?) मिलाने पर Iiu उत्पन्न होता है। वह भाजन है, द्रव्य नहीं है; क्योंकि इस प्रकार वर्ग करके उत्पन्न सब वर्ग राशियों का पुंज (β-?) केवलज्ञान केवलदर्शन के अनन्तवें भाग है। यह ध्यान देने योग्य है कि Aa तथा Ii को Aam तथा Iim अथवा अजघन्यानुत्कृष्ट Aa तथा Ii निर्देशित किया गया है।

अब हम कुछ उल्लेखनीय बातों का विवेचन करेंगे। यद्यपि अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या का प्रमाण लोकाकाश में माने गये प्रदेशों की संख्या से असंख्यातगुणा है, तथापि उपचार से उस प्रमाण को असंख्यात संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार, यद्यपि उपरोक्त प्रमाण से असंख्यात लोक प्रमाण संख्या गुणा प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव राशि के गणात्मक का प्रमाण है तथापि उपचार से उसे असंख्यात लोक प्रमाण कहा गया है। स्मरण रहे कि 'असंख्यात' शब्द से केवल एक संख्या का बोध नहीं होता, वरन् उस सीमा में रहनेवाली संख्याओं का बोध होता है जो न तो संख्यात हैं और न अनन्त। इस प्रकार असंख्यात संख्या की असंख्यातगुणी संख्या भी असंख्यात सीमा में ही रहेगी, उसका उलंघन न करेगी। जैसा, मुझे प्रतीत होता है, उसके अनुसार, मध्यम असंख्यात-असंख्यात भी संख्यात है। अर्थात् उसकी गणना हो सकती है, पर उसे उपचार रूप से असंख्यात की उपाधि दे दी गई है। वास्तविक असंख्येयता तभी प्रविष्ट करती है जब कि धर्मादि द्रव्यों के असंख्यात प्रमाण प्रदेशों से मध्यम असंख्यातासंख्यात को युक्त करते हैं। इसके पूर्व, उत्कृष्ट संख्यात तक ही श्रुतकेवली का विषय होने के कारण, तदनुगामी संख्या यद्यपि असंख्यात कहलाती है, पर परिभाषानुसार नहीं होतीं, उपचार से कहलाती हैं। असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान प्रमाण संख्या का आशय स्थितिबन्ध के लिये कारणभूत आत्मा के परिणामों की संख्या है। इसी प्रकार इससे भी असंख्यात लोक गुणे प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान प्रमाण संख्या का आशय अनुभागबन्ध के लिये कारणभूत आत्मा

---

१ सिद्धों की संख्या अभी तक अनन्त मानी गई है पर वह सम्पूर्ण लोक के जीवों की कुल संख्या से अनन्तगुनी हीन है। निगोद जीवों (akin to bacteria and unicellular organism of modern biology but conceived to die and to come to life eighteen times during time of one breath) की संख्या सिद्धों की संख्या से अनन्तगुनी बड़ी मानी गई है। वनस्पतिकाय जीवों की संख्या भी सिद्धों की संख्या से अनन्तगुनी बड़ी मानी गई है। उसी प्रकार लोकाकाश के पुद्गल द्रव्य के परमाणुओं की संख्या जीव राशि से अनन्तगुनी बड़ी मानी गई है। त्रिकाल में समयों की कुल संख्या पुद्गल के परमाणुओं की संख्या से अनन्तगुनी मानी गई है और अलोकाकाश के प्रदेशों की संख्या अनन्तानन्त मानी गई है।

के परिणामों की संख्या है। इससे भी असंख्यात लोक प्रमाणगुणे, मन वचन काय योगों के अविभाग-प्रतिच्छेदों (कर्मों के फल देने की शक्ति के अविभागी अंशों) की संख्या का प्रमाण होता है।

इसी प्रकार यद्यपि उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात और जघन्य परीतानन्त में केवल १ का अंतर हो जाने से ही 'अनन्त' संज्ञा उपचार रूप से प्राप्त होती है। अवधिज्ञानी का विषय उत्कृष्ट असंख्यात तक का होता है, इसके पश्चात् का विषय केवलज्ञानी का होने से, अनन्त संज्ञा प्राप्त हो जाती है। वास्तव में, व्यय के अनन्त काल तक भी होते रहने पर जो राशि क्षय को प्राप्त न हो उसे 'अनन्त' कहा गया है। इस प्रकार, जब जघन्य अनन्तानन्त की तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि में, अनन्त राशियां मिलाई जाती हैं, तभी उसकी अनन्त संज्ञा सार्थक होती है।

वीरसेनाचार्य ने अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन काल के अनन्तत्व के व्यवहार को उपचार निबन्धनक बतलाया है[1]। भव्य जीव राशि भी अनन्त है।

शंका होती है कि जब अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन काल की समाप्ति हो जाती है तो भव्य जीव राशि भी क्यों क्षय को प्राप्त न होगी? इस पर आचार्य ने कथन किया है कि अनन्त राशि वही है जो संख्यात या असंख्यात प्रमाण राशि के व्यय होने पर भी अनन्त काल से भी क्षय को प्राप्त नहीं होती। अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन काल, यद्यपि 'अनन्त' संज्ञा को अवधिज्ञान के विषय का उलंघन करके प्राप्त है, तथापि असंख्यात सीमा में ही है। इस प्रकार, व्यय के होते रहने पर भी, सदा अक्षय रहनेवाली भव्य जीव राशि समान और भी राशियां हैं जो क्षय होनेवाली पुद्गलपरिवर्तन काल जैसी सभी राशियों के प्रतिपक्ष के समान, उपर्युक्त विवेचनानुसार पाई जाती हैं।

जार्ज कँटर ने प्राकृत संख्याओं (१, २, ३,...... अनन्त तक) के गणात्मक प्रमाण को एक राशि अथवा कुलक मान किया है, जिसे No (Aleph Nought) प्रतीक से निर्देशित किया है। इस अनन्त प्रमाण राशि से, गण्य (Denumerable) राशियों के प्रमाण स्थापित किये गये हैं और सिद्ध किया गया है कि $२No = No$, तथा $(No)^२ = No$ आदि।

इसी प्रकार No से बड़ी संख्या का आविष्कार, गणित क्षेत्र में अद्वितीय है। कर्ण विधि (Diagonal Method) के द्वारा सिद्ध किया गया है कि

$२^{No} > No$. विशद विवेचन अत्यन्त रोचक है तथा जैनाचार्यों की विधियों से उनका तुलनात्मक अध्ययन, सम्भवतः गणित के लिये नवीन पथ प्रदर्शित कर सकेगा।

यहां ग्रंथकार ने यह भी कथन किया है कि जहां जहां संख्यात S को खोजना हो, वहां वहां अजघन्यानुत्कृष्ट संख्यात (Sm) जाकर ग्रहण करना चाहिये (जो एक स्थिर राशि नहीं है वरन् ३ से लेकर आगे तक की कोई भी राशि हो सकती है जो उत्कृष्ट संख्यात से छोटी है)। उसी प्रकार जहां जहां असंख्यातासंख्यात की खोज करना हो वहां वहां अजघन्यानुत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात (Aam) को ग्रहण करना चाहिये; तथा अंत में जहां जहां अनन्तानन्त का ग्रहण करना हो वहां वहां lim का ग्रहण करना चाहिये।

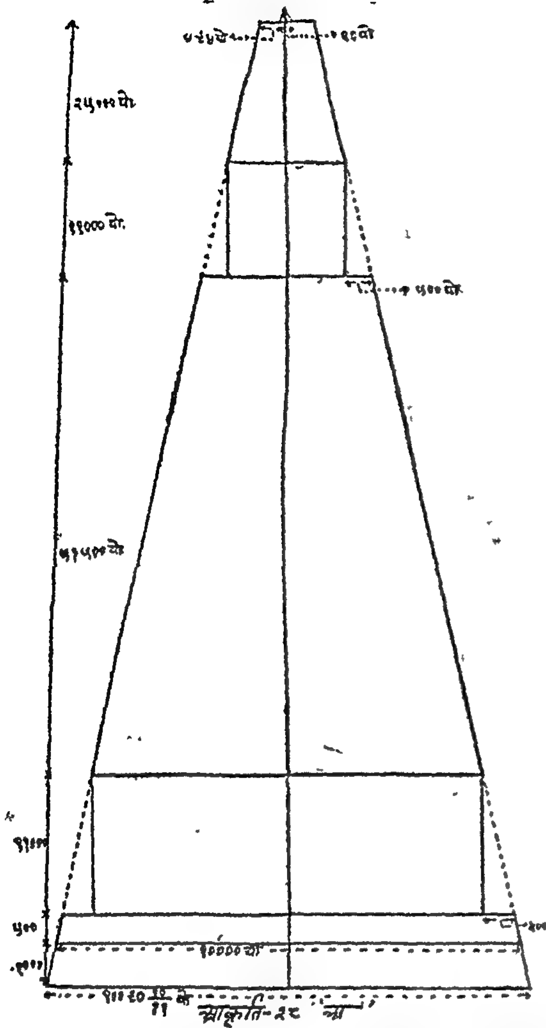
गा. ४, १४४३— मूल में जो संदृष्टि दी गई है उसमें चौथी पंक्ति में रुद्र की अंक संदृष्टि ४ मान कर प्रतीक रूप से उसे उन चौंतीस कोठों में स्थापित किया गया है।

गा. ४, १६२४— हिमवान् पर्वत की उत्तर जीवा २४९३२$\frac{१}{१९}$ योजन, तथा धनुपृष्ठ २५२३०$\frac{४}{१९}$ योजन है। यह सब गणना, उपर्युक्त सूत्रों से, π का मान $\sqrt{१०}$ मान कर की गई है।

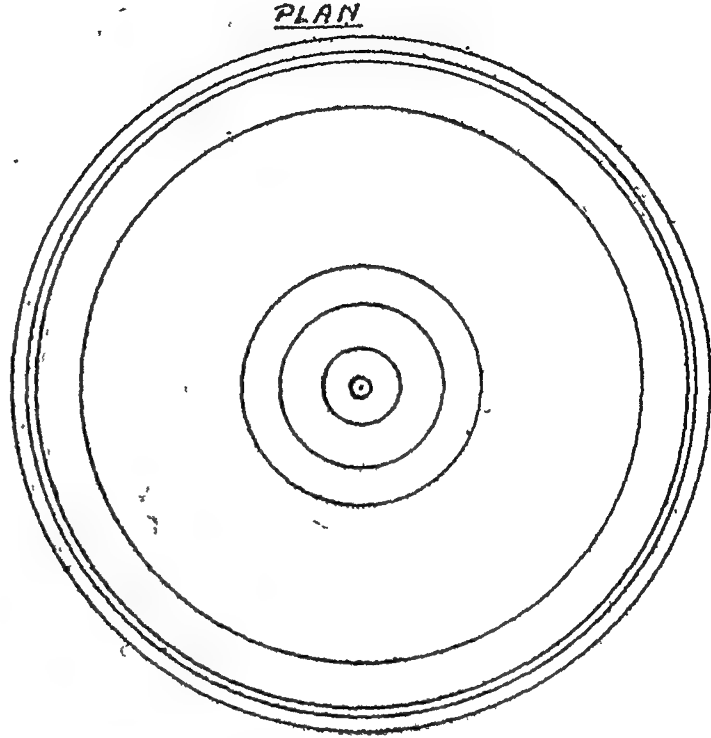
१ षट्खंडागम, पुस्तक ४, पृष्ठ ३३८, ३३९.

(गा. ४, १७८० आदि)

मान को प्रमाण न लेकर मेरु पर्वत का आकार आकृति–२८ 'अ', 'ब' से स्पष्ट हो जावेगा—



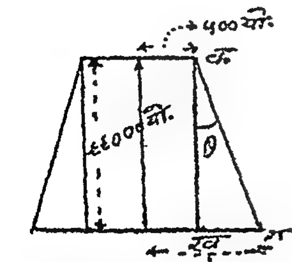
आकृति-२८ 'अ'



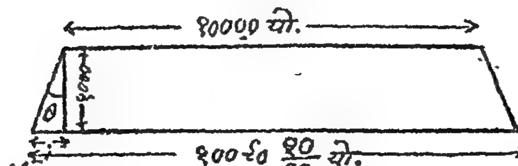
आकृति २८ 'ब'

यह आकृति स्तम्भों तथा शंकु समच्छिन्नकों से बनी हुई है। मूल गाथा में इसे समान गोल शरीर-वाला मेरु पर्वत 'समवट्टतणुस्स मेरुस्स' कहा गया है। सबसे निम्न भाग में चौड़ाई या समतल आधार का व्यास १००९०$\frac{१०}{११}$ योजन है और यह समान रूप से घटता हुआ १००००० योजन ऊँचाई पर, केवल १००० योजन चौड़ा रह गया है।

मेरु पर्वत का समान रूप से ह्रास ऊपर की ओर होता है। प्रवण रेखा लम्ब से θ कोण बनाती है जिसकी स्पर्श निष्पत्ति, स्प $\theta = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ख}} = \frac{४५००}{९९०००} = \frac{५००}{११०००}$ है। यहां आकृति–२९ अ और ब देखिये।



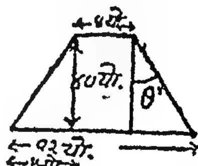
आकृति-२९ 'अ'



२९ 'ब'



२९ 'स'



२९ 'द'

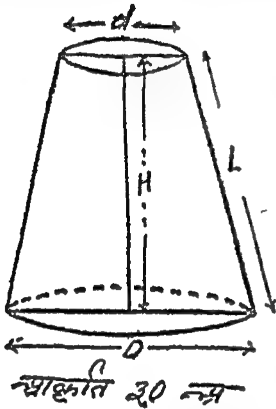
मूल भाग में १००० योजन तक समरूप से यह पर्वत ह्रासित होता गया है। व्यास, तल में १००९०$\frac{१०}{११}$ योजन है तथा १००० योजन ऊँचाई पर १०००० योजन है। इसलिये, प्रवण रेखा यहां भी

उदग्र रेखा से θ कोण पर अभिनत है, जिसकी स्पर्श निष्पत्ति स्प $\theta = \frac{४५\frac{५}{११}}{१०००} = \frac{५००}{११०००}$ है।

इसके पश्चात्, ५०० योजन की ऊँचाई पर जाकर व्यास ५०० योजन चारों ओर से घट जाता है तथा इसी व्यास का स्कंध ११००० योजन की ऊँचाई तक रहता है।

यहां (आकृति–२९ स) उदग्र रेखा अथवा स्कंध की जनन रेखा प्रवण रेखा से θ कोण बनाती है, जिसकी स्पर्श निष्पत्ति फिर से स्प $\theta = \frac{५००}{११०००}$ है।

इसी प्रकार, ५१५०० योजन ऊपर जाकर व्यास चारों ओर ५०० योजन घटता है तथा उस पर ११००० योजन उत्सेध की स्कंध स्थापित रहती है। अंत में २५००० योजन ऊपर और जाकर ५०० योजन त्रिज्या चारों ओर से ४९४ योजन कम होती है, इसलिये केवल १२ योजन चौड़े तलवाली तथा ४० योजन उत्सेध की, मुख में ४ योजन व्यासवाली चूलिका सबसे ऊपर, अंत में, रहती है (आकृति–२९ द)। चूलिका की पार्श्व रेखा उदग्र से θ' कोण बनाती है जिसकी स्पर्श निष्पत्ति स्प $\theta' = \frac{४}{४०} = \frac{१}{१०}$ है।



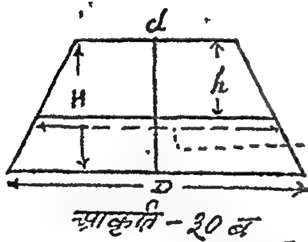
आकृति ३० अ

गा. ४, १७९३ — इस गाथा में, शंकु के समच्छिन्नक की पार्श्व रेखा का मान निकालनेके लिये जिस सूत्र का प्रयोग किया है वह प्रतीकरूप से यह है[1] (आकृति–३० अ) —

यहां भूमि D, मुख d, ऊँचाई h, पार्श्वभुजा को l माना गया है, तदनुसार ;

$$L = \sqrt{\left(\frac{D-d}{२}\right)^{२} + (H)^{२}}$$

गा. ४, १७९७— जिस तरह त्रिभुज संक्षेत्र (Triangular Prism) के समच्छिन्नक (Frustrum) के अनीक समलम्ब चतुर्भुज होते हैं, उसी प्रकार शंकु के समच्छिन्नक को उदग्र समतल द्वारा केन्द्रीय अक्ष में से होता हुआ काटा जावे तो छेद से प्राप्त आकृतियां भी समलम्ब चतुर्भुज प्राप्त होती हैं। इसलिये, यहां सूत्र में, पहिले दिया गया सूत्र उपयोग में लाया जाता है।



आकृति–३० ब

यदि, चूलिका के शिखर से h योजन नीचे विष्कम्भ x निकालना हो, तो निम्न लिखित सूत्र का उपयोग किया जा सकता है। (आकृति–३० ब)

$$x = h \div \left[\frac{D-d}{H}\right] + b$$

$$\text{अथवा } x = D - \left[(H-h) \div \left(\frac{D-b}{H}\right)\right]$$

उपर्युक्त सूत्रों का उपयोग, १७९८–१८०० गाथाओं में किया गया है।

गा. ४, १८९९— इस गाथा में समवृत्त रत्नस्तूप, "समवट्टो चेट्ठदे रयणथूहो" का नाम शंकु के लिये आया है।

गा, ४, ७११ आदि— ग्रंथकार ने समवशरणके स्वरूप को आनुपूर्वी ग्रंथ के अनुसार वर्णन करने में कुछ क्षेत्रों का वर्णन किया है। मुख्य ये हैं—

१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४।३९.

सबसे पहिले सामान्य भूमि का वर्णन है जो सूर्यमंडल के समान गोल, बारह योजन प्रमाण विस्तार-वाली (ऋषभदेव तीर्थंकर के समय की) है। इसके पश्चात् , स्तूप का वर्णन है जिसके सम्बन्ध में आकार, लम्बाई, विस्तार, आदि का कथन नहीं है।

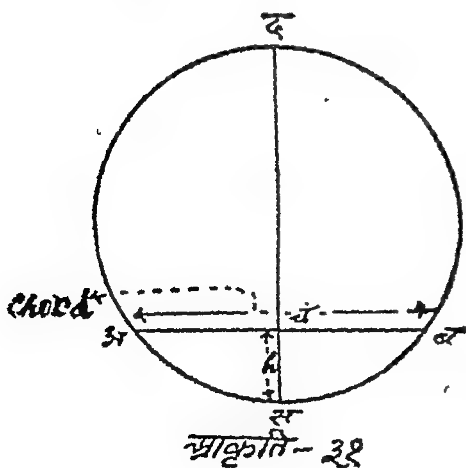
गा. ४, ९०१— सम्भवतः सदा प्रचलित महाभाषाएँ १८ तथा क्षुद्रभाषाएँ (dialects) ७०० हैं[१], ऐसा ज्ञात होता है।

गा. ४, ९०३–९०४— विशेषतया उल्लेखनीय यह वाक्य है "भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्य ध्वनि तीनों संध्याकालों में नव मुहूर्तों तक निकलती है"।

गा. ४, ९२९— यहां उन विविध प्रकार के जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण दी है जो जिन देव की वन्दना में प्रवृत्त होते हुए स्थित रहते हैं।

गा. ४, ९३०-३१— कोठों के क्षेत्र से यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यातगुणा है, तथापि वे सब जीव जिन देव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं। बालकप्रभृति जीव प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं (यहां इस गति को मध्यम संख्यात ग्रहण करना चाहिये, पर मध्यम संख्यात भी कोई निश्चित संख्या नहीं है)।

गा. ४, ९८७-९७— दूरश्रवण और दूरदर्शन ऋद्धियों की इस कल्पना को विज्ञान ने क्रियात्मक कर दिखलाया है। वह ऋद्धि आत्मिक विकास का फल थी, यह Radio या television भौतिक उन्नति का फल है। दूरस्पर्श तथा दूरघ्राण भी निकट भविष्य में कार्यान्वित हो सकेगा। इसी प्रकार हो सकता है कि दूरस्वादित्व प्रयोग भी संभव हो सके। दूरास्वादित्व की सिद्धि के लिये दशा हैः जिह्वेन्द्रिया-वरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा आंगोपांग नामकर्म का उदय हो। सीमा, जिह्वा के उत्कृष्ट विषयक्षेत्र के बाहिर, संख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र में स्थित विविध रस है। दूरस्पर्शत्व ऋद्धि के लिये सीमा संख्यात योजन है। इसी प्रकार दूरघ्राणत्व ऋद्धिसिद्ध व्यक्ति संख्यात योजनों में प्राप्त हुए बहुत प्रकार की गंधों को सूंघ सकता है। दूरश्रवणत्व तथा दूरदर्शित्व भी संख्यात योजन अर्थात् ४००० मील गुणित संख्यात प्रमाण दूरी की सीमा तक सिद्ध होता है। ऋद्धिसिद्ध व्यक्ति को बाह्य उपकरणों की आवश्यकता न थी, पर आज बाह्य उपकरणों से अनेक व्यक्ति उस ऋद्धि का विशिष्ट दशाओं में लाभ प्राप्त कर सकते हैं।



आकृति–३१

गा. ४, २०२५— इस गाथा में अ स ब द अन्तर्वृत्त क्षेत्र का विष्कम्भ निकालने के लिये सूत्र दिया गया है जब कि अ ब जीवा तथा च स बाण दिया गया हो। यहां आकृति–३१ देखिये।

D = वृत्त का विष्कम्भ Diameter

c = जीवा chord

h = बाण height of the segment

$$\text{तब } D = \frac{(c)^2}{4h} + h = \frac{\left(\frac{c}{2}\right)^2 + h^2}{h}$$

$$= \frac{\left(\frac{D}{2}\right)^2 - \left(\frac{D}{2} - h\right)^2 + h^2}{h} = \frac{Dh}{h} = D$$

---

१ अभिनवावधि में प्राप्त "भूवलय" ग्रंथ को अंकक्रम से विभिन्न भाषाओं में पढ़ा जा सकता है। इस पर खोज हो रही है।

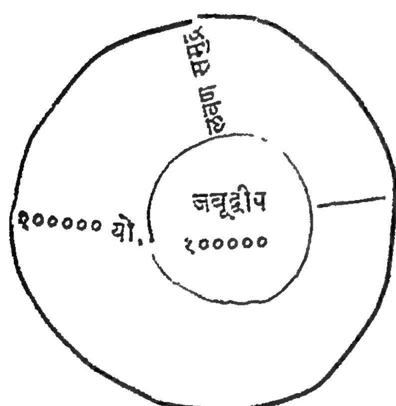
गा. ४, २३७४— इस गाथा में धनुष के आकार के (segment) क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालने के लिये सूत्र दिया गया है।

पिछली गाथा में लिये गये प्रतीकों में

धनुषाकार क्षेत्र (segment) अ स व च का क्षेत्रफल =

$$\sqrt{\left(\frac{h}{४}C\right)^{२} \times १०} \qquad = \frac{hC}{४}\sqrt{१०}$$

यह सूत्र अपने ढंग का एक है। महावीराचार्य ने गणितसारसंग्रह (७।७०$\frac{१}{२}$) में इसका उल्लेख किया है। इस सूत्र का प्रयोग अर्द्ध वृत्त का क्षेत्रफल निकालने के लिये किया जाय तो h का मान r और c का मान D लेना पड़ेगा। तदनुसार अर्द्ध वृत्त का क्षेत्रफल $= \frac{r.D}{४}\sqrt{१०} = \sqrt{१०}\frac{r^{२}}{२}$



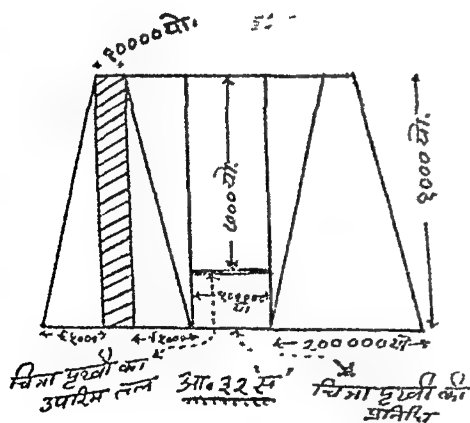
आकृति — ३२ (अ)

गा. ४, २३९८-२४००— आकृति–३२ अ में बीचका वृत्त क्षेत्र जम्बूद्वीप का निरूपण, तथा शेष क्षेत्र लवण समुद्र का निरूपण करता है।

इसका आकार एक नाव के ऊपर दूसरी नाव रखने से प्राप्त हुई आकृति–३२ व के समान है।

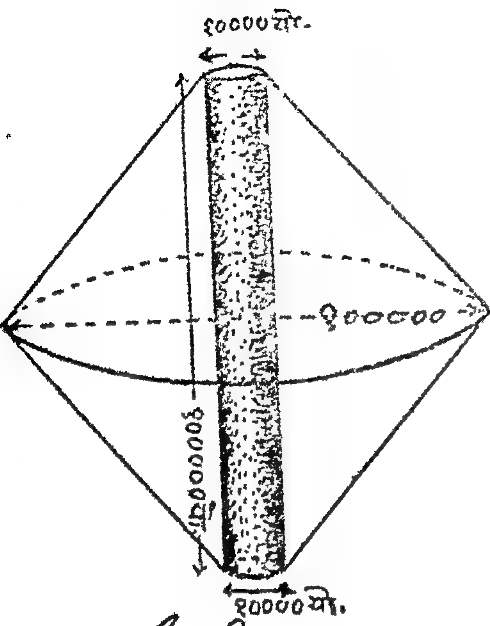


आकृति- ३२' व '



विवरण से (आकृति–३२ स) ज्ञात होता है कि लवण समुद्र की गहराई १००० योजन है। ऊपर विस्तार १०००० योजन और तल विस्तार २००००० योजन है। चित्र में मान को प्रमाण नहीं लिया गया है। यह समुद्र, चित्रा पृथ्वी के उपरिम तल से ऊपर कूट के आकार से आकाश में ७०० योजन ऊँचा स्थित है।

गा. ४,२४०३ आदि— हानि वृद्धि का प्रमाण मेरु आकृति की गणना के समान यहां भी है। १९० हानि वृद्धि प्रमाण लेकर, भूमि अथवा मुख से इच्छित ऊँचाई या गहराई पर, विष्कम्भ निकाला जा सकता है। रेखांकित भाग बहुमध्य भाग है, जहां चारों ओर (घेरे में) उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य एक हजार आठ पाताल हैं। ये सब पाताल घड़े (vessel) के आकार के हैं।

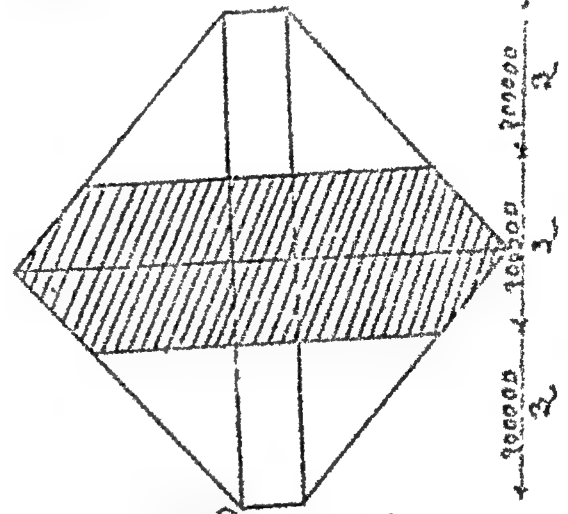


आकृति २२ 'द'

इस आकृति (२२ द) में ज्येष्ठ पाताल का आकार आदि दिये गये हैं।

ये पाताल क्रम से हीन होते हुए (मध्य भाग से दोनों ओर) नीचे से क्रमशः वायु भाग, जल एवं वायु से चलाचल भाग, और केवल जल भाग में विभाजित हैं।

इन पातालों के पवन सर्व काल शुक्ल पक्ष में स्वभाव से (१) बढ़ते हैं और कृष्ण पक्ष में घटते हैं। शुक्ल पक्ष में कुल पंद्रह दिन होते हैं। प्रत्येक दिन पवन की २२२२२⅔ योजन उत्सेध में वृद्धि होती है, इस प्रकार कुल वृद्धि शुक्ल पक्ष के अंत में २२२२२⅔ × १५ = $\frac{१००००००}{३}$ योजन होती है। इससे जल केवल ऊपरी त्रिभाग में तथा वायु निम्न दो त्रिभागों में $\frac{२००००००}{३}$ उत्सेध तक रहते हैं।



आकृति- २२ इ

आकृति-२२ इ में रेखांकित भाग, जल एवं वायु से चलाचल है अर्थात् उस भाग में वायु और जल, पक्षों के अनुसार बढ़ते घटते रहते हैं। जब वायु बढ़कर दो त्रिभागों को शुक्लपक्षांत में व्याप्त कर लेती है तो जल, सीमांत का उलंघन कर, आकाश में चार हजार धनुष अथवा दो कोस पहुँचता है। फिर कृष्ण पक्ष में वह घटता हुआ, अमावस्या के दिन, भूमि के समतल हो जाता है। इस दिन, ऊपर के दो त्रिभागों में जल और निम्न त्रिभाग में केवल वायु स्थित रहता है। कम घनत्ववाली वायु का, जल के नीचे स्थित रहना, अस्वाभाविक प्रतीत होता है, किन्तु वह कुछ विशेष दशाओं में सम्भव भी है।

गा. ४, २५२५— ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथकार को ज्ञात था कि दो वृत्तों के क्षेत्रफलों के अनुपात उनके विष्कम्भों के वर्ग के अनुपात के तुल्य होते हैं[१]। यदि छोटे प्रथम वृत्त का विष्कम्भ D_1 तथा क्षेत्रफल A_1 हो, और बड़े द्वितीय वृत्त का विष्कम्भ D_2 तथा क्षेत्रफल A_2 हो तो

$$\frac{D_2^2 - D_1^2}{D_1^2} = \left(\frac{A_2 - A_1}{A_1}\right) \text{ अथवा } \frac{D_2^2}{D_1^2} = \frac{A_2}{A_1}$$

गा. ४, २५३२ आदि— इन सूत्रों में [illegible] और आकृति का वर्णन है। [illegible] आकृति। [illegible] भाग में [illegible] के आकार [illegible] है। [illegible] और [illegible] १०० योजन है।

१ [illegible], १०१८७, [illegible]

गा. ४, २५७८— १७८१वीं गाथा में वर्णित मुख्य (जम्बूद्वीपस्थ) मेरु के सम्बन्ध में लिखा गया है। इस गाथा में धातकीखण्डद्वीपस्थ मन्दर नामक पर्वत का वर्णन है। इस मेरु का विस्तार तल भाग में १०००० योजन तथा पृथ्वीपृष्ठ पर ९४०० योजन है। यहां हानि वृद्धि प्रमाण $\frac{१०००० - ९४००}{१०००} = \frac{६}{१०}$ है। यह, अवगाह के लिये है। भूमि से ऊपर, हानि वृद्धि प्रमाण, $\frac{९४०० - १०००}{८४०००} = \frac{१}{१०}$ है।

गा. ४, २५९७— इस गाथा में दिये गये सूत्र का स्पष्टीकरण १८० वीं गाथा में दिया गया है।

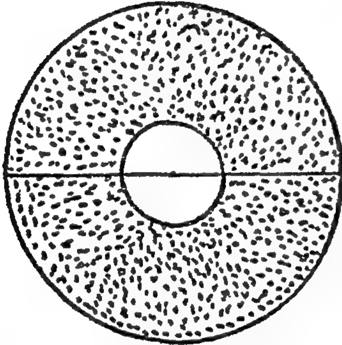
गा. ४, २५९८— इस गाथा में दिये गये सूत्र का स्पष्टीकरण २०२५ वीं गाथा में दिया गया है।

गा. ४, २७६१— इस गाथा में दिया गया सूत्र वृत्त का क्षेत्रफल निकालने के लिये है[1]।

$$\text{वृत्त या समानगोल का क्षेत्रफल} = \frac{\sqrt{[D^२]^२ \times १०}}{४} = \frac{D^२ \times \sqrt{१०}}{४}$$

$$= \left(\frac{D}{२}\right)^२ \sqrt{१०} \text{ जिसे हम } \pi r^२ \text{ लिखते हैं।}$$

गा. ४, २७६३— इस गाथा में वलयाकृति वृत्त अथवा वलय के आकार की आकृति का क्षेत्रफल निकालने के लिये सूत्र दिया है[2] (आकृति–३३ देखिये)।



आकृति - ३३

यदि प्रथम वृत्त का विस्तार $D_१$ तथा द्वितीय का $D_२$ माना जाये तो वलयाकार (रेखांकित) क्षेत्र का क्षेत्रफल

$$= \sqrt{\left[२ D_२ - (D_२ - D_१)\right]^२ \times \left(\frac{D_२ - D_१}{४}\right)^२ \times १०}$$

$$= \sqrt{१०} \sqrt{\frac{(D_२ + D_१)^२ (D_२ - D_१)^२}{(४)^२}}$$

$$= \sqrt{१०} \left[\frac{D_२^२}{४} - \frac{D_१^२}{४}\right]$$

जिसे हम $\pi [r_२^२ - r_१^२]$ लिखते हैं।

गा. ४, २८१८— इस गाथा में दिये गये सूत्र का स्पष्टीकरण २०२५वीं गाथा में देखिये।

गा. ४, २९२६—

$$\frac{\text{जगश्रेणी}}{[\text{सूच्यंगुल}]^{५।८}} - १ = \text{सामान्य मनुष्य राशि प्रमाण।}$$

इस प्रमाण को इस तरह लिखा गया है :—

जगश्रेणी में सूच्यंगुल के प्रथम और तृतीय वर्गमूल का भाग देने पर जो लब्ध आवे उसमें से एक कम कर देने पर उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। यहां [सूच्यंगुल]५।८ को लिखने की शैली, पुष्पदंत और भूतबलि द्वारा संरचित षट्खंडागम के सूत्रों से मिलती जुलती है। जैसे, द्रव्यप्रमाणानुगम में सत्रहवीं गाथा में नारक मिथ्यादृष्टि जीव राशि के प्रमाण का कथन यह है। "........तासिं सेढीणं विक्खंभसूचीअंगुल-वग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणिदेण[3]।"

---

१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति १०।९२.

२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, १०।९१.

३ षट्खंडागम—द्रव्यप्रमाणानुगम, पृष्ठ १३१.

गा. ५, ३३— इस गाथामें अंतिम आठ द्वीप-समुद्रों के विस्तार भी गुणोत्तर श्रेढि में दिये गये हैं। अन्तिम स्वयंभूवर समुद्र का विस्तार—

(जगश्रेणी ÷ २८) + ७५००० योजन दिया गया है।

इस समुद्र के पश्चात् १ राजु चौड़े तथा १००००० योजन बाहल्यवाले मध्यलोक तल पर पूर्व पश्चिम में

"{१ राजु – [($\frac{१}{४}$ राजु + ७५००० यो०) + ($\frac{१}{८}$ राजु + ३७५०० यो०)
+ ($\frac{१}{१६}$ राजु + १८७५० यो०) + ·········· ५०००० योजन] }"

जगह बचती है। यद्यपि १ राजु में से एक अनन्त श्रेढि भी घटाई जावे तब भी यह लम्बाई $\frac{१}{२}$ राजु से कुछ कम योजन बच रहती है। यह स्थापना सिद्ध करती है कि उन गणितज्ञों को इस गुणोत्तर, असंख्यात पदोंवाली श्रेढियों के योग की सीमा का ज्ञान भी था।

गा. ५, ३४— यदि २nवें समुद्र का विस्तार $D_{२n}$ मान लिया जाय और २n + १वें द्वीप का विस्तार $D_{२n+१}$ मान लिया जाय तब निम्न लिखित सूत्रों द्वारा परिभाषा प्रदर्शित की जा सकेगी।

$D_a = D_{२n+१} \times २ - D_{१} \times ३ =$ उक्त द्वीप की आदि सूची

$D_m = D_{२n+१} \times ३ - D_{१} \times ३ =$,, मध्यम सूची

$D_b = D_{२n+१} \times ४ - D_{१} \times ३ =$,, बाह्य सूची

यहाँ $D_{१}$ जम्बूद्वीप का विष्कम्भ है।

इस सूत्र का परिवर्तित रूप द्वीपों के लिये भी उपयोग में लाया जा सकता है।

गा. ५, ३५— nवें द्वीप या समुद्र की परिधि = $\frac{D_{१}\sqrt{१०}}{D_{१}} \times$ [nवें द्वीप या समुद्र की सूची]

इस सूत्र में कोई विशेषता नहीं है।

गा. ५, ३६— यहाँ इस सिद्धान्त की पुनरावृत्ति है, कि वृत्तों के व्यासों के वर्गों की निष्पत्ति का मान उतना ही होता है जितना कि वृत्तों के क्षेत्रफलों की निष्पत्ति का।

यदि nवें द्वीप या समुद्र की बाह्य सूची Dnb तथा अभ्यंतर सूची (अथवा आदि सूची) Dna प्ररूपित की जावें तो

$\frac{(Dnb)^{२} - (Dna)^{२}}{(D_{१})^{२}}$ = उक्त द्वीप या समुद्र के क्षेत्र में समा जानेवाले जम्बूद्वीप क्षेत्रों की संख्या होती है।

यहाँ $D_{१}$ जम्बूद्वीप का विष्कम्भ है तथा $Dna = D_{(n-१)}b$ है, चूँकि किसी भी द्वीप या समुद्र की बाह्य सूची, अनुगामी समुद्र या द्वीप की आदि या आभ्यंतर सूची होती है।

गा. ५, २४२— स्थूल क्षेत्रफल निकालने के लिये, ग्रंथकार ने π का मान स्थूल रूप से ३ ले लिया है और निम्न लिखित नवीन सूत्र दिया है—

nवें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल = $[Dn - D_{१}](३)^{२}\{D_n\}$

यहाँ $[Dn - D_{१}](३)^{२}$ को आयाम कहा गया है।

Dn ; nवें द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ है।

इस सूत्र का उद्गम निकालने योग्य है।

इस सूत्रको दूसरी तरह भी लिख सकते हैं।

$D_n = २^{(n-१)} D_{१}$ लिखने पर,

n वें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल $=९[२^{n-१}D_१ - D_१]२^{n-१}D_१$

$=(३D_१)^२[२^{n-१} - १]२^{n-१}$ होता है।

nवें वलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये सूत्र यह है :—

बादर क्षेत्रफल $= Dn[Dna + Dnm + Dnb]$.

यहाँ Dnb का मान $=[२\{२^{n-१}+२^{n-२}+२^{n-३}+\ldots\ldots+२^२+२\}+१]D_१$ है।

Dna का मान $=[२\{२^{n-२}+२^{n-३}+\ldots\ldots+२\}+१]D_१$ है।

$Dnm = \frac{Dnb + Dna}{२}$ है।

इनका मान रखने पर,

बादर क्षेत्रफल $=२^{n-१}D१[Dna + \frac{१}{२}(Dna + Dnb) + Dnb]$

$=२^{n-१}(D_१)^२\left[\frac{३}{२}\left\{२+२\left(\frac{२(-१+२^{n-२})}{१-२}\right)+२\left(\frac{२(-१+२^{n-१})}{१-२}\right)\right\}\right]$

$=३(२^{n-१})\cdot(D_१)^२[१+२^{n-१}-२+२(-१+२^{n-१})]$,

$=३^२[२^{n-१}](D_१)^२[२^{n-१}-१]$

यह सूत्र, २४२वीं गाथा में दिये गये सूत्रानुसार फल देता है।

गा. ५, २४४— यह सूत्र पिछली गाथा के समान है।

$\{Log_२(Apj)+१\}$ वें द्वीप या समुद्र[१] का क्षेत्रफल, (Apj) $(Apj - १)\{९०००$ करोड़ योजन$\}$ वर्ग योजन होगा।

पिछली (२४३) वीं गाथा में nवें वलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल $३^२(D_१)^२[२^{n-१}][२^{n-१}-१]$ बतलाया गया है जो $९(१०००००)^२[२^{n-१}][२^{n-१}-१]$ के बराबर है।

यदि हम $n = Log_२ Apj + १$ लिखें तो,

$n - १ = Log_२ Apj$ होगा और इसलिये, $२^{n-१} = Apj$ हो जावेगा। इस प्रकार, ग्रंथकार ने यहाँ छेदागणित के उपयोग का निदर्शन किया है। उन्होंने जघन्य परीतासंख्यात को १६ के द्वारा प्ररूपित किया है और १ कम जघन्य परीतासंख्यात को (१६ − १) नहीं लिखा है वरन् १५ लिखा है जो उस समय के प्रतीकत्व ज्ञान के संपूर्ण रूप से विकसित न होने का द्योतक है।

इसी प्रकार, $\{Log_२$ (पल्योपम) $+ १\}$ वें द्वीप का क्षेत्रफल

= (पल्योपम) (पल्योपम − १) × ९०००००००००० वर्ग योजन होता है।

आगे, स्वयंभूरमण समुद्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये २४३ या २४४वीं गाथा में दिये गये सूत्र '{बादर क्षेत्रफल $= Dn(३^२)(Dn - D_१)\}$' का उपयोग किया गया है।

इस समुद्र का विष्कम्भ $Dn = \frac{\text{जगश्रेणी}}{२८} + ७५०००$ योजन है, इसलिये, बादर क्षेत्रफल =

$[\frac{९}{२८}$ जगश्रेणी $+ ६७५०००$ यो. $]\left(\frac{\text{जगश्रेणी}}{२८} + ७५०००\text{ यो.} - १०००००\text{ यो.}\right)$

$= \frac{९.(\text{जगश्रेणी})^२}{७८४} + \text{जगश्रेणी}\left(\frac{९}{२८}\times(-२५०००\text{ यो.}) + \frac{६७५०००\text{ यो.}}{२८}\right)$

$-(२५०००\text{ यो.}\times ६७५०००\text{ यो.})$

$= \frac{९}{७८४}(\text{जगश्रेणी})^२ + [११२५००\text{ वर्ग यो.}\times १\text{ राजु}]$

$- १६८७५००००००$ वर्ग योजन होता है।

---

१ ग्रंथकार ने लिखा है, कि यह द्वीप क्रमांक होगा अर्थात् यह संख्या ऊनी— अयुग्म होगी।

गा. ५, २४५— प्रतीक रूपेण, इस गाथा का निरूपण यह होगा :—

मान लो, इच्छित द्वीप या समुद्र nवाँ है; उसका विस्तार Dn है तथा आदि सूची का प्रमाण Dna है।

तब, शेष वृद्धि का प्रमाण $= २Dn - \left(\frac{४Dn + Dna}{३}\right)$ होता है।

इसका साधन करने पर $\frac{२Dn - Dna}{३}$ प्राप्त होता है।

यहाँ $Dn = २^{n-१}D_१$ है तथा $Dna = १ + २[२ + २^२ + \ldots\ldots + २^{n-२}]$ है।

अर्थात्, $Dna = [१ + २(२^{n-१} - २)]D_१$ यो. है।

$\therefore \frac{२\ Dn - Dna}{३} = \frac{२^n D_१ + [-१ - २^n + ४]D_१}{३} = D_१$

$= १००००० $ योजन होता है।

गा. ५, २४६-४७— [१]प्रतीक रूप से:—

$५०००० \text{ योजन} + \frac{Dna}{२} = \frac{Dnb + [Dn - २०००००]}{४}$

इस सूत्र में भी Dna, Dnb और Dn का आदेशन (substitution) करने पर दोनों पक्ष समान आ जाते हैं।

गा. ५, २४८— प्रतीक रूप से:—

उक्त वृद्धि का प्रमाण $= \{\frac{१}{२}(Dnb) - Dna\}$

$= १\frac{१}{२}$ लाख योजन है।

गा. ५, २५०— प्रतीक रूप से :—

वर्णित वृद्धि का प्रमाण $= \frac{(३Dn - ३०००००) - \left\{\frac{३Dn}{२} - ३०००००\right\}}{२}$ है।

गा. ५, २५१— प्रतीक रूपेण, वर्णित वृद्धि का प्रमाण $= \frac{३}{४}Dn - \left\{\frac{Dn - ८०००००}{१२}\right\}$ है।

गा. ५, २५२— चतुर्थ पक्ष की वर्णित वृद्धि को यदि Kn मान लिया जाय तो इच्छित वृद्धि-वाले (n वें) समुद्र से, पहिले के समस्त समुद्रों सम्बन्धी विस्तार का प्रमाण $= \frac{Kn - २०००००}{२}$ होता है।

गा. ५, २५३— वर्णित वृद्धि $= \frac{(३Dn - ३०००००) - \left(\frac{३Dn}{२} - ३०००००\right)}{२}$ है। यह सूत्र २५१ वीं गाथा में कथित सूत्र के सदृश है। अंतर केवल द्वीप और समुद्र शब्दों में है।

१ यहां वर्णित वृद्धियों का व्यावहारिक उपयोग प्रतीत नहीं होता। द्वीप और समुद्रों के विस्तार १, २, ४, ८,......अर्थात् गुणोत्तर श्रेढि में दिये गये हैं। तथा द्वीपों के विस्तार १, ४, १६, ६४...... भी गुणोत्तर श्रेढि में है जिसमें साधारण निष्पत्ति ४ है। उसी प्रकार समुद्रों के विस्तार क्रमशः २, ८, ३२,......आदि दिये गये हैं जहाँ साधारण निष्पत्ति ४ है। इन्हीं के विषय में गुणोत्तर श्रेढि के योग निकालने के सूत्रों की सहायता से, भिन्न २ प्रकार की वृद्धियों का वर्णन ग्रंथकार ने किया है।

गा. ५, २५४— वर्णित वृद्धि का प्रमाण $= \frac{Dn - १००००००}{३} \times २ + \frac{३०००००}{२}$ है।

गा. ५, २५५-५६— अर्द्ध जम्बूद्वीप से लेकर nवें द्वीप तक के द्वीपों के सम्मिलित विस्तार का प्रमाण $= \frac{Dn}{४} + \frac{Dn - २ - १०००००}{३} - \frac{१०००००}{२}$ है।

यहां Dn = ४Dn − २ है; क्योंकि यहां केवल द्वीपों के अल्पबहुत्व को निश्चित करने का प्रसंग चल रहा है।

गा. ५, २५७— वर्णित वृद्धि $= \frac{Dn - १०००००}{३} + २०००००$

अथवा, $= \frac{Dn + ५०००००}{३}$ है।

गा. ५, २५८— अधस्तन द्वीपों के, दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तार का योगफल $\frac{२Dn - ५०००००}{३}$ है।

गा. ५, २५९— इष्ट (n वें) समुद्र के, एक दिशा सम्बन्धी विस्तार में वृद्धि का प्रमाण $= \frac{Dn + ४०००००}{३}$ है। यह प्रमाण अतीत समुद्रों के दोनों दिशाओं सम्बन्धी, विस्तार की अपेक्षा से है।

गा. ५, २६०— अतीत समुद्रों के दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तार का योग $= \frac{२Dn - ४०००००}{३}$ है।

गा. ५, २६१— [1]वर्णित क्षेत्रफल वृद्धि का प्रमाण $= \frac{३(Dn - १०००००) \times ४Dn}{(१०००००)^२}$ है, जो जम्बूद्वीप के समान, खंडों की संख्या होती है।

गा. ५, २६२— द्वीप समुद्रों के क्षेत्रफल क्रमशः ये हैं :

प्रथम द्वीप : $\sqrt{१०}\left(\frac{१०००००}{२}\right)^२ = \sqrt{१०}(२५०००००००००)$ वर्ग योजन

द्वितीय समुद्र : $\sqrt{१०}\left[\left(\frac{५०००००}{२}\right)^२ - \left(\frac{१०००००}{२}\right)^२\right] =$
$\sqrt{१०}[६२५००००००००० - २५००००००००००]$

तृतीय द्वीप : $\sqrt{१०}\left[\left(\frac{१३०००००}{२}\right)^२ - \left(\frac{५०००००}{२}\right)^२\right] =$
$\sqrt{१०}[४२२५००००००००० - ६२५०००००००००]$

चतुर्थ समुद्र : $\sqrt{१०}(१०)^८\left[\left(\frac{२९०}{२}\right)^२ - \left(\frac{१३०}{२}\right)^२\right] =$
$\sqrt{१०}(१०)^८[२१०२५ - ४२२५]$ वर्ग योजन इत्यादि।

---

१ यह पहिले बतलाया जा चुका है कि n वें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल
$= \sqrt{१०}\{(Dnb)^२ - (Dna)^२\}$ है।
इसी सूत्र के आधार पर विविध क्षेत्रों के क्षेत्रफलों का अल्पबहुत्व प्रदर्शित किया गया है।

यहां लवण समुद्र का क्षेत्रफल $(१०)^{८\frac{१}{२}}$ [६००] वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल $(१०)^{८\frac{१}{२}}$ [२५] वर्ग योजन से २४ गुणा है। घातकीखंड द्वीप का क्षेत्रफल $(१०)^{८\frac{१}{२}}$ [३६००] वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप से १४४ गुणा है। इसी प्रकार, कालोदधि समुद्र का क्षेत्रफल $[१०]^{८\frac{१}{२}}$ [१६८००] वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप से ६७२ गुणा है तथा इस कालोदधि समुद्र का क्षेत्रफल घातकीखंड द्वीप की खंडशलाकाओं से ४ गुना होकर ९६ अधिक है, अर्थात् ६७२ = (१४४ × ४) + ९६। पुनः, पुष्करवर द्वीप का क्षेत्रफल $= (१०)^{८\frac{१}{२}}\left[\left(\frac{६१०}{२}\right)^{२} - \left(\frac{२९०}{२}\right)^{२}\right]$ वर्ग योजन अथवा $(१०)^{८\frac{१}{२}}$ [७२०००] वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप से २८८० गुणा है तथा कालोदधि समुद्र की खंडशलाकाओं से चौगुना होकर ९६ × २ अधिक है; अर्थात् २८८० = (४ × ६७२) + २(९६) है; इत्यादि। साधारणतः यदि किसी अधस्तन द्वीप या समुद्र की खंडशलाकायें Ksn′ मान ली जांय जहां n′ की गणना घातकीखंड द्वीप से आरम्भ हो तो, उपरिम समुद्र या द्वीप की खंडशलाकाओं की संख्या $(४ \times Ksn') + २^{(n'-१)}(९६)$ होगी।

इसी गणना के आधार पर, ग्रंथकार ने, चौगुणे से अतिरिक्त प्रमाण लाने के लिये गाथासूत्र कहा है, जो प्रतीक रूप से इस प्रक्षेप ९६ का मान निकालने के लिये निम्न लिखित रूप से प्ररूपित किया जा सकता है।

$$\text{प्रक्षेप } ९६ = \frac{Kns'}{\frac{Dn'}{१०००००} - १०००००}$$

इस सूत्र में Ksn′ उस द्वीप या समुद्र की खंडशलाकाएं हैं तथा Dn′ विस्तार है।

गा. ५, २६३— लवण समुद्र की खंड शलाकाओं से घातकीखंड द्वीप की शलाकाएं (१४४ − २४) या १२० अधिक हैं। कालोदधि की खंड शलाकाएं घातकीखंड तथा लवण समुद्र की शलाकाओं से ६७२ − (१४४ + २४) या ५०४ अधिक हैं। यह वृद्धि का प्रमाण (१२०) × ४ + २४ लिखा जा सकता है। इसी प्रकार अगले द्वीप की इस वृद्धि का प्रमाण {(५०४) × ४} + (२ × २४) है। इसलिये, यदि घातकीखंड से n′ की गणना प्रारम्भ की जावे तो इष्ट n′ वें द्वीप या समुद्र की खंड शलाकाओं की वर्णित वृद्धि का प्रमाण प्रतीक रूप से $\left\{\left(\frac{Dn'}{१०००००}\right)^{२} - १\right\} \times ८$ होता है। यहां Dn′, n′ वें द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ है। यह प्रमाण उस समान्तरी गुणोत्तर (Arithmetico Geometric series) श्रेढि का n′ वां पद है, जिसके उत्तरोत्तर पद पिछले पदों के चौगुने से क्रमशः $२४ \times २^{n'-१}$ अधिक होते हैं। यद्यपि इसे Arithmetico Geometric series कहा है तथापि यह आधुनिक वर्णित श्रेढियों से भिन्न है। Dn′ स्वतः एक गुणोत्तर संकलन का निरूपण करता है जो ८ से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर १६, ३२, ६४, १२८ आदि हैं। वृद्धि के प्रमाण को n′ वां पद, मानकर बननेवाली श्रेढि अध्ययन योग्य है।

इस पद का साधन करने पर $\left\{\frac{(Dn'+१०००००)\,(Dn'-१०००००)}{(१०००००)^{२}}\right\} \times ८$ प्रमाण प्राप्त होता है।

गा. ५, २६४ n′ वें द्वीप या समुद्र से अधस्तन द्वीप समुद्रों की सम्मिलित खंड शलाकाओं के लिये ग्रंथकार ने निम्न लिखित सूत्र दिया है:—

उक्त प्रमाण $=\left[\frac{D_{n}'}{२}-१००००० \right]\times[D_{n}'-१०००००]\div १२५००००००००$

यहां n′ की गणना धातकीखंड द्वीप से आरम्भ करना चाहिये। यह प्रमाण दूसरी तरह से भी प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि यह, Dn′a परिधि के अन्तर्गत क्षेत्रफल में, जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल की राशि जैसी इतनी राशियां सम्मिलित होना दर्शाता है, इसलिये यह प्रमाण

$$\frac{\sqrt{१०}\left[\frac{Dn'a}{२}\right]^{२}}{\sqrt{१०}\left[\frac{१०००००}{२}\right]^{२}}$$ भी होना चाहिये। इसी के आधार पर ग्रंथकार ने उपर्युक्त सूत्र निकाला होगा।

गा. ५, २६५— अतिरिक्त प्रमाण ७४४ $=\frac{Ksn'}{Dn'\div २०००००}$

गा. ५, २६६— इस गाथा में ग्रंथकार ने बादर क्षेत्रफल निकालने के लिये π का मान ३ मान लिया है। इस आधार पर, द्वीप-समुद्रों के क्षेत्रफल निकालने के लिये ग्रंथकार ने सूत्र दिया है।

nवें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये Dn विस्तार है तथा आयाम (Dn − १०००००)९ है। इन दोनों का गुणनफल उक्त द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल होगा। यह दूसरी रीति से

$$३\left[\left(\frac{Dnb}{२}\right)^{२}-\left(\frac{Dna}{२}\right)^{२}\right]$$ होगा और इस प्रकार,

$$९\ D_{n}(Dn-१०००००)=३\left[\left(\frac{Dnb}{२}\right)^{२}-\left(\frac{Dna}{२}\right)\right]^{२}$$

मान रखने पर, दोनों पक्ष समान सिद्ध किये जा सकते हैं। यहां π को ३ मानकर बादर क्षेत्रफल का कथन किया है।

गा. ५, २६७— उपर्युक्त आधार पर अधस्तन द्वीप या समुद्र के क्षेत्रफल से उपरिम द्वीप अथवा समुद्र के क्षेत्रफल की सातिरेकता का प्रमाण

Dn × ९००००० है। यहां n की गणना कालोदक समुद्र के उपरिम द्वीप से आरम्भ की गई है। यह, वास्तव में उत्तरोत्तर आयाम की वृद्धि का प्रमाण है।

गा. ५, २६८— nवें द्वीप या समुद्र से अधस्तन द्वीप-समुद्रों के पिंडफल को लाने के लिये गाथा को प्रतीक रूपेण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

अधस्तन द्वीप-समुद्रों का सम्मिलित पिंडफल =

$[Dn-१०००००]\,[९(D_{n}-१०००००)-९०००००]\div ३$

यह दूसरी रीति से $३\left(\frac{Dna}{२}\right)^{२}$ आवेगा।

यदि उपर्युक्त मान रखे जावें तो ये दोनों समान प्राप्त होंगे।

गा. ५, २६९— यहां अतिरेक प्रमाण

$$३\left\{[२D_{n}-२०००००](३०००००)-३\left(\frac{१०००००}{२}\right)^{२}\right\}$$ है।

गा. ५, २७१— अधस्तन सब समुद्रों का क्षेत्रफल निकालने के लिये गाथा दी गई है। चूंकि द्वीप ऊनी संख्या पर पड़ते हैं इसलिये हम इष्ट उपरिम द्वीप को (२n − १) वां मानते हैं। इस प्रकार, अधस्तन समस्त समुद्रों का क्षेत्रफल :

$[D_{2n-1}-300000][9(D_{2n-1}-100000)-900000]\div 15$

प्राप्त होता है। इस सूत्र की खोज वास्तव में प्रशंसनीय है।

गा. ५, २७२— वर्णित सातिरेक प्रमाण को प्रतीकरूप से निम्न लिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :—

$$\{[Dna+Dnm+Dnb]400000\}-180000000000$$

यहाँ n की गणना वारुणीवर समुद्र से आरम्भ होती है। इस प्रकार, वारुणीवर समुद्र से लेकर अधस्तन समुद्रों के क्षेत्रफल से उपरिम (आगे के) समुद्र का क्षेत्रफल पन्द्रहगुणे होने के सिवाय प्रक्षेपभूत ४५५४०००००००००० योजनों से चौगुणा होकर १६२०००००००००० योजन अधिक होता है।

गा. ५, २७३— अतिरेक प्रमाण प्रतीक रूपेण

$(Dnm)\times 900000+27000000000$ होता है।

गा. ५, २७४— जब द्वीप का विष्कम्भ दिया गया हो, तब इच्छित द्वीप से (जम्बूद्वीप को छोड़कर) अधस्तन द्वीपों का संकलित क्षेत्रफल निकालने का सूत्र यह है :—

$(D_{2n-1}-100000)[(D_{2n-1}-100000)9-2700000]\div 15$

यहाँ D_{2n-1}, $2n-1$वीं संख्या क्रम में आने वाले द्वीप का विस्तार है।

गा. ५, २७५— जब क्षीरवर द्वीप को आदि लिया जाय अथवा n'' की गणना इस द्वीप से प्रारम्भ की जाय तब वर्णित वृद्धि का प्रमाण सूत्र द्वारा यह होगा :—

$(D_{n''+2}-100000)9\times 400000$

गा. ५, २७६— धातकीखंड द्वीप के पश्चात् वर्णित वृद्धियाँ त्रिस्थानों में होती हैं। जब n' की गणना धातकीखंड द्वीप से प्रारम्भ होती है; तब वर्णित वृद्धियाँ सूत्रानुसार ये हैं :—

$$\frac{Dn'}{2}\times 2;\quad \frac{Dn'}{2}\times 3;\quad \frac{Dn'}{2}\times 4$$

गा. ५, २७७— अधस्तन द्वीप या समुद्र से उपरिम द्वीप या समुद्र के आयाम में वृद्धि का प्रमाण प्राप्त करने के लिये सूत्र दिया गया है। यहाँ n' की गणना धातकी खंड द्वीप से प्रारम्भ होती है। प्रतीक रूप से आयाम वृद्धि $\frac{Dn'}{2}\times 900$ है।

गा. ५, २८०-८१— यहाँ से कायमार्गणा स्थान में जीवों की संख्या प्ररूपणा, यतिवृषभकालीन अथवा उनसे पूर्व प्रचलित प्रतीकत्व में दी गई है।

तेजस्कायिक राशि उत्पन्न करने के लिये निम्न लिखित विधि ग्रंथकार ने प्रस्तुत की है। इस रीति को स्पष्ट करने के लिये आंग्ल वर्ण अक्षरों से प्रतीक बनाये गये हैं।

सर्वप्रथम[1] एक घनलोक (अथवा ३४३ घन राजु वरिमा) में जितने प्रदेश बिन्दु हैं, उस संख्या को Gl द्वारा निरूपित करते हैं। जब इस राशि को प्रथम बार वर्गित सम्वर्गित करते हैं तब $[Gl]^{Gl}$ राशि प्राप्त होती है।

---

१ गोम्मटसार जीवकांड गाथा २०३ की टीका में घनलोक से प्रारम्भ न कर केवल लोक से प्रारम्भ किया है। प्रतीत होता है कि घनलोक और लोक का अर्थ एक ही होगा। स्मरण रहे कि लोक का अर्थ असंख्यात प्रमाण प्रदेशों की गणात्मक संख्या है। मुख्य रूप से एक परमाणु द्वारा व्याप्त आकाश के प्रमाण के आधार पर प्रदेश की कल्पना से असंख्यात संलग्न प्रदेश कथंचित् अखंड लोकाकाश की संरचना करते हैं अथवा एक लोक में असंख्यात प्रदेश समाये हुए हैं। इस प्रमाण को लेकर कायमार्गणा स्थान में तेजस्कायिक जीवों की संख्या की प्राप्ति के लिये विधि का निरूपण किया गया है।

(शेष आगे पृ. ७६ पर देखिये)

यह क्रिया एक बार करने से अन्योन्य गुणकार शलाका का प्रमाण एक होता है। जितने बार यह वर्गन सम्वर्गन की क्रिया की जावेगी उतनी ही अन्योन्य गुणकार शलाकाओं का प्रमाण होगा। ग्रंथकार बतलाते हैं कि—

$\log_2 \log_2 \left[[Gl]^{Gl} \right] = \frac{\text{पल्योपम}}{\text{असंख्यात}}$ होता है। यहाँ सम्भवतः असंख्यात का प्रमाण Aam होना चाहिए।

यदि $[Gl]^{Gl} = २^k$ हो अथवा $\log_2 \left[(Gl)^{Gl} \right] = K$ हो तो K का प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण होता है। यहाँ न तो घन लोक का स्पष्टीकरण है और न लोक का ही।

इस तरह उत्पन्न राशि को भी असंख्यात लोक प्रमाण कहा गया है। इस महाराशि का वर्गन सम्वर्गन करने पर

$\left\{ (Gl)^{Gl} \right\}^{(Gl)^{Gl}}$ प्राप्त होता है। इस समय अन्योन्य गुणकार शलाकाओं का प्रमाण २ हो जाता है तथा राशि Gl का वर्गन सम्वर्गन दो बार हो जाता है, इस प्रकार वर्णित रीति से Gl का वर्गन सम्वर्गन Gl बार करने पर मानलो L राशि उत्पन्न होती है। इस समय[1] अन्योन्य गुणकार शलाकाओं का प्रमाण घन लोक बिन्दुओं की संख्या अथवा Gl के बराबर होता है। ग्रंथकार कहते हैं कि यह L राशि इस समय भी असंख्यात लोक प्रमाण रहती है।

इसके सिवाय $\log_2 \log_2 [L]$ भी असंख्यात लोक प्रमाण रहती है। यदि $L = २^{K'}$ हो तो K′ भी असंख्यात लोक प्रमाण रहती है।

अब वर्ग सम्वर्गन की क्रिया L राशि को लेकर प्रारम्भ करेंगे। इस राशि का प्रथम बार वर्गन सम्वर्गन किया तब $(L)^L$ राशि प्राप्त होती है तथा अन्योन्य गुणकार शलाकाओं की संख्या Gl + १ हो जाती है और ग्रंथकार कहते हैं कि $(L)^L$ उसकी वर्गशलाकायें तथा अर्द्धच्छेदशलाकाएँ तीनों ही राशियाँ इस समय भी असंख्यात लोक प्रमाण होती हैं। अब इस L राशि का दूसरी बार वर्गन सम्वर्गन किया तो

आगे चलकर, ग्रंथकार ने तेजस्कायिक राशि का प्रमाण ≡a किया है, जहां a का अर्थ असंख्यात हो सकता है। a का प्रयोग ≡ अथवा लोक के पश्चात् होना इस बात का सूचक है कि ≡ अथवा घनलोक से, तेजस्कायिक जीव राशि को उत्पन्न किया गया है जो द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा से असंख्यात लोक प्रमाण बतलाई गई है। साथ ही असंख्यात लोक प्रमाण के लिये जो प्रतीक ९ दिया गया है वह ≡ a से भिन्न है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि असंख्यात शब्द से केवल किसी विशिष्ट संख्या का निरूपण नहीं होता, परन्तु अवधिज्ञानी के ज्ञान में आनेवाली उत्कृष्ट संख्यात के ऊपर की संख्याओं का प्ररूपण होता है। ९, प्रतीक ९ अंक से लिया गया प्रतीत है, जहाँ ३ का घन ९ होता है। ३ विमाओं (उत्तर दक्षिण, पूर्व पश्चिम, तथा ऊर्ध्व अधो भाग) में स्थित लोकाकाश जो जगश्रेणी के घन के तुल्य घनफलवाला है, ऐसे लोकाकाश को ९ लेना उपयुक्त प्रतीत होता है; पर, इस ९ प्रतीक को असंख्यात लोक प्रमाण गणात्मक संख्या का प्ररूपण करने के लिये उपयोग में लाया गया है।

१ ग्रंथकार ने यहाँ अन्योन्य गुणकार शलाकाओं का प्रमाण Gl (घनलोक) न लेकर केवल लोक ही किया है जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ लोक और घनलोक में कोई अंतर नहीं है।

$\left[(L)^L\right]^{(L)^L}$ राशि प्राप्त होगी और तब अन्योन्य शलाकाओं की संख्या Gl + २ हो जावेगी तथा उत्पन्न महाराशि, उसकी वर्गशलाकाएँ तथा उसकी अर्द्धच्छेद-शलाकाएँ इस समय भी असंख्यात लोक प्रमाण रहती हैं ।

ग्रंथकार कहते हैं कि दो कम उत्कृष्ट संख्यात लोक प्रमाण अन्योन्य गुणकार शलाकाओं के दो अधिक लोक प्रमाण अन्योन्य गुणकार शलाकाओं में प्रविष्ट होने पर चारों ही राशियां असंख्यात लोक प्रमाण हो जाती हैं । यह कथन असंख्यात की परिभाषा के अनुसार ठीक है ।

क्योंकि दो कम उत्कृष्ट संख्यात लोक प्रमाण बार और वर्गन सम्वर्गन होने पर अन्योन्य गुणकार-शलाकाओं की संख्या = Gl + २ + [Su]Gl − २

= [Su + १]Gl

तथा Su + १ = Apj अथवा जघन्य परीतासंख्यात हो जावेगी । इस प्रकार चारों राशियां, इतने बार के वर्गन सम्वर्गन से असंख्यात लोक प्रमाण हो जावेंगी । यहां असंख्यात शब्द का उपयुक्त अर्थ लेना वांछनीय है ।

इस प्रकार, जब L राशि का वर्गन सम्वर्ग L बार किया जावेगा तो अंत में मान लो M राशि उत्पन्न होगी । यहां स्पष्ट है कि M, M की वर्गशलाकाएं तथा अर्द्धच्छेदशलाकाएं और साथ ही अन्योन्य गुणकार शलाकाएं ये चारों ही राशियां इस समय असंख्यात लोक प्रमाण होंगीं ।

इसी प्रकार M राशिको M बार वर्गित सम्वर्गित करने पर भी ये चारो राशियां अर्थात् उत्पन्न हुई (मान लो) राशि N, उसकी वर्गशलाकाएं और अर्द्धच्छेदशलाकाएं तथा अन्योन्य गुणकारशलाकाएं ये सब ही इस समय भी असंख्यात लोक प्रमाण रहती हैं ।

अब चौथी बार N राशि को स्थापित कर उसे [N − M − L − Gl] बार वर्गित सम्वर्गित करने पर तेजस्कायिक राशि उत्पन्न होती है जो असंख्यात घन लोक[1] प्रमाण होती है । ग्रंथकार ने इस तरह उत्पन्न हुई महाराशि को $\equiv a$ प्रतीक द्वारा निरूपित किया है । इस प्रकार तेजस्कायिक राशि की अन्योन्य गुणकार शलाकाएं N है[2], क्योंकि, N − (M + L + Gl) + (M + L + Gl) = N होता है ।

ग्रंथकार ने "अतिक्रांत अन्योन्य गुणकार शलाकाओ" शब्द M + L + Gl के लिये व्यक्त किये हैं । यहां ग्रंथकार ने असंख्यात लोक प्रमाण के लिये ९ प्रतीक दिया है ।

इस प्रकार, पृथ्वीकायिक राशि का प्रमाण $\left(\text{तेजस्कायिक राशि} + \frac{\text{ते. का. रा.}}{\text{असं० लोक}}\right)$ होता है ।

अथवा, दक्षिण पक्ष का प्रमाण $\left(\equiv a + \frac{\equiv a}{९}\right)$ होता है ।

---

१ घनलोक तथा लोक का अंतर संशयात्मक है, तथापि घनलोक लिखने का आशय हम पहिले बतला चुके हैं ।

२ इसके विषय में वीरसेनाचार्य ने कहा है कि कितने ही आचार्य चौथी बार स्थापित (N) शलाका राशि के आधे प्रमाण के 'व्यतीत' होने पर तेजस्कायिक जीवराशि का उत्पन्न होना मानते हैं तथा कितने ही आचार्य इस कथन को नहीं मानते हैं, क्योंकि, साढ़े तीन बार राशि का समुदाय वर्गधारा में उत्पन्न नहीं है । यहां वीरसेनाचार्य ने वर्गशलाकाओं तथा अर्द्धच्छेदशलाकाओं के प्रमाण के आधार पर अनेकान्त से दोनों मतों का एक ही आशय सिद्ध किया है और विरोध विहीन स्पष्टीकरण किया है जो षट्खंडागम में देखने योग्य है । षट्खंडागम, पुस्तक ३, पृष्ठ ३३७.

¹यह प्रमाण $\equiv a \frac{१०}{९}$ अथवा '$\left(\frac{१०}{९}\right.$ असंख्यात घन लोक$\left.\right)$' के तुल्य निरूपित किया गया है।

इसी प्रकार, जलकायिक राशि का प्रमाण प्रतीक रूपेण,²

$$\left(\equiv a \frac{१०}{९}\right) + \left(\frac{\equiv a}{९} \cdot \frac{१०}{९}\right) \text{ होता है।}$$

अथवा, यह $\equiv a \cdot \frac{१०}{९}\left[१ + \frac{१}{९}\right]$ या $\equiv a \frac{१०}{९} \cdot \frac{१०}{९}$ है।

इसी प्रकार वायुकायिक राशि का प्रमाण;

$$\left(\equiv a \frac{१०}{९} \cdot \frac{१०}{९}\right) + \left(\frac{\equiv a}{९} \cdot \frac{१०}{९} \cdot \frac{१०}{९}\right) \text{ होता है।}$$

अथवा, यह $\equiv a \frac{१०}{९} \frac{१०}{९}\left[१ + \frac{१}{९}\right]$ या $\equiv a \frac{१०}{९} \cdot \frac{१०}{९} \cdot \frac{१०}{९}$ है। यहां,

---

१ यहां $१ + \frac{१}{\text{असंख्यात लोक}} = \frac{\text{असंख्यात लोक} + १}{\text{असंख्यात लोक}}$ होना चाहिये पर ग्रंथकार ने (असंख्यात लोक + १) को (९ + १) न लिखकर १० लिख दिया है जो प्रतीक प्रतीत नहीं होता। आगे १० का बारंबार उपयोग हुआ है, इसलिये स्पष्ट हो जाता है कि वह (असंख्यात लोक + १) का प्ररूपण करने के लिये प्रतीकरूप में ले लिया गया है।

२ इस अध्याय में ग्रंथकार ने प्रतीकत्व के आधार पर परम्परागत ज्ञान का निर्देशन सरल विधि से स्पष्ट करने का अद्वितीय प्रयास किया है। गणितज्ञ इतिहासकार श्री बेल के ये शब्द यहां चरितार्थ होते प्रतीत होते हैं—"Extensive tracts of mathematics contain almost no symbolism, while equally extensive tracts of symbolism contain almost no mathematics." यदि इस प्रतीकत्व को सुधार करने का प्रयास सतत रहता तो जैन गणित की उपेक्षा इस तरह न होती और विश्व की गणित के आधुनिक इतिहास में इसका भी नाम होता। वह केवल इतिहास की ही वस्तु न होकर अध्ययन का विषय होकर उत्तरोत्तर नवीन खोजों से भरी होती। गणित में प्रतीकत्व के विकास के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों ने कठिनता से अवधारणा में आनेवाली संख्याओं के निरूपण के लिये प्रतीकों का स्वतंत्र रूप से विकास किया। अन्य भारतीय गणितज्ञ भी उनके इस विकास से या तो अनभिज्ञ रहे या उन्होंने इसकी कोई कारणों वश उपेक्षा की। धन, ऋण, बराबर, भिन्न, भाग, गुणा आदि के चिह्नों का उपयोग इस ग्रंथ में नहीं मिलता है। परन्तु मस्तिष्क के परे की संख्याओं या वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रतीक देकर और उन्हीं पर आधारित नई संख्याओं को निरूपित करने का प्रयास स्पष्ट है। इस समय तक धन के लिये धन, ऋण के लिये ऋण लिखा जाता था। बराबर और गुणा के लिये कोई चिह्न नहीं मिलता है। भिन्न $\frac{२}{३}$ को $\begin{smallmatrix}२\\३\end{smallmatrix}$ लिखा करते थे। भाग निरूपण के लिये भी कोई विशिष्ट चिह्न नहीं मिलता। वर्गमूल के लिये भी केवल 'वग्गमूल' लिखा जाता था। अर्द्धच्छेद के $\log_2$ सरीखा सरल कोई भी प्रतीक नहीं मिलता। वर्ग या कृति, इत्यादि घातांकों को शब्दों से निर्देशित किया जाता था। यद्यपि, अभी तक अलौकिक गणित सम्बन्धी गणित ग्रंथ प्राप्त नहीं हो सका है जो क्रियात्मक प्रतीकत्व (Operational symbolism) के उपयोग का समर्थन कर सके, तथापि वीरसेनाचार्यकाल में अर्द्धच्छेद तथा वर्गशलाकाओं के आधार पर विभिन्न द्रव्य प्रमाणों के अल्पबहुत्व का निदर्शन, बिना क्रियात्मक प्रतीकत्व के प्रायः असम्भव है।

१० पुनः (असंख्यात लोक + १) की निरूपणा करता है[1]।

इसके पश्चात्, तेजस्कायिक बादर राशि का प्रमाण $\frac{\equiv a}{९}$ माना गया है तथा सूक्ष्म राशि का प्रमाण

$$\left(\equiv a\right) \text{ रिण } \left(\frac{\equiv a}{९}\right)$$

अर्थात् $\left(\equiv a\right)\left[१ \text{ रिण } \frac{१}{९}\right]$ अथवा

$\equiv a\left[\frac{\text{असंख्यात लोक रिण १}}{\text{असंख्यात लोक}}\right]$ माना गया है, जिसे ग्रंथकार ने प्रतीकरूपेण, $\equiv a\,\frac{८}{९}$ लिखा है।

यहां (असंख्यात लोक रिण १) के लिये प्रतीक ८ दिया गया है।

इसी प्रकार, वायुकायिक बादरराशि का प्रमाण $\frac{\equiv a}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot$ है; तथा सूक्ष्म राशि का प्रमाण $\equiv a\,\frac{१०}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot\frac{८}{१}$ अथवा $\equiv a\,\frac{१०}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot\frac{१०}{९}\cdot\frac{८}{९}$ है। यहां १०, (असंख्यात लोक + १) तथा ८, (असंख्यात लोक − १) का निरूपण करते हैं।

अब, जलकायिक बादर पर्याप्तक राशि का प्रमाण ग्रंथकार ने प्रतीक द्वारा $\frac{=प}{४a}$ बतलाया है। यहां = जगप्रतर है, प पल्योपम है, ४ प्रतरांगुल है और a असंख्यात का प्रतीक है। जब इस राशि में आवलि के असंख्यातवें भाग का भाग दिया जाता है, तो पृथ्वीकायिक बादर पर्याप्त जीवों की संख्या का प्रमाण मिलता है। जहां आवलि का असंख्यातवाँ भाग प्रतीक रूप से ग्रंथकार ने $\frac{१}{९}$ लिया है जिसका अर्थ $\frac{१}{\text{असंख्यात लोक}}$ होता है (यह प्रमाण $\frac{१}{९}$ के स्थान में $\frac{\text{आवलि}}{\text{असंख्यात}}$ अथवा $\frac{\text{आवलि}}{a}$ लिखना चाहिये था, पर वास्तव में यहाँ असंख्यात प्रमाण का अर्थ असंख्यात लोक ही है) जिसके लिये प्रतीक ९ है। इस प्रकार, पृथ्वीकायिक पर्याप्त बादर जीवराशि का प्रमाण ग्रंथकार ने प्रतीकरूपेण $\frac{=प\cdot९\cdot}{४a}$ दिया है। स्पष्ट है कि प्रतीक रूपेण निरूपण, अत्यन्त सरल, संक्षिप्त, युक्त एवं सुग्राह्य है।

इसके पश्चात्, तेजस्कायिक बादर पर्याप्त राशि का प्रमाण प्रतीक रूप से $\frac{८}{a}$ दिया गया है जहाँ ८ को आवलि का प्रतीक माना है।

यह बतलाना आवश्यक है कि जब आवलि का प्रतीक ८ माना गया है तो आवलि के असंख्यातवें भाग को $\frac{८}{९}$ न लेकर $\frac{१}{९}$ क्यों लिया गया है? इसके दो कारण हो सकते हैं। एक यह, कि असंख्यात लोक प्रमाण राशि (९) की तुलना में आवलि (जघन्य युक्त असंख्यात समयों की गणात्मक संख्या की

---

१ यदि संख्या a है और इस संख्या को ९ द्वारा भाजित करने से जो लब्ध आवे वह इस a संख्या में जोड़ना हो तो क्रिया इस प्रकार है :— $a+\frac{a}{९}=\frac{१०\,a}{९}=\frac{a\,१०}{९}$। इसका ९वां भाग और जोड़ने पर $a\,\frac{१०}{९}\times\frac{१०}{९}$ प्राप्त होता है।

प्रतीक रूप राशि) और एक का अन्तर नगण्य है। दूसरा यह, कि ९ के साथ ८ का उपयोग करने पर कहीं उसका अर्थ (असंख्यात लोक – १) प्रमाण राशि न मान लिया जाय। इस प्रकार $\dfrac{= प \cdot ९}{४ \cdot a \text{ (आवलि)}}$ लिखे जानेवाले प्रमाण में आवलि के स्थान पर ८ का उपयोग नहीं हुआ प्रतीत होता है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में गाथा २०९ में आवलि न लेकर घनावलि लिया गया है। घनावलि शब्द ठीक मालूम पड़ता है। आवलि यदि २ मानी जावे तब घनावलि की संदृष्टि ८ हो सकती है। परन्तु, यह इसलिये सम्भव नहीं है कि २ को सूच्यंगुल का प्रतीक माना गया है।

स्मरण रहे कि उपर्युक्त प्रतीक रूप राशियों (Sets) का उल्लेख, उन राशियों में मुख्य रूप से आकाश में प्रदेशों की उपधारणा के आधार पर समाये जानेवाले प्रदेशों की गणात्मक संख्या बतलाने के लिये किया गया है।

आगे वायुकायिक बादर पर्याप्त राशि को ग्रंथकार ने प्रतीक रूप से $\dfrac{\equiv}{\text{संख्यात}}$ लिखा गया है। यहाँ $\equiv$ घन लोक की संदृष्टि प्रतीत होती है पर ग्रंथकार द्वारा वहाँ केवल लोक शब्द उपयोग में लाया गया है। संख्यात राशि के प्रतीक के लिये तिलोयपण्णत्ति भाग २, पृ. ६०२ देखिये। सुविधा के लिये हम आगे चलकर इसे Q द्वारा प्ररूपित करेंगे।

तदुपरान्त, पृथ्वीकायिक जीवों की 'सूक्ष्म पर्याप्त जीव राशि' तथा 'सूक्ष्म अपर्याप्त जीवराशि' के प्रमाण, क्रमशः, प्रतीक रूपेण $\equiv a \cdot \dfrac{१०}{९} \cdot \dfrac{८}{९} \cdot \dfrac{४}{५}$ तथा $\dfrac{\equiv a}{९} \cdot \dfrac{१०}{९} \cdot \dfrac{८}{५}$ निरूपित किये गये हैं। प्रथम राशि को प्राप्त करने के लिये $\left(\dfrac{\equiv a}{९} \cdot \dfrac{१०}{९} \cdot \dfrac{८}{१}\right)$ प्रमाण को अपने योग्यसंख्यात रूपों से खंडित करके उसका बहुभाग ग्रहण करना पड़ता है। दूसरी राशि उक्त प्रमाण का एक भाग रूप ग्रहण करने पर प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि अपर्याप्तक के काल से पर्याप्तक का काल संख्यातगुणा होता है। स्पष्ट है, कि पृथ्वीकायिक सूक्ष्मराशि का $\frac{४}{५}$ वां भाग पर्याप्त जीव राशि ली गई है तथा $\frac{१}{५}$ भाग अपर्याप्त जीव राशि ली गई है।

त्रसकायिक जीव राशि का प्रमाण प्रतीक रूपेण $\dfrac{=}{४} \cdot \dfrac{a}{२}$ लिया गया है। गोम्मटसार जीवकांड गाथा २११ के अनुसार ४ प्रतरांगुल है, = जगप्रतर है, २ आवलि है, तथा a असंख्यात है। इस प्रकार, आवलि के असंख्यातवें भाग $\left(\dfrac{२}{a}\right)$ से विभक्त प्रतरांगुल (४) का भाग जगप्रतर (=) में देने से $\dfrac{=}{४ \div \dfrac{२}{a}}$ प्रमाण राशि त्रस जीव राशि प्राप्त होती है।

इसके पश्चात् ग्रंथकार ने प्रतीक रूप से, सामान्य वनस्पतिकायिक जीव राशि का प्रमाण यह दिया है :—

$$\text{सर्व जीवराशि रिण} \left[\dfrac{=}{४} \cdot \dfrac{a}{२}\right] \text{रिण} \left[\equiv a\left(\dfrac{\backsim}{४}\,-\right)\right]$$

अंतिम पद $\equiv a\left(\dfrac{\backsim}{४}\,-\right)$ समस्त तेजस्कायिक, पृथ्वीकायिक, वायुकायिक तथा जलकायिक राशियों के योग का प्रतीक है। ४ का अर्थ हम छः में से इन चारों कायों के जीव ले सकते हैं। शेष $\backsim$ तथा – का निश्चित अर्थ कहने में अभी समर्थ नहीं हैं।

उपर्युक्त जीव राशि में से असंख्यात लोक प्रमाण राशि घटाने पर साधारण वनस्पतिकायिक जीव राशि उत्पन्न होती है। यथा :

(सर्व जीवराशि रिण = रिण ≡a।४) ऋण (असंख्यात लोक प्रमाण)
४
२
a

असंख्यात लोक के लिये ९ संदृष्टि हो सकती है, पर यहां असंख्यात लोक प्रमाण से प्रत्येक वनस्पति जीव राशिका आशय है। जिसका प्रमाण ग्रंथकार ने, आगे, ≡a ≡a प्ररूपित किया है। शेष बचने-वाली संख्या के लिए ग्रंथकार ने १३≡ प्रतीक दिया है। यह संदृष्टि किस आधार पर ली गई है, स्पष्ट नहीं है, तथापि ९ और ४ अंकों के पास होने के कारण ली गई प्रतीत होती है। सम्भवतः १३ का स्पष्टीकरण षट्खंडागम पुस्तक ३ में पृष्ठ ३७२ आदि में वर्णित विवरण से हो सके।

इसके पश्चात्, साधारण बादर वनस्पतिकायिक जीवराशि

$\frac{१३\equiv}{९}$ द्वारा प्ररूपित की गई है जहाँ ९ असंख्यात लोक का प्रतीक है। इस राशि को १३≡ में घटाने पर $१३\equiv \frac{८}{९}$ प्रमाण राशि साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवराशि बतलाई गई है। यहाँ ८ का अर्थ, 'असंख्यात लोक रिण एक' है।

पुनः, साधारण बादर पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवराशि का प्रमाण प्रतीक रूपेण $\frac{१३\equiv}{९}.\frac{१}{७}$ लिया है जहाँ ७ अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण राशि को मान लिया गया है। इसे $\frac{१३\equiv}{९}$ में से घटाने पर प्रतीक रूपेण साधारण बादर अपर्याप्त जीव राशि $\frac{१३\equiv}{९}.\frac{६}{७}$ प्ररूपित की गई है। इस प्रकार अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण राशि में से एक घटाने पर जो राशि प्राप्त होती है, उसे ६ द्वारा निरूपित किया गया है।

पुनः, $१३\equiv \frac{८}{९}$ का $\frac{६}{७}$ वां भाग साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवराशि तथा $\frac{१}{७}$ वां भाग अपर्याप्त जीवराशि का प्रमाण बतलाया गया है।

असंख्यात लोक प्रमाण राशि जो ≡a ≡a ली गई थी, वह प्रत्येकशरीर वनस्पति जीवों का प्रमाण भी है।

आगे, ग्रंथकार ने अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीवराशि को असंख्यात लोक परिमाण बतलाकर ≡a प्रतीक रूपेण प्ररूपित किया है। इसमें जब असंख्यात लोकों का गुणा करते हैं तब प्रतिष्ठित जीवराशि का प्रमाण ≡a ≡a प्राप्त होता है।

बादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवराशि का प्रमाण: पृ. का. बा. प. जीवराशि $\div \frac{\text{आवलि}}{\text{असंख्यात}}$ है। यहाँ ग्रंथकार ने फिर से $\frac{\text{आवलि}}{\text{असंख्यात}}$ को $\frac{२}{a}$ नहीं लिया वरन् $\frac{१}{९}$ अथवा $\frac{१}{\text{असंख्यात लोक}}$ प्रमाण लिया है। इसलिये प्रमाण $\frac{=प९}{४a}.\frac{९}{१}$ आता है। आगे, बादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवराशि तक का वर्णन तथा प्रतीक स्पष्ट हैं।

इसके बाद, ग्रंथकार ने प्रतीकरूपेण दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चतुरिंद्रिय तथा पंचेन्द्रिय जीवों के प्रमाण मूल गाथा में प्रदर्शित किये हैं जो क्रमशः

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८४२४}{६५६१},\ \frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{६१२०}{६५६१};$$

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{५८६४}{६५६१}\text{ तथा }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{६१२०}{६५६१}\text{ हैं।}$$

जहां = जगप्रतर है, ४ प्रतरांगुल है, २ आवलि है, तथा a असंख्यात का प्रतीक है। इन राशियों की प्राप्ति क्रमशः निम्न रीति से स्पष्ट हो जावेगी।

$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}$ अलग स्थापित करते हैं तथा,

$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{९}\cdot\frac{१}{४}$, चार जगह अलग २ स्थापित करते हैं।

दो इंद्रिय जीवों का प्रमाण निकालने के लिये $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}$ में $\frac{१}{९}$ का गुणा करने से प्राप्त राशि को $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}$ में से घटा देने पर अवशिष्ट $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}$ राशि बचती है जिसे अलग स्थापित किये प्रथम पुंज में मिलाने पर

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}+\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{९}\cdot\frac{१}{४}$$

$$\text{अथवा }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}\cdot\frac{८१}{८१}+\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{९}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८१}{८१}\cdot\frac{९}{९}$$

$$\text{अथवा }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\ \frac{(८\times४\times८१)+(८\times८१\times९)}{८१\times८१}$$

$$\text{अथवा }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८४२४}{६५६१}\text{ प्रमाण राशि प्राप्त होती है।}$$

तीन इंद्रिय जीवों का प्रमाण प्राप्त करने की निम्न लिखित रीति है।

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}\text{ को }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}\text{ में से घटाते हैं जिससे}$$

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}\text{ रिण }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{९}\cdot\frac{१}{९}\text{ प्रमाण राशि}$$

अथवा $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}$ प्रमाण राशि प्राप्त होती है। इस अवशिष्ट राशि के समान खंड करने पर $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}\times\frac{१}{९}$ प्रमाण प्राप्त होता है।

इसे द्वितीय पुंज में मिलाने पर

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}\times\frac{९}{८१}+\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८}{९}\times\frac{(९)^3}{(९)^3}$$

$$\text{अथवा }\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{६१२०}{६५६१}\text{ प्रमाण प्राप्त होता है।}$$

उपर्युक्त क्रियाएं प्रतीक ९ को अंक मानकर की गई हैं। ये कहां तक ठीक हैं कहा नहीं जा सकता। ९ को अंक सम्भवतः इसलिये मान लिया गया हो कि ९ का विरलन किया गया है।

इसी प्रकार, चार इंद्रिय जीवों का प्रमाण—

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{८}{८१}\cdot\frac{८१}{८१}+\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८}{९}\cdot\frac{(९)^{3}}{(९)^{3}}$$

अथवा $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{५८६४}{६५६१}$ बतलाया गया है।

इसी तरह पांचइन्द्रिय जीवों का प्रमाण—

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{८१}\cdot\frac{१}{८१}+\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८}{९}\cdot\frac{(९)^{3}}{(९)^{3}}$$

अथवा $\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{५८३६}{६५६१}$ बतलाया गया है।

पर्याप्त जीवों की संख्या निकालने के लिये उपर्युक्त रीति में $\frac{२}{a}$ के बदले केवल संख्यात ५ लेते हैं, जिससे उल्लेखित प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

दोइंद्रिय अपर्याप्त जीवों की राशि को ग्रंथकार ने वास्तव में निम्न प्रकार निरूपित किया है :—

$$\frac{=}{४}\cdot\frac{२}{a}\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{८४२४}{६५६१}\text{ रिण }\frac{=}{४}\cdot(५)\cdot\frac{१}{४}\cdot\frac{६१२०}{६५६१}$$

अंतिम दो स्थापनाओं में कुछ ऐसे प्रतीक हैं जिनका अर्थ इस समय प्राप्त सामग्री से ग्राह्य नहीं है। ये क्रमशः मू., ◠, Ω, हैं। ◠ तो ग्रीक अक्षर सिगमा तथा Ω ग्रीक अक्षर ओमेगा तथा ९ रो के समान और a एल्फा के समान प्रतीत होता है। यद्यपि ९, ९ अंक से लिया गया प्रतीत होता है और a असंख्यात का प्ररूपण करता है, तथापि ◠ और Ω के विषय में खोज आवश्यक है, क्योंकि ये वर्णाक्षर विभिन्न युगों में यूनान में पूर्वीय देशों से प्रविष्ट हुए[1]।

गा. ५, ३१४–१५— अल्प बहुत्व (Comparability) :—

यहां $\frac{\text{पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी अपर्याप्त राशि}}{\text{बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवराशि}}$ निष्पत्ति का प्ररूपण $\frac{(=)/(४\times६५५३६\times५\times५)}{\frac{८}{a}}$ है।

४ प्रतरांगुल है, ८ घनावलि है, तथा a असंख्यात है।

यह प्रमाण $\frac{(=)\,a}{८\times४\times६५५३६\times५\times५}$ होता है। इस राशि को ग्रंथकार ने असंख्यात विभाग में रखा है। यह स्पष्ट भी है, क्योंकि, जगप्रतर का प्रमाण असंख्यात और a का प्रमाण भी असंख्यात है।

संज्ञी पर्याप्त, असंज्ञी पर्याप्त से संख्यात अथवा ४ गुने हैं।

तीन इंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्त राशि, तीन इंद्रिय पर्याप्त राशि से असंख्यातगुणी है। यह प्रमाण आवलि के प्रमाण पर निर्भर है।

इसी प्रकार, दोइंद्रिय अपर्याप्त जीवराशि से असंख्यातगुणी अप्रतिष्ठित प्रत्येक जीवराशि है जो पल्य के प्रमाण पर निर्भर है।

जलकायिक बादर पर्याप्त जीव $\frac{=}{४}\frac{प}{a}$ हैं तथा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव $\overline{\overline{\overline{Q}}}$ हैं।

---

१ Heath, A History of Greek Mathematics, vol. 1, pp 31-33 Edn. 1921.

इसलिये, $\frac{\equiv / Q}{\frac{= \text{प}}{४ a}}$ अथवा $\frac{\equiv ४ \cdot a}{= Q \cdot \text{प}}$

निष्पत्ति (ratio) को ग्रंथकार ने असंख्यात प्रमाण कहा है। यहां प्रतीक टाइप के अभाव में हम संख्यात के लिये Q द्वारा प्ररूपित कर रहे हैं। संदृष्टि के लिये ति. प. भाग २ पृ. ६१६-६१७ देखिये।

इसके पश्चात्, ग्रंथकार ने तेजस्कायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीवराशि और वायुकायिक बादर अपर्याप्त जीवराशि को असंख्यात कहा है।

निरूपण यह है :—

$$\left\{ \frac{\equiv a \cdot ८ \cdot}{९ \cdot ५} \right\} \Big/ \left\{ \frac{\equiv a \; १० \cdot १० \cdot १०}{९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ९} \text{ रिण } \frac{\equiv ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ९}{Q \; ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ९} \right\}$$

अथवा

$$\frac{\equiv a \cdot ८ \cdot \; ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot Q}{९ \cdot ५ \cdot [\equiv a \cdot १० \cdot १० \cdot १० \cdot \text{ रिण } \equiv ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ९]}$$

स्पष्ट है, कि यह राशि असंख्यात है। यहां बिंदु का उपयोग गुणन के लिये हुआ है।

इसके पश्चात्, ग्रंथकार ने साधारण बादर पर्याप्त और वायुकायिक सूक्ष्म पर्याप्त की निष्पत्ति को भी असंख्यात विभाग में रखा है। यथा :— $१३ \frac{\equiv}{९} . \frac{१}{७} \Big/ \equiv a \frac{१० . \; १० . \; १० . \; ८ . \; ४}{९ . \; ९ . \; ९ . \; ९ . \; ५}$

अथवा $\frac{(१३) \; ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ९ \cdot ५}{९ \cdot ७ \; a \cdot १० \cdot १० \cdot १० \cdot ८ \cdot ४}$

इससे ज्ञात होता है कि $\frac{१३}{a}$ की निष्पत्ति अवश्य ही असंख्यात होना चाहिये। अर्थात् १३ प्रतीक द्वारा प्ररूपित राशि $(a)^२$ के समान अथवा उससे बड़ी होना चाहिये।

साधारण बादर अपर्याप्त और साधारण बादर पर्याप्त की निष्पत्ति असंख्यात प्रमाण कही गई है। यथा :—

$\frac{१३ \equiv . ६}{६ \quad ७} \Big/ \frac{१३ \equiv १}{९ \quad ७}$, जो वास्तव में केवल संख्यातगुणी प्रतीत होती है। पर यह निष्पत्ति ६ के प्रमाण पर निर्भर है। यदि ६ को घनांगुल मान लिया जाय, तो उसमें प्रदेशों की संख्या असंख्यात मानकर यह निष्पत्ति असंख्यात मानी जा सकती है।

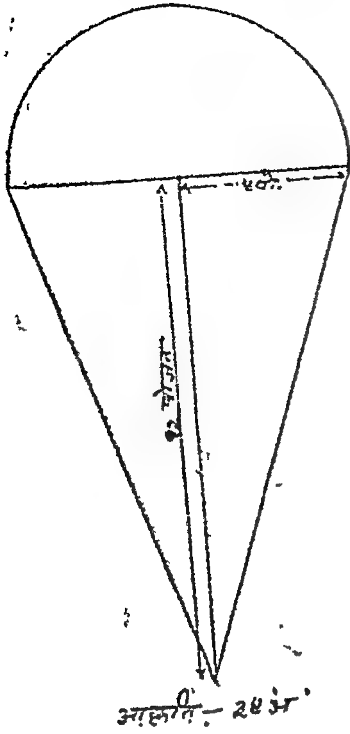
आगे ग्रंथकार ने सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण बादर अपर्याप्त की निष्पत्ति अनन्त मानी है। यथा:—

$\frac{१३ \equiv ८}{९ \times ५} \Big/ \frac{१३ \cdot \equiv \cdot ६}{९ \cdot ७ \cdot}$ अथवा $\frac{८ \times ७}{५ \times ६}$

ऐसा प्रतीत होता है कि इस निष्पत्ति को उपचार से अनन्त कहा गया है। इस समय कहा नहीं जा सकता कि ८, ६, ७ और ५ को यहां किन अर्थों में ग्रहण किया गया है।

गा. ४, ३१८— अवगाहनाओं के विकल्प का कथन, धवला टीका के गणित का अनुसंधान करते समय, सुगमता से सम्भव हो सकेगा।

गा. ५, ३१९-२०— यहां, सम्भवतः ग्रंथकार ने निम्न लिखित सांद्र के घनफल का प्ररूपण किया है। यह एक ऐसा उदग्र स्तम्भ है, जिसका आधार, समद्विबाहु त्रिभुज सहित अर्धवृत्त है। आधार शंख आकृति कहा जा सकता है।



इस शंखाकार आकृति (३४ अ) का क्षेत्रफल $\frac{\pi (त्र)^2}{२}$ + ४८ = ७३·२८ वर्ग योजन प्राप्त होता है। यदि स्तम्भ का उत्सेध ५ योजन हो, तो घनफल, आधार का क्षेत्रफल तथा उत्सेध का गुणनफल, होता है।

इसलिये, यहां घनफल

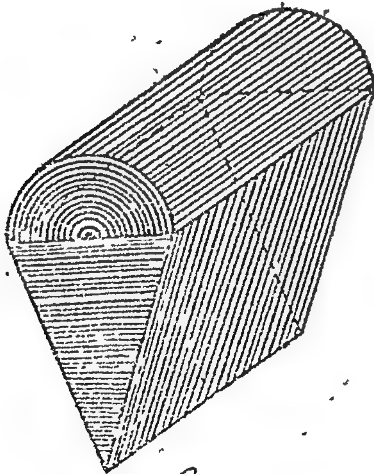
७३·२८ × ५

अथवा बादररूपेण ३६५ घनयोजन प्राप्त होगा। हो सकता है कि ग्रंथकार द्वारा निर्देशित आकृति की नियोजना दूसरी रही हो। ऐसे क्षेत्र के क्षेत्रफल का सूत्र ग्रंथकार ने दिया है:—

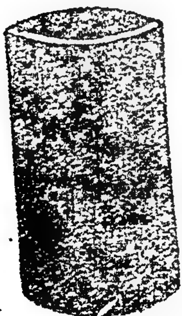
$$\left[(\text{विस्तार})^2 - \left(\frac{\text{मुख}}{२}\right) + \left(\frac{\text{मुख}}{२}\right)^2 \right] \times \frac{३}{४}$$

इसे शंखक्षेत्र का गणित कहा गया है।

यहां, विस्तार १२ योजन एवं मुख ४ योजन है।



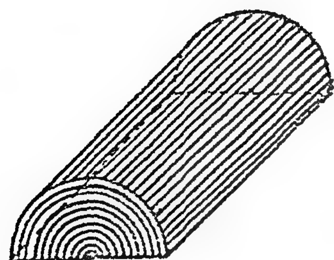
यह आकृति सम्भवतः चित्र ३४ ब में बतलाये हुए सांद्र के सदृश हो सकती है।



आगे, पद्म के आकार के सांद्र का घनफल निकालने के लिये सूत्र दिया गया है। यह सांद्र वेलनाकार होता है। इसका घनफल निकालने के लिये आधुनिक सूत्र $\pi . r^2 . h$. का उपयोग किया गया है, जहां π का मान ३ लिया गया है, 2r अथवा व्यास १ योजन है तथा उत्सेध १०००$\frac{१}{४}$ योजन है। आकृति—३४ स देखिये।

महामत्स्य की अवगाहना, आयतज (cuboid) के आकार का क्षेत्र है, जहां घनफल (लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई) होता है।

स्केल :- 4cm. = 1रा.



आकृति २४ द

भ्रमरक्षेत्र का घनफल निकालने के लिये बीच से विदीर्ण किये गये अर्द्ध बेलन के घनफल को निकालने के लिये उपयोग में लाया गया सूत्र दिया गया है।

सूत्र में π का मान ३ लिया गया है। आकृति—२४ द देखिये।

गा. ७, ५-६— ज्योतिषी देवों का निवास जम्बूद्वीप के बहुमध्य भाग में प्रायः १३ अरब योजन के भीतर नहीं है[१]। उनकी बाहरी चरम सीमा = X ११० योजन दी गई है। यह बाह्य सीमा एक
४९
राजु से अधिक ज्ञात होती है। जहाँ बाह्य सीमा १ राजु से अधिक है उस प्रदेश को अगम्य कहा गया है। ज्योतिषियों का निवास शेष गम्य क्षेत्र में माना गया है।

गा. ७, ७— चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे, ये सब ग्रंथकर्ता के अभिप्रायानुसार अंत में घनोदधि वातवलय (वायु और पानी की वाष्प से मिश्रित वायुमंडल) को स्पर्श करते हैं। तदनुसार, इन समस्त देवों के आसपास किसी न किसी तरह के वायुमंडल का उपस्थित होना माना गया है।

गा. ७, ८— पूर्व पश्चिम की अपेक्षा से उत्तर दक्षिण में स्थित ज्योतिषी देव घनोदधि वातवलय को स्पर्श नहीं करते। (१)

गा. ७, १३-१४— इन गाथाओं में फिर से प्रतरांगुल के लिये प्रतीक ४ तथा संख्यात के लिये Q (यथार्थ प्रतीक मूल ग्रन्थ में देखिये) लिया गया है।

---

१ इस महाधिकार में ग्रंथकार ने ज्योतिष का बृहत् प्ररूपण नहीं किया है किन्तु रूपरेखा देकर कुछ ही महत्त्वपूर्ण फलों का निर्देशन किया है। ज्योतिर्लोक विज्ञान का अस्तित्व भारत, बेबीलोन, मिश्र और मध्य अमेरिका में ईसा से ५००० से ४००० वर्ष पूर्व तक पाया जाता है। आकाश के पिंडों की स्थिति और अन्य घटनाओं के समय की गगनाएँ तत्कालीन साधारण यंत्रों पर आधारित थीं।

प्राचीन काल में, ग्रहणों का समय, एकत्रित किये गये पिछले अभिलेखों के आधार पर बतलाया जाता था। पर ग्रहण, बहुधा, बतलाये हुए समय पर घटित न होकर कुछ समय पहिले या उपरांत हुआ करते थे। इस प्रकार बादर रूप से प्राप्त उनके सूत्र प्रशंसनीय तो थे, पर उनमें सुधार न हो सके। जब मिलेटस के थेल्स (ग्रीस का विद्वान) ने ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पूर्व प्रयोग द्वारा बतलाया कि चंद्रमा पृथ्वी की तरह प्रकाशहीन पिंड है और जो प्रकाश हमें दिखाई देता है वह सूर्य का परावर्तित प्रकाश है तब ग्रहण का कारण चंद्र का सूर्य और पृथ्वी के बीच आना और पृथ्वी का सूर्य और चद्र के बीच आना माना जाने लगा। सर्वप्रथम, ग्रीस के निवासियों ने पृथ्वी को गोल बतलाया; क्योंकि जो नक्षत्र उन्हें उत्तर में दिखाई देते थे, उनके बदले में दक्षिण दिशा में दूर तक यात्रा करने में उन्हें नये नक्षत्र दिखलाई पड़े। साथ ही, चंद्रग्रहण के समय पृथ्वी की छाया सूर्य पर वृत्ताकार दिखाई दी। यहां तक कि इरेटोस्थिनीज (ईसा से २७६-१९६ वर्ष पूर्व) ने इसके आधार पर पृथ्वी की त्रिज्या भी गणना के आधार पर प्रायः ४००० मील से कुछ कम निश्चित कर दी।

गा. ७, ३६— पृथ्वीतल से चंद्रमा की ऊँचाई ८८० योजन बतलाई गई है। एक योजन का माप आधुनिक ४५४५ मील लेने पर चंद्रमा की दूरी ८८०×४५४५ अथवा ३७,९३६०० मील प्राप्त होती है। आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार वैज्ञानिकों ने चंद्रमा की दूरी प्रायः २,३८००० मील निश्चित की है।

गा. ७, ३६-३७— जहाँ आधुनिक वैज्ञानिकों ने चंद्रमा को स्वप्रकाशित नहीं माना है, वहाँ ग्रंथकार के अनुसार चंद्रमा को स्वयं प्रकाशवान मानकर उसे शीतल बारह हजार किरणों सहित बतलाया है। न केवल वहाँ की पृथ्वी ही, वरन् वहाँ के जीव भी उद्योत नामकर्म के उदय से संयुक्त होने के कारण स्वप्रकाशित कहे गये हैं।

गा. ७, ३९— ग्रंथकार के वर्णन के अनुसार जैन मान्यता में चंद्रमा अर्द्धगोलक (Hemispherical) है। उस अर्द्ध गोलक की त्रिज्या $\frac{२८}{६१}$ योजन मानी गई है अर्थात् व्यास प्रायः २($\frac{२८}{६१}$)×४५४५ = प्रायः ४१७२ मील माना गया है आधुनिक ज्योतिषविज्ञों ने अपने सिद्धान्तानुसार इस प्रमाण को प्रायः २१६३ मील निश्चित किया है। इस प्रकार ग्रंथकार के दत्त विन्यासानुसार यदि अवलोकनकर्ता की आंख पर चंद्रमा के व्यास द्वारा आपतित कोण निकाला जाय तो वह $\frac{५६}{६१ \times ८८०}$ रेडियन अथवा ३·५९ कला (3·59 minutes) होगा। आधुनिक यंत्रों से चंद्रमा के व्यास द्वारा आपतित कोण प्रायः ३१ कला (31′7″) प्राप्त हुआ है। यह माप या तो प्रकाश के किसी विशेष अज्ञात सिद्धान्तानुसार हमें यंत्रों द्वारा गलत प्राप्त हो रहा है अथवा ग्रंथकार द्वारा दिये गये माप में कोई त्रुटि है।

यहां एक विशेष बात उल्लेखनीय यह है कि जैन मान्यतानुसार अर्द्धगोलक ऊर्ध्वमुख रूप से अवस्थित है जिससे हम चंद्रमा का केवल निम्न भाग (अर्द्ध भाग) ही देखने में समर्थ हैं। इसी बात की आधुनिक वैज्ञानिकों ने पुष्टि की है कि चंद्रमा का सर्वदा केवल एक ही और वही अर्द्ध भाग हमारी ओर होता है और इस तरह हम चंद्रमा के तल का केवल ५९% भाग (कुछ और विशेष कारणों से) देखने में समर्थ हैं। वेधयंत्रों से प्राप्त अवलोकनों के आधार पर कुछ खगोलशास्त्रियों का अभिमत है कि मंगल आदि ग्रहों के भी केवल अर्द्ध विशिष्ट भाग पृथ्वी की ओर सतत रहते हैं। इसका कारण, उनका अक्षीय परिभ्रमण उपधारित किया गया है।

गा. ७, ६५— इसके पश्चात, ग्रंथकार ने सूर्य की ऊँचाई चंद्रमा से ८० योजन कम अथवा ८०० योजन (आधुनिक ८००×४५४५ = ३६३६००० मील) बतलाई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने सूर्य की दूरी प्रायः ९२, ७००,००० मील निश्चित की है।

ईसासे प्रायः चार सौ वर्ष पूर्व ग्रीक विद्वानों ने आकाश पिंडों के दैनिक परिभ्रमण का कारण पृथ्वी का स्वतः की अक्ष पर परिभ्रमण सोचा। पर, एरिस्टाटिल (ईसासे ३८४–३२२ वर्ष पूर्व) ने पृथ्वी को केन्द्र मानकर शेष चंद्र, सूर्य तथा ग्रहों का परिभ्रमण क्लिष्ट रीति द्वारा निश्चित किया। यह ज्ञान अपना प्रभाव २००० वर्ष तक जमाये रहा। इसके विरुद्ध पोलेण्ड के कापरनिकस (१४७३–१५४३) ने सम्पूर्ण जीवन के परिश्रम के पश्चात् सूर्य को मध्य में निश्चित कर शेष ग्रहों का उसके परितः परिभ्रमणशील निश्चित किया। सूर्य से उनकी दूरियां भी निश्चित कीं। इसके पश्चात्, प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री जान केपलर (१५७१–१६३०) ने ग्रहों के पथों को ऊनेन्द्र निश्चित किया तथा सूर्य को उनकी नाभि पर स्थित बतलाया। उसने यह भी निश्चित किया कि ग्रह से सूर्य को जोड़नेवाली त्रिज्या समान समयमें समान क्षेत्रों (areas) को तय करती है; और यह कि किसी ग्रह के आवर्त काल के अंतराल के वर्ग (square of the periodic time) और उसकी सूर्य से माध्य दूरी (mean distance) के घन, की निष्पत्ति निश्चल रहती है। दूरबीन ने भी बृहस्पति और शनि आदि ग्रहों के उपग्रहों को खोजने में सहायता की। सन् १६८७ में न्यूटन ने विश्वको जान केपलर के फलों

गा. ७, ६६— जैन मान्यतानुसार, सूर्य को प्रकाशवान तथा १२००० उष्णतर किरणों से संयुक्त माना है। उसमें जीवों का रहना निश्चित किया है तथा उन्हें भी स्वतः प्रकाशित बतलाया है।

गा. ७, ६८— सूर्य को भी चंद्रमा की तरह अर्द्ध गोलक बतलाया गया है, जहां उसका विस्तार $\frac{४८}{६१}$ योजन अथवा $\frac{४८}{६१} \times ४५४५$ = प्रायः ३५७६ मील निश्चित किया गया है। वैज्ञानिकों ने व्यास का प्रमाण ८६४,००० मील निश्चित किया है।

अवलोकनकर्ता की आंख पर जैन मान्यानुसार दत्त विन्यास के आधार पर सूर्य का व्यास $\frac{४८}{६१ \times ८००}$ रेडियन अथवा ३·३८ कला (3·38 minuts) आपतित करेगा। पर, आधुनिक यंत्रों द्वारा इस कोण का मध्य मान प्रायः ३२ कला (32 minuts) निश्चित किया गया है।

गा. ७, ८३— बुध ग्रह की ऊँचाई पृथ्वीतल से लम्बरूप ८८८ योजन अथवा ४०,३५,९६० मील बतलाई गई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने सिद्धांतों के आधार पर इस दूरी को प्रायः ४६,९२९,२१० मील निश्चित किया है। इन्हें भी ग्रंथकार ने अर्द्ध गोलक कहा है।

गा. ७, ८९— शुक्र ग्रहों की ऊंचाई पृथ्वीतल से लम्ब रूप ८९१ योजन अथवा ४,०४९,५९५ मील बतलाई गई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह दूरी २५,६९८,३०८ मील निश्चित की है। इन नगर तलों की किरणों की संख्या २५०० बतलाई गई है।

गा. ७, ९३— वृहस्पति ग्रहों की ऊँचाई पृथ्वीतल से लम्ब रूप ८९४ योजन अथवा ४,०६३,२३० मील बतलाई गई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह दूरी ३९०,३७६,८९२ मील निश्चित की है।

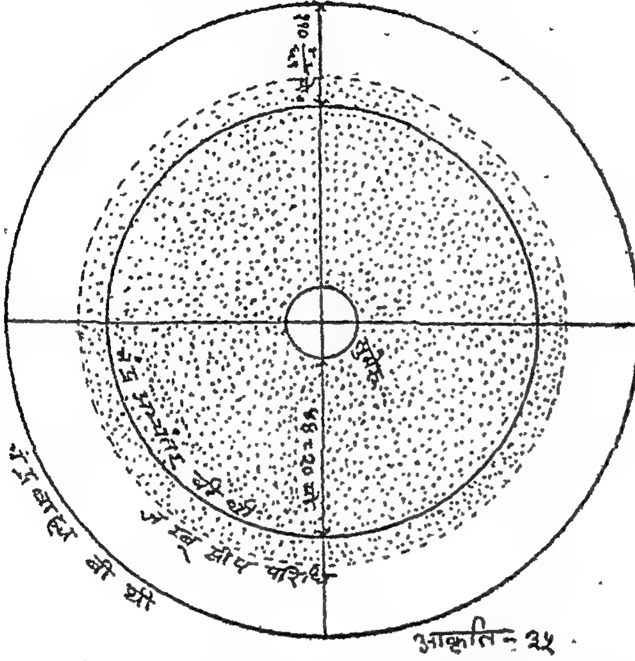
गा. ७, ९६— मंगल ग्रहों की ऊँचाई पृथ्वीतल से लम्ब रूप ८९७ योजन अथवा ४०,७६,८६५ मील बतलाई गई है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह दूरी ४८,६४३,०३८ मील निश्चित की है।

गा. ७, ९९— शनि ग्रहों की ऊँचाई पृथ्वीतल से लम्ब रूप ९०० योजन अथवा ४०,९०,५०० मील बतलाई गई है। आधुनिक सिद्धान्तों पर यह दूरी ७९३,१२९,४१० मील निश्चित की गई है।

गा. ७, १०४-१०८— इसी प्रकार, नक्षत्रों की ऊँचाई ८८४ योजन तथा अन्य तारागणों की ऊँचाई ७९० योजन है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने ताराओं को सूर्य सदृश प्रकाश का पुंज माना है। सबसे पास के तारे Alpha Centauri की दूरी उन्होंने सूर्य की दूरी से २२४,००० गुनी मानी है। अन्य तारों की दूरी तुलना में अत्यधिक है।

के आधार पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति का एक महान् नियम दिया। इसी शक्ति के आधार पर ज्वार और भाटे की घटनाओं को समझाया गया। सन् १८४५ के पश्चात् तीन नवीन ग्रहों यूरेनस, नेपच्यूब और प्लूटो का गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर आधारित प्रवैगिकी तथा दूरबीन की सहायता से आविष्कार हुआ। दूरबीन के सिवाय, वितन्तु दूरबीन तथा सूर्यरश्मिविश्लेषण और फोटोग्राफी आदि से अब आकाश के पिंडो की बनावट, उनके वायुमंडल, उनकी गति आदि के विषय में निश्चित रूप से आश्चर्यजनक एवं महत्त्वपूर्ण बातें बतलाई जा सकती हैं। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी का वायुमंडल केवल प्रायः २०० मील की ऊँचाई तक निश्चित किया है। सूर्य, चंद्र और ग्रहों के विषय में तो उनकी जानकारी एक चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। चंद्रकलाओं का कारण प्रकाशहीन चंद्र का सूर्य से प्रकाश प्राप्त होना तथा चंद्र का विशेष रूप से गमन करना बतलाया गया है। सूर्य में उपस्थित काले धब्बों का आवर्तीय समय में दृष्टिगोचर होना भी सूर्य का विशेष रूप से गमन तथा उसी में उपस्थित विशेष तत्त्वों को बतलाया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अब सूर्य और चंद्र ग्रहण का बिल्कुल ठीक समय गणना द्वारा निकाला जाता है। सूर्य के स्वपरिभ्रमण को सूर्यरश्मिविश्लेषण या रंगावलेक्ष यंत्र द्वारा डाप्लर के सिद्धान्त का उपयोग कर परिपुष्ट किया गया है। इनके सिवाय, वर्षों में

गा. ७, ११७ आदि— जितने वलयाकार क्षेत्र में चंद्रबिम्ब का गमन होता है उसका विस्तार ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। इसमें से वह १८० योजन जम्बूद्वीप में तथा ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन लवण समुद्र में रहता है। आकृति— ३५ देखिये।



आकृति—३५

चित्र का माप प्रमाण नहीं है:— बिन्दुओं के द्वारा दर्शाई गई परिधि जम्बूद्वीप की है जिसका विस्तार १००००० योजन है। मध्य में सुमेरु पर्वत है जिसका विस्तार १०००० योजन है। चंद्रों के चारक्षेत्र में पंद्रह गलियां हैं जिनमें प्रत्येक का विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है, क्योंकि उन्हीं में से केवल चंद्रमा का गमन होता है। चूंकि यह गमन एकसा होना चाहिये अर्थात् चंद्र का हटाव अकस्मात् (प्रायः ४८ घंटे के पश्चात्) एक बीथी से दूसरी बीथी में न होकर प्रतिसमय एकसा होना चाहिये, इसलिये चंद्र का पथ समापन (winding) और असमापन (unwinding) कुंतल (spiral) होना चाहिये। एक-एक बीथी का अंतराल ३५$\frac{२१४}{४२७}$ योजन अथवा [प्रायः ३५$\frac{१}{२}$ × ४५४५ मील], १६१३४७$\frac{१}{२}$ मील है। वलयाकार क्षेत्र का विस्तार ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन अथवा [प्रायः ५११ × ४५४५ मील], २३२२४९५ मील है।

दृष्टिगोचर होनेवाले धूमकेतुओं तथा विविध समय पर उल्कापात करनेवाले उल्कातारों के पथों को भी निश्चित किया जा चुका है। पृथ्वी का भ्रमण न केवल अपनी अक्ष पर, वरन् सूर्य के परितः भी माना जाता है। मंडल का १२ मील प्रति घंटे की गति से, हरकुलीज नामक नक्षत्र के विगा तारे के पास solar apex (सौर्यशीर्ष) की ओर गमन निश्चित किया गया है। पर, वैज्ञानिक पृथ्वी की यथार्थ गति आज तक नहीं निकाल सके और आइंसटीन के कथनानुसार प्रयोग द्वारा कभी न निकाल सकेंगे। पृथ्वी की शुद्ध एवं निरपेक्ष गति को कुछ अवधारणाओं के आधार पर माइकेलसन और मारले ने अपने अति सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा निकालने का प्रयत्न किया था, पर वे जिस फल पर पहुँचे उससे भौतिक शास्त्र में नवीन उपधारणाओं (postulates) का पुनर्गठन आइंसटीन ने सापेक्षवाद के आधार पर किया। यह सिद्धान्त तीन प्रसिद्ध प्रयोगों द्वारा उपयुक्त सिद्ध किया जा चुका है।

आज कल ज्योतिषशास्त्रियों ने सम्पूर्ण आकाशको ८८ खंडों में, ८८ नक्षत्रों के आधार पर विभाजित किया है। आकाश के किसी भी भाग का अच्छा से अच्छा अध्ययन तथा उस भाग में आकाशीय पिंडों का गमन फोटोग्राफी के द्वारा हो सकता है। तारों के द्वारा विकीर्णित प्रकाश और ताप ऊर्जा (energy) के आपेक्षिक मानों को सूक्ष्म रूप से ठीक निश्चित करने के लिये कई महत्ता संहतियां (magnitude systems) स्थापित की गई हैं, वे क्रमशः (Visual Magnitudes) दृष्ट या आभासी महत्ताएं, (Photographic Magnitudes) भाचित्रणीय महत्ताएँ (Photo-visual Magnitudes) भाभासी महत्ताएं और (Photo-electric Magnitudes) भाविद्युतीय महत्ताएं आदि हैं। सन् १७१८ में महान् ज्योतिषी हेली ने बतलाया कि हिपरशसके समय से तीन उज्ज्वल तारे सीरियस, आर्कचरस

जम्बूद्वीप में दो चंद्र माने गये हैं जो सम्मुख स्थित रहते हैं। चारों ओर का क्षेत्र संचरित होने के कारण चारक्षेत्र कहलाता है।

गा. ७, १६१— अभ्यंतर चंद्रवीथी की परिधि ३१५०८९ योजन तथा त्रिज्या (जम्बूद्वीप के मध्य बिन्दु से) ४९८२० योजन मानी गई हैं। यदि π का मान $\sqrt{१०}$ अथवा प्रायः ३·१६ लिया जाय तो परिधि (४९८२०) × २ × ३·१६ = ३१४७०२·४ योजन प्राप्त होती है।

गा. ७, १७८— बाह्य मार्ग की परिधि का प्रमाण ३१८३१३ $\frac{३९४}{२६६}$ योजन है।

गा. ७, १८९— इस गाथा में एक महान् सिद्धान्त निहित है। जब त्रिज्या बढ़ती है तब परिधिपथ बढ़ जाता है और नियत समय में ही वह पथ पूर्ण करने के लिये चंद्र व सूर्य दोनों की गतियां बढ़ती जाती हैं जिससे वे समान काल में असमान परिधियों का अतिक्रमण कर सकें। उनकी गति काल के असंख्यातवें भाग में समान रूप से बढ़ती होगी अर्थात् बाह्य मार्ग की ओर अग्रसर होते हुए उनकी गति समत्वरण (uniform acceleration) से बढ़ती होगी और अन्तः मार्ग की ओर आते हुए सम विमन्दन (uniform retardation) से घटती होगी।

गा. ७, १८६— चंद्रमा की रेखीय गति (linear velocity) अन्तः वीथी में स्थित होने पर १ मुहूर्त (या ४८ मिनिट) में ३१५०८९ ÷ ६२ $\frac{२३}{२२१}$ = ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन होती है। अथवा, चंद्रमा की गति इस समय १ मिनिट में प्रायः

$$\frac{५०७४ \times ४५४५}{४८} = ४८०४४० \text{ मील रहती है।}$$

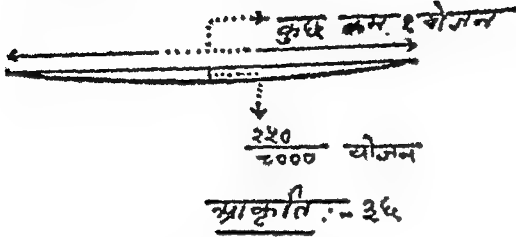
गा. ७, २००— जब चंद्र बाह्य परिधि में स्थित रहता है तब उसकी गति १ मिनिट में प्रायः

$$\frac{५१२५ \times ४५४५}{४८} = ४८५२७३\frac{२१}{४८} \text{मील रहती है।}$$

और एल्डेबरान अपने पड़ोसी तारों की अपेक्षा अपनी स्थिति से कुछ मापने योग्य मान में हट गये हैं। तब तक तारों को एक दूसरे की अपेक्षाकृत स्थिति में सर्वदा स्थिर माना जाता था और इस आविष्कार ने 'तारों के ब्रह्माण्ड' की अवधारणा में क्रांति उत्पन्न कर दी। क्या और अन्य तारे भी हजारों वर्षों में ऐसी ही गति से गमन कर अपनी अपनी स्थिति से हटते होंगे? हेली के इस आविष्कार का नाम Proper Motions of Stars रखा गया।

तारों के इन यथार्थ गमनों Proper Motions को समझाने के लिये सम्पूर्ण सौर्यमंडल का गमन हरकुलीज नक्षत्र के विगा तारे की ओर मानने का प्रयास किया गया है, पर डब्लु. एम्. स्मार्ट के शब्दों में, "At present, we are ignorant of the propermotions of all but the nearest stars; when our inquiries embrace the most distant regions of the stellar universe the solar motion can then be defined in relation to the whole body of stars regarded as a single immense group. Even then we are no nearer the conception of absolute solar motion, for extra-stellar space is unprovided with anythings in the shape of fixed land marks". यह स्थिति भी असंतोषजनक है, क्योंकि सूर्य या तारों की प्रकेवल गति (absolute velocity) निकालना एक कल्पना (abstraction) मात्र है। इससे केवल सूर्य की गति की दिशा का ज्ञान भर होता है। इन यथार्थ गमनों (Proper motions) में चक्रीय परिवर्तन भी होते हैं। सन् १९०४ के पूर्व वैज्ञानिकों ने यही धारणा बना रखी थी कि तारों का गमन (movement) किसी अचल नियम के आधार पर नहीं होता है। उसके पश्चात् सन् १९०४ में प्रोफेसर केपटिन (Kapteyn) ने तारों के दो प्रकार की धाराओं (streams of star)

गा. ७, २०१ आदि— चंद्रमा की कलाओं[1] तथा ग्रहण को समझाने के लिये चंद्रबिम्ब से ४ प्रमाणांगुल नीचे कुछ कम १ योजन विस्तारवाले काले रंग के दो प्रकार के राहुओं की कल्पना की गई है, एक तो दिन राहु और दूसरा पर्व राहु। राहु के विमान का बाहल्य $\frac{२५०}{८०००}$ योजन है। आकृति–३६ देखिये।



मीलों में इसका प्रमाण ४५४५ × $\frac{२५०}{८०००}$ अथवा १४२$\frac{१}{३२}$ मील है।

दिनराहु की गति चंद्रमा की गति के समान मानी गई है और उसे कलाओं का कारण माना गया है।

गा. ७, २१३— चांद्र दिवस का प्रमाण २१$\frac{२३}{४४२}$ मुहूर्त अथवा २१$\frac{२३}{४४२}$ × ४८ मिनिट अथवा २४ घंटे ५०$\frac{११}{२२१}$ मिनिट माना गया है।

गा. ७, २१६— पर्वराहु को छह मासों में होनेवाले चंद्रग्रहण का कारण माना गया है।

गा. ७, २१७— इस राहु का इस स्थिति में गतिविशेषों से आ जाना नियम से होता माना गया है।

चंद्रों की तरह जम्बूद्वीप में दो सूर्य माने गये हैं जो चार क्षेत्रों में उसी समान गमन करते हैं। विशेषता यह है कि सूर्य की १८४ गलियां हैं। प्रत्येक गली का विस्तार सूर्य के व्यास के समान है तथा प्रथम पथ और मेरु के बीच का अंतराल ४४८२० योजन है जो चंद्र के लिये भी इतना ही है।

प्रत्येक बीथी का अंतराल २ योजन अथवा ९०९० मील निश्चित किया गया है।

गा. ७, २२८— जम्बूद्वीप के मध्य बिन्दु को केन्द्र मान कर सूर्य के प्रथम पथ की त्रिज्या (५०००० –१८० = ४९८२० योजन है। दोनों सूर्य सम्मुख स्थित रहते हैं।

गा. ७, २३७— अंतिम पथ में स्थित रहने पर दोनों सूर्यों के बीच का अंतर २ × (५००३३०) योजन रहता है।

सूर्यपथ भी चंद्रपथ के समान समापन winding और असमापन unwinding कुंतल spiral के समान होता है। चन्द्रमा सम्बन्धी १५ ऐसे चक्र और सूर्य के सम्बन्ध में १८४ ऐसे चक्र होते हैं।

गा. ७, २४६ आदि— भिन्न २ नगरियों को दर्शाने के लिये उनकी परिधियां (उनकी केन्द्र से दूरी अथवा अक्षांश रेखाएं) दी गई हैं। ये नगरियां इस प्रकार स्थित मानी गई हैं कि प्रत्येक की परिधि उत्तरोत्तर क्रमशः १७१५७$\frac{६}{८}$ और १४७८६ योजन बढ़ी हुई ली गई हैं।

---

१ वैज्ञानिकों ने दूरबीन के द्वारा ग्रहों में भी चंद्र के समान कलायें देखी हैं जिनका समाधान उसी सिद्धान्त पर होता है जिस सिद्धान्त पर चंद्रमा की कलाओं के होने का समाधान होता है। त्रिलोकसार में उपर्युक्त कथन के सिवाय एक और कथन यह है—अथवा कलाओं का कारण चंद्रमा की विशेष गति है।

का आविष्कार किया जिसके सम्बन्ध में श्री डब्लु. एम्. स्मार्ट के ये शब्द पर्याप्त हैं, "Star streaming remains a puzzling phenomenon : tentative explanations have indeed been offered, but it would appear that its complete elucidation is a task for future Astronomers." प्रथम महत्ता (first magnitude) का तारा सीरियस जिसकी दूरी ४७,०००,०००,०००,००० मील मानी गई है, दृष्टिरेखा की तिर्यक् (cross) दिशा में १० मील प्रति सेकण्ड की गति से चलायमान निश्चित किया गया है। रश्मिविश्लेषक यंत्रों के द्वारा तारों का भिन्न २ श्रेणियों में विभाजन कर, भिन्न-भिन्न रंगोंवाले तारों के भिन्न-भिन्न तापक्रम को निश्चित कर उनकी,

गा. ७, २६५ आदि— जिस प्रकार चंद्रमा की गति बाह्य मार्ग की ओर अग्रसर होते हुए समत्वरण से बढ़ती है उसी प्रकार सूर्य की भी गति होती है। वह भी समान काल में असमान परिधियों को सिद्ध करता है। एक मुहूर्त अथवा ४८ मिनिट में प्रथम पथ पर उसकी गति ५२५१$\frac{२९}{६०}$ योजन अथवा एक मिनिट में प्रायः

$$\frac{५२५१\frac{१}{२} \times ४५४५}{४८} = ४९७२५१\frac{३९}{९६}$$ मील होती है।

गा. ७, २७१— १८४वें मार्ग में उसकी गति १ मिनिट में प्रायः

$$\frac{५३०५\frac{१}{४} \times ४५४५}{४८} = ५०२३४०\frac{१६५}{१९२}$$ मील होती है।

गा. ७, २७२— चंद्र की तरह सूर्य के नगरतल के नीचे केतु के (काले रंग के) विमान का होना माना गया है। जहां विस्तार और बाहल्य राहु के विमान के समान माना गया है।

गा. ७, २७६— यहां ग्रंथकार ने समस्त जम्बूद्वीप तथा कुछ लवण समुद्र में होनेवाले दिन-रात्रि के प्रमाण को बतलाने के लिये मुख्यतः १९४ परिधियों या अक्षांशों में स्थित प्रदेशों का वर्णन किया है।

गा. ७, २७७— जब सूर्य प्रथम पथ में अर्थात् सबसे कम त्रिज्यावाले पथपर स्थित होता है तो सब परिधियों में १८ मुहूर्त का दिन अथवा १४ घंटे २४ मिनिट का दिन और १२ मुहूर्त की रात्रि अथवा ९ घटे ३६ मिनिट की रात्रि होती है (यहां मुहूर्त को दिन-रात का ३० वां भाग लिया गया है)। ठीक इसके विपरीत जब सूर्य बाह्यतम पथ में रहता है तब दिन १२ मुहूर्त का तथा रात्रि १८ मुहूर्त की होती है।

गा. ७, २९०— ग्रंथकार ने उपर्युक्त प्रकार से दिन-रात्रि होने का कारण सूर्य की गति विशेष बतलाया है।

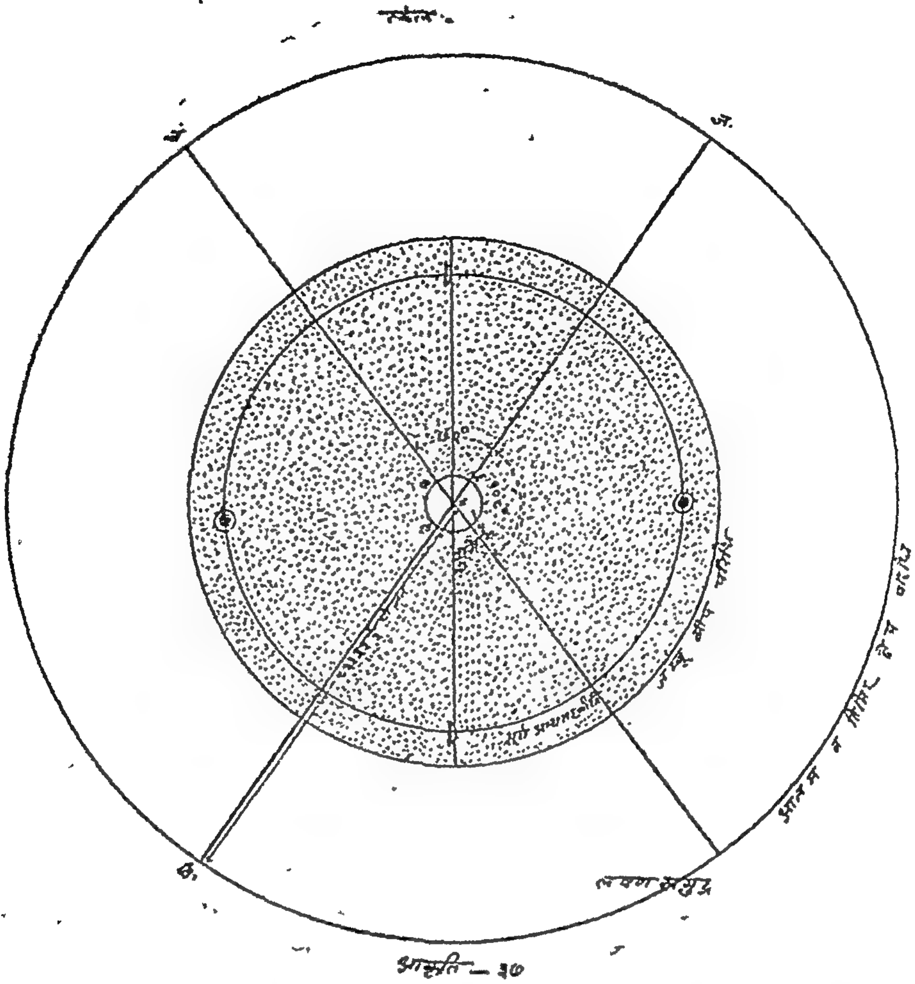
गा. ७, २९२-४२०— इन गाथाओं में दिये गये आतप व तिमिर क्षेत्रों का स्पष्टीकरण निम्न लिखित चित्र से स्पष्ट हो जावेगा। यहां आकृति–३७ देखिये (पृ. ९३)।

जब सूर्य प्रथम बीथी पर स्थित होता है उस समय आतप व तिमिर क्षेत्र गाड़ी की उद्धि (spokes) के प्रकार के होते हैं। मान लिया गया है कि किसी विशिष्ट समय पर (at a particular instant) उस बीथी पर सूर्य स्थिर हैं। उस समय बननेवाले आतप व तिमिर क्षेत्र के वर्णन के लिये गाथा २९२-९५, ३४३ और ३६२ देखिये।

जब सूर्य बाह्य पथ में स्थित रहता है तब चित्र ठीक विपरीत होता है, अर्थात् तापक्षेत्र तिमिरक्षेत्र के समान और तिमिरक्षेत्र तापक्षेत्र के समान हो जाता है।

दृष्टिरेखा (line of sight) में गति को भी निश्चित किया गया है। २०० मील प्रति सेकंड से लेकर २५० मील प्रति सेकंड तक की गतिवाले तारे प्रयोगों द्वारा प्रसिद्ध किये जा सके हैं। ये गतियां उन तारों के यथार्थ गमनों (proper motions) का होना सिद्ध करती हैं। तारे और भी कई तरह के होते हैं, जैसे द्विमय या युग्म तारे (double stars), चल तारे (variable stars) राक्षस और बौने तारे (giant and dwarf stars) इत्यादि।

अन्त में नीहारिकाओं (Nebulae) के विशद विवेचन में न पड़कर केवल उनके प्रकारों तथा उनके अवलोकनीय प्रयोगों द्वारा आधुनिक ब्रह्माण्ड की अवधारणा की झलक देखना ही पर्याप्त होगा। अपने लक्षणों के आधार पर तारापुंज नीहारिकाओं को चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है : अंध नीहारिकाएं (dark nebulae) धुंधली नीहारिकाएं (diffuse luminous nebulae),



आकृति—३७

चित्र में चन्द्रमा और सूर्य की स्थितियां किसी समय पर क्रमशः ☾ और ⊙ प्रतीकों द्वारा दर्शाई गईं हैं। इस दशा में आतप और तम क्षेत्र के अनुपात ३:२ में हैं अर्थात् आतप क्षेत्र १०८°, १०८° तथा तम क्षेत्र ७२°, ७२° के अन्तर्गत निहित हैं। आतप व तिमिर क्षेत्रों का विस्तार केन्द्र से लेकर लवण समुद्र के विष्कम्भ के छठवें भाग तक है अथवा $५०००० + \frac{२०००००}{६} = ८३३३३\frac{१}{३}$ योजन तक है। मेरु पर्वत के ऊपर क ख भाग में $९४८६\frac{३}{५}$ योजन चाप पर सूर्य का आतप क्षेत्र रहता है और क ग भाग में $६३२३\frac{२}{५}$ योजन चाप पर तिमिर क्षेत्र रहता है चाहे चन्द्रमा वहां हो या न हो। इसी प्रकार सम्मुख स्थित अन्य सूर्य का आतप और तिमिर क्षेत्र रहता है। ये क्षेत्र सूर्य के गमन से प्रति क्षंण बदलते रहते हैं अथवा सूर्य की स्थिति के अनुसार तिष्ठते हैं। सूर्य की इस स्थिति में अन्य परिधियों पर भी इसी अनुपात में आतप एवं तिमिर क्षेत्र होते हैं।

ग्रहीय नीहारिकाएं (planetary nebulae) और कुन्तल नीहारिकाएं (spiral nebulae).

रंगावलेक्ष (spectroscope) या रश्मिविश्लेषक यंत्र द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि तारों के गोल पुंज (globular clusters) दृष्टिरेखा की दिशा में मध्यमान से (average) ७५ मील प्रति सेकंड की गति से चलायमान हैं। उपर्युक्त श्रेणियों में प्रथम तीन प्रकार की नीहारिकायें तो आकाश-गंगा के क्षेत्र के आसपास पाई जाती हैं और अन्तिम श्रेणी की नीहारिकाएं आकाशगंगा से दूर पाई जाती हैं। रश्मिविश्लेषक यंत्रों की सहायता से प्राप्त फलों से वैज्ञानिकों ने निश्चित किया है कि भिन्न भिन्न दूरी पर स्थित नीहारिकाएं दूरी के अनुसार अधिकाधिक प्रवेग से दृष्टिरेखा (line of sight

यहां आतप क्षेत्र का क्षेत्रफल सूत्रानुसार निम्न लिखित होगा—

क्षेत्रफल म घ छ $= \frac{१}{२}(\text{त्रिज्या})^{२} \times (\text{कोण रेडियन माप में})$

$= \frac{१}{२}(८३३३३\frac{१}{३})^{२} \cdot \frac{१०८}{१८०} \cdot \pi$

$= \frac{१}{२}(८३३३३\frac{१}{३})^{२} \cdot \frac{३}{५}\pi$

π का मान $\sqrt{१०}$ लेने पर, ग्रंथकार ने इस क्षेत्रफल को प्रायः ६५८८०७५०००० वर्ग योजन निश्चित किया है। इसी प्रकार तिमिर क्षेत्र म घ ज का क्षेत्रफल

$= \frac{१}{२}(८३३३३\frac{१}{३})^{२} \cdot \frac{७२}{१८०}\pi$ होता है।

π का मान $\sqrt{१०}$ लेकर यह प्रमाण प्रायः ४३९२०५०००० वर्ग योजन होता है।

३४३वीं गाथा के बाद विशेष विवरण में ताप क्षेत्र निकालने का साधारण सूत्र दिया गया है। किसी विशिष्ट दिन, जिसमें M मुहूर्त हो, जब कि सूर्य nवीं वीथी पर स्थित हो तब P परिधि पर तापक्षेत्र निकालने के लिये निम्न लिखित सूत्र है।

---

or radial velocity) या अरीय दिशा में हमसे दूर होती जा रही हैं। जैसे २३,०००,००० प्रकाश वर्ष दूर की नीहारिकाएं प्रायः ३००० मील प्रति सेकण्ड की गति से दृष्टिरेखा में, और १०५,०००,००० प्रकाश वर्ष दूर की नीहारिकाएं प्रति सेकण्ड १२,००० मील प्रति सेकण्ड की गति से दृष्टिरेखा में हमसे दूर होती जा रही हैं।

सन् १७५० में दूरबीन की सहायता से नीहारिकाओं के प्रदेश का आवरण हटा और गठित गोल पुंज (compact globular cluster), चपटे होते जानेवाले ऊनेन्द्रज की भांति (flattening ellipsoidal) और असमापन कुन्तल (unwinding spiral) नीहारिकाएं दृष्टिगोचर हुईं, जिनमें औसत नीहारिका हमारे सूर्य से चमक में ८५०००००० गुनी तथा मात्रा में १०००००००००० गुनी निश्चित हुई, जहां दिखनेवाली धुंधलाहट, उसकी दूरी के अनुसार थी। हमारी आकाशगंगा एक पुरानी असमापन कुन्तल नीहारिका निश्चित की गई जिसकी अंतर्तारीय वरिमा (interstellar space) में विभिन्न प्रकार की वायु के बादल और धूल होने से आकाशगंगा के हृदय और धारा (edge) में स्थित नीहारिकाओं की ऊर्जाएँ (energy) बड़े परिमाण में हम तक पहुँचने से रुक गईं। यह भी देखा गया कि वरिमा (space) के किसी निश्चित क्षेत्र में नीहारिकाओं की संख्या दूरी के अनुसार समरूप से बढ़ती है।

वैज्ञानिकों ने फिर नीहारिका के विषय में आधुनिक दूरबीन से चार प्रकार के माप प्राप्त किये। ये क्रमशः आभासी महत्ता (apparent magnitude), विस्थापन महत्ता (displacement magnitude), संख्या महत्ता (number magnitude) और रंग विस्थापन न्यास (colour displacement data) हैं। इस प्रकार प्राप्त न्यासों से उन्होंने सम्भव ब्रह्माण्डों के विषय में सिद्धान्तों के परिणामों की तुलना कर उन्हें सुधारने का प्रयास किया। उनके सम्भव ब्रह्माण्डों की एक झलक निम्न लिखित संकलित अंग्रेजी अवतरणों से अधिक स्पष्ट हो जावेगी क्योंकि उसके अनुवाद से शायद कुछ भ्रांति हो जावे।

"With the relativist cosmologist's postulations that the geometry of space is determined by its contents & that all cbservers regardless of locations, see the same general picture of the Universe, it is proved mathematically that either the universe is unstable, expanding or contracting. Another aspect of such universe depends upon the curvature calculated. When redshifts are interpreted as velocity shifts, curvature is taken positive ensuring a closd space, finite volume and a definite universe at a

तापक्षेत्र $= \frac{M(P)}{६०}$ योजन। यहां M का मान, n वीं बीथी के प्रमाण से निकाला जा सकता है।

इस प्रकार, तापक्षेत्र न केवल दिन की घटती बढ़ती पर, वरन् परिधि पर भी निर्भर रहता है।

इसका स्पष्टीकरण यह है— कोई भी परिधि का पूर्ण चक्र अथवा सूर्य द्वारा मेरु की पूर्ण प्रदक्षिणा १८ + १८ + १२ + १२ मुहूर्तों अथवा ६० मुहूर्तों में संपूर्ण होती है। ज्यों ज्यों सूर्य बाह्य मार्ग की ओर जाता है त्यों त्यों दिन का प्रमाण $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त प्रतिदिन घटता है और तापक्षेत्र में हानि $\frac{P}{६०} \times \frac{२}{६१}$ वर्ग योजन होती है। यह प्रमाण $\frac{P}{१० \times १८३}$ योजन होगा।

यहां सूर्य के कुल अंतरालों की संख्या १८३ है।

स्पष्ट है, कि सूर्य के दूर जाने पर तापक्षेत्र में हानि होने से तमक्षेत्र में वृद्धि होगी।

गा. ७, ४२१ आदि— ४२२वीं गाथा में उल्लेखित सूत्रों का विवरण पहिले दिया जा चुका है। यहां विशेष उल्लेखनीय बात चक्षुस्पर्श क्षेत्र है। जब सूर्य P_8 वीं परिधि पर स्थित रहता है तब चक्षुस्पर्श-क्षेत्र $P_8 \times \frac{९}{६०}$ योजन होता है। यहां ९ मुहूर्तों में सूर्य निषध पर्वत से अयोध्या तक की परिधि को समाप्त करता है तथा सम्पूर्ण परिधि के परिभ्रमण (revolution) को ६० मुहूर्त में सम्पूर्ण करता है। उत्कृष्ट चक्षुस्पर्शध्वान के लिये P_8 का मान ३१५०८९ योजन है।

गा. ७, ४२५ आदि— भिन्न २ परिधियों पर स्थित भिन्न २ नगरियों में एक ही समय दिये गये समय के आधार पर उन नगरियों के स्थानों को इन गाथाओं में दिये गये न्यासों के आधार पर निश्चित कर सकते हैं और उनकी बीच की दूरी योजनों में निकाल सकते हैं, क्योंकि जितना उनके समय के बीच अंतराल है उतने काल में सूर्य द्वारा जितनी परिधि तय होगी उतना उन नगरों के बीच परिधि पर अंतराल होगा। अन्य परिधियों पर स्थित नगरियों के बीच की दूरी भी निश्चित की जा सकती है।

गा. ७, ४४६— चक्रवर्ती अधिक से अधिक ५५७४$\frac{३}{८}\frac{२}{३}$ योजन की दूरी पर स्थित सूर्य को देख सकता है।

---

particular instant expanding with time. It dates back to about 2×10^9 years, though, the stars of our galaxy are thought to be born 10^{12} years ago.

If the curvature is taken negative the formula shows an open hyperbolic space of radius 3.5×10^8 parsecs—an infinite stationary universe of mean density 10^{-30} gm/cm³. Limiting case of zero curvature is "flat" Euclidean space with an infinite radius.

Other theories propounded in favour of expanding universe are the 1) kinematic theory based on Euclidean space and mathmatical structure of special relativity and 2) the creation of matter theory. The former is unscientific because of its indefinite definition of distance and avoidance of observational date. The latter is not sound as it assumes creation of matter out of nothing in the form of hydrogen atoms and there is no evidence of its, steady state of universe, assumption.

Thus we seem to face, as once before in the days of Copernicus a choice between a small finite universe and a universe infinitely large plus a new principle of nature."

देखें, यह समस्या, वितन्तु ज्योतिर्लोकविज्ञान (Radio Astronomy) और माउंट पालोमर की २००" दूरबीन तथा अन्य नवीन आविष्कार कहां तक सुलझा सकते हैं।

इसके साथ ही संसार के द्वीपों की कल्पना की एक झलक को हम स्मार्ट के शब्दों में प्रस्तुत करेंगे, "According to our present views, the universe is a vast assemblage of separate

गा. ७, ४५४–५६— सूर्य का पथ सूची चय $२+\frac{४८}{६१}=\frac{१७०}{६१}$ योजन है।

भिन्न-भिन्न जगहों (जम्बूद्वीप, वेदिका और लवण समुद्र) के चारक्षेत्रों में उदयस्थानों को निकालने के लिये उस जगह के चारक्षेत्र के अंतराल में $\frac{१७०}{६१}$ का भाग देते हैं। एक वीथी का मार्ग समाप्त होने पर हटाव $\frac{१७०}{६१}$ योजन होता है। इसी समय दूसरी वीथी पर एक परिभ्रमण के पश्चात् उदय होता है। इस प्रकार सर्व उदयस्थानों की संख्या १८४ है।

गा. ७, ४५८ आदि— ग्रहों के विषय का विवरण काल वश नष्ट हो चुका है।

चंद्र के आठ पथों में (क्रमशः पहिले, तीसरे, छठवें, सातवें, आठवें, दशवें, ग्यारहवें तथा पंद्रहवें पथ में) भिन्न-भिन्न नक्षत्रों का नियमित गमन वतलाया गया है। अथवा, भिन्न-भिन्न गलियों में स्थित नक्षत्रों के नाम दिये गये हैं।

गा. ७, ४६५–४६७— एक चंद्र के नक्षत्रों की संख्या २८ वतलाई गई है पर कुल नक्षत्रों की संख्या (जगश्रेणी)^{२} ÷ [संख्यात प्रतरांगुल × १०९७३१८४०००००००००१९३३३१२] × ७ वतलाई गई है। यह राशि निश्चित रूप से असंख्यात है। इसी प्रकार समस्त तारों की संख्या भी असंख्यात वतलाई गई है।

जम्बूद्वीप के १ चंद्र के २८ नक्षत्रों के ताराओं से बने हुए आकार वतलाये गये हैं। वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं और जीवों के आकार के वर्णित हैं।

गा. ७, ४७५–७६— आकाश को १०९८०० गगनखंडों में विभक्त किया गया है जिसमें, १८३५ गगनखंड नक्षत्रों के द्वारा १ मुहूर्त में अतिक्रमित होते हैं। इस गति से कुल गगनखंड चलने में $\frac{१०९८००}{१८३५}=५९\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्त लगते हैं अथवा $\frac{१०९८००}{१८३५}\times\frac{४८}{६०}$ घंटे अथवा ४७ घंटे, ५२ मिनिट $९\frac{२८५}{१८३५}$ सेकंड लगते हैं। आधा मार्ग तय करने में २३ घंटे ५६ मिनिट $४\frac{१०६०}{१८३५}$ सेकंड लगते हैं।

गा. ७, ४७८ आदि— भिन्न २ नक्षत्रों की गतियां भिन्न २ परिधियों में होने के कारण भिन्न हैं। सभी नक्षत्र, यद्यपि भिन्न परिधियों में स्थित हैं, तथापि वे $५९\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्तों में समस्त गगनखंड तय कर लेते हैं।

---

systems, each of great dimensions, which however, are small in comparison with the stupendous distances by which any two neighbouring systems are separated from one another. We may liken the universe to a broad ocean studded with small islands of varying sizes; one of these islands is believed to represent the systems of which the solar system is but a humble member, the galactic system as it is called. The other systems are the spiral nebulae whose number we can but vaguely guess."—"The Sun, The Stars, And The Universe." p. 269.

इस तरह हम यह अनुभव करते हैं कि आधुनिक ज्योतिष के सिद्धांतों तथा उनके आधार पर प्राप्त फलों की तुलना हम जैनाचार्यों द्वारा प्रस्तुत ज्योतिर्लोक से तभी कर सकते हैं जब कि चन्द्र और सूर्य आदि तथा वायुमंडल सम्बन्धी बातों को हम भली भांति किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर रख सकें। जहां तक पृथ्वीतल से ज्योतिष बिम्बों की दूरी का सम्बन्ध है, किसी भी स्थान से उनकी दूरी अल्पतम और अधिकतम होती है। इसका मध्यमान पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के लिये अति भिन्न-भिन्न होंगे जैसा कि जम्बूद्वीप के क्षेत्रों के विस्तार से स्पष्ट है। इसी कारण हमने केवल पृथ्वीतल से उनकी उदग्र ऊँचाई दी है। आधुनिक दूरियों के वर्णन में हमने केवल मध्यमान दूरियों का वर्णन किया है जो पृथ्वी को मात्र एक योजन त्रिज्या के घेरे में आ जाने से सम्बन्धित हैं। स्पष्ट है कि मेरु के परितः बिम्बों का परिभ्रमण पथ पृथ्वीतल के अवलोकनकर्ता की आंख पर तिर्यक् शंकु आपतित करता है।

गा. ७, ४९३— जिस नक्षत्र का अस्त होता है उस समय उससे १६वां नक्षत्र उदय को प्राप्त होता है। गणना स्पष्ट है, क्योंकि दिन और रात्रि में १८ : १२ आदि का अनुपात रहता है, इसलिये स्थूल रूप से १७ और ११; १६ और १२ आदि नक्षत्र क्रमशः ताप और तम क्षेत्र में रहते होंगे।

गा. ७, ४९८— सूर्य, चन्द्र और ग्रहों का गमन कुंचीयन या समापन कुन्तल (winding spiral) असमापन कुंतल (unwinding spiral) में लेता है पर नक्षत्र तथा तारों का 'अयनों का नियम' नहीं है।

गा. ७, ४९९— सूर्य के छः मास (एक अयन) में १८३ दिन-रात्रियां तथा चंद्रमा के एक अयन में १३ $\frac{४४}{६७}$ दिन होते हैं।

गा. ७, ५०१— अभिजित नक्षत्र का विस्तार आंख पर $\frac{६३०}{१०९८००}$ रेडियन का कोण आपतित करता है। शतभिषक आदि $\frac{१००५}{१०९८००}$ पुनर्वसु आदि $\frac{१००५ \times ३}{१०९८००}$, शेष $\frac{१००५ \times २}{१०९८००}$, रेडियन का कोण आपतित करते हैं। ये एक चंद्र के नक्षत्र हैं। इसी प्रकार से दूसरे चंद्र के भी नक्षत्र हैं।

गा. ७, ५१०— सूर्य, चंद्रमा की अपेक्षा, तीस मुहूर्तों या $\frac{३० \times ४८}{६०}$ घंटों में $\frac{६२}{६१} \times \frac{४८}{६०}$ घंटे अधिक शीघ्र गमन करता है। तथा, नक्षत्र सूर्य की अपेक्षा $\frac{३० \times ४८}{६०}$ घंटों में $\frac{५}{६१} \times \frac{४८}{६०}$ घंटे अधिक शीघ्र गमन करते हैं।

गा. ७, ५१५— इसके पश्चात् भिन्न २ नक्षत्रों में सूर्य या चंद्र कितने काल तक गमन करेंगे यह आपेक्षिक प्रवेग (relative velocity) के सिद्धांत पर निकाला गया है। जैसे, अभिजित नक्षत्र के सम्बन्ध में (जिसका विस्तार ६३० गगनखंड है), सूर्य का आपेक्षिक प्रवेग अभिजित नक्षत्र को विश्रामस्थ मान लिया जाने पर १ दिन में १५० गगनखंड है। इस प्रकार, सूर्य अभिजित नक्षत्र के साथ $\frac{६३०}{१५०}$ दिन या ४ अहोरात्र और ६ मुहूर्त अधिक अथवा $\frac{६३० \times ३० \times ४८}{१५० \times ६०}$ घंटे गमन करेगा।

गा. ७, ५२१— इसी प्रकार अभिजित नक्षत्र की अपेक्षा (इसे विश्रामस्थ मानकर) चन्द्रमा का आपेक्षिक प्रवेग १ मुहूर्त में ६७ गगनखंड है, क्योंकि इतने समय में चन्द्रमा नक्षत्रों से १ मुहूर्त में ६७ गगनखंड पीछे रह जाता है। अभिजित नक्षत्र का विस्तार ६३० गगनखंड है, इसलिये इतने खंड तय करने में चन्द्रमा को $\frac{६३०}{६७} = ९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त लगेंगे। इतने समय तक चन्द्रमा अभिजित नक्षत्र के साथ गमन करेगा। यह समय $\frac{६३०}{६७} \times \frac{४८}{६०}$ घंटे है। इसे त्रिलोकसार में आसन्न मुहूर्त कहा गया है।

गा. ७, ५२५ आदि— सूर्य के एक अयन में १८३ दिन होते हैं। दक्षिण अयन (annual southward motion) पहिले और उत्तर अयन (northward annual motion) बाद में होता है। आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन अपराण्ह समय में पूर्ण युग की समाप्ति (५ वर्ष की समाप्ति) होने पर उत्तरायण समाप्त होता है। इस समय के पश्चात् नवीन युग प्रारम्भ होता है। पांच वर्ष में $१२ \times ५ = ६०$ दिन अथवा दो माह बढ़ते हैं, क्योंकि सूर्य के वर्ष के ३६६ दिन माने गये हैं। सूर्य की अपेक्षा से चन्द्रमा का परिभ्रमण २९½ दिनों में पूर्ण होता है। इसलिये चन्द्र वर्ष $२९\frac{१}{२} \times १२ = ३५४$ दिन का होता है। इस प्रकार एक चन्द्रवर्ष सूर्यवर्ष से १२ दिन छोटा होता है इसलिये एक युग या पांच वर्ष में चन्द्र वर्ष के युग की अपेक्षा ६० दिन या २ मास अधिक होते हैं। उत्तरायण की समाप्ति के पश्चात् दक्षिणायन श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन जब कि अभिजित नक्षत्र और चन्द्रमा का योग रहता है, प्रारम्भ होता है, वही नवीन पांच वर्षवाले युग का प्रारम्भ है।

जब सूर्य प्रथम आभ्यंतर वीथी पर होता है तब सूर्य का दक्षिण अयन का प्रारम्भ होता है। जब वह अंतिम बाह्य वीथी पर स्थित होता है तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। जब एक अयन की समाप्ति होकर नवीन अयन का प्रारम्भ होता है उसे आवृत्ति (frequency or repetition) कहा गया है। अयन के पलटने को भी आवृत्ति कहते हैं। दक्षिणायन को आदि लेकर आवृत्तियाँ पहली, तीसरी, पांचवी, सातवीं और नवमी, पांच वर्ष के भीतर होंगी क्योंकि पांच वर्ष में दस अयन होते हैं। इसी प्रकार उत्तरायण की आवृत्तियां इस युग में दूसरी, चौथी, छठवीं, आठवीं और दसवीं होती हैं। इस प्रकार दक्षिणायन की दूसरी आवृत्ति श्रावण मास के कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को होती है जब कि चंद्रमा मृगशीर्षा नक्षत्र में तिष्ठता है। यह आवृत्ति १ चंद्र वर्ष के पश्चात् १२ दिन बीत जाने पर हुई। इसी प्रकार दक्षिणायन की तीसरी आवृत्ति श्रावण शुक्ल दशमी के दिन चंद्रमा जब विशाखा नक्षत्र में स्थित रहता है तब होती है। इस प्रकार श्रावण मास में दक्षिणायन की पांच आवृत्तियां ५ वर्ष के भीतर होती हैं। उत्तरायण की प्रथम आवृत्ति १८३ दिन बीत जाने पर अर्थात् माघ मास में कृष्णपक्ष की सप्तमी (चंद्र अर्द्ध वर्ष बीत जाने के ६ दिन पश्चात्) तिथि को जब कि चंद्रमा हस्त नक्षत्र में स्थित रहता है, होती है। इसी प्रकार उत्तरायण की दूसरी आवृत्ति ३६६ दिन पश्चात् या चंद्र वर्ष के बीत जाने पर १२ दिन पश्चात् उसी माघ मास में शुक्ल पक्ष की चौथी तिथि पर जब कि चंद्रमा शतभिषक नक्षत्र में स्थित रहता है, तब होती है। इसी प्रकार अन्य आवृत्तियों का वर्णन है।

इसी आवृत्ति के आधार पर समान्तर श्रेढि बनने से (formation of an arithmetical progression) विषुप और आवृत्ति की तिथि निकालने के लिये तथा शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष का निश्चय करने के लिये सरल प्रक्रिया सूत्ररूप से दी गई है।

"विषुप", पूर्ण विश्व में दिन और रात्रि के अंतराल बराबर होने को कहते हैं। इस समय सूर्य आभ्यंतर और बाह्य वीथियों के बीचवाली वीथी में रहता है, अथवा विषुवत् रेखा, (भूमध्य रेखा) पर स्थित रहता है। दक्षिणायन के प्रारम्भ के चंद्र के चतुर्थांश वर्ष बीत जाने के ३ दिन पश्चात् सूर्य इस वीथी को ९१$\frac{1}{2}$ दिन पश्चात् प्राप्त होता है। इस समय कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया रहती है और चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र में स्थित रहता है। दूसरा विषुव इस समय के चंद्र अर्द्ध वर्ष के बीत जाने पर ६ दिन पश्चात् होता है। जब कि चंद्र वैसाख मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को धनिष्ठा नक्षत्र में रहता है। इस प्रकार कुल विषुपों की संख्या उत्सर्पिणी काल में निकाली जा सकती है। दक्षिण अयन, पल्य का असंख्यातवां भाग या $\frac{प}{a}$ होता है। विषुप का प्रमाण इससे दूना है अर्थात् २$\frac{प}{a}$ जहां प पल्यका और a असंख्यात का प्रतीक है।

यहां अचर ज्योतिषियों का निरूपण किया गया है।

स्वयंभूवर द्वीप का विष्कम्भ $\frac{जगश्रेणी}{५६}$ + ३७५०० योजन है तथा समुद्र का विष्कम्भ $\frac{जगश्रेणी}{२८}$ + ७५००० योजन है। मानुषोत्तर पर्वत से आदि लिया गया है तथा ५०००० योजन समुद्र की बाहरी सीमा के इसी तरफ तक का अंतराल

$$\frac{जगश्रेणी}{२८} + (७५००० - ११५२५००० - ५००००) \text{ योजन}$$

अथवा $\frac{जगश्रेणी}{२८}$ − ११५००००० योजन होता है।

इसलिये, कुल वलयों की संख्या

$$\left[\frac{\text{जगश्रेणी}}{२८} - ११५०००००\right] \times \frac{२}{१०००००}$$

अथवा $\frac{\text{जगश्रेणी}}{१४०००००} - २३$ होती है।

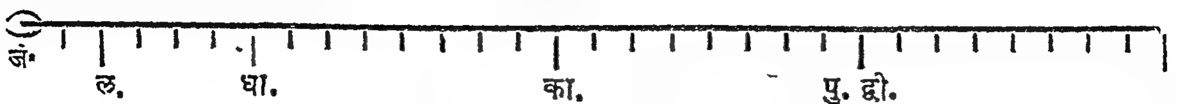
पुष्करवर समुद्र के प्रथम वलय में २८८ चंद्र व सूर्य हैं। किसी द्वीप अथवा समुद्र के प्रथम वलय में स्थित चंद्र व सूर्य की संख्या = $\frac{\text{उस द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ} \times ९}{१०००००}$ होती है। प्रत्येक द्वीप समुद्र का विस्तार उत्तरोत्तर द्विगुणित होता गया है और प्रारम्भ पुष्करवर द्वीप से होता है जहां विष्कम्भ १६००००० योजन है। इस प्रकार सूत्र बनाया गया है।

पृ. ७६४ आदि— सपरिवार चन्द्रों के लाने का विधान :—

अभी तक, जैसा मुझे प्रतीत हुआ है उसके अनुसार, वीरसेनाचार्य के कथन की पुष्टि का प्रतिपादन निम्न लिखित होगा।

पृष्ठ ६५८ पर गाथा ११ में ग्रंथकार ने सम्पूर्ण ज्योतिष देवों की राशि का प्रमाण; $\left(\frac{\text{जगश्रेणी}}{२५६ \text{ प्रमाणांगुल}}\right)^२$ बतलाया है।

पृष्ठ ७६७— ज्योतिष बिम्बों का प्रमाण $\frac{\text{जगप्रतर}}{६५५३६ \times १६५५३६१}$ अथवा $\left(\frac{\text{जगश्रेणी}}{२५६ \text{ प्रमाणांगुल}}\right)^२ \div \frac{१}{१६५५३६१}$ बतलाया है। तथा, इसमें प्रत्येक बिम्ब में रहनेवाले तत्प्रायोग्य संख्यात जीव (१६५५३६१) का गुणा करने पर सम्पूर्ण ज्योतिषी देवों, अथवा ज्योतिषी जीव राशि का प्रमाण प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि जगश्रेणी का अर्थ, जगश्रेणी में स्थित प्रदेशों की गणात्मक संख्या है, तथा प्रमाणांगुल का अर्थ प्रमाणांगुलकुलक में प्रदेशों की गणात्मक संख्या है। इस न्यास के आधार पर वीरसेन ने सिद्ध किया है कि यद्यपि परिकर्मसूत्र में रज्जु के अर्द्धच्छेदों की संख्या, 'द्वीप-समुद्र की संख्या में रूपाधिक जम्बूद्वीप के अर्द्धच्छेदों के प्रमाण को मिला देने पर प्राप्त होती है, तथापि उस कथन का अर्थ उपयुक्त लेना चाहिये। यहां रूपाधिक का अर्थ अनेक से है, जहां अनेक, संख्यात, असंख्यात दोनों हो सकता है, एक नहीं। यह सिद्ध करने में, उनकी अद्वितीय प्रतिभा का चमत्कार प्रकट हो जाता है। आगमप्रणीत वचनों में उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी, पर, उन वचनों की वास्तविक भावना को युक्तिबल से सिद्ध करने की प्रेरणा भी थी। इस प्रकार, परिकर्म के वचनों का यथार्थ अर्थ प्रकट करने के लिये, उन्होंने पूर्वाचार्यों के के कथनों को आगमानुसार, गणित की कसौटी पर पुनः कसा। स्पष्ट है, कि तिलोयपण्णत्ती के इस अवतरण में वीरसेन की शैली का प्रवेश हुआ है, पर यह सुनिश्चित प्रतीत होता है कि यतिवृषभ ने परिकर्मसूत्र से इस आगमप्रणीत ज्योतिष बिम्ब संख्या के प्रमाण का विरोध वीरसेन से पहिले निर्दिष्ट कर दिया था, और उनके पश्चात् वीरसेन ने उसका निरूपण कर, परिकर्मसूत्र का उपयुक्त अर्थ स्पष्ट किया। हम इसका निरूपण कुछ आधुनिक शैली पर करने का प्रयत्न करेंगे।



स्पष्ट है कि जम्बूद्वीप के विष्कम्भ १००००० योजन को इकाई लेकर यदि अन्य द्वीप-समुद्रों के विष्कम्भों को प्ररूपित करें तो वे क्रमशः लवणोदय के लिये २ इकाईयां, धातकी द्वीप के लिये ४ इकाईयां, कालोदधि समुद्र के लिये ८ इकाईयां, पुष्करवरद्वीप के लिये १६ इकाईयां, इत्यादि होंगे।

यह बतलाया जा चुका है कि एक चंद्र के परिवार में एक सूर्य, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र तथा

६६९७५०००००००००००००० तारे होते हैं। जम्बूद्वीप में २ चंद्रमा, लवण समुद्र में ४ चंद्रमा, घातकीखंड में १२ चंद्रमा, कालोदक समुद्र में ४२ चंद्रमा, पुष्करवर अर्द्ध द्वीप में मानुषोत्तर पर्वत से इसी ओर ७२ चंद्रमा, तथा मानुषोत्तर से बाहर प्रथम पंक्ति में १४४ चंद्रमा अपने अपने परिवार सहित हैं। मानुषोत्तर से बाहर की प्रथम पंक्ति, द्वीप से ५०००० योजन आगे जाकर है जहां चंद्रों की संख्या १४४ है। उससे आगे एक एक लाख योजन आगे जाकर, उत्तरोत्तर सात पंक्तियां अथवा वलय हैं जहां के चंद्रों का प्रमाण इस आदि प्रमाण १४४ से ४ प्रचय को लेकर वृद्धि रूप है, अर्थात् वहां क्रमशः १४८, १५२, १५६,...... आदि चंद्रों की संख्या है। इसके आगे के समुद्र की भीतरी पंक्ति में २८८ चंद्र हैं। वहां भी, एक एक लाख योजन चल चलकर वलय स्थित हैं जहां चंद्र बिम्बों का प्रमाण ४, ४ प्रचय लेकर वृद्धि रूप है। पुनः इस समुद्र के आगे जो द्वीप है वहां २८८×२ प्रमाण चंद्र बिम्ब प्रथम पंक्ति में हैं और १, १ लाख योजन चल चल कर उत्तरोत्तर स्थित ६४ पंक्तियों में ४, ४ प्रचय लेकर चंद्र बिम्बों का प्रमाण वृद्धि रूप अवस्थित है।

इस प्रकार प्रथम तीन द्वीपों (जम्बूद्वीप, घातकीखंड द्वीप और पुष्करवर द्वीप) तथा दो समुद्रों (लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र) को छोड़कर, अगले समुद्र तथा द्वीपों में स्थित चंद्रों के प्रमाण को निकालने के लिये न्यास दिया गया है।

तृतीय (पुष्करवर) समुद्र में वलयों या पंक्तियों की संख्या ३२ है, इसलिये यहां गच्छ (number of terms) ३२ है। प्रथम पंक्ति में २८८ चंद्र बिम्ब हैं, इसलिये २८८ गुण्यमान राशि (first term) है। ४ प्रचय (common difference) है।

चतुर्थ (वारुणीवर) द्वीप में वलयों की संख्या ६४ है, इसलिये गच्छ ६४ है। प्रथम पंक्ति में (२८८×२) = ५७६ चंद्र हैं, इसलिये गुण्यमान राशि ५७६ है। ४ प्रचय है।

इसी प्रकार पांचवें (वारुणीवर) समुद्र में गच्छ १२८, गुण्यमान राशि ११५२ है तथा ४ प्रचय है।

इस प्रकार, इन द्वीपों तथा समुद्रों में चंद्र बिम्बों का प्रमाण, हम समान्तर श्रेढि के संकलन के आधार पर सूत्र का प्रयोग करेंगे।

जहां गच्छ n है, गुण्यमान राशि (प्रथम पद) a है, तथा प्रचय d है, वहां,

$$\text{कुल धन} = \frac{n}{२}\left\{ २a + (n-१)d \right\} \text{ होता है।}$$

इसलिये, तृतीय समुद्र में, समस्त चंद्र बिम्बों का प्रमाण

$$= \frac{३२}{२}\left\{ २ \times २८८ + (३२-१) \times ४ \right\}$$

$$= ३२ \times २८८ + (३२-१) \times ६४ \text{ होता है।}$$

चतुर्थ (वारुणीवर) द्वीप में, समस्त चंद्र बिम्बों का प्रमाण

$$= \frac{६४}{२} \times \left\{ २^२ \times २८८ + (६४-१) \times ४ \right\}$$

$$= ६४ \times २ \times २८८ + (६४-१) \times ६४ \times २ \text{ होता है।}$$

पंचम (वारुणीवर) समुद्र में, समस्त चंद्र बिम्बों का प्रमाण

$$= \frac{१२८}{२} \times \left\{ २^३ \times २८८ + (१२८-१) \times ४ \right\}$$

$$= ६४ \times २^३ \times २८८ + (१२८-१) \times ६४ \times २^२ \text{ होता है।}$$

इत्यादि।

यदि कुल द्वीप-समुद्रों की संख्या n ली जावे तो पांच द्वीप छूट जाने के कारण, हमें केवल n − ५ ऐसे होनेवाले प्रमाणों का योग, कुल चंद्र बिम्बों का प्रमाण निकालने के लिये करना पड़ेगा। इस योग में

पुष्करवर आदि ५ छोड़े हुए द्वीप-समुद्रों के चंद्र बिम्बों का प्रमाण मिला देने पर समस्त चंद्र बिम्ब संख्या का प्रमाण प्राप्त होगा।

इस प्रकार (n – ५) द्वीप-समुद्रों के चंद्र बिम्बों का प्रमाण निकालने के लिये हमें, उपर्युक्त (n – ५) उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त संख्याओं का योग प्राप्त करना पड़ेगा।

वह योग निम्न लिखित श्रेढि रूप में दर्शाया जा सकता है :—

$$६४ \times २८८[\tfrac{१}{२} + २ + २^३ + २^५ + \ldots\ldots (n - ५) \text{ पदों तक }]$$
$$+ (६४)^२[\tfrac{१}{२} + २ + २^३ + २^५ + \ldots\ldots (n - ५) \text{ पदों तक }]$$
$$- ६४[१ + २ + २^२ + २^३ + \ldots\ldots (n - ५) \text{ पदों तक }]$$

इसका प्रमाण, योगरूप में लाने के लिये हम गुणोत्तर श्रेढि के संकलन सूत्र का उपयोग करेंगे। जहां a प्रथम पद हो, r साधारण निष्पत्ति (Common ratio) हो n गच्छ (Number of terms) हो वहां,

संकलित धन $= \frac{a(r^n - १)}{r - १}$ होता है।

इस तरह, कुल धन का प्रमाण यह है :—

$$६४\left[२८८ \left\{ \frac{\tfrac{१}{२}(४^{(n-५)} - १)}{४ - १} \right\} - १ \left\{ \frac{१(२^{(n-५)} - १)}{२ - १} \right\} + ६४ \left\{ \frac{\tfrac{१}{२}(४^{(n-५)} - १)}{४ - १} \right\} \right]$$

अथवा, यह है :—

$$६४[\tfrac{१७६}{३}.\{२^{(n-५)}\}^२ - (२)^{(n-५)} - ५७\tfrac{२}{३}]$$

कुल चंद्र बिम्बों के परिवार सहित समस्त ज्योतिष बिम्बों की संख्या यह होगी :—

$$(६६९७५००००००००००११७)[६४[\tfrac{१७६}{३}\{२^{(n-५)}\}^२ - (२)^{(n-५)} - ५७\tfrac{२}{३}]]$$
+ [शेष पांच द्वीप समुद्रों के चंद्र बिम्बों का परिवार सहित संख्या प्रमाण]

............I

यहां ध्यान देने योग्य संख्या $(२^{(n-५)})^२$ अथवा $(२^{n-५})(२^{n-५})$ है।

हमें मालूम है, कि रज्जु के अर्द्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त करने के लिये निम्न लिखित सूत्र का आश्रय लेना पड़ता है :—

$$n + (१ \text{ या } s) + \log_२ (ज) = \log_२ (र)$$

जहां, n द्वीप-समुद्रों की संख्या है। s संख्यात संख्या है; ज, जम्बूद्वीप के विष्कम्भ में स्थित संलग्न प्रदेशों की संख्या है जो असंख्यात (मध्यम असंख्यातासंख्यात से कम) प्रमाण है; र, एक राजु प्रमाण अथवा जगश्रेणी के सातवें भाग प्रमाण सरल रेखा में स्थित संलग्न प्रदेशों की संख्या है।

यह भी ज्ञात है कि जम्बूद्वीप के विष्कम्भ में १००००० × ६ × २ × २ × २ × २ × २००० × ४ प्रमाणांगुल होते हैं। एक प्रमाणांगुल में ५०० उत्सेध अंगुल होते हैं तथा उस सूच्यंगुल में प्रदेशों की संख्या के अर्द्धच्छेद का प्रमाण $(\log_२ प)^२$ होता है जहां प, पल्योपम काल में स्थित समयों की संख्या है। यहां १ आवलि में जघन्य युक्त असंख्यात समय बतलाये गये हैं। इसलिये प्रमाणांगुल (५०० अं०) एक असंख्यात प्रमाण राशि है जो उत्कृष्ट संख्यात के ऊपर होने से श्रुतकेवली के विषय की सीमा का उल्लंघन कर जाती है।

जम्बूद्वीप के इस विष्कम्भ को हम अधिक से अधिक २४० प्रमाणांगुल भी ले लें तो

$n + ($ ८ या १ $) + \log_2$ [$२^{४०}$ प्रमाणांगुल] $= \log_2$ र होता है,

अथवा $n + ($ ८ या १ $) + ४०$ प्रमाणांगुल $= \log_2$ र होता है,

अथवा $n - ५ = (\log_2$ र $- ५ - ($ ८ या १ $) - ४०$ प्रमाणांगुल) होता है।

यदि हम ८ की जगह १ लें तो अधिक से अधिक

$n - ५ = \{ \log_2$ र $- \log_2 (२)^{४०}$ प्रमाणांगुल $\}$ होता है

अथवा $n - ५ = \left\{ \log_2 \frac{र}{२^{४०} \text{ प्रमाणांगुल}} \right\}$ होता है।

............II

इस प्रकार सर्व ज्योतिष बिम्बों की संख्या, II से I में ($n - ५$) का मान रखने पर

$$= (६६९७५०००००००००००००११७)\left[६४ \left[\frac{१७६}{३} \left\{ \frac{र}{(२)^{४०} \text{ प्रमाणांगुल}} \right\}^{२} - \frac{र}{(२)^{४०} \text{ प्रमाणांगुल}} - ५७\frac{२}{३} \right] \right]$$

स्पष्ट है कि, $\frac{र}{(२)^{४०} \text{ प्रमाणांगुल}}$, तथा $५७\frac{२}{३}$, प्रथम पद की तुलना में नगण्य है।

इस प्रकार, प्रथम पद के हर में $(२५६)^{२}$ प्रमाणांगुल आने के लिये, २ की घात ८० से काम नहीं चल सकता; क्योंकि उसके गुणक

$\frac{१७६}{३} \times ६४ \times ६६९७५०००००००००००००११७$ में अर्द्धच्छेदों की संख्या प्रायः ७७ या ७८ रहती है। इसलिये $(२५६)^{२}$ को उत्पन्न करने के लिये जहां १६ अर्द्धच्छेद अधिक होना चाहिये वहां ८०-७७ अथवा ३ अर्द्धच्छेद ही भागहार में २ की घात में रहते हैं। यदि रज्जु को जगश्रेणी में बदलने के लिये ४९ का भाग भी देना हो तथापि ५ अर्द्धच्छेद और जुड़ेंगे और इस प्रकार १६ के स्थान में केवल ८ ही २ की घात भागहार में रहेगी। इसलिये, १ की जगह संख्यात लेना उपयुक्त है। साथ ही, जिन पदों को घटाना है, उनसे भागहार में वृद्धि ही होगी। प्रथम पांच द्वीप-समुद्रों के ज्योतिष बिम्बों का प्रमाण इस तुलना में नगण्य है।

परिशिष्ट (१)

Apj का प्रमाण श्रेढि के रूप में निम्न लिखित विधि से प्राप्त किया जा सकता है।

चतुर्थ अधिकार की गाथा ३०९ के पश्चात् के विवरण के अनुसार तीन अवस्थित कुंड (शलाका, प्रतिशलाका तथा महाशलाका) और एक अनवस्थित (unstable) कुंड एक से माप के स्थापित किये जाते हैं। मान लो प्रत्येक में 'क' बीज समाते हैं। इस अनवस्थाकुंड से एक-एक बीज निकालकर क्रम से द्वीप-समुद्रों को देते जाने पर क वें द्वीप अथवा समुद्र में अन्तिम बीज गिरेगा। इस द्वीप अथवा समुद्र का व्यास गुणोत्तर श्रेढि के पद को निकालने की विधि के अनुसार $२^{(क-१)}$ लाख योजन होगा। यह क्रिया समाप्त होते ही रिक्त शलाकाकुंड में एक बीज डाल देते हैं। यहां सर्वप्रथम बीज शलाकाकुंड में गिराया जाता है। अब इस व्यासवाले अनवस्थाकुंड में $\left\{ क \times २^{(२क-२)} \right\}$ बीज समावेंगे। इस परिमाण को $क_{१}$ द्वारा प्ररूपित करेंगे।

इन $क_{१}$ बीजों को अब अगले द्वीप-समुद्रों में एक-एक छोड़ने पर अंतिम बीज $(क + क_{१})$ वें द्वीप अथवा समुद्र में गिरेगा। इस द्वीप अथवा समुद्र का व्यास $२^{(क + क_{१} - १)}$ लाख योजन होगा। इस क्रिया के समाप्त होते ही शलाकाकुंड में पुनः एक बीज डाल देते हैं। इतने व्यासवाले अनवस्थाकुंड में $\left\{ क \times २^{(२क + २क_{१} - २)} \right\}$ बीज समावेंगे। इस परिमाण को $क_{२}$ द्वारा प्ररूपित करेंगे।

इन $क_२$ बीजों को अब आगे के द्वीप-समुद्रों में एक-एक छोड़ने पर अंतिम बीज $(क+क_१+क_२)$ वें द्वीप अथवा समुद्र में गिरेगा। इस द्वीप अथवा समुद्र का व्यास $२^{(क+क_१+क_२-१)}$ लाख योजन होगा। इस क्रिया के समाप्त होते ही शलाकाकुंड में पुनः एक बीज डाल देते हैं। इतने व्यासवाले अनवस्थाकुंड में $\left\{ क \times २^{(२क+२क_१+२क_२-२)} \right\}$ बीज समावेंगे। इस प्रमाण को $क_३$ द्वारा प्ररूपित करेंगे।

इस प्रकार यह विधि तब तक संतत रखी जावेगी जब तक कि शलाकाकुंड न भर जावे, अर्थात् यह विधि क बार की जावेगी। स्पष्ट है कि इस क्रिया के अंत में अंतिम बीज
$क+क_१+क_२+क_३+\dots\dots\dots+क_{क-१}$ वें द्वीप अथवा समुद्र में गिरेगा।

इस द्वीप अथवा समुद्र का व्यास $२^{(क+क_१+\dots\dots\dots+क_{क-१}-१)}$ लाख योजन होगा। इस व्यासवाले अनवस्थाकुंड में $\left\{ क \times २^{(२क+२क_१+\dots\dots\dots+२क_{क-१}-२)} \right\}$ बीज समावेंगे। इसका प्रमाण $क_क$ से निर्दिष्ट करेंगे।

स्मरण रहे, कि यहां शलाकाकुंड भर चुका है और प्रतिशलाकाकुंड में अब १ बीज डाला जावेगा। इतने व्यास के इस अनवस्थाकुंड को लेकर पुनः एक शलाकाकुंड भरा जावेगा और उस क्रिया को क बार कर लेने पर प्रतिशलाकाकुंड में पुनः १ बीज डाला जावेगा। स्पष्ट है कि 'क' 'क' बार यह क्रिया पुनः पुनः कितने बार की जावेगी? 'क' बार की जावेगी, तभी प्रतिशलाकाकुंड भरेगा। इस क्रिया के अंत में अंतिम बीज $क+क_१+क_२+\dots\dots+क_क+\dots\dots+क_{२क}+\dots\dots क_{क^२-१}$ वें द्वीप अथवा समुद्र में गिरेगा। इस द्वीप या समुद्र का व्यास निकाला जा सकता है, तथा इस व्यास के अनवस्था-कुंड में समाये गये बीजों की संख्या भी निकाली जा सकती है।

यहां प्रतिशलाकाकुंड पूर्ण भर चुका है और १ बीज महाशलाकाकुंड में इस क्रिया की एक बार समाप्ति दर्शाने हेतु डाल दिया जाता है। उक्त प्रतिशलाकाकुंड को भरने के लिये जो क्रिया $क^२$ बार की गई है उसे पुनः पुनः अर्थात् क बार करने पर ही महाशलाकाकुंड भरा जावेगा। स्पष्ट है कि महाशलाका-कुंड भरने पर इस महा क्रिया में अंतिम बीज
$क+क_१+क_२+\dots\dots+क_क+\dots\dots+क_{क२}+\dots\dots+क_{२क^२}+\dots\dots+क_{क^३-१}$ वें द्वीप या समुद्र में गिरेगा। इस द्वीप या समुद्र का व्यास $२^{(क+क_१+\dots\dots+क_{क^३-१}-१)}$ लाख योजन होगा।

इतने व्यासवाले अनवस्थाकुंड में $\left\{ क \times २^{(२क+२क_१+\dots\dots+२क_{क^३-१}-२)} \right\}$ बीज समावेंगे जिसे हम $क_{क^३}$ द्वारा प्ररूपित कर सकते हैं। यही प्रमाण Apj है जो Su से मात्र एक अधिक है। यहां यतिवृषभ का संकेत है कि यह चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रुतकेवली का विषय है। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे जिनके समीप से मुकुटधारियों में अंतिम 'चंद्रगुप्त' दीक्षा लेकर सम्भवतः दक्षिण की ओर चल पड़े थे।

परिशिष्ट (२)

तिलोयपण्णत्ती, ४,३१० (पृ. १८०–८२) के प्रकरण को और भी स्पष्ट करना यहां आवश्यक है। यतिवृषभ ने यहां संकेत किया है कि जहां जहां असंख्यात का अधिकार हो वहां वहां Ayj ग्रहण करना चाहिए। यहां संदेह होता है कि क्या लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों का भी यही प्रमाण माना जाय?

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जहां पल्योपम, अवलि आदि की गणना का सम्बन्ध है वहां Ayj का ग्रहण करना चाहिए तथा इस सम्बन्ध में तो लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या गणना की अपेक्षा से वास्तव में संख्या के अतीत होने से जो भी उसका प्रमाण है उसे उपधारणा (postulation) के आधार पर मात्र असंख्यात से अलंकृत कर देना ही उचित समझा गया है, जहां Ayj का ग्रहण करना वांछनीय नहीं है। यह तथ्य तब और भी स्पष्ट हो जाता है, जब कि हम देखते हैं कि

{ log }

अं = प

इस समीकार का निर्वचन हम पहिले ही दे चुके हैं। अं सूच्यंगुल में स्थित प्रदेशों की गणात्मक संख्या का प्रतीक है और प पल्योपमकाल राशि में स्थित समयों (The now of zeno) की गणात्मक संख्या का प्रतीक है। पल्योपमकाल में स्थित समयों की संख्या का प्रमाण* देखते हुए हमें जब सूच्यंगुल में स्थित प्रदेशों की संख्या का आभास मिलता है तो यह निश्चय हो जाता है कि लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या, गणना की अपेक्षा अतीत है। केवल काल की गणना में असंख्यात शब्द के लिये Ayj का ग्रहण हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार आवलि में असंख्यात समय का अर्थ Ayj समय हुआ। जहां उद्धार पल्य को असंख्यात कोटि वर्षों की समयसंख्या से गुणित करने का प्रकरण है वहां भी इस असंख्यात को Ayj के रूप में ग्रहण करने पर हमारा यह विभ्रम दूर हो जाता है कि अं न मालूम क्या है। दूसरी जगह आये हुए असंख्यात शब्द Ayj के लिये प्रयुक्त नहीं हुए हैं इसी कारण यहां अधिकार शब्द का प्रयोग हुआ है।

संख्याधारा में Apj का प्रमाण सुनिश्चित है इसलिये Apj का Apj में Apj बार गुणन होने पर जो Ayj की प्राप्ति हुई है, वह भी सुनिश्चित अचल संख्या प्रमाण है।

जिस पल्योपम के आधार पर सूच्यंगुल प्रदेश राशि की संख्या का प्रमाण बतलाया गया है उस समयराशि (अद्धापल्य काल राशि) में स्थित समयों की संख्या का प्रमाण

$= \{Apj$ (कोटि वर्ष समय राशि)$\}^2 \times$ (दसाहाँ पद्धति में लिखित ४७ अंक प्रमाण समय राशि)

$= (Apj)^2$(दसाहाँ पद्धति में लिखित ६१ अंक प्रमाण) $\{$१ वर्ष समय राशि प्रमाण$\}^3$

$= (Apj)^2$(दसाहाँ पद्धति में लिखित ६१ अंक प्रमाण संख्या)$\{(२)^{५}(१५)^2(३८\frac{१}{२})^2(७)^2 . Sm\}^3$

यहां Sm एक चल (variable) क्रमबद्ध, प्राकृत संख्या युक्त राशि है जिसके अवयव Su तथा Sj की मध्यवर्ती प्राकृत संख्याओं के पद ग्रहण करते हैं। यहां Sm का निश्चित प्रमाण ज्ञात नहीं है पर विज्ञान के इस युग में उसकी नितान्त आवश्यकता है। सम्भवतः Sj और Su के बीच का यह प्रमाण निश्चित करने में मूलभूत कणों के गमन विज्ञान में दक्ष भौतिकशास्त्री कुछ लाभ ले सकें। Sm को इसी रूप में रख उन आचार्यों ने क्या सहज भाव को अपनाया है अथवा आंकिकी पर आधारित सम्भावना (probability) को व्यक्त किया है ? हम अभी नहीं कह सकते।

---

*षट्खंडागम, पु. ३, प्रस्तावना पृ० ३४, ३५.

महाकोशल महाविद्यालय
जबलपुर

लक्ष्मीचन्द जैन
एम्. एस्सी.

शब्द-सूची

शब्द-सूची

शब्द-सूची

गणित लेख का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	भूल	सुधार
२	नीचे से १२	~	S
	नीचे से १०	,,	,,
	नीचे से ८	,,	,,
३	ऊपर से १५	$(\text{त्र्प्रं})=\text{प}^{\log_2(\text{त्र्प्र})}$	$(\text{त्र्प्रं})=\text{प}^{\log_2(\text{प})}$
६	ऊपर से ४	intervol	interval
७	ऊपर से १८	mathemetical	mathematical
९	ऊपर से ८	पुनः	—
११	नीचे से ९	की	के
	नीचे से ८	थ	थी
	नीचे से ५	~	-~-
१५	ऊपर से ३	$\frac{\text{व्या}२-\text{व्या}१}{२^२}$	$\frac{\text{व्या}_२-\text{व्या}_१}{२^२}$
१८	नीचे से ६	है[२]	है

पृष्ठ	पंक्ति	भूल	सुधार
१८	नीचे से १	अनन्तानन्त परमाणु[२]	अनन्तानन्त[२] परमाणु[२]
२१	नीचे से ३	Egyptions	Egyptians
४०	नीचे से १	era.[२]	era.[२४]
६२	नीचे से १७	No	*No*
	नीचे से १२	२No>No	२ *No* > *No*
८८	ऊपर से ७	minuts	minutes
	ऊपर से ८	,,	,,
९७	नीचे से ९	moticn	motion
१०३	नीचे से ११	$\text{क}_{\text{क}}२$	$\text{क}_{\text{क}^२}$
१०४	ऊपर से ६	त्र्प्रं=प {log}	$\text{त्र्प्रं}=\text{प}^{\{\log_2 \text{प}\}}$
	ऊपर से ८	zeno	Zeno
	नीचे से ६	राक्शि	राशि

प्रस्तावना

१ खगोल विषयक जैन ग्रंथ

प्राचीन भारतने इस विश्व को कैसा जाना माना है, यह विषय बड़ा रोचक एवं अध्यापनकी एक स्वतंत्र शाखा ही है। प्रारंभमें विद्वानों द्वारा इस विषय का जो कुछ अनुसंधान किया गया है (उदाहरणार्थ, देखिये ' डब्ल्यू. किरफेल ' कृत जर्मन भाषा का ग्रंथ ' डइ कॉस्मोग्राफी डेर इंडेर ' लीपज़िग १९२०, पृ. २०८–३४०) उससे सुस्पष्ट है कि भारतीय लोक-विज्ञान में जैन आचार्यों द्वारा किया गया चिन्तन भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस विषय की जैन रचनायें अनेक दृष्टियोंसे रुचिकर पाई जाती हैं। उनमें लोकका आकार प्रकार संबंधी विवरण बड़े विस्तारसे, बड़ी सुसंगतिसे एवं बड़ी कल्पना के साथ किया गया है। इस विवरण का जैन तत्त्वज्ञान व चारित्र संबंधी नियमोंके साथ भी घनिष्ट संबंध है। तथा समस्त जैन साहित्य और विशेषतः उसका कथात्मक भाग, इस लोक-ज्ञान संबंधी विवरणोंसे इतना ओतप्रोत है कि वह, बिना उक्त विषयके विशेष ग्रंथोंका सहारा लिये, स्पष्टतः समझा नहीं जा सकता। उनकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि उनमें अपने रचनाकाल के गणितज्ञान का भी खूब समावेश पाया जाता है। इस प्रकार नाना देशों और युगों में मानवीय ज्ञान के विकास का इतिहास समझने के लिये ये लोक-विज्ञान विषयक जैन ग्रंथ बड़े रोचक हैं।

अर्धमागधी श्रुताङ्ग के भीतर कुछ रचनायें ऐसी हैं जिनमें इस विषयका वर्णन किया गया है। वे इस प्रकार हैं:—

(१) सूरपण्णत्ति (सं. सूर्य-प्रज्ञप्ति, मलयगिरि की टीका सहित प्रकाशित, आगमोदय समिति, सूरत, १९१९)

(२) जम्बुद्दीवपण्णत्ति (सं. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, शान्त्याचार्य की टीका सहित प्रकाशित, देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ५२ और ५४, बम्बई, १९२०)

(३) चंदपण्णत्ति (सं. चन्द्रप्रज्ञप्ति)

श्रुतांगोंके उत्तर कालीन अन्य जैन ग्रंथोंमें भी इस विषयका बहुत विवरण मिलता है। तत्त्वार्थसूत्र और उसकी सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक आदि टीकाओंमें यह वर्णन खूब आया है। इस विषयके अन्य ग्रंथ हैं:—

(१) उमास्वातिकृत जम्बूद्वीपसमास (विजयसिंहकृत टीका सहित प्रकाशित, अहमदाबाद १९२२)

(२) जिनभद्रकृत संघायणी (मलयगिरिकृत टीका सहित प्रकाशित, भावनगर सं. १९७३)

(३) बृहत्क्षेत्रसमास (मलयगिरिकृत टीका सहित प्रकाशित, भावनगर सं. १९७७)

(४) हरिभद्रकृत जम्बुद्दीव-संघायणी (भावनगर १९१५). आदि।

इन ग्रंथोंका उल्लेख डब्ल्यू. शुब्रिंग कृत ' डइ लेहरे डेर जैनाज़ ' (लीपज़िग १९३५ पृ. २१६) में पाया जाता है।

श्रुतांग-संकलनसे पूर्वकालीन जैन ग्रंथोंकी एक अन्य भी परम्परा है। इसी परम्परा का एक ग्रंथ ' तिलोयपण्णत्ति ' दो भागोंमें प्रस्तुत ग्रंथमाला में ही प्रकाशित हो चुका है (शोलापुर, १९४३, १९५१)।

दूसरा ग्रंथ ' लोयविभाग ' भी इसी प्राचीन परम्परा का था, किन्तु अब केवल उसका संस्कृत संक्षिप्त रूपांतर ' लोकविभाग ' ही उपलभ्य है। नेमिचन्द्रकृत ' तिलोयसार ' (सं. त्रिलोकसार, बम्बई, १९१७) और उसकी माधवचन्द्रकृत टीका इस ग्रंथसमूह की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। प्रस्तुत ' जम्बूदीवपण्णत्तिसंगह ' भी इसी शाखा का एक ग्रंथ है जिसे यहां एक प्रामाणिक पाठ संशोधन, हिन्दी अनुवाद व परिशिष्टों आदि सहित ग्रंथमाला के इस पुष्प के रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। (देखिये जं. दी. प. सं. इंडियन हिस्टॉरीकल क्वार्टरली, कलकत्ता, १४, सन् १९३८ पृ. १८८ आदि)

२ जं. दी. प. सं. की हस्तलिखित प्रतियां

इस ग्रंथ की बहुत थोड़ी प्राचीन प्रतियां पुस्तकालयोंमें पाई जाती हैं (देखिये जिनरत्नकोश, पूना १९४४, पृ. १३१)। किन्तु फिर भी सम्पादकों को कुछ अन्य प्रतियां अनपेक्षित स्थानों से प्राप्त करनेमें सफलता मिली है। इन प्राचीन प्रतियोंका वर्णन निम्न प्रकार है:—

१. ग्रन्थकी प्रेसकापी शोलापुर प्रतिके आधारसे करायी गयी थी। यह प्रति वैशाख शुक्ला १ संवत् १९७१ में लिखी गयी है। इसमें लिपिकारका नाम आदि नहीं है। पत्र संख्या उसकी ८२ है। यह प्रति ऐलक पन्नालाल दि. जैन पाठशालासे प्राप्त हुई थी। इसका उल्लेख टिप्पणमें पाठभेद देते समय श प्रतिके नामसे किया गया है।

२. दूसरी प्रति ' भाण्डारकर ओरिएण्टल इंस्टीटयूट पूनासे प्राप्त हुई थी। इसमें नौवां और दसवां ये २ उद्देश पूर्णतया त्रुटित हैं। इसके अतिरिक्त उसमें ११ वें उद्देशकी भी २९० गाथायें अनुपलब्ध हैं। इस प्रतिका निर्देश पाठभेद देनेमें प प्रतिके नामसे हुवा है।

३. तीसरी प्रति उस्मानाबादकी है। इसकी पत्र संख्या ९९ है। यह श्रावण कृष्णा द्वादशी मंगलवार सं. १९६० में लिखी गयी है। प्रति लेखकने अपने नाम आदिका निर्देश नहीं किया है। इसकी तथा शोलापुर प्रतिकी आधारभूत कोई एक ही प्रति रही है, ऐसा हम अनुमान करते हैं। इसका उल्लेख टिप्पणमें उ प्रतिके नामसे हुआ है।

४. चौथी प्रति श्री ऐ. पन्नालाल जैन सरस्वती भवन, बम्बई की है। इसकी पत्र संख्या १०२ है। यह आगरा जिलाके अन्तर्गत मोमदी ग्रामवासी किसी पीतांबरदास नामक वैद्यके द्वारा माघ सुदी १० रविवार (संवत्का निर्देश नहीं है) को लिखी गयी है। इसका उल्लेख टिप्पणमें ब प्रतिके नामसे किया गया है। इसकी तथा पूनाकी प्रतिकी आधारभूत भी कोई एक ही प्रति रही है, ऐसा इन दोनों प्रतियोंके पाठभेदोंकी समानताको देखते हुए निश्चित-सा प्रतीत होता है।

५. पांचवीं प्रति कारंजा बलात्कार भण्डारसे प्राप्त हुई है। इसकी पत्र संख्या ५९ है। यह प्रति चैत्र शुक्ला तृतीया संवत् १७८६ में लिखकर पूर्ण की गयी है। इसके लिखनेमें जितने भागमें स्याहीका उपयोग हुआ है उतना कागजका भाग अत्यन्त जीर्ण हो गया है, स्याहीके उपयोगसे रहित हांशियेका भाग उसका बहुत अच्छा है। यह प्रति हमें मुद्रणकार्यके प्रारम्भ हो चुकनेके पश्चात् प्राप्त हो सकी है। अत एव उसका उपयोग क प्रतिके नामसे केवल अन्तिम ५ उद्देशों (९–१३) में ही किया जा सका है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी प्रतियां प्रायः अशुद्धिप्रचुर और यत्र तत्र स्खलित भी हैं, फिर भी उनमें कारंजा प्रति अपेक्षाकृत शुद्ध कही जा सकती है। लिपि उसकी सुवाच्य और आकर्षक भी है।

ग्रन्थके पूर्णतया मुद्रित हो जानेपर हमें एक प्रति श्री वीर-सेवा-मंदिरके विद्वान् पं. परमानन्दजी

शास्त्रीकी कृपासे प्राप्त हुई है। यह प्रति पण्डितजी के द्वारा ऐ. पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बईकी प्रतिके आधारसे लिखी गई है। इसके ऊपर उन्होंने आमेर प्रति (ज्येष्ठ शुक्ला ५ वि. संवत् १५१८) से मिलान करके कुछ महत्त्वपूर्ण पाठभेदोंका निर्देश किया है। मुद्रित ग्रन्थसे मिलान कर उनकी एक तालिका परिशिष्ट (पृ. ४६–५२) पर दे दी गयी है। पाठभेदोंकी अपेक्षा इस (आमेर प्रति) में और कारंजा प्रतिमें बहुत कुछ समानता पायी जाती है।

उपर्युक्त पांचों प्रतियां यत्र तत्र त्रुटित एवं अशुद्धिपूर्ण रही हैं। इस कारण संशोधनके लिये किसी एक प्रतिको आदर्श मानकर चलना अथवा कोई विशेष नियम बनाना और तदनुसार शब्दशः या तत्त्वतः अनुसरण करना कठिन काम था। फिर भी मूलमें एक अर्थपूर्ण पाठभेद देनेका प्रयत्न किया गया है। जहां प्रतियोंके पाठके अनुसार अनुवाद करना शक्य नहीं प्रतीत हुआ वहां प्रतियोंके पाठभेदका टिप्पणमें निर्देश कर सम्भावित शुद्ध पाठ देनेका प्रयत्न किया गया है। सन्दर्भ, अर्थ और उपलब्ध साधनसामग्रीके आधारसे पाठका निर्णय यथाशक्ति पूर्ण सावधानीसे किया गया है।

आशा है कि इस सम्पादन के द्वारा फिर हाल इस विषयके अध्ययन और अनुसन्धानका काम चल जायगा।

प्रतियोंपर प्रायः इस ग्रंथका नाम 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' अंकित पाया जाता है। किन्तु उद्देशोंकी पुष्पिकाओंके उल्लेखानुसार ग्रंथका ठीक पूरा नाम 'जंबूदीवपण्णत्तिसंगह' (जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति-संग्रह) है। 'संग्रह' शब्दसे यह सूचित होता है कि ग्रंथकारने किसी अन्य प्राचीन स्रोतसे अपने विषयका संकलन किया है। गाथा १–६ और ८ तथा १३–१४२ से ध्वनित होता है कि वह स्रोत 'दीव-सागर-पण्णत्ति' नामका ग्रंथ था। महावीर तीर्थंकरके उपदेशोंके आधारपर उनके गणधरों द्वारा निर्मित श्रुताङ्गोंमेंसे बारहवें अंग दृष्टिवादके प्रथम भाग 'परिकर्म' के भीतर गिनाई गई पांच 'प्रज्ञप्तियों' में चौथे स्थानपर यह नाम पाया जाता है:– चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। क्या उक्त उल्लेखका इस श्रुतरचनासे कोई संबंध है, यह अन्य प्रमाणोंके अभावमें कुछ कहा नहीं जा सकता।

३ ग्रंथका विषय

इस ग्रंथमें सब मिलाकर २४२९ गाथायें व १३ उद्देश हैं। प्रत्येक उद्देशकी पुष्पिकामें उस उद्देशके विषयका सुस्पष्टतासे निर्देश पाया जाता है जो इस प्रकार है:—

(१) उपोद्घात प्रस्ताव (२) भरतैरावतवर्णन (३) पर्वत-नदी-भोगभूमि वर्णन (४) महाविदेहाधिकार (५) मंदरगिरि-जिनभवनवर्णन (६) देवकुरु-उत्तरकुरु-विन्यास प्रस्ताव (७) कच्छाविजयवर्णन (८) पूर्वविदेहवर्णन (९) अपरविदेहवर्णन (१०) लवणसमुद्रवर्णन (११) बहिरुपसंहारद्वीप-सागर-नरकगति-देवगति-सिद्धक्षेत्रवर्णन (१२) ज्योतिर्लोकवर्णन और (१३) प्रमाणपरिच्छेद।

१. प्रथम उद्देशमें केवल ७४ गाथायें हैं। यहां सर्व प्रथम ६ गाथाओंमें क्रमशः अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु परमेष्ठियोंकी वन्दना करके द्वीप-सागरप्रज्ञप्तिके रचनेकी प्रतिज्ञा की गयी है। तत्पश्चात् गा. ७ में सर्वज्ञका नामस्मरण और गा. ८ में वर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार करके श्रुत-गुरुपरिपाटीके अनुसार कथन करनेकी इच्छा प्रगट करते हुए तदनुसार ही आगे चलकर बतलाया है कि विपुलाचलपर स्थित भगवान् वर्धमान जिनेन्द्रने जो प्रमाण-नयसंयुक्त अर्थ गौतम गणधरके लिये कहा था उसे ही उन गौतम गणधरने सुधर्म (अपर नाम लोहार्य) गणधरको तथा इन्होंने जंबू स्वामीको कहा। ये तीनों अनुबद्ध केवली थे।

तत्पश्चात् (१) नन्दी (२) नन्दिमित्र (३) अपराजित (४) गोवर्धन और (५) भद्रबाहु ये पांच श्रुतकेवली हुए। तत्पश्चात् (१) विशाखाचार्य (२) प्रोष्ठिल (३) क्षत्रिय (४) जय (५) नाग (६) सिद्धार्थ (७) धृतिषेण (८) विजय (९) बुद्धिल (१०) गंगदेव और (११) धर्मसेन ये दस पूर्वोंके ज्ञाता हुए। फिर (१) नक्षत्र (२) यशपाल (३) पाण्डु (४) ध्रुवषेण और (५) कंसाचार्य ये पांच ग्यारह अंगोंके धारी हुए। तत्पश्चात् (१) सुभद्र (२) यशोभद्र (३) यशोबाहु और (४) लोहाचार्य ये चार आचारांगके धारक हुए। इतनी मात्र श्रुतधारकोंकी परम्पराका निर्देश करके ग्रन्थकार आचार्यपरम्परासे प्राप्त द्वीप-सागरप्रज्ञप्तिके कहनेकी पुनः प्रतिज्ञा करते हैं।

आगे चलकर पच्चीस कोड़ाकोड़ि उद्धार पल्य प्रमाण समस्त द्वीप-सागरोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीपके विस्तार, परिधि और क्षेत्रफलका निर्देश करके उसकी जगती (वेदिका) का वर्णन करते हुए बतलाया है कि उसके विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार गोपुर द्वारोंपर क्रमशः इन्हीं नामोंके धारक प्रभावशाली चार देव स्थित हैं। यहां इनमेंसे प्रत्येकके बारह हजार योजन प्रमाण लंबे-चौड़े नगर हैं। जम्बूद्वीपमें ७ क्षेत्र, १ मन्दर पर्वत, ६ कुल पर्वत, २०० कांचन पर्वत, ४ यमक पर्वत, ४ नाभिगिरि, ३४ वृषभगिरि, ३४ विजयार्ध, १६ वक्षार पर्वत और ८ दिग्गज पर्वत स्थित हैं। इन सबके अलग अलग वेदियां व वनसमूह भी हैं। जम्बूद्वीपमें स्थित नदियोंकी संख्या १४५६०९० बतलायी है। पश्चात् नदीतट, पर्वत, उद्यानवन, दिव्य भवन, शाल्मलि वृक्ष और जम्बू वृक्ष आदिके ऊपर स्थित जिनप्रतिमाओंको नमस्कार करके अन्तमें ग्रन्थकर्ता श्री पद्मनन्दिने जिनेन्द्रसे बोधिकी याचना कर इस उद्देशको समाप्त किया है।

२. दूसरे उद्देशमें २१० गाथायें हैं। यहां क्षेत्रविभागका वर्णन करते हुए बतलाया है कि जंबूद्वीपमें क्रमशः भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये ७ क्षेत्र तथा क्रमशः इनका विभाग करनेवाले हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छह कुलपर्वत स्थित हैं। जंबूद्वीपके गोलाकार होनेसे इसमें स्थित उन क्षेत्र-पर्वतोंमें क्षेत्रसे दूना पर्वत और उससे दूना विस्तृत आगेका क्षेत्र है। यह क्रम उसके मध्यमें स्थित विदेह क्षेत्र तक है। इस क्षेत्रसे आगेके पर्वतका विस्तार आधा है और उससे आधा विस्तार आगेके क्षेत्रका है। यह क्रम अन्तिम ऐरावत क्षेत्र तक है। इस प्रकार जंबूद्वीपके १९० खण्ड (भरत १+ हिमवान् २+ हैमवत ४+ महाहिमवान् ८+ हरिवर्ष १६+ निषध ३२+ विदेह ६४+ नील ३२+ रम्यक १६+ रुक्मि ८+ हैरण्यवत ४+ शिखरी २+ और ऐरावत १=१९०) हो गये हैं। इनमेंसे अभीष्ट क्षेत्र या पर्वतका विस्तार जाननेके लिये जंबूद्वीपके विस्तार (१००००० योजन) में १९० का भाग देकर लब्धको विवक्षित क्षेत्र या पर्वतके खण्डोंसे गुणित करना चाहिए। गोल क्षेत्रके विभागभूत होनेसे इन क्षेत्रों और पर्वतोंका आकार धनुष जैसा हो गया है। यहां धनुषपृष्ठ, बाहु (दीर्घ धनुषमेंसे ह्रस्व धनुषको कम करनेपर शेष क्षेत्रका अर्ध भाग), जीवा, चूलिका (दीर्घ जीवामेंसे ह्रस्व जीवाको कम करनेपर शेष क्षेत्रका अर्ध भाग) और बाणका प्रमाण लानेके लिये गणितसूत्र दिये गये हैं।

विजयार्धका वर्णन करते हुए वहां उसकी दक्षिण श्रेणिमें पचास और उत्तरश्रेणिमें साठ विद्याधर नगरोंका निर्देश करके गाथा ४० में उनकी सम्मिलित संख्या २०० बतलायी है जो विचारणीय है। कारण कि उपर्युक्त कथनके अनुसार ही वह संख्या ५०+६०=११० होनी चाहिये। यदि इसमें ऐरावत क्षेत्रस्थ विजयार्ध पर्वतके भी नगरोंकी संख्या सम्मिलित कर ली जाती है तो वे २२० नगर होने चाहिये।

यहां विजयार्ध पर्वतके वर्णनमें उसके ऊपर स्थित ९ कूटोंका नामनिर्देश करके उनके ऊपर स्थित जिनभवनों और देवभवनोंका तथा उद्यानवनोंका भी वर्णन किया है। उक्त पर्वतके दोनों ओर तिमिस्र

ओर खण्डप्रपात नामकी दो गुफायें हैं। इन्हीं गुफाओंके भीतरसे आकर गंगा और सिंधू नदियां दक्षिण भरतमें प्रविष्ट होती हैं। आगे जाकर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके भेदोंका उल्लेख करते हुए सब विदेहक्षेत्रों, पांच म्लेच्छखण्डों और सब विद्याधरनगरोंमें एक चतुर्थ काल वर्तमान बतलाया है। देवकुरु व उत्तरकुरुमें प्रथम, हैमवत व हैरण्यवत क्षेत्रोंमें तृतीय, तथा हरिवर्ष व रम्यक क्षेत्रोंमें द्वितीय काल ही सदा रहता है। प्रसंग पाकर यहां इन कालोंमें होनेवाली आयु, उत्सेध और भोजन आदिका नियम भी बतलाया गया है। कौन जीव किन परिणामोंसे भोगभूमियोंमें उत्पन्न होते हैं, इसका विवरण करते हुए उन भोगभूमियोंमें प्रथम चार गुणस्थान बतलाये हैं।

मानुषोत्तर पर्वतसे आगे स्वयम्भूरमण द्वीपके मध्यमें स्थित नगेन्द्र (स्वयंप्रभ) पर्वत तक असंख्यात द्वीपोंमें युगल रूपमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच जीव रहते हैं। काल यहांपर सदा तीसरा (सुषम-दुषमा) ही रहता है। नगेन्द्र पर्वतसे आगे स्वयम्भूरमण द्वीप एवं स्वयम्भूरमण समुद्रमें दुःषमाकाल, देवोंमें सुषम-सुषमा, नारकियोंमें अतिदुःषमा तथा तिर्यंचों व मनुष्योंमें छहों कालोंके रहनेका उल्लेख किया गया है। अन्तमें उक्त छहों कालोंके स्वरूपका दिग्दर्शन कराते हुए इस उद्देशको समाप्त किया गया है।

३. तृतीय उद्देशमें २४६ गाथायें हैं। यहा हिमवान् और शिखरी, महाहिमवान् और रुक्मि, तथा निषध और नील कुलाचलोंके विस्तार, जीवा, धनुषपृष्ठ, पार्श्वभुजा और चूलिकाका प्रमाण बतला कर उनके ऊपर स्थित कूटोंके नामोंका निर्देश किया गया है। इन कूटोंके ऊपर जो भवन स्थित हैं उनका भी यहां वर्णन किया है। तत्पश्चात् हिमवान् और महाहिमवान् आदि छह कुलपर्वतोंके ऊपर जो पद्म और महापद्म आदि तालाब हैं उनमें स्थित कमलभवनोंपर निवास करनेवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी इन छह देवियोंकी विभूतिका निरूपण है। पद्मद्रहमें स्थित समस्त कमलभवन १४०११६ हैं। जम्बू और शाल्मलि वृक्षोंके ऊपर जो भवन स्थित हैं उनसे इनकी संख्याकी समानताका उल्लेख करके यहां इन वृक्षोंके अधिपति देवोंकी चार महिषियोंके चार भवन अधिक (१४०१२०) बतलाये गये हैं। यहां जो जिनभवन पाये जाते हैं उनका भी उल्लेख कर दिया है।

हिमवान् पर्वतके मध्यमें जो पद्मद्रह स्थित है उसके पूर्वाभिमुख तोरण द्वारसे गंगा महानदी निकली है। वहांसे निकलकर यह नदी हिमवान् पर्वतके ऊपर पूर्वकी ओर ५०० योजन जाकर फिर दक्षिणकी ओर मुड़ जाती है। इस प्रकार पर्वतके अन्त तक जाकर वहां जो वृषभाकार नाली स्थित है उसमें प्रविष्ट होती हुई वह पर्वतके नीचे स्थित कुण्डमें गिरती है। यह गोलकुण्ड ६२½ योजन विस्तृत और १० योजन गहरा है। इसके बीचोंबीच एक ८ योजन विस्तृत द्वीप और उसके भी मध्यमें एक पर्वत है। इसके ऊपर गंगादेवीका गंगाकूट नामक प्रासाद है। गंगा नदीकी धारा उन्नत भवनके शिखरपर स्थित जिनप्रतिमाके ऊपर पड़ती है। फिर यहांसे निकलकर वह गंगा नदी दक्षिणकी ओर जाकर विजयार्धकी गुफामेंसे जाती हुई पूर्व समुद्रमें गिरती है। प्रसंगानुसार यहां गंगादिक नदियोंकी धारा, कुण्ड, कुण्डद्वीप, कुण्डस्थ पर्वत, तदुपरिस्थ भवन और तोरण आदिकोंके विस्तारादिकी भी प्ररूपणा की गई है।

अन्तमें हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक और हैरण्यवत इन चार क्षेत्रोंके मध्यमें स्थित नाभिगिरि पर्वतोंका वर्णन करते हुए इन क्षेत्रोंमें प्रवर्तमान कालोंका पुनः निर्देश करके भोगभूमियोंकी व्यवस्थाका भी पुनरुल्लेख किया गया है।

४. चतुर्थ उद्देशमें २९२ गाथायें हैं। यहां सुदर्शन मेरुका कथन करते हुए प्रारम्भकी ३–९ गाथाओंमें जो लोकका स्वरूप बतलाया गया है वह स्पष्ट नहीं हुआ है। आगे उक्त लोकका विस्तार व ऊंचाई

आदिका कथन है जो प्रायः सभी ग्रन्थोंमें समान रूपसे पाया जाता है। इस लोकके बहुमध्य भागमें स्थित असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके मध्यमें जम्बूद्वीप है और उसके मध्यमें विदेह क्षेत्रके भीतर मन्दर पर्वत है। उसका विस्तार पातालतलमें १००९० $\frac{१०}{११}$ यो., पृथिवीतलके ऊपर (भद्रशाल वनमें) १०००० यो., और ऊपर शिखरपर (पाण्डुक वनमें) १००० यो. है। यह मूल भागमें १००० यो. वज्रमय, मध्यमें ६१००० यो. मणिमय और ऊपर ३८००० यो. सुवर्णमय है।

यहां मेरु पर्वतकी परिधि आदिका निर्देश करते हुए बतलाया है कि मेरुका भद्रशाल नामका प्रथम वन पूर्व-पश्चिममें २२००० यो. विस्तृत है। इसके मध्यमें १०० यो. आयत, ५० यो. विस्तृत और ७५ यो. ऊंचे ४ जिनभवन हैं। उनके द्वारोंकी उंचाइ ८ यो., विस्तार ४ यो., और विस्तारके समान प्रवेश भी ४ ही यो. है। इनकी पीठिकायें १६ यो. दीर्घ और ८ यो. ऊंची हैं। उनमें स्थित जिनप्रतिमाओंकी उंचाई ५०० धनुष है। नन्दीश्वर द्वीपमें स्थित ५२ जिनभवनोंकी भी रचनाका यही क्रम है। नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनोंमें स्थित जिनभवनोंका विस्तारादि उक्त जिनभवनोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर आधा आधा है।

मेरुके ऊपर पृथिवीतलसे ५०० यो. ऊपर जाकर नन्दन वन, ६२५०० यो. ऊपर सौमनस वन और ३६००० यो. ऊपर पाण्डुक वन स्थित है। इनमेंसे पाण्डुक वनके मध्यमें ४० यो. ऊंची वैडूर्यमणिमय चूलिका है। इसका विस्तार मूलमें १२ यो., मध्यमें ८ यो. और शिखरपर ४ यो. है। चूलिकाके ऊपर एक बाल मात्रके अन्तरसे सौधर्म कल्पका प्रथम ऋतु विमान स्थित है। पाण्डुक वनके भीतर ईशान दिशा (पूर्वोत्तर कोण) में पाण्डुकशिला, आग्नेय (दक्षिण-पूर्व) दिशामें पाण्डुककंबला, नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) कोणमें रक्तकंबला और वायव्य (उत्तर-पश्चिम) कोणमें रक्तशिला; ये ५०० यो. आयत, २५० यो. विस्तृत व ४ यो. ऊंची ४ शिलायें स्थित हैं। प्रत्येक शिलाके ऊपर ५०० धनुष आयत, २५० धनुष विस्तृत और ५०० धनुष ऊंचे ३-३ पूर्वाभिमुख सिंहासन स्थित हैं। इनमेंसे मध्यका जिनेंद्रोंका, दक्षिण पार्श्वभागमें स्थित सौधर्म इन्द्रका और वाम पार्श्वभागमें स्थित सिंहासन ईशानेन्द्रका है। ईशान दिशामें स्थित पाण्डुक शिलाके ऊपर भरतक्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरोंका, आग्नेय कोणमें स्थित पाण्डुककंबला शिलाके ऊपर अपरविदेहोत्पन्न तीर्थंकरोंका, नैऋत्य कोणमें स्थित रक्तकंबला शिलाके ऊपर ऐरावतक्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरोंका और वायव्य कोणमें स्थित रक्त शिलाके ऊपर पूर्वविदेहोत्पन्न तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक चतुर्निकायके देवों द्वारा किया जाता है। प्रसंग पाकर यहां सौधर्मेन्द्रकी सप्तविध सेना और ऐरावत हाथीका भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

५. पांचवें उद्देशमें १२५ गाथायें हैं। यहां मन्दर पर्वतस्थ जिनेन्द्रभवनोंका वर्णन करते हुए बतलाया है कि त्रिभुवनतिलक नामक जिनेन्द्रभवनकी गन्धकुटी ७५ यो. ऊंची, ५० यो. आयत और इतनी ही विस्तृत है। उसके द्वार १६ यो. ऊंचे, ८ यो. विस्तृत और विस्तारके बराबर (४ यो.) प्रवेशसे सहित हैं (गा. २–४ यहां असम्बद्धसी प्रतीत होती हैं)। मन्दर पर्वतके भद्रशाल नामक प्रथम वनमें चारों दिशाओंमें ४ जिनभवन हैं। इनका आयाम १०० यो., विस्तार इससे आधा (५० यो.), ऊंचाई ७५ यो. और अवगाह आधा योजन (२ कोस) है। इन जिनभवनोंमें पूर्व, उत्तर और दक्षिणकी ओर ३ द्वार हैं। ये द्वार ८ यो. ऊंचे और इससे आधे विस्तृत हैं। इन जिनभवनोंमें पूर्व-पश्चिममें ८००० मणिमालायें और इनके अन्तरालोंमें २४००० सुवर्णमालायें लटकती हैं। द्वारोंमें कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्योंसे संयुक्त २४००० धूपघट हैं। सुगन्धित मालाओंके अभिमुख ३२००० रत्नकलश हैं। बाह्य भागमें ४००० मणिमालायें, १२००० सुवर्णमालायें, १२००० धूपघट और १६००० कंचनकलश हैं।

उन जिनभवनोंके पीठ १६ यो. से कुछ अधिक आयत, ८ यो. से कुछ अधिक विस्तृत और २ यो. ऊंचे हैं। यहांकी सोपानपंक्तियां १६ यो. लंबी, ८ यो. विस्तृत, ६ यो.. ऊंची और २ गव्यूति अवगाहवाली हैं। इन सोपानोंकी संख्या १०८ है। उनमेंसे एक एक सोपानकी उंचाई कुछ अधिक ५५ से कम ५०० धनुष (६ यो. ÷ १०८ = ४४४$\frac{४}{९}$ धनुष) है। उन पीठोंकी वेदियां २ कोस ऊंची और ५०० धनुष विस्तृत हैं। वहां स्थित देवच्छंद नामक गर्भगृह स्फटिकमणिमय भित्तियोंसे सहित; वैडूर्यमणिमय खंभोंसे संयुक्त और ३ सोपानोंसे युक्त हैं। इन भवनोंमें विराजमान अनादि-निधन जिनेन्द्रप्रतिमायें ५०० धनुष ऊंची और उत्तम लक्षण-व्यंजनोंसे परिपूर्ण हैं। एक एक जिनभवनमें १०८–१०८ जिनप्रतिमायें हैं। इनमें प्रत्येक प्रतिमाके साथ १०८–१०८ प्रातिहार्य होते हैं।

यहां उक्त जिनभवनोंके भीतर सिंहादिक चिह्नोंसे सुशोभित दस प्रकारकी ध्वजाओं, मुखमण्डप, प्रेक्षागृह, सभागृह, स्तूप, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष और वन-वापियों आदिका भी वर्णन किया गया है।

इन जिनभवनोंमें चार प्रकारके देव अपनी अपनी विभूतिके साथ आकर अष्टाह्निक दिवसोंमें पूजा करते हैं। इस वर्णनमें यहां आनेवाले सौधर्मादिक १६ इन्द्रोंके नामोंका उल्लेख किया गया है, जो दोनों सम्प्रदायगत १२ इन्द्रोंकी मान्यताके विरुद्ध है। उक्त इन्द्रोंके यान-विमान क्रमशः ये हैं– १ गज, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ तुरग, ५ हंस, ६ वानर, ७ सारस, ८ मयूर, ९ चक्रवाक, १० पुष्पक विमान, ११ कोयल विमान, १२ गरुड़ विमान, १३ (आनतेन्द्रके यानविमानका निर्देश गा. १०५ में होना चाहिये था जो नहीं हुआ है) १४ कमल विमान १५ नलिन विमान और १६ कुमुद विमान। इनके हाथोंमें उस समय निम्न सामग्री रहती है– १ वज्र, २ त्रिशूल, ३ असि, ४ परशु, ५ मणिदण्ड, ६ पाश, ७ कोदण्ड, ८ कमलकुसुम, ९ पूगफलोंका गुच्छा, १० गदा, ११ तोमर, १२ हल-मूसल, १३ सित कुसुममाला, १४ कमलमाला, १५ चम्पकमाला और १६ मुक्तादाम।

६. छठे उद्देशमें १७८ गाथायें हैं। यहां देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रोंका वर्णन किया गया है। उत्तरकुरु क्षेत्र मेरु पर्वतके उत्तर और नील पर्वतके दक्षिणमें है। इसके पूर्वमें माल्यवान् पर्वत और पश्चिममें गन्धमादन शैल है। उसका विस्तार ११८४२$\frac{२}{१९}$ यो. है। वहां नील पर्वतके दक्षिणमें १००० यो. जाकर सीता नदीके उभय तटोंपर २ यमक पर्वत हैं। इन दोनों पर्वतोंके बीच ५०० यो. का अन्तर है। नील पर्वतके दक्षिणमें २५०० यो. जाकर सीता नदीके मध्यमें नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत और माल्यवान् नामके ५ द्रह हैं। इनकी लम्बाई १००० यो., चौड़ाई ५०० यो. और गहराई १० यो. है। इनके भीतर स्थित कमलभवनोंमें द्रह जैसे नामवाली नागकुमारी देवियां सपरिवार निवास करती हैं। यहां कमलोंकी संख्या आदि पद्मद्रहके समान है। इन द्रहोंके पूर्व-पश्चिम पार्श्वभागोंमें १०-१० कांचन शैल स्थित हैं। पांचों द्रहों सम्बन्धी कांचन शैलोंकी संख्या १०० है।

उत्तरकुरुके मध्यमें मेरुके उत्तर-पूर्व कोणमें सुदर्शन नामक जम्बूवृक्ष स्थित है। इसकी पूर्वादिक चारों दिशाओंमें चार विस्तृत शाखायें हैं। इनमें उत्तरकी शाखापर जिनेन्द्रभवन और शेष तीन शाखाओंपर जम्बूद्वीपके अधिपति अनादृत यक्षके भवन हैं। इसके परिवार वृक्षोंकी संख्या १४०११९ है।

मंदर पर्वतके दक्षिण पार्श्वभागमें देवकुरु क्षेत्र है। इसके पूर्वमें सौमनस तथा पश्चिममें विद्युत्प्रभ नामक गजदन्त पर्वत स्थित हैं। यहां भी निषध पर्वतके उत्तरमें १००० यो. जाकर सीतोदा नदीके दोनों तटोंपर चित्र और विचित्र नामके २ यमक पर्वत हैं। इनके आगे ५०० यो. जाकर सीतोदा नदीके मध्यमें

निषधद्रह, देवकुरु, सूर, सुरस और विद्युत्तेज नामके ये ५ द्रह हैं। इनमें स्थित कमलभवनोंपर रहनेवाली नागकुमार देवियोंके नाम ये हैं— निषधकुमारी, देवकुरुकुमारी, सूरकुमारी, सुलसा और विद्युत्प्रभकुमारी इनके परिवार देवोंके भवनोंका वर्णन करते हुए यहां दिशाओं और विदिशाओंके निर्देशक निम्न शब्दोंका प्रयोग किया गया है— सिंह, श्वान, धय, सिंह, वृषभ, गज, खर, गज, ढंख (ध्वांक्ष); धय, धूम, सिंह, मंडल, गोपत्ति, खर, नाग और ढंख। इन शब्दोंका प्रयोग उक्त अर्थमें कहीं अन्यत्र देखनेमें नहीं आया।

प्रत्येक द्रहके पूर्व-पश्चिम दोनों पार्श्वभागोंमें दस दस कंचन शैल हैं। यहां देवकुरु क्षेत्रमें मंदर पर्वतकी उत्तर दिशामें सीतोदा नदीके पश्चिम तटपर स्वाति नामका शाल्मलि वृक्ष स्थित है। इसका वर्णन जम्बू वृक्षके समान है। इन देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रोंमें युगल-युगल रूपसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तीन पल्योपम प्रमाण आयुसे संयुक्त और तीन कोस ऊंचे होते हैं। आहार वे तीन दिनके पश्चात् करते हैं, वह भी बेरके बराबर। उनमें नपुंसक वेद नहीं होता— सभी स्त्री और पुरुष वेदवाले ही होते हैं। वे मरकर नियमतः देवोंमें ही जन्म लेते हैं।

(७) सातवें उद्देशमें १५३ गाथायें हैं। इसमें विदेह क्षेत्रका वर्णन किया गया है। यह क्षेत्र निषध व नील कुलपर्वतोंके बीचमें स्थित है। विस्तार उसका २३६८४ ४/१९ यो. प्रमाण है। इसके बीचमें सुमेरु पर्वत और उससे संलग्न चार दिग्गज पर्वत हैं। इस कारण वह पूर्वविदेह और अपरविदेह रूप दो भागोंमें विभक्त हो गया है। बीचमें सीता और सीतोदा महानदियोंके बहनेके कारण प्रत्येकके और भी २-२ भाग हो गये हैं। उक्त चार भागोंमेंसे प्रत्येक भागके मध्यमें ४ वक्षार पर्वत और उनके भी बीचमें ३ विभंगा नदी हैं। इस कारण उनमेंसे प्रत्येकके भी ८-८ भाग हो गये हैं। इस प्रकार ये ३२ भाग ही ३२ विदेहके रूपमें प्रसिद्ध हैं।

इनमें नील पर्वतके दक्षिण, सीता नदीके उत्तर, उत्तरकुरुके पूर्व और चित्रकूट वक्षारके पश्चिम भागमें कच्छा विजय स्थित है। इसका विस्तार नील पर्वतके पासमें ७३३ १/२ १/८ यो. और सीता नदीके तटपर २२१२ ७/८ यो. है। इसके बीचोबीच विजयार्ध पर्वत स्थित है। यहां रक्ता और रक्तोदा नामकी दो नदियां नील पर्वतस्थ कुण्डोंसे निकल कर विजयार्धकी गुफाओंके भीतरसे जाती हुई सीता महानदीमें प्रविष्ट होती हैं। इस कारण उक्त कच्छा विजय ६ खण्डोंमें विभक्त हो गया है। इनमें सीता नदीकी ओर बीचका आर्यखण्ड तथा शेष पांच म्लेच्छ खण्ड कहे गये हैं। आर्यखण्डके बीचमें क्षेमा नामकी नगरी स्थित है। इसका आयाम १२ यो. और विस्तार ९ यो. प्रमाण है। प्राकारपरिवेष्टित उक्त नगरीके १००० गोपुरद्वार और ५०० खिड़कीद्वार हैं। रथ्याओंकी संख्या १२ हजार निर्दिष्ट की गयी है। यहां चक्रवर्तीका निवास है जो ३२ हजार देशोंके अधिपतियोंका स्वामी होता है। इसके अधीन ९९ हजार द्रोणमुख, ४८ हजार पट्टन, २६ हजार नगर, ५००–५०० ग्रामोंसे संयुक्त ४००० मडंब, ३४ हजार कर्वट, १६ हजार खेट, १४ हजार संवाह, ५६ रत्नद्वीप और ९६ करोड़ ग्राम होते हैं। यहां क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन ही वर्ण हैं, ब्राह्मण वर्ण नहीं है। जैन धर्मके सिवाय अन्य धर्म भी यहां नहीं पाये जाते। तीर्थंकरादि ६३ शलाकापुरुषोंकी परम्परा यहां चलती ही रहती है। यह कच्छा विजयका वर्णन हुआ। ठीक यही वर्णनक्रम महाकच्छा आदि शेष ३१ विजयोंका भी समझना चाहिये।

कच्छा विजयके रक्ता-रक्तोदा नदियोंसे अन्तरित मागध, वरतनु और प्रभास नामके तीन द्वीप हैं। इन तीनों द्वीपोंके अधिपति देव अपने अपने द्वीपके ही नामसे प्रसिद्ध हैं। दिग्विजयमें प्रवृत्त हुआ चक्रवर्ती प्रथमतः इन द्वीपोंके अधिपति देवोंको अपने अधीन करता है। इसी प्रकारसे दक्षिणकी ओरके देव-विद्याधरोंको

वशमें करके वह विजयार्ध पर्वतकी गुफामेंसे जाकर उत्तरके म्लेच्छ खण्डोंको भी अपने अधीन करता है। उस समय म्लेच्छ राजाओंकी प्रार्थनापर मेघमुख नामका देव चक्रवर्तीकी सेनापर घोर उपसर्ग करता है, फिर भी चक्रवर्तीके प्रभावसे उसमें किसी प्रकारका क्षोभ नहीं होता। इस समय समस्त सैन्यका रक्षण चर्मरत्न और छत्ररत्न के द्वारा होता है। अन्तमें वह इन म्लेच्छ राजाओंपर केवल विजय ही प्राप्त नहीं करता, बल्कि उनके द्वारा हाथी और घोड़ों आदिके साथ ही अनेक कन्या-रत्नोंसे भी सत्कृत होता है। इस समय उसे यह महान् गर्व होता ह कि मुझ जैसा प्रतापी पृथिवीपर अन्य कोई भी नहीं है। इसी अभिमानसे प्रेरित होकर वह निज कीर्तिस्तम्भको स्थापित करनेके लिये ऋषभगिरिके निकट जाता है। किन्तु यहां समस्त पर्वतको ही नाना चक्रवर्तियोंके नामोंसे व्याप्त देखकर वह तत्क्षण निर्मद हो जाता है। अन्ततः वह दण्ड रत्नसे एक नामको घिसकर वहां अपना नाम लिख देता है। इस प्रकार वह छहों खण्डोंको जीतकर वापिस क्षेमा नगरीमें प्रविष्ट होता है।

(८) आठवें उद्देशमें १९८ गाथायें हैं। यहां पूर्वविदेहका वर्णन करते हुए बतलाया है कि कच्छा देशके पूर्वमें क्रमशः चित्रकूट पर्वत, सुकच्छा देश, ग्रहवती नदी, महाकच्छा देश, पद्मकूट पर्वत, कच्छकावती देश, द्रहवती नदी, आवर्ता देश, नलिनकूट पर्वत, मंगलावर्ता देश, पंकवती नदी, पुष्कला देश, एकशैल पर्वत और महापुष्कलावती देश है। इसके आगे देवारण्य नामका वन है। उक्त सुकच्छा आदि देशोंकी राजधानियोंके नाम क्रमसे ये हैं— क्षेमपुरी, अरिष्टनगरी, अरिष्टपुरी, खड्गा, मंजूषा, औषधि और पुण्डरीकिणी। महापुष्कलावती देशसे आगे पूर्वमें देवारण्य नामका वन है।

इसके आगे दक्षिणमें सीता नदीके दक्षिण तटपर दूसरा देवारण्य वन है। इसके आगे पश्चिम दिशामें जाकर क्रमसे निम्न देश, पर्वत और नदियां हैं — वत्सा देश, त्रिकूट पर्वत, सुवत्सा देश, तप्तजला नदी, महावत्सा देश, वैश्रवणकूट पर्वत, वत्सकावती देश, मत्तजला नदी, रम्या देश, अंजनगिरि पर्वत, सुरम्या देश, उन्मत्तजला नदी, रमणीया देश, आत्मांजन पर्वत और मंगलावती देश। इन देशोंकी राजधानियां क्रमशः ये हैं— सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंकावती, पद्मावती, शुभा और रत्नसंचया नगरी। इन नगरियोंका वर्णन क्षेमापुरीके समान है। इन सब देशों, नदियों और पर्वतोंकी लम्बाई समान रूपसे १६५९२$\frac{२}{१९}$ यो. मात्र है। समानताका कारण यह है कि इनमेंसे कच्छा-सुकच्छा आदि नील पर्वतकी वेदिकासे लेकर सीता नदीके तट तक तथा वत्सा-सुवत्सा आदि निषधपर्वतकी वेदिकासे लेकर सीता नदीके तट तक आये हुये हैं। अत एव विदेहके विस्तारमेंसे सीता नदीके विस्तारको कम करके शेषको आधा कर देनेपर इनकी लम्बाईका उपर्युक्त प्रमाण आ जाता है। जैसे— ३३६८४$\frac{४}{१९}$ − ५०० ÷ २ = १६५९२$\frac{२}{१९}$।

(९) नौवें उद्देशमें १९७ गाथायें हैं। यहां अपरविदेहका वर्णन करते हुए बतलाया है कि रत्नसंचयपुरके पश्चिममें एक वेदिका और उस वेदिकासे ५०० यो. जाकर सौमनस पर्वत है। यह पर्वत भद्रशाल वनके मध्यसे गया है। निषध पर्वतके समीपमें उसकी उंचाई ४०० यो. और अवगाह १०० यो. है। विस्तार उसका ५०० यो. मात्र है। फिर इसी पर्वतकी उंचाई और अवगाह क्रमशः वृद्धिगत होकर मंदर पर्वतके समीपमें ५०० और १२५ यो. हो गये हैं। इसकी लम्बाई ३०२०९$\frac{६}{१९}$ यो. है। सौमनस पर्वतसे ५३००० यो. पश्चिममें जाकर विद्युत्प्रभ नामका पर्वत है। इसकी उंचाई आदि सौमनस पर्वतके समान है। इसके पश्चिममें ५०० यो. जाकर एक वेदिका है।

उपर्युक्त वेदिकाके पश्चिममें पद्मा नामका देश है। यह गंगा-सिन्धु नदियों और विजयार्ध पर्वतके कारण ६ खण्डोंमें विभक्त हो गया है। इसकी राजधानी अश्वपुरी है। इस पद्मा क्षेत्रके आगे पश्चिममें क्रमशः

श्रद्धावती पर्वत, सुपद्मा देश, क्षारोदा नदी, महापद्मा देश, विकटावती पर्वत, पद्मकावती देश, सीतोदा नदी, शंखा देश, आशीविष पर्वत, नलिना देश, स्रोतोवाहिनी नदी, कुमुदा देश, सुखावह पर्वत और सरिता नामका देश है। सुपद्मा आदि उक्त ७ देशोंकी राजधानियोंके नाम क्रमशः ये हैं— सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अरजा, विरजा, अशोका और विगतशोका। इसके पश्चिममें देवारण्य वन है।

इसके उत्तरमें सीतोदा नदीके उत्तर तटपर दूसरा भी देवारण्य है। उसके पूर्वमें क्रमशः निम्न देश, पर्वत और नदियां हैं— वप्रा देश, चन्द्र पर्वत, सुवप्रा देश, गम्भीरमालिनी नदी, महावप्रा देश, सूर (सूर्य) पर्वत, वप्रकावती देश, फेनमालिनी नदी, वल्गु देश, महानाग पर्वत, सुवल्गु देश, ऊर्मिमालिनी नदी, गन्धिला देश, देव पर्वत और गन्धमालिनी देश। इन देशोंकी राजधानियां क्रमसे ये हैं— विजयपुरी, वैजयन्ती जयन्ता, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या। इन सब नगरियोंका वर्णन क्षेमा नगरीके ही समान है।

इसके पूर्वमें एक वेदी और उसके आगे ५०० यो. जाकर गन्धमादन पर्वत है। इसके पूर्वमें ५३००० यो. जाकर माल्यवान् पर्वत है। इसके आगे पूर्वमें ५०० यो. जाकर नील पर्वतके पासमें एक और वेदिका है। नदियोंके किनारेपर स्थित २० वक्षार पर्वतोंके ऊपर जिनभवन हैं जहां देव व विद्याधर जिन-पूजन करते हैं।

(१०) दसवें उद्देशमें १०२ गाथायें हैं। इस उद्देशमें लवणसमुद्रका वर्णन है। यह समुद्र जंबूद्वीपको सब ओरसे घेरकर वलयाकारसे स्थित है। विस्तार इसका पृथिवीतलपर २ लाख योजन और मध्यमें १० हजार यो. है। गहराई एक हजार यो. है। इसके भीतर तटसे ९५ हजार योजन जाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तरमें क्रमशः रांजनके आकारमें ये चार महापाताल स्थित हैं— पाताल, वलयमुख (वडवामुख), कदम्बक और यूपकेसरी। इनका विस्तार मूलमें और ऊपर १० हजार योजन है। इनके मध्यविस्तार और उंचाईका प्रमाण १ लाख यो. है। इन पातालोंके नीचेके त्रिभाग (३३३३३$\frac{१}{३}$ यो.) में वायु, मध्यम त्रिभागमें जल-वायु और ऊपरके त्रिभागमें केवल जल स्थित है। शुक्ल पक्षमें मध्यम त्रिभागके भीतर उत्पीड़न होनेपर उसका जलभाग ऊपर आ जाता है और वहां केवल वायु ही रह जाती है। इस प्रकारसे समुद्रमें क्रमशः इस पक्षमें जलवृद्धि होती है। कृष्ण पक्षमें इसके विपरीत उसी मध्यम त्रिभागमें उत्तरोत्तर जलकी वृद्धि होनेसे समुद्रमें क्रमशः जलकी हानि होती है। इस क्रमसे पूर्णिमाके दिन लवण समुद्रकी जलशिखाकी उंचाई १६ हजार यो. और अमावस्याके दिन ११ हजार यो. रहती है। उसमें प्रतिदिन २२२२$\frac{२}{९}$ (३३३३३$\frac{१}{३}$ ÷ १५ =) यो. प्रमाण जलकी वृद्धि और हानि हुआ करती है।

इसी प्रकार विदिशाओंमें ४ मध्यम पाताल और अन्तरदिशाओंमें १ हजार जघन्य पाताल भी हैं। जघन्य पाताल दिशा और विदिशागत पातालोंके मध्यमें १२५-१२५ हैं। दिशागत पातालोंकी अपेक्षा विदिशागत मध्यम पातालोंकी तथा इनकी अपेक्षा जघन्य पातालोंकी उंचाई और विस्तार आदि उनके दसवें भाग प्रमाण है। इस प्रकार सब पाताल १००८ हैं।

लवण समुद्रमें वेदिकासे ४२ हजार यो. जाकर वेलंधर देवोंके ८ पर्वत हैं। ये पर्वत पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित पातालोंके दोनों ओर हैं। उनके नाम ये हैं— कौस्तुभ, कौस्तुभभास, उदक, उदकभास, शंख, महाशंख, उदक और उदवास। समुद्रकी वेलाको धारण करनेवाले नागकुमार देवोंकी संख्या १४२००० हैं। इनमें ७२ हजार देव बाह्य वेलाको, ४२ हजार देव अभ्यन्तर वेलाको और २८ हजार देव जलशिखाको धारण करते हैं। पातालोंके दोनों ओर तथा जलशिखाके ऊपर आकाशमें उक्त देवोंके १४२००० नगर स्थित हैं।

वेदिकासे १२ हजार यो. जाकर वायव्य दिशामें गौतम द्वीप है जो १२ हजार यो. ऊंचा और इतना ही विस्तीर्ण भी है।

इसके अतिरिक्त यहां दिशाओं ४, विदिशाओंमें ४ और इनके अन्तरालमें ८, तथा हिमवान्, शिखरी और २ विजयार्ध इन पर्वतोंके दोनों ओर ८; इस प्रकार ये २४ अन्तरद्वीप हैं। इन द्वीपोंमें एक जंघावाले, पूंछवाले, सींगवाले एवं गूंगे इत्यादि विकृत आकृतिके धारक कुमानुप रहते हैं। इनमें एक जंघावाले कुमानुप गुफाओंमें रहकर मिट्टीका भोजन करते हैं तथा शेष कुमानुप पुष्प-फलभोजी होते हैं। इनके यहां उत्पन्न होनेके कारणोंको बतलाते हुए कहा गया है कि जो प्राणी मंदकषायी होते हैं, कायक्लेशसे धर्मफलको चाहनेवाले हैं, अज्ञानवश पंचाग्नि तपको तपते हैं, सम्यग्दर्शनसे रहित होकर तपश्चरण करते हैं, अभिमानमें चूर होकर साधुओंका अपमान करते हैं, गुरुके पासमें आलोचना नहीं करते हैं, मुनिसंघको छोड़कर एकाकी विहार करते हैं, सब जनोंके साथ कलह करते हैं, जिनलिंगको धारण करके पापाचरण करते हैं, सिद्धान्तको छोड़कर ज्योतिष-मंत्रादिकोंमें विश्वास करते हैं, संयत वेषमें धन-धान्यादिको ग्रहण करते हुए कन्याविवाहादिका अनुमोदन भी करते हैं, मौनसे रहित होकर भोजन करते हैं, तथा सम्यक्त्वकी विराधना करते हैं, वे सब मरकर इन कुमानुषोंमें उत्पन्न होते हैं। इनमें जो सम्यग्दृष्टि होते हैं वे मरकर यहांसे सौधर्मादिक स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं तथा शेष भवनत्रिक देवोंमें उत्पन्न होते हैं।

(११) इस उद्देशमें ३६५ गाथायें हैं। यहां द्वीप-सागर, अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोक वर्णित हैं। द्वीप-सागरोंमें धातकीखण्ड द्वीपका वर्णन करते हुये बतलाया है कि ४ लाख योजन प्रमाण विस्तारवाला यह द्वीप लवण समुद्रको वेष्टित करके स्थित है। इसके दक्षिण और उत्तर भागमें २ इष्वाकार पर्वत हैं जो लवणसे कालोद समुद्र तक आयत हैं। विस्तार उनका एक एक हजार (१०००) यो. है। इनसे धातकीखण्डके दो विभाग हो गये हैं। प्रत्येक विभागमें जंबूद्वीपके समान भरतादिक ७ क्षेत्र और हिमवान् आदि ६ कुलपर्वत स्थित हैं। मध्यमें एक एक मेरु पर्वत है। इनमें हिमवान् पर्वतका समविस्तार २१०५ $\frac{५}{१९}$ यो. है। इससे चौगुणा (८४२१ $\frac{१}{१९}$) विस्तार महाहिमवान्का और उससे भी चौगुणा (३३६८४ $\frac{४}{१९}$) निषध पर्वतका है। आगे नील, रुक्मि और शिखरी पर्वतोंका विस्तार क्रमसे निषध, महाहिमवान् और हिमवान्के समान है। यह धातकीखण्डके एक ओरका पर्वतरुद्ध क्षेत्र हुआ। इतना ही पर्वतरुद्ध क्षेत्र उसके दूसरी ओर भी है। इसमें दो इष्वाकार पर्वतोंका क्षेत्र (२००० यो.) मिला देनेपर सब पर्वतरुद्ध क्षेत्र इतना होता है– २१०५ $\frac{५}{१९}$ × {(१ + ४ + १६ + १६ + ४ + १) × २} + १००० + १००० = १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ यो. होता है।

धातकीखण्ड द्वीपकी आदिम (१५८११३९), मध्यम (२८४६०५०) और बाह्य (४११०९६१) परिधियोंमेंसे उक्त पर्वतरुद्ध क्षेत्रको कम कर देनेपर शेष समस्त भरतादिक विजयोंका क्षेत्र होता है। इसमें २१२ {(भ. १ + हैम. ४ + हरि १६ + विदेह ६४ + र. १६ + हैर. ४ + ऐ. १) × २ = २१२} का भाग देकर लब्धको १, ४ व १६ आदिसे गुणित करनेपर क्रमसे भरत, हैमवत व हरिवर्ष आदि क्षेत्रोंका विस्तार होता है। जैसे– {(१५८११३९ – १७८८४२ $\frac{२}{१९}$) ÷ २१२} × १ = ६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ भरतका अभ्यन्तर विस्तार। {(२८४६०५० – १७८८४२ $\frac{२}{१९}$) ÷ २१२} × १ = १२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ भरतका मध्यम विस्तार। {(४११०९६१ – १७८८४२ $\frac{२}{१९}$) ÷ २१२} × १ = १८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ भरतका बाह्य विस्तार। इन

क्षेत्रोंका आकार गाड़ीके पहियेमें स्थित आरोंके मध्यवर्ती क्षेत्रके समान है।

आगे धातकीखण्ड द्वीपको चारों ओरसे वेष्टित करके कालोद समुद्र स्थित है। इसका विस्तार ८ लाख यो. है। लवण समुद्रके समान अन्तरद्वीप यहांपर भी हैं जिनमें कुमानुष रहते हैं। इसके आगे १६ लाख यो. विस्तृत पुष्करवर द्वीप है। इसके बीचोंबीच वलयाकारसे मानुषोत्तर पर्वत स्थित है, जिससे कि इस द्वीपके २ भाग हो गये हैं। मानुषोत्तर पर्वतके इस ओर पुष्करार्ध द्वीपमें स्थित भरतादिक क्षेत्रों और हिमवान् आदि पर्वतोंकी रचना धातकीखण्ड द्वीपके समान है। यहां पर्वतरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण ३५५६८४$\frac{4}{19}$ यो. है। पुष्करार्धकी आदिम परिधि ९१७०६०५ यो., मध्यम परिधि ११७००४२७ यो. और बाह्य (मनुष्यक्षेत्रकी) परिधि १४२३०२४९ यो. है। भरतादिक क्षेत्रोंके विस्तारको निकालनेका जो नियम धातकीखण्ड द्वीपमें बतलाया गया है वही नियम यहां भी लागू होता है।

जंबूद्वीपसे लेकर पुष्करार्ध पर्यन्त यह सब क्षेत्र अढ़ाई द्वीप या मनुष्यक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है। मानुषोत्तर पर्वतसे आगे मनुष्य नहीं पाये जाते। पुष्करवर द्वीपके आगे पुष्करवर समुद्र, वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप और घृतवर समुद्र इत्यादि क्रमसे असंख्यात द्वीप और समुद्र स्थित हैं। अन्तिम द्वीपका और समुद्रका भी नाम स्वयम्भूरमण है। लवण और कालोद समुद्रोंको छोड़कर शेष सब समुद्रोंके नाम द्वीपोंके ही समान हैं। इन ग्रन्थोंमें आदिके और अन्तके १६–१६ द्वीपों और समुद्रोंके नाम पाये जाते हैं। पुष्करवर और स्वयम्भूरमण द्वीपोंके मध्यमें जो असंख्यात द्वीप–समुद्र स्थित हैं उनमें केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच जीव ही उत्पन्न होते हैं। इनकी आयु एक पल्य और शरीरकी उंचाई २ हजार धनुष मात्र होती है। युगलस्वरूपसे उत्पन्न होनेवाले ये सब मंदकषायी व फलभोजी होते हैं तथा मरकर नियमसे देवलोकको जाते हैं। लवणोद, कालोद और स्वयम्भूरमण इन तीन समुद्रोंमें ही मगर-मत्स्यादि जलचर जीव पाये जाते हैं; शेष समुद्रोंमें जलचर जीव नहीं हैं। आगे चलकर यहां गाथा ९६ से गाथा १०४ तक जो ग्रन्थीका वर्णन किया गया है वह किस आधारसे किया गया है तथा उसका अभिप्राय क्या है, यह विचारणीय है।

आगे 'कर्मभूमिज मनुष्य एवं मत्स्यादि तिर्यंच जीव पापसे अधोलोकमें और पुण्यसे ऊर्ध्वलोकमें जाते हैं' यह प्रसंग प्रस्तुत करके अधोलोकका आकार व विस्तार आदिका निर्देश करते हुए वहांपर स्थित रत्नप्रभादिक ७ पृथिवियोंका उल्लेख किया गया है। रत्नप्रभा पृथिवीके खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग इस प्रकार ३ भाग हैं। इनमेंसे पंकभागमें राक्षस जातिके व्यन्तरों और असुरकुमार जातिके भवनवासियोंके आवास हैं, शेष व्यन्तरों और भवनवासी देवोंके आवास खरभागमें हैं। यहां संक्षेपमें इन देवोंके भवनोंकी संख्या, आयुप्रमाण, शरीरोत्सेध और अवधिविषयकी भी चर्चा की गयी है। तत्पश्चात् नारकियोंके बिलोंकी संख्या और ४९ प्रस्तारोंका नामोल्लेख करके वहां प्राप्त होनेवाले भयानक दुखोंका वर्णन किया गया है।

ऊर्ध्वलोकका वर्णन करते हुए बतलाया है कि पृथिवीतलसे ९९ हजार यो. ऊपर जाकर मेरु पर्वतकी चूलिकाके ऊपर बालाग्र मात्रके अन्तरसे ऋतु विमान स्थित है। इसका विस्तार मनुष्यलोकके समान ४५ लाख यो. मात्र है। इसके ऊपर असंख्यात करोड़ योजनोंके अन्तरसे क्रमशः विमल व चन्द्र आदि प्रभ विमान पर्यन्त ३१ इन्द्रक पटल हैं जो सौधर्म कल्पके अन्तर्गत हैं। इनमें प्रथम ऋतु इन्द्रकके आश्रित पूर्वादिक दिशाओंमें ६२–६२ श्रेणिबद्ध विमान हैं। आगे उत्तरोत्तर विमलादिक पटलोंमें १–१ श्रेणिबद्ध कम होता गया है। श्रेणिबद्धोंके बीचमें प्रकीर्णक विमान हैं। इनमें उत्तर दिशाके सब श्रेणिबद्धों तथा वायव्य व ईशान कोणके प्रकीर्णकोंका स्वामी उत्तर (ईशान) इन्द्र और शेष सब विमानोंका स्वामी दक्षिण (सौधर्म) इन्द्र

होता है। अन्तिम प्रभ इन्द्रकके आश्रित जो २३–२३ श्रेणिबद्धोंकी ४ श्रेणियां हैं उनमेंसे दक्षिण दिशागत श्रेणिके १८वें श्रेणिबद्धमें सौधर्म इन्द्रका तथा उत्तर दिशागत श्रेणिके १८वें श्रेणिबद्धमें ईशान इन्द्रका निवास है। यहां बहुतसी देवांगनाओं तथा अन्य सामानिक आदि विशाल परिवारके साथ रहते हुए ये इन्द्र अनुपम सुखका उपभोग करते हैं।

ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र युगलसे लेकर शतार-सहस्रार युगल तक पांच कल्पयुगलोंमें क्रमसे, ७, ४, २, १ और १ पटल हैं। आगे आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन ४ कल्पोंमें ६ पटल हैं[1]। यहां तक 'कल्प' संज्ञा है। आगे इन्द्र सामानिक आदिकी कल्पनासे रहित होनेके कारण ग्रैवेयक आदि कल्पातीत गिने जाते हैं। ग्रैवेयकोंमें नीचे, मध्यमें और ऊपर क्रमसे सुदर्शन, अमोघ व सुप्रबुद्ध आदि ३–३ पटल हैं। इनके ऊपर ९ अनुदिशोंका एक आदित्य पटल तथा अनुत्तर विमानोंका एक सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम पटल है। यहां संक्षेपमें इन देवोंकी आयु और शरीरोत्सेध आदिका भी कुछ वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें जो कल्पोंका वर्णन किया गया है वह क्रम रहित, असम्बद्ध और कुछ पुनरुक्त भी प्रतीत होता है। इसमें जहां किसी अनावश्यक विषयका अनेक बार वर्णन किया गया है वहां आवश्यक विषयकी चर्चा भी नहीं की गयी है। उदाहरणार्थ गाथा २११ आदिमें सौधर्म कल्पके ३१ पटलोंका नामनिर्देश करके और सौधर्म इन्द्रके अवस्थानको बतला करके भी आगे फिरसे गाथा २२५ आदिके द्वारा प्रभ विमानका उल्लेख करके सौधर्म इन्द्रके अवस्थान व सुधर्मा सभा आदिकी चर्चा की गयी है। इसके विपरीत ऋतु आदि इन्द्रकोंसे जो ६२, ६१ आदि (१–१ कम) श्रेणिबद्ध विमानोंकी विमानश्रेणियां निकली हैं उनका निर्देश करना आवश्यक था, फिर भी उसका निर्देश यहां नहीं किया गया है। इसी प्रकार जैसे २१८ वीं गाथामें ३१ पटलोंका सम्बन्ध सौधर्म कल्पके साथ बतलाया है उसी प्रकार शेष कल्पोंसे सम्बद्ध पटलोंकी भी पृथक् पृथक् संख्याका उल्लेख करना आवश्यक था, जो नहीं किया गया है। यही नहीं, बल्कि शेष पटलोंका जो यहां (गा. ३२८ आदि) नामोल्लेख किया है वह भी कुछ दुरूह ही है। कल्प १२ हैं या १६ इस प्रकारकी संख्याका उल्लेख भी यहां देखनेमें नहीं आता। यद्यपि गाथा ३४१ में सौधर्मसे लेकर अच्युत पर्यन्त कल्प जानना चाहिये, ऐसा निर्देश किया है; फिर भी वहां न एक निश्चित संख्या है और न समस्त नामोंका निर्देश भी।

इसी प्रकार यहां सौधर्म इन्द्रकी विभूति एवं परिवार देवोंका वर्णन करते हुए विना किसी प्रकारके सम्बन्धकी सूचनाके ही गाथा २४४–२४५ आदिमें संख्यात व असंख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंका उल्लेख किया गया है।

विचार करनेपर इस असंगतिका एक कारण कल्पों विषयक मतभेद भी प्रतीत होता है। तिलोयपण्णत्ती (महा. ८, गा. ११५, १२७–२८, १४८ और १७८ आदि) में १२ और १६ कल्पोंकी मान्यताका उल्लेख स्पष्टतापूर्वक किया गया है। इतना ही नहीं, बल्कि वहांपर १२ कल्पोंकी मान्यताको प्राथमिकता भी दी गई है। तदनुसार ही वहां (म. ८, गा. १२९–१३४, १३७–१४६) कल्पोंकी सीमाका निर्धारण करते हुए किस कल्पके अन्तर्गत कितने इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक विमान हैं; यह भी स्पष्ट बतला दिया है। इसके अतिरिक्त समस्त विमान संख्याका भी उल्लेख वहांपर (८, १४९–१५१) प्रथमतः १२ कल्पोंकी मान्यतानुसार ही किया गया है। वह संख्याका क्रम तत्त्वार्थाधिगम भाष्य (४, २२) में भी ठीक इसी प्रकारसे पाया जाता है। आगे जाकर वहां श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंकी अलग अलग संख्या

---

१ आनतं प्राणताख्यं च पुष्पकं चानते त्रयम्। अच्युते सानुकारं स्यादारुणं चाच्युते त्रयम्॥ ह. पु. ६, ५१.

और उसके निकालनेकी रीति आदिका कथन भी प्रस्तुत मान्यताके ही अनुसार विस्तारसे पाया जाता है। तत्पश्चात् वहां 'जे सोलस कप्पाइं केई इच्छंति ताण उवएसे' (८-१७८) इत्यादि कहकर विमानोंकी समस्त संख्याका उल्लेख १६ कल्पोंकी मान्यताके अनुसार भी किया गया है (८, १७८-१८५)। इसके पश्चात् फिर भी वहां संख्यात व असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान, उनका बाहल्य, वर्णभेद और आधार-विशेष आदिका समस्त कथन १२ कल्पोंकी मान्यताके अनुसार ही किया गया है। इससे निश्चित होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारको यही मान्यता इष्ट रही है।

इसके विपरीत सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवार्तिक और हरिवंशपुराण आदिके रचयिताओंने १६ कल्पोंकी मान्यताको अभीष्ट मानकर तदनुसार ही अपने अपने ग्रंथोंमें इन कल्पोंका वर्णन किया है। यहां तत्त्वार्थवार्तिक (४, १९, ८) में एक विशेषता और भी देखनेमें आती है, वह है १४ इन्द्रोंकी मान्यता। यही मान्यता भट्टाकलंक देवको इष्ट भी रही है। इसीलिये उन्होंने "त एते लोकानुयोगोपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः, इह द्वादश इष्यन्ते···" इत्यादि उल्लेख भी कर दिया है। इस मान्यताका अनुसरण श्री श्रुतसागर सूरिने भी अपनी तत्त्वार्थवृत्तिमें किया है। किन्तु यह अभिमत किस लोकानुयोग ग्रन्थमें रहा है, यह अभी देखनेमें नहीं आया है। उपर्युक्त मान्यताके अनुसार वे १४ इन्द्र ये हैं— सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आरण और अच्युत।

तिलोयपण्णत्ती (म. ५, गाथा ८४-९७) में अष्टाह्निक पूजामहोत्सवके निमित्त नन्दीश्वर द्वीपको जानेवाले इन्द्रोंका निर्देश करते हुए भी यद्यपि १४ इन्द्रोंका ही नामोल्लेख किया है, किन्तु ये १४ इन्द्र उपर्युक्त १४ इन्द्रोंसे भिन्न हैं— यहां आनतेन्द्र और प्राणतेन्द्रका तो नामोल्लेख है, किन्तु लान्तवेन्द्र और कापिष्ठेन्द्रका नामनिर्देश नहीं है। यह भी सम्भव है कि वहां इन दो इन्द्रोंके नामोंका उल्लेख करनेवाली गाथायें प्रतियोंमें छूट गयी हों। प्रकृत जंबूद्वीपपण्णत्तीमें भी एक ऐसा ही प्रकरण है। यहां (५, ९३-१०८) अष्टाह्निक पर्वमें पूजाके निमित्त महा विभूतिके साथ मन्दर पर्वतस्थ जिनभवनोंमें आते हुए इन्द्रोंका जो वर्णन किया है उसमें १६ इन्द्रोंके नामोंका निर्देश है जब कि उनकी मान्यता १२ या १४ संख्या तक ही सीमित है।

ऋतु इन्द्रक आदिसे कितने श्रेणिबद्ध विमानोंकी श्रेणियां पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित हैं, इस विषयमें दो मतभेद उपलब्ध होते हैं— एक ६३, ६२, ६१ आदिका तथा दूसरा ६२, ६१, ६० आदिका (देखिये ति. प. गाथा ८, ८३-८५)। हरिवंशपुराणमें ६३ आदि श्रेणिबद्धोंकी मान्यताको स्वीकार किया गया है (देखिये श्लोक ६, ६३)। इसके विपरीत तत्त्वार्थवार्तिक (पृ. २२५) आदिमें ६२ आदिकी मान्यताका अनुसरण किया गया है। इन विविध मान्यताओंके कारण भी यदि ग्रन्थकर्ताने प्रकृत कल्पोंका वर्णन स्पष्टतासे न किया हो तो यह असम्भव नहीं कहा जा सकता है।

(१२) बारहवें उद्देशमें ११३ गाथायें हैं। यहां ज्योतिष पटलके वर्णनकी प्रतिज्ञा करके सर्वप्रथम यह बतलाया है कि ८८० यो. ऊपर जाकर चन्द्रका विमान है। चन्द्रविमानोंका विस्तार व आयाम ३ गव्यूति और १३०० धनुषसे कुछ अधिक है। इन विमानोंको प्रतिदिन १६ हजार आभियोग्य जातिके देव खींचते हैं। उक्त देव पूर्वादिक दिशाओंमें क्रमसे सिंह, गज, वृषभ और घोड़ेके आकारमें ४-४ हजार रहते हैं। इसी प्रकार १६ हजार आभियोग्य देव सूर्यविमानके, ८ हजार ग्रहगणोंके, ४ हजार नक्षत्रोंके और २ हजार ताराओंके वाहक हैं।

जंबूद्वीपमें २, लवणसमुद्रमें ४, धातकीखण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्ध द्वीपमे ७२ चन्द्र हैं। मानुषोत्तर पर्वतके आगे पुष्करद्वीपमें १२६४ चन्द्र हैं। यहां आदिका प्रमाण ४४, उत्तर

(चय) का ४ और गच्छका प्रमाण ८ है। एक कम गच्छके अर्ध भागको चयसे गुणित करके प्राप्त राशिमें आदिको मिला दे और फिर उसे गच्छसे गुणित करे। इस नियमके अनुसार सर्वधनका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। जैसे– $\frac{८-१}{२}$ × ४ + १४४ × ८ = १२६४। यही क्रम शेष द्वीप-समुद्रोंमें भी चन्द्रबिम्बों और सूर्यबिम्बोंकी संख्या लानेमें अभीष्ट है। विशेषता केवल इतनी है कि आदि (१४४) और गच्छ (८) के प्रमाणको उत्तरोत्तर दुगुणा करते जाना चाहिये। चयका प्रमाण सर्वत्र ४ ही रहता है।

इसका अभिप्राय यह है कि मानुषोत्तर पर्वतके आगेके द्वीप-समुद्रोंमें जिसका जितना विस्तारप्रमाण है उतने विस्तारमें १–१ लाख योजन जाकर ज्योतिषियोंका १–१ वलय है। इनमेंसे प्रथम वलयमें स्थित चन्द्रोंकी संख्या पूर्व द्वीप या समुद्रके प्रथम वलयसे दुगुणी होती है। आगे शेष वलयोंमें उत्तरोत्तर ४–४ चन्द्र अधिक होते जाते हैं। उदाहरणार्थ पुष्करवर समुद्रका विस्तार ३२ लाख यो. है, अत एव यहां वलयोंकी संख्या ३२ है। इनमेंसे प्रथम वलयमें बाह्य पुष्करार्ध द्वीपके प्रथम वलयकी अपेक्षा दुगुणे (१४४ × २ = २८८) चन्द्र स्थित हैं। यही यहां आदिका प्रमाण है। गच्छ यहां ३२ है। अत एव पूर्वोक्त नियमके अनुसार क्रिया करनेपर यहांकी समस्त चन्द्रसंख्या इस प्रकार प्राप्त होती है– $\frac{३२-१}{२}$ × ४ + २८८ × ३२ = ११२००.

इसी प्रकरणमें २० वीं गाथा करणसूत्रके रूपमें आयी है। किन्तु पूर्व सम्बन्ध आदिकी सूचना न होनेसे उसका अभिप्राय ज्ञात नहीं हो सका है। इसके आगे ११ गाथाओंमें (२२–३२) पुष्करवर समुद्रसे लेकर नन्दीश्वर द्वीप तक प्रथम वलयस्थ चन्द्रोंकी संख्याका निर्देश किया गया है। परन्तु इसका सामान्य परिज्ञान जब 'णवरि विसेसो जाणे आदिमगच्छा य दुगुणदुगुणा दु।' इस पूर्व गाथा (१९) के द्वारा ही करा दिया गया था तब फिर इन गाथाओंके रचनेकी क्यों आवश्यकता हुई, यह विचारणीय है। यही नहीं, किन्तु इसमें एक भूल भी हो गयी प्रतीत होती है। वह यह कि तिलोयपण्णत्ती (पृ. ७६१–६२), धवला (पु. ४, पृ. १५१) और त्रिलोकसार (३५०,३६०) में पुष्करवर समुद्रके प्रथम वलयमें २८८ तथा आगेके द्वीप समुद्रोंमें स्थित प्रथम वलयोंमें उत्तरोत्तर इससे दुगुणी चन्द्रसंख्या निर्दिष्ट की गयी है। किन्तु यहां वह संख्या १४४ और आगे उत्तरोत्तर इससे दुगुणी बतलायी है। यदि यह किसी भूलका परिणाम नहीं है तो पूर्वापरविरुद्ध तो है ही। कारण कि पूर्वमें गा. १५–१९ द्वारा यही चन्द्रसंख्या बाह्य पुष्करार्धमें १४४ और आगेके द्वीप-समुद्रोंमें उत्तरोत्तर इससे दुगुणी दुगुणी बतलायी जा चुकी है।

तत्त्वार्थवार्तिक और हरिवंशपुराणमें ज्योतिषी देवोंकी यह संख्या कुछ भिन्न रूपमें पायी जाती है। यथा–तत्त्वार्थवार्तिकमें अभ्यन्तर पुष्करार्धके समान बाह्य पुष्करार्ध द्वीपमें भी सूर्य-चन्द्रोंकी संख्या ७२ ही निर्दिष्ट की गयी है। आगे पुष्करवर समुद्रमें उक्त सूर्य-चन्द्रादि ज्योतिषियोंकी वह संख्या इससे चौगुणी और फिर उससे आगेके द्वीप-समुद्रोंमें उत्तरोत्तर इससे दुगुणी ही बतलायी गई है। यहां वलयक्रमानुसार उन ज्योतिषियोंकी संख्याका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। जैसे– बाह्ये पुष्करार्द्धे च ज्योतिषामियमेव संख्या। ततश्चतुर्गुणा पुष्करवरोदे। ततः परा द्विगुणा द्विगुणा ज्योतिषां संख्या अवसेया (त. वा. पृ. २२०)। परन्तु हरिवंशपुराणमें तत्त्वार्थवार्तिकके समान दोनों पुष्करार्धोंमें ७२-७२ सूर्य-चन्द्रोंका उल्लेख करके भी तिलोयपण्णत्ती आदिके समान बाह्य पुष्करार्धमें मानुषोत्तर पर्वतसे ५० हजार योजन आगे जाकर चक्रवाल (वलय) स्वरूपसे सूर्य-चन्द्रादिकोंके अवस्थानका संकेत किया गया है। उसके आगे १–१ लाख योजन जाकर उनके उत्तरोत्तर ४–४ अधिक होते जानेका भी उल्लेख वहां पाया जाता है। तत्पश्चात् वहां यह बतलाया है कि धातकीखण्ड द्वीप आदिमें जो सूर्य-चन्द्रादिकी निश्चित संख्या है उसे तिगुणी करके विगत द्वीप समुद्रोंकी संख्याको मिलानेसे

आगे आगेके द्वीप-समुद्रोंके सूर्य-चन्द्रादिकोंकी संख्या होती है। उदाहरणार्थ धातकीखण्डमें १२ सूर्यचन्द्र हैं। अतः उससे आगेके कालोद समुद्रमें उनकी संख्या इस प्रकार होगी— १२×३=३६; इसमें विगत जं. द्वी. और लवण स. की ६ संख्याको मिला देनेपर वह ३६+६=४२ हो जाती है। इसे तिगुणी करके विगत द्वीप-समुद्रोंकी संख्या मिला देनेपर वह आगे पुष्करार्ध द्वीपके सूर्य-चन्द्रोंकी संख्या हो जाती है— ४२×३+ (१२+४+२) = १४४ (उभय पुष्करार्धगत सूर्य-चन्द्रोंकी संख्या ७२+७२)। परन्तु वलय स्वरूपसे इस संख्याकी व्यवस्था किस प्रकार होगी, इसका कुछ भी स्पष्टीकरण वहांपर नहीं किया गया है (ह. पु. ६, २६–३३)। श्रुतसागर सूरिने अपनी तत्त्वार्थवृत्तिमें मानुषोत्तर पर्वतके पूर्वमें ज्योतिषियोंकी निश्चित संख्या बतला करके उसके आगे बाह्य पुष्करार्ध द्वीप और पुष्करवर समुद्रमें उक्त संख्याको परमागमसे जान लेनेकी प्रेरणा की है। यथा— मानुषोत्तराद् बहिः पुष्करार्द्धे पुष्करसमुद्रे च सूर्यादीनां संख्या परमागमाद् वेदितव्या (त. वृ., पृ. १६०–६१)।

इसके आगे प्रस्तुत उद्देशमें गा. ३३–९१ तक उक्त चन्द्र-सूर्यादिकोंकी संख्याके लानेके क्रमका वर्णन है। परन्तु वहां कोई उदाहरण या अंकविन्यास आदिका संकेत नहीं है। इसका सुव्यवस्थित वर्णन श्री वीरसेनाचार्यने अपनी धवला टीका (देखिये षट्खं. पु. ४, पृ. १५०–१६०) में किया है। यहांका बहुतसा गद्यभाग (पृ. १५२–५८) तिलोयपण्णत्ती पृ. ७६४ से ७६६ में ज्योंका त्यों पाया जाता है। अन्तिम पंक्तियोंमें जो थोडासा शब्दभेद दोनों जगह पाया जाता है वह इस प्रकार है—

एसा तप्पाओग्ग······पमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरिओवदेसपरंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारी जोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसाहणट्ठमम्हेहि परूविदा प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भबलविजृंभितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयावलिकावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानोपदेशवद्वा। तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति······ (पु. ४, पृ. १५७)।

एसा तप्पाओग्ग······पमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरियउवदेसपरंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारिणी, जोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसाधणट्ठमेसा परूवणा परूविदा। तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति······ (ति प. पृ. ७६६)।

तत्पश्चात् यहां ज्योतिषी देवोंके अवस्थान, आयु और विमानतलविस्तारका कुछ वर्णन करके यह बतलाया है कि ज्योतिषी देवोंकी जो जो संख्यायें जंबूद्वीपमें कही गयी हैं वे स्थिर ताराओंको छोड़कर दुगुणी दुगुणी जानना चाहिये (गा. १०४)। परन्तु ये संख्यायें दुगुणी दुगुणी कहां समझी जावें, इसका कुछ भी उल्लेख वहां नहीं है। आगे जंबूद्वीपमें स्थिर ताराओंकी ३६ संख्याका उल्लेख करके गा. १०६-८ में फिरसे भी जंबूद्वीपादिमें चन्द्रादिकोंकी उक्त संख्याका उल्लेख किया गया है। इससे हम यदि इस निष्कर्षपर पहुंचें कि प्रकृत ग्रन्थके कर्ताने इसमें न पुनरुक्तिका ध्यान रक्खा है और न पूर्वापर क्रमिक सम्बन्धका भी, तो यह अनुचित न होगा। अर्थबोध करानेके लिये आवश्यक शब्दोंकी जैसी सुसम्बद्ध रचना होनी चाहिये थी, उसे हम यहां नहीं पाते हैं। प्रकृत उद्देशमें ही जहां सबसे पहिले ज्योतिषी देवोंके भेद और उनके निवासस्थानादिका कथन किया जाना चाहिये था वहां उसका कुछ भी वर्णन न करके सबसे पहिले ८०० यो. ऊपर चन्द्रका अवस्थान बतलाया गया है। यह परम्परागत वर्णनशैलीके प्रतिकूल है। यहां ज्योतिष पटलका वर्णन करनेके लिये एक स्वतन्त्र उद्देशकी रचना करके भी ज्योतिषी देवोंके भेद, उनका पारिवारिक सम्बन्ध, उनके संचारका क्रम और नक्षत्रोंके नाम, इत्यादि उल्लेखनीय विषयोंके सम्बन्धमें कुछ भी प्रकाश न डालकर एक मात्र चन्द्रोंकी संख्यामें ही उद्देशका अधिकांश भाग समाप्त कर देना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता है।

यहां ज्योतिषियोंके अवस्थानके कथनमें जो ९वीं गाथा आयी है वह सर्वार्थसिद्धि (४, १२) तथा तत्त्वार्थवार्तिक (४, १२, १०) में उद्धृत एक प्राचीन गाथा है। कुछ शब्दपरिवर्तनके साथ उक्त गाथा त्रिलोकसार (३३२) में उपलब्ध होती है। इसके आगे जो यहां २ गाथायें (९५–९६) आयुकी प्ररूपणा करनेवाली हैं वे मूलाचार (१२, ८१–८२) और तिलोयपण्णत्ती (७,६१४–१५) में उपलब्ध होती हैं और सम्भवतः वहींसे यहां ली गयी हैं।

१३. तेरहवें उद्देशमें १७६ गाथायें हैं। सर्वप्रथम यहां कालके व्यवहार और परमार्थरूप दो भेदोंका उल्लेख करके तत्पश्चात् समय व आवलिका आदि अचलात्म पर्यन्त व्यवहार कालके भेदोंका निर्देश किया गया है। आगे चलकर परमाणुका स्वरूप बतलाते हुए उत्तरोत्तर अष्टगुणित अवसन्नासन्नादिके क्रमसे उत्पन्न होनेवाले अंगुलके उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल ये तीन भेद बतलाये हैं। इनमेंसे प्रत्येक सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुलके भेदसे ३-३ प्रकारका है। ५०० उत्सेधांगुलोंका एक प्रमाणांगुल होता है। परमाणु व अवसन्नासन्न आदिके क्रमसे जो अंगुल निष्पन्न होता है वह सूच्यंगुल कहलाता है। इसके प्रतरको प्रतरांगुल और घनको घनांगुल कहते हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें जिस जिस कालमें जो मनुष्य होते हैं उनके अंगुलको आत्मांगुल कहा जाता है। इनमें उत्सेधांगुलसे नर-नारक आदि जीवोंके शरीरकी उंचाईका प्रमाण बतलाया जाता है। कलश, झारी, दण्ड, धनुष, बाण, हल, मूसल, रथ, सिंहासन, छत्र, चमर और गृह आदिका प्रमाण आत्मांगुलकी अपेक्षा निर्दिष्ट होता है। प्रमाणांगुलके द्वारा दीप, समुद्र, नदी, कुण्ड, क्षेत्र, पर्वत और जिनभवन आदिके विस्तारादिका प्रमाण ज्ञात किया जाता है।

छह अंगुलोंका पाद, २ पादोंका वितस्ति, २ वितस्तिका हाथ, २ हाथोंका किष्कु, २ किष्कुओंका दण्ड या धनुष, २००० धनुषका कोस (गव्यूति) और ४ कोसका योजन होता है। एक प्रमाणयोजन विस्तृत और इतने ही गहरे गड्ढेको पल्य कहा जाता है। इसे एक दिनसे लेकर सात दिन तकके मेंढ़ेके ऐसे रोमखण्डोंसे, जिनका कि दूसरा खण्ड न हो सके, सघन भरकर १००–१०० वर्षमें १–१ बालाग्रके निकालनेमें जितना काल व्यतीत होता है उतने कालको व्यवहारपल्योपम काल कहा जाता है। इसके प्रत्येक रोमखण्डको असंख्यात करोड़ बर्षोंके समयोंसे खण्डित करके एक एक समयमें १–१ रोमखण्डके निकालनेपर जितने कालमें वह रिक्त होता है उतना एक उद्धार पल्योपम होता है। १० कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्योंका एक उद्धार सागरोपम होता है। समस्त द्वीप-समुद्रोंकी संख्या अढ़ाई उद्धार सागरोपमोंके रोमखण्डोंके बराबर है। उद्धार पल्यके रोमखण्डोंको १०० वर्षोंके समयोंसे खण्डित करके १–१ समयमें १–१ रोमखण्डके निकालनेपर जितने कालमें वह रिक्त होता है उतने कालको अद्धा पल्योपम कहा जाता है। तिलोयपण्णत्ती (१–१२९) और हरिवंशपुराण (७–५३) में इन रोमखण्डोंको भी असंख्यात करोड़ वर्षोंके समयोंसे खण्डित करनेका उल्लेख पाया जाता है। उपर्युक्त १० कोड़ाकोड़ी अद्धा पल्योंका एक अद्धा सागरोपम होता है। १० कोड़ाकोड़ि अद्धा सागरोपम प्रमाण एक अवसर्पिणी और उतना ही एक उत्सर्पिणी काल होता है। इस अद्धा पल्यके द्वारा चतुर्गतिके जीवोंकी कर्मस्थिति, भवस्थिति, आयुस्थिति, और कायस्थितिका प्रमाण जाना जाता है।

इसके पश्चात् यहां सर्वज्ञके साधनार्थ प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और अविरुद्ध आगम प्रमाणका निर्देश करते हुए धूमानुमानसे अग्निका उदाहरण देकर (गा. १३-४५) यह बतलाया है कि जो सूक्ष्म, अन्तरित और दूरस्थ पदार्थोंको ज्ञानके द्वारा जानता है वह सर्वज्ञ है। इसके द्वारा "सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा। अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः॥" इस आप्तमीमांसागत कारिकाको लक्ष्यमें रखकर ग्रन्थकारने सर्वज्ञको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। तत्पश्चात् वहां यह बतलाया है कि जिसके राग, द्वेष और

मोह ये तीन दोष नहीं हैं वह असत्य भाषण नहीं करता है; इसीलिये उसका वचन प्रमाण है। वह प्रमाण दो प्रकारका है– प्रत्यक्ष और परोक्ष। इनमें प्रत्यक्ष भी सकल और विकलके भेदसे दो प्रकारका है। सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञान और विकल प्रत्यक्ष अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान हैं। देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ये तीन भेद अवधिज्ञानके तथा ऋजुमति मनःपर्यय और विपुलमति मनःपर्यय ये दो भेद मनःपर्ययज्ञानके हैं।

आगे परोक्ष भेदोंके अन्तर्गत आभिनिबोधिक ज्ञानके ३३६ भेदोंका निर्देश करते हुए अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाका स्वरूप उदाहरण देकर इस प्रकार बतलाया है– 'देवदत्त' इस प्रकार सुनकर विचार रहित जो सामान्य ज्ञान होता है वह अवग्रह है। हरि, हर और हिरण्यगर्भ इनके मध्यमें देव कौन है, इस प्रकारकी बुद्धिका नाम ईहाज्ञान है। जो कर्मकलुषतासे रहित है वह देव है, इस प्रकारकी बुद्धिको अवाय कहा जाता है। राग-द्वेष रहित सर्वज्ञका कभी विस्मरण न होना, यह धारणाज्ञान कहलाता है। अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहके लक्षणमें बतलाया है कि इन्द्रिय और नोइन्द्रियके द्वारा दूरसे होनेवाले अर्थग्रहणको अर्थावग्रह तथा स्पर्शपूर्वक चक्षुके विना शेष चार इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले स्पर्श, रस, गन्ध एवं शब्दके ज्ञानको व्यंजनावग्रह कहते हैं। मतिपूर्वक जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान कहलाता है। जैसे– धूमको देखकर अग्निका ज्ञान अथवा नदीपूरको देखकर उपरिम वृष्टिका ज्ञान।

तत्पश्चात् क्षुधा-तृषादिसे रहित देवका कीर्तन करते हुए यहां अरहन्त परमेष्ठीके ३४ अतिशयों, देवपरिगृहीत ८ आठ मंगल द्रव्यों, ८ प्रतिहार्यों और ९ केवललब्धियोंका नामोल्लेख करके १८ हजार शीलों और ८४ हजार गुणों (देखिये पृ. २४९ का विशेषार्थ) का भी निर्देश मात्र किया है।

अन्तमें प्रस्तुत जंबूदीवपण्णत्तीका परम्परागत सम्बन्ध अरहन्त परमेष्ठीसे बतलाते हुए यह निर्देश किया है कि जिनमुखोद्गत परमागमके उपदेशक श्री **विजय गुरु** विख्यात हैं। उनके पासमें जिनागमको सुनकर कुछ उद्देशोंमें यहां मैंने मनुष्य क्षेत्रके अन्तर्गत ४ इष्वाकार, ५ मंदर शैल, ५ शाल्मलि वृक्ष, ५ जंबू वृक्ष, २० यमक पर्वत, २० नाभिगिरि, २० देवारण्य, ३० भोगभूमियां, ३० कुलपर्वत, ४० दिग्गज पर्वत, ६० विभंग नदियां, ७० महानदियां, ३० पद्मद्रहादि, १०० वक्षार पर्वत, १७० वैताढ्य पर्वत, १७० ऋषभगिरि, १७० राजधानियां, १७० षट्खण्ड, ४५० कुण्ड और २२५० तोरण इत्यादि बहुतसे ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन उक्त श्री **विजय गुरुके** प्रसादसे किया है। ग्रन्थ लिखनेका निमित्त बतलाते हुए यहां यह निर्दिष्ट किया है कि राग-द्वेषसे रहित व श्रुत-सागरके पारगामी **माघनन्दी** गुरु प्रसिद्ध हैं। उनके शिष्य सिद्धान्त-महासमुद्रमें कलुषताको धो डालनेवाले गुणवान् **सकलचन्द्र** गुरु हुए हैं। उनके भी शिष्य निर्मल रत्नत्रयके धारक श्री **नन्दिगुरु** विख्यात हैं। उन्हींके निमित्त यह जंबूदीवपण्णत्ती लिखी गयी है।

अपनी गुरुपरम्पराका उल्लेख करते हुए ग्रन्थकर्ता श्री पद्मनन्दी मुनि कहते हैं कि पांच महाव्रतोंके धारक, रत्नत्रयसे पवित्र और पंचाचार परिपालक श्री **वीरनन्दी** नामके प्रसिद्ध ऋषि थे। उनके उत्तम शिष्य सूत्रार्थविचक्षण विख्यात **बलनन्दी** हुए। इनके भी शिष्य त्रिदण्डरहित, शल्यत्रयपरिशुद्ध, गारवत्रयसे रहित, सिद्धान्तके पारगामी और तप-नियम-योगसे संयुक्त **पद्मनन्दी** नामक (प्रकृत ग्रन्थके कर्ता) मुनि हुए। श्री विजय गुरुके समीपमें सुपरिशुद्ध आगमको सुनकर मुनि **पद्मनन्दिने** इस ग्रन्थको लिखा है।

ग्रन्थरचनाके स्थान और वहांके शासकका नामनिर्देश करते हुए यह बतलाया है कि **बारां** नगरका प्रभु नरोत्तम शक्ति भूपाल था जो सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध, व्रतकर्मको करनेवाला, निरन्तर दानशील, जिनशासनवत्सल, वीर, नरपतिसंपूजित और कलाओंमें कुशल था। यह नगर धन-धान्यसे परिपूर्ण, सम्यग्दृष्टि और मुनि जनोंसे मण्डित, जिनभवनोंसे विभूषित रमणीय पारियात्र देशके अन्तर्गत था।

४ अन्य ग्रंथोंसे तुलना

जंबूदीवपण्णत्तिकी रचनाके समय उसके कर्ताने किन ग्रन्थोंका उपयोग किया है, यह निश्चित रूपसे नहीं बतलाया जा सकता है। तथापि जिन प्राचीन ग्रंथोंसे उसका कुछ साम्य व वैषम्य दिखाई देता है वे निम्न प्रकार हैं—

१ **तिलोयपण्णत्ती**— यह जैन भूगोल विषयक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है और सम्भवतः वर्तमानमें उपलब्ध इस विषयके सब ग्रन्थोंमें प्राचीनतम भी है। इसका प्रकाशन इसी ग्रन्थमालासे २ भागोंमें हो चुका है। जंबूदीवपण्णत्तीकी रचनाके समय यह ग्रन्थ उसके रचयिताके सामने रहा है और उसका उपयोग भी खूब किया गया है। तुलनात्मक दृष्टिसे इन दोनों ग्रन्थोंके विषयमें तिलोयपण्णत्तीकी प्रस्तावनामें (देखिये भा. २, प्रस्तावना पृ. ६८–७३) बहुत कुछ लिखा जा चुका है। वहां तिलोयपण्णत्तीकी ऐसी कितनी ही गाथाओंका उल्लेख कर दिया गया है जिन्हें मुनि पद्मनन्दिने प्रस्तुत ग्रन्थमें विना किसी परिवर्तनके अथवा यत्किंचित् परिवर्तनके साथ ले लिया है। वहां निर्दिष्ट गाथाओंके अतिरिक्त जंबूदीवपण्णत्तीकी और भी निम्न गाथाओंका क्रमसे तिलोयपण्णत्तीकी निम्न गाथाओंसे मिलान किया जा सकता है—

जं. प. द्वितीय उद्देश– (१) ४०, (२) ४१, (३) ९७, (४) १२०, (५) १४६, (६) १५२, (७) १५५, (८) १५६, (९) १९९, (१०) २००, (११) २०१, (१२) चतुर्थ उ. ४५, (१३) ११३, (१४) ११४, (१५) २१३ से २१९, (१६) सातवां उ. १४८, (१७) तेरहवां उ. १६, (१८) २७.

ति. प. चतुर्थ महाधिकार– (१) १२६, (२) १३९, (३) २४०, (४) ३३४, (५) ३६८, (६) ३७२, (७) ३३७, (८) ३३८, (९) १५१९, (१०) १५४१, (११) १५१८, (१२) १८१५- (१३) २२७९, (१४) २२८०, (१५) आठवां म. २६० से २६६, (१६) चतुर्थ म. २६९, (१७) प्रथम म. ९८, (१८) १०९.

२ **मूलाचार**— यह श्री वट्टकेरांचार्यविरचित मुनियोंके आचारका सांगोपांग वर्णन करनेवाला एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसके पर्याप्तिसंग्रहिणी नामक १२ वें अधिकारमें कुछ अन्य भी विविध विषयोंका संग्रह किया गया है (देखिये ति. प. २, प्रस्तावना पृ. ४२)। इस अधिकारमें आयी हुई निम्न गाथायें जंबूदीवपण्णत्तीके कर्ता द्वारा सीधी इसी ग्रन्थसे अथवा पीछेके किसी अन्य ग्रन्थमें उद्धृत देखकर ली गयी हैं—

जं.प.११	१३७–३८,	१३९	१४०–४१	१७८	३५३	१२,९५–९६	१३–४३
मूला १२	७५–७६	२१	१०९–१०	७४	७८	८१–८२	८५

३ **त्रिलोकसार**— श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्तचक्रवर्तीके द्वारा विरचित यह एक भूगोल विषयक अनुपम ग्रन्थ है। इसकी रचना प्रौढ़ और अपने आपमें परिपूर्ण है। इसमें जैन भूभागसे सम्बद्ध प्रायः सभी विषयोंका समावेश है। यहां पूर्वपरम्परासे आई हुई तथा कितने ही पूर्वाचार्योंकी भी सैकड़ों गाथाओंको इस प्रकारसे आत्मसात् कर लिया गया है कि उनकी पृथक्ताका बोध ही नहीं होता। जंबूदीवपण्णत्तीमें अनेक गाथायें ऐसी हैं जो ज्योंकी त्यों या कुछ शब्दपरिवर्तनके साथ त्रिलोकसारमें भी उपलब्ध होती हैं। उदाहरण स्वरूप ऐसी कुछ गाथायें ये हैं—

जं.प.	४,३४	१३,३५	१३,३६	१३,३७	१३,३८–४१	१३,४३	६,७	६,११
त्रि.सा.	९६	९५	९३	९४	९९–१०२	९२	७६१	७६४

(१) इनमें गाथा ४–३४ बृहत्क्षेत्रसमास (१–७) में भी इसी रूपमें पायी जाती है।

(२) गा. १३–३५ ज्योतिष्करण्डमें (गा. ७८) भी पायी जाती है। वहां इसके चतुर्थ चरणमें 'पल्ल' के स्थानमें 'जाण' पद पाया जाता है।

(३) गाथा १३–३६ सर्वार्थसिद्धि (३–३८) में उद्धृत पायी जाती है।

(४) गा. १३–३७ त्रिलोकसारमें कुछ परिवर्तित रूपमें है जो इस प्रकार है—

सत्तमजम्मावीणं सत्तदिणब्भंतरम्हि गहिदेहिं।
सण्णट्ठं सण्णिचिदं भरिदं बालग्गकोडीहिं ॥ ९४ ॥

यही गाथा जंबूदीवपण्णत्तीसे बहुत कुछ समानता रखती हुई ज्योतिष्करण्डमें भी इस प्रकार उपलब्ध होती है—

एकाहिय-बेहिय-तेहियाण उक्कोससत्तरत्ताणं।
सम्मट्ठं सन्निचियं भरियं वालग्गकोडीणं ॥ ७९ ॥

यहां टीकाकार श्री मलयगिरिने एकाहिक आदि पदोंका अर्थ इस प्रकार किया है– मुण्डिते शिरसि या एकेनाह्ना प्ररूढास्ता एकाहिकाः, या द्वाभ्यामहोभ्यां ता द्व्याहिकाः, यास्त्रिभिरहोभिस्तास्त्र्याहिकाः। 'सम्मट्ठं' का अर्थ 'संमृष्टं–आकर्णभृतम्' किया है।

(५) गा. १३–३८ त्रिलोकसारमें कुछ परिवर्तित रूपमें है—

वस्ससदे वस्ससदे एक्केक्के अवहिदम्हि जो कालो।
तक्कालसमयसंखा णेया ववहारपल्लस्स ॥ ९९ ॥

यही गाथा जंबूदीवपण्णत्तीसे कुछ थोडे ही परिवर्तनके साथ ज्योतिष्करण्डमें इस प्रकार उपलब्ध होती है—

वाससए वाससए एक्केक्के अवहियंमि जो कालो।
सो कालो नायव्वो उवमा एक्कस्स पल्लस्स ॥ ८१ ॥

(६) गा. १३, ३९–४० त्रिलोकसारमें कुछ शब्दपरिवर्तनके साथ इस प्रकार पायी जाती हैं जिससे पल्यविषयक मान्यताभेद भी सूचित होता है—

ववहारेयं रोमं छिण्णमसंखेज्जवाससमयेहिं।
उद्धारे ते रोमा तक्कालो तत्तियो चेव ॥ १०० ॥
उद्धारेयं रोमं छिण्णमसंखेज्जवाससमयेहिं।
अद्धारे ते रोमा तत्तियमेत्तो य तक्कालो ॥ १०१ ॥

(७) गा. १३–४१ ज्योतिष्करण्ड (गा. २) में भी पायी जाती है। जंबूदीवपण्णत्तीमें इसका अन्तिम चरण है– उवमा एक्कस्स परिमाणं। इसके स्थानमें त्रिलोकसारमें 'हवेज्ज एक्कस्स परिमाणं' और ज्योतिष्करण्डमें 'एक्कस्स भवे परीमाणं' है। ये दोनों पाठ संगत हैं, परन्तु जं. प. में प्रयुक्त 'उवमा' पद पुनरुक्त है।

(८) गा. १३–४३ मूलाचार (१२–८५) में भी पायी जाती है।

(९) गा. ६–११ बृहत्क्षेत्रसमास (१–४१) में भी यत्किंचित् शब्दपरिवर्तनके साथ पायी जाती है।

४. जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र— उक्त नामसे प्रसिद्ध एक ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी विद्यमान है। यह पांचवां उपांग ग्रन्थ माना जाता है। यहां सर्वप्रथम मंगलके रूपमें पंचनमस्कार मंत्र प्राप्त होता है। तत्पश्चात्

ग्रन्थावतारके सम्बन्धमें यहां यह बतलाया गया है कि उस कालमें उस समय मिथिला नामकी समृद्ध नगरी थी। उसके बाहिर उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशाभागमें यहां माणिभद्र नामका चैत्य था। राजाका नाम जितशत्रु और रानीका नाम धारिणी था। उस समय वहां महावीर स्वामीका आगमन हुआ। परिषद् आयी और धर्मश्रवण कर वापिस गयी। उस समय श्रमण भगवान् महावीरके ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार थे। गोत्र उनका गोतम था। वे सात हाथ ऊंचे और समचतुरस्रसंस्थानसे सहित थे। उन्होंने तीन वार आदाहिण-पदाहिण करके भगवानकी वन्दना की और नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे बोले कि भगवन्! जंबूद्वीप कहां है, वह कितना बड़ा है, और किस आकारका है? इस क्रमसे उन्होंने जंबूद्वीपके विषयमें अनेक प्रश्न पूछे और तदनुसार भगवान्ने उसी क्रमसे उनके प्रश्नोंका उत्तर दिया।

इन्द्रभूति गणधरका अन्तिम प्रश्न यह था कि भगवन्! जंबूद्वीपको इस नामसे क्यों कहा गया है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि हे गौतम! इस जंबूद्वीप नामक द्वीपमें बहुतसे जंबूवृक्ष और जंबूवनखण्ड स्थित हैं। यहां सुदर्शन नामका जंबूवृक्ष है जिसके ऊपर अनादृत नामका एक महर्द्धिक देव रहता है। इसी कारण इस द्वीपको जंबूद्वीप कहा जाता है।

उस समय श्रमण भगवान् महावीरने मिथिला नगरीमें माणिभद्र चैत्यके भीतर बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों, बहुत श्राविकाओं, बहुत देवों और बहुत देवियोंके मध्यमें स्थित होकर इस प्रकार व्याख्यान किया, भाषण किया, और प्रज्ञापन किया। इसीका नाम 'जंबूदीवपण्णत्ती' या 'जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति' हुआ।

विषयक्रमके अनुसार इस ग्रन्थको निम्न १० अधिकारोंमें विभक्त किया जा सकता है— १ भरत क्षेत्र २ काल ३ चक्रवर्ती ४ वर्ष-वर्षधर ५ तीर्थंकराभिषेक ६ खण्ड-योजनादि ७ ज्योतिषचक्र ८ संवत्सर ९ नक्षत्र और १० समुच्चय।

१ भरत क्षेत्र— इस अधिकारमें जंबूद्वीपकी जगती, भरत क्षेत्र, वैताढ्य पर्वत, सिद्धायतन, दक्षिणार्ध भरत कूट देवकी राजधानी (अन्य जंबूद्वीपस्थ), उत्तरार्ध भरत और वृषभ कूट पर्वतका वर्णन है।[1]

२ काल— इस अधिकारमें सर्वप्रथम अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालोंके ६–६ भेदोंका निर्देश करके आवलिका, उच्छ्वास, निःश्वास और मुहूर्त आदिका प्रमाण बतलाया गया है। तत्पश्चात् परमाणुको दो भेदोंमें विभक्त कर उसका स्वरूप बतलाते हुए उसण्हसण्हिया (अवसन्नासन्न), सण्हिसण्हिया, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु; क्रमशः देव-उत्तरकुरु, हरिवर्ष-रम्यकवर्ष, हैमवत-हैरण्यवत वर्ष एवं पूर्वापरविदेहोंमें उत्पन्न मनुष्योंका बालाग्र; लिक्षा, यूक, यवमध्य और अंगुलके प्रमाणकी प्ररूपणामें इन सबको उत्तरोत्तर क्रमसे आठ आठ गुणा बतलाया गया है[2]। आगे चलकर १० प्रकारके कल्पवृक्षोंका उल्लेख करके उस कालमें उत्पन्न हुए नर-नारियोंके आकारका वर्णन किया गया है। यहां मानुषियोंकी प्ररूपणामें पैरसे लेकर क्रमशः ऊपरके सभी अंगों व उपांगोंका वर्णन है। इसके अतिरिक्त यहां उन ३२ लक्षणोंका भी नामोल्लेख (पृ. ५५–५६) कर दिया गया है जिनकी धारक नारियां हुआ करती हैं।

---

१ तुलनाके लिये प्रस्तुत ग्रन्थ (दि. जं. प.) की गाथा १३, १६–१८ देखिये।

२ तुलनाके लिये प्रस्तुत ग्रन्थकी गाथा १३, १९–२३ देखिये। इस प्रकरणमें जो 'सत्थेण सुतिक्खेण वि' आदि गाथा (१३–१८) आयी है वह अपने इसी रूपमें इस (श्वे.) जंबूदीवपण्णत्ती (पृ.४२), अनुयोगद्वार सूत्र, ज्योतिषकरण्ड (गा. २, ७३) और कुछ परिवर्तित रूपसे तिलोयपण्णत्ती (१–९६) में भी पायी जाती है।

यहां सुषम-सुषमा, सुषमा और सुषमदुःषमा कालोंके नर-नारियोंकी आयु, शरीरोत्सेध, पृष्ठकरण्डक (पृष्ठास्थियां) और बालरक्षण आदिका वर्णन प्रायः दिगम्बर जंबूदीवपण्णत्ती[1] और तिलोयपण्णत्ती[2] आदिके समान ही पाया जाता है। सुषम-दुःषमा नामक तीसरे कालके अन्तिम त्रिभागमें जब पल्योपमका आठवां भाग शेष रह जाता है तब ऋषभ जिनको भी ग्रहण करके १५ कुलकर पुरुष उत्पन्न होते हैं। इनके नाम प्रायः सर्वत्र समान ही पाये जाते हैं।

ऋषभ जिनेन्द्रके वर्णनमें यहां यह बतलाया है कि दीक्षा ग्रहण करते समय उन्होंने चतुर्मुष्टि लोच[3] किया तथा साधिक एक वर्ष तक वे चीवर (देवदूष्य) के धारी रहे। वे वर्षाकालको छोड़कर हेमंत और ग्रीष्म ऋतुओंमें ग्राममें १ रात्रि और नगरमें ५ रात्रि रहते थे। इनके पांच कल्याणक (गर्भावतार, जन्म, राज्याभिषेक, दीक्षा एवं केवलज्ञान) उत्तराषाढ नक्षत्रमें तथा छठा (परिनिर्वाण) कल्याणक अभिजित् नक्षत्रमें सम्पन्न हुआ था। उनके निर्वाणकालके समय सुषमदुःषमा कालमें ८९ पक्ष (३ वर्ष ८ माह और १५ दिन) शेष रहे थे[4]।

णिर्वाण महोत्सवमें सौधर्म इन्द्रने चतुर्निकाय देवोंको आज्ञा देकर एक भगवान् तीर्थंकरके लिये, एक गणधरोंके लिये और एक शेष अनगारोंके लिये; इस प्रकार ३ चिताओंकी रचना करायी। तब शक्र देवेन्द्रने तीर्थंकरके शरीरको क्षीरोदकसे नहलाया, गोशीर्ष चन्दनसे लेपन किया, हंसलक्षण पट्टशाटक (वस्त्र) पहिनाया, और सब अलंकारोंसे विभूषित किया। फिर ३ शिविकाओंकी विक्रिया कराकर उनमें शोकसे संतप्त होते हुए क्रमशः तीर्थंकर, गणधरों एवं शेष अनगारोंके शरीरको आरूढ कर चिताओंमें स्थापित किया। तत्पश्चात् देवेन्द्रने अग्निकुमार और वायुकुमार देवोंको बुलाकर उनके द्वारा क्रमशः अग्निकाय और वायुकायकी विक्रिया करायी। इस प्रकार निर्वाणमहोत्सव करके उपर्युक्त सौधर्म आदि इन्द्रोंने नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर अंजनगिरि आदि नियत स्थानोंमें ८ दिन तक महामहिमा की। पश्चात् वहांसे अपने अपने स्थानमें आकर उन्होंने तीर्थंकरके सकह (दंष्ट्रा) आदि जिन अंग-उपांगोंको ले लिया था उन्हें यहां अपने अपने विमानादिके पास वज्रमय गोल समुग्गयां (डिब्बों) में रक्खा।

अन्तमें यहां क्रमसे दुःषमसुषमा, दुःषमा और दुःषमदुःषमा कालोंमें होनेवाली नर-नारियोंकी अवस्थाओंका भी वर्णन किया गया है।

३ चक्रवर्ती– यहां सर्वप्रथम गौतम गणधर भगवान्से प्रश्न करते हैं कि हे भगवन्! इस भरत वर्षको भरत वर्ष नामसे क्यों कहा जाता है? इस प्रश्नके उत्तरमें भगवान्ने उक्त क्षेत्रकी 'भरत' इस संज्ञाका कारण भरत चक्रवर्तीको बतलाते हुए उनके चरित्रका विस्तारसे वर्णन किया है। उक्त वर्णनमें यहां विनीता नगरी, भरत चक्रवर्तीकी सुन्दरता, चक्र रत्नकी उत्पत्ति, तन्निमित्तक महोत्सव प्रवर्तन, दिग्विजय[5], ऋषभ कूट

---

१ देखिये दि. जं. प. गा. २, ११०–१६५.

२ ति. प. ४, ३३६-४०९.

३ एक मुष्टि शिखास्थानकी रही, सुन्दर दिखनेके कारण इन्द्रके आग्रहसे उसका लोच नहीं किया (जं. प्र. पृ. ८० में दी गयी टिप्पणके अनुसार)।

४ ति. प. ४-५५३

५ तुलनाके लिये देखिये प्रस्तुत जं. प. गाथा २, १७७–२०९;

६ तुलनाके लिये देखिये प्रस्तुत ग्रन्थकी गाथा ७, ११५–१४५; ति. प. ४, १३०४–६९.

पर्वतके पूर्व कटकपर नामलेखन[१], विनमी विद्याधरके द्वारा भेटमें स्त्री रत्न (सुभद्रा) और नमी विद्याधरके द्वारा रत्नोंका समर्पण, सुभद्रासौन्दर्य, भरत चक्रवर्तीका निधियों और रत्नोंकी प्राप्तिके लिये अष्टमभक्त ग्रहण करना, नौ निधियोंकी प्राप्ति और उनका स्वरूप[२], चक्र रत्नका वापिस विनीता राजधानीकी ओर प्रयाण करना, विनीता राजधानीमें प्रवेश, भरत राजाके द्वारा १६००० देवों और ३२००० राजाओं आदिका यथायोग्य सत्कार, महा राज्याभिषेक, १४ रत्नोंके उत्पत्तिस्थान[३], चक्रवर्तीकी विभूति[४], कदाचित् मज्जनगृहसे निकलकर आदर्श-गृहमें प्रविष्ट हो आत्मनिरीक्षण करते हुए भरत राजाको शुभ परिणामोंके निमित्तसे आवरणीय कर्मोंके क्षयपूर्वक केवलज्ञान एवं केवलदर्शनकी प्राप्ति, स्वयमेव आभरणालंकारका परित्याग, पंचमुष्टि लोच करना, आदर्शगृहसे निकलकर प्रव्रज्याका ग्रहण करना, कुछ कम एक लाख पूर्व तक केवली पर्यायमें रहकर चार अघाति कर्मोंके क्षीण होनेपर निर्वाणप्राप्ति, तथा भरत क्षेत्रमें पल्योपम आयुवाले महर्द्धिक भरत देवके निवासका निर्देश, इत्यादि विषयोंका यहां विस्तारपूर्वक कथन किया गया है।

४ **वर्ष-वर्षधर**— यहां क्षुद्र हिमवान् पर्वतका वर्णन करते हुए उसके अवस्थान, विस्तारादि, उसके उपरिम भागमें स्थित पद्मद्रह, उसके मध्यमें स्थित कमल, उसके भी मध्यमें स्थित भवन, श्रीदेवीके परिवारदेव-देवियोंके कमलभवन[५], श्रीदेवीका निवास, पद्मद्रहके पूर्व तोरण द्वारसे गंगा महानदीका निर्गमन, पर्वतसे गंगा नदीके पतनस्थानमें जिह्विका (नाली) का अवस्थान, गंगाप्रपातकुण्ड, तोरण, गंगाप्रपातकुण्डके मध्यमें स्थित गंगाद्वीप, वहां गंगादेवीका भवन तथा १४ हजार नदियोंसे पुष्ट हुई गंगा महानदीका पूर्व लवणसमुद्रमें प्रवेश; इन सबका यहां वैसा ही वर्णन किया गया है जैसा कि जंबूदीवपण्णत्ती और तिलोयपण्णत्ती आदि अन्य दिगम्बर ग्रन्थोंमें।

आगे चलकर सिंधू नदीके वर्णनक्रमको गंगा नदीके समान बतलाकर उसकी कुछ विशेषताओंका निर्देश करते हुए रोहितंसा नदीके उद्गम आदिका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् क्षुद्र हिमवान्के ऊपर अवस्थित ११ कूटोंका नामोल्लेख करके सिद्धायतन कूट और क्षुद्र हिमवान् कूटका निरूपण विशेष रूपसे किया गया है।

तत्पश्चात् यहां क्रमसे हैमवत वर्ष, महाहिमवान् पर्वत, हरिवर्ष, निषध पर्वत, महाविदेह, नीलवान् पर्वत, रम्यक वर्ष, रुक्मी पर्वत, हैरण्यवत वर्ष, शिखरी पर्वत और ऐरावत वर्ष; इन क्षेत्र-पर्वतोंकी विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

५ **तीर्थंकराभिषेक**— इस अधिकारमें दिक्कुमारिकाओं तथा सपरिवार सब इन्द्रोंके द्वारा अपनी अपनी विभूतिके साथ मेरु पर्वतके ऊपर किये जानेवाले जिनजन्माभिषेककी प्ररूपणा की है।

---

१ उस्सप्पिणी इमीसे तइयाए समाइ पच्छिमे भाए। अहमंसि चक्कवट्टी भरहो इअ नामधिज्जेण ॥१॥ अहमंसि पढमराया अहमं भरहाहिवो णरवरिंदो। णत्थिमहं पडिसत्तू जियं मए भारहं वासं॥ २॥ पृ. २१८. तुलनाके लिये देखिये प्रस्तुत ग्रन्थकी गाथा ७, १४६–४९. ति. प. ४, १३५१–५५.

२ देखिये पृ. २२७ सूत्र ८९–९० गा. १–१४; तुलनाके लिये देखिये ति. प. ४, १३८४–८६.

३ पृ. २५८ सूत्र १२०.; ति. प. ४, १३७७–८२.

४ पृ. २५९ सूत्र १२१.; ति. प. ४, १३७०–१४००.

५ कमलोंकी समस्त संख्या यहां (पृ. २७४) १२० लाख बतलाई गई है जब कि प्रस्तुत जं. प. (३, १२६) और ति. प. (४, १६८९) में वह १४०११६ ही निर्दिष्ट की गई है।

६ **खण्डयोजनादि**— इस अधिकारमें भरत क्षेत्र (५२६ $\frac{६}{१९}$) प्रमाण जंबूद्वीपके खण्ड, उसका क्षेत्रफल, वर्षसंख्या, पर्वतसंख्या, कूटसंख्या, तीर्थसंख्या (मागध आदि), विद्याधरश्रेणिसंख्या, चक्रवर्ति-क्षेत्रादिसंख्या, महाद्रहसंख्या तथा नदीसंख्याका निर्देश किया गया है ।

७ **ज्योतिषचक्र**— इस अधिकारमें चन्द्र-सूर्यादिकोंकी संख्याका निर्देश करके सूर्यमण्डलोंकी संख्या, उनका क्षेत्र, अन्तर व विस्तारादि, दिन-रात्रिप्रमाण, तापक्षेत्र, चन्द्र-सूर्यादिकी उत्पत्ति, इन्द्रच्युति तथा चन्द्रमण्डलों और नक्षत्रमण्डलोंकी संख्या आदिकी प्ररूपणा की गई है ।

८ **संवत्सर**— यहां नक्षत्रसंवत्सर, युगसंवत्सर, प्रमाणसंवत्सर, लक्षणसंवत्सर और शनिश्चरसंवत्सर, इन ५ संवत्सरोंका निर्देश करके इनमेंसे प्रत्येकके भी पृथक् पृथक् भेद बतलाये गये हैं । आगे संवत्सरके मासोंका उल्लेख करते हुए श्रावण आदि आषाढ पर्यन्त मासनामोंको लौकिक बतलाया गया है । इनके लोकोत्तरीय नाम ये हैं— १ अभिनंदित, २ प्रतिष्ठ, ३ विजय, ४ प्रीतिवर्धन, ५ श्रेयःश्रेय, ६ शिव, ७ शिशिर, ८ हेमंत, ९ वसंत, १० कुसुमसंभव, ११ निदाघ और १२ वनविरोध । इसी प्रकार १५ दिन और उनकी तिथियोंके तथा १५ रात्रि और उनकी भी तिथियोंके नामोंका उल्लेख करते हुए एक एक अहोरात्रके ३० मुहूर्तोंका निर्देश किया गया है ।

इसी अधिकारमें बव व बालव आदि ११ करणोंका विवरण करते हुए चन्द्रसंवत्सरको आदि संवत्सर, दक्षिणायनको आदि अयन, वर्षाऋतुके आदि ऋतु, श्रावण मासको आदि मास, कृष्ण पक्षको आदि पक्ष, अहोरात्रिमें आदि दिन, रुद्र मुहूर्तको आदि मुहूर्त, बव करणको आदि करण, तथा अभिजित् नक्षत्रको आदि नक्षत्र बतलाया है ।

९ **नक्षत्र**— यहां २८ नक्षत्रोंके नामोंका निर्देश करके योग, देवता, गोत्र, संस्थान, चंद्र-सूर्य-योग, कुल, पूर्णिमा, अमावस्या और संनिपात; इनके आश्रयसे उनकी विशेष प्ररूपणा की गई है ।

१० **ज्योतिषचक्र**— यहां चन्द्र-सूर्य विमानोंके नीचे-ऊपर ताराओंकी विविधरूपता, उनका परिवार, मेरुसे अन्तर, लोकान्तसे अन्तर, पृथिवीतलसे अन्तर, अन्य नक्षत्रोंके अभ्यन्तर, बाह्य एवं नीचे ऊपर नक्षत्रोंका संचार, विमानोंकी आकृति व प्रमाण, उनके वाहक देव, गति, ऋद्धि, तारान्तर, अग्रमहिषी, परिषद्, स्थिति तथा अल्पबहुत्व; इन सबका वर्णन किया गया है ।

११ **समुच्चय**— इस अधिकारमें जंबूद्वीपस्थ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव, इनकी जघन्य व उत्कर्षसे संख्या बतलाकर कितनी निधियां व रत्न चक्रवर्तीके उपभोगमें आते हैं; इसका निरूपण किया है । अन्तमें जंबूद्वीपके आयाम आदिका उल्लेख करके उसकी शाश्वतिक-अशाश्वतिकता आदिकी चर्चा की गई है ।

५ **ज्योतिष्करण्ड**— यह वालभ्य वाचनाका अनुसरण करनेवाले किसी आचार्यके द्वारा रचा गया है । इसमें निम्न २१ अधिकार हैं— १ कालप्रमाण २ संवत्सरप्रमाण ३ अधिकमासनिष्पत्ति ४ पर्व-तिथि-समाप्ति ५ अवमरात्र ६ नक्षत्रपरिमाण ७ चन्द्रसूर्यपरिमाण ८ चन्द्र-सूर्य-नक्षत्रगति ९ नक्षत्रयोग १० चन्द्र-सूर्यमण्डलविभाग ११ अयन १२ आवृत्ति १३ मण्डलमें मुहूर्तगतिपरिमाण १४ ऋतुपरिमाण १५ विषुव १६ व्यतिपात १७ तापक्षेत्र १८ दिवसवृद्धि १९ अमावस्या-पौर्णमासी २० प्रणष्ट पर्व और २१ पौरुषी । उपर्युक्त विषयोंका सूर्यप्रज्ञप्तिमें जो विस्तृत वर्णन पाया जाता है उसका प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ताने यहां संक्षेप किया है ।

यहां कुछ ऐसी अनेक गाथायें हैं जो जंबूदीवपण्णत्ती और ज्योतिष्करण्ड दोनों ही ग्रन्थोंमें समान रूपमें पायी जाती हैं। यदि कहीं कुछ विभक्तिभेद या शब्दभेद है भी तो वह नगण्य ही है। कितनी ही परम्परागत प्राचीन गाथाओंके उपलब्ध रहनेसे हालमें उनके पूर्वापरक्रमको स्थिर करना कुछ अशक्यसा है। फिर भी भविष्यमें अन्वेषणकर्ताओंके लिये यह उपयोगी सामग्री बन सके, इसी विचारसे उनको तुलनात्मक दृष्टिसे यहां उपस्थित किया जाता है।

दोनों ग्रन्थोंमें उपलब्ध समान गाथायें—

जं. प.	२,२४	२,१११	६,९	१२,१०६	१२,१०९	१२,११०	१३,४	१३,११–१२	१३,१५	१३,१८	१३,२२	१३,३५	१३,३७	१३,३८	१३,४१	१३,४२
ज्यो.क.	१८१	८५	१८०	१२०	१२३	१२४	८८	६२–६३	७२	७३	७४	७८	७९	८१	८२	८३

(१) गाथा २,२४ में प्रयुक्त शब्द दोनोंमें समान हैं, किन्तु वे परिवर्तित रूपमें हैं। यह गाथा ज्योतिष्करण्डके अनुसार बृहत्क्षेत्रसमास (१,३९) में भी पायी जाती है।

(२) गा. २,१११ ज्योतिष्करण्डमें इस प्रकार है—

सुसमसुसमा य सुसमा हवई तह सुसमदुस्समा चेव।
दूसमसुसमा य तहा दूसम अइदुस्समा चेव॥ ८५॥

आगे दोनों ग्रन्थों (जं. प. ११२–११४ और ज्यो. क. ८६-८७) में इन कालोंके प्रमाणकी प्ररूपणा समान रूपसे की गई है।

(३) गाथा ६,९ कुछ थोड़ेसे परिवर्तनके साथ ज्योतिष्करण्ड (१८०) और बृहत्क्षेत्रसमास (१,३६) में इस प्रकार पायी जाती है—

ओगाहूणं विक्खंभमो उ उग्गाहसंगुणं कुज्ना।
चउहि गुणियस्स मूलं मंडलखेत्तस्स अवगाहो॥

बृहत्क्षेत्रसमासमें 'अवगाहो'के स्थानमें 'सा जीवा' पाठ है। ज्योतिष्करण्डमें यद्यपि 'अवगाहो' पाठ है, परन्तु टीकाकार श्री मलयगिरिने 'जीवा' पदको लक्ष्यमें रखकर ही उसकी टीका की है। यथा······स 'मण्डलक्षेत्रस्य' वृत्तक्षेत्रस्य प्रस्तावादिह जम्बूद्वीपस्य सम्बन्धिनो विवक्षितस्यैकदेशस्य भरतादेरारोपित-धनुराकारस्य जीवा प्रत्यंचा भवति। ये ही टीकाकार बृहत्क्षेत्रसमासके भी हैं।

इससे मिलता-जुलता करणसूत्र त्रिलोकसारमें इस प्रकार है— इसुहीणं विक्खभं चउगुणिदिसुणा हदे दु जीवकदी (७६० का पूर्वार्ध)।

(४) गा. १२,१०६ दोनोंमें समान स्वरूपमें ही अवस्थित है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जंबूदीवपण्णत्तीमें इस अभिप्रायको प्रगट करनेवाली एक और भी गाथा (१२,१४) पूर्वमें दी जा चुकी है।

(५) गा. १२,१०९-१० में प्रथम गाथा ज्योतिष्करण्डमें इस प्रकार है—

नक्खत्तट्ठावीसं अट्ठासीई महग्गहा भणिया।
एगससीपरिवारो एत्तो ताराविमे सुणसु॥

दूसरी गाथा (११०) दोनोंमें समान रूपमें ही पायी जाती है। विशेषता यह है कि उपर्युक्त ज्योतिष्करण्डकी गाथामें जो 'एत्तो ताराविमे सुणसु' कहकर आगे ताराओंके प्रमाणके कहनेकी जो प्रतिज्ञा की गयी है उसीका निर्वाह अगली गाथा द्वारा होनेसे वहां इस दूसरी गाथाकी स्थिति दृढ़ है। इन दोनों गाथाओंके पहिले जंबूदीवपण्णत्तीमें जो 'बे चंदा बे सूरा' आदि गाथा (१०८) है वह बृहत्क्षेत्रसमास में भी कुछ नगण्य परिवर्तनके साथ इस प्रकार उपलब्ध होती है—

दो चंदा दो सूरा नक्खत्ता खलु हवंति छप्पन्ना।
छावत्तरं गहसयं जंबूद्दीवे वियारीणं॥ १-३९५.

इससे आगेकी गाथामें यहां जंबूद्वीपमें संचार करनेवाले ताराओंकी समस्त संख्याका निर्देश किया गया है। यहां इन दोनों गाथाओंकी स्थिति आवश्यक प्रतीत होती है। इसका कारण यह है कि बृहत्क्षेत्रसमासके पांच अधिकारोंमेंसे यहां प्रथम जंबूद्वीपाधिकार समाप्त होता है। अतः पूर्वमें समस्त क्षेत्र-पर्वतादिकोंकी प्ररूपणा करके अन्तमें जंबूद्वीपमें अवस्थित ज्योतिर्गणका भी कुछ न कुछ उल्लेख करना आवश्यक ही था। परन्तु जंबूदीवपण्णत्तीमें ऐसी आवश्यक स्थिति इन गाथाओंकी नहीं प्रतीत होती, कारण कि वहां प्रकारान्तरसे इस अर्थकी प्ररूपणा इससे पूर्वमें ८७ और ८८वीं गाथाओंके द्वारा की ही जा चुकी थी।

(६) गाथा १३, ४ दोनों ग्रन्थोंमें इस प्रकार है—

कालो परमणिरुद्धो अविभागी तं विजाण समओ त्ति।
सुहुमो अमुत्ति-अगुरुगलहुवत्तणलक्खणो कालो॥ जं. दी.

× × ×

कालो परमनिरुद्धो अविभज्जो तं तु जाण समयं तु।
समया य असंखेज्जा हवइ हु उस्सासनिस्सासो॥ ज्यो. क. ८८.

जहां तक हम इन दोनों गाथाओंकी शब्दरचनापर ध्यान देते हैं तो हमें ज्योतिष्करण्डकी यह गाथा जैसी प्रकरणसंगत प्रतीत होती है वैसी जंबूदीवपण्णत्तीकी नहीं प्रतीत होती। इसका कारण यह है कि ज्योतिष्करण्डकी गाथाके पूर्वार्द्धमें समयका लक्षण बतलाकर आगे उसके उत्तरार्द्ध द्वारा उच्छ्वासनिःश्वासके लक्षणकी प्ररूपणा की गयी है। यहां आवलीका उल्लेख मूलमें नहीं है, पर टीकाकारने उसका उल्लेख कर दिया है। परन्तु जंबूदीवपण्णत्तीकी उक्त गाथाके पूर्वार्द्धमें समयका लक्षण बतलाकर आगे उत्तरार्द्धमें कालका लक्षण बतलाया गया है। इसके आगे कुछ गाथाओं द्वारा फिर आवली आदि अन्य कालभेदोंकी प्ररूपणा की गयी है। इस प्रकार बीचमें जो कालका स्वरूप बतलाया गया है वह जहां गाथा २ में कालके व्यवहार और परमार्थ ये दो भेद बतलाये गये हैं वहां यदि बतलाया जाता तो अधिक उपयोगी होता।

(७) गाथा १३, ११-१२ दोनों ग्रन्थोंमें समान रूपमें ही पायी जाती हैं। इनमें जो कुछ थोड़ासा भेद है भी वह उल्लेख योग्य नहीं है। 'चुलसीदिगुणं हवेज्ज' के स्थानमें जो ज्योतिष्करण्डमें 'चुलसीइ-गुणाइं होज्ज' पाठ है वह व्याकरणकी दृष्टिमें ग्राह्य ही प्रतीत होता है। दूसरी गाथा (१३, १२) सर्वार्थसिद्धि (३, ३१) में भी उद्धृत देखी जाती है।

आगे जंबूदीवपण्णत्ती (१३ व १४) और ज्योतिष्करण्ड (६४—७१) दोनों ही ग्रन्थोंमें पूर्वसे आगेके कालभेदोंका निर्देश किया गया है। विशेषता यह है कि जहां जंबूदीवपण्णत्तीमें अंगान्त (पर्वांग-नयुतांग आदि) भेदों और उनके गुणकारका कुछ भी उल्लेख नहीं हुआ है वहां ज्योतिष्करण्डमें उन दोनोंका स्पष्टता-

पूर्वक उल्लेख कर दिया गया है। वहां पूर्वके आगे ये कालभेद लतांग, लता, महालतांग, महालता, नलिनांग, नलिन इत्यादि रूपसे भिन्न ही पाये जाते हैं। जंबूदीवपण्णत्तीमें उपर्युक्त दोनों बातोंका उल्लेख न होनेसे उनका यथार्थ स्वरूप नहीं जाना जाता है। यह उपेक्षा प्रकृत कालभेदों विषयक विविध मतभेदोंको लक्ष्यमें रखकर बुद्धिपुरस्सर ही की गयी प्रतीत होती है।

(८) इसके पश्चात् ज्योतिष्करण्डमें यह गाथा आती है जो जं. प. की गा. १३, १५ से बहुत कुछ समानता रखती है—

एसो पण्णवणिज्जो कालो संखेज्जओ मुणेयव्वो।
वोच्छामि असंखेज्जं कालं उवमाविसेसेणं ॥ ७२ ॥

(९) आगे जं. प. में तीन (१६–१८) गाथाओंके द्वारा परमाणुका स्वरूप बतलाया गया है। इनमें प्रथम गाथा 'अंतादिमज्झहीणं' आदि सर्वार्थसिद्धि (५–२५) में भी उद्धृत रूपसे उपलब्ध होती है। तीसरी गाथा 'सत्थेण सुतिक्खेण' आदि ज्योतिष्करण्ड (७३) में प्रायः ज्योंकी त्यों उपलब्ध होती है। वहां 'पमाणेण' के स्थानमें 'पमाणाणं' पाठ है जो परमाणुको आगेके अंगुल आदि रूप अन्य सब प्रमाणोंका आदिभूत प्रगट करता है। यह अभिप्राय 'पमाणेण' पदसे उपलब्ध नहीं होता।

इस गाथाका पूर्वार्द्ध तिलोयपण्णत्ती (१–९६) में भी पाया जाता है। वहां 'किर ण सक्कं' के स्थानमें 'किरस्सकं' पाठ है।

प्रकृत गाथामें जो परमाणुका लक्षण किया गया है वह टीकाकार श्री मलयगिरिके अभिप्रायानुसार अनन्त सूक्ष्म परमाणुओंके संघातसे उत्पन्न हुए व्यावहारिक परमाणुका लक्षण किया गया है। इसकी पुष्टिमें टीकाकार द्वारा अनुयोगद्वारसूत्रका उल्लेख किया गया है। इस व्यावहारिक परमाणुकी मान्यता सम्भवतः किसी अन्य दि. ग्रन्थमें नहीं है। किन्तु जंबूदीवपण्णत्तीके कर्ताने गा. १३–२१ में उसकी निष्पत्ति आठ सन्नासन्नों द्वारा स्पष्टतया स्वीकार की है जो तिलोयपण्णत्ती (१,१०४) और तत्त्वार्थवार्तिक (३,३८,७) आदिकी मान्यताके विरुद्ध है। इन ग्रन्थोंमें आठ सन्नासन्नोंसे एक त्रुटिरेणुकी निष्पत्तिका उल्लेख किया गया है। किन्तु जंबूदीवपण्णत्तीमें त्रुटिरेणुका कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है।

(१०) गाथा १३,२२ ठीक इसी रूपमें ही ज्योतिष्करण्डमें पायी जाती है। इसमें परमाणु पदसे पूर्व गाथामें निर्दिष्ट व्यावहारिक परमाणुको ग्रहण किया गया है, अन्यथा यह क्रम पूर्वोक्त (गा. १९–२१) क्रमके विरुद्ध पड़ता है। ज्योतिष्करण्डमें यह गाथा 'सत्थेण सुतिक्खेण' आदि पूर्वोक्त गाथाके अनन्तर ही पायी जाती है।

(११) तेरहवें उद्देशकी ३५, ३७, ३८, ४१ और ४२ वीं गाथायें ज्योतिष्करण्डमें क्रमशः निम्न संख्याओंसे अंकित पायी जाती हैं—७८, ७९, ८१, ८२ और ८३। इनमें अन्तिम गाथाको छोड़कर शेष ४ गाथायें चूंकि त्रिलोकसारमें भी उपलब्ध हैं, अतः उनके पाठभेद आदिके सम्बन्धमें वहींपर (पीछे पृ. १२८-२९) सूचना कर दी गयी है।

अन्तिम गाथाका पूर्वार्द्ध दोनोंमें समान है। उत्तरार्द्धमें कुछ थोड़ासा ही भेद है जो इस प्रकार है—

ओसप्पिणीय कालो सो चेवुस्सप्पिणीए वि ॥ जं. प.

* * *

ओसप्पिणीपमाणं तं चेवुस्सप्पिणीए वि ॥ ज्यो. क.

६ बृहत्क्षेत्रसमास— इसका विशेष परिचय तिलोयपण्णत्तीकी प्रस्तावना (भा. २, पृ. ७३-७७) में दिया गया है।

जंबूदीवपण्णत्ती और बृहत्क्षेत्रसमासमें निम्न गाथायें समानस्वरूपसे पायी जाती हैं, उनमें कोई उल्लेखनीय भेद नहीं है—

जं. प. छठा उ. गा. ९, १०, ११, १२, बारहवां उ. ११०.

बृ. स. प्र. अ. गा. ३६, ३९, ४१, ३८, ३९५.

इनके अतिरिक्त निम्न गाथा कुछ शब्दपरिवर्तनके साथ इस प्रकार उपलब्ध होती है—

जदिइच्छसि विक्खंभं कंचणसिहरा दु ओवदित्ताणं।
तं सगकायविभत्तं सिरसहिदं जाण विक्खंभं ॥ जं. ६-४७

* * *

जइइच्छसि विक्खंभं मंदरसिहराहि उवइत्ताणं।
एक्कारसहि विभत्तं सहस्ससहियं च विक्खंभं ॥ बृ. १-३०७

७ वैदिक ग्रंथो से तुलना— जैन भौगोलिक ग्रन्थोंमें भूभागका वर्णन करते हुए यह बतलाया है एक लाख योजन विस्तृत वलयाकार जंबूद्वीपके ठीक बीचमें मेरु पर्वत है। मेरुके दक्षिणमें हिमवान्, महाहिमवान् और निषध ये तीन पर्वत तथा इनके कारण विभागको प्राप्त हुये भरत, हैमवत और हरिवर्ष ये तीन क्षेत्र हैं। इसी प्रकारसे उसके उत्तरमें नील, रुक्मि और शिखरी पर्वत तथा रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावतक्षेत्र स्थित हैं। निषध और नील पर्वतोंके अन्तरालमें विदेह क्षेत्र अवस्थित है। यहां मेरुके ईशान कोणमें माल्यवान्, आग्नेयमें सौमनस, नैऋत्यमें विद्युत्प्रभ और वायव्यमें गन्धमादन नामके ये चार गजदन्त पर्वत हैं। इनमें सौमनस और विद्युत्प्रभ गजदन्तोंके मध्यमें अर्ध चन्द्रके आकारमें देवकुरु तथा गन्धमादन और माल्यवान् गजदन्तोंके मध्यमें उत्तरकुरु क्षेत्र अवस्थित है। इस प्रकार जंबूद्वीपमें इन दो क्षेत्रोंके साथ नौ वर्ष हैं।

ठीक इसी प्रकारसे वैदिक सम्प्रदायके भौगोलिक ग्रन्थोंमें[1] भी एक लाख योजन विस्तारवाले गोल जंबूद्वीपका वर्णन पाया जाता है। यहां भी जंबूद्वीपके मध्यमें मेरु पर्वतका अवस्थान है। इस मेरुके चारों ओर चतुष्कोण इलावृत नामक वर्ष अवस्थित है। इलावृतके पूर्वमें उसकी सीमाभूत माल्यवान् पर्वत तथा उसके आगे पूर्व समुद्र तक फैला हुआ भद्राश्व वर्ष है। उक्त इलावृतके पश्चिममें गन्धमादन पर्वत और उसके आगे पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ केतुमाल वर्ष है। इलावृतके दक्षिणमें समुद्रकी ओरसे क्रमशः हिमवान्, हेमकूट और निषध ये तीन तथा उसके उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगवान्[2] ये तीन इस प्रकार छह पर्वत स्थित हैं। दक्षिण समुद्र और हिमवान्के मध्यमें भारतवर्ष, हिमवान् और हेमकूटके मध्यमें किम्पुरुष, हेमकूट और निषधके मध्यमें हरिवर्ष, नील और श्वेत पर्वतोंके मध्यमें रम्यकवर्ष, श्वेत और शृंगवान्के मध्यमें हिरण्मय वर्ष, तथा शृंगवान् और उत्तर समुद्रके मध्यमें उत्तरकुरु वर्ष अवस्थित है। उपर्युक्त छह क्षेत्रोंमें भारत वर्ष और उत्तरकुरु धनुषाकार तथा शेष चार क्षेत्र और उक्त छह पर्वत पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक दण्डवत् आयत हैं। इस प्रकार इलावृत, भद्राश्व और केतुमाल वर्षोंको लेकर जंबूद्वीपमें नौ वर्ष (क्षेत्र) अवस्थित हैं।

---

१ वायुपुराण, विष्णुपुराण, कूर्म और मत्स्यपुराण आदि। २ श्वेत (रुक्मि), शृंगवान्=(शृंगी=शिखरी)।

जिस प्रकार जैन भूगोलमें मंदर पर्वतके उत्तरमें जंबूवृक्ष अवस्थित है उसी प्रकार वैदिक भूगोलमें भी मेरुकी पूर्वादिक दिशाओंमें क्रमशः मंदर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक पर्वतोंके ऊपर कदम्ब, जंबू, पीपल और वट ये चार वृक्ष स्थित हैं।

दोनों सम्प्रदायोंमें विशेषता यह है कि जहां जैन भूगोलमें जंबूद्वीपको चारों ओरसे वेष्टित करनेवाला लवण समुद्र, उसको वेष्टित करनेवाला धातकीखण्ड द्वीप, उसको वेष्टित करनेवाला कालोद समुद्र; इस प्रकार उत्तरोत्तर एक दूसरेको वेष्टित करनेवाले असंख्यात द्वीप-समुद्र स्वीकार किये गये हैं वहां वैदिक भूगोलमें इसी प्रकारसे एक दूसरेको वेष्टित करनेवाले केवल निम्न सात द्वीप और सात ही समुद्र स्वीकार किये गये हैं— जंबूद्वीप, लवणसमुद्र, प्लक्षद्वीप, इक्षुरससमुद्र, शाल्मलीद्वीप, सुरासमुद्र, कुशद्वीप, घृतसमुद्र, क्रौंचद्वीप, क्षीरसमुद्र, शाकद्वीप, दधिसमुद्र, पुष्करद्वीप और शुद्धसमुद्र। (विशेष जाननेके लिये देखिये ति. प. २, प्रस्तावना पृ. ८१–८७)

चातुर्द्वीपिक भूगोल

काशी नागरी प्रचारिणी सभाके द्वारा प्रकाशित सम्पूर्णानन्द-अभिनन्दन ग्रन्थमें 'पुराणोंमें चातुर्द्वीपिक भूगोल और आर्योंकी आदिभूमि' शीर्षक एक लेख श्री रामकृष्णदासजीका प्रकाशित हुआ है। इसमें लेखक महाशयने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि सप्तद्वीपा भूगोलकी अपेक्षा चातुर्द्वीपिक भूगोल अपेक्षाकृत प्राचीन है और उसका वर्णन कोरी कल्पना न होकर आधुनिक भूगोलसे भी कुछ सम्बन्ध रखता है। इसका अस्तित्व अभी भी वायुपुराणमें कुछ अवशिष्ट है। इसका सद्भाव सम्भवतः ऋग्वेदकालसे है, क्योंकि ऋग्वेदमें जिन चार समुद्रोंका उल्लेख है वे इन्हीं चार द्वीपोंसे सम्बद्ध चार दिशाओंके चार समुद्र हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये हम उपर्युक्त लेखका सारांश प्रायः लेखकके ही शब्दोंमें यहां साभार दे रहे हैं—

लेखकका अनुमान है कि मेगास्थिनेके समयमें भी यही चार द्वीपवाला भूगोल चलता था, क्योंकि वह लिखता है– "भारतीय तत्त्वज्ञ और पदार्थविज्ञानवेत्ता भारतके सीमान्तपर तीन और देश मानते हैं। ये तीन देश सीदिया, बैक्ट्रिया तथा एरियाना हैं" जो मोटे तौरपर चतुर्द्वीपी भूगोलके जंबूद्वीपेतर अन्य तीन द्वीपोंसे मिल जाते हैं। अर्थात् सीदियासे उसके भद्राश्व तथा उत्तरकुरु एवं बैक्ट्रिया तथा एरियानासे केतुमाल द्वीप अभिप्रेत हैं। अशोकके समय तक प्राचीन परम्पराके अनुसार चतुर्द्वीप भूगोल ही चलता था, क्योंकि उसके शिलालेखोंमें जंबूद्वीप भारतवर्षकी संज्ञा है।

महाभाष्यमें सप्तद्वीपा पृथिवीकी चर्चा है[2]। अत एव सप्तद्वीप भूगोल अशोक तथा महाभाष्यकालके बीचकी कल्पना जान पड़ती है।

यह चातुर्द्वीपिक भूगोल सप्तद्वीपा भूगोलके समान कल्पनाप्रधान नहीं है। इसका आधार प्रायः वास्तविक है, अत एव उसका सामंजस्य आधुनिक भूगोलसे हो जाता है। यूनानी लेखकोंने लिखा है कि भारतीयोंको अपने देशके भूगोलका स्पष्ट ज्ञान है। वह अवान्तर ब्योरों सहित चतुर्द्वीप-भू-वर्णनपर ही घटता है, किसानोंकी भरमारवाले इस सप्तद्वीप भूगोलपर नहीं।

---

१ बौद्ध सम्प्रदायवर्णित भूगोलके लिये देखिये ति. प. २, प्रस्तावना पृ.८७-९०.

२ सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाः— महाभाष्य पस्पशाह्निक.

चतुर्द्वीप भूगोलमें जंबूद्वीप पृथिवीके चार महाद्वीपोंमेंसे एक है और भारत वर्षका दूसरा नाम है। वही सप्तद्वीप भूगोलमें एक इतना बड़ा द्वीप बन जाता है कि चतुर्द्वीप भूगोलमेंके उसीके बराबरीवाले अन्य तीन द्वीप (भद्राश्व, केतुमाल और उत्तरकुरु) उसके वर्ष होकर उसके अन्तर्गत हो जाते हैं, और भारत वर्ष नामसे वह स्वयं अपना ही एक वर्ष मात्र रह जाता है। तथापि यह जंबूद्वीपका वर्णन इस दृष्टिसे बड़े कामका है कि इसमें चतुर्द्वीपके सम्बन्धमें बहुतसे कामके ब्योरे मिल जाते हैं, क्योंकि, वस्तुतः सप्तद्वीपवाला जंबूद्वीप चतुर्द्वीपा पृथिवीके ही अवान्तर खण्डोंको प्रधानता देकर रचा गया है। यथा—चतुर्द्वीपी भूगोलका भारत (जंबूद्वीप) जो मेरु तक पहुंचता है, सप्तद्वीप भूगोलमेंके जंबूद्वीपमें तीन वर्षोंमें बँट गया है। अर्थात् 'देस'के लिये भारत वर्ष, जिसका वर्ष पर्वत हिमालय है। उसके उपरान्त हिमालयके उस भागके लिये जिसमें पीले रंगवाले मंगोलोंकी बस्ती है, किम्पुरुष वर्ष[1]—जिसमें प्लक्ष खण्ड पुरुरवा आख्यानकी प्लक्ष पुष्करिणी तथा वेदोंका प्लक्ष प्रस्रवण है, जहांसे सरस्वतीका उद्गम है। तथा जिस वर्षका नाम आज भी कनौरमें अवशिष्ट है। यह वर्ष तिब्बत तक पहुंचता था, क्योंकि, वहां तक मंगोलोंकी बस्ती है। तथा उसका वर्ष पर्वत हेमकूट ही, जो कतिपय स्थानोंमें हिमालयान्तर्गत वर्णित हुआ है, तिब्बत है जहां आज भी बहुतायतसे सोना निकलता है। यही भारत (सभा पर्व)के अर्जुनकृत उत्तर दिग्विजयका हाटक प्रदेश है।

हरिवर्षसे हिरातका तात्पर्य है जिसका पर्वत महामेरु शृंखलाके अन्तर्गत निषध (हिंदूकुश) है जो मेरु तक पहुंच जाता है। इसी हरिवर्षका नाम अवेस्तामें 'हरिवरजो' मिलता है जो उसमें आर्योंके बीजस्थानके मध्य माना गया है। वह एक प्रकारसे अपने यहांकी कल्पनासे मिल जाता है, क्योंकि यह स्थान अपने यहांके भू-केन्द्र सुमेरुके चरणतलमें ही है। यों जिस प्रकार चतुर्द्वीपका भारत (जंबूद्वीप) तीन भागोंमें बंटकर महत्तर जंबूद्वीप के तीन 'वर्ष' बन गये, उसी प्रकार रम्यक, हिरण्मय तथा उत्तरकुरु नामक वर्षोंमें विभक्त होकर चतुर्द्वीप भूगोलवाले उत्तरकुरु महाद्वीपके तीन वर्ष बन गये हैं। किन्तु पूर्व और पश्चिमके द्वीप भद्राश्व और केतुमाल यथापूर्व दोके दो ही रह गये हैं। अन्तर केवल इतना है कि यहां वे दो महाद्वीप नहीं, एक द्वीपके अन्तर्गत दो वर्ष हैं। साथ ही इन सबके केन्द्रीय मेरुको मेखलित करनेवाला इलावृत भी एक स्वतन्त्र वर्ष बन गया है। यों उक्त चार द्वीपोंसे पल्लवित तीन उत्तरी, तीन दक्षिणी, दो पूर्व-पश्चिमी तथा एक केन्द्रीय वर्ष इस जंबूद्वीपके नौ वर्षोंकी रचना कर रहा है।

प्रस्तुत लेखमें निम्न स्थानोंको आधुनिक भूगोलसे इस प्रकार सम्बद्ध बतलाया गया है—

मेरु— वर्तमान भूगोलका जो पामीर प्रदेश है वही पौराणिक मेरु है। इसके पूर्वसे निकली हुई यारकंद नदी ही सीता नदी तथा पश्चिमसे निकली हुई आमू दरिया वा आक्शस ही सुवंक्षु[2] नदी है। इसके दक्षिणमें दरद— काश्मीरमें बहनेवाली कृष्णगंगा नदी ही पौराणिक गंगा नदी हो सकती है। इसके उत्तरमें थियानसानके[3] अंचलमें बसा हुआ देश (उत्तरकुरु), पूर्वमें मूज-ताग (मूंज) एवं शीतान (शीतान्त) पर्वत,

१ तथा किम्पुरुषे विप्रा! मानवा हेमसन्निभाः।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजनाः॥ ८॥ कूर्म, ४६.

२ यह नाम सुवंक्षु, सुचक्षु और सुपक्षु आदि कई रूपोंमें विकृत हुआ है। इसके मंगोलियन नाम अक्षु और बक्शू, तिब्बती नाम पक्शू, तथा चीनी नाम पो-त्सू वा फो-त्सू तथा आधुनिक स्थानिक नाम बखिश (विश्वकोष २६,९१०), बप्पश और बखां इन संस्कृत नामोंसे ही निकले हैं। इसकी उत्पत्ति मेरुके पश्चिमी सर सितोद (जैन भूगोलमें सीतोदा नदीका उल्लेख हुआ है) से कही गई है।

३ थियानसानकी प्रधान शाखा कुरुक-ताग अर्थात् कुरुक पर्वतका कुरुक शब्द कुरुका ही रूप लक्षित होता है।

पश्चिममें बदख्शां (वैदूर्य) पर्वत, और पश्चिम-दक्षिणमें हिंदूकुश (निषध) पर्वत स्थित हैं।

उत्तरकुरु— दूसरी शतीके प्रसिद्ध रोमन इतिहासवेत्ता टालमीने उत्तरकुरुकी अवस्थिति पामीर प्रदेशमें बतलाई है। ऐतरेय ब्राह्मणके अनुसार उत्तकुरु हिमवानके परे था। इंडियन ऐंटिक्वेरी (१९१९, पृ. ६५ तथा आगे) के एक गवेपणापूर्ण निबन्धमें प्रतिपादित किया गया है कि उत्तरकुरु शकों और हूणोंके सीमान्तपर थिपानसान पर्वतके तले था।

वायुपुराणके निम्नांकित वचनसे भी उत्तरकुरु सम्बधी इस मतकी पुष्टि होती है—

उत्तराणां कुरूणां तु पार्श्वे ज्ञेयं तु दक्षिणे।
समुद्रमूर्मिमालाढ्यं नानास्वरविभूषितम्॥ ४५-५८

भौमिक स्थितिके अनुसार यह बिलकुल यथार्थ है, क्योंकि, उपर्युक्त स्थापनाके अनुसार उत्तरकुरु पश्चिमी तुर्किस्तान ठहरता है। उसका समुद्र अरल सागर जो प्राचीन कालमें कैस्पियनसे मिला हुआ था, वस्तुतः प्रकृत प्रदेशके दाहिने पार्श्वमें पड़ता है।

सीता नदी— यह वर्तमान भगोलकी यारकंद नदी है। चातुर्द्वीपिक भूगोलके अनुसार यह मेरुके पूर्ववर्ती भद्राश्व महाद्वीपकी नदी है। चीनी लोग इसे संस्कृत नाम सीताके अनुसार अब तक सी-तो कहते हैं। यह काराकोरमके शीतान नामक स्कन्धसे निकल कर पामीरके पूर्वकी ओर चीनी तुर्किस्तानमें चली गई है। उक्त शीतान पुराणोंका शीतान्त है एवं काराकोरम पुराणोंका कुमुंज या मुंजवान, जिसका वैदिक नाम मूजवान था। आज भी उसीके अनुसार उसे मूज-ताग[1] अर्थात् मूज पर्वत कहते हैं।

सीता नदी तकलामकानकी विस्तीर्ण मरुभूमिमेंसे होती हुई, एक आध और नदियोंके मिल जानेके कारण तारीम नाम धारण करके लोपनूर नामक खारी झीलमें, पहिले जिसका विस्तार आजसे कहीं अधिक था, जा गिरती है। इसका वर्णन वायुपुराणमें मिलता है।

कृत्वा द्विधा सिंधुमरून् सीताऽगात् पश्चिमोदधिम्[2]। ४७, २२.

सिंधुमरु तकलामकानके लिये बहुत ही उपयुक्त नाम है, क्योंकि इस मरुभूमिकी एक विशेषता यह है कि इसका बालू देखनेमें ठीक समुद्र-(सिंधु) जैसा जान पड़ता है। पश्चिमोदधिसे लोपनूर झीलका तात्पर्य है।

सुवंक्षु— जिस प्रकार सीता मेरुके पूर्वकी नदी है उसी प्रकार सुवंक्षु मेरुके पश्चिमकी नदी है। इसके कई रूप मिलते हैं; यथा— सुचक्षु, सुवक्षु एवं सपक्षु। इसकी उत्पत्ति मेरुके पश्चिमी सर सितोदसे[3] कही गई है, जहांसे निकलकर "नानाम्लेच्छगणैर्युक्त" केतुमाल महाद्वीपसे बहती हुई यह पश्चिम समुद्रमें चली गई है[4]। वर्तमान आमू दरिया वा आक्शस ही सुवक्षु है, यह निर्विवाद है। इसके मंगोलियन नाम अक्श्

---

१ ताग यह तुर्की शब्द पर्वत अर्थका बोधक है।

२ यहां पश्चिम शब्द अवश्य ही किसी अन्य शब्दका अपपाठ है जो लोपनूरकी नामवाचक संज्ञा रहा होगा, क्योंकि सीता नदीके पूर्व समुद्रमें जानेका स्पष्ट उल्लेख रहनेसे उसके पश्चिम समुद्रमें गिरनेकी सम्भावना नहीं है। दूसरे, यहांकी भौमिक स्थिति भी ऐसी है कि वह पश्चिमकी ओर जा भी नहीं सकती।

३ जैन भूगोलमें मेरुके पश्चिमकी ओर अपर विदेहमें बहनेवाली सीतोदा नदीका उल्लेख मिलता है।

४ वायुपुराण ४२।५७, ७४.

और वक्शू, तिब्बती नाम पक्शू, तथा चीनी नाम पो-त्सू वा फो-त्सू, तथा आधुनिक स्थानिक नाम वखिश वखश और वखां उक्त संस्कृत नामोंसे निकले हैं।

प्राचीन कालसे अभी थोड़े दिन पहले तक पामीरके पश्चिमी भागवाली सिरीकोल झील (विक्टोरिया लेक) इसका उद्गम मानी जाती थी, जो पौराणिक सितोद सर हुई। इन दिनों यह अरालमें गिरती है, किन्तु पहले कैस्पियनमें गिरती थी। यही चतुर्द्वीपी भूगोलका पश्चिमी समुद्र हुआ।

गंगा— यह काश्मीरके उत्तरकी कृष्णगंगाके सिवा दूसरी नदी नहीं हो सकती, क्योंकि इसके उपकण्ठके निवासियोंमें 'दरदांश्च सकाश्मीरान्' अर्थात् दरद और काश्मीरका उल्लेख हुआ है। ये नाम वायुमें मेरुकी चारों दिशाओंकी नदियोंके वर्णनमें आते हैं। यह हरमुकुट पर्वतकी प्रसिद्ध गंगावल झीलसे निकलती है जिसे आज भी वहांके लोक गंगाका उद्गम मानते हैं। इससे ज्ञान पड़ता है कि किसी समय कृष्णगंगा गंगाकी गिनतीमें थी।

इसी गंगाकी रेतमें सोना भी पाया जाता है, इसीलिये उसका नाम गांगेय है। इस नदीका नाम जंबू भी है, क्योंकि जंबू नदीको गंगाके भेदोंमें गिना है। सोनेका नाम गांगेयके साथ जांबूनद भी है। पौराणिक भूगोलमें उसकी भौमिक स्थिति भी यही है। यही कारण है कि सप्तद्वीप भूगोलमें जंबूद्वीपकी नदी गंगाके बदले जंबू है।

निषध— इस पर्वतसे हिंदूकुश श्रृंखलाका तात्पर्य है। हिंदूकुशका विस्तार वर्तमान भूगोलके अनुसार पामीर प्रदेशसे, जहांसे इसका मूल है, काबुलके पश्चिम कोहे-बाबा तक माना जाता है। "कोहे-बाबा और बंदे-बाबाकी परंपराने पहाडोंकी उस ऊंची श्रृंखलाको हेरात तक पहुंचा दिया है। पामीरसे हेरात तक मानों एक ही श्रृंखला है"। अपने प्रारम्भसे ही यह दक्षिण दावे हुए पश्चिमकी ओर बढ़ता है। यही पहाड़ ग्रीकोंका परोपानिसस है। और इसका पार्श्ववर्ती प्रदेश काबुल उनका परोपानिसदाय है। ये दोनों ही शब्द स्पष्टतः 'पर्वत निषध' के ग्रीक रूप हैं, जैसा कि जायसवालने प्रतिपादित किया है।

'गिर निसा (गिरि निसा)' भी गिरि निषधका ही रूप है। इसमेंका गिरि शब्द एक अर्थ रखता है। पौराणिक भूगोलमें पहाड़की श्रृंखलाको 'पर्वत' और एक पहाड़को 'गिरि' कहते हैं—

अपर्वाणस्तु गिरयः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः। वायु. ४९।१३२.

अंग्रेजीमें क्रमशः माउंटन और हिल जिन अर्थोंमें आते हैं, ठीक उन्हीं अर्थोंमें ये शब्द आते थे। इस भांति गिरि निषधका अर्थ हुआ निषध श्रृंखलाका एक पहाड़ और बात भी यही है। लोक-पद्मके पश्चिमी पर्वत निषधके 'केशरायलों' में त्रिश्रृंग नामका भी पहाड़ आता है। वह त्रिश्रृंग अन्य नहीं, यही तीन श्रृंगवाला 'गिरि निसा' अर्थात् कोहेमोर है। इससे निर्विवाद रूपसे सिद्ध होता है कि हिंदूकुश ही अपने यहांका निषध पर्वत है। पौराणिक वर्णनोंमें कहीं तो इस निषधको मेरुके पश्चिम और कहीं दक्षिण कहनेका यह अर्थ होता है कि इसकी स्थिति मेरुके पश्चिम-दक्षिणमें है, वस्तुतः ऐसा है भी।

इलावृत वर्ष— पुराणोंके अनुसार इलावृत चतुरस्र है और मेरु शरावाकृति है। इधर वर्तमान भूगोलमें पामीर प्रदेशका मान १५०×१५० मील है, अर्थात् चतुरस्र है इसी प्रकार वह चारों ओर हिंदूकुश,

---

१ विश्वकोष २६।११०. २ भुवनकोषांक पृ. ४३.

काराकोरम, कादार और अल्ताई पहाड़ोंकी ऊंची चोटियोंकी पट्टीसे परिमण्डित है— यह ठीक सकोरेकी आकृति हो गई, ऊंची चोटियोंकी शृंखला जिसकी दीवार हुई और बीचका चतुरस्र पैदा हुआ। यह भी यहां विशेष ध्यान देने योग्य है कि इस पामीरमें मेरु शब्द आश्लिष्ट है, यह शब्द सपाद-मेरुका जन्य है। मेरुके सम्बन्धमें सपाद-मेरु मेरुके महापादका व्यवहार प्रायः हुआ है, अतः यह व्युत्पत्ति अशंकनीय है। इसी प्रकार काश्मीर शब्द भी मेरुका अंग जान पड़ता है। जैसा कि विद्वानोंका अनुमान है, अवश्य यह शब्द कश्यपमेरुका अपभ्रंश है। नीलमत पुराणके अनुसार भी काश्मीर कश्यपका क्षेत्र है। साथ ही तैत्तिरीयक अरण्यक (१।७) में कहा गया है कि महामेरुको कश्यप नहीं छोड़ता। पौराणिक कालमें मेरु-मण्डल (पामीर प्रदेश) का नाम कांबोज था।

हैमवत— यह पहले भारत वर्षका ही दूसरा नाम रहा है। यथा—

इमं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्। मत्स्य. ११२।२८.

आगे चलकर यह स्वतन्त्र एक वर्ष मान लिया गया है। यथा—

इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम्। — भारत भीष्म ६।७.

उपर्युक्त विषय-वर्णन और ग्रंथान्तरोंसे तुलना द्वारा प्रस्तुत ग्रंथका संक्षिप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। ग्रंथका प्राकृत पाठ अनेक स्थलों पर सुरक्षित नहीं पाया जाता, यदि कुछ और हस्तलिखित व स्वतंत्र प्राचीन प्रतियां मिलानेके लिये हस्तगत हो जांय तो ग्रंथका और भी अधिक प्रामाणिक पाठ तैयार हो सकता है जिसे हम निश्चयसे लेखककी सच्ची रचना कह सकें। और तभी संभवतः ग्रंथके कुछ अशोंकी असंगति और अप्रासंगिकताका निराकरण किया जा सकेगा (उदाहरणार्थ, देखिये उद्देश १३ में कल्पोंका विवरण)। इस ग्रंथकी परम्परा कुछ बातोंमें सर्वार्थसिद्धि, हरिवंशपुराण आदि ग्रंथोंसे भिन्न पाई जाती है। किन्तु अर्धमागधी श्रुतांगकी जम्बूदीव-पण्णत्तिसे उसकी कुछ विषयोंमें आश्चर्यजनक समता दिखाई देती है। तिलोयपण्णत्ति-के साथ उसका साम्य प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। वहांकी अनेक गाथायें यहां जैसीकी तैसी अथवा कुछ हेर फेरके साथ पाई जाती हैं। उसकी जो गाथायें मूलाचार, बृहत्क्षेत्रसमास, त्रिलोकसार और ज्योतिष्करण्डकमें भी पाई जाती हैं वे संभवतः जैन आचार्योंमें परम्परासे प्रचलित करणानुयोगका अंश हों।

यह संपूर्ण ग्रंथ गाथा छन्दमें और प्राकृत भाषामें रचा गया है। यह प्राकृत प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् पिशेलके मतानुसार जैन शौरसेनी कहलाने योग्य है। कुछ क्षेत्रोंके भारी वर्णन हमें अर्धमागधीके लम्बे लम्बे समासोंसे युक्त रचनाशैलीका स्मरण कराते हैं।

५ ग्रंथकारका परिचय व रचनाकाल

ग्रंथमें उसके रचनाकालका कोई निर्देश नहीं है। तथापि ग्रंथकारने प्रशस्तिमें अपनी जो उपर्युक्त गुरुपरम्पराका वर्णन किया है (उद्देश १३, गा. १५२ आदि) उसके अनुसार उनके गुरुका नाम बलनन्दि और गुरुके गुरुका नाम वीरनन्दि था। ग्रंथकार पद्मनन्दिने शास्त्रका ज्ञान विद्यागुरु श्रीविजयसे प्राप्त किया था और इस ग्रंथकी रचना उन्होंने माघनन्दिके शिष्य सकलचन्द्रके शिष्य श्रीनन्दिके लिये की थी। जिस नगरमें यह ग्रंथ लिखा गया था उसका नाम 'वारा नगर' था जो पारियत्त (पारियात्र) देशमें था जहां शक्तिकुमार (या शान्तिकुमार) नामके राजा राज्य करते थे। पं. नाथूरामजी प्रेमीने अपने एक लेखमें यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि विन्ध्याचलसे उत्तरका प्रदेश ही पारियात्र कहलाता था; राजस्थानके कोटा प्रदेशमें जो एक कसबा बारा नामका है वही ग्रंथकारका बारा नगर होना चाहिये; नन्दिसंघकी

पट्टावलीमें जो बाराके भट्टारकोंकी गद्दीका उल्लेख है जिसमें वि. सं. ११४४ से १२०६ तकके १२ भट्टारकोंके नाम दिये हैं, उसीसे संबद्ध पद्मनन्दिकी गुरुपरम्परा हो सकती है; तथा राजपूतानेके इतिहासमें जो गुहिलोत वंशी राजा नरवाहनके पुत्र शालिवाहनके उत्तराधिकारी शक्तिकुमारका उल्लेख मिलता है, वही ग्रंथमें उल्लिखित राजा होना संभव है। आटपुर (आहाड़)के शिलालेखमें गुहदत्त (गुहिल) से लेकर शक्तिकुमार तककी पूरी वंशावली दी है। यह लेख वि. सं. १०३४ वैशाख शुक्ला १ का लिखा हुआ है। अतः यही काल जम्बूदीवपण्णत्तिकी रचनाका सिद्ध होता है (देखिये ना. प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' (बम्बई १९५६) में पृष्ठ २५६–२६५ पर 'पद्मनन्दि की जंबूदीव-पण्णत्ति' शीर्षक लेख)। उपलभ्य हस्तलिखित प्रतियोंमेंसे आमेरसे प्राप्त प्रति संवत् १५१८ की लिखी हुई है। अतः ग्रंथकारका उससे पूर्व होना स्पष्टतः प्रमाणित है।

विषयानुक्रमणिका

९ नौवां उद्देश (पृ. १५४–१७२)

१२ बारहवां उद्देश (पृ. २२३–२३४)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१६	दिशामें वैजयन्त	दिशामें अपराजित
,,	२७	६ कोश, ७५३२	३ कोश, १५३२
७	२६	नदीपरिवार	६४ नदियोंका परिवार
११	५	शून्यको अपवर्तित कर	समान शून्योंको कम कर
१४	१२	जीवाओंका	जीवाओंकी चूलिकाका
,,	१३	२/९ २/९	१/९ २/९
१६	७	वल्हीमंडव–	वलहीमंडव–
३२	२०	२४९३ १/९७	२४९३२ १/९९
३३	२१	थोजन	योजन
३८	११	टसमजिदे	दसभजिदे
४२	२	सत्ताहिं कछाहिं	सत्तहि कच्छाहिं
,,	४	गंज्जंता	गज्जंता
४३	९	पादरक्खा	पाद [याद] रक्खा
,,	२२-२३	संयुक्त, श्री देवीके...... श्री देवीकी	संयुक्त ऐसे चार तेजस्वी देव श्री देवीके आत्मरक्षक हैं जो बहुत प्रकारके योद्धाओंसे सहित होकर श्री देवीकी
५०	५	जिणपडिद–	जिणपडिम–
५६	११	विमानवासी देवोंमें	विमानवासी अर्थात् देवोंमें
६१	१८	उसके वर्गमें	उसके आधेके वर्गमें
६३	९	अवसेसु	अवसेसेसु
७०	८	अट्ठे व	अट्ठेव
८७	७	दिवड्ढ	दिवड्ढ-
८८	५	मणिमालाविप्फुरंत-	मणिमाला विप्फुरंत-
९५	,,	ज्ञल्लरि-	झल्लरि-
११०	१६	विमानछद	विमानछन्द
११२	८	-रयणसंवैच्छणणा	-रयणभवणसंछण्णा
१३३	४	संखेणेव्र य	संखेवेण य
१४३	२१	उससे आगेके भागमें	उसके पश्चिम भागमें

१४४	२५	देवक	देवके
१४५	१५	॥ १४-१६ ॥	॥ ११४-१६ ॥
१६४	९	जवगोहुम-	जवगोहुम-
१६७	८	रिसिभ-	रिसभ-
२११	१२	समान वर्तुलाकार तथा	समान स्थित हैं तथा
२१७	१८	इन्द्रकी	इन्द्रककी
२३२	२९	४......पण्तरत्तारिं	२......पण्णहत्तारिं
२३५	५	संखज्जा-	संखेज्जा-
२३६	१९	जिसम	जिसमें
२४३	२६	्तज्ञान	श्रुतज्ञान
२४४	१६	जरा आदिसे	ज्वर आदिसे
"	२३	जगोत्तंग	जगोत्तुंग



पउमणंदि-विरइया

जंबूदीवपण्णत्ती

[पढमो उद्देसो]

देवासुरिंदमहिदे दसद्धरूवूणकम्मपरिहीणे । केवलणाणालोए सद्धम्मुवदेसए[1] अरुहे ॥ १
अट्ठविहकम्मरहिए अट्ठगुणसमण्णिदे[2] महावीरे । लोयग्गतिलयभूदे सासयसुहसंठिदे सिद्धे ॥ २
पंचाचारसमग्गे पंचेंदियणिज्जिदे[3] विगयमोहे । पंचमहव्वयणिलए पंचमगइणायगायरिए ॥ ३
परसमयतिमिरदलणे परमागमदेसए उवज्झाए । परमगुणरयणणिवहे परमागमभाविदे वीरे ॥ ४
णाणागुणतवॅणिरए समयब्भासग्गहीयॅपरमत्थे । बहुविविहॅजोगजुत्ते जे लोए सव्वसाहुगणे ॥ ५
ते वंदिदूण सिरसा वोच्छामि जहाकमेण जिणदिट्ठं । आयरियपरंपरया पण्णत्तिं दीवजलधीणं ॥ ६
सव्वण्हुं सव्वजिणं भवियंभोरुहदिवायरं भवरहियं[7] । सव्वामरवइमहियं[8] सव्वण्हुगुणं समादिसहु ॥

देवेन्द्रों व असुरेन्द्रोंसे पूजित, दसके आधेमेंसे एक कम अर्थात् चार घातिया कर्मोंसे रहित, केवलज्ञान रूप प्रकाशसे सहित, और समीचीन धर्मके उपदेशक अरिहन्तोंको; आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित, आठ गुणोंसे समन्वित, महावीर, लोकशिखरके तिलक स्वरूप, और शाश्वत सुखमें स्थित सिद्धोंको; पंचाचारसे युक्त, पांच इन्द्रियोंके विजेता, मोहसे रहित, पांच महाव्रतोंके स्थानभूत, और पंचम गतिके नायक आचार्योंको; परसमय रूप अंधकारको नष्ट करनेवाले, परमागमके उपदेशक, उत्कृष्ट गुण रूप रत्नोंके समूहसे युक्त और परमागमके संस्कारसे सहित वीर उपाध्यायोंको; तथा नाना गुण युक्त तपमें निरत, स्वसमयाभ्यास अर्थात् शास्त्रस्वाध्यायसे परमार्थको ग्रहण करनेवाले और बहुत प्रकारके योगोंसे युक्त जो लोकमें सर्वसाधुगण हैं; उनको शिरसे नमस्कार करके यथाक्रमसे जिनभगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट एवं आचार्यपरम्परासे प्राप्त हुई द्वीप-समुद्रोंकी प्रज्ञप्तिको कहता हूं ॥ १-६ ॥ सर्वज्ञ, भव्य रूप कमलोंके लिए दिवाकर स्वरूप, भवसे रहित, और सर्व अमरपतियोंसे पूजित समस्त जिन सर्वज्ञगुणको प्रदान करें ॥ ७ ॥

१ प सद्धम्मुवएसदा, ब सद्धम्मुवयेसदा. २ प ब समणिदे. ३ प ब पंचंदियणिज्जदे. ४ प ब णाणातवगुण. ५ उ प ससमयब्भावगहिय, ब ससमयससादगहिय, श समयब्भावगहिय. ६ उ प श बहुविह. ७ प ब भवरहिदं. ८ उ श °वइरहियं.

णमिऊण[1] वड्ढमाणं ससुरासुरवंदिदं विगयमोहं । वरसुदगुरुपरिवाडिं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ ८
विउलगिरितुंगसिहरे जिणिंदइंदेण वड्ढमाणेण । गोदमसुणिस्स कहिदं पमाणणयसंजुदं अत्थं ॥ ९
तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण । गणधरसुधम्मणा खलु[2] जंबूणामस्स णिद्दिट्ठं ॥ १०
चदुरमलबुद्धिसहिदे तिण्णेदे[3] गणधरे गुणसमग्गे । केवलणाणपईवे सिद्धिं पत्ते णमंसामि[4] ॥ ११
णंदी[5] य णंदिमित्तो[6] अवराजिदं[7]मुणिवरो महातेओ[8] । गोवड्ढणो महप्पा महागुणो भद्दबाहू य ॥ १२
पंचेदे पुरिसवरा चउदसपुव्वी हवंति णायव्वा । बारसअंगधरा खलु वीरजिणिंदस्स णायव्वा ॥ १३
तह य विसाखायरिओ पोट्ठिल्लो खत्तिओ य जयणामो । णागो सिद्धत्थो वि य धिदिसेणो विजयणामो य ॥ १४
बुद्धिल्ल गंगदेवो धम्मस्सेणो य होइ पच्छिमओ । पारंपरेण एदे दसपुव्वधरा समक्खादा ॥ १५
णक्खत्तो जसपालो पंडू धुवसेण कंसआयरिओ । एयारसंगधारी पंच जणा होंति णिद्दिट्ठा ॥ १६
णामेण सुभद्दमुणी जसभद्दो तह य होइ जसबाहू । आयारधरा णेया अपच्छिमो लोहणामो य[9] ॥ १७
आइरियपरंपरया सायरदीवाण तह य पण्णत्ती । संखेवेण समत्थं[10] वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ १८

सुर एवं असुरोंसे वंदित और मोहसे रहित वर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार करके उत्तम श्रुतके धारक गुरुओंकी परम्पराको अनुक्रमसे कहता हूं ॥ ८ ॥ विपुलाचल पर्वतके उन्नत शिखरपर जिनेन्द्र भगवान् वर्धमान स्वामीने प्रमाण और नयसे संयुक्त अर्थका गौतम मुनिको उपदेश दिया । उन्होंने (गौतम गणधरने) लोहार्यको, और लोहार्य अपर नाम सुधर्म गणधरने जम्बू स्वामीको उपदेश दिया ॥ ९–१० ॥ चार निर्मल बुद्धियों (कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, संभिन्नश्रोतृबुद्धि और पदानुसारिणी बुद्धि) से सहित, गुणोंसे परिपूर्ण, केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट दीपकसे संयुक्त और सिद्धिको प्राप्त इन तीनों गणधरोंको नमस्कार करता हूं ॥ ११ ॥ नन्दी, नन्दिमित्र, महा तेजस्वी अपराजित मुनीन्द्र, महात्मा गोवर्धन और महागुणोंसे युक्त भद्रबाहु, ये पांच श्रेष्ठ पुरुष चौदह पूर्वोके धारक अर्थात् श्रुतकेवली थे, ऐसा जानना चाहिये । वीर जिनेन्द्रके [तीर्थमें] इन्हें बारह अंगोंके धारक जानना चाहिये ॥ १२–१३ ॥ तथा विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय नामक, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय नामक, बुद्धिल, गंगदेव और अन्तिम धर्मसेन, ये परम्परासे दस पूर्वोके धारक कहे गये हैं ॥ १४–१५ ॥ नक्षत्र, यशपाल, पाण्डु, ध्रुवषेण और कंसाचार्य, ये पांच जन ग्यारह अंगोंके धारक निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १६ ॥ नामसे सुभद्र मुनी, यशोभद्र, यशोबाहु और अन्तिम लोहाचार्य, ये चार आचार्य आचारांगके धारी जानना चाहिये ॥ १७ ॥ आनुपूर्वीके अनुसार आचार्यपरम्परासे प्राप्त सागर-द्वीपोंकी समस्त प्रज्ञप्तिको संक्षेपमें कहता हूं ॥ १८ ॥ पच्चीस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्योंमें

१ उ नविऊण, प ब श णविऊण. २ प ब °सुधम्मणा य द वलु. ३ उ प तिन्नेदे, ब सिन्नेदे. ४ प ब नमंसामि. ५ उ श णंदि. ६ प ब णंदिमित्ते. ७ प अवराजिय, ब अवयजिय. ८ प ब तेऊ. ९ प ब लोहणमे य. १० उ प श समत्थं, ब समछं.

पणुवीसेकोडिकोडी उद्धारपमाणपल्लसंखाए । जेत्तियमेत्ता रोमा तावदिया होंति दीउदधी[1] ॥ १९
रविमंडलं व वट्टो विक्खंभायामजोयणालक्खो । दीवोदधीण मज्झे जंबूदीवो समुद्दिट्ठो ॥ २०
परिधी तस्स दु णेया लक्खा तिण्णेव सोलससहस्सा । वेसयसत्तावीसा जोयणसंखा पमाणेणं ॥ २१
गाउव[2] तिण्णि वि जाणसु अट्ठावीसा सयं च धणुसंखा । तेरस अंगुलपव्वा अद्धंगुलमेव सविसेसं ॥ २२
विक्खंभेणब्भत्थं विक्खंभं[4] दसगुणं पुणो काउं । जं तस्स वग्गमूलं परिरयमेदं वियाणाहि ॥ २३
विक्खंभचदुब्भागेण संगुणं[5] होइ परिधिपरिमाणं । पदरगदं खेत्तफलं लद्धं रविमंडलाण तहा ॥ २४
सत्तसयणउदिकोडीसमधियछप्पण्णसयसहस्साइं । चदुणउदिं च सहस्सा दिवड्ढसयजोयणा णेया ॥ २५
जोयणअट्ठुच्छेधा[6] विउलामलवज्जवेदिया दिव्वा । परिवेढिदूण[7] अच्छदि जंबूदीवस्स सव्वत्तो ॥ २६
मूले बारह जोयण मज्झे अट्ठेव जोयणा णेया । उवरिं चत्तारि हवे वित्थारो तीए जगदीए ॥ २७

जितने रोम समा सकते हों उतने द्वीप-समुद्र हैं ॥ १९ ॥ द्वीप-समुद्रोंके मध्यमें सूर्यमण्डलके सदृश गोल और एक लाख योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित जम्बूद्वीप कहा गया है ॥ २० ॥ उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस प्रमाण योजन, तीन गव्यूति, एक सौ अट्ठाईस धनुष, तेरह अंगुल और आध अंगुलसे कुछ अधिक जानना चाहिये ॥ २१–२२ ॥ विष्कम्भसे गुणित विष्कम्भको अर्थात् विष्कम्भके वर्गको दसगुणा करके पुनः उसका जो वर्गमूल हो वह परिधिका प्रमाण जानना चाहिये ॥ २३ ॥

उदाहरण— जम्बूद्वीपका विष्कम्भ १००००० यो.; $\sqrt{१०००००^{२} \times १०}$ = ३१६२२७ यो. ३ कोश १२८ धनुष १३½ अंगुलसे कुछ अधिक, यह जम्बूद्वीपकी परिधिका प्रमाण है।

परिधिप्रमाणको विष्कम्भके चतुर्थ भागसे गुणा करनेपर रविमण्डलके सदृश गोल क्षेत्रोंका प्रतरगत क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

उदाहरण— परिधि साधिक ३१६२२७¾ यो.; $३१६२२७\frac{३}{४} \times \frac{१०००००}{४}$ = साधिक ७९०५६९४१५० यो. जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल।

जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल सात सौ नब्बै करोड़ छप्पन लाख चौरानबै हजार एक सौ पचास योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ २५ ॥ आठ योजन ऊंची, विशाल दिव्य निर्मल वज्रमय वेदिका जम्बूद्वीपको चारों ओरसे वेष्टित करके स्थित है ॥ २६ ॥ उस जगतीका विस्तार मूलमें बारह योजन, मध्यमें आठ ही योजन और ऊपर चार योजन प्रमाण जानना

---

१ प व पणवीस. २ प ब दीवुदधी. ३ प ब गाउअ. ४ उ विक्खंभेण भत्थं विक्खंभं, ब विक्खंतेणसछे विक्खंतं, श विक्खंभेण य भत्तं विक्खंभं. ५ उ विक्खंभचदुभागेण य संगुणं, व विक्खंतबहुभागेण संगुणं, श विक्खंभ चदुभागेण य संगुणं. ६ उ अट्ठुछेधा; प अट्ठुच्छेदा, ध अट्ठुछेधा, श अट्ठुच्छेधा. ७ प ब परिवेदूण

सोलसदलमिच्छगुणं[1] (?) जदिच्छसि सोलसद्धभागम्मि । सोलसदलदलसहिदं इच्छफलं होइ जगदीए ॥२८
चत्तारिधणुसहस्सा उत्तुंगा कणयवेदिया दिव्वा । वरवज्जणीलमरगयणाणाविहरयणसंछण्णा ॥ २९
तिस्सेव य जगदीए उवरिं वरवेदिया रयणचित्ता । पंचसयदंडमित्तो[2] वित्थारो तीए[3] पण्णत्तो ॥ ३०
चत्तारिधणुसहस्सा अड्ढाइज्जासएहिं परिहीणा । बेजोयणवित्थिण्णा[4] दोसु वि पासेसु जगदीए ॥ ३१
वेलंधरदेवाणं हवंति णगराणि तत्थ रम्माणि । अब्भंतरम्मि भागे महोरगाणं च विण्णेया ॥ ३२
अहिसेयणट्टसालाउववादसभावराणि[5] रम्माणि । पायारगोउरालय अणाइणिहणाणि सोहंति ॥ ३३
कंचणपवालमरगयकक्केयणपउमरायमणिणिवहा । तोरणवंदणमाला सुगंधगंधुद्धुया[6] रम्मा ॥ ३४
पुण्णागणागचंपयअसोयवरवउलतिलयवच्छादी । उभओ पासेसु तहा[7] उववणसंडा विरायंति ॥ ३५
कल्हारकमलकंदलणीलुप्पलकुसुदकुसुमसंछण्णा । पोक्खरिणिवाविवप्पिणिसुदीहियाओ विरायंति ॥ ३६

चाहिये ॥ २७ ॥ सोलहके अर्ध भाग अर्थात् आठ योजनकी ऊंचाईमें जहां कहीं भी जगतीके विस्तारके जाननेकी इच्छा हो [वहां जगतीके शिखरसे जितना नीचे उतरे हों उतनेमें एकका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उसमें] सोलहके दलके दल अर्थात् चार (१६ ÷ २ ÷ २ = ४) को मिलानेपर जगतीके अभीष्ट विस्तारका प्रमाण होता है । [जैसे उपरिम भागसे $१\frac{१}{४}$ योजन नीचे उतर कर यदि वहांका विस्तार जानना है तो वह $१\frac{१}{४} ÷ १ + ४ = ५\frac{१}{४}$ इस प्रकारसे पांच योजन एक कोश होगा]॥ २८ ॥ उसी जगतीके ऊपर चार हजार धनुष ऊंची उत्तम वज्र, नील और मरकत आदि नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त दिव्य सुवर्णमय वेदिका है। रत्नोंसे चित्रविचित्र उस उत्तम वेदिकाका विस्तार पांच सौ धनुष मात्र कहा गया है ॥ २९–३० ॥ जगतीके दोनों पार्श्वभागोंमें अढ़ाई सौ धनुष कम जो चार हजार धनुष प्रमाण विस्तार है वहांपर वेलंधर देवोंके दो योजन विस्तीर्ण रमणीय नगर हैं। उसके अभ्यन्तर भागमें महोरग दवोंके नगर जानना चाहिये ॥३१–३२॥ उनमें अभिषेकशाला नाट्यशाला और उपपादसभा, ये प्राकार एवं गोपुरालयोंसे संयुक्त अनादि-निधन रमणीय घर शोभायमान हैं ॥ ३३ ॥ वे रमणीय भवन सुवर्ण, प्रवाल, मरकत, कर्केतन और पद्मराग मणियोंके समूहसे निर्मित; तोरण एवं वंदनमालाओंसे सुशोभित, तथा सुगन्धित गन्धके प्रसारसे युक्त हैं ॥३४॥ वेदिकाके उभय पार्श्वभागोंमें पुन्नाग, नाग, चम्पक, अशोक, उत्तम वकुल और तिलक आदि वृक्षोंसे सहित उपवनषण्ड विराजमान हैं ॥ ३५ ॥ वनषण्डोंमें कल्हार (सफेद कमल), कमल, कंदल, नीलोत्पल और कुमुद कुसुमोंसे व्याप्त पुष्करिणी, वापियां, वप्रिणी (?) एवं उत्तम दीर्घिकायें विराजमान हैं ॥ ३६ ॥ स्वाभाविक सौन्दर्यसे संयुक्त, और जिन-सिद्धभवन-

---

१ श °दलम्मिछ्गुणं. २ प ब °मेत्ता. ३ श तीय. ४ प ब विछिन्ना. ५ उ श सभाव्वराणि. ६ उ सुगंधगंधद्धुया, प सुगंधुसंधधुया, ब सुगंधुगंधसुया. ७ उ उभत्तुं पासेसु तहा, प उभऊणसेस तहा, ब युभऊपासेसु सहा. ८ उ प ब पोक्खराणिवाविवप्पिण, श पोक्खराणि व वि वि चप्पिण.

सयलं जंवूदीवं[1] परिरयदि पुरं सभावरसपुण्णं । जिणसिद्धभवणणिवहं को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ ३७
जंवूदीवस्स तहा गोउरदाराणि होंति चत्तारि । विजयं तु वेजयंतं[3] जयंतमपराजियं चेव ॥ ३८
पुव्वदिसेणं विजयं[4] दक्खिणभागेण वइजयंतं तु । होइ य पच्छिमभागे जयंतमपराजियं च उत्तरदो ॥ ३९
वरकणयरयणमरगयणाणारयणोवहारकयसोहा । जोयणअट्ठुस्सेहा तदद्धविक्खंभआयामा ॥ ४०
सिंहासणछत्तत्तयभामंडलचामरादिसंजुत्ता । अरुहाण ठिया[5] पडिमा गोउरदारेसु सव्वेसुं ॥ ४१
विजयंतवइजयंता जयंतअवराजिदा सुरा होंति । पल्लाउगा सुरूवा[6] चदुसु वि[7] दारेसु बोद्धव्वा ॥ ४२
वरपट्टणं विरायइ विजयंतकुमारसुरवरिंदस्स । वारहसहस्सजोयणविक्खंभायामणिद्दिट्ठं ॥ ४३
रयणमया पासादा वेरुलियमया य कंचणमया य । ससिकंतसूरकंता कक्केयणपउमरागमया ॥ ४४
एवं अवसेसाणं देवाणं पुरवराणि णेयाणि । वरगोउरदारादो[8] उवरिं गंतूण तिट्ठंति ॥ ४५
दारंतरपरिमाणं वावण्णा जोयणा मुणेयव्वा । ऊणासीदिसहस्सा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं[9] ॥ ४६
पण्णत्तरिसय णेया वत्तीसा धणुपमाण णिद्दिट्ठा । तिण्णेव अंगुलाइं तिज्जव संखा समदिरेया[10] ॥४७
सोलसजोयणऊणा जंवूदीवस्स परिधिमज्झिम्मि । दारंतरपरिमाणं चदुभजिदे होइ जं लद्धं ॥ ४८

समूहसे युक्त वह पुर समस्त जम्बूद्वीपको परिवेष्टित करता है। उसका सम्पूर्ण वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ है ? ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपके [चारों ओर] विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित, ये चार गोपुरद्वार हैं ॥ ३८ ॥ इनमेंसे पूर्व दिशामें विजय, दक्षिण भागमें वैजयन्त, पश्चिम भागमें जयन्त और उत्तर दिशामें वैजयन्त गोपुरद्वार है ॥ ३९ ॥ उत्तम सुवर्ण, रत्न, मरकत और नाना रत्नोंके उपहारसे शोभायमान ये द्वार आठ योजन ऊंचे और इससे आधे विष्कम्भ व आयामसे सहित हैं ॥ ४० ॥ सब गोपुरद्वारोंमें सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादिसे संयुक्त अरिहन्त जिनोंकी प्रतिमायें स्थित हैं ॥ ४१ ॥ चारों द्वारोंपर क्रमशः विजयन्त, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित, ये चार सुन्दर देव हैं। इनकी आयु एक पल्य प्रमाण जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ विजयंतकुमार सुरेन्द्रका उत्तम पुर विराजमान है। इस नगरका विष्कम्भ व आयाम बारह हजार योजन प्रमाण कहा गया है ॥४३॥ इन नगरोंमें रत्नमय, वैडूर्यमणिमय, सुवर्णमय तथा चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन और पद्मराग मणियोंसे निर्मित प्रासाद हैं ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार शेष देवोंके श्रेष्ठ नगर जानना चाहिये। ये नगर उत्तम गोपुरद्वारोंसे ऊपर जाकर स्थित हैं ॥ ४५ ॥ विजयादिक द्वारोंके अन्तरालका प्रमाण सर्वदर्शियों द्वारा उन्यासी हजार बावन योजन, पचत्तर सौ बत्तीस धनुष, तीन अंगुल और तीन जौ (७९०५२ यो., ६ कोश, ७५३२ धनुष, ३ अंगुल, ३ यव) से कुछ अधिक निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये ॥४६-४७॥ जम्बूद्वीपकी परिधिमेंसे सोलह योजन कम कर शेषमें चारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना उक्त द्वारोंका अन्तरप्रमाण होता है ॥४८॥

---

१ उ प व जंबुद्दीवं. २ प ब सिद्धवयणणिवहं. ३ प ब वैजयंत ४ उ °दिसेण विजयं, श °दिसेणं विजयं. ५ उ श असहाण ठिया, प अरहाण ठिय, ब अरहाण विया. ६ उ सुदूवा, प ब सरूवा, श सुतवा. ७ उ वदसु यि, ब श बहुसु वि. ८ उ श हारादो. ९ उ श दरिसिहिं. १० उ प ब श समधिरेया.

जगदीदो गंतूणं वेगाउव[1]वित्थडा परमरम्मा । अब्भंतरम्मि भागे वणसंडा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ४९
फणसंबताडदाडिमसज्जज्जुणणालिकेरकदलीहिं । वरबउलतिलयचंपयअसोयरुक्खेहिं संछण्णा ॥ ५०
णाणादुमगणगहणं उज्जाणं सुरहिसीयलच्छायं । चिंचामोयसुगंधं[3] सुरखेयरकिण्णरसणाहं[4] ॥ ५१
वेगाउदउव्विद्धा[5] उज्जाणवणस्स वेदिया दिव्वा । पंचधणुस्सयविउला कंचणमणिरयणपरिणामा ॥ ५२
णाणातोरणणिवहा मणिकंचणमंडिया परमरम्मा । सासयअणाइणिहणा णाणाविहरूवसंपण्णा ॥ ५३
उज्जाणजगइतोरणगोउर[6]दारेसु होंति सव्वेसुं । जिणइंदाणं पडिमा अकिट्टिमा[7] सासयसहावा ॥ ५४
जंबूदीवे णेया सत्तेव य तत्थ[8] होंति खेत्ताणि । एक्को मंदरसिहरी[9] छच्चेव य कुलगिरी तुंगा[10] ॥ ५५
विण्णि सया णायव्वा कणयणगा विविहरयणपरिणामा । चत्तारि होंति जमगा णाभिणगा तेत्तिया[11] चेव ॥ ५६
रिसभणगा चउतीसा वेयड्ढा[12] तेत्तिया मुणेदव्वा[13] । वक्खारणगा[14] सोलस[15] णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ५७
अट्ठेव दिसगइंदा णाणामणिविप्फुरंतकिरणोहा । तावदिया वेदीओ विदेहमज्झम्मि णिद्दिट्ठा ॥ ५८
पुव्वावरायदाणं वंसधराणं हवंति णायव्वा । सोलस वरवेदीओ णाणामणिरयणणिवहाओ ॥ ५९

जगतीसे अभ्यन्तर भागमें जाकर दो कोश विस्तृत परम रमणीय वनषण्ड निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ४९ ॥ ये वनषण्ड पनस, आम, ताड, दाडिम, सर्ज, अर्जुन, नारियल, कदली, उत्तम वकुल, तिलक, चंपक और अशोक, इन वृक्षोंसे व्याप्त हैं ॥ ५० ॥ वह उद्यान नाना वृक्षसमूहोंसे गहन, सुगन्धित शीतल छायासे सहित, चिंचा (इमली) की आमोदसे सुगन्धित और देव, विद्याधर एवं किन्नरोंसे सनाथ हैं ॥ ५१ ॥ उस उद्यान-वनकी दो कोश ऊंची व पांच सौ धनुष विस्तृत सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे निर्मित दिव्य वेदिका है । यह वेदिका नाना तोरणसमूहोंसे सहित, मणियों एवं सुवर्णसे मंडित, अतिशय रमणीय, शाश्वत, अनादि-निधन और नाना प्रकारके रूपों (मूर्तियों) से सम्पन्न है ॥ ५२-५३ ॥ उद्यान-वनकी जगतीके तोरण युक्त सब गोपुरद्वारोंमें अकृत्रिम और शाश्वत स्वभाववाली जिनेन्द्रोंकी प्रतिमायें होती हैं ॥ ५४ ॥ वहां जम्बूद्वीपमें सात क्षेत्र, एक मंदर शिखरी (सुमेरु) और छह उन्नत कुलगिरि हैं ॥ ५५ ॥ भिन्न भिन्न रत्नोंके परिणाम स्वरूप दो सौ कनकनग (कंचनगिरि), चार यमक पर्वत और उतने ही नाभिपर्वत भी जानना चाहिये ॥ ५६ ॥ चौंतीस वृषभनग, उतने ही वैताढ्य और नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम स्वरूप सोलह वक्षारपर्वत हैं ॥ ५७ ॥ विदेहके मध्यमें नाना मणियोंके प्रकाशमान किरणसमूहसे युक्त आठ दिग्गजेन्द्र और उतनी ही वेदिकायें कही गयी हैं ॥ ५८ ॥ पूर्व-पश्चिम लंबे वर्षधरों (पर्वतों) की नाना मणियों व रत्नोंके समूहसे युक्त सोलह उत्तम वेदिकायें जानना चाहिये ॥ ५९ ॥ जम्बूद्वीपमें क्षेत्रोंकी अठारह वेदियां हैं । मणियों व रत्नोंके स्फुरायमाण किरणोंसे

---

१ प व गाउद. २ उ ताडिमसज्जज्जुण, प ताडिमसंजज्जुणा, व ताडिमसज्जज्जुणा., श ताडिमसज्जुण. ३ उ प ब दिव्वामोयसुगंधं. ४ उ किन्नरसणाहं, प ब किंनरसनेहं. ५ प उच्छेद्धा, ब उच्चिद्धा. ६ श ओउर. ७ प व अकट्टिमा. ८ उ श तित्थ. ९ उ प ब श सिहरो. १० उ जुग्मा, श जुग्गा. ११ प नाभिनगा तेत्थिया, ब नाभिणगा तेहिया. १२ प व वेदड्ढा. १३ प व मुणेयव्वा. १४ उ प श वाक्खारणगा. १५ उ सोसा, प ब वीसा.

वंसाणं वेदीओ अट्ठारस होंति जंबुदीवम्हि । बेगाउदउव्विद्धा मणिरयणफुरंतकिरणोहा ॥ ६०
पुव्वावरायदाओ वंसधराणं हवंति वेदीओ । उत्तरदक्खिणदीहा वंसाणं होंति णिद्दिट्ठा ॥ ६१
बावण्णसया णेया वेदीओ होंति रयणमइयाओ । कुंडजमहाणदीणं णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥ ६२
चउदसमहाणदीणं अट्ठावीसा हवंति वेदीओ । चउवीसा विण्णेया पउमादीणं दहाणं तु ॥ ६३
कुंडाणं णिद्दिट्ठा दसूणसयवेदिया समुत्तुंगा । कंचणरयणमयाओ पंचेव य धणुसयाँ विउला ॥ ६४
सव्वाओ वेदीओ तोरणणिवहा हवंति णायव्वा । विक्खंभुस्सेहेहि य अवगाहेहिं हवे सरिसा ॥ ६५
तिण्णि सदा एक्कारा मणिकंचणमंडिया णगा णेया । तावदिया वेदीओ णगाण सव्वाण दीवस्स ॥ ६६
बारस चदुंसहिय दहा दहाण वेदी हवंति तावदिया । चउदसमहाणदीओ छावत्तरि कुंडजणदीओ ॥ ६७
णउदी चउदसलक्खा छप्पण्ण सहस्स होंदि परिमाणं । दीवस्स णदी णेया तावदिया दुगुणवेदीओ ॥ ६८
चत्तारि धणुसहस्सा उत्तुंगा धणुसहस्सअवगाढा । पंचसयदंडविउला सव्वाओ होंति वेदीओ ॥ ६९

....

युक्त ये वेदियां दो कोश ऊंची हैं ॥ ६० ॥ वर्षधरोंकी वेदियां पूर्व-पश्चिम लम्बी और क्षेत्रोंकी वेदियां उत्तर-दक्षिण लम्बी कही गयी हैं ॥ ६१ ॥ सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट कुण्डोंसे निकली हुई महानदियोंकी रत्नमय वेदिकायें बावन सौ जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ चौदह महानदियोंकी वेदियां अट्ठाईस और पद्मादिक द्रहोंकी चौबीस जानना चाहिये ॥ ६३ ॥ कुण्डोंकी उन्नत वेदिकायें दस कम सौ (९०) कही गयी हैं । ये सुवर्ण व रत्नमय वेदिकायें पांच सौ धनुष प्रमाण विस्तृत हैं ॥ ६४ ॥ तोरणसमूहसे संयुक्त सब वेदियोंको विष्कम्भ, उत्सेध और अवगाहमें सदृश समझना चाहिये ॥ ६५ ॥ जम्बूद्वीपमें मणियों व सुवर्णसे मण्डित तीन सौ ग्यारह पर्वत और उन सब पर्वतोंकी उतनी ही वेदियां जानना चाहिये [कुलपर्वत ६ + विजयार्ध ३४ + वक्षारगिरि १६ + गजदन्त ४ + दिग्गजेन्द्र ८ + नाभिगिरि ४ + वृषभाचल ३४ + यमक ४ + कंचनशैल २०० + मेरु १ = ३११.] ॥ ६६ ॥

चार सहित बारह अर्थात् सोलह द्रह (कुलपर्वतस्थ ६ और विदेह क्षेत्रस्थ १०) और उतनी ही द्रहोंकी वेदियां हैं । चौदह महानदियां और छयत्तर (बत्तीस विदेह सम्बन्धी ६४, विभंग नदी १२) कुण्डज नदियां हैं ॥ ६७ ॥ द्वीपकी नदियोंका प्रमाण चौदह लाख, छप्पन हजार, नव्वै जानना चाहिये। इनसे दूनी उनकी वेदियां हैं [सीता-सीतोदा २ + बत्तीस विदेहस्थ ६४ + विभंग १२ + सीता-सीतोदापरिवार १६८००० + वि. नदीपरिवार ८९६००० + छह भरतादि क्षेत्रोंकी ३९२०१२ = १४५६०९०.] ॥ ६८ ॥

सब वेदियां चार हजार धनुष प्रमाण ऊंची, एक हजार धनुष प्रमाण अवगाहवाली और पांच सौ धनुष विस्तृत होती हैं ॥ ६९ ॥ उत्तम नदियोंके किनारोंपर, पर्वतोंपर

....

१ उ श उव्वद्धा. २ उ श दक्खिणदेहा, ब दक्षिणदीह. ३ प ब धणसया. ४ प सव्वाओ व दीवं तो तोरण, ब सव्वाऊ व दीर्ळं तोरण. ५ प °चढ़, ब चद्ध.

वरणइतडेसु[1] गिरिसु य उज्जाणवणेसु दिव्वभवणेसुं । सेंवलिजंबुदुमेसु य पउमिणिसंडेसु सव्वेसुं ॥ ७०
दिसिगयवरेसु अट्ठसु वक्खारणगेसु[2] णाहियणगेसुं । कंचणणगेसु रम्मा वरमंदरपव्वदे तुंगे ॥ ७१
गंगाकूडेसु तहा वेदड्ढणगेसु रिसभसेलेसुं । जलवाहिणिकुंडेसु[3] य विदेहवंसाइखेत्तेसुं ॥ ७२
गोउरदारेसु तहा मणिमयवरतोरणेसु रम्मेसुं । णिम्मलवरदेहधरा जिणपडिमाओ णमंसामि ॥ ७३
अण्णाणतिमिरदलणो[4] मुणिगणधरकुसुयसंडबोहयरो । वरपउमणंदिमहिओ जिणवरचंदो दिसउ बोहिं ॥७४

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे उवग्घायपत्थाओ णाम पढमउद्देसो[5] समत्तो ॥ १ ॥

उद्यान-वनोंमें, दिव्य भवनोंमें, शाल्मलिवृक्ष, जम्बूवृक्ष, सब पद्मिनीषण्ड, श्रेष्ठ दिग्गज, आठ वक्षार नग, नाभिनग, कंचननग, उन्नत एवं श्रेष्ठ मन्दर पर्वत, गंगाकूट, वैताढ्यनग, ऋषभशैल, नदीकुण्ड, विदेहवर्षादि क्षेत्र, गोपुरद्वार और रम्य महा मणिमय उत्तम तोरण, इन स्थानोंमें स्थित निर्मल एवं उत्तम देहको धारण करनेवाली रमणीय जिनप्रतिमाओंको नमस्कार करता हूं ॥ ७०–७३ ॥ अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेवाला, मुनि एवं गणधर रूपी कुमुदसमूहका विकासक और पद्मनन्दिसे पूजित जिनवररूपी चन्द्र बोधिको प्रदान करे ॥ ७४ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें उपोद्घातप्रस्ताव नामक प्रथम उद्देश समाप्त हुआ ॥१॥

---

१ उ श वरणयतडेसु, ब वरणतडेसु. २ प ब णमेसु. ३ उ श जलचाहिणि. ४ उ श दलणे. ५ उ श °पस्पत्तिसंगहे उवग्घायपत्थावो णाम पढम, प ब पण्णत्तिसंगहे उवग्घायपच्छऊणपढम.

[विदिओ उद्देसो]

उसभजिणिंदं पणमिय दसद्धसयचावदीहरं णाहं । जंबूदीवस्स तहा खेत्तविभागं पवक्खामि ॥ १
इह होइ भरहखेत्तो तत्तो हेमव्वदो[1] य हरिवंसो । तह य विदेहो रम्मग[2] हेरण्णवदो य अइरवदो ॥ २
कप्पतरुधवलछत्ता उववणससिधवलचामराडोवा । बहुकुंडरयणकंठा[3] वणकुंडलमंडियागंडा ॥ ३
वेइकडि[4]सुत्तसोहा णाणापव्वयफुरंतवरमउडा । वरणइजलच्छहारा[5] खेत्तणरिंदा विरायंति ॥ ४
पुव्वावरेण दीहा सत्त वि खेत्ता विणासपरिहीणा । कुलपव्वयकयसीमा वित्थिण्णा दक्खिणुत्तरदो ॥ ५
एक्कंखंडो भरहो दुगुणो हिमवंतवित्थडो दिट्ठो । दुगुणदुगुणा दु सव्वे सत्त विभागा मुणेयव्वा ॥ ६
जाव दु विदेहवंसो पव्वदखेत्ताण होइ परिवड्ढी । तत्तो अद्धद्धखओ जाव दु एरावदो वंसो ॥ ७
कुलगिरिखेत्ताणि तहा तेरस भागा हवंति णायव्वा । एयट्ठकए सव्वे णउदिसयं[6] होंदि पिंडेण ॥ ८
णउदिसएण विभत्तं जोयणलक्खं पुणो वि इच्छगुणं । विक्खंभं णायव्वं खेत्तादीणं तु जं लद्धं ॥ ९

दसके आधे अर्थात् पांच सौ धनुष लंबे स्वामी ऋषभ जिनेन्द्रको नमस्कार करके जम्बूद्वीपके क्षेत्रविभागको कहता हूं ॥ १ ॥ यहां जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्र, हैमवत, हरिवर्ष, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत, ये सात क्षेत्र हैं ॥ २ ॥ कल्पवृक्षरूपी धवल छत्रोंसे सहित, चन्द्रमाके समान धवल उपवनरूपी चामरोंके विस्तारसे संयुक्त, बहुत कुण्डरूपी रत्नमय कण्ठाभरणोंसे सुशोभित, वनरूपी कुण्डलोंसे अलंकृत कपोलोंवाले, वेदीरूपी कटिसूत्रोंसे शोभायमान, नाना पर्वतरूपी प्रकाशमान उत्तम मुकुटोंसे युक्त, और उत्तम नदीजलरूपी निर्मल हारोंसे विभूषित, ऐसे क्षेत्ररूपी राजा विराजमान हैं ॥ ३-४ ॥ पूर्व-पश्चिम लंबे, विनाशसे रहित और कुलपर्वतोंसे की गयी सीमासे संयुक्त ये सातों क्षेत्र दक्षिण-उत्तरमें विस्तृत हैं ॥ ५ ॥ [जम्बू द्वीपके एक सौ नव्वै भागोंमें] एक खण्ड (भाग) भरत क्षेत्र है। उससे दुगुणा विस्तृत हिमवान् पर्वत बतलाया गया है। इस प्रकार विदेह क्षेत्र तक चार क्षेत्र व तीन कुलपर्वत, ये सात विभाग उत्तरोत्तर दूने जानना चाहिये। विदेह क्षेत्र तक पर्वत और क्षेत्रोंके विस्तारमें उत्तरोत्तर वृद्धि तथा उससे आगे ऐरावत क्षेत्र तक उनके विस्तारमें उत्तरोत्तर आधी आधी हानि होती गई है ॥ ६-७ ॥ छह कुलपर्वत तथा सात क्षेत्र, ये जम्बूद्वीपके तेरह भाग जानना चाहिये। इन सबको इकट्ठा करनेपर पिण्ड रूपसे एक सौ नव्वै भाग होते हैं ॥ ८ ॥ एक लाख योजनमें एक सौ नव्वैका भाग देकर पुनः इच्छासे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उतना क्षेत्रादिकोंका विष्कम्भ जानना चाहिये ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—चूंकि विदेह पर्यन्त चार क्षेत्र और तीन कुलपर्वत, ये सात विभाग

१ उ °खेत्तो तत्तो हेमपव्वदो, श °खेत्तो हेयमव्वदो. २ उ श रमगो, ब रमग. ३ ब कुंदरयकंवा, प कुंद-रयणकंठा. ४ प ब वेइक्कडि. ५ उ वरणइजलंतहोरा, प ब वरणइजलंतहारा, श चरणइजलंतहोए. ६ प ब णवदि.

पंचसया छव्वीसा विक्खंभा जोयणा समुद्दिट्टा । उणवीसदिमे भागे छच्चेव कला दु भरहस्स ॥ १०
धरणिद्धरो दु दुगुणो धरणिधरादो दु वसुमई दुगुणा[1] । एवं दुगुणा दुगुणा पव्वदखेत्ता मुणेयव्वा ॥ ११
जाव दु विदेहवंसो सत्त विभागा हवंति दुगुणा दु । तत्तो अद्धद्धखओ[2] जाव दु एरावदो वंसो ॥ १२
चत्तारिसदेगत्तरि चउदहजोयणसहस्स पंचकला । हिमगिरितडे वियाणसु आयामो भरहवंसस्स ॥ १३
जोयणअट्ठावीसा पंचसया तह य चउदहसहस्सा । एयारकला णेया भरहस्स दु होइ धणुपट्ठं ॥ १४
खेत्तादिकला दुगुणा खेत्तजुदा[4] तेसुं होइ इसुसंखा । धरणीधरणिधराणं जाव दु वरमंदिरे मज्झे ॥ १५
एक्कादीरूवुत्तर[5]अण्णोण्णगुणेहि हवइ जं लद्धं । रूवूणं आदिगुणं खेत्तादीणं कला णेया ॥ १६

उत्तरोत्तर दूने दूने तथा आगेके छह विभाग उत्तरोत्तर आधे आधे विस्तारवाले हैं; अत एव उनकी खण्डव्यवस्था इस प्रकार है— भरत क्षेत्र १ + हिमवान् २ + हैमवत ४ + महाहिमवान् ८ + हरि १६ + निषध ३२ + विदेह ६४ + नील ३२ + रम्यक १६ + रुक्मि ८ + हैरण्यवत ४ + शिखरी २ + ऐरावत १ = १९० । अब उक्त क्षेत्रों व पर्वतोंमेंसे अभीष्ट क्षेत्र या पर्वतके विस्तारको ज्ञात करनेके लिये जम्बू द्वीपके विस्तार १००००० योजनमें १९० का भाग देकर लब्धको अभीष्ट क्षेत्र या पर्वतके खण्डोंसे गुणा करना चाहिये । इस रीतिसे अभीष्ट विस्तारका प्रमाण प्राप्त हो जाता है । उदाहरण स्वरूप यदि हमें विदेह क्षेत्रका विस्तार ज्ञात करना है तो वह १०००००×६४/१९० = ३३६८४ ४/१९ इस प्रक्रियासे प्राप्त हो जाता है (देखिये तिलोयपण्णत्ती ४–१०२ आदि)।

भरत क्षेत्रका विष्कम्भ पांच सौ छव्वीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे छह भाग कहा गया है [१००००० ÷ १९० × १ = ५२६ ६/१९ योजन ।] ॥ १० ॥ [क्षेत्रसे] दूना पर्वत और पर्वतसे दूना क्षेत्र, इस प्रकार पर्वत और क्षेत्र उत्तरोत्तर दूने दूने जानना चाहिये ॥ ११ ॥ विदेह वर्ष तक सात विभाग दूने और उसके पश्चात् ऐरावत वर्ष तक आधी आधी हानि होती गयी है ॥ १२ ॥ हिमवान् पर्वतके तटमें भरतक्षेत्रका आयाम चौदह हजार चार सौ इकत्तर योजन और पांच कला (१४४७१ ५/१९) प्रमाण है ॥ १३ ॥ भरत क्षेत्रका धनुषपृष्ठ चौदह हजार पांच सौ अट्ठाईस योजन और ग्यारह कला (१४५२८ ११/१९) प्रमाण जानना चाहिये ॥ १४ ॥ क्षेत्रादिककी कलाओंको दुगुणा करके उनमें क्षेत्रके मिलानेपर [भरतक्षेत्रके कम करनेपर ?] मेरुपर्वतके मध्य भाग तक क्षेत्र व पर्वतोंका बाणप्रमाण आता है ॥१५॥ उदाहरण—हरिवर्षका विस्तार ८४२१ १/१९ = १६००००/१९ (कला); १६००००/१९ × २ − १००००/१९ = ३१००००/१९ = १६३१५ १५/१९ हरिवर्षका बाण ।

एकको आदि लेकर एक-एक अधिक अंकोंको परस्पर गुणित करनेसे जो प्राप्त हो उसमेंसे एक कम करके आदिसे गुणित करनेपर प्राप्त राशि प्रमाण क्षेत्रादिकोंकी कलाओंका प्रमाण जानना चाहिये (?) ॥ १६ ॥ द्वीप अर्थात् जम्बूद्वीपके आयामको एक सौ

---

१ प च धरणिधरादो. २ उ वसुमइ दुगुणा, श वसमुइ दुगुणा. ३ प च अद्धद्धवखऊ. ४ खेत्तज्जुदा तो(?). ५ उ श °त्तउत्तर, प घ दुत्तर.

णउदिसदेहि विभत्तं दीवायामं विहीण समसुण्णं[1]। खेत्तादीणं णेया कलसंखा[2] इच्छसंगुणिदा ॥ १७
इच्छागुण विण्णेया भरहादिविदेहवंसपरियंता। एक्कादिदुगुणदुगुणा सत्तेव य होंति णिद्दिट्ठा ॥ १८
उणवीसगुणं किच्चा पंचसया जोयणा य छव्वीसा। छच्चेव कलासहिया कलसंखा होइ भरहस्स ॥ १९
चदुसुण्णएक्कतियसत्तपण्णरसे[3]एक्कतीस तेसट्ठी। भरहादिकला णेया उणवीसगदेहिं[4] छेदेहिं ॥ २०

नव्बैसे विभक्त करके दोनों राशियोंमें शून्यको अपवर्तित कर इच्छासे गुणित करनेपर क्षेत्रादिकी कलाओंका प्रमाण जानना चाहिये ॥ १७ ॥ भरत क्षेत्रको आदि लेकर विदेह क्षेत्र तक क्रमसे एकको आदि लेकर दूने दूने सात ही गुणकार बतलाये गये हैं, उन्हें इच्छागुणकार जानना चाहिये ॥ १८ ॥

विशेषार्थ— भरत क्षेत्रसे दूना विस्तार हिमवान् पर्वतका, उससे दूना हैमवत क्षेत्रका, उससे दूना महाहिमवान् पर्वतका, इस प्रकार विदेह क्षेत्र तक चूंकि उत्तरोत्तर दूना दूना विस्तार होता गया है; अत एव भरत, हिमवान्, हैमवत, महाहिमवान्, हरि, निषध और विदेह, इन सात स्थानोंके विस्तारप्रमाणको लानेके लिये क्रमशः १, २, ४, ८, १६, ३२ और ६४, ये सात गुणकार बतलाये गये हैं। विदेह क्षेत्रसे आगे नील, रम्यक, रुक्मि, हैरण्यवत, शिखरी और ऐरावत, इन छह स्थानोंका विस्तार चूंकि उत्तरोत्तर आधा आधा होता गया है, अतः इन सबके विस्तारको लानेके लिये क्रमसे ३२, १६, ८, ४, २ और १ ये छह गुणकार जानना चाहिये। उक्त १३ स्थानोंके अंकोंका योग चूंकि १९० होता है, अत एव अभीष्ट स्थानके विस्तारप्रमाणको लानेके लिये जम्बूद्वीपके विस्तार (१००००० योजन) में १९० का भाग देकर लब्धको इच्छित गुणकारसे गुणित करना चाहिये। उदाहरण— हरिवर्ष क्षेत्रका विस्तार लानेके लिये $\frac{१००००\times१६}{१९} = \frac{१६००००}{१९}$ (कलाओंमें) = ८४२१ $\frac{१}{१९}$ हरिवर्षका विस्तार।

पांच सौ छब्बीस योजनोंको उन्नीससे गुणा करके उसमें छह कला और मिलानेपर भरतक्षेत्रकी कलाओंकी संख्या प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ चार शून्योंके ऊपर एक, तीन, सात, पन्द्रह, इकतीस और तिरेसठके रखनेपर उन्नीस भागोंसे क्रमशः भरतादिककी कलाओंका प्रमाण जानना चाहिये, अर्थात् चार शून्य और एक अंक प्रमाण ($\frac{१००००}{१९}$) भरत, चार शून्य और तीन अंक प्रमाण ($\frac{३००००}{१९}$) हिमवान्पर्वत, चार शून्य और सात अंक प्रमाण ($\frac{७००००}{१९}$) हैमवत, चार शून्य और पन्द्रह अंक प्रमाण ($\frac{१५००००}{१९}$) महाहिमवान् पर्वत, चार शून्य और इकतीस अंक प्रमाण $\frac{३१००००}{१९}$ हरिवर्ष, तथा चार शून्य और तिरेसठ ($\frac{६३००००}{१९}$) अंक प्रमाण निषध पर्वतकी कलाओंका प्रमाण जानना चाहिये ॥ २० ॥

१ ब समसुण्णं. २ प ब कलासंखा. ३ उ पणरस, श पणरस. ४ प ब गणेहिं.

धणुपट्ठबाहुचूलीजीवाणं इसुगणाण दीवस्स । उणवीसभागभजिदे जे लद्धा ते कला णेया ॥ २१
पणणउदा तेसट्ठा इगितीसा तिपणसत्ततियएक्का । इसु होंति विदेहादो उणवीसदिभागदसत्तहस्सगुणा ॥ २२
इसुरहिदं[3] विक्खंभं इसुसंगुणिदं पुणो वि चदुगुणिदं । घेत्तूण वग्गमूलं लद्धा जीवा समुद्दिट्ठा ॥ २३
छहि[4] गुणिदं इसुवग्गं पक्खेवेदूण जीववग्गम्मि । धणुपट्ठं णायव्वं लद्धं तव्वग्गमूलं[5] तु ॥ २४
विक्खंभपउंचाणं[6] वग्गविसेसस्स हवइ जं मूलं । अवणिय विक्खंभादो सेसस्स दलं इसुं जाणे ॥ २५

द्वीपके धनुषपृष्ठ, चाप, चूली, जीवा और बाण समूहोंको उन्नीस भागसे भाजित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी कलायें जानना चाहिये ॥ २१ ॥ उन्नीससे भाजित और दस हजारसे गुणित पंचानबै, तिरेसठ, इकतीस, तिगुने पांच अर्थात् पन्द्रह, सात, तीन और एक अंक प्रमाण क्रमसे विदेहादिके बाण होते हैं ॥ २२ ॥ $\frac{१००००\times ९५}{१९} = ५००००$ यो. विदेहका बाण, $\frac{१००००\times ६३}{१९} = ३३१५७\frac{१७}{१९}$ निषधका बाण, $\frac{१००००\times ३१}{१९} = १६३१५\frac{१५}{१९}$ हरिक्षेत्रका बाण, $\frac{१००००\times १५}{१९} = ७८९४\frac{१४}{१९}$ महाहिमवान्‌का बाण, $\frac{१००००\times ७}{१९} = ३६८४\frac{४}{१९}$ हैमवत क्षेत्रका बाण, $\frac{१००००\times ३}{१९} = १५७८\frac{१८}{१९}$ हिमवान्‌का बाण, $\frac{१००००\times १}{१९} = ५२६\frac{६}{१९}$ भरतका बाण ।

बाणसे रहित विष्कम्भको बाणसे गुणा करके पुनः चारसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसके वर्गमूल प्रमाण जीवा कही गई है ॥ २३ ॥ उदाहरण— इस प्रक्रियाके अनुसार हैमवत क्षेत्रकी जीवाका प्रमाण इस प्रकार होगा— बाण $\frac{७००००}{१९}$; विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$; $\frac{१९०००००}{१९} - \frac{७००००}{१९} = \frac{१८३००००}{१९}$; $\frac{१८३००००}{१९} \times \frac{७००००}{१९} = \frac{१२८१०००००००००}{३६१}$; $\frac{१२८१०००००००००\times ४}{३६१} = \frac{५१२४०००००००००}{३६१}$; इसका वर्गमूल $\frac{७१५८२२}{१९} = ३७६७४\frac{१६}{१९}$ हैमवत क्षेत्रकी जीवा ।

छहसे गुणित बाणके वर्गको जीवाके वर्गमें मिलाकर जो लब्ध हो उसका वर्गमूल निकालनेपर धनुषपृष्ठका प्रमाण जानना चाहिये ॥ २४ ॥ उदाहरण— हैमवत क्षेत्रका बाण $\frac{७००००}{१९}$; $\left(\frac{७००००}{१९}\right)^{२} \times ६ = \frac{२९४०००००००००}{३६१}$, जीवावर्ग $\frac{५१२४०००००००००}{३६१} + \frac{२९४०००००००००}{३६१} = \frac{५४१८०००००००००}{३६१}$; इसका वर्गमूल $\frac{७३६०७०}{१९} = ३८७४०\frac{१०}{१९}$ हैमवत क्षेत्रका धनुषपृष्ठ.

विष्कम्भ और प्रत्यंचा (जीवा) के वर्गको परस्पर घटाकर जो उसका वर्गमूल हो उसे विष्कम्भमेंसे घटाकर शेषको आधा करनेपर बाणका प्रमाण जानना चाहिये ॥ २५ ॥ उदाहरण— विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ यो., इसका वर्ग $\frac{३६१००००००००००}{३६१}$; जीवावर्ग $\frac{५१२४०००००००००}{३६१}$; $\frac{३६१०००००००००० - ५१२४०००००००००}{३६१} = \frac{३०९७६००००००००}{३६१}$ इसका वर्गमूल $\frac{१७६००००}{१९}$; $\frac{१९००००० - १७६००००}{१९} = \frac{१४००००}{१९}$; $\frac{१४००००}{१९} \div २ = \frac{७००००}{१९} = ३६८४\frac{४}{१९}$ हैमवत क्षेत्रका बाण ।

---

१ उ व धणुपठवाहु, श धणुपठचाहु. २ प व उणवीसविभाग. ३ उ उसुरहिदं, प व उसरहिदं. ४ प व छह. ५ उ प व श तं वग्गमूलं. ६ उ श पङ्च्चाणं, प व पडंच्चाणं.

चदुगुणइसूहि भजिदं जीवावग्गं पुणो वि इसुसहिदं । परिमंडलखेत्तस्स दु विक्खंभं[1] होइ णायव्वं ॥ २६
उग्गाढेहि विहूणं उग्गाढचउक्कएहिं अब्भत्थं । दीवस्स दु विक्खंभं जीवाकरणी वियाणाहि ॥ २७
छच्चेव य इसुवग्गं जीवाकरणीजुदं तु जं लद्धं । णेया तं धणुकरणी उद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं[2] ॥ २८
जीवावग्गविसोधियधणुवग्गादो हवेज्ज जं सेसं । बारसदलेहिं भजिदे इसुकरणी तं वियाणाहि ॥ २९
अणुगुरुचावविसेसं सेसं दलिऊण हवइ जं लद्धं । बोद्धव्वा पस्सभुजा[3] सव्वधणूणं विणिद्दिट्ठा ॥ ३०

चौगुणे बाणसे भाजित जीवाके वर्गमें पुनः बाणके मिलानेपर वृत्त क्षेत्रका विष्कम्भ जानना चाहिये ॥२६॥ उदाहरण— (१) भरत क्षेत्रका विष्कम्भ $\frac{१००००}{१९}$; उसकी जीवाका वर्ग $\frac{७५६०००००००}{३६१}$; $\frac{७५६०००००००}{३६१} \div (\frac{१००००}{१९} \times ४) + \frac{१००००}{१९} = \frac{१९०००००}{१९} = १०००००$ यो. जम्बू द्वीपका विस्तार। (२) हैमवत क्षेत्रका विष्कम्भ $\frac{७००००}{१९}$, जीवाका वर्ग $\frac{५१२४००००००००}{३६१}$; $\frac{५१२४००००००००}{३६१} \div (\frac{७००००}{१९} \times ४) + \frac{७००००}{१९} = \frac{१९०००००}{१९} = १०००००$ यो. वृत्त क्षेत्र जम्बू द्वीपका विस्तार।

अवगाह अर्थात् बाणसे रहित द्वीपके विष्कम्भको चौगुणे बाणसे गुणा करनेपर जीवाके वर्गका प्रमाण जानना चाहिये ॥ २७ ॥ उदाहरण— जम्बू द्वीपका विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$; हैमवत क्षेत्रका बाण $\frac{७००००}{१९}$; $\frac{१९०००००}{१९} - \frac{७००००}{१९} \times (\frac{७००००}{१९} \times ४) = \frac{५१२४००००००००}{३६१}$ हैमवत क्षेत्रकी जीवाका वर्ग।

छहगुणे बाणके वर्गको जीवाके वर्गमें मिलानेपर जो प्राप्त हो उतना जिनेन्द्र देवने धनुषके वर्गका प्रमाण कहा है ॥ २८ ॥ उदाहरण— हैमवत क्षेत्रकी जीवाका वर्ग $\frac{५१२४००००००००}{३६१}$; उसका बाण $\frac{७००००}{१९}$; $\frac{५१२४००००००००}{३६१} + ((\frac{७००००}{१९})^२ \times ६) = \frac{५४१८००००००००}{३६१}$ हैमवत क्षेत्रके धनुषका वर्ग।

धनुषके वर्गमेंसे जीवाके वर्गको घटाकर जो शेष रहे उसमें बारहके दल अर्थात् छहका भाग देनेपर बाणके वर्गका प्रमाण जानना चाहिये ॥२९॥ उदाहरण—हैमवत क्षेत्रके धनुषका वर्ग $\frac{५४१८००००००००}{३६१}$; उसकी जीवाका वर्ग $\frac{५१२४००००००००}{३६१}$; $\frac{५४१८००००००००}{३६१} - \frac{५१२४००००००००}{३६१} \div \frac{१२}{२} = \frac{४९००००००००}{३६१}$ हैमवत क्षेत्रके बाणका वर्ग।

अणु अर्थात् छोटे चापको बड़े चापमेंसे घटाकर शेषको आधा करनेपर जो प्राप्त हो उसे सब धनुषोंकी पार्श्वभुजा निर्दिष्ट की गई समझना चाहिये ॥ ३० ॥ उदाहरण— दक्षिण भरतका चाप $९७६६\frac{१}{१९}$; विजयार्धका चाप $१०७४३\frac{१५}{१९}$; $१०७४३\frac{१५}{१९} - ९७६६\frac{१}{१९} = ९७७\frac{१४}{१९}$; $९७७\frac{१४}{१९} \div २ = ४८८\frac{३३}{३८}$ विजयार्धकी पार्श्वभुजा।

---

१ उ श खेत्तस्स वि विक्खंभं. २ उ श जिणवरेहिंव ३ उ श पस्सब्भुजा, प ब पस्सभुजा.

जीवा गुरुअणुसुद्धा[1] सेसद्धं चूलिया समुद्दिट्ठा । जंबूदीवस्स तहा णायव्वा सव्वजीवाणं ॥ ३१
भरहेरावयमज्झे वेयड्ढा भूधरा समुत्तुंगा । रयदमया णायव्वा अणाइणिहणा समुद्दिट्ठा ॥ ३२
पणुवीसा उव्विद्धा[2] पण्णासा जोयणा दु विच्छिण्णा । छच्चेव य सक्कोसा अवगाढा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ३३
अडदाला सत्तसया णवयसहस्साणि जोयणायामा । बारसकलाविसेसो वेदड्ढाणं तु दक्खिणदो ॥ ३४
वीसा सत्तसदाणि य दसयसहस्साणि[3] उत्तरे पासे । बारह किंचूणकला पुव्वावरसलिलणिहिपुट्ठा ॥ ३५
चत्तारिसया णेया अडसीदा जोयणाणि पस्सभुजा[4] । वेदड्ढाण णगाण य सुद्धा सोलस कला होंति ॥ ३६
पंचेव जोयणसदा चउदसपरिहीणचूलिया णेया । भरहस्सेरवदस्सं[5] य वेदड्ढाणं समुद्दिट्ठा ॥ ३७
दसदसजोयणभागा उवरिं गंतूण गिरिवराण तहा । दो दो सेढी पवरा विच्छिण्णा दसदसा णेया ॥ ३८
दक्खिणवरसेढीए पण्णास पुरवरा समुद्दिट्ठा । णाणाविहरयणमया सट्ठी पुणु उत्तरे पासे ॥ ३९
विज्जाहराण णयरा अणाइणिहणा सहावणिप्पण्णा । रयणमया विण्णिसया सवेदिया तोरणाडोवा ॥ ४०

बड़ी जीवामेंसे छोटी जीवाको घटानेपर जो शेष रहे उसके अर्ध भाग प्रमाण जम्बू द्वीपकी सब जीवाओंका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ३१ ॥ उदाहरण— दक्षिण भरतकी जीवा ९७४८$\frac{१२}{१९}$, विजयार्धकी जीवा १०७२०$\frac{११}{१९}$; १०७२०$\frac{११}{१९}$ − ९७४८$\frac{१२}{१९}$ ÷ २ = ४८५$\frac{३७}{३८}$ विजयार्धकी चूलिका ।

भरत क्षेत्रके मध्यमें और ऐरावत क्षेत्रके मध्यमें उन्नत, रजतमय, अनादिनिधन वैताढ्य पर्वत कहे गये जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ ये वैताढ्य पर्वत पच्चीस योजन ऊंचे, पचास योजन विस्तीर्ण और एक कोश सहित छह योजन अवगाहसे सहित हैं ॥ ३३ ॥ दक्षिणकी ओर वैताढ्य पर्वतकी जीवाका प्रमाण नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन और बारह कला है ॥ ३४ ॥ उत्तर पार्श्वभागमें आयाम अर्थात् जीवाका प्रमाण दस हजार सात सौ बीस योजन और कुछ कम बारह कला है । उक्त पर्वत पूर्व-पश्चिम समुद्रको छूते हैं ॥ ३५ ॥ वैताढ्य पर्वतोंकी पार्श्वभुजा चार सौ अठासी योजन और सार्ध सोलह कला प्रमाण जानना चाहिये (देखिये गा. ३० का उदाहरण) ॥ ३६ ॥ भरत और ऐरावत क्षेत्रके वैताढ्योंकी चूलिका चौदह कम पांच सौ (४८६) योजन प्रमाण जानना चाहिये (देखिये गा. ३१ का उदाहरण) ॥ ३७ ॥ इन श्रेष्ठ पर्वतोंके ऊपर दस दस योजन जाकर दस दस योजन विस्तीर्ण दो दो उत्तम श्रेणियां हैं ॥ ३८ ॥ इनमेंसे दक्षिण श्रेणीमें पचास और उत्तर पार्श्वभागमें साठ श्रेष्ठ नगर कहे गये हैं । ये नगर नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित हैं ॥ ३९ ॥ ये विद्याधरोंके दो सौ नगर अनादि-निधन, स्वभावनिष्पन्न अर्थात् अकृत्रिम, वेदिकाओंसे सहित, और तोरणोंके आटोपसे युक्त हैं ॥ ४० ॥ उक्त नगर वन-

---

१ उ श सिद्धा, प व सुधी. २ उ श उव्विद्धा. ३ उ श दससयसहस्साणि. ४ उ श पस्सहुजा, ब परसहुजा. ५ उ श भरहस्स रेवदस्स, प व भरहेस्स रेवदस्स.

उववणकाणणसहिया पोक्खरिणीवाविवप्पिणसणाहा । जिणसिद्धभवणणिवहा को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ ४१
तत्तो दस उप्पइया दसजोयणवित्थडा[२] मुणेयव्वा । अभिजोगाणं णयरा णाणामणिकिरणपरिणामा ॥ ४२
रयणमयवेदिणिवहा वरगोउरभासुरा रयणचित्ता । मणिमयवरपासादा सव्वे सोहंति ते विमला ॥ ४३
वरकप्परुक्खणिवहा णाणाविहतरुगणेहिं कयसोहा । वावीतडायपउरा वरचेइयभवणसंछण्णा ॥ ४४
सोधम्मीसाणाणं देवाणं वाहणा सुरा[३] होंति । दोसु वि सेढीसु तहा देवा वररूवसंपण्णा ॥ ४५
जोयणपंचुप्पइया तत्तो अभिजोगपुरवरेहिंतो[४] । दसजोयणवित्थिण्णा वेदड्ढणगाण वरसिहरा ॥ ४६
तियसिंदचावसरिसा णिम्मलबालिंदुभासुराडोवा । वरवेदीपरिखित्ता मणितोरणभासुरा रम्मा ॥ ४७
तम्मि समभूमिभागे णाणामणिविप्फुरंतकिरणम्मि । होंति णव चेव कूडा कंचणमणिमंडिया दिव्वा ॥ ४८
पढमा य सिद्धकूडा पुव्वेण य होंति सव्वकूडाणं । बिदिया य भरहकूडा तदिया खंडप्पवादा य ॥ ४९
चउथा य माणिभद्दा वेदड्ढकुमार पंचमा कूडा । छट्ठा य पुण्णभद्दा तिमिसगुहा सत्तमा कूडा ॥ ५०
अट्ठम य भरहकूडा णवमं वेसमणं तुंगवरकूडा । छज्जोयण सक्कोसा उच्छेहा होंति ते सव्वे ॥ ५१
विक्खंभायामेण य छच्चेव य जोयणा सकोसा य । मूले हवंति कूडा वेदड्ढाणं समुद्दिट्ठा ॥ ५२
मज्झे चत्तारि हवे अड्ढादिज्जा य कोसपरिसंखा । उवरिं तिण्णेव भवे जोयणसंखा विणिद्दिट्ठा ॥ ५३

उपवनोंसे सहित; पुष्करिणी, वापी एवं वप्रिणियोंसे सनाथ, तथा जिनों व सिद्धोंके भवनसमूहसे संयुक्त हैं । इनका सम्पूर्ण वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥

विद्याधरश्रेणियोंसे दस योजन ऊपर जाकर वन-उपवनोंसे सहित, दस योजन विस्तृत और नाना मणियोंके किरणोंके परिणाम स्वरूप आभियोग्य देवोंके नगर हैं ॥ ४२ ॥ रत्नमय वेदिसमूहसे सहित, उत्तम गोपुरोंसे भास्वर, रत्नोंसे विचित्र और मणिमय उत्तम प्रासादोंसे संयुक्त वे सब निर्मल नगर शोभायमान हैं ॥ ४३ ॥ उक्त नगर उत्तम कल्पवृक्षोंके समूहसे सहित, अनेक प्रकारके तरुगणोंसे शोभायमान, प्रचुर वापियों व तालाबोंसे संयुक्त, और उत्तम चैत्यालयोंसे व्याप्त हैं ॥ ४४ ॥ इन दोनों ही श्रेणियोंमें रहनेवाले ये देव उत्तम रूप युक्त सौधर्म एवं ईशान इन्द्रके वाहन जातिके देव हैं ॥ ४५ ॥ उन अभियोगपुरोंसे पांच योजन ऊपर जाकर दस योजन विस्तीर्ण वैताढ्य पर्वतोंके उत्तम शिखर हैं ॥ ४६ ॥ इन्द्रधनुषके सदृश रमणीय वे शिखर निर्मल बाल चन्द्रके समान भास्वर, उत्तम वेदियोंसे वेष्टित, और मणितोरणोंसे शोभायमान हैं ॥ ४७ ॥ नाना मणियोंकी प्रकाशमान किरणोंसे संयुक्त उस समभूमिभागमें सुवर्ण एवं मणियोंसे मण्डित दिव्य नौ कूट हैं ॥ ४८ ॥ उनमें सब कूटोंके पूर्वकी ओरसे प्रथम सिद्धकूट, द्वितीय भरतकूट, तृतीय खण्डप्रपात, चतुर्थ माणिभद्र, पंचम वैताढ्यकुमारकूट, छठा पूर्णभद्र, सातवां तिमिश्रगुहकूट, आठवां भरतकूट और नौवां वैश्रवण नामक उन्नत उत्तम कूट है । ये सब कूट एक कोश सहित छह योजन ऊंचे हैं ॥ ४९-५१ ॥ वैताढ्य पर्वतोंके ये कूट विष्कम्भ व आयामसे भी मूलमें एक कोश सहित छह योजन, मध्यमें अढ़ाई कोश सहित चार योजन तथा ऊपर तीन योजन प्रमाण निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ५२-५३ ॥ उक्त कूटोंकी परिधियां

---

१ उ श उववणकाणणसहिया दस. २ उ श वितुडा. ३ उ श सुसुरा. ४ उ श पुरवरेहंतो, व पुरवरेहिं तो. ५ उ श तियमंद ६ उ श चउचा य माणिभद्दा, प चउतथा य मणिभद्दा, ब चउछा य माणमद्दा, ७ उ श वेदड्ढ ८ उ श वेणमण. ब पण्णासता.

मूलेसु होंति वीसा पण्णारस ऊणिया दु मज्झेसु । सिहरेसु णव विसेसा जोयणसंखा दु परिधीओ ॥ ५४
पासादवलयगोउरधवलामलवेदियापरिक्खित्ता । देवाण होंति णगरा वेदड्ढणगाण सिहरेसु ॥ ५५
कूडेसु होंति दिव्वा जिणभवणा विप्फुरंतमणिकिरणा । अमराण चारुभवणा कीडणसाला विसाला य ॥ ५६
मरगयमुणालवण्णा गोरोयणकमलकुसुमसंकासा । गोखीरसंखवण्णा भिण्णंजणसच्छहा पवरा ॥ ५७
ससिकुमुदहेमवण्णा असोयपुण्णायवउलसमतेया । वरवज्जणीलविद्दुमणाणाविहरयणपरिणामा ॥ ५८
गाउअ आयामेण य गाउदअद्धा हवंति विच्छिण्णा । गाउदचदुभागूणा उच्छेहा दिव्वजिणभवणा ॥ ५९
कंचणमणिपायारा अट्टालयरयणतोरणाढोवा । वलहीमंडवपउरा अणोवमा रूवसंठाणा ॥ ६०
वरवज्जकवाडजुदा गोउरदारेहिं सोहिया रम्मा । जिणसिद्धबिंबणिवहा अकिट्टिमा रयणपरिणामा ॥ ६१
भिंगारकलसदप्पणवरचामरमंडिया परमरम्मा । घंटापडायपउरा सुगंधगंधुद्धदा रम्मा ॥ ६२
लंवंतकुसुमदामा णाणाकुसुमोवहारकयसोहा । चारणमुणिगणसहिया तियसिंदणमंसिया रम्मा ॥ ६३
वज्जिंदणीलमरगयकक्केयणपउमरायकयसोहा । कंचणपवालवेरुलिणाणामणिरयणसंछण्णा ॥ ६४

मूलमें कुछ कम वीस योजन, मध्यमें कुछ कम पन्द्रह योजन तथा ऊपर साधिक नौ योजन प्रमाण हैं ॥ ५४ ॥ वैताढ्य पर्वतोंके शिखरोंपर प्रासादवलय, गोपुर और धवल एवं निर्मल वेदिकासे वेष्टित देवोंके नगर हैं ॥ ५५ ॥ कूटोंपर चमकते हुए मणिकिरणोंसे सहित दिव्य जिनभवन व देवोंके सुन्दर भवन और विशाल क्रीडनशालायें हैं ॥ ५६ ॥ ये जिनभवन मरकत व मृणालके सदृश वर्णवाले, गोरोचन व कमलपुष्पके सदृश; गोक्षीर व शंख जैसे वर्णवाले भिन्न अंजनके सदृश; चन्द्र, कुमुद व सुवर्णके समान वर्णवाले; अशोक, पुन्नाग व बकुलके सदृश तेजवाले [वनोंसे वेष्टित]; तथा उत्तम वज्र, नीलमणि, विद्रुम एवं नाना प्रकारके रत्नोंके परिणाम स्वरूप हैं ॥ ५७-५८ ॥ उक्त दिव्य जिनभवनोंका आयाम एक कोश, विस्तार आध कोश और उंचाई एक चतुर्थ भागसे कम एक कोश प्रमाण है ॥ ५९ ॥ उक्त जिनभवन सुवर्ण एवं मणिमय प्राकारोंसे सहित, अट्टालय व रत्नतोरणोंसे संयुक्त, प्रचुर छज्जों व मण्डपोंसे युक्त और अनुपम रूप व आकारवाले हैं ॥ ६० ॥ उक्त जिनभवन वज्रमय उत्तम कपाटोंसे युक्त, गोपुरद्वारोंसे शोभित, रमणीय, जिनबिम्ब व सिद्धबिम्बोंसे सहित, अकृत्रिम और रत्नोंके परिणाम रूप हैं ॥ ६१ ॥ ये नित्य जिनभवन भृंगार, कलश, दर्पण व उत्तम चामरोंसे मण्डित; अतिशय रमणीय, प्रचुर घंटा व पताकाओंसे सहित, सुगन्धसे व्याप्त, रमणीय, लटकती हुई पुष्पमालाओंसे संयुक्त, नाना कुसुमोंके उपहारसे शोभायमान, चारण मुनिगणोंसे सहित, इन्द्रोंसे नमस्कृत, रमणीय, वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन एवं पद्मराग मणियोंसे की गई शोभासे सम्पन्न सुवर्ण, प्रवाल व वैडूर्य आदि नाना प्रकारके मणियों व रत्नोंसे व्याप्त; भंभा, मृदंग, मर्दल,

१ उ श वण. २ उ श सिरेसु. ३ उ जण. ४ व विस्फुरंत, श वि पज्जरंत ५ प अमरा चारू°, व अमरा चार°. ६ व कुसम. ७ उ श गाउद ८ प रइय, व रइ्छ. ९ उ श सोहिय. १० व रेम. ११ गंधद्दुदा. १२ प व दामो. १३ श वेलि

भंभामुदिंगमद्दलजयघंटा[1]कंसतालसंजुत्ता । पडुपडहसंखकाहलवरदुंदुहिसद्दगंभीरा ॥ ६५
संगीयणट्टसाला अहिसेयसभावरा परमरम्मा । कीडणसाला विउला णाणाविहरूवसंठाणा ॥ ६६
पुण्णागणायचंपयअसोयवउलादिदिव्वरुक्खेहिं । उज्जाणेहिं समंता सोहंता णिच्चजिणभवणा ॥ ६७
कमलोयरवण्णाभा णिम्मलससिकिरणहारसंकासा । वियसियचंपयवण्णा णीलुप्पलसच्छहा केई[2] ॥ ६८
कमलुप्पलसंछण्णा पउमिणिसंडेहिं मंडिया दिव्वा । विज्जाहरसुरमहिया गरुडोरयजक्खकयपूया[3] ॥ ६९
अमलियकोरंटणिभा पारावयमोरकंठसंकासा । मरगयपवालवण्णा दिणयरकिरणप्पहा य वरा[4] ॥ ७०
वोसट्टरयणमाला मुत्तामणिहेमजालकयसोहा । गोसीसं[5]मलयचंदणकालायरु[6]धूमगंधड्ढा ॥ ७१
सुरइयदेवच्छंदा चीणंसुय[7]पट्टसुत्तणिवहेहिं । णाणाविहवण्णेहि य वत्थसुमालाहि सोहंता ॥ ७२
[8]बलिगंधपुप्फपउरा मणिमयवरदीवियादिदिप्पंता । णाणाविहरूवेहि य विहाणणिवहेहि सोहंति ॥ ७३
एवं वेदड्ढेसु य जिणभवणा[9] वण्णिदा समासेण । अवसेसाण[10] णगाणं एसेव[11] कमो मुणेयव्वो ॥ ७४

जयघंटा व कंसतालोंसे संयुक्त; पटु पटह, शंख, काहल एवं उत्तम दुंदभी वाजोंके शब्दसे गम्भीर; संगीतशाला, नृत्यशाला व अभिषेकसभा गृहोंसे अतिशय रमणीय; विस्तृत क्रीडनशालाओंसे सहित, नाना प्रकारके रूप व आकारोंवाले; तथा चारों ओर पुन्नाग, नाग, चम्पक, अशोक और वकुल आदि दिव्य वृक्षोंवाले, उद्यानोंसे शोभायमान हैं ॥ ६२–६७ ॥ इनमेंसे कितने ही कमलोदरवर्णकी आभावाले, कितने ही निर्मल चन्द्रकिरण एवं हारके सदृश, कितने ही विकसित चम्पकपुष्पके समान वर्णवाले, और कितने ही नील कमलके सदृश हैं ॥ ६८ ॥ कमल व उत्पलोंसे व्याप्त, पद्मिनीसमूहोंसे मण्डित, दिव्य, विद्याधरों एवं देवोंसे पूजित; गरुड, उरग एवं यक्षों द्वारा रची गई पूजाको प्राप्त; निर्मल कोरंट वृक्षके सदृश, कबूतर व मयूरके कण्ठके सदृश, मरकत व प्रवाल जैसे वर्णवाले, सूर्यकिरणोंके सदृश प्रभावले, श्रेष्ठ, विकसित रत्नमालाओंसे सहित; मुक्ता, मणि व सुवर्णजालसे की गई शोभाको प्राप्त; गोशीर, मलय चन्दन और कालागरुके धुएंके गन्धसे व्याप्त; नाना प्रकारके वर्णवाले चीनांशुक (रेशम), पट्ट (कोश) व सूतसे रचे गये देवच्छन्दसे सहित, वस्त्र एवं मालाओंसे शोभायमान; प्रचुर बलि, गंध एवं पुष्पोंसे युक्त और मणिमय उत्तम दीपादिकोंसे देदीप्यमान वे जिनभवन नाना प्रकारके रूपोंवाले साधनसमूहोंसे शोभायमान हैं ॥ ६९–७३ ॥ इस प्रकार वैताढ्य पर्वतोंपर स्थित जिनभवनोंका संक्षेपसे वर्णन किया गया है। यही क्रम शेष पर्वतोंपर स्थित जिनभवनोंका भी जानना चाहिये ॥ ७४ ॥

१ उ जयवंडा, श जयव्वडा. २ उ केइं. ३ श जक्खरचयपूया. ४ प किरणप्पहा यदा, ब किरणप्पहा यरा. ५ उ श गोसीर. ६ उ श कालायर. ७ उ वीणंसुय. ८ प-ब प्रत्योः 'बलिगंध...' इत्यादिगाथेयं नोपलभ्यते। ९ प वेदड्ढसु य जिणभवण, ब वेदड्ढसु ह जिमुवण. १० प ब अवसेसाणा. ११ ब यसेव.

छत्तत्तयसिंहासणवरचामरकुसुमवरिससंपण्णा । भामंडलादिसहिदा जिणपडिमाओ णमंसामि ॥ ७५
वेगाउयविस्थिण्णा दोसु वि पासेसु पव्वदायामा । वेदड्ढाणं णगाणं वणसंडा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ७६
वेगाउदउव्विद्धा पंचधणुस्सयपमाणविस्थिण्णा । णाणातोरणणिवहा वरवेदिविहूसिया रम्मा ॥ ७७
फणसंबतालदाडिमअसोयपुण्णायणायरुक्खेहिं । वरवउलतिलयचंपयकुंकुमकप्पूरणिवहेहिं ॥ ७८
एलातमालचंदणलवंगकक्कोलकुंदणिवहेहिं । णारंगतुंगलवलीसज्जज्जुणकुडयजादीहिं[1] ॥ ७९
पूगफलरत्तचंदण[2]धव[3]धम्मणणालिकेरकदलीहिं । आसत्थतालतिंदुगणग्गोहे[4]पलासपउरेहिं ॥ ८०
कंचणकयंबकेयइकणवीरकसायकुज्जयादीहिं । णाणावणगुंछेहिं[5] य उज्जाणवणा[6] विरायंति ॥ ८१
कल्हारकमलकंदलणीलुप्पलफुल्लियाहि विउलाहिं । सोहंति सरवरेहि य वप्पिणवावीहि पउराहि[7] ॥ ८२
सव्वेसु वणेसु तहा वितरदेवाण होंति वरणयरा । पायारगोउरजुया[8] णाणामणिरयणपासाया ॥ ८३
सत्ततला विण्णेया कंचणमणिरयणमंडिया दिव्वा । मणिगणजलंतथंभा णीलुप्पलकमलगब्भाहा[9] ॥ ८४

तीन छत्र, सिंहासन उत्तम चामर और कुसुमवृष्टिसे सम्पन्न तथा भामण्डलादिसे सहित जिनप्रतिमाओंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७५ ॥ वैताढ्य पर्वतोंके दोनों ही पार्श्वभागोंमें पर्वतोंके बराबर लंबे और दो कोश विस्तीर्ण वनखण्ड निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ७६ ॥ ये रम्य वनखण्ड दो कोश ऊंची, पांच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण, और नाना तोरणसमूहोंसे संयुक्त ऐसी उत्तम वेदिकासे विभूषित हैं ॥ ७७ ॥ ये उद्यानवन पनस, आम्र, ताल दाडिम, अशोक, पुन्नाग और नाग वृक्षोंसे; उत्तम वकुल, तिलक, चम्पक, कुंकुम और कर्पूर वृक्षोंके समूहोंसे; एला, तमाल, चन्दन, लवंग, कंकोल (शीतलचीनी) व कुंद वृक्षोंके समूहोंसे; नारंगी, तुंग (पुन्नाग), लवली, सर्ज, अर्जुन, कुटज व जाति (चमेली या जावित्र) के वृक्षोंसे; पूगफल (सुपाड़ी), रक्त चंदन, धव, धम्मण, नारियल, कदली, अश्वत्थ, ताल, तेंदू, न्यग्रोध, पलाश, कांचन (कचनार ?), कदंब, केतकी, कणवीर (कनेर), कषाय और कुज्जक आदि नाना वनवृक्षोंसे विराजमान हैं ॥ ७८–८१ ॥ ये वन कल्हार, कमल, कन्दल और नीलोत्पल फूलोंसे सहित; विपुल सरोवरों तथा प्रचुर वप्रिण (नहर) एवं वापियोंसे शोभायमान हैं ॥ ८२ ॥ सब वनोंमें प्राकार व गोपुरोंसे युक्त और नाना मणिमय एवं रत्नमय प्रासादोंसे सहित व्यन्तर देवोंके श्रेष्ठ नगर हैं ॥ ८३ ॥ उक्त व्यन्तरनगर सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे मण्डित; दिव्य मणिसमूहसे चमकते हुए स्तम्भोंसे सहित, तथा नीलोत्पल व कमलगर्भके समान आभासे संयुक्त सात तलोंवाले जानना चाहिये ॥ ८४ ॥ इनमेंसे कितने ही प्रासाद कुंकुमवर्ण,

---

१ उ कुडयसजाहीहि, व कुंडयजादीहिं, श कुडयजाहीहि. २ श पुंगफलरत्तयंदण. ३ उ घर, श घव. ४ उ किंदूमणलग्गोह, प किंदुमणग्गोह, व किंदुमणगोह, श किंदूमणलणोह. ५ उ श गच्छेहि. ६ उ उज्जाणविणा. ७ उ श वाविहि पउरेहि. ८ उ श गोउरजया, प व गोउरजुय. ९ प सब्भाहा, व छइप्ताहा.

केई कुंकुमवण्णा कुंदेंदुतुसारहारसंकासा । केई सिंदूराहा वियसियणीलुप्पलच्छाया ॥ ८५
सयवत्तगब्भवण्णा गोरोयणकुमुदजादिसंकासा । णिद्धंतकणयवण्णा दिणयरकिरणप्पभा केई ॥ ८६
सव्वे अकिट्टिमा[2] खलु जिणिंदभवणेहि सोहिया रम्मा । विंतरणयरा दिव्वा को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ ८७
अट्ठेव य उव्विद्धा[3] पंचासा जोयणा हवे दीहा । बारह वित्थारेण य महागुहा होंति दो दो दु ॥ ८८
पुव्वेण होंति तिमिसा खंडपवादा य होंति पच्छिमदो[4] । वरवज्जकवाडजुदा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ८९
जमलकवाडा दिव्वा छच्चेव य जोयणा दु वित्थिण्णा । अट्ठेव य उव्विद्धा[5] वेदड्ढाणं विणिद्दिट्ठा ॥ ९०
गंगादी सरियाओ[6] दूरेण य संकुडित्तु दाराणं । रंधेसु पइट्ठाओ णागिणियाओ जहा[7] धरणिं ॥ ९१
पण्णास समधियेर्या[8] गंतूणं जोयण्णाणि तेसु पुणो । रंधमुहणिग्गदाओ णागीव जहा बिलमुहादो[9] ॥ ९२
गंगासिंधू सरिया अट्ठेव य जोयणाणि[10] वित्थिण्णा । पव्वदगुहासु दिव्वा गच्छंतीओ विरायंति ॥ ९३
वणवेदीपरिखित्ता[11] वरतोरणमंडिया परमरम्मा । पविसित्तु वुत्तरेहि[12] य दक्खिणदारेहि णिग्गंति[13] ॥ ९४

कितने ही कुंद पुष्प, चन्द्र, तुषार व हारके सदृश, कितने ही सिन्दूरके समान कान्तिवाले, कितने ही विकसित नीलोत्पलके समान शोभावाले, कितने ही शतपत्र (कमल) के गर्भके समान वर्णवाले, कितने ही गोरोचन, कुमुद व जाति (चमेली) के सदृश, कितने ही निर्ध्रान्त अर्थात् निर्मल सुवर्णके समान वर्णवाले, तथा कितने ही सूर्यकिरणों जैसी प्रभासे सहित हैं। ये सब रमणीय दिव्य व्यन्तरनगर अकृत्रिम व जिनेन्द्रभवनोंसे शोभित हैं। इन नगरोंका समस्त वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ है ? ॥ ८५-८७ ॥ वैताढ्य पर्वतोंमें आठ योजन ऊंची, पचास योजन दीर्घ और बारह योजन विस्तृत दो दो महागुफायें हैं ॥ ८८ ॥ इनमें वज्रमय उत्तम कपाटोंसे संयुक्त एवं नाना मणियों व रत्नोंके परिणामरूप तिमिस्र गुफा पूर्वमें और खंडप्रपात गुफा पश्चिममें है ॥ ८९ ॥ वैताढ्योंकी उन उभय गुफाओंके दिव्य युगल कपाट आठ योजन ऊंचे और छह योजन विस्तीर्ण कहे गये हैं ॥ ९० ॥ जिस प्रकार नागिनियां पृथिवीमें प्रवेश करती हैं उसी प्रकार गंगादिक नदियां दूरसे ही संकुचित होकर उन द्वारोंके छेदोंमें प्रविष्ट हुई हैं ॥ ९१ ॥ उक्त नदियां गुफाओंमें पचास योजनसे कुछ अधिक जाकर बिलमुखसे नागिनीके समान गुफामुखसे निकली हैं ॥ ९२ ॥ आठ योजन विस्तीर्ण होकर पर्वतोंकी गुफाओंमें जाती हुई वे दिव्य गंगा-सिंधू नदियां शोभायमान होती हैं ॥ ९३ ॥ वन व वेदियोंसे वेष्टित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित और अतिशय रमणीय ये गंगा-सिंधू नदियां उत्तर द्वारोंसे प्रवेश करके दक्षिण द्वारोंसे बाहर निकलती हैं ॥ ९४ ॥ उनमेंसे प्रत्येक गुफामें दो दो योजन दीर्घ दो दो नदियां हैं, जो गंगा-सिंधूमें

---

१ उ णिग्घांत, श णिग्गंत. २ प ब अकट्टिमा. ३ उ उच्छिधा, श उत्थिदा. ४ उ श पश्चिमादो. ५ उ उच्छिद्धा, श उत्थिद्धा. ६ उ गंगादिसरीयाओ, प गंगादिं सरीयाओ, ब गंगादिं सरीयऊ, श गंगादिसरायाओ. ७ उ श जह. ८ उ श समिधिरेया. ९ उ मुरखादो, प श मुसादो. १० उ श जोयणाण. ११ उ पखित्ता, प ब श परिकत्ता. १२ उ श धुत्तेरहि, प ब वरेहि. १३ उ णिग्रंति.

एक्केक्कम्मि[1] गुहम्मि दु दो दो दु हवंति तत्थ[2] सरिदाओ । दो दो जोयणदीहा गंगासिंधूसु पविसंति ॥ ९५
वेदड्ढवरगुहेसु य पणुवीसं[3] जोयणाणि गंतूण । पुव्वावरायदाओ सरियाओ होंति णिद्दिट्ठा ॥ ९६
णगगुहकुंडविणिग्गयमणितोरणमंडिया परमरम्मा । वड्ढइरयणे[4]विणिम्मियसंकमपहुदीहिं[5] वित्थिण्णा ॥ ९७
वणवेदीपरिखित्ता[6] उम्मग्गणिमग्गसलिलणामाओ । सव्वेसिं णायव्वा वेदड्ढगुहाण सरिदाओ ॥ ९८
भरहस्स दु विक्खंभो विक्खंभ[7]विहूणरुप्पसेलस्स । सेसद्धं इसुं[8] जाणे बेसय अडतीसं[9] तिण्णि कला ॥ ९९
दक्खिणभरहे णेया उत्तरभरहे य होंति तावदिया । जोयणगणणं[10] णेया पमाणगणणेहिं[11] णिद्दिट्ठा ॥ १००
अडदाला सत्तसया णवयसहस्साणि[12] होंति णिद्दिट्ठा । दक्खिणभरहे जीवा बारसभागा य सविसेसा ॥ १०१
छावट्ठा सत्तसया णवयसहस्साणि जोयणा णेया । समहियएक्ककला पुणु दक्खिणभरहस्स धणुपट्ठं ॥ १०२
बावीसा सत्तसया दसय[13]सहस्साणि जोयणा णेया । बारस किंचूण कला उत्तरभरहस्स दीहत्तं[14] ॥ १०३

प्रवेश करती हैं ॥ ९५ ॥ वैताढ्य पर्वतोंकी उन उत्तम गुफाओंमें पचीस योजन जाकर पूर्व-पश्चिम आयत उक्त नदियां हैं, ऐसा निर्देश किया गया है ॥ ९६ ॥ पर्वतकी गुफाओंके कुण्डोंसे निकली हुई, मणितोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, वार्द्धई रत्नसे निर्मित संक्रम (पुल) आदिसे सहित, विस्तीर्ण और वनवेदियोंसे वेष्टित उन्मग्नसलिला व निमग्नसलिला नामक नदियां सब वैताढ्य पर्वतोंकी गुफाओंमें जानना चाहिये ॥ ९७–९८ ॥ भरतक्षेत्रके विस्तारमेंसे विजयार्धके विस्तारको कम करके शेषको आधा करनेपर $[(\frac{१००००}{१९} - \frac{९५०}{१९}) \div \frac{१}{२}] = \frac{४५२५}{१९} = २३८\frac{३}{१९}$ यो.) दो सौ अड़तीस योजन और तीन कला प्रमाण दक्षिण भरतका बाण (विस्तार) जानना चाहिये। इतना ही विस्तार उत्तर भरतका भी है । यह योजनोंकी संख्या प्रमाणगणकों द्वारा निर्दिष्ट की गई हैं ॥ ९९–१०० ॥ दक्षिण भरतकी जीवा नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन और बारह भागोंसे कुछ अधिक कही गयी है $[\sqrt{\frac{१९०००००}{१९} - \frac{४५२५}{१९} \times \frac{४५२५}{१९} \times ४} = ९७४८\frac{१२}{१९}]$ ॥ १०१ ॥ दक्षिण भरतका धनुपपृष्ठ नौ हजार सात सौ छयासठ योजन और एक कलासे कुछ अधिक जानना चाहिये $[\sqrt{\frac{१८५२७४}{१९} + (\frac{४५२५^{२}}{१९} \times ६)} = ९७६६\frac{१}{१९}]$ ॥ १०२ ॥ उत्तर भरत (विजयार्ध) की दीर्घता (जीवा) दश हजार सात सौ बाईस [बीस] योजन और बारह कला ($१०७२०\frac{१२}{१९}$) से कुछ कम जानना चाहिये ॥ १०३ ॥

१ उ श एक्कक्ककम्मि. २ उ श तस्स. ३ प ब पणवीसा. ४ प ब रयणि ५ उ प ब श पहदीह. ६ उ श परिक्खिन्ना, प ब परिक्खित्ता. ७ उ विक्खंभा. ८ प इंसु, ब यसु, श हसु. ९ प ब बेसइअडसीस १० उ प ब श गणणे. ११ उ प ब श गणणेहि. १२ प ब णवइ. १३ उ श दससय०, ब दसए०. १४ उ ब दीहत्वं, श दीहत.

तेदाल[1] सत्तसया दसयसहस्साणि पण्णरस भागा । किंचिविसेसेणधिया उत्तरभरहस्स धणुपट्ठं ॥ १०४
जोयणसयउव्विद्धा[2] पण्णासा वित्थडा समुद्दिट्ठा । वसहगिरिणामधेया कंचणमणिरयणपरिणामा ॥ १०५
वणवेदियपरिखित्ता णाणाविहतोरणेहिं कयसोहा । उज्जाणभवणणिवहा जिणचेइयमंडिया रम्मा ॥ १०६
चक्कहरमाणमहणा णाणाचक्कीण णामसंछण्णा । उत्तरभरहद्धेसु य मज्झिमखंडेसु ते होंति ॥ १०७
भरहस्स जहा दिट्ठा[3] तहेव एरावयस्स वोधव्वा । सव्वेसिं[4] खेत्ताणं एसेव कमो मुणेयव्वो ॥ १०८
जह खेत्ताणं दिट्ठा दीवाणं तह य होइ विण्णेया । वेदीणदीणगाणं वंसाणं वण्णणा तह यं[5] ॥ १०९
सव्वभरहाण णेया मज्झिमखंडेसु कालसमयाणि । छच्चेवं[6] होंति दिव्वा तहेव एरावदाणं तु ॥ ११०
सुसमसुसमा य सुसमा सुस्समदुसमा य होंति णिद्दिट्ठा । दुस्समसुसमा दुसमा दुस्समदुसमा य विण्णेया ॥ १११
चत्तारि सागरोवमकोडाकोडी हवंति[7] णिद्दिट्ठा । सुसमसुसमा य कालो बोद्धव्वो[8] आणुपुव्वीयं[9] ॥ ११२
सुसमा तिण्णेव हवे सुस्समदुसमा य विण्णि णिद्दिट्ठा । दुस्समसुसमा एक्का बादालसहस्सवरिसूणा ॥ ११३
दुस्समकालो णेओ इगिवीससहस्स हवइ परिसंखा । दुस्समदुसमस्स तहा इगिवीससहस्सवासाणं ॥ ११४

उत्तर भरत (विजयार्ध) का धनुषपृष्ठ दश हजार सात सौ तेतालीस योजन और पन्द्रह भागोंसे (१०७४३ $\frac{१५}{१९}$) कुछ अधिक है ॥ १०४ ॥ उत्तर भरतार्धोंमें मध्यम खण्डोंके भीतर सौ योजन ऊंचे, पचास योजन विस्तृत; सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके परिणामरूप; वनवेदीसे वेष्टित, नाना प्रकारके तोरणोंसे शोभायमान, उद्यानों एवं भवनोंके समूहसे सहित, जिनचैत्योंसे मण्डित, चक्रवर्तियोंके अभिमानको नष्ट करनेवाले, और नाना चक्रवर्तियोंके नामोंसे व्याप्त वृषभगिरि नामक रमणीय पर्वत हैं ॥ १०५-१०७ ॥ जैसे भरत क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है वैसे ही ऐरावतकी भी जानना चाहिये । शेष सब क्षेत्रोंका यही क्रम समझना चाहिये । अर्थात् ऐरावतका वर्णन भरतके समान, हैरण्यवतका वर्णन हैमवतके समान, रम्यकका वर्णन हरिके समान, तथा उत्तरकुरुका वर्णन देवकुरुके समान है ॥ १०८ ॥ जिस प्रकारसे जम्बूद्वीपादिक द्वीपोंके क्षेत्रोंका वर्णन किया गया है उसी प्रकार वेदी, नदी, पर्वत और क्षेत्रोंका भी वर्णन जानना चाहिये ॥ १०९ ॥ सब भरतक्षेत्रोंके मध्यम खण्डोंमें छह ही कालसमय जानना चाहिये । उसी प्रकार ऐरावत क्षेत्रोंके मध्यम खण्डोंमें भी दिव्य छह ही काल होते हैं ॥ ११० ॥ सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुषमा, दुषमसुषमा, दुषमा और दुषमसुषमा, ये उन छह कालोंके नाम जानना चाहिये ॥ १११ ॥ अनुक्रमसे सुषमसुषमा काल चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम, सुषमा तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम, सुषमदुषमा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दुषमसुषमा व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दुषमा काल इक्कीस हजार वर्ष तथा दुषमदुषमा काल भी इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण जानना चाहिये ॥ ११२-११४ ॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दोनोंमेंसे एक

१ उ श प तेदाल. २ व उछिद्धा. ३ प-व प्रत्योः १०८ तमगाथाया द्वितीय-तृतीय-चतुर्थचरणानि, १०९तमगाथायाश्च प्रथमचरणं नोपलभ्यते । ४ उ सव्वेसे, श प्रतौ त्रुटितं जातमेतत्. ५ उ श या. ६ उ श छव्वेव. ७ व वहंति. ८ उ प व श बोधव्वा. ९ उ श आणुपुवीणा.

सायरकोडाकोडी दससंगुण एक्ककालपरिसंखा । उवसप्पिणि अवसप्पिणि विण्णि वि वीसा हवे कप्पं[1] ॥ ११५
सव्वविदेहेसु तहा सवरपुलिंदाण पंचखंडेसु । एक्को चउत्थसमओ विज्जाहरसव्वणयरेसु ॥ ११६
उत्तरकुरूसु पढमो कालो सव्वेसु हवइ णिद्दिट्ठो । हेमवदेसु य तदिओ तहेव हेरण्णवासेसु ॥ ११७
हरिरम्मगवरिसेसु[2] य विदिओ कालो जिणेहि पण्णत्तो । सव्वाणं खेत्ताणं एसेव कमो मुणेयव्वो ॥ ११८
पढमम्मि कालसमए छच्चेव[3] य धणुसहस्सउत्तुंगा । तिण्णिपलिदोवमाऊ णराण णारीण बोद्धव्वा ॥ ११९
जमलजमला पसूया वरलक्खणवंजणेहि संजुत्ता । बदरपमाणाहारा अट्ठमभत्तेहि पारिंति ॥ १२०
विदियम्मि कालसमये चत्तारिसहस्स होंति चावाणि । बे पलिदोवम आऊ मणुयाणं दिव्वरूवाणं ॥ १२१
हरडाफलपरिमाणं आहारं दिव्वसादसंपण्णं । छट्ठमभत्तेण णरा भुंजंति य सादुकलिदाणि[4] ॥ १२२
तदियम्मि कालसमये बे चेव सहस्स होंति चावाणिं । आमलयमाणहारा चउत्थभत्तेण पारिंति ॥ १२३
णरणारिगणा तइया उत्तमरूवा कसायपरिहीणा । वरवइररिसहसंघडणा पलिदोवमआउगा सव्वे ॥ १२४

कालका प्रमाण दशसे गुणित एक कोड़ाकोड़ी सागर अर्थात् दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। इन दोनोंको मिलाकर वीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण एक कल्प होता है ॥ ११५ ॥ सब विदेहोंमें, शबर व पुलिन्दों (म्लेच्छों)के पांच खण्डोंमें, तथा विद्याधरोंके सब नगरोंमें एक चतुर्थ काल रहता है ॥ ११६ ॥ सब उत्तरकुरुओंमें प्रथम काल तथा हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रोंमें तृतीय काल निर्दिष्ट किया गया है ॥ ११७ ॥ हरिवर्ष और रम्यक वर्षोंमें जिन भगवान्के द्वारा द्वितीय काल कहा गया है। [अढ़ाई द्वीपोंके] सब क्षेत्रोंका यही क्रम समझना चाहिये ॥ ११८ ॥ पहिले कालके समयमें नर-नारियोंकी उंचाई छह हजार धनुष और आयु तीन पल्योपम प्रमाण जानना चाहिये ॥ ११९ ॥ इस कालमें युगल युगल स्वरूपसे उत्पन्न, उत्तम लक्षण व व्यंजनोंसे सहित, और बेरके बराबर आहार करनेवाले नर-नारी अष्टमभक्तसे अर्थात् तीन दिनके अन्तरसे भोजन करते हैं ॥ १२० ॥ द्वितीय कालके समयमें दिव्य रूपवाले मनुष्योंकी उंचाई चार हजार धनुष और आयु दो पल्योपम प्रमाण होती है ॥ १२१ ॥ इस कालमें मनुष्य हरड फलके बराबर दिव्य स्वादसे संपन्न आहारको षष्ठभक्त अर्थात् दो दिनके अन्तरसे ग्रहण करते हैं ॥ १२२ ॥ तृतीय कालके समयमें शरीरकी उंचाई दो हजार धनुष होती है। आंवलेके बराबर आहार करनेवाले मनुष्य वहां चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिनके अन्तरसे भोजन करते हैं ॥ १२३ ॥ उस समय नर-नारियोंके सब समूह उत्तम रूपसे सहित, कषायोंसे रहित, उत्तम वज्रमय शुभ संहनन अर्थात् वज्रर्षभनाराचसंहननसे युक्त और पल्योपम प्रमाण आयुके धारक होते हैं ॥ १२४ ॥ इन तीनों ही कालोंमें मनुष्योंके पूर्वकृत पुण्य कर्मोंके

---

१ प ब कप्पे. २ उ श वरसेसु. ३ उ कालसमपछचेव, ब कालसमयछचेव, श समपरथचेव. ४ उ सादुधु, ब साहु, श साधु.

तीसु वि कालेसु तहा णराण तरुसंभवा विउलसोक्खा । होंति वरविउलभोगा पुव्वकियसुकयकम्मेहिं ॥ १२५
मज्जवरतुरियअंगा भूसणतेयालया परमरम्मा । भायणभोयणरुक्खा पदीववरवत्थमल्लंगा ॥ १२६
मज्जंगदुमा णेया कादंवरि[1]सीधुमज्जमादीणि । खीरदधिसप्पिपाणा सुगंधसलिलाणि ते दिंति ॥ १२७
तूरंगदुमा णेया पडुपडहे[2]मुइंगझल्लरीसंखा । दुंदुभिभंभाभेरीकाहलघंटादि ते दिंति ॥ १२८
भूसणदुमा वि णेया कंठाकडिसुत्तणेउरादीया । वरहारकडयकुंडलतिरीडम[3]उडादिया दिंति ॥ १२९
जोइसदुमा वि णेया दिणयरकोडीण किरणसंकासा[4] । णक्खत्तचंदसूरा तारा[5]गहकिरणपडिवक्खा ॥ १३०
गिहअंगदुमा णेया पासाया सत्तभूमिया दिव्वा । पायारवलहिगोउररयणमया सव्वदा दिंति ॥ १३१
भायणदुमा वि णेया कंचणमणिणिम्मियाँ[6] थाला । भिंगारकलसगग्गरि[7]चरुपिठरादी[8] य ते दिंति ॥ १३२
भोयणदुमा वि णेया तित्तंबलकसाय[9]महुरसंजुत्ता । असणादिचदुवियप्पा अमियाहारा सया दिंति ॥ १३३
दीवंगदुमा णेया पत्ता[10]लफलकुसुमणिच्चपज्जलिया । दीवा इव पज्जलिया णिच्चुज्जोया समुत्तुंगा ॥ १३४

उदयसे कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न व अतिशय सुखकारक प्रचुर उत्तम भोगसामग्री प्राप्त होती है ॥ १२५ ॥ उक्त कालोंमें उत्तम मद्यांग, तूर्यांग, भूषणांग, तेजांग, आलयांग, भाजनांग भोजनांग, दीपांग, उत्तम वस्त्रांग और माल्यांग ये अतिशय रमणीय कल्पवृक्ष होते हैं ॥ १२६ ॥ जो कादम्बरी व सीधु आदि मद्यविशेषोंको; दूध, दही व घी रूप पेय पदार्थोंको; तथा सुगन्धित जलको दिया करते हैं उन्हें मद्यांग जातिके वृक्ष जानना चाहिये ॥ १२७ ॥ जो पटु पटह, मृदंग, झालर, शंख, दुदुंभी, भंभा, भेरी, काहल और घंटा आदिको देते हैं उन्हें तूर्यांग वृक्ष जानना चाहिये ॥ १२८ ॥ जो कंठा, कटिसूत्र नूपुर आदिक, उत्तम हार, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट आदिको देते हैं उन्हें भूषणांग वृक्ष जानना चाहिये ॥ १२९ ॥ करोड़ों सूर्योंकी किरणोंके सदृश तथा नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, तारा और ग्रहोंकी किरणोंके प्रतिपक्षी ज्योतिषवृक्ष जानना चाहिये ॥ १३० ॥ जो सर्वदा प्राकार, वलभी एवं गोपुरोंसे सहित रत्नमय सात भूमियोंवाले प्रासादोंको देते हैं उन्हें गृहांग द्रुम जानना चाहिये ॥ १३१ ॥ जो सुवर्ण एवं मणियोंसे निर्मित थाल, भृंगार, कलश, गागर, चरु (लोटा) और पिठर आदिको देते हैं उन्हें भाजन द्रुम जानना चाहिये ॥ १३२ ॥ जो सदा तिक्त, आम्ल, कषाय एवं मधुर रससे संयुक्त अशनादि (अन्न, पान, खाद्य, लेह्य) चार प्रकारके अमृतमय आहारको देते हैं उन्हें भोजन द्रुम जानना चाहिये ॥ १३३ ॥ जो पत्र फल एवं कुसमोंसे नित्य प्रज्वलित होते हुए जलाये गये दीपकोंके समान नित्य उद्योत रूप होते हैं उन ऊंचे वृक्षोंको दीपांग द्रुम जानना चाहिये ॥ १३४ ॥ जो नेत्र, अंशुक, चीन (चीनपट्ट),

१ प ब कादंवर. २ उ श पडय. ३ उ श वरहाखडयकुंडलातरडि. ४ प ब विरससंकासा. ५ प ब चंदतारा. ६ प ब मगिरयणगिम्मिया. ७ प ब गिग्गरि. ८ श पीठरादी. ९ उ श तित्तंवकलसाय, प तित्तवकसाय, ब वित्तवकसायं. १० उ श पत्ताला.

वत्थंगदुमा णेया णेत्तसुगचीणखोमदुगुलादिं[1] । वरपट्टसुत्तपउरा णाणावत्थाणि ते दिंति ॥ १३५
मल्लंगदुमा णेया चंपयपुण्णायणायकुसुमेहिं । वरपंचवण्णपउरा सुगंधमाला सया दिंति ॥ १३६
एवं ते कप्पदुमा णराण फलु[4] दिंति पुण्णवंताणं । देवोवणीय सव्वे दसंगभोगा समुद्दिट्ठा ॥ १३७
तीसु वि कालेसु तहा तिणाणि चउरंगुलाणि णिद्दिट्ठा । सुरहीणि कोमलाणि य दसद्धवण्णाणि[5] सोहंति ॥ १३८
धरणिधरा विण्णेया विद्दुममणिरयणकणयपरिणामा । दिव्वामोयसुगंधा[6] णाणाविहकप्पतरुणिवहा ॥ १३९
धरणी वि पंचवण्णा मरगयगल्लिंदणीलमणिणिवहा । वरपउमरायविद्दुमणिम्मलमणिकणयपरिणामा ॥ १४०
पोक्खरिणिवाविदीही वरणदियाओ य रयणसोवाणा । अमदमहुखीरपुण्णा मणिमयवालूहिं सोहंति ॥ १४१
सूवरसियालसुणहा तरच्छसीहा य सप्पसद्दूला । काका गिद्धादीया जीवा मंसासिणो णत्थि ॥ १४२
संखपिपीलि[7]यमक्कुणदंसामसया य विच्छियादीया । विगलिंदिया[8] य णत्थि दु सुसमादिएसुं[9] तिसु काले ॥ १४३
तीहि वि[10] कालेहि जुदा खेत्तेसु य बहुविहेसु रम्मेसु । जे उप्पज्जंति णरा ते संखेवेण वोच्छामि ॥ १४४

क्षौम और दुकूल आदि उत्तम रेशम और सूतके बने वस्त्रोंको देते हैं उन्हें वस्त्रांग द्रुम जानना चाहिये ॥ १३५ ॥ जो सदा चम्पक पुन्नाग एवं नाग वृक्षके पुष्पोंसे [निर्मित], उत्तम पांच वर्णोंसे युक्त सुगंधित मालाओंको देते हैं उन्हें माल्यांगद्रुम जानना चाहिये ॥ १३६ ॥ इस प्रकार दशांग भोगोंको देनेवाले वे सब देवोपुनीत कल्पवृक्ष पुण्यवान् मनुष्योंके लिये उनके पुण्यके फलको (सुख-सामग्री) देते हैं ॥ १३७ ॥ तीनों (सुषमसुषमा, सुषमा व सुषमदुषमा) ही कालोंमें चार अंगुल ऊंचे सुगंधित और दशार्ध अर्थात् पांच वर्णवाले कोमल तृण शोभायमान होते हैं ॥ १३८ ॥ उन कालोंमें विद्रुम, मणि, रत्न, एवं सुवर्णके परिणाम रूप; दिव्य आमोदसे सुगंधित और नाना प्रकारके कल्पवृक्षोंके समूहसे युक्त पर्वत होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३९ ॥ इन कालोंमें पांच वर्णवाली पृथिवी मरकत, गल्ल एवं इन्द्रनील मणियोंके समूहसे युक्त और उत्तम पद्मराग, विद्रुम, निर्मल मणि एवं सुवर्णके परिणाम रूप होती है ॥ १४० ॥ उस समय रत्नमय सोपानोंसे युक्त तथा अमृत, मधु व दूधसे परिपूर्ण; पुष्करिणी, वापी, दीर्घिका और उत्तम नदियां मणिमय वालुओंसे शोभायमान होती हैं ॥ १४१ ॥ इन कालोंमें शूकर, शृगाल, कुत्ता, तरक्ष, सिंह, सर्प, शार्दूल, काक और गृद्ध आदिक मांस-भोजी जीव नहीं होते हैं ॥ १४२ ॥ दो वार सुषम अर्थात् सुषमसुषम आदि तीन कालोंमें शंख, पिपीलिका, मत्कुण, दंशमशक और विच्छु आदिक विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं ॥ १४३ ॥ इन तीनों ही कालोंसे युक्त बहुत प्रकारके रमणीय क्षेत्रोंमें जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं उनकी संक्षेपसे प्ररूपणा करते हैं ॥ १४४ ॥ उन कालोंमें मृदुता एवं आर्जवसे

१ उ श वत्तुंग. २ श वीणखोम. ३ उ श दुगुल हि. ४ प ब गरा फलं ५ उ श दसद्धाविण्णाणि. ६ ब सुगंधी. ७ उ श पिपीणिय. ८ उ प ब श विगलंदिया. ९ प ब णत्थि दुसुमादीएसु. १० उ प ब श तीहि मि.

मिदुमज्जवसंपण्णा मंदकसाया विणीयसीला य[१]। कोधमदमायहीणा उप्पज्जंति य णरा तेसु ॥ १४५
आहारदाणणिरदा जदीसु वरविविहजोगजुत्तेसु। संजमतवोधणेसु य णिग्गंथेसु य गुणधरेसु ॥ १४६
चउविहदाणं भणियं तिविहं पत्तं जिणेहि णिद्दिट्ठं। दाऊण पत्तदाणं अकम्मभूमीसु जायंति ॥ १४७
आहारअभयदाणं आगमदाणं च ओसहपदाणं। संखेवेणुद्दिट्ठं चउविहदाणं मुणिवरेहिं ॥ १४८
साहू उत्तमपत्तं मज्झिमपत्तं तु सावया णेया। अविरदसम्मादिट्ठी जहण्णपत्तं समुद्दिट्ठं ॥ १४९
[४]अवाससोसियतणू णिस्संगो कामकोहपरिहीणो। मिच्छत्तसंसिदमणो णायव्वो सो अपत्तो त्ति ॥ १५०
उववाससोसियतणू णिस्संगो कामकोहपरिहीणो। सम्मत्तसंसिदमणो णायव्वो उत्तमो[५] पत्तो ॥ १५१
एवं पत्तविसेसं दाणं दाऊण तेसु जायंति। अणुमोदणेण केई मणुया तिरिया य विण्णेया ॥ १५२
जे कम्मभूमिजादा ते[६] तेसु हवंति भोगभूमीसु। संपुण्णचंदवयणा समचउरसरीरसंठाणा ॥ १५३
उववज्जिदूण जुवला उणवण्णदिणेहि जोव्वणा होंति। सव्वकलापत्तट्ठा वरलक्खणभूसियसरीरा ॥ १५४

....

मंदकषायी विनीत स्वभाववाले तथा क्रोध, मद व मायासे रहित मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥१४५॥ जो मनुष्य उत्तम व विविध योग अर्थात् समाधिसे युक्त, संयम एवं तप रूप धनसे सहित और [मूल व उत्तर] गुणोंको धारण करनेवाले ऐसे निर्ग्रन्थ यतियोंके लिये आहारदान देनेमें निरत रहते हैं वे उन भोगभूमियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १४६ ॥ जिन भगवान्‌ने चार प्रकारका दान और तीन प्रकारके पात्र कहे हैं। मनुष्य पात्रदान देकर अकर्मभूमियों (भोगभूमियों) में उत्पन्न होते हैं ॥ १४७ ॥ मुनिवरोंने आहारदान, अभयदान, शास्त्रदान और औषधदान, इस प्रकार संक्षेपसे चार प्रकारका दान कहा है ॥ १४८ ॥ साधुओंको उत्तम पात्र और श्रावकोंको मध्यम पात्र जानना चाहिये। अविरतसम्यग्दृष्टिको जघन्य पात्र कहा गया है ॥ १४९ ॥ उपवासोंसे शरीरको कृष करनेवाले, परिग्रहसे रहित, काम-क्रोधसे विहीन, परन्तु मनमें मिथ्यात्व भावको धारण करनेवाले जीवको अपात्र [कुपात्र] जानना चाहिये ॥ १५० ॥ उपवासोंसे शरीरको कृष करनेवाले, परिग्रहसे रहित, काम-क्रोधसे विहीन और मनमें सम्यक्त्व भावको धारण करनेवाले जीवको उत्तम पात्र जानना चाहिये ॥ १५१ ॥ इस प्रकार कितने ही मनुष्य व तिर्यंच पात्रविशेषको दान देकर और कितने ही उसकी अनुमोदनासे उन भोगभूमियोंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १५२ ॥ जो जीव कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुए हैं वे उन भोगभूमियोंमें पूर्ण चन्द्रके समान मुखसे सहित और समचतुरस्रशरीरसंस्थानसे युक्त होते हैं ॥ १५३ ॥ भोगभूमियोंमें युगल स्वरूपसे उत्पन्न होकर ये जीव उनंचास दिनोंमें यौवनसे युक्त, सब कलाओंके रहस्यको प्राप्त और उत्तम लक्षणोंसे भूषित शरीरके धारक हो जाते हैं ॥ १५४ ॥ भिन्न इन्द्रनील मणिके समान केशोंवाले, अभिनव लावण्य-

....

१ उ श विदु. २ उ श या. ३ प ब अविरह. ४ प-बप्रत्योर्नोपलभ्यते गाथेयम्। ५ ब श उत्तिमो. ६ प ब ति. ७ उ श समचउरंसासरीर.

मिणिंणदणीलकेसा अभिणवलायण्णरूवसंपण्णा । सुहसायरमज्झगया णीलुप्पलसुरहिणीसासा ॥ १५५
रोगजरापरिहीणा णवणागसहस्सविउलबलजुत्ता । आरत्तकुमुदचलणा णवचंपयकुसुमगंधड्ढा ॥ १५६
दिव्वामलमउडधरा हारंगयकडयतुडियकयसोहा । वरचंदणाणुलित्ता मणिकुंडलमंडियागंडा ॥ १५७
तिवलीतरंगमज्झा आहरणविहूसिया परमरूवा । भोत्तूणं दिव्वभोगे सव्वे देवत्तणमुविंति ॥ १५८
छुहजिंभणेहि मणुया मरिऊणं तत्थ भोगभूमीसु । भवणवइवाणविंतरजोइसदेवेसु गच्छंति ॥ १५९
जे पुण सम्मादिट्ठी देवेहिं विबोहिया हवे तेसु । ते कप्पवासभवणे उप्पज्जंती ण अण्णत्थ ॥ १६०
तिरिया वि तेसु णेया जुवला जुवला हवंति णिद्दिट्ठा । सरला मंदकसाया णाणाविहजादिसंजुत्ता ॥ १६१
गयवरसीहतुरंगा हरिणा रोज्झा य सूवरा महिसा । वाणरगवेडजुवला वयवग्घतरच्छयाईया ॥ १६२
सुककोकिलाण जुयला पारावयहंसकुररकारंडा । किंजक्कचक्कवाया सिहिसारसकुंचयादीया ॥ १६३
जह मणुयाणं भोगा तह तिरियाणं वियाण सव्वाणं । आउबलभोगरिद्धी समासदो होइ णिद्दिट्ठा ॥ १६४

रूपसे सम्पन्न, सुख-समुद्रके मध्यको प्राप्त, नील उत्पल जैसी सुगंधित निश्वाससे सहित, रोग व जरासे रहित, नौ हजार हाथियोंके बराबर महान् बलसे संयुक्त, किंचित् रक्त वर्ण कमलके समान चरणोंवाले, नवीन चम्पकके फूल जैसी गंधसे युक्त, दिव्य एवं निर्मल मुकुटके धारक; हार, अंगद, कटक और त्रुटिक (हाथका आभरणविशेष) से की गई शोभाको प्राप्त, उत्तम चन्दनसे अनुलिप्त, मणिमय कुण्डलोंसे मंडित कपोलोंवाले, मध्य भागमें त्रिवली रूप तरंगोंसे संयुक्त, आभरणोंसे विभूषित और उत्तम रूपके धारक वे सब जीव दिव्य भोगोंको भोगकर देव पर्यायको प्राप्त करते हैं ॥ १५५-१५८ ॥ वहां भोगभूमियोंमें मनुष्य (नर-नारी क्रमशः) क्षुत अर्थात् छींक और जृम्भाके साथ मरकर भवनपति, वानव्यन्तर और ज्योतिष देवोंमें जाते हैं ॥ १५९ ॥ परन्तु उनमें जो जीव देवों द्वारा प्रबोधको प्राप्त होकर सम्यग्दृष्टि होते हैं वे कल्पवासी देवोंके विमानमें उत्पन्न होते हैं, अन्यत्र (भवनवासी आदिकोंमें) नहीं उत्पन्न होते ॥ १६० ॥ उन भोगभूमियोंमें सरल, मन्दकषायी और नाना प्रकारकी जातियोंसे संयुक्त उत्तम गज, सिंह, तुरंग, हरिण, रोझ, शूकर, महिष, वानर, और गवेलक (भेड़) इनके युगल; वृक, व्याघ्र व तरक्ष आदिके तथा शुक व कोयलके युगल; पारावत, हंस, कुरर, कारण्ड, किंजक्क, चक्रवाक, मयूर, सारस और क्रौंच आदिक तिर्यंच भी युगल-युगल स्वरूपसे होते हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ १६१-१६३ ॥ वहां जैसे मनुष्योंके भोग होते हैं वैसे ही सब तिर्यंचोंके भी जानना चाहिये। इनकी आयु, बल, भोग व ऋद्धिकी संक्षेपसे प्ररूपणा की गई है ॥ १६४ ॥ सब ही

---

१ उ लायण, श लावण. २ उ श तवली. ३ उ श सोत्तूण. ४ उ वरवग्ग श वरवग. ५ उ श हरर. ६ श सामर. ७ उ श सघाणं.

होंति य मिच्छादिट्ठी सासणमिस्सा[1] य अविरदा चेव । चत्तारि गुणट्ठाणा सव्वेसु वि भोगभूमीसु ॥ १६५

तदिओ दु कालसमओ असंखदीवे[2] य होंति णियमेण । मणुसुत्तरादु परदो णगिंदवरपव्वदो[3] णामं[4] ॥ १६६

भूधरणगिंदणामो सयंभुरमणम्मि दीवमज्झम्मि । हवइ मणुसोत्तरो विय पोक्खरवरदीवमज्झम्मि ॥ १६७

एदम्मि मज्झभागे जुवला जुवला तिरिक्खजादीया । लायण्णरूवं[5]कलिया हुंति हु कम्माणुभावेणं[6] ॥ १६८

पलिदोवमाउगा ते अमदाहारा[7] कसायपरिहीणा । कप्पतरुजणियभोगा सव्वे देवत्तणमुविंति ॥ १६९

भूमितण[8]रुक्खपव्वदसरसरिपोक्खरिणिदीहियादीणि । जह वण्णियं दु पुव्वं तह एत्थ वि वण्णणा[9] सयला ॥

दीवाण समुद्दाण य पायारा अट्ठजोयणुव्विद्धा । चउगोउरसंजुत्ता णाणामणिरयणपरिणामा ॥ १७१

वणवेदियपरिखित्ता मणितोरणमंडिया परमरम्मा । उववणकाणणसहिया दीवसमुद्दा विरायंति ॥ १७२

एदेसु विणिद्दिट्ठो जिणभवणविहूसिएसु रम्मेसु । सुस्समदुस्समो कालो अवट्ठिदो सयलदीवेसु ॥ १७३

जलणिहिसयंभुरवणे सयंभुरवणस्स दीवमज्झम्मि । भूहरणगिंदं[10]परदो दुस्समकालो समुद्दिट्ठो ॥ १७४

देवेसु सुसमसुसमो णिरए अइदुस्समो हवइ कालो । छच्चेव कालसमया तिरिक्खमणुआण णिद्दिट्ठा ॥ १७५

भोगभूमियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरत- [सम्यग्दृष्टि], ये चार गुणस्थान होते हैं ॥१६५॥ मानुषोत्तर पर्वतसे आगे नगेन्द्र (स्वयम्प्रभ) पर्वत तक असंख्यात द्वीपोंमें नियमतः तृतीय कालका समय रहता है ॥ १६६ ॥ जिस प्रकार पुष्करवर द्वीपके मध्यमें मानुषोत्तर पर्वत है, उसी प्रकार स्वयंभूरमण द्वीपके मध्यमें नगेन्द्र नामक पर्वत है ॥ १६७ ॥ [मानुषोत्तर और नगेन्द्र पर्वतके] इस मध्यभागमें कर्मके प्रभावसे लावण्यमय रूपसे युक्त तिर्यंच जातिके अनेक युगल हैं ॥ १६८ ॥ पल्योपम प्रमाण आयुवाले, अमृतभोजी, कषायोंसे रहित और कल्प वृक्षोंसे उत्पन्न भोगोंसे युक्त वे सब तिर्यंच जीव देव पर्यायको प्राप्त होते हैं ॥१६९॥ भूमि, तृण, वृक्ष, पर्वत, तालाब, नदी, पुष्करिणी और दीर्घिका आदिकों-का जैसा पूर्वमें वर्णन किया गया है वैसा सब वर्णन यहांपर भी करना चाहिये ॥ १७० ॥ द्वीप और समुद्रोंके प्राकार (जगती) आठ योजन ऊंचे, चार गोपुरोंसे संयुक्त और नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप होते हैं ॥ १७१ ॥ वनवेदियोंसे वेष्टित, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय और वन-उपवनोंसे सहित द्वीप-समुद्र विराजमान हैं ॥ १७२ ॥ जिनभवनोंसे विभूषित इन समस्त रमणीय द्वीपोंमें सुषमदुषमा काल अवस्थित कहा गया है ॥ १७३ ॥ नगेन्द्र पर्वतके परे स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्रमें दुषमा काल कहा गया है ॥ १७४ ॥ देवोंमें सुषमसुषमा, नारकियोंमें अतिदुषमा और तिर्यंच-मनुष्योंके छहों कालसमय कहे गये हैं

१ उ श सासणमिच्छा य, प ब सासणमिस्सा ह. २ [असंखदीवेसु होदि]. ३ प ब णगिंदपव्वदो. ४ उ श जामा. ५ उ श लायसरूव. ६ प ब श कम्माणभावेण. ७ उ श अवदाहार. ८ उ श तण. ९ प ब वण्णणा. १० उ श णिगिंद.

मणुसुत्तरादु अंतो माणुसखेत्तम्मि छव्विहो कालो । भरहेसु रेवदेसु[1] य समासदो होइ णिद्दिट्ठो ॥ १७६
चउत्थम्मि कालसमये णराण उक्कस्सदेहपरिमाणं । पंचसयदंडमेत्ता जहण्ण सत्तेव रयणीओ ॥ १७७
आऊणि पुव्वकोडी उक्कस्सं होंति ताण मणुवाणं । वीसुत्तरसयवासा जहण्णआऊ समुद्दिट्ठा ॥ १७८
एदम्मि कालसमये तित्थयरा सयलचक्कवट्टीयो[2] । बलदेववासुदेवा पडिसत्तू ताण जायंति ॥ १७९
अरहंतपरमदेवा चउवीसा पाडिहेरसंजुत्ता । पंचमहाकल्लाणा अइसयचउतीससंपण्णा ॥ १८०
बारहवरचक्कधरा चउदसरयणाहिवा महासत्ता । छक्खंडभरहणाहा णवणिहिअक्खीणवरकोसा ॥ १८१
संखिंदुकुंदवण्णा णवबलदेवा अणंतबलजुत्ता । हलरयणभूसियकरा उत्तमभोगा महातेया ॥ १८२
भरहद्धखंडणाहा णव चेव य वासुदेवचक्कहरा । सत्तविहरयणणाहा णीलुप्पलसंणिभसरीरा ॥ १८३
णीलुप्पलसच्छाया तिखंडभरहाहिवा महासत्ता । णव चेव समुद्दिट्ठा पडिसत्तू वासुदेवाणं ॥ १८४
रुद्दा य कामदेवा गणहरदेवा य चरमदेहधरा । दुस्समसुसमे काले उप्पत्ती ताण[5] बोद्धव्वा ॥ १८५

॥ १७५ ॥ मानुषोत्तर पर्यन्त मानुषक्षेत्रके भीतर भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें संक्षेपसे छह प्रकारका काल कहा गया है ॥ १७६ ॥ चतुर्थ कालके समयमें मनुष्योंका उत्कृष्ट देहप्रमाण पांच सौ धनुष मात्र और जघन्य सात ही रत्नि होता है ॥ १७७ ॥ चतुर्थ कालमें उन मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटि और जघन्य आयु एक सौ बीस वर्ष प्रमाण कही गयी है ॥ १७८ ॥ इस कालके समयमें तीर्थंकर, सकलचक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और उनके (वासुदेवोंके) प्रतिशत्रु उत्पन्न होते हैं ॥ १७९ ॥ इसी कालमें प्रातिहार्योंसे संयुक्त, पांच महाकल्याणोंसे सहित और चौंतीस अतिशयोंसे सम्पन्न चौबीस अरहन्त परमदेव (तीर्थंकर) होते हैं ॥ १८० ॥ चौदह रत्नोंके अधिपति, महाबलवान्, छह खण्ड रूप भरतक्षेत्रके स्वामी, नौ निधियोंसे सहित और अविनश्वर उत्तम कोष (खजाना) से संयुक्त श्रेष्ठ बारह चक्रधर होते हैं ॥ १८१ ॥ शंख, चन्द्र व कुन्द पुष्पके समान वर्णवाले; अनन्त बलसे युक्त, हाथमें हल रत्नको धारण करनेवाले एवं उत्तम भोगोंसे संयुक्त महातेजस्वी नौ बलदेव होते हैं ॥१८२॥ भरत क्षेत्रके आधे (तीन) खण्डोंके अधिपति, सात प्रकारके रत्नोंके स्वामी, नील कमलके समान वर्णवाले शरीरसे सहित और चक्रको धारण करनेवाले (अर्धचक्री) नौ वासुदेव होते हैं ॥ १८३ ॥ नील कमलके समान कान्तिवाले, तीन खण्ड रूप भरतक्षेत्रके अधिपति और महाबलवान् नौ वासुदेवोंके नौ ही प्रतिशत्रु कहे गये हैं ॥ १८४ ॥ रुद्र, कामदेव, गणधरदेव और जो चरमशरीरी मनुष्य हैं उनकी उत्पत्ति दुषमसुषमा कालमें जानना चाहिये ॥ १८५ ॥ दुषमाकालके आदिमें मनुष्य सात हाथ ऊंचे

---

१ श खेदेसु. २ उ चक्कवादीया, श चक्कावादीया. ३ उ श सरिकंद. ४ उ श णभ. ५ ब श ताम.

दुस्समकालादीए माणुसयो[1] सत्तहत्थउस्सेधा । वीसुत्तरसयवासा परमाऊ ताण णिद्दिट्ठा ॥ १८६
पंचमकालवसाणे आऊ सयवासं[2] होंति परिसंखा । अद्धुट्ठा[3] रयणीओ सरीरपरिमाण णिद्दिट्ठा ॥ १८७
दुस्समदुसमे मणुया अद्धुट्ठा हत्थ देहउस्सेधा[4] । परमाऊ वासयया[5] कालादीए समुद्दिट्ठा ॥ १८८
छट्ठमकालवसाणे सोलसवासाणि होइ परमाऊ । एया रयणी णेया उच्छेहं[6] सव्वमणुयाणं ॥ १८९
पढमे बिदिये तदिये काले जे होंति माणुसा पवरा[7] । ते अवमिच्चुविहूणा एयंतसुहेहि संजुत्ता ॥ १९०
चउथे पंचमकाले मणुया सुहदुक्खसंजुदा णेया । छट्ठमकाले सव्वे णाणाविहदुक्खसंजुत्ता ॥ १९१
चउथे पंचमकाले केइ णरा दिव्वरूवसंपण्णा । बत्तीसलक्खणधरा णीलुप्पलसुरहिणीसासा ॥ १९२
संपुण्णचंदवयणा मत्तमहागयवरिंदमारूढा । धवलादवत्तचिण्हा सियचामरधुव्वमाणसव्वंगा ॥ १९३
रंगंतवरतुरंगा वियडघडा गुलगुलंतगज्जंता । रहवरफुरंतणिवहा बहुजोहणिरुद्धसंचारा ॥ १९४
हारविराइयवच्छा णाणामणिविप्फुरंतमणिमउडा । केऊरभूसियकरा वरकुंडलमंडियागंडा ॥ १९५
जररोगसोगहीणा वियसियसयवत्तगब्भसंकासा । दीसंति दिव्वमणुया पुव्वं[10] सुकएहिं कम्मेहिं ॥ १९६

होते हैं । उस समय उनकी उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष प्रमाण कही गयी है ॥ १८६ ॥ पंचम कालके अन्तमें आयु सौ [बीस ?] वर्ष और शरीरका प्रमाण साढ़े तीन रत्नि कहा गया है ॥ १८७ ॥ दुषमदुषमा कालके आदिमें मनुष्य साढ़े तीन हाथ प्रमाण शरीरोत्सेधसे सहित और सौ [बीस ?] वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयुवाले कहे गये हैं ॥ १८८ ॥ छठे कालके अन्तमें सब मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु सोलह वर्ष और उंचाई एक रत्नि प्रमाण जानना चाहिये ॥ १८९ ॥ प्रथम, द्वितीय और तृतीय कालमें जो श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं वे अपमृत्युसे रहित और एकान्त सुखोंसे संयुक्त होते हैं ॥ १९० ॥ चतुर्थ और पंचम कालमें मनुष्य सुख-दुखसे संयुक्त तथा छठे कालमें सभी मनुष्य नाना प्रकारके दुःखोंसे संयुक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १९१ ॥ चतुर्थ व पंचम कालमें कुछ ही दिव्य मनुष्य पूर्वकृत पुण्य कर्मोंके उदयसे दिव्य रूपसे सम्पन्न, बत्तीस लक्षणोंके धारक, नील कमलके समान सुगन्धित निश्वाससे युक्त, सम्पूर्ण चन्द्रके समान मुखवाले, मदोन्मत्त महागजेन्द्रपर आरूढ, धवल छत्र रूप चिह्नसे सहित, सफेद चामरोंसे ढोरा जा रहा है समस्त अंग जिनका, उत्तम तुरंगोंके संचारसे सहित, गुल-गुल गर्जना करनेवाले विशाल हाथियोंकी घटासे संयुक्त, उत्तम रथोंके समूहसे स्फुरायमान, बहुतसे योद्धाओंके निरोध युक्त, संचारसे सहित, हारसे शोभायमान वक्षस्थलसे युक्त, नाना मणियोंसे प्रकाशमान मणिमय मुकुटसे विभूषित, केयूरसे भूषित हाथोंवाले, उत्तम कुण्डलोंसे मण्डित कपोलोंसे संयुक्त; जरा, रोग एवं शोकसे रहित और विकसित कमलगर्भके सदृश प्रभावाले दिखते हैं ॥ १९२–१९६ ॥ [उक्त कालोंमें]

१ उ मणुसूया, श मणुसया. २ [समवीस,] ३ उ श अट्ठुढा, प ब अद्धट्ठा. ४ उ श उछिधा, प ब उछेधा. ५ [वीसइया.] ६ उ ब उछेहा. ७ प ब पउरा. ८ उ श धुधमाण, ब दुठमाण. ९ उ श फुरंत. १० उ श पुब्बे.

बहिरंधकाणमूया कोढी[1] दालिद्द रूवपरिहीणा । दीणा अणाहसरणा हीणंगविरूवसंठाणा ॥ १९७
खुज्जा वामणरूवा णाणाविहवाहिवेयणसरीरा । बहुकोहमाणपउरा लोहिट्ठा मायसंछण्णा ॥ १९८
संबंधसयणरहिया घरपुत्तकलत्तदारपरिहीणा । खप्परकरंकहत्था देसंतरगमणपरिहत्था[4] ॥ १९९
देहि त्ति[5] दीणकलुणा भिक्खं हिंडंति लाहपरिहीणा । फुडिदंग[6]केसणिवहा जूयालिक्खाहि संछण्णा॥ २००
खट्टिक्कडोंबसबरा पुलिंदचंडालणाहलादीया । दीसंति णरा बहवा पुव्वक्कयपावकम्मेहिं ॥ २०१
छट्ठमकालस्संते एरावदभरहवंसणामाणं । मज्झिमअज्जवखंडा खयगामी होंति णिद्दिट्ठा ॥ २०२
दुव्विट्ठियणावुट्ठीमारीपरचक्कतक्करगणेहिं । ईदीहिं समभिभूदा णासंति हु देसविसयाणि ॥ २०३
गणणातीदेहि पुणो अवसप्पिणिइदरकालससयेहिं । बहुएहिं अइक्कंते पासंडिधरा समुद्दिट्ठा ॥ २०४
कप्पेसु असंखेसु य[7] एरावयभरहणामखेत्तेसु । जिणभवणा पण्णत्ता ण अण्णभवणा समुद्दिट्ठा ॥ २०५
पंचसु भरहेसु तहा पंचसु एरावदेसु खेत्तेसु । अवसप्पिणि उस्सप्पिणि अवट्ठिदा होंति णिद्दिट्ठा ॥ २०६
जह किण्हपक्खसुक्का अवट्ठिदा जह य होंति दिणरयणी। तह ते कालसहावा अवट्ठिदा होंति णियमेण ॥ २०७

बहुतसे मनुष्य पूर्वकृत पापकर्मोंसे बहरे, अंधे, काने, मूक, कोढ़ी, दरिद्र, सुन्दर रूपसे रहित, दीन, अनाथ, अशरण, हीनांग, विरूप आकृतिवाले, कुबडे, वामन (बौने) रूपसे युक्त, नाना प्रकारकी व्याधियोंसे पीड़ित शरीरवाले, बहुत व प्रचुर क्रोध-मानसे सहित, लोभी, मायासे परिपूर्ण, सम्बन्धी व स्वजनों (कुटुम्बी जनों) से रहित; घर, पुत्र, कलत्र और बच्चोंसे विहीन; खप्पर व करंकसे युक्त हाथोंवाले; देशान्तर गमनसे संतप्त 'देहि' इस प्रकार दीन एवं करुणापूर्ण वचन बोल कर भिक्षाके निमित्त इधर-उधर घूमनेवाले, परन्तु भिक्षालाभसे रहित, स्फोट-युक्त अत एव दुर्गन्धमय अंग व केशोंके समूहसे सहित, जूं व लीखोंसे व्याप्त, तथा खटीक, डोम, शबर, पुलिंद, चण्डाल व नाहल आदि जातियोंमें उत्पन्न दिखते हैं ॥ १९७-२०१ ॥ छठे कालके अन्तमें ऐरावत व भरत नामक क्षेत्रोंके मध्यम आर्यखण्ड विनाशको प्राप्त होनेवाले निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ २०२ ॥ दुर्वृष्टि (अतिवृष्टि), अनावृष्टि, मारि, परचक्र और तस्करसमूह रूप ईतियोंसे अभिभूत होकर देश-विषय नष्ट होते हैं ॥ २०३ ॥ पुनः बहुत असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी रूप काल-समयोंके बीत जानेपर पाषण्डिधरा (पाखण्डमय पृथिवी) कही गयी है ॥ २०४ ॥ असंख्यात कल्पोंमें ऐरावत व भरत नामक क्षेत्रोंमें जिनभवन कहे गये हैं, अन्य देवताओंके भवन नहीं कहे गये हैं ॥ २०५ ॥ पांच भरत तथा पांच ऐरावत क्षेत्रोंमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल स्थित रहते हैं ॥ २०६ ॥ जिस प्रकार कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष अवस्थित हैं, तथा जिस प्रकार दिन और रात्रि अवस्थित हैं, उसी प्रकार नियमसे वे कालस्वभाव अवस्थित हैं ॥ २०७ ॥

---

१ उ श कण. २ उ श कोढी. ३ प व माण. ४ प व दिसंतरगमणपडिहत्था. ५ उ श देहिं ति, प व देहि ति. ६ उ पुडिदम, प व फुडिदंग, श फुडिदग. ७ प व अरकेत्तेसु या.

अवसप्पिणिम्मि काले तहेव उवसप्पिणिम्मि कालम्मि । उप्पज्जंति महप्पा तेसट्ठिसलागवरपुरिसा ॥ २०८
होऊण भोगभूमी अट्ठारसउवहिकोडिकोडीया । भरहक्खंडविभागं अच्छदि कालाणुभावेण[1] ॥ २०९
आजियं अजियमहप्पं अपुणब्भवं अच्चुयं[2] विमलणाणं । वरपउमणंदिणमियं वंदे अजरामरं अरुजं ॥ २१०

॥ इय जंबुद्दीवपण्णत्तिसंगहे भरहेरावयवंसवण्णणो णाम बिदिओ उद्देसो समत्तो ॥ २ ॥

अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी कालमें तिरेसठ शलाकामहापुरुष उत्पन्न होते हैं ॥२०८॥ अठारह कोड़ाकोड़ि सागर प्रमाण काल तक भोगभूमि होकर [शेष दो कोड़ाकोड़ि सागरोपममें] भरतखण्ड-विभाग कर्मभूमिस्वरूपसे स्थित होता है ॥ २०९ ॥ जिनका माहात्म्य अजित अर्थात् जीता नहीं गया है और जो पुनर्जन्मसे रहित, अद्भुत निर्मल ज्ञानके धारक, उत्तम पद्मनन्दि मुनिसे वन्दित, तथा अजर व अमर होकर रोगसे रहित हैं; उन अजितनाथ भगवान्को मैं नमस्कार करता हूं ॥ २१० ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें भरत-ऐरावतक्षेत्रवर्णन नामक द्वितीय उद्देश समाप्त हुआ ॥२॥

१ ब कलाणुभविण [कम्माणुभावेण]. २ उ श अद्धुयं.



वणवेइयपरियरिया णाणाविहतोरणेहिँ कयसोहा । बहुकप्परुक्खणिवहा सुगंधगंधुद्धुदा[1] रम्मा ॥ ११
लवलीलवंगपउरा चंपयमंदारवउलगंधड्ढा । पुण्णागणागणिवहा अइमुत्तलयाउलसिरीया[2] ॥ १२
कप्पूरणियररुक्खा असोयफणसंबजंबिरसणाहा[3] । तालदुमणालिणिवहा[4] कयलीहिंतालसंछण्णा ॥ १३
बहुकुसुमरेणुपिंजलअलिउलगिज्जंतमहुरसद्दाढ्ढा । पवणवसचलियपल्लवपायवणच्चंतअहिरामा ॥ १४
भूधरपमाणदीहा बेगाउदविच्छडा समुद्दिट्ठा । वरभूदराण होंति हु वणसंडा उहयपासेसु ॥ १५
तह य महाहिमवंतो अज्जुणवण्णो फुरंतमणिणिवहो । रुप्पियसेलो णेओ[6] रुप्पमओ[7] रयणसंछण्णो ॥ १६
पण्णासा अवगाहा बे वि णगा बेसदा समुत्तुंगा । बादालसदा विउला दसुत्तरा दसकला अहिया[8] ॥ १७
चउहत्तरि छच्च सया सोलसभागा हवंति णिद्दिट्ठा । सत्तत्तीससहस्सा जहण्ण आयाम सेलाणं ॥ १८
इगितीसा णव य सदा छच्चेव कला हवंति णिद्दिट्ठा । तेवण्णं च सहस्सा उक्कस्सायाम सेलाणं ॥ १९
दस चेव कला णेया चत्ताला सत्त जोयणसदाणि । अट्ठत्तीससहस्सा जहण्णधणुपट्ठ सेलाणं ॥ २०

इन उत्तम पर्वतोंके उभय पार्श्वभागोंमें वनवेदियोंसे वेष्टित, नाना प्रकारके तोरणोंसे शोभायमान, बहुतसे कल्पवृक्षोंके समूहोंसे सहित, सुगंध गंधसे व्याप्त, रमणीय, प्रचुर लवली एवं लवंग वृक्षोंसे सहित; चम्पक, मन्दार एवं वकुलकी गंधसे व्याप्त; पुन्नाग एवं नाग वृक्षोंके समूहसे सहित, अतिमुक्त लताओंसे व्याप्त शोभासे सम्पन्न, कर्पूर वृक्षोंके समूहसे संयुक्त; अशोक, पनस, आम्र एवं जंबीर वृक्षोंसे सनाथ; ताल द्रुम व नाली (एक लता) के समूहोंसे सहित, कदली व हिंताल वृक्षोंसे आच्छन्न, बहुतसे पुष्पोंकी धूलिसे पीतवर्ण हुए भ्रमरोंके समूहसे किये जानेवाले मधुर गान (गुंजार) से शब्दायमान, वायुसे प्रेरित होकर चंचलताको प्राप्त हुए पत्तोंवाले वृक्षोंके मधुर नाचसे अभिराम, तथा पर्वतके बराबर लम्बे और दो कोश विस्तृत ऐसे वनखण्ड कहे गये हैं ॥११-१५॥ महाहिमवान् पर्वत प्रकाशमान मणियोंके समूहसे युक्त, श्वेतवर्ण तथा रत्नोंसे व्याप्त रुक्मि पर्वत रजतमय जानना चाहिये ॥ १६ ॥ दोनों ही पर्वत पचास योजन अवगाहसे युक्त, दो सौ योजन ऊंचे और दश कला अधिक ब्यालीस सौ दश योजन ($४२१०\frac{१०}{१९}$) प्रमाण विस्तृत हैं ॥ १७ ॥ इन शैलोंकी जघन्य लम्बाई सैंतीस हजार छह सौ चौहत्तर योजन और सोलह भाग ($३७६७४\frac{१६}{१९}$) प्रमाण कही गई है ॥ १८ ॥ उक्त शैलोंकी उत्कृष्ट लम्बाई तिरेपन हजार नौ सौ इकतीस योजन और छह कला ($५३९३१\frac{६}{१९}$) प्रमाण कही गई है ॥ १९ ॥ उक्त शैलोंका जघन्य धनुषपृष्ठ अड़तीस हजार सात सौ चालीस योजन और दश कला ($३८७४०\frac{१०}{१९}$) प्रमाण जानना चाहिये ॥ २० ॥ उक्त शैलोंका उत्कृष्ट धनुषपृष्ठ सत्ता-

---

१ उ सुगंधुगंधुद्धुदा, ब सुगंधागंधुद्धदा. २ उ श लयाउलसिरिया. ३ प जंविरणाहा, ब जांविरणाह. ४ ब सालदुमासालिणिवह. ५ व गिज्जंति. ६ उ श णेये ७ उ रुप्पमओ ७ प ब विउला. ८ उ श अविया.

बे चेव सदा णेया तेणउदा दसकला समुद्दिट्ठा । सत्तावण्णसहस्सा धणुपट्ठुक्कस्स सेलाणं ॥ २१
छाहत्तरि बिण्णिसदा णव य सहस्साणि जोयणा णेया । णव य कला अद्धकला पासभुजा होंति सेलाणं ॥ २२
अट्ठावीसं च सदं अट्ठसहस्साणि जोयणुद्दिट्ठा । अद्ध य पंचमभागा णगाण चूली वियाणाहि ॥ २३
तवणिज्जमओ[1] णिसहो वेरुलियमओ दु णीलवण्णो दु । बे वि णगा विण्णेया णाणामणिरयणचिचइदा ॥ २४
चत्तारिसया तुंगा सदअवगाढा[2] फुरंतमणिकिरणा । सोलससहस्स अडसय बादाला बे कला रुंदा ॥ २५
एगुत्तरणवयसया तेहत्तरि तह सहस्स सेलाणं । सत्तरस कला णेया जहण्णजीया समुद्दिट्ठा ॥ २६
चउणउदिं च सहस्सा सदं च छप्पण्ण बे कला अधिया । पुव्वावरेण णेया आयामा होंति उक्कस्सा ॥ २७
चत्तारि कलां अधिया सोलस चुलसीदिजोयणसहस्सा । णीलणिसहाण णेया जहण्णधणुपट्ठ णिद्दिट्ठा ॥ २८
छादाला तिण्णिसदा चउवीससहस्स णीलणिसहाणं । एगं च सदसहस्सं णव भागा जेट्ठधणुपट्ठं ॥ २९
पण्णट्ठि सदा णेया वीससहस्सा य णीलणिसहाणं । पस्सभुजा णायव्वा अड्ढाइज्जा कला अहिया ॥ ३०
सत्तावीसं च सदीं[3] दस य सहस्साणि बे कला[4] अधिया । णीलणिसहाण णेया चूलियसंखा समुद्दिट्ठा ॥ ३१

वन हजार दो सौ तेरानबै योजन और दश कला (५७२९३ $\frac{१०}{१९}$) प्रमाण कहा गया है ॥ २१ ॥ उक्त शैलोंकी पार्श्वभुजा नौ हजार दो सौ छयत्तर योजन और साढ़े नौ कला (९२७६ $\frac{१९}{३८}$) प्रमाण जानना चाहिये ॥ २२ ॥ उक्त पर्वतोंकी चूलिका साढ़े चार भागोंसे अधिक आठ हजार एक सौ अट्ठाईस योजन (८१२८ $\frac{९}{३८}$) जानना चाहिये ॥ २३ ॥ निषध पर्वत सुवर्णमय और नील पर्वत वैडूर्यमणिमय नीलवर्ण है। नाना मणियों व रत्नोंसे मण्डित ये दोनों ही पर्वत चार सौ योजन ऊंचे, सौ योजन अवगाहसे युक्त, प्रकाशमान मणिकिरणोंसे सहित, और सोलह हजार आठ सौ व्यालीस योजन व दो कला (१६८४२ $\frac{२}{१९}$) प्रमाण विस्तारवाले हैं ॥ २४–२५ ॥ इन शैलोंकी जघन्य जीवा तिहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और सत्तरह कला (७३९०१ $\frac{१७}{१९}$) प्रमाण कही गई जानना चाहिये ॥ २६ ॥ उक्त पर्वतोंकी उत्कृष्ट लम्बाई (जीवा) पूर्व-पश्चिममें चौरानबै हजार एक सौ छप्पन योजन और दो कला (९४१५६ $\frac{२}{१९}$) अधिक जानना चाहिये ॥ २७ ॥ नील व निषध पर्वतोंकी जघन्य धनुषपृष्ठ चौरासी हजार सोलह योजन और चार कला अधिक (८४०१६ $\frac{४}{१९}$) जानना चाहिये ॥ २८ ॥ नील और निषधका उत्कृष्ट धनुषपृष्ठ एक लाख चौबीस हजार तीन सौ छयालीस योजन और नौ भाग (१२४३४६ $\frac{९}{१९}$) प्रमाण है ॥ २९ ॥ नील व निषध पर्वतोंकी पार्श्वभुजा बीस हजार एक सौ पैंसठ योजन और अढ़ाई कला अधिक (२०१६५ $\frac{५}{३८}$) जानना चाहिये ॥ ३० ॥ नील-निषध पर्वतोंकी चूलिकाका प्रमाण दश हजार एक सौ सत्ताईस योजन और दो कला अधिक (१०१२७ $\frac{२}{१९}$) कहा गया है ॥ ३१ ॥ ये सब ही लम्बे पर्वत वेदियोंसे सहित, मणिमय

---

१ उ श तवमज्जमओ. २ प ब सदेवअवगाढा. ३ उ श सदा. ४ उ प ब श केवला.

सव्वे वि वेदिसहिदा मणिमयजिणचेइएहि संपण्णा । उववणकाणणसहिया दीहगिरिंदा मुणेयव्वा ॥ ३२
वरदहसिदादवत्ता¹ सरिचामरविज्जमाणं² बहुमाणा । कप्पतरुचारुचिण्हा वसुमइसिंहासणारूढा ॥ ३३
वेदिकडिसुत्तणिवहा मणिकूडफुरंतै³दिव्ववरमउडा । णिज्झरपलंबहारा तरुकुंडलमंडियागंडा ॥ ३४
सुरघर⁴कंठाभरणा वणसंडविचित्तवत्थकयसोहा । गोउरतिरीडमाला पायारसुगंधदामड्ढा ॥ ३५
तोरणकंकणहत्था वज्जपणालीफुरंत⁵केऊरा । जिणभवणतिलयभूदा भूहरराया विरायंति ॥ ३६
अंजणदहिमुहरइयरमंदरवरकुंडलाण सेलाणं । होंति सहस्सवगाढा⁶ सोदयचउभाग सेसाणं ॥ ३७
वज्जमया अवगाहा⁷ गिरीण सिहरा हवंति रयणमया । दहसरिकुंडाण तहा भूमितडा वज्जपरिणामा ॥ ३८
एयारसट्ठणवणवअट्ठेयारस हवंति कूडाणि । हिमवंतादो णेया जाव दु वरसिहरिपरियंता⁸ ॥ ३९
सिद्धहिमवंतभरहा इला⁹ गंगा हवंति कूडाणं । सिरिरोहिदसिंधुसुरा हेमवदा वेसमणणामा ॥ ४०

जिनचैत्योंसे सम्पन्न और वन उपवनोंसे सहित हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ उत्तम द्रहरूपी धवल आतपत्रसे सहित, नदीरूपी चामरोंसे वीज्यमान, बहुत प्रमाणसे सहित, कल्पवृक्षरूपी उत्तम चिह्नोंसे युक्त, पृथिवीरूपी सिंहासनपर आरूढ, वेदीरूप कटिसूत्रसमूहसे संयुक्त, मणिमय कूट रूप प्रकाशमान उत्तम दिव्य मुकुटसे सुशोभित, निर्झररूपी लम्बे हारसे अलंकृत, वृक्षरूपी कुण्डलोंसे मण्डित कपोलोंवाले, सुरगृहरूपी कण्ठाभरणसे विभूषित, वनखण्डरूपी विचित्र वस्त्रोंसे शोभायमान, गोपुररूपी किरीटमालासे रमणीय, प्राकाररूपी सुगन्धित मालासे वेष्टित, तोरणरूप कंकणसे विभूषित हाथोंवाले, वज्रमय नाली रूप प्रकाशमान केयूरसे सहित, और तिलक स्वरूप जिनभवनोंसे संयुक्त ऐसे कुलाचल रूपी राजा विराजमान हैं ॥ ३३—३६ ॥ अंजनगिरि, दधिमुख, रतिकर पर्वत, मन्दर (मेरु) और उत्तम कुण्डल नग, इन शैलोंका अवगाह हजार योजन प्रमाण तथा शेष पर्वतोंका वह अपनी उंचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण होता है ॥ ३७ ॥ पर्वतोंके अवगाह (नीव) वज्रमय और शिखर रत्नमय होते हैं । द्रह, नदी तथा कुण्डोंके भूमितल वज्र स्वरूप होते हैं ॥ ३८ ॥ हिमवान्‌से लेकर शिखरी पर्वत पर्यन्त उक्त पर्वतोंके क्रमसे ग्यारह, आठ, नौ, नौ, आठ और ग्यारह कूट हैं ॥ ३९ ॥ सिद्धकूट, हिमवान्‌कूट, भरतकूट, इलाकूट, गंगाकूट, श्रीकूट, रोहित (रोहितास्या) कूट, सिन्धुकूट, सुराकूट, हैमवतकूट, और वैश्रवणकूट, ये ग्यारह कूट हिमवान् पर्वतपर स्थित हैं ॥४०॥ सिद्धकूट, [महा] हिमवान्‌कूट,

---

१ प ब वरदहसिदादिवण्णा. २ उ श विज्जुमाण. ३ उ श फ़िरंत, प ब फ़ुरंति. ४ उ सुरव्वर, श सुधर. ५ उ श फुरंत. ६ उ प ब श सहस्सवगाढा. ७ प ब अवणेहा. ८ उ प ब श परियत्ता. ९ प ब ईला.

सिद्धहिमवंतणामा हेमव्वदरोहिदा य हिरिकूडा। हरिसोहणहरिवंसा वेरुलिय हवंति कूडाणं ॥ ४१

तह सिद्धणिसधहरिदा धिदि विदेहहरिविजय तह य सीदोदा। अवरविदेहा रुजगो कूडाणं होंति णामाणि ॥४२

सिद्धवरणीलकूडा पुव्वविदेहा सिदा य कित्तीया। णारी अवरविदेहा रम्मग अवदंस णामाणि ॥ ४३

वरसिद्धरुप्परम्मगणरकंताबुद्धिरुप्पकूला य। हेरण्णवदा कंचण णामाणिं हवंति कूडाणं ॥ ४४

तह सिद्धसिहरिणामा हिरण्णरसदेविरत्तलच्छीया। कणय तह रत्तवदिया गंधारो रयदमणिहेमा ॥ ४५

धंसहरमाणुसुत्तरकुंडलरुजगाहिवाण सेलाणं। जावदिया अवगाहा तावदिया कूडउच्छेहा ॥ ४६

पणुवीसा पण्णासा सय सय पण्णास तह य पणुवीसा। हिमवंतणगादीणं कूडाणं होंति उच्छेहा ॥ ४७

सोदयदलविथिण्णा आयामा होंति सव्वकूडाणं। मूलेसु समुद्दिट्ठा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ४८

अद्धत्तेरसजोयणं पणुवीसा तह य होंति पण्णासा। पण्णासा पणुवीसा बारस बे चेव कोसहिया ॥ ४९

हैमवतकूट, रोहित्कूट, ह्रीकूट, हरिशोभन (हरिकान्ता) कूट, हरिवर्षकूट और वैडूर्यकूट, ये आठ कूट महाहिमवान् पर्वतपर स्थित हैं ॥ ४१ ॥ तथा सिद्धकूट, निषधकूट, हरित्कूट, धृतिकूट, [पूर्व] विदेहकूट, हरिविजयकूट, सीतोदाकूट, अपरविदेहकूट और रुचककूट, इस प्रकार ये निषध पर्वतपर स्थित नौ कूटोंके नाम हैं ॥ ४२ ॥ उत्तम सिद्धकूट, नीलकूट, पूर्वविदेहकूट, सीताकूट, कीर्तिकूट, नारीकूट, अपरविदेहकूट, रम्यककूट और अवतंस (अपदर्शन, उपदर्शन) कूट, ये नौ कूट नील पर्वतपर स्थित हैं ॥ ४३ ॥ उत्तम सिद्धकूट, रुप्य (रुक्मि) कूट, रम्यककूट, नरकान्ताकूट, बुद्धिकूट, रुप्यकूलाकूट, हैरण्यवतकूट और कंचनकूट, ये रुक्मि पर्वतपर स्थित आठ कूटोंके नाम हैं ॥ ४४ ॥ तथा सिद्धकूट, शिखरीकूट, हैरण्यवतकूट, रसदेवीकूट, रक्ताकूट, लक्ष्मीकूट, सुवर्ण- [कूला] कूट, रक्तवतीकूट और गान्धार (गन्धवती) कूट, रजत (ऐरावत) कूट और मणिकांचनकूट, ये ग्यारह कूट शिखरी पर्वतपर स्थित हैं ॥ ४५ ॥ मानुषोत्तर, कुण्डलगिरि, और रुचकगिरि, इन वर्षधर शैलोंका जितना अवगाह है उतना उनके कूटोंका उत्सेध है ॥ ४६ ॥ हिमवान् पर्वतादिकोंके कूटोंका उत्सेध क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ, सौ, पचास तथा पच्चीस योजन प्रमाण है ॥४७॥ नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप ये सब कूट मूल भागोंमें अपनी उंचाईके अर्ध भाग प्रमाण विस्तीर्ण व इतने ही आयत कहे गये हैं ॥ ४८ ॥ उन कूटोंके उपर्युक्त विस्तार व आयामका प्रमाण क्रमसे साढ़े बारह योजन, पच्चीस योजन, पचास योजन, पचास योजन, पच्चीस योजन और दो कोश अधिक बारह योजन है ॥४९॥

---

१ उ श प ब हरि. २ उ श णिसिध. ३ उ श हारिद, प ब हारिदा. ४ उ प ब श खिदि. ५ ब श कित्तिय. ६ श णामाण. ७ उ श रण्ण. ८ उ प ब श रत्तविदिया. ९ ब गंधारी. १० उ श जोयणं.

विरिथण्णायामेण य पण्णरसा जोयणा य वरभवणा । अड्डादिज्जा कोसा कूडाणं होंति सिहरेसु ॥ ५०
सक्कोसा इगितीसा उव्विद्धा विविहरयणपरिणामा । जोयणचउत्थभागा अवगाढा ताण णिद्दिट्ठा ॥ ५१
अट्ठेव जोयणाइं तोरणदारा हवंति उत्तुंगा । चउजोयणीवित्थिण्णा अणाइणिहणा वियाणाहि ॥ ५२
णाणामणिगणणिविडा कणयमया विप्फुरंतमणिकिरणा । सत्ततला पासाया सुगंधगंधुद्धुदो रम्मा ॥ ५३
कालागरुगंधड्ढा संगीदमुदिंगसद्दगंभीरा । लंवंतरयणमाला बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ ५४
पजलंतरयणदीवा णाणाविहवत्थविउलकयसोहा । वरवज्जणीलमरगयकक्केयणपुस्सरागमया ॥ ५५
पायारवलहिगोउरउववणसंडेहि मंडिया दिव्वा । दीहा समचउरंसा अणेगसंठाणपरिणामा ॥ ५६
अरविंदोदरवण्णा णीलुप्पलकुमुदगब्भसंकासा । चंपयमंदारणिभा गोरोयणसच्छहा के वि ॥ ५७
वरचित्तकम्मपउरा सहस्सखंभेहि सोहिया रम्मा । पवरच्छराहिं भरिया अच्छेरयरूवसाराहि ॥ ५८
कुंदेंदुसंखवण्णा गोखीरतुसारहारसंकासा । मरगयपवालवण्णा वियसियसयवत्तसंकासा ॥ ५९
सत्तट्ठमभूमीया णवदसभूमी अणेगभूमीया । जिणसिद्धभवणणिवहा मणिकंचणरयणपरिणामा ॥ ६०

कूटोंके शिखरोंपर पन्द्रह योजन और अढ़ाई कोश विस्तार व आयामसे युक्त उत्तम भवन हैं ॥ ५० ॥ विविध रत्नोंके परिणाम रूप उन भवनोंकी उंचाई एक कोश सहित इकतीस योजन और अवगाह योजनके चतुर्थ भाग प्रमाण कहा गया है ॥ ५१ ॥ उन भवनोंमें आठ योजन ऊंचे और चार योजन विस्तीर्ण अनादिनिधन तोरणद्वार जानना चाहिये ॥ ५२ ॥ उक्त प्रासाद नाना मणिगणोंसे व्याप्त, सुवर्णसे निर्मित, प्रकाशमान मणिकिरणोंसे सहित, सात तलवाले, सुगन्ध गन्धसे व्याप्त, रमणीय, कलागरुके गन्धसे युक्त, संगीत व मृदंगके शब्दसे गम्भीर, लम्बायमान रत्नमालाओंसे संयुक्त, बहुत कुसुमों द्वारा की गई पूजासे सनाथ, प्रकाशमान रत्नदीपकोंसे सहित, नाना प्रकारके वस्त्रोंसे की गई महती शोभासे सहित; उत्तम वज्र, नील मणि, मरकत, कर्केतन और पुखराज मणियोंसे निर्मित; प्राकार, वलभी (छज्जा), गोपुर एवं उपवन समूहोंसे मण्डित; दिव्य, दीर्घ, समचतुष्कोण, अनेक आकारोंमें परिणत, कोई कमलके उदर जैसे वर्णवाले, कोई नीलोत्पल व कुमुदके गर्भ सदृश, कोई चम्पक व मन्दार पुष्पके सदृश, कोई गोरोचनके समान कान्तिवाले, उत्तम प्रचुर चित्रक्रियासे संयुक्त, हजार खंभोंसे शोभित, रम्य, आश्चर्यजनक श्रेष्ठ रूपवाली उत्तम अप्सराओंसे परिपूर्ण; कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं शंखके समान वर्णवाले; गोक्षीर, तुषार एवं हारके सदृश, मरकत व प्रवाल जैसे वर्णवाले, विकसित कमलके सदृश, सात-आठ भूमियोंवाले, नौ-दश भूमियोंवाले व अनेक भूमियोंवाले, जिनभवनों व सिद्धभवनोंके समूहसे सहित; मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप; पुन्नाग व तिलकके सदृश वर्णवाले,

१ ब गंधुद्धदा. २ उ ब वछ, श वच्छ, ३ उ श पुंस. ४ श पवरत्थराहि. ५. श अत्थेरय.

पुण्णागतिलयवण्णा पारावयमोरकंठसंकासा । [1]कंदलकल्हारणिभा केदइकणवीरसंकासा ॥ ६१
मंदारतारकिरणा सत्तच्छदसालकुसुमसंकासा । किंसुय[2]मुणालवण्णा दुव्वंकुरसिरिसकुसुमसंकासा[3] ॥ ६२
पाडलअसोगवण्णा णवविय[4]सियरत्तकुसुमसंकासा । इंदीवरदलवण्णा विभिण्णसियकुसुमसंकासा ॥ ६३
पायारसंपरिउडा वरगोउरमंडिया परमरम्मा । धुव्वंतधयवडाया मणितोरणसंकुला विउला ॥ ६४
वरभूहरसंकासा णाणाविहचारुभवणसंछण्णा । दिव्वमणोवमरूवा असंखसुरसंकुला रम्मा ॥ ६५
पोक्खरणिवाविपउरा सरिसरवरदीहियाहिं परिपरिया । उववणकाणणसहिया अलिउलकुलजणिय[5]झंकारा ॥ ६६
गिरिवरकूडेसु तहा गिरिवरसिहरेसु गिरिवरणगेसु । होंति सुराणं पुरवर जिणभवणविहूसिया रम्मा ॥ ६७
विक्खंभायामेहि य उच्छेहेहि य हवंति जावदिया । वेदड्ढणगम्मि तहा तावदिया अंबुजेसु गिहा ॥ ६८
पउमो य महापउमो तिगिंछवरकेसरी य पुंडरिओ । तह य महापुंडरिओ महादहा होंति अचलेसु ॥ ६९
दहकुंडणगणदीण य वणदीवपुराण कूडसेढीणं । तडवेदी णिद्दिट्ठा मणितोरणमंडिया दिव्वा ॥ ७०
सेलाणं उच्छेहो दसगुणिद दहाण होइ आयामा । दसभजिदे अवगाहं पंचगुणं हवइ विक्खंभं ॥ ७१

कबूतर व मयूरके कण्ठके सदृश, कंदल व कल्हारके समान वर्णवाले, केतकी व कनेरके सदृश, मन्दारके समान निर्मल किरणोंवाले, सप्तच्छद व शाल वृक्षोंके कुसुमोंके समान, किंशुक व मृणाल जैसे वर्णवाले, दूर्वाङ्कुर व शिरीष कुसुमके सदृश, पाटल व अशोकके समान वर्णवाले, नवीन विकसित-रक्त कुसुमोंके सदृश, कमलपत्रके तुल्य वर्णवाले, विकसित सित कुसुमोंके सदृश, प्राकारसे वेष्टित, उत्तम गोपुरोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, फहराती हुई ध्वजा–पताकाओंसे सहित, मणितोरणोंसे व्याप्त, विस्तृत, उत्तम भूधरके सदृश, नाना प्रकारके सुन्दर भवनोंसे युक्त, दिव्य व अनुपम रूपवाले, असंख्य देवोंसे व्याप्त, रम्य, प्रचुर पुष्करिणी व वापियोंसे सहित; नदी, सरोवर एवं दीर्घिकाओंसे परिपूर्ण; वन-उपवनोंसे सहित, और भ्रमरसमूहके झंकारसे युक्त हैं ॥ ५३–६६ ॥ पर्वतोंके कूटोंपर, पर्वतशिखरोंपर तथा पर्वतनगोंपर भी इसी प्रकार जिनभवनोंसे विभूषित एवं रमणीय देवोंके उत्तम भवन होते हैं ॥ ६७ ॥ जितना विष्कम्भ, आयाम और उत्सेध वैताढ्य पर्वतपर स्थित गृहोंका है उतना ही वह कमलोंपर स्थित गृहोंका भी है ॥ ६८ ॥ पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, पुण्डरीक और महापुण्डरीक, ये महा द्रह उक्त कुलाचलोंपर स्थित हैं ॥ ६९ ॥ द्रह, कुण्ड, पर्वत, नदी, वन, द्वीप, पुर, कूट और विद्याधरश्रेणियोंके मणितोरणोंसे मण्डित दिव्य तटवेदियां कही गई हैं ॥ ७० ॥ पर्वतोंके उत्सेधको दशसे गुणित करनेपर द्रहोंका आयाम, उसमें दशका भाग देनेपर उनका अवगाह, और पांचसे गुणित करनेपर उनका विस्तार होता है ॥ ७१ ॥

---

१ बप्रतौ ६१ तमगाथाया उत्तरार्द्धं ६२तमगाथायाश्च पूर्वार्द्धं नोपलभ्यते. २ प ब केसुसुय ३ प ब दुर्व्वंकुरासिरसकुसुमामा. ४ उ श णवावियसिय. ५ उ श जाणिय.

उच्छेहं पंचगुणं विक्खंभं हवइ दुगुण आयामं । पण्णासेण विभत्तं विक्खंभं हवइ अवगाहं ॥ ७२
आयामो दु सहस्सं विक्खंभं पंचजोयणसदाणि । हिमगिरिसिहरिदहाणं दुगुणा दुगुणा परं तत्तो ॥ ७३
मज्झे दहस्स पउमा बे कोसा उट्ठिदा जलंतादो । चत्तारि य वित्थिण्णा मज्झे अंते य दो कोसा ॥ ७४
वेरुलियविमलणालं एयारसहस्सपत्तवराणिचिदं । सिरिणिलयं णववियसिय दहमज्झे होइ बोद्धव्वा ॥ ७५
तस्स वरपउमकलिया वेरुलियकवाडतोरणदुवारं । कूडागारमहारिहवाघारियफुल्लवरदामं ॥ ७६
कोसं आयामेण य कोसद्धं होदि चेव वित्थिण्णं । देसूणएक्ककोसं उच्छेहो तस्स भवणस्स ॥ ७७
सिरिहिरिधिदिकित्ति तहा बुद्धी लच्छी य देवकण्णाओ । एदेसु दहेसु सदा वसंति फुल्लेसु पउमेसु ॥ ७८
दक्खिणदहपउमाणं सोहम्मिंदस्स होंति देवीओ । उत्तरदहवासिणीओ ईसाणिंदस्स बोहव्वा ॥ ७९

[उदाहरण— हिमवान् पर्वतका उत्सेध यो. १००; १०० × १० = १००० यो. उसके ऊपर स्थित पद्मद्रहका आयाम । १०० ÷ १० = १० यो. उक्त द्रहका अवगाह । १०० × ५ = ५०० यो. उसका विस्तार ।] उत्सेधको पांचसे गुणित करनेपर द्रहोंका विस्तार और उससे दूना उनका आयाम होता है । विस्तारप्रमाणको पचाससे विभक्त करनेपर उनके अवगाहका प्रमाण होता है ॥ ७२ ॥ [उदाहरण— हिमवान्का उत्सेध यो. १००; १०० × ५ = ५०० यो. पद्मद्रहका विस्तार । ५०० × २ = १००० यो. उसका आयाम । विस्तार यो. ५००; ५०० ÷ ५० = १० यो. उसका अवगाह ।] हिमवान् और शिखरी पर्वतोंपर स्थित द्रहोंका आयाम एक हजार योजन और विष्कम्भ पांच सौ योजन प्रमाण है । इसके आगे महाहिमवान् और रुक्मि [आदि] पर्वतोंपर स्थित द्रहोंका आयाम व विष्कम्भ उत्तरोत्तर दूना दूना है ॥ ७३ ॥ द्रहके मध्यमें जलसे दो कोश ऊंचा तथा मध्यमें दो कोश व अन्तमें दो (१ + १) कोश, इस प्रकारसे चार कोश विस्तीर्ण कमल है ॥ ७४ ॥ उक्त कमल वैडूर्यमणिमय निर्मल नाल और ग्यारह हजार उत्तम पत्रोंसे युक्त है । द्रहके मध्यमें नवविकसित [कमलके ऊपर] श्री देवीका गृह है ॥७५॥ उत्तम कमलकलिकाके ऊपर स्थित उक्त भवनका द्वार वैडूर्यमणिमय कपाटों व तोरणोंसे युक्त तथा कूटागार (शिखराकार गृह) व बहुमूल्य लम्बी उत्तम पुष्पमालाओंसे सहित है ॥ ७६ ॥ वह भवन एक कोश आयामवाला, अर्ध कोश विस्तीर्ण और देशोन (पादोन) एक कोश (३/४) ऊंचा है ॥ ७७ ॥ द्रहोंमें फूले हुए इन कमलोंपर सदा श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी, ये देवकन्यायें निवास करती हैं ॥ ७८ ॥ दक्षिण द्रहोंके पद्मोंपर स्थित देवियां सौधर्म इन्द्रकी, और उत्तर द्रहोंमें निवास करनेवाली देवियां ईशान इन्द्रकी जानना चाहिये ॥ ७९ ॥ पद्मोंपर उत्पन्न ये देवियां नीलोत्पलके समान निश्वासवाली, अभिनव

---

१ उ प ब मज्झ, श मुज्झ. २ उ श देधूण. ३ उ श फुल्लेसु. ४ प-बप्रत्योरेतस्या गाथायाः पूर्वोत्तरार्द्धयोर्व्यत्ययो दृश्यते ।

णीलुप्पलणीसासा अहिणवलावण्णरूवसंपण्णा । दंसणसुहवसुहारं णिम्मलवरकणयसंकासा ॥ ८०
सुकुमारपाणिपादा आहरणविहूसिया मणभिरामा । कोइलमहुरालावा कलगुणविण्णाणसंपण्णा ॥ ८१
हंसबहुगमणदच्छी पीणोरुपओहरा धवलणेत्ता । संपुण्णचंदवयणा णवविथसियकमलगंधड्ढा ॥ ८२
सुकुमारवरसरीरा भिण्णंजणणिद्धणीलवरकेसा । वियडणियंबमणोहरथणभरभज्जंतवरमज्झा ॥ ८३
पलिदोवमाउठिदिया विज्जाहरसुरणराण मणखोहा । पउमेसु समुप्पण्णा महिलाधम्मेण उप्पण्णा[1] ॥ ८४
सिरियादीदेवीणं परिवारगणाणं पउमवरभवणा । लक्खं चत्तसहस्सा सदं च पण्णरस परिसंखा ॥ ८५
सव्वाणं देवीणं तिण्णेव हवंति ताण सुरपरिसा । सत्ताणीया य तहा देवा वररूवसंपण्णा[5] ॥ ८६
अब्भंतरपरिसाणं आइच्चो सुरवरो हवे पमुहो । बहुविहदेवसमग्गो ओलग्गइ सददकालं[6] सो ॥ ८७
संणद्धबद्धकवओ उप्पीलियसारपट्टिया मज्झे । धणुफलहसत्तिहत्थो सूरसमत्थो मदिपगब्भो[7] ॥ ८८
पज्जलंतमहामउओ वरहारविहूसिओ विउलवच्छो । कडिसुत्तकडयकोंडलवत्थादिअलंकियसरीरो ॥ ८९

लावण्यमय रूपसे सम्पन्न, देखनेमें सुभग व सुखकर, निर्मल एवं उत्तम सुवर्णके सदृश प्रभावाली, सुकुमार हाथ-पैरोंवाली आभरणोंसे विभूषित, मनको अभिराम, कोयलके समान मधुरभाषिणी; कलाओं, गुणों एवं विज्ञानसे सम्पन्न, हंसवधू (हंसी) के समान गमनमें दक्ष, स्थूल जंघा व पयोधरोंसे सहित, धवल नेत्रोंवाली, सम्पूर्ण चन्द्रके समान मुखसे सहित, नव विकसित कमलके गन्धसे व्याप्त, सुकुमार उत्तम शरीरवाली, भिन्न अंजनके समान स्निग्ध उत्तम नीले केशोंवाली, विशाल नितम्ब एवं मनोहर स्तनोंके भारसे भंग होनेवाले मध्य भागसे संयुक्त, एक पल्योपम प्रमाण आयुस्थिति-से संयुक्त, विद्याधर, देव एवं मनुष्योंके मनको क्षोभित करनेवाली, और महिलाधर्मसे युक्त होती हैं ॥ ८०-८४ ॥ श्री आदि देवियोंके परिवारगणोंके कमलोंपर स्थित उत्तम भवन एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह (१४०११५) हैं ॥ ८५ ॥ सब देवियोंके तीन सुरपरिषत् तथा उत्तम रूपसे सम्पन्न सात अनीक देव होते हैं ॥ ८६ ॥ अभ्यन्तर पारिषदोंका प्रमुख आदित्य नामक उत्तम देव होता है । वह बहुत प्रकारके देवोंसे युक्त होकर सतत काल [श्री देवीकी] सेवा करता है ॥ ८७ ॥ वह आदित्य देव युद्धके लिये तत्पर होकर कवचको बांधे हुए, मध्यमें कसकर श्रेष्ठ पट्टिकाको बांधनेवाला, हाथमें धनुष, पटा (या धनुषफलक) एवं शक्तिको लिये हुए, शूरोंमें समर्थ, मतिप्रगल्भ (बुद्धिमान्) प्रकाशमान महा मुकुटसे सहित, उत्तम हारसे विभूषित, विशाल वक्षस्थल से संयुक्त; तथा कटिसूत्र, कटक, कुण्डल, एवं वस्त्रादिसे अलंकृत शरीरसे युक्त

---

१ प ब दंसणसुहवसुहगारा. २ उ प ब श दच्छा. ३ उ श उप्पणा. ४ प ब गणणा. ५ उ श संपुण्णा. ६ प ब उलग्गइ सदकालं, ७ ब मदियगज्ञो, श मदियगब्भो.

करवालकोंतकप्परणाणाविहपहरणेहिं हत्थेहिं । तियसेहि समाजुत्तो आणं सिरसा पडिच्छेइ ॥ ९०
बत्तीससहस्साणं देवाणं सामिओ महासत्तो । अच्छरबहुपरिवारो भिच्चो सो पउमदेवीए ॥ ९१
दक्खिणपुव्वदिसाए तस्स दु भवणाणि होंति दहमज्झे । बत्तीससहस्साइं य पउमिणिमज्झम्मि णेयाणि ॥९२
मज्झिमपरिसाण पहू चंदो णामेण णिग्गयपयाओ । चालीससहस्साणं देवाणं होइ सो राया ॥ ९३
वरमउडकुंडलधरो उत्तममणिरयणपवरपालंबो । कडिसुत्तकणयकंठावरहारविहूसियसरीरो ॥ ९४
असिपरसुकणयमुग्गरमुसुंढिमुसलादिसाउहकरेहि । देवेहि समाजुत्तो[2] ओलग्गइ साणुराएण ॥ ९५
दक्खिणदिसाविभागे[3] भवणाणि हवंति तस्स जलमज्झे । चालीससहस्साणि य दरवियसियकमलगब्भेसु ॥९६
बाहिरपरिसाहिवई जदु[4] त्ति णामेण णिग्गयपयावो । अडदालीससुराणं सहस्सगुणिदाण सो सामी ॥ ९७
पजलंतवरतिरीडो णाणामणिविप्फुरंतमणिमउडो । आलुलियं[5] धवलणिम्मलचलंतमणिकुंडलाभरणो ॥ ९८
कोदंडदंडसब्बलभिंडीवालादियाहि हत्थाहि । असुरेहिं समाजुत्तो[6] अच्छइ[7] आणं पडिच्छंतो ॥ ९९

होकर हाथोंमें तलवार कुन्त, खप्पर एवं अन्य नाना प्रकारके आयुधोंसे युक्त हाथोंवाले देवों (अंगरक्षकों) से युक्त होकर आज्ञाको सिरसे ग्रहण करता है ॥ ८८-९० ॥ बत्तीस हजार देवोंका स्वामी, महाबलवान् और अप्सराओंके बहुत परिवारसे सहित वह पद्मवासिनी श्री देवीका भृत्य (सेवक) है ॥ ९१ ॥ द्रहके भीतर दक्षिण-पूर्व दिशा (आग्नेय) में पद्मिनियों-के मध्यमें उसके बत्तीस हजार भवन जानना चाहिये ॥ ९२ ॥ मध्यम पारिषदोंका प्रभु प्रतापी चन्द्र नामक देव है जो चालीस हजार देवोंका स्वामी होता है ॥ ९३ ॥ उत्तम मुकुट व कुण्डलोंका धारक, उत्कृष्ट मणि एवं रत्नोंके श्रेष्ठ प्रालंब (गलेका भूषणविशेष) से सहित; कटिसूत्र, कटक, कंठा और उत्तम हारसे विभूषित शरीरवाला वह चन्द्र देव असि, परशु, बाण, मुद्गर, भुशुण्ढि एवं मूसल आदि आयुधोंसे युक्त हाथोंवाले देवोंसे युक्त होकर अनुरागपूर्वक श्री देवीकी सेवा करता है ॥ ९४-९५ ॥ उसके दक्षिणदिशा भागमें जलके मध्यमें किंचित् विकसित कमलोंके मध्यमें चालीस हजार भवन हैं ॥ ९६ ॥ बाह्य परिषदोंका अधिपति जो प्रतापी जतु नामक देव है वह अड़तालीस हजार देवोंका स्वामी होता है ॥ ९७ ॥ प्रकाशमान उत्तम किरीटसे सहित, नाना मणियोंसे देदीप्यमान उत्तम मणिमय मुकुटसे अलंकृत, आलोडित धवल निर्मल एवं चंचल मणि-मय कुण्डल रूप आभरणोंसे सुशोभित वह जतु नामक प्रधान देव कोदण्ड, दण्ड, शर्वल (कुन्त, बर्छा या सब्बल) और भिन्दिपाल आदि अस्त्रोंसे युक्त हाथोंवाले देवोंसे युक्त हो कर आज्ञाकी प्रतीक्षा करता हुआ स्थित रहता है ॥ ९८-९९ ॥ सरोवरके बीच दक्षिण-

---

१ श पप्फर. २ उ समाज्जुत्तो, व समाजुत्ता, श समाहुत्तो. ३ उ दिसाविभागो, श दिसो विभागो. ४ उ °पारिसाहिवइ जदु, प ब परिसाणहवई जदु, श पारिसारिवइयावो जदु. ५ उ श आलुलिद. ६ उ समाज्जुत्तो, श समाहुत्तो. ७ श अच्छायि.

दक्खिणपच्छिमकोणे भवणाणि हवंति तस्स सरमज्झे । अडदालीसाणि तहा सहस्सगुणिदाणि कमलेसु ॥ १००
गयवरतुरयमहारहगोवइगंधव्वणट्टदासा[1] ये । सत्ताणीया णेया सत्तहिं कच्छहिं संजुत्ता ॥ १०१
उत्तुंगदंतमुसला अंजणगिरिसंणिभा[2] महाकाया । महुपिंगणयणजुयला[3] सुरिंदधणुसंणिभा[4] पट्ठा ॥ १०२
पगलंतदाणगंडा वियडघडा[5] गुलुगुलंतगज्जंता । हत्थिवडाणं सेण्णं[6] सत्तहि[7] भागेहि संजुत्तं[8] ॥ १०३
पढमे भागम्मि गया जे दिट्ठा ते हवंति दुगुणा दु । बिदिए भागे णेया गयसेण्णं होइ देवाणं ॥ १०४
एवं दुगुणा दुगुणा सत्त विभागा समासदो णेया । सत्तण्हं अणियाणं एसेव कमो मुणेयव्वो ॥ १०५
वग्गंततुरंगेहि य वरचामरमंडिएहिं दिव्वेहिं । अस्साणं[9] वरसेण्णं सत्तहि भागेहि णिदिट्ठं[10] ॥ १०६
मणिरयणमंडिएहि य पडायणिवहेहिं[11] धवलछत्तेहिं[12] । सत्तहिं कच्छेहिं तहा रहवरसेण्णं वियाणाहि ॥ १०७
ककुदखुरसिंग[13]लंगुलभासुरकाएहि दिव्वरूवेहिं[14] । सत्तविभागेहि तहा गोवइसेण्णं वि णिदिट्ठं ॥ १०८
महुरेहि मणहरेहि य सत्तस्सरसंजुदेहि गिज्जंतं[15] । गंधव्वाणं सेण्णं सत्तहि कच्छेहि संजुत्तं ॥ १०९

पश्चिम कोणमें कमलोंपर उसके अड़तालीस हजार भवन हैं ॥ १०० ॥ उत्तम गजेन्द्र, तुरग, महा रथ, गोपति (वृषभ), गन्धर्व, नर्तक और दास, ये सात कक्षाओंसे संयुक्त सात सेनायें जानना चाहिये ॥ १०१ ॥ उपर्युक्त गजराज उन्नत दांत रूपी मूसलोंसे सहित, अंजनगिरिके सदृश, महाकाय, मधु जैसे पीतवर्ण नेत्रोंसे युक्त, इन्द्रधनुषके सदृश पृष्ठवाले, गण्डस्थलोंसे वहते हुए मदसे संयुक्त तथा विशाल हाथियोंके समूहमें गुल-गुल गर्जना करनेवाला हस्ति सैन्य सात भागोंसे युक्त होता है ॥ १०२–१०३ ॥ देवोंकी हस्तिसेनाके जितने हाथी पहिले भागमें कहे गये हैं, उनसे दूने वे द्वितीय भागमें जानना चाहिये । इस प्रकार देवोंकी गजसेना आगे आगेके भागोंमें दूनी दूनी होती जाती है ॥ १०४ ॥ इस प्रकार संक्षेपसे सात विभाग दूने-दूने जानना चाहिये । सातों अनीकोंका यही क्रम जानना चाहिये ॥ १०५ ॥ उत्तम चामरोंसे मण्डित होकर गमन करते हुये दिव्य तुरंगोंसे अश्वोंकी उत्तम सेना सात भागोंसे युक्त निर्दिष्ट की गई है ॥ १०६ ॥ मणि एवं रत्नोंसे मण्डित पताकासमूहों और धवल छत्रोंसे युक्त सात कक्षावाली रथोंकी सेना जानना चाहिये ॥ १०७ ॥ ककुद, खुर, सींग और पूंछसे शोभायमान शरीरवाले तथा दिव्य रूपसे युक्त बैलोंकी सेना भी सात विभागोंसे युक्त कही गई है ॥ १०८ ॥ मधुर व मनोहर सात स्वरोंसे संयुक्त गाती हुई गन्धर्वोंकी सेना सात कक्षाओंसे युक्त होती है ॥ १०९ ॥ अतिशय रूपवाले तथा आभरणोंसे विभूषित

१ उ श वासा य, प ब दासा या. २ प सणिना, ब सणिण. ३ श महुपिगलयणहुयला. ४ उ श सणिमा. ५ प वियडवड, ब वियडघड. ६ प ब सेणा. ७ श सत्तिहिं. ८ उ संब्जुत्तं, प ब संजुत्ता, श संदुत्तं. ९ उ श आस्साण. १० श °सेण्णं वियाणाहि णिद्दिट्ठी. ११ उ मंडियपडाय, श मंडिए पडाए. १२ प ब धवलछण्णेहि. १३ उ श सिंग. १४ उ श दिमरूवेहि. १५ उ श गिज्जंतं.

अदिसयरूवाणं[1] तहा आभरणविहूसिदाण देवाणं । णच्चणगायणसेण्णं सत्तहि भागेहि णिद्दिट्ठं ॥ ११०
दासीदासेहिं तहा वंठादियविविहरूवभिच्चेहिं । होइ तह दाससेण्णं[2] सत्तहि कच्छाहि संजुत्तं ॥ १११
पच्छिमदिसाविभागे सरवरमज्झम्मि[3] सररुहेसु तहा[4] । सत्तेव य वरगेहा सत्ताणीयाण[5] णिद्दिट्ठा ॥ ११२
सामाणिओ सुरिंदो आभरणविहूसिओ परमरूवो । चत्तारिसहस्साणं देवाणं अहिवई धीरो ॥ ११३
संपुण्णचंदवयणो पलंबबाहू य सत्थसव्वंगो । णीलुप्पलणीसासो अहिणवकणियार[7]संकासो ॥ ११४
पच्छिमउत्तरभागे उत्तरभागे य पुव्वउत्तरदो[8] । तह चत्तारिसहस्सा तस्स गिहा होंति पउमेसु[9] ॥ ११५
दिव्वामलदेहधरा दिव्वाभरणेहि भूसियसरीरा । मणिगणजलंतमउडा वरकुंडलमंडियागंडा ॥ ११६
सिंहासणमज्झगया वरचामरविज्जमाण बहुमाणा । धवलादवत्तचिण्हा चदुदेवसहस्सपरिवारा ॥ ११७
सिरिदेविपादरक्खा चउरो य हवंति तेजसंपण्णा । बहुविहजोहे[10]समग्गा ओलग्गंता परिचरंति ॥ ११८
भवणाणि ताण[11] हुंति हु चदुसु वि य दिसासु पउमकुल्लेसु[12] । पत्तेयं पत्तेयं चदुरो चदुरो सहस्साणि ॥ ११९

नर्तकों व गायकोंकी सेना सात भागोंसे युक्त कही गई है ॥ ११० ॥ दासी-दासों तथा वंठ (वामन या अविवाहित) आदि विविध प्रकारके स्वरूपवाले भृत्योंसे संयुक्त दासोंकी सेना सात कक्षाओंसे युक्त होती है ॥ १११ ॥ सरोवरके बीच पश्चिम दिशा-भागमें कमलोंके ऊपर सात अनीकोंके सात ही उत्तम गृह निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ११२ ॥ आभरणोंसे विभूषित, धीर और उत्तम रूपवाला सामानिक सुरेन्द्र चार हजार देवोंका अधिपति होता है ॥ ११३ ॥ उक्त सुरेन्द्र पूर्ण चन्द्रके समान मुखवाला, लम्बे बाहुओंसे सहित, स्वस्थ सब अवयवोंसे सुशोभित, नीलोत्पलके समान निश्वाससे युक्त और नवीन कनेरपुष्पके सदृश होता है ॥ ११४ ॥ पश्चिम-उत्तर भाग (वायव्य), उत्तरभाग तथा पूर्व-उत्तर भाग (ईशान) में पद्मोंके ऊपर उसके चार हजार गृह हैं ॥११५॥ दिव्य व निर्मल देहके धारक, दिव्य आभरणोंसे भूषित शरीरवाले, मणिसमूहसे चमकते हुए मुकुटसे शोभायमान, उत्तम कुण्डलोंसे मण्डित कपोलोंसे संयुक्त, सिंहासनके मध्यमें स्थित, उत्तम चामरोंसे वीज्यमान, बहुमानी, धवल आतपत्र रूप चिह्नसे सहित, चार हजार परिवार देवोंसे संयुक्त, श्री देवीके चरणोंकी रक्षा करनेवाले, तेजस्वी, तथा बहुत प्रकारके योद्धाओंसे सहित वे देव श्री देवीकी सेवा करते हुए परिचर्या करते हैं ॥११६-१८॥ उनमेंसे प्रत्येकके चारों दिशाओंमें कमलपुष्पोंके ऊपर चार चार हजार भवन हैं ॥ ११९ ॥

१ उ श अदियसवूवाण. २ अतोऽग्रे बप्रतौ ' रूवसिकेहिं । होइहवाहा सत्तेव पवरगेहा सत्ताणायणि णिद्दिट्ठा ॥ ' एवंविधः पाठः । ३ श होइ सवाहसेणं. ४ बप्रतावतोऽग्रे ' सररुहेसु तहा सत्ताणीयाणि णिद्दिट्ठा ॥ ' इति पाठः । ५ श सररुहेसपहेसत्ता. ६ उ प ब श सत्ताणीयाणि. ७ उ प ब श कणियारि. ८ उ श पच्छिमउत्तरभागे य पुव्वउत्तरदो. ९ प ब तस्स हि गिहा होंति णियमेसु. १० ब जोय. ११ उ प ब श ताणि. १२ उ पउमकुल्लेसु, श पउपवुल्लेसु.

कुंदेंदुसंखहिमचयणिम्मलवरहारभूसियावच्छा । मणिगणकरओहामियदिणयरकरकुंडलाभरणा ॥ १२०
अट्ठोत्तरसयसंखा पडिहारा मंतिणो य दूदा य[2] । बहुपरिवारा धीरा उत्तमरूवा विणीदा य ॥ १२१
भवणाणि ताणं[3] दिट्ठा दहमज्झे होंति पउमगब्भेसु । अट्ठोत्तराणि णेया सद्दाणि दिसविदिसभागेसु ॥ १२२
सव्वाणि वरघराणि[4] य तोरणपायारसरवरादीणि । पउमिणिसंडाणि तहा अणाइणिहणाणि जाणाहि ॥ १२३
भवणाणि वि णायव्वा[5] कंचणमणिरयणवज्जमइयाणि । णलिदणीलमरगयदिणयरससिकिरणणिवहाणि ॥ १२४
भवणेसु तेसु णेया पुव्वक्कयसुकयकम्मजोगेण । उप्पज्जंति हु देवा देवीओ दिव्वरूवाओ ॥ १२५
एयं[7] च सयसहस्सा[8] चालीससहस्स होंति णिदिट्ठा[9] । एयं च सयं णेया सोलस कमलाण परिसंखा ॥ १२६
विक्खंभुच्छेहादी पउमाणं दुगुणदुगुणवड्ढी दु । हिमवंतादो णेया जाव दु णिसहो गिरिंदो य ॥ १२७
जंबूदुमेसुं[10] एवं परिसंखा होंति जंबुगेहाणं । णवरि विसेसो जाणे चत्तारिदुमाहिया जंबू ॥ १२८
जंबूदुमाहिवस्से[11] दु चत्तारि हवंति तस्स महिसीओ । चत्तारि जंबुगेहा देवीणं होंति णिदिट्ठा ॥ १२९

कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं हिमसमूहके समान स्वच्छ उत्तम हारसे भूषित वक्षस्थलवाले, मणिसमूहकी किरणोंसे सूर्यकिरणोंको तिरस्कृत करनेवाले कुण्डलोंसे अलंकृत, बहुत परिवारवाले, धीर, उत्तम रूपसे युक्त और विनयको प्राप्त हुए ऐसे एक सौ आठ प्रतीहार, मंत्री व दूत होते हैं ॥ १२०-१२१ ॥ द्रहके मध्यमें दिशा-विदिशा भागोंमें पद्मोंके बीचमें उनके एक सौ आठ भवन निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये ॥ १२२ ॥ सब उत्तम घर, तोरण, प्राकार, सरोवरादिक तथा पद्मिनी-खण्ड अनादि निधन हैं, ऐसा जानिये ॥ १२३ ॥ ये भवन सुवर्ण, मणि, रत्न एवं वज्रसे निर्मित और इन्द्रनील, मरकत, सूर्यकान्त व चन्द्रकान्त मणियोंके समूहसे संयुक्त हैं ॥ १२४ ॥ उन भवनोंमें पूर्वकृत पुण्य कर्मके योगसे दिव्य रूपवाले देव और देवियां उत्पन्न होती हैं ॥ १२५ ॥ उन कमलोंकी संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह (१ + ३२००० + ४०००० + ४८००० + ७ + ४००० + १६००० + १०८ = १४०११६) जानना चाहिये ॥ १२६ ॥ हिमवान्‌से लेकर निषध पर्वत पर्यन्त कमलोंके विष्कम्भ व उत्सेधादिकोंमें दुगुणी दुगुणी वृद्धि जानना चाहिये ॥ १२७ ॥ इसी प्रकार जम्बू वृक्षोंके ऊपर जम्बूगृहोंकी भी संख्या है । यहां केवल इतना विशेष जानना चाहिये कि जम्बू वृक्ष चार वृक्षोंसे अधिक हैं ॥ १२८ ॥ जो देव जम्बू वृक्षका अधिपति है उसकी चार पट्टदेवियां हैं । उन देवियोंके चार जम्बू वृक्ष निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १२९ ॥ इस

---

१ उ हिम्मरयणिम्मल, श हिम्मरयणीमाल. २ उ प ब य पहुदा य, श य पहुदा या. ३ ब श ताणि. ४ उ सघाणि वरव्वराणि, श सयाणि वरव्वराणि. ५ श वियाणव्वा. ६ उ मज्ज, श मज्झ. ७ प ब एवं. ८ श सहसहस्सा. ९ उ श होंति ति णिदिट्ठा. १० उ श जंबूदुमेछ. ११ उ प ब श जंबूदुमाविवस्स.

एदेण कारणेण य चदुसहिया[1] होंति जंबुगेहाणि । जह वण्णणा सरस्स[2] दु तह जंबुदुमस्स[3] णिद्दिट्ठा ॥ १३०
उणवीसा एयसयं चालीससहस्स तह य जंबुघरा[4] । एयं च सयसहस्सं जंबुस्स दु होंति परिवारा ॥ १३१
वीसहियसयं णेया चालीससहस्स एगलक्खं च । जंबूदुमपरिसंखा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ १३२
जावदिय जंबुभवणा जावदिया तह य पउमवरभवणा । तावदिया णिद्दिट्ठा जिणभवणा होंति रयणमया ॥ १३३
जावदिय जंबुगेहा णाणाविहकणयरयणपरिणामा । तावदिया णायव्वा सामलिरुक्खाण परिगेहा ॥ १३४
णवएगएग सुण्णं चत्तारि य एग होंति परिसंखा[5] । थाणक्कमेण णेया सामलिरुक्खस्स परिवारा ॥ १३५
सुण्णदुगएक्कसुण्णं चत्तारि य एय होंति णिद्दिट्ठा । सामलितरुवर सव्वा थाणाणुकमेण जाणाहि ॥ १३६
एवं महाघराणं[6] परिसंखा ताण होंति णिद्दिट्ठा । खुल्लयघरणिवहाणं को वण्णइ ताण परिसंखा ॥ १३७
पुव्वाभिमुहा णेया उत्तमगेहा हवंति णिद्दिट्ठा । ताणाभिमुहा सेसा जहण्णगेहा वियाणाहि ॥ १३८
पउमेसु सामलीसु य जंबूरुक्खे य रयणपरिणामा । जिणभवणा णिद्दिट्ठा[7] अकिट्टिमा सासदसभावा ॥ १३९
भिंगारकलसदप्पणबुब्बुदघंटादिधयवडाएहिं । सोहंति जिणाण घरा मणिकंचणमंडिया दिव्वा ॥ १४०

....

कारण पद्मगृहोंकी अपेक्षा जम्बू वृक्ष चार अधिक हैं । जैसा वर्णन सरोवरका किया गया है वैसा ही जम्बू वृक्षका भी बतलाया गया है ॥ १३० ॥ जम्बू वृक्षके उत्तम परिवारवृक्ष एक लाख चालीस हजार एक सौ उन्नीस हैं ॥ १३१ ॥ जम्बू वृक्षोंकी संख्या सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस जानना चाहिये ॥ १३२ ॥ जितने जम्बूभवन और जितने पद्मभवन हैं उतने ही रत्नमय जिनभवन भी कहे गये हैं ॥ १३३ ॥ नाना प्रकारके सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप जितने जम्बूगृह हैं उतने ही शाल्मलिवृक्षोंके भी गृह जानना चाहिये ॥ १३४ ॥ नौ, एक, एक, शून्य, चार और एक (१४०११९) इस प्रकार स्थान (अंक-) क्रमसे शाल्मलिवृक्षके परिवारवृक्षोंकी संख्या जानना चाहिये ॥ १३५ ॥ शून्य, दो, एक, शून्य, चार और एक, (१४०१२०) इस प्रकार स्थान (अंक) क्रमसे सब शाल्मलिवृक्षोंकी संख्या निर्दिष्ट की गई जानना चाहिये ॥ १३६ ॥ इस प्रकार इन महागृहोंकी संख्या निर्दिष्ट की है । उनके क्षुद्र घरोंके समूहोंकी संख्याका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ १३७ ॥ उत्तम गृह पूर्वाभिमुख निर्दिष्ट किये गये हैं । शेष जघन्य गृह उनके सन्मुख जानना चाहिये ॥ १३८ ॥ पद्मों, शाल्मलिवृक्षों और जम्बूवृक्षोंके ऊपर रत्नोंके परिणाम रूप अकृत्रिम और शाश्वत स्वभाववाले जिनभवन निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १३९ ॥ मणियों और सुवर्णसे मण्डित ये दिव्य जिनभवन भृंगार, कलश, दर्पण, बुद्बुद, घंटादिक एवं ध्वजा-पताकाओंसे शोभायमान होते हैं ॥ १४० ॥ उन जिनभवनोंमें सब उपकरणोंसे सहित जिनप्रतिमायें

....

१ प ब या चदुसिया. २ उ जह वण्णण्णा सरस्स, ब जह वण्णणा सहस्स, श जह व वण्णण्णा सहस्स. ३ उ जंबुसरस्स, ब जंब्बुदुमस्स. ४ उ प ब जंबुवरा, श जंबुव्वरा. ५ उ श य एगग परिसंखा. ६ उ श महाव्वराणं. ७ उ श णुद्दिट्ठा, ब रिणद्दिट्ठा.

वरचामरभामंडलछत्तत्तयकुसुमवरिसणिवहेहिं । सव्वोवकरणसहिया जिणपडिमाओ विरायंति ॥ १४१
उववादघरा णेया अहिसेयघरा य मंडणघरा य । अत्थाणघरा विउला गब्भघरा[1] कीडणघरा य ॥ १४२
णाडयघरा विचित्ता वरतूरमुइंगसद्दगंभीरा । मोहणघरा विसाला कालागरुसुरहिगंधड्ढा ॥ १४३
डोलाघरा य रम्मा णाणामणिविप्फुरंतकिरणोहा । संगीयघरा तुंगा सभाघरा हुंति रमणीया ॥ १४४
एवं अवसेसाणं दीवाणं सुरवराण[2] पउमेसु । जंबूसु सामलीसु य संखापरिमाण णिद्दिट्ठा ॥ १४५
पउमस्स सिहरिजस्स य[3] तिण्णेव महाणदी समुद्दिट्ठा । अवसेसाण दहाणं सरियाओ होंति दो दो दु ॥ १४६
गंगा पउमदहादो णिस्सरिदूणं तु तोरणदुवारे । पुव्वाभिमुहेण गया[4] पंचेव य जोयणसयाणि ॥ १४७
गंगाकूडमपत्ता जोयणअद्धेण दक्खिणे वलिया । पंचेव जोयणसया तेवीसा अद्ध[5]कोसमधिया ॥ १४८
हिमवंतअंतमणिमयवरकूडमुहम्मि वसहरूवम्मि[6] । पविसित्तु पडइ धारा सयजोयणतुंगससिधवला ॥ १४९

उत्तम चामर, भामंडल, तीन छत्र और कुसुमवृष्टिके समूहोंसे विराजमान हैं ॥ १४१ ॥ उक्त जिनभवनोंमें विशाल उपपादगृह, अभिषेकगृह, मण्डनगृह, आस्थानगृह, गर्भगृह और विस्तृत क्रीडागृह जानना चाहिये । इनके अतिरिक्त उत्तम तूर्य एवं मृदंगके शब्दसे गंभीर विचित्र नाटकगृह, कालागरुकी सुगन्धसे व्याप्त विशाल मोहनगृह (मैथुनगृह), नाना मणिओंके प्रकाशमान किरणसमूहसे युक्त रमणीय दोलागृह, उन्नत संगीतगृह और रमणीय सभागृह भी होते हैं ॥ १४२–१४४ ॥ इसी प्रकार अवशेष द्वीपोंके पद्मों, जम्बूवृक्षों और शाल्मलिवृक्षोंपर स्थित उत्तम देवोंकी संख्याका प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ १४५ ॥ पद्म द्रह और शिखरी पर्वत पर स्थित महापुण्डरीक द्रहसे निकली हुई तीन तीन महानदियां तथा शेष द्रहोंसे निकली हुई दो दो नदियां कही गई हैं ॥ १४६ ॥ गंगानदी पद्म द्रहके पूर्व तोरणद्वारसे निकलकर पांच सौ योजन प्रमाण पूर्वकी ओर जाकर गंगाकूटको न पाकर अर्ध योजन पूर्वसे दक्षिणकी ओर मुड़ जाती है । पुनः पांच सौ तेईस योजन और अर्ध कोशसे अधिक आगे जाकर हिमवान्पर्वतके अन्तमें वृषभाकार मणिमय उत्तम कूट (नालि) के मुखमें प्रवेश करके सौ योजन ऊंचेसे चन्द्रके समान धवल गंगानदीकी धारा नीचे गिरती है ॥ १४७–१४९ ॥

विशेषार्थ — यहां पर्वतके ऊपर दक्षिणकी ओर जो गंगा नदीका ५२३ $\frac{१}{८}$ योजन प्रमाण जाना बतलाया गया है उसका कारण यह है कि गंगा नदी पर्वतके ठीक मध्यमेंसे जाती है । अत एव पर्वतके विस्तार (१०५२ $\frac{१२}{१९}$ यो.) मेंसे नदीके विस्तार (६ $\frac{१}{४}$ यो.) को घटाकर शेषको आधा करनेपर दक्षिणकी ओर जानेका उपर्युक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है—
१०५२ $\frac{१२}{१९}$ − ६ $\frac{१}{४}$ ÷ २ = ५२३ $\frac{२९}{१५२}$ ।

१ उ प ब श गुज्झघरा. २ प ब सरवराण. ३ उ श सिहरिस्स य. ४ श पुव्वाभिमुहे पगया. ५ ब ब श अद्ध. ६ उ श वूवसंवहम्मि.

छज्जोयण सक्कोसा पणालिया वित्थडा मुणेयव्वा । आयामेण य णेया बे कोसा तेत्तिया बहला ॥ १५०
सिंगमुहकण्णजीहाणयणाभूयादिएहि गोसरिसा । वसह त्ति तेण णामा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ १५१
तत्तो दुगुणा दुगुणा पणालिया वसहरूवसंठाणा । ताव गया णायव्वा जाव दु णिसहगिरिसिहरे ॥ १५२
तत्तो अद्धद्धखया वज्जपणालीण रयणणिवहाणं । विक्खंभा आयामा बहलपमाणा समुद्दिट्ठा ॥ १५३
गंगा जम्हि दु पाडिदा वंसधरादो तहिं हवे कुंडं[1] । दसजोयणावगाढं धरणियले सव्वदो वट्टं[2] ॥ १५४
सरिमुखदसगुणविउला तस्स दु बहुदेसमज्झभागम्मि । दीवो रयणविचित्तो विस्थिण्णो जोयणा अट्ठ ॥ १५५
वज्जमयमहादीवे बेकोससमुट्ठिदे सिदजलादो । तम्हि बहुमज्झभागे णगोत्तमो होइ णिद्दिट्ठो ॥ १५६
दसजोयणउव्विद्धो[4] मूले चत्तारि जोयणायामो[5] । बे जोयण मज्झम्मि य उवरिं एगो समुद्दिट्ठो ॥ १५७
तस्स दु मज्झे दिव्वो पासादो कणयरयणपरिणामो । मणिगणजलंतखंभो गंगाकूडो त्ति णामेण ॥ १५८
बेधणुसहस्सतुंगो अड्ढादिज्जा धणूणि वित्थिण्णो । णवचंपयगंधड्ढो संपुण्णमियंककिरणोहो[7] ॥ १५९

नालीका विस्तार छह योजन एक कोश, आयाम दो कोश और इतना ही उसका बाहल्य भी जानना चाहिये ॥ १५० ॥ नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप यह नाली चूंकि सींग, मुख, कान, जिह्वा, नयन और भ्रू आदिकोंसे गौके सदृश है, इस कारण उसका नाम 'वृषभ' है ॥ १५१ ॥ इसके आगे निषध पर्वत पर्यन्त उक्त वृषभाकार नालीका विस्तारादि उत्तरोत्तर दुगुणा दुगुणा जानना चाहिये ॥ १५२ ॥ निषध पर्वतसे आगे रत्नसमूहसे निर्मित उक्त नालियोंके विष्कम्भ, आयाम और बाहल्यका प्रमाण उत्तरोत्तर आधा आधा हीन कहा गया है ॥ १५३ ॥ गंगानदी हिमवान् पर्वतसे जहां गिरी है वहां पृथ्वीतलपर सब ओरसे गोल दश योजन गहरा कुण्ड है ॥ १५४ ॥ गंगा नदीकी धारासे दशगुणे ($६\frac{१}{४} \times १० = ६२\frac{१}{२}$ यो.) विस्तारवाले उक्त कुण्डके ठीक बीचमें रत्नोंसे विचित्र आठ योजन विस्तृत द्वीप है ॥ १५५ ॥ धवल जलसे ऊपर दो कोश ऊंचे उस महा द्वीपके बहुमध्य भागमें उत्तम वज्रमय पर्वत कहा गया है ॥ १५६ ॥ यह पर्वत दश योजन ऊंचा और मूलमें चार योजन, मध्यमें दो योजन तथा ऊपर एक योजन आयाम (विस्तार) वाला कहा गया है ॥ १५७ ॥ उसके मध्य भागमें सुवर्ण व रत्नोंके परिणाम स्वरूप एवं मणिगणोंसे प्रकाशमान खम्भोंसे सहित गंगाकूट नामक दिव्य प्रासाद है ॥ १५८ ॥ नवीन चम्पककी गन्धसे व्याप्त और सम्पूर्ण चन्द्रमाके समान किरणसमूहसे सहित वह प्रासाद दो हजार धनुष ऊंचा व अढ़ाई [हजार] धनुष विस्तीर्ण है [ति. प. ४-२२५ और त्रि. सा. ५८८ में इसका विस्तार मूलमें ३००० मध्यमें २००० और ऊपर १००० धनुष प्रमाण बतलाया गया है] ॥ १५९ ॥ सूर्यमण्डलके

---

१ उ कूडा, प ब कुंडो, श कुडं. २ उ प वट्टं, प ब वट्ट. ३ प ब समुद्विदो सिद°, श कोससमुट्ठिदे सिद° ४ उ उविद्धो, श विस्द्धो. ५ श जोयणायामे. ६ श ते. ७ प ब किरणेहो.

रयणमय वरदुवारो चालीसधणुप्पमाणविस्थिण्णो । आइच्चमंडलणिभो असीदिधणुउण्णओ दिव्वो ॥ १६०
वरवेदियपरिखित्ते[1] चउगोउरमंडिए परमरम्मे । दिव्ववणसंडजुत्ते गंगादेवी तहिं वसई[2] ॥ १६१
जिणपडिमासंछण्णो भवणोवरि तुंग[3]कूडसिहरम्मि । पणुवीसविस्थडा सा गंगाधारा तहिं पडइ ॥ १६२
वरकुंडकुंडदीवा कुंडणगा कुंडविउलपासादा । दुगुणा दुगुणा णेया णिसधो त्ति धराचलो जाम[4] ॥ १६३
बे कोसा बासट्ठा पणवीस सदं दुअद्धपंचसदा[5] । गंगादियकुंडाणं विण्णेया जोयणा होंति ॥ १६४
अड सोला बत्तीसा चउसट्ठा जोयणा हवे दीवा । दस वीसा चालीसा असीदि तुंगा तहा सेला ॥ १६५
चत्तारि अट्ठ सोलस बत्तीसा विस्थडा य मूलेसु । दोण्णि चदुरट्ठ सोलस मज्झेसु हवंति सेलाणं ॥ १६६
एय दुय चदुर अट्ठ[6] य विस्थारा होंति तुंगसिहरेसु । सरिकुंडणगाण तहा णिद्दिट्ठा होंति णियमेण ॥ १६७
पणुवीसा पण्णासा जोयणसद[7] बेसदा समुद्दिट्ठा । गंगादीसरियाणं णेया धारा हवे रुंदा ॥ १६८
जोयणसदेक्क बे चउ हिमकुंदमुणालसंखसंकासा । दीहा धारावडणा गंगादीणं सरीणं तु ॥ १६९
सव्वे वि वेदिणिवहा वरतोरणमंडिया परमरम्मा । पवरच्छरेहिं[8] भरिया अंच्छेरयरूवसाराहि ॥ १७०

सदृश उसका रत्नमय उत्तम दिव्य द्वार चालीस धनुष प्रमाण विस्तीर्ण और अस्सी धनुष उन्नत है ॥ १६० ॥ उत्तम वेदीसे वेष्टित, चार गोपुरोंसे मण्डित और दिव्य वनखण्डोंसे युक्त उस अतिशय रमणीय प्रासादमें गंगादेवी निवास करती है ॥ १६१ ॥ वहां भवनके ऊपर स्थित जिनप्रतिमासे युक्त उन्नत कूटशिखरपर वह गंगानदीकी धारा पच्चीस योजन विस्तृत होकर गिरती है ॥ १६२ ॥ निषधपर्वत पर्यन्त उत्तम कुण्ड, कुण्डद्वीप, कुण्डनग और विशाल कुण्डप्रासाद, ये सब दूने दूने जानने चाहिये ॥ १६३ ॥ उक्त गंगादिक कुण्डोंका विस्तार क्रमसे बासठ योजन दो कोश, एक सौ पच्चीस योजन, दो सौ व अर्ध सौ (अढ़ाई सौ) तथा पांच सौ योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १६४ ॥ कुण्डस्थ द्वीपोंका विस्तार क्रमशः आठ, सोलह, बत्तीस और चौंसठ योजन; तथा उनमें स्थित शैलोंकी उंचाई क्रमशः दश, बीस, चालीस और अस्सी योजन प्रमाण है ॥ १६५ ॥ उक्त शैलोंका मूलविस्तार क्रमसे चार, आठ, सोलह और बत्तीस योजन; तथा मध्यविस्तार दो, चार, आठ और सोलह योजन है ॥ १६६ ॥ नदीकुण्डस्थ उक्त पर्वतोंका विस्तार उन्नत शिखरोंपर नियमसे एक, दो, चार और आठ योजन प्रमाण कहा गया है ॥ १६७ ॥ गंगादिक नदियोंकी धाराका विस्तार क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और दो सौ योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १६८ ॥ हिम, कुन्दपुष्प, मृणाल और शंख जैसे वर्णवाले गंगादिक नदियोंके धारापतनोंकी दीर्घता उत्तरोत्तर एक सौ, दो सौ और चार सौ योजन प्रमाण है ॥ १६९ ॥ नदीकुण्डस्थ पर्वतोंके ऊपर स्थित सब ही प्रासाद वेदीसमूहसे सहित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय,

१ उ श परिखिन्ने. २ उ श तहिं इ वसइ. ३ उ श तुरंग. ४ उ श णिसधो त्ति धराचलो जामा, प ब णिसधधराचलो जाम. ५ उ श सदं दुअद्धसदा, ब सदंद्धपंचसदा. ६ उ एय दुय चदु अट्ठ, श एय च दुय चदु अट्ठ. ७ प ब दस. ८ उ प ब श पवरच्छोहि.

~~णिच्चं मणो~~हिरामा अच्छेरयरूवसारसंठाणा। पुप्फोवयारपउरा वंदणमालुज्जलसिरीया ॥ १७१
णिवडंतसलिलपउरा सियचामरहारतारसंकासा। लंबंतरयणमाला मणिकमलकदच्चणसणाहा ॥ १७२
घंटाकिंकिणिणिवहा जलधारापायजणियझंकारा। जिणसिद्धबिंबणिवहा सरिकुंडणगाण पासाया ॥ १७३
णीसरिदूण य गंगा कुंडदुवारेण दक्खिणाभिमुखी। वेदड्ढगुहामज्झे पुव्वसमुद्दं अणुप्पत्ता[5] ॥ १७४
मणिमंडियाण णेया वज्जिंदमसारगल्लमइयाणं। वरतोरणाणं हेट्ठा[7] बिलेण पइसंति सरियाओ[8] ॥ १७५
तेणउदिजोयणाइं उत्तुंगो विविहरयणसंछण्णो। तिण्णेव हवे कोसा परिसंखा तस्स जाणीहि ॥ १७६
बे कोसा बासट्ठा वित्थारो तोरणे[10] समुद्दिट्ठो। बे कोसा अवगाढो बे कोसा[11] होइ बहुलेण ॥ १७७
अवसेसतोरणाणं णिम्मलमणिकणयरयणणिवहाणं। दुगुणा दुगुणा णेया वित्थारो जाम सीदोदा[12] ॥ १७८
गंगासिंधूतोरण बासट्ठी जोयणा दु बे कोसा। भरहम्मि समुद्दिट्ठा लवणसमुद्दप्पवेसेसु[13] ॥ १७९
रोहीरोहिदतोरण पणुवीस सदाणि जोयणपमाणा। हेमवदे वित्थिण्णा सायरसलिलप्पवेसेसु ॥ १८०

आश्चर्यजनक उत्तम रूपवाली अप्सराओंसे परिपूर्ण, सदा मनको रमानेवाले, आश्चर्यजनक श्रेष्ठ रूप व आकृतिसे सहित, प्रचुर पुष्पोंके उपचारसे सहित, वन्दनमालाओंसे उज्ज्वल शोभाको प्राप्त, गिरते हुए प्रचुर जलसे संयुक्त; धवल चामर, हार व मोती (या तारा) के सदृश; लम्बायमान रत्नमालाओंसे युक्त, मणिमय कमलोंसे की गई पूजासे सनाथ, घंटा व किंकिणियोंके समूहसे सहित, जलधाराके पातसे उत्पन्न हुए झंकारसे परिपूर्ण, तथा जिन एवं सिद्धोंकी प्रतिमाओंके समूहसे युक्त हैं ॥ १७०–१७३ ॥ गंगानदी गंगाकुण्ड-द्वारसे निकलकर दक्षिणाभिमुख होती हुई वैताढ्य पर्वतकी गुफाके मध्यमेंसे पूर्व समुद्रको प्राप्त होती है ॥ १७४ ॥ गंगादिक नदियां मणियोंसे मण्डित और वज्र, इन्द्र [-नील] एवं मसारगल्ल (एक रत्नजाति) से निर्मित उत्तम तोरणोंके नीचे बिलमेंसे समुद्रमें प्रवेश करती हैं ॥ १७५ ॥ विविध रत्नोंसे व्याप्त उस तोरणकी उंचाईका प्रमाण तेरानवै योजन और तीन कोश जानना चाहिये ॥ १७६ ॥ उक्त तोरणका विस्तार बासठ योजन दो कोश, अवगाह दो कोश और बाहल्य दो कोश प्रमाण है ॥ १७७ ॥ सीतोदा पर्यन्त निर्मल मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके समूह रूप सेस तोरणोंका विस्तार उत्तरोत्तर दूना दूना जानना चाहिये ॥ ७८ ॥ भरत-क्षेत्रमें गंगा और सिन्धुके तोरण लवणसमुद्रके प्रवेशमें बासठ योजन और दो कोश प्रमाण विस्तीर्ण कहे गये हैं ॥ १७९ ॥ हैमवतक्षेत्रमें रोहित् व रोहितास्याके तोरण लवणसमुद्रके प्रवेशमें एक सौ पच्चीस योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं ॥ १८० ॥ हरिवर्ष क्षेत्रमें हरित् व हरि-

१ उ प ब श पवरच्छेरेहि. २ उ व्वंटा, श व्वंटा. ३ उ श धाराधाय, प ब धाराधाय. ४ उ श सिरि. ५ ब अणुपत्ता, श अणुप्पत्त. ६ प तोरणेण, ब तोरणण. ७ उ श हिट्ठा. ८ श परियाओ. ९ उ श °जोयणाइं विविह, ब °जोयणाइं उत्तंगो विविह. १० प ब तोरणो. ११ श अवगाढो सा. १२ ब श सीदोहा. १३ उ प ब श समुद्दापवेसेसु.

रयणमय वरदुवारो चालीसधणुप्पमाणविच्छिण्णो । आइच्चमंडलणिभो असीदिधणुउण्णओ दिव्वो ॥ १६०
वरवेदियपरिखित्ते[1] चउगोउरमंडिए परमरम्मे । दिव्ववणसंडजुत्ते गंगादेवी तहिं वसइ[2] ॥ १६१
जिणपडिमासंछण्णो भवणोवरि तुंगकूडसिहरम्मि[3] । पणुवीसविच्छडा सा गंगाधारा तहिं पडइ ॥ १६२
वरकुंडकुंडदीवा कुंडणगा कुंडविउलपासादा । दुगुणा दुगुणा णेया णिसधो त्ति धराचलो जाम[4] ॥ १६३
बे कोसा बासट्ठा पणवीस सदं दुअद्धपंचसदा[5] । गंगादियकुंडाणं विण्णेया जोयणा होंति ॥ १६४
अड सोला बत्तीसा चउसट्ठा जोयणा हवे दीवा । दस वीसा चालीसा असीदि तुंगा तहा सेला ॥ १६५
चत्तारि अट्ठ सोलस बत्तीसा विच्छडा य मूलेसु । दोण्णि चदुरट्ठ सोलस मज्झेसु हवंति सेलाणं ॥ १६६
एय दुय चदुर अट्ठ[6] य विच्छारा होंति तुंगसिहरेसु । सरिकुंडणगाण तहा णिद्दिट्ठा होंति णियमेण ॥ १६७
पणुवीसा पण्णासा जोयणसदं[7] बेसदा समुद्दिट्ठा । गंगादीसरियाणं णेया धारा हवे रुंदा ॥ १६८
जोयणसदेक्क बे चउ हिमकुंदमुणालसंखसंकासा । दीहा धारावडणा गंगादीणं सरीणं तु ॥ १६९
सव्वे वि वेदिणिवहा वरतोरणमंडिया परमरम्मा । पवरच्छरेहिं[8] भरिया अच्छेरयरूवसाराहि ॥ १७०

सदृश उसका रत्नमय उत्तम दिव्य द्वार चालीस धनुष प्रमाण विस्तीर्ण और अस्सी धनुष उन्नत है ॥ १६० ॥ उत्तम वेदीसे वेष्टित, चार गोपुरोंसे मण्डित और दिव्य वनखण्डोंसे युक्त उस अतिशय रमणीय प्रासादमें गंगादेवी निवास करती है ॥ १६१ ॥ वहां भवनके ऊपर स्थित जिनप्रतिमासे युक्त उन्नत कूटशिखरपर वह गंगानदीकी धारा पच्चीस योजन विस्तृत होकर गिरती है ॥ १६२ ॥ निषधपर्वत पर्यन्त उत्तम कुण्ड, कुण्डद्वीप, कुण्डनग और विशाल कुण्डप्रासाद, ये सब दूने दूने जानने चाहिये ॥ १६३ ॥ उक्त गंगादिक कुण्डोंका विस्तार क्रमसे बासठ योजन दो कोश, एक सौ पच्चीस योजन, दो सौ व अर्ध सौ (अढ़ाई सौ) तथा पांच सौ योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १६४ ॥ कुण्डस्थ द्वीपोंका विस्तार क्रमशः आठ, सोलह, बत्तीस और चौंसठ योजन; तथा उनमें स्थित शैलोंकी उंचाई क्रमशः दश, बीस, चालीस और अस्सी योजन प्रमाण है ॥ १६५ ॥ उक्त शैलोंका मूलविस्तार क्रमसे चार, आठ, सोलह और बत्तीस योजन; तथा मध्यविस्तार दो, चार, आठ और सोलह योजन है ॥ १६६ ॥ नदीकुण्डस्थ उक्त पर्वतोंका विस्तार उन्नत शिखरोंपर नियमसे एक, दो, चार और आठ योजन प्रमाण कहा गया है ॥ १६७ ॥ गंगादिक नदियोंकी धाराका विस्तार क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और दो सौ योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १६८ ॥ हिम, कुन्दपुष्प, मृणाल और शंख जैसे वर्णवाले गंगादिक नदियोंके धारापतनोंकी दीर्घता उत्तरोत्तर एक सौ, दो सौ और चार सौ योजन प्रमाण है ॥ १६९ ॥ नदीकुण्डस्थ पर्वतोंके ऊपर स्थित सब ही प्रासाद वेदीसमूहसे सहित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय,

१ उ श परिखिने. २ उ श तहिं इ वसइ. ३ उ श तुरंग. ४ उ श णिसधो त्ति धराचलो जामा, प ब णिसधधराचलो जाम. ५ उ श सदं दुअद्धसदा, ब सदंद्धपंचसदा. ६ उ एय दुय चदु अड्ड, श एय च दुय चदु अट्ठ. ७ प ब दस. ८ उ प ब श पवरछरेहि.

णिच्चं मणोहिरामा अच्छेरयरूवसारसंठाणा । पुप्फोवयारपउरा वंदणमालुज्जलसिरीया ॥ १७१
णिवडंतसलिलपउरा सियचामरहारतारसंकासा । लंबंतरयणमाला मणिकमलकदच्चणसणाहा ॥ १७२
घंटाकिंकिणिणिवहा जलधारापायजणियझंकारा । जिणसिद्धबिंबणिवहा सरिकुंडणगाण पासाया ॥ १७३
णीसरिदूण य गंगा कुंडदुवारेण दक्खिणाभिमुखी । वेदड्ढगुहामज्झे पुव्वसमुद्दं अणुप्पत्ता[5] ॥ १७४
मणिमंडियाण णेया वज्जिंदमसारगल्लमइयाणं । वरतोरणाणं हेट्ठा[7] बिलेण पइसंति सरियाओ[8] ॥ १७५
तेणउदिजोयणाइं उत्तुंगो विविहरयणसंछण्णो । तिण्णेव हवे कोसा परिसंखा तस्स जाणीहि ॥ १७६
बे कोसा बासट्ठा वित्थारो तोरणे[10] समुद्दिट्ठो । बे कोसा अवगाढो बे कोसा[11] होइ बहुलेण ॥ १७७
अवसेसतोरणाणं णिम्मलमणिकणयरयणणिवहाणं । दुगुणा दुगुणा णेया वित्थारो जाम सीदोदा[12] ॥ १७८
गंगासिंधूतोरण बासट्ठी जोयणा दु बे कोसा । भरहम्मि समुद्दिट्ठा लवणसमुद्दप्पवेसेसु[13] ॥ १७९
रोहीरोहिदतोरण पणुवीस सदाणि जोयणपमाणा । हेमवदे वित्थिण्णा सायरसलिलप्पवेसेसु ॥ १८०

आश्चर्यजनक उत्तम रूपवाली अप्सराओंसे परिपूर्ण, सदा मनको रमानेवाले, आश्चर्यजनक श्रेष्ठ रूप व आकृतिसे सहित, प्रचुर पुष्पोंके उपचारसे सहित, वन्दनमालाओंसे उज्ज्वल शोभाको प्राप्त, गिरते हुए प्रचुर जलसे संयुक्त; धवल चामर, हार व मोती (या तारा) के सदृश; लम्बायमान रत्नमालाओंसे युक्त, मणिमय कमलोंसे की गई पूजासे सनाथ, घंटा व किंकिणियोंके समूहसे सहित, जलधाराके पातसे उत्पन्न हुए झंकारसे परिपूर्ण, तथा जिन एवं सिद्धोंकी प्रतिमाओंके समूहसे युक्त हैं ॥ १७०–१७३ ॥ गंगानदी गंगाकुण्ड-द्वारसे निकलकर दक्षिणाभिमुख होती हुई वैताढ्य पर्वतकी गुफाके मध्यमेंसे पूर्व समुद्रको प्राप्त होती है ॥ १७४ ॥ गंगादिक नदियां मणियोंसे मण्डित और वज्र, इन्द्र [-नील] एवं मसारगल्ल (एक रत्नजाति) से निर्मित उत्तम तोरणोंके नीचे बिलमेंसे समुद्रमें प्रवेश करती हैं ॥ १७५ ॥ विविध रत्नोंसे व्याप्त उस तोरणकी उंचाईका प्रमाण तेरानबै योजन और तीन कोश जानना चाहिये ॥ १७६ ॥ उक्त तोरणका विस्तार बासठ योजन दो कोश, अवगाह दो कोश और बाहल्य दो कोश प्रमाण है ॥१७७॥ सीतोदा पर्यन्त निर्मल मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके समूह रूप सेस तोरणोंका विस्तार उत्तरोत्तर दूना दूना जानना चाहिये ॥७८॥ भरत-क्षेत्रमें गंगा और सिन्धुके तोरण लवणसमुद्रके प्रवेशमें बासठ योजन और दो कोश प्रमाण विस्तीर्ण कहे गये हैं ॥ १७९ ॥ हैमवतक्षेत्रमें रोहित् व रोहितास्याके तोरण लवणसमुद्रके प्रवेशमें एक सौ पच्चीस योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं ॥ १८० ॥ हरिवर्ष क्षेत्रमें हरित् व हरि-

---

१ उ प ब श पवरच्छरेहि. २ उ व्वंटा, श व्वंत्रा. ३ उ श धाराघाय, प ब धाराधाय. ४ उ श सिरि. ५ ब अणुपत्ता, श अणुप्पत्त. ६ प तोरणेण, ब तोरणण. ७ उ श हिट्ठा. ८ श परियाओ. ९ उ श °जोयणाइं विविह, ब °जोयणाइं उत्तंगो विविह. १० प ब तोरणो. ११ श अवगाढो सा. १२ ब श सीदोहा. १३ उ प ब श समुद्दापवेसेसु.

दारिहरिकंतातोरण वेसदपण्णासजोयणपमाणा । हरिवरिसे वित्थिण्णा लवणसमुद्दप्पवेसेसु ॥ १८१
सीदासीदोदाणं तोरणदारा हवंति वित्थिण्णा । पंचेव जोयणसदा विदेहमज्झम्मि लवणंते ॥ १८२
लंबंतरयणपउरा मुत्तादामेहि मंडिया दिव्वा । णाणापडायमाला पवणपणच्चंतसोहाहिं[1] ॥ १८३
चामरघंटाकिंकिणि[2]वंदणमालाहिं सोहिया पवरा । भिंगारकलसदप्पणचामीयरकमलकयसोहा ॥ १८४
मणिसालहंजिगपवरकणयमया[3]सीहवालयसणाहा । वरचामरादि[4]सहिया जिणपडिदविहूसिया रम्मा ॥ १८५
वज्जिंदणीलमरगयकक्केयणपुस्सरागपरिणामा । कंचणपवालणिवहा तोरणदारा समुद्दिट्ठा ॥ १८६
मेहलकला[5]वमणिगणकरणियरविभिण्ण[6]अंधयाराओ । कडिसुत्तकडयकुंडलवरहारविहूसियंगीओ ॥ १८७
लायण्णरूवजोव्वणबहुगुणसंदोहसुव्वहंतीओ । कलरडिदमिदुं[7]पजंपियदसणुज्जलचंदधवलाओ ॥ १८८
दिणयरकरणियराहयविभिण्णसयवत्तगब्भगउराओ । सरसमयमेघविरहियसंपुण्णमियंकवयणाओ ॥ १८९
उण्णयपीणपओहरउव[8]रिविरायंतचारुहाराओ । ससिदलि[9]दंकुमुदकुवलयवियासियसयवत्तणेत्ताओ ॥ १९०
धम्मेण होंति ताओ देवीओ तोरणाण रम्माओ । मणिमयपासादेसु य णाणामणिविप्फुरंतकिरणेसु ॥ १९१

कान्ताके तोरण लवणसमुद्रके प्रवेशमें दो सौ पचास योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं ॥ १८१ ॥ विदेहके मध्यमें सीता-सीतोदाके तोरणद्वार लवणसमुद्रके समीप पांच सौ योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं ॥ १८२ ॥ उक्त तोरणद्वार लम्बायमान प्रचुर रत्नोंसे सहित, मुक्तामालाओंसे मण्डित, दिव्य, पवनसे प्रेरित होकर आकाशमें नाचनेवाली नाना पताकाओंके समूहों और चामर, घंटा, किंकिणी व वन्दनवारोंसे शोभित; श्रेष्ठ; भृंगार, कलश, दर्पण व सुवर्णकमलोंसे शोभायमान; मणिमय शालभंजिका (पुतली) एवं श्रेष्ठ सुवर्णमय सिंहबालकोंसे सनाथ, उत्तम चामरादिकोंसे सहित जिनप्रतिमाओंसे विभूषित, रमणीय; वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन एवं पुखराज मणियोंके परिणाम रूप और सुवर्ण एवं मूगाओंके समूहसे युक्त कहे गये हैं ॥ १८३-१८६ ॥ इन तोरणोंपर स्थित नाना मणियोंकी प्रकाशमान किरणोंसे सहित मणिमय प्रासादोंमें मेखलाकलापमें जड़ी हुई मणियोंके किरणसमूहसे अन्धकारको नष्ट करनेवाली; कटिसूत्र, कटक, कुण्डल एवं उत्तम हारसे विभूषित शरीरवाली; लावण्यमय रूप, यौवन एवं बहुतसे गुणोंके समुदायको धारण करनेवालीं; कलरटित व मृदु प्रजल्पनमें [प्रगट होनेवाले] दांतोंसे उज्ज्वल एवं चन्द्रके समान धवल, सूर्यके किरणसमूहसे आहत होकर विकासको प्राप्त हुए कमलके मध्य भागके समान गौर वर्णवाली, शरत्कालीन मेघोंसे रहित सम्पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवालीं, उन्नत एवं स्थूल पयोधरोंके ऊपर विराजमान सुन्दर हारसे अलंकृत, तथा चन्द्रसे विकासको प्राप्त हुए कुमुद, कुवलय व विकसित कमलके समान नेत्रोंवाली वे रमणीय देवियां धर्मके प्रभावसे उत्पन्न होती हैं ॥ १८७-१९१ ॥ गंगा, रोहित्, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता, ये

---

१ ब °सोहाहिं. २ उ किंकिण, श किंकण. ३ उ प ब श सालहंजिगयत्ररकणयलया. ४ उ प ब श चामराहि. ५ उ कलाब, श कलाण. ६ उ विहिण्ण, श विहिण. ७ उ श कलरिमिदमहु°, प ब कलिरिडिदामिहु° ८ उ श उवर ९ उ श दनिद.

गंगा य रोहिदा सा पुणं हरि सीदा य होंति णारी य। वंसे सुवण्णकूला रत्ता वि य पुव्वगा सरिदा ॥ १९२
सिंधू य रोहिदासा हरिकंता चेव होइ सीदोदा। अपरेण य णरकंता रुप्पक्कूला य रत्तवदिगा य ॥ १९३
छज्जोयण सक्कोसा पवहो[2] अंते य दसगुणो[3] वासो। भरहेरवदणदीणं वंसे वंसे हवे दुगुणा ॥ १९४
कोसद्धं उच्छेदो पवहो[4] अंते य दसगुणो होदि। भरहेरवदणदीणं वंसे वंसे हवे दुगुणा ॥ १९५
भरहेरावदएक्के[5] अट्ठावीसा णदीसहस्साणि। दुगुणा दुगुणा परदो वंसे वंसेसु णादव्वा ॥ १९६
वंसे महाविदेहे सरिदसहस्साणि होंति चउसट्ठी। दस चेव सदसहस्सा कुरुवंसेगं च चुलसीदि ॥ १९७
चोद्दसगसदसहस्सा छप्पण्णा तह सहस्स णउदी य। परिमाणं णादव्वं जंबूदीवस्स सरिदाओ ॥ १९८

नदियां [अपने अपने] वर्षमें पूर्व समुद्रको जानेवाली हैं ॥ १९२ ॥ सिन्धु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तवती (रक्तोदा), ये नदियां अपर समुद्रको जानेवाली हैं ॥ १९३ ॥ भरत और ऐरावत क्षेत्रोंकी नदियोंका प्रवाह प्रारम्भमें छह योजन और एक कोश प्रमाण होता है। वही अन्तमें इससे दशगुणे विस्तारवाला हो जाता है। यह नदीप्रवाह [विदेह वर्ष तक] एक वर्षसे दूसरे वर्षमें दुगुणा होता गया है ॥ १९४ ॥ भरत और ऐरावत क्षेत्रोंकी नदियोंका अर्ध कोश ऊंचा प्रवाह अन्तमें दशगुणा (५ को.) हो जाता है। यह प्रवाह आगे प्रत्येक क्षेत्रमें दुगुणा समझना चाहिये ॥१९५॥ भरत और ऐरावतमेंसे प्रत्येक क्षेत्रमें अट्ठाईस हजार नदियां हैं। इससे आगे क्षेत्र-क्षेत्रमें उनका प्रमाण दुगुणा जानना चाहिये ॥ १९६ ॥ महाविदेह क्षेत्रमें दस लाख चौंसठ हजार (३२ विदेहोंकी गंगा-सिन्धू आदि ६४ नदियोंकी सहायक नदी १४००० × ६४ = ८९६०००, दोनों कुरु क्षेत्रोंकी ८४००० × २=१६८०००; १६८००० + ८९६००० = १०६४०००.) और प्रत्येक कुरु क्षेत्रमें चौरासी हजार नदियां हैं ॥ १९७ ॥ जम्बूद्वीपकी समस्त नदियोंका प्रमाण चौदह लाख छप्पन हजार नब्बे जानना चाहिये (गंगा-सिन्धूकी सहायक नदी १४००० × २ = २८०००, रोहित्-रोहितास्या ५६०००, हरित्-हरिकान्ता ११२०००, देव व उत्तर कुरुमें सीता-सीतोदाकी सहायक नदी ८४००० × २ = १६८०००, विदेहक्षेत्रस्थ गंगा व सिन्धू आदि ६४ नदियोंकी सहायक नदी ६४ × १४००० = ८९६०००; गंगादि १४ बत्तीस विदेहस्थ गंगा-सिन्धू आदि ६४, विभंगा १२; २८००० + ५६००० + ११२००० + १६८००० + ८९६००० + ११२००० + ५६००० + २८००० + १४ + ६४ १२ = १४५६०९०; यहां विभंगा नदियोंकी सहायक ३३६००० नदियोंकी विवक्षा नहीं की गई है) ॥ १९८ ॥ नदियोंके उभय तटोंपर मणिमय तोरणोंसे मण्डित, दो गव्यूति ऊंची

१ श गंगा य दिसा पुण. २ उ प ब पवहे, श यवहो. ३ उ श दसगुणा वासो, प ब दसगुणो वासो. ४ उ प ब श पवहे. ५ प एको, ब येको.

उभयतडेसु णदीणं मणितोरण[1]मंडिया मणभिरामा[2] । वरवेदी णिद्दिट्ठा वेगाउदउण्णया दिव्वा ॥ १९९
ससिकंतरयणणिवहा मणिगणकरणियरणासियतमोहा । वज्जिंदणीलमरगयकक्केयणपउमरायमया ॥ २००
वरइंदीवरवण्णा कुंदेंदुतुसारहारसंकासा । गयगवलकज्जलणिहा गोरोयणसच्छहा पवरा ॥ २०१
चंपयअसोयवण्णा पुण्णागपियंगुकुसुमसंकासा । किंसुयपवाल[3]वण्णा पप्फुल्लियकमलसंकासा ॥ २०२
सव्वणईणं णेया रमणीया विविहरयणसंछण्णा । सोवाणा णिद्दिट्ठा णवचंपयसुरहिगंधड्ढा ॥ २०३
फणसंबतालदाडिमपियंगुणारंगचीवर[4]सणाहा । बहुणालिकेरकदलीसज्जज्जुणकुडयसंछण्णा ॥ २०४
गोसीसमलयचंदणकप्पूरकयंबसालतरुपउरा । पुण्णागणागचंपयवियसियकणवीरवणणिवहा ॥ २०५
पवणवसचलियपल्लवअसोयहिंतालपाडलसणाहा । गुंजंतमत्तमहुयरिअलिउल[5]कुजणियझंकारा ॥ २०६
बहुजादिजूहिकुज्जयतंबूलमिरीइवेल्लि[6]संछण्णा । मंदारकुंदकेदगिअइमुत्तलयाउलसिरीया ॥ २०७
दिव्वामोयसुयंधा णाणाफलफुल्ल[7]णिवहसंछण्णा । दोसु वि तडेसु होंति हु सव्वाण णदीण वणसंडा ॥ २०८

मनोहर दिव्य उत्तम वेदियां निर्दिष्ट की गई हैं ॥१९९॥ सब नदियों [की उक्त वेदियों] के चन्द्रकान्त रत्नोंके समूहसे युक्त, मणिगणोंके किरणसमूहसे अन्धकारसमूहको नष्ट करनेवाले; वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन और पद्मराग मणियोंसे निर्मित; कोई उत्तम इन्दीवरके समान वर्णवाले; कोई कुन्दपुष्प, तुषार एवं हारके सदृश; कोई गज, गवल (जंगली पशुविशेष) अथवा कज्जलके सदृश, कोई गोरोचनके सदृश कान्तिवाले, कोई चम्पक व अशोकके समान वर्णवाले, कोई पुन्नाग व प्रियंगु कुसुमके सदृश, कोई किंशुक (पलाश) के कोमल पत्र जैसे वर्णवाले, तथा कोई विकसित कमलके सदृश, ऐसे नाना प्रकारके रत्नोंसे व नवीन चम्पक जैसी सुगन्धमय गन्धसे व्याप्त रमणीय उत्तम सोपान कहे गये हैं ॥ २००–२०३ ॥ सब नदियोंके दोनों ही किनारोंपर पनस, आम्र, ताड़, दाड़िम, प्रियंगु, नारंग और चीवर वृक्षोंसे सनाथ; बहुतसे नालिकेर, कदली, सर्ज, अर्जुन और कुटज वृक्षोंसे व्याप्त; गोशीर, मलय चन्दन, कर्पूर, कदम्ब और शाल वृक्षोंकी प्रचुरतासे सहित; पुन्नाग, नाग, चम्पक, विकसित कनेर और वन (वृक्षविशेष) वृक्षोंके समूहसे सहित; वायुके वश होकर हिलते हुए पत्तोंवाले अशोक, हिंताल और पाटल तरुओंसे सनाथ; गुंजार करती हुई मधुकरी (भ्रमरी) और भ्रमरोंके समूहोंसे उत्पन्न हुए झंकारसे सहित; बहुतसी जाति (मालती), जूही, कुब्जक, ताम्बूल और मिरिचकी बेलोंसे व्याप्त; मंदार, कुन्द, केतकी और अतिमुक्त (माधवी लता) लताओंके समूहकी शोभासे सम्पन्न, दिव्य सुगन्धसे सुगन्धित, तथा नाना फल-फूलोंके समूहसे व्याप्त वनखण्ड हैं ॥ २०४–२०८ ॥ भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्रको छोड़कर शेष

१ उ श ससितोरण २ श माणिभिरामा. ३ उ श किंसूयपवाल, प व केसुयपवाल. ४ श वीवर. ५ उ महुयरिअलिउल, प व महुअरअलिउल, श महुयरिउल. ६. प व मरीचिवल्लिं. ७ उ श कुल्ल.

सद्धावदि विगडावदि[1] गंधावदि मालवंतपरियंता । वंसेसु चदुसु एदे णादव्वा वट्टवेदड्ढा ॥ २०९
जोयणसहस्स एदे विच्छिण्णा[2] तेत्तियं च उव्विद्धा । सव्वत्थ समा णेया पल्लसंठाण कंचणमया य ॥ २१०
तिण्णेव सहस्साणं बासट्ठिं चेव होंति सदमेगं । वेदड्ढाणं[3] परिरओ वट्टाणं[4] जंबुदीवम्हि ॥ २११
ते गिरिवरे अपत्ता सरिदाओ अद्धं[5]जोयणपमाणं । पुव्वावरेण गंगा लवणसमुद्दं समुप्पयंति ॥ २१२
मुहभूमिविसेसेण[6] य उच्छयभजिदं तु सा हवे वड्ढी । वड्ढी इच्छागुणिदं मुहप्पखित्ते[7] य होइ वट्टफलं[8] ॥
वयणखिदिरहियउच्छयहिदइच्छगुणम्मि वयणपक्खित्ते । सायरणदीणगाणं[9] पदेसवड्ढी समुद्दिट्ठा ॥ २१४

चार क्षेत्रोंमें श्रद्धावती, विकटावती, गन्धवती और अन्तिम माल्यवान् ये चार वृत्त वैताढ्य जानना चाहिये ॥ २०९ ॥ ये सुवर्णमय वृत्त वैताढ्य एक हजार योजन विस्तीर्ण, इतने ही ऊंचे, सर्वत्र समान विस्तारवाले व पल्यके (कुशूल) के आकार जानना चाहिये ॥ २१० ॥ जम्बूद्वीपमें वृत्त वैताढ्योंकी परिधि तीन हजार एक सौ बासठ (३१६२) योजन प्रमाण है ॥ २११ ॥ गंगादिक नदियां अर्ध योजन प्रमाणसे उन वृत्त वैताढ्योंको प्राप्त न होकर अर्थात् उनसे अर्ध योजन इधर रहकर ही पूर्व व पश्चिमकी ओरसे लवणसमुद्रको प्राप्त होती हैं ॥ २१२ ॥ भूमिमेंसे मुखको घटाकर शेषमें उत्सेधका भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है । इस वृद्धिको इच्छासे गुणित कर मुखमें मिला देनेपर अभीष्ट स्थानमें विवक्षित क्षेत्रका विस्तार जाना जाता है ॥ २१३ ॥

उदाहरण— श्रद्धावान् नामक वृत्त वैताड्य १००० यो. ऊंचा है । इसका विस्तार मूलमें १००० यो. और ऊपर ५०० यो. है । इसका मध्यविस्तार प्रकृत करणसूत्रके अनुसार निम्न प्रकार होगा— भूमि १००० यो., मुख ५००, उत्सेध १०००; $\frac{१००० - ५००}{१०००} = \frac{१}{२}$ वृद्धि । इच्छा ५०० यो.; $५०० \times \frac{१}{२} = २५०$ यो.; $५०० + २५० = ७५०$ यो. मध्यविस्तार ।

वदन (मुख) और क्षिति (भूमि) को परस्परमें घटाकर शेषमें ऊंचाईका भाग देकर जो लब्ध हो उसे इच्छासे गुणित कर मुखमें मिला देनेपर सागर, नदी व नगोंमें होनेवाली प्रदेशवृद्धिका प्रमाण होता है ॥ २१४ ॥

उदाहरण— लवणसमुद्रमें पूर्णिमाके दिन १६००० यो. और अमावस्याके दिन ११००० यो. प्रमाण जलकी ऊंचाई समभूमितलसे होती है । १६००० यो. की ऊंचाईपर उसका विस्तार १०००० यो. रहता है । अत एव भूमिका प्रमाण २ ला. यो. और मुखका प्रमाण १०००० यो. है । १६००० यो. नीचे जाकर यदि १९०००० यो. की वृद्धि होती है तो ११००० यो. नीचे जाकर कितनी वृद्धि होगी— $\frac{२०००००-१००००}{१६०००} = \frac{१९०}{१६}$ वृद्धिप्रमाण, $\frac{१९० \times ११०००}{१६} = १३०६२५$; $१३०६२५ + १०००० = १४०६२५$ यो. ।

१ प व सद्धावदिविगडावदि. २ उ श विणेव. ३ प व वेदड्ढाणं. ४ उ श वट्टणं, प ब वाड्ढाणं. ५ उ प व श अद्ध. ६ श मुहनोभूमिविसेसेण. ७ श भूहयखित्ते. ८ प ब वट्टिफलं. ९ श पगाणं.

हेमवदस्स य मज्झे[1] णाहिगिरिंदो विचित्तमणिणिवहो । वणवेदीपरिखित्तो मणितोरणमंडिओ रम्मो ॥ २१५
तस्स णगस्स दु सिहरे वणवेदीपरिउडो परमरम्मो । वरतोरणछज्जंतो सुरणयरो उत्तमो होइ ॥ २१६
मणिकंचणपरिणामा पासादा सत्तभूमिया दिव्वा । ससिकंतसूरकंताकक्केयणपुस्सरायमया ॥ २१७
बहुविविहभवणणिवहो वावीपुक्खरिणिउववणसमग्गो । सुरसुंदरिपरिइण्णो जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥
वरमउडकुंडलधरो पलंबबाहू पसत्थसव्वंगो । सादी णामेण सुरो अणंतबलरूवसंपण्णो ॥ २१९
तस्स णगरस्स राया पलिदोवमआउगो महासत्तो । सिंहासणमज्झगदो सेविज्जइ सुरसहस्सेहिं ॥ २२०
एवं अवसेसाणं देवाण हवंति णाभिसेलेसु । णगराणि विचित्ताणि दु जह पुव्वं वण्णिया सयला ॥ २२१
हरिवंसस्स दु मज्झे णाभिगिरिंदस्स पुरवरे विउले । अरुणप्पभो त्ति णामो देवो सो तत्थ[2] णिद्दिट्ठो ॥ २२२
पउमप्पभो त्ति णामो रम्मगवंसस्स वट्टवेदड्ढे । सुरणगरम्मि य राया णिद्दिट्ठो सव्वदरिसीहिं ॥ २२३
णामेणं[4] पभासो त्ति य हेरण्णवदस्स णाभिगिरिसिहरे । सुरपट्टणम्मि राया अच्छइ सुहसायरे धीरो ॥ २२४
सव्वाणं च णगाणं णगणगराणं[6] तु णगवणाणं च । एसेवं[7] कमो णेयो समासदो होइ णिद्दिट्ठो ॥ २२५

हैमवत क्षेत्रके मध्यमें विचित्र मणियोंके समूहोंसे सहित, वनवेदीसे वेष्टित और मणिमय तोरणोंसे मण्डित रम्य नाभि गिरीन्द्र स्थित है ॥ २१५ ॥ उस पर्वतके शिखरपर वनवेदीसे वेष्टित और उत्तम तोरणसे सुशोभित अतिशय रमणीय श्रेष्ठ सुरनगर है ॥ २१६ ॥ उपर्युक्त नगरके सात भूमियोंवाले, मणियों एवं सुवर्णके परिणाम रूप दिव्य प्रासाद चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन एवं पुखराज मणियोंसे निर्मित हैं ॥ २१७ ॥ उक्त नगरमें वापी, पुष्करिणी एवं उपवनोंसे सहित; सुरसुन्दरियोंसे व्याप्त व जिनभवनोंसे विभूषित विविध प्रकारके बहुतसे दिव्य भवन हैं ॥ २१८ ॥ उत्तम मुकुट एवं कुण्डलोंका धारक, लम्बे बाहुओंसे संयुक्त, प्रशस्त सब अवयवोंसे सहित और अनन्त बल व रूपसे सम्पन्न स्वाति नामक देव उस नगरका राजा है । पल्योपम प्रमाण आयुके धारक, महाबलवान् और सिंहासनके मध्यको प्राप्त इस देवकी हजारों देव सेवा करते हैं ॥ २१९–२२० ॥ इसी प्रकार शेष नाभि शैलोंपर भी देवोंके जो विचित्र नगर हैं उनका सब वर्णन पूर्व वर्णनके समान है ॥ २२१ ॥ हरिवर्ष क्षेत्रके मध्यमें स्थित नाभि गिरीन्द्रके विशाल एवं श्रेष्ठ पुरमें अरुणप्रभ नामका वह अधिपति देव है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ॥ २२२ ॥ सर्वदर्शियों द्वारा रम्यक क्षेत्रके वृत्त वैताढ्यपर स्थित सुरनगरका राजा पद्मप्रभ नामक देव बतलाया गया है ॥ २२३ ॥ हैरण्यवतक्षेत्रस्थ नाभि गिरिके शिखरपर स्थित सुखके सागर स्वरूप सुरपुरमें प्रभास नामक साहसी देव रहता है ॥२२४॥ समस्त पर्वतों, पर्वतस्थ नगरों एवं वनोंके वर्णनका संक्षेपसे यही क्रम जानना चाहिये

---

१ उ श हेमव्वदस्स मझ्झे. २ उ प ब श विवह. ३ उ श सेतसु. ४ उ श णामेणि. ५ उ श इप. ६ उ श णगाणं णगराणं. ७ उ श एसोव.

सव्वाण भूहराणं वणवेदी तोरणा मुणेयव्वा । देवणगराण वि तहा वणसंडाणं तहा चेय ॥ २२६
सव्वेसु भूहरेसु य सुरवरणगेरसु उववणवणेसु । जिणभवणा णायव्वा णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहिं । २२७
हिमवंतस्स दु मूले जा जीवा उत्तरेण णिद्दिट्ठा । हेमवदस्स य सा खलु दक्खिणजीवा[१] वियाणाहि ॥ २२८
हिमवंतमहंतस्स दु जा जीवा दक्खिणेण णिद्दिट्ठा । हेमवदस्स य सा खलु उत्तरजीवा वियाणाहि ॥ २२९
हिमवंतमहंतस्स दु जा जीवा उत्तरेण णिद्दिट्ठा । हरिवंसस्स दु सा खलु दक्खिणजीवा वियाणाहि ॥ २३०
णिसधगिरिस्स दु मूले जा जीवा दक्खिणेण णिद्दिट्ठा । हरिवंसस्स दु सा खलु उत्तरजीवा वियाणाहि ॥
जह दक्खिणम्मि भागे तह चेव य उत्तरेसु णायव्वा । आयामा विक्खंभा समासदो होंति सव्वाणं ॥ २३२
सोहम्मिंदो सामी दक्खिणभागस्स होदि णिद्दिट्ठो । ईसाणिंदो सामी उत्तरभागस्स दीवस्स ॥ २३३
हेरण्णवदे खेत्ते तहेव हेमव्वदम्मि वंसम्मि । सुस्समदुसमो कालो अवट्ठिदो सव्वदा होइ ॥ २३४
हरिवरिसम्मि य खेत्ते रम्मगवंसम्मि होइ णायव्वा । सुसमो कालो एक्को अवट्ठिदो सव्वकालं तु ॥ २३५
बे चउ चउ दुसहस्सा धणुप्पमाणा हवंति उच्छेहा । एगदुगबिण्णिएगापल्लाऊ ते मुणेयव्वा ॥ २३६
जे कम्मभूमिमणुया दाणं दाऊण उत्तमे पत्ते । अणुमोदणेण तिरिया ते होंति इमासु भूमीसु ॥ २३७

॥ २२५ ॥ समस्त पर्वतों, देवनगरों तथा वनखण्डोंके वनवेदी और तोरण उसी प्रकार जानना चाहिये ॥ २२६ ॥ सब पर्वत, श्रेष्ठ सुरपुर और वन-उपवनोंमें जिनेन्द्रों द्वारा निर्दिष्ट जिनभवन जानना चाहिये ॥ २२७ ॥ हिमवान् पर्वतके मूलमें जो उत्तरजीवा कही गई है वह निश्चयसे हैमवत क्षेत्रकी दक्षिणजीवा जानना चाहिये ॥ २२८ ॥ महाहिमवान् पर्वतकी जो दक्षिणजीवा कही गई है वह निश्चयसे हैमवत क्षेत्रकी उत्तरजीवा समझना चाहिये ॥ २२९ ॥ महाहिमवान् पर्वतकी जो उत्तरजीवा निर्दिष्ट की गई है वह निश्चयतः हरिवर्ष क्षेत्रकी दक्षिणजीवा जानना चाहिये ॥ २३० ॥ निषधगिरिके मूलमें जो दक्षिण-जीवा कही गई है वह निश्चयतः हरिवर्षकी उत्तरजीवा जानना चाहिये ॥ २३१ ॥ जिस प्रकार दक्षिण भागमें क्षेत्रों व पर्वतोंका संक्षेपसे आयाम व विस्तार बतलाया गया है उसी प्रकार उत्तर भागोंमें भी सब क्षेत्रों व पर्वतोंका आयाम व विस्तार जानना चाहिये ॥ २३२ ॥ द्वीपके दक्षिण भागका स्वामी सौधर्म इन्द्र और उत्तर भागका स्वामी ईशान इन्द्र कहा गया है ॥ २३३ ॥ हैरण्यवत क्षेत्रमें तथा हैमवत क्षेत्रमें सर्वदा सुषमदुषमा काल अवस्थित हैं ॥ २३४ ॥ हरिवर्ष क्षेत्रमें और रम्यक क्षेत्रमें सर्वदा एक सुषमाकाल अवस्थित है [देवकुरुमें सदा सुषमसुषमा काल अवस्थित है] ॥ २३५ ॥ [हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक और हैरण्यवत क्षेत्रोंमें] शरीरकी ऊंचाई क्रमशः दो हजार, चार हजार, चार हजार और दो हजार धनुष प्रमाण तथा आयु एक, दो, दो और एक पल्य प्रमाण जानना चाहिये ॥ २३६ ॥ जो कर्मभूमिज मनुष्य हैं वे उत्तम पात्रको दान देकर तथा जो कर्मभूमिज तिर्यंच हैं वे दानदाताकी अनुमोदनासे इन क्षेत्रोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ २३७ ॥ वहां मरणको भी

---

१ उ श उत्तरजीवा. २ प व श प्रतिषु २२९ तमगाथाया उत्तरार्द्धं २३० तमगाथायाश्च पूर्वार्द्धं नोपलभ्यते. ३ उ श नषिण.

कालगदा वि य संता विमाणवासेसु ताण उप्पत्ती । ण य अण्णत्थुप्पत्ती अकालमरणेहि ण मरंति ॥ २३८
मज्जवरतूरभूसणजोदिसगिहभायणाण कप्पदुमा । भोयणपदीववत्था दुमाण वि हवंति[1] दस भेया ॥ २३९
बहुविहमणिकिरणाहयघणतिमिरजलंततुंगवरमउडा । सरसमयघणविणिग्गयरविभासुरकुंडलाभरणा ॥ २४०
घणसमयजणियभासुरविज्जुज्जलतेयमेहलकलावा । बहलघणपंकविर्यालियससिधवलपलंबवरहारा ॥ २४१
मरगयरयणविणिग्गयकिरणसमुच्छलियमेरुगिरिधीरा । परिहूणरयणबहुविहसायरगंभीरमज्जाया ॥ २४२
पगलंतदाणणिज्झरभूहरसमसरसमत्तगयगमणा । तरुणससिधवलखरणहकरिदारणसीहविक्कंता ॥ २४३
मियमयकप्पूरायरुहरियंदणबहलपरिमलामोया । णाणागुणगणकलिया दाणफलाभोगसंपण्णा[6] ॥ २४४
हलमुसलकलसचामररविससिभवणादिलक्खणोवेदा । दीसंति पवरपुरिसा सव्वासु वि भोगभूमीसु ॥ २४५
अइसयअसेसणिवहं अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्तं । वरपउमणंदिणमियं अभिणंदणजिणवरं वंदे ॥ २४६

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे पव्वदणदीभोगभूमिवण्णणो णाम तदिओ उद्देसो समत्तो ॥ ३ ॥

प्राप्त होनेपर उनकी उत्पत्ति विमानवासी देवोंमें होती है, अन्यत्र उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । तथा वे अकालमरणोंसे नहीं मरते हैं ॥ २३८ ॥ वहां मद्यांग, उत्तम तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग, भोजनांग, प्रदीपांग और वस्त्रांग, इस प्रकार दश प्रकारके कल्पवृक्ष होते हैं ॥ २३९ ॥ इन सभी भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुए पुरुष बहुत प्रकारके मणियोंकी किरणोंसे सघन अन्धकारको नष्ट करनेवाले चमकते हुए उन्नत उत्तम मुकुटको धारण करनेवाले, शरत्कालीन मेघोंसे निकले हुए सूर्यके समान देदीप्यमान कुण्डलोंसे भूषित, वर्षाकालमें उत्पन्न हुई प्रकाशमान विजलीके समान उज्ज्वल तेजवाले मेखलाकलापसे संयुक्त, सान्द्र घन (बादल) रूपी पंकसे रहित चन्द्रके समान धवल लम्बे उत्तम हारसे सुशोभित, मरकत रत्नोंसे निकली हुई किरणोंसे विस्तारको प्राप्त हुए मेरु पर्वतके समान धैर्यशाली, बहुत प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त सागरके समान गम्भीर मर्यादावाले, बहते हुए मदरूपी झरनेसे युक्त होकर पर्वतकी उपमाको धारण करनेवाले सरस मत्त गजके समान गमन करनेवाले, तरुण चन्द्रके समान धवल तीक्ष्ण नखोंसे हाथीको विदारण करनेवाले सिंहके समान पराक्रमके धारक, मृगमद (कस्तूरी), कपूर, अगरु और हरित् चन्दनके समान सघन परिमलसे सुगन्धित, नाना गुणगणोंसे सहित, दानफलके आभोगोंसे सम्पन्न; तथा हल, मूसल, कलश, चामर, सूर्य, चन्द्र और भवन आदि रूप चिह्नोंसे युक्त दिखते हैं ॥ २४०–२४५ ॥ समस्त अतिशयोंके समूहसे सहित, आठ महा प्रातिहार्योंसे संयुक्त, और पद्मनन्दिसे नमस्कृत, ऐसे अभिनन्दन जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २४६ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें पर्वत, नदी व भोगभूमि वर्णन नामक तृतीय उद्देश समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

---

१ प ब दुमाण हवंति. २ उ प ब श जाणिय. ३ उ श कंप. ४ उ श सरिस. ५ उ श णहर. ६ प ब संपुण्णा.

[चउत्थो उद्देसो]

सुमइजिणिंदं पणमिय सुविसुद्धचरित्तणाणसंपण्णं । सुपहुत्तरयणसिहरं सुदंसणं संपवक्खामि ॥ १

सव्वागासस्स तहा तस्स दु बहुमज्झदेसे[1]भागम्मि । लोगो अणाइणिहणो णिद्दिट्ठो सव्वदरिसीहिं ॥ २

लोयस्स ठिदी णेया वलहीआयार होइ णिद्दिट्ठा । पुव्वावरेण दीहो उत्तर तह दक्खिणे[2] रहस्सो ॥ ३

पुव्वावरेण लोगो मूले मज्झे तहेव उवरिम्मि । वरवेत्तासण[3]झल्लरिमुदिंगसंठाणपरिणामो ॥ ४

उत्तरदक्खिणपासे संठाणो टंकछिण्णगिरिसरिसो । अहवा कुलगिरिसरिसो आयदचउरंसदरणमिओ ॥ ५

उवरीदो णीसरिदो पइट्ठो[4] पुण चेव होइ णिस्सरिदो[5] । उत्तरदक्खिणपासे[6] णिद्दिट्ठो सव्वदरिसीहिं ॥ ६

देवच्छंद[7]समाणो[8] छज्जासरिसो[9] य तणघरसमाणो[10] । पक्खीपक्खसमाणो हेट्ठिमभागस्स संठाणो ॥ ७

छज्जाए जह अंते छज्जो घडिदो व्व मज्झसंठाणो । बोहित्थतल[11]समाणो कवड्डिय[12]पुट्ठिसरिसो वा ॥ ८

अतिशय विशुद्ध चारित्र एवं ज्ञानसे सम्पन्न सुमति जिनेन्द्रको नमस्कार करके प्रभूत (बहुतसे) रत्नशिखरोंसे संयुक्त सुदर्शन मेरुका वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ सर्वदर्शियोंने सर्व आकाशके बहुमध्यदेश भागमें अर्थात् ठीक बीचमें अनादि-निधन लोक निर्दिष्ट किया है ॥ २ ॥ लोककी स्थिति वलभी अर्थात् ढालू छतके आकार कही गई जानना चाहिये । यह लोक पूर्व-पश्चिममें दीर्घ और उत्तर तथा दक्षिणमें ह्रस्व है ॥ ३ ॥ यह लोक पूर्व-पश्चिममें मूलमें उत्तम वेत्रासन, मध्यमें झालर, तथा उपरिम भागमें मृदंगके आकारसे परिणत है ॥ ४ ॥ लोकका आकार उत्तर-दक्षिण पार्श्व भागमें टांकीसे उकेरे हुए पर्वतके सदृश है । अथवा आयतचतुरस्र व किंचित् नमित वह लोक कुलपर्वतके समान है ॥ ५ ॥ सर्वदर्शियों द्वारा वह लोक उत्तर-दक्षिण पार्श्व भागमें ऊपरकी ओरसे निःसृत अर्थात् बाहर निकला हुआ, फिर संकुचित हुआ, तथा फिरसे भी निःसृत बतलाया गया है ॥ ६ ॥ उक्त लोकके अधस्तन भागका आकार देवच्छंद (जिन भगवान्का आसन) के सदृश, छज्जाके सदृश, तृणघरके सदृश, अथवा पक्षीके पंख समान है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार छज्जाके अन्तमें अर्थात् छज्जाकी [समतल] घटना होती है वैसा मध्य लोकका आकार है । तथा ऊर्ध्व लोकका आकार बहित्र अर्थात् नावके तल सदृश, कपर्दिका (कौड़ी) के पृष्ठ भागके समान, अथवा शिखरपर उलटा किये

१ प ब बहुमज्झदेस. २ उ उत्तर दह दक्खिणे, श उत्तर दहक्खिणे. ३ उ श वेत्तासणि. ४ प ब पइठो. ५ उ श णिस्सरिदे. ६ प ब पासो ७ ब देवछेद. ८ श समो. ९ प ब छज्जयिससरिसो. १० ब समाणेण. ११ प बोहित्थतल, उ य बोहित्थतल. १२ उ कवलियापुट्ठि, प कवलीयापुठि, ब कवलीयापुठि, श केवलियापुट्ठि.

उब्बुद्धसरावसिहरो उघविट्ठसरावसंपुडायारो[1] । णिच्चो अणाइणिहणो तसथावरअसुगणावासो[4] ॥ ९
पुव्वावरेण णेया सत्तेव य तस्स होंति रज्जूणि । दक्खिणउत्तरपासे एक्को रज्जू समुद्दिट्ठो ॥ १०
मज्झे सिहरे य पुणो एया रज्जू य होइ विच्छिण्णा । मूले[5] य बंभलोए सत्त दु तह पंच रज्जूणि ॥ ११
उच्छेहेण य णेया चउदसरज्जू जिणेहि पण्णत्ता । सत्तेव य आयामो विक्खंभो होइ एक्को दु ॥ १२
तस्स दु मज्झे णेयो लोगो पंचेंदियाण णिद्दिट्ठो । झल्लरि[6]आयारो खलु णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहि ॥ १३
तसजीवाणं लोगो चउद्दहरज्जूणि होइ उच्छेहो । विक्खंभायामेण य एया रज्जू मुणेयव्वा ॥ १४
पंचेंदियाण लोगे[7] बादरसुहुमा जिणेहि[8] पण्णत्ता । परदो बादररहिदो सुहुमा सव्वत्थ विण्णेया ॥ १५
पच्छिमपुव्वदिसाए विक्खंभो तस्स होइ लोयस्स । सत्तेगपंचएया मूलादो होंति रज्जूणि ॥ १६
दक्खिणउत्तरदो पुण विक्खंभो होइ सत्त रज्जूणि । चदुसु वि दिसाविभागे[9] चउदस रज्जूणि उत्तुंगो ॥ १७
लोयस्स तस्स णेया अणेयसंठाणरूवजुत्तस्स । उवमादीदस्स[10] तहा बहुभेदपयत्थगब्भरस[11] ॥ १८

हुए सकोरेके शिखरके सदृश; एवं समस्त आकार शरावसंपुट अर्थात् दो सकोरोंको एकके ऊपर दूसरा उलटा कर रखे हुए सकोरोंके आकारका है । यह लोक अनादि-निधन तथा त्रस और स्थावर जीवोंका निवासस्थान है ॥ ८–९ ॥ यह लोक पूर्व–पश्चिममें सात राजु और दक्षिण–उत्तर पार्श्वमें एक राजु (?) कहा गया है ॥ १० ॥ उक्त लोक मध्यमें व शिखरपर एक राजु, मूलमें सात राजु, और ब्रम्ह-लोकमें पांच राजु विस्तीर्ण है ॥ ११ ॥ जिनभगवान्ने उक्त लोकका उत्सेध चौदह राजु, आयाम सात राजु और विष्कम्भ एक राजु (!) प्रमाण कहा है ॥ १२ ॥ जिनेन्द्र भगवान्ने उसके मध्यमें झालरके आकार पंचेन्द्रियोंका लोक कहा है ॥ १३ ॥ त्रस जीवोंका लोक (त्रसनाली) चौदह राजु ऊंचा और एक राजु प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे युक्त जानना चाहिये ॥ १४ ॥ जिन भगवान्ने पंचेन्द्रियोंके लोकमें बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकारके जीव बतलाये हैं । इसके परे वह बादर जीवोंसे रहित है । सूक्ष्म जीव सर्वत्र जानने चाहिये ॥ १५ ॥ उस लोकका विष्कम्भ पूर्व-पश्चिम दिशामें नीचेसे क्रमशः सात, एक, पांच और एक राजु प्रमाण है ॥ १६ ॥ उक्त लोकका विष्कम्भ दक्षिण-उत्तर दिशामें सात राजु है । ऊंचाई उसकी चारों ही दिशाविभागमें चौदह राजु प्रमाण है ॥ १७ ॥ बहुत प्रकारके पदार्थोंको गर्भमें धारण करनेवाले और अनेक आकार व रूपसे संयुक्त उस उपमातीत (अनुपम) लोकके बहुमध्य देशमें दूने दूने

---

१ ब उब्बुद्ध, श उब्बुड. २ उ श उवदिट्ठसाराव. प ब उवविट्ठसराव ३ प ब संपुडयारो. ४ उ श असगुणावासो, प ब अणुगणावासो. ५ उ प ब श मूलो. ६ श झल्लय, ७ उ प ब श लोगो. ८ उ श सुहुमाए जिणेहि, प ब सुहुम जिणेहि. ९ प ब दिसासु भागे. १० उ श उवमादीतस्स. ११ प ब गतस्स.

तस्स बहुमज्झदेसे दुगुणा दुगुणा हवंति वित्थिण्णा । बहुविहदीवसमुद्दा णाणामणिकणयसंछण्णा ॥ १९
गणणादीदाण[1] तहा सायरदीवाण मज्झभागम्मि । होदि हु जंबूदीवो तस्स दु मज्झे विदेहो दु ॥ २०
मंदरमहाचलिंदो विदेहमज्झम्मि होइ णिद्दिट्ठो । जम्माभिसेयपीढो जिणिंदयंदाण[3] णायव्वो ॥ २१
ओगाढो[4] वज्जमओ सहस्स तह जोयणो समुद्दिट्ठो । णवणवदि उच्छेहो णाणामणिरयणपरिणामो ॥ २२
पायालतले णेया विक्खंभायाम तस्स मेरुस्स । दस य सहस्सा णउदि य दस चेव कला मुणेयव्वा ॥ २३
धरणीपट्ठे णेया दस[5] चेव सहस्स भद्दसालवणे । सिहरे एयसहस्सा वित्थिण्णो[6] पंडुकवणम्मि ॥ २४
मूले मज्झे उवरिं वज्जमओ मणिमओ य कणयमओ । तह एयं च सहस्सा इगिसट्ठिसहस्स अडतीसा ॥२५
घणसमयघणविणिग्गयरविकिरणफुरंतभासुरो दिव्वो[7] । बहुविविहरयणमंडियवसुमइमउडो व्व उत्तुंगो ॥ २६
तियसिंदसहियसुरवरकयजम्मणमहिमंतूरणिग्घोसो[11] । जिणमहिमजणियविक्कमसुरवइणच्चंतरमणीओ ॥२७
ससिधवलहारसंणिभखीरोवहिउच्छलंतसलिलोहो । सुरसयसहस्ससंकुलकोलाहलरावरमणीओ ॥ २८

विस्तारवाले तथा नाना मणियों व सुवर्णसे व्याप्त बहुत प्रकारके द्वीप-समुद्र जानना चाहिये ॥ १८-१९ ॥ उन असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके मध्य भागमें जम्बू द्वीप और उसके भी मध्यमें विदेह क्षेत्र है ॥ २० ॥ विदेहके मध्यमें जिनेन्द्र-चन्द्रोंके जन्माभिषेकका पीठ (आसन) स्वरूप मन्दर महाचलेन्द्र (मेरु) कहा गया है ॥ २१ ॥ नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप उक्त पर्वतका वज्रमय अवगाढ (नीव) एक हजार योजन और उंचाई निन्यानवै हजार योजन प्रमाण कही गई है ॥ २२ ॥ उस मेरुका विष्कम्भ व आयाम पातालतलमें दश हजार नव्वै योजन और दश कला ($10090\frac{10}{11}$) प्रमाण जानना चाहिये ॥ २३ ॥ उक्त मेरु पृथिवीपृष्ठपर भद्रशाल वनमें दश हजार योजन प्रमाण तथा शिखरपर पाण्डुक वनमें एक हजार योजन प्रमाण विस्तीर्ण है ॥ २४ ॥ मेरु पर्वत मूलमें एक हजार योजन प्रमाण वज्रमय, मध्यमें इकसठ हजार योजन प्रमाण मणिमय, और ऊपर अड़तीस हजार योजन प्रमाण सुवर्णमय है ॥ २५ ॥ मणि, सुवर्ण, रत्न एवं मरकत रूप पृथिवीको धारण करनेवाला वह सुमेरु रूप नरपति वर्षाकालमें मेघोंसे निकले हुए सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशमान, दिव्य, विविध प्रकारके बहुतसे रत्नोंसे मण्डित पृथिवीके मुकुटके समान उन्नत, इन्द्र सहित उत्तम देवों द्वारा की गई जन्ममहिमा (जन्मकल्याणक) के समय वादित्रोंके शब्दसे संयुक्त, जिनमाहात्म्यसे उत्पन्न हुए पराक्रमसे युक्त इन्द्रके नृत्यसे रमणीक, चन्द्र अथवा धवल हारके सदृश क्षीरोदधिके उछलते हुए जलसमूहसे

---

१ उ श बहुबहु. २ उ गणणादीदण. ३ उ श जिणिंदइंदाण. ४ उ उग्गादो, प ब उगाढो, श उग्गादो. ५ उ श दस्स. ६ उ श वित्थिण्णा. ७ उ श भासणाडोवा, बप्रतौ 'भासुराडोवा' इत्येवं लिखित्वा तदनन्तरं 'भासुरो दिव्वो' एवं संशोधितश्च पाठोऽस्ति. ८ श तियसिंह. ९ श कर. १० उ श महिय. ११ उ श णिरघोसा, ब णिरघोसे.

कप्पतरुजणियबहुविहपवणवसुच्छलियकुसुमगंधड्ढो । मयरंदरेणुवासियसाणुसिलाविउलतडरम्मो[1] ॥ २९
कम्मघणबहुलकक्खडसिलचूरणजिणवरिंदभवणोघो[3] । मणिकणयरयणमरगयधरणीहरणरवई मेरू[4] ॥ ३०
जो बहुवो सो हु कडी[5] जो लहुभागो सिरो त्ति णिद्दिट्ठो । जो उच्चो सो काओ सव्वणगाणं समुद्दिट्ठो ॥ ३१
कडिसिरविसुद्धसेसं सयकायविभाजिदं तु इच्छगुणं । सिरसहियं णिद्दिट्ठो इच्छायामं हवे णेया ॥ ३२
[6]दस विक्खंभेण गुणं विक्खंभं तस्स लद्ध जं मूलं । वट्टाण दीवसायरगिरीण परिधी हवे तं तु ॥ ३३
विक्खंभवग्गदसगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ । विक्खंभचदुब्भागे परिरयगुणिदे हवे गणिदं ॥ ३४

सहित, लाखों देवोंसे व्याप्त होनेपर उनके कोलाहल शब्दसे रमणीक, कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुई बहुत प्रकारकी वायुके प्रभावसे उछलते हुए कुसुमोंकी गन्धसे व्याप्त, परागकी धूलिसे सुगन्धित सानुशिला युक्त विशाल तटोंसे रमणीय, तथा कर्म रूपी अतिशय सघन कठोर शिलाओंको चूर्ण करनेवाले जिनेन्द्रभवनोंके समूहसे सहित है ॥ २९–३० ॥ सब पर्वतोंका जो बहुभाग है वह कटि, जो लघु भाग है वह शिर, और जो उच्च भाग है वह काय कहा गया है ॥ ३१ ॥ कटि और शिरको परस्पर घटाकर शेषमें अपनी कायका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे इच्छासे गुणा करके शिरमें मिला देनेपर इच्छित आयामका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

उदाहरण— मेरु पर्वतकी चूलिकाका विस्तार मूलमें १२ यो. और ऊपर ४ यो. है। उंचाई उसकी ४० यो. है। अत एव उसका विस्तार इच्छित २० यो. की उंचाईपर इस करणसूत्रके अनुसार इस प्रकार होगा— कटि १२, शिर ४, काय ४०; $\frac{१२-४}{४०} = \frac{१}{५}$; $\frac{१}{५} \times २० = ४$, $४ + ४ = ८$ यो.।

विष्कम्भसे गुणित विष्कम्भको दशसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसके वर्गमूल प्रमाण वृत्त द्वीप, सागर और पर्वतोंकी परिधि होती है ॥ ३३ ॥

उदाहरण— मेरुका तलविस्तार $१००९० \frac{१०}{११} = \frac{१११०००}{११}$; $\sqrt{\left(\frac{१११०००}{११}\right)^२ \times १०} = ३१९१० \frac{२}{११}$ यो. (कुछ अधिक) तलविस्तारकी परिधि।

विष्कम्भके वर्गको दशगुणा करके उसका वर्गमूल निकालनेपर वृत्त क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण होता है। इस परिधिको विष्कम्भके चतुर्थ भागसे गुणा करनेपर उसका क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

उदाहरण— इस करणसूत्रके अनुसार पृथिवीतलपर १०००० यो. विस्तृत मेरुका क्षेत्रफल इस प्रकार होगा — $\sqrt{१००००^२ \times १०} = ३१६२३$ यो. (कुछ कम) परिधि। $३१६२३ \times \frac{१००००}{४} = ७९०५७५००$ वर्ग यो. क्षेत्रफळ।

१ उ श पवणवसुछलिय, प ब पवणवछुरिय. २ उ प ब श रम्मे. ३ उ कम्मव्वणवहलवखड, श कम्मव्वहवणलक्खड. ४ श णरवरयीमेत. ५ उ श जो बहुवो हु कडी. ६ गाथेयं नोपलभ्यते प-बप्रत्योः ।

मेरुस्स इच्छपरिधी[1] इच्छायामं च इच्छखेत्तफलं । एयग्गेण मणेण य आणिज्जो करणगाहाहिं ॥ ३५
इगितीसं च सहस्सा णव य सया जोयणा य दस चेव । बे य कला साहीया अहोतले परिरओ तस्स ॥ ३६
इगितीसं च सहस्सा छच्च सदा जोयणा य तेवीसा । किंचिविसेसेणूणा उवरितले परिरयं[2] तस्स ॥ ३७
इगितीसं च सदाइं बावट्ठिं जोयणा य साधीया । मंदरसिहरे परिधी णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ३८
कडिसिरविसेसअद्धम्हि वग्गिदे[3] कायवग्गपक्खित्ते । जं तस्स वग्गमूलं तं खलु बाहं वियाणाहि ॥ ३९
णवणउदिं च सहस्सा सदं च बे चेव जोयणाणं तु । सविसेसो[4] बोद्धव्वा रज्जू मेरुस्स पस्सभुजा ॥ ४०
वइंदणीलमरगयकक्केयणरयणकणय[5]परिणामो । अचलो अणाइणिहणो चदुकाणणमंडिओ मेरू[6] ॥ ४१
णामेण भद्दसालो सुरखेयर[7]गरुडकिण्णरावासो । मेरुस्स पढमकाणण णाणातरुगहणरमणीओ ॥ ४२
बावीसं च सहस्सा पुव्वावरवित्थडो परमरम्मो । आयामेण वियाणह विदेहविक्खंभपरिमाणो ॥ ४३
चंपयकअंबपउरो असोयपुण्णायणायसंछण्णो । मंदारसालणिवहो सत्तच्छयचूयवण्णणिचिओ ॥ ४४

इन करणगाथाओंके द्वारा मेरुकी इच्छित परिधि, इच्छित आयाम और इच्छित क्षेत्रफलको एकाग्रमन होकर लाना चाहिये ॥ ३५ ॥ मेरुके नीचे परिधिका प्रमाण इकतीस हजार नौ सौ दश योजन और साधिक दो कला है ॥ ३६ ॥ उपरिम भागमें उसकी परिधिका प्रमाण इकतीस हजार छह सौ तेईस योजनसे कुछ कम है— $\sqrt{१००००^२ \times १०} = ३१६२३$ यो. से कुछ कम ॥ ३७ ॥ मेरुशिखरपर परिधिका प्रमाण सर्वदर्शियोंने इकतीस सौ बासठ योजनसे कुछ अधिक कहा है $\sqrt{१०००^२ \times १०} = ३१६२$ यो. से कुछ अधिक ॥ ३८ ॥ कटि और शिरको परस्परमें घटाकर जो शेष रहे उसके वर्गमें कायके वर्गको मिला देनेपर जो उसका वर्गमूल हो उतना बाहु (पार्श्वभुजा) का प्रमाण जानना चाहिये ॥ ३९ ॥ मेरुकी पार्श्वभुजाका प्रमाण निन्यानबै हजार एक सौ दो योजनसे कुछ अधिक है— $\sqrt{(\frac{१०००० - १०००}{२})^२ + ९९०००^२}$ $= \sqrt{२०२५०००० + ९८०१००००००} = ९९१०२$ यो. (कुछ अधिक) ॥ ४० ॥ वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन रत्न एवं सुवर्णके परिणाम रूप वह अनादि-निधन मेरु पर्वत चार वनोंसे मण्डित है ॥ ४१ ॥ देव, विद्याधर, गरुड (देवविशेष) और किन्नरोंके आवास रूप मेरुका भद्रशाल नामक प्रथम वन नाना वृक्षोंके वनोंसे रमणीय है ॥ ४२ ॥ अतिशय रमणीय वह भद्रशाल वन पूर्व-पश्चिममें बाईस हजार योजन प्रमाण विस्तृत है । उसका आयाम विदेह क्षेत्रके विस्तारके बराबर जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ उक्त वन प्रचुर चम्पक एवं कदम्ब वृक्षोंसे सहित; अशोक, पुन्नाग व नाग वृक्षोंसे व्याप्त, मन्दार व शाल वृक्षोंके समूहसे संयुक्त, सप्तच्छद व

---

१ प ब मेरुस्स इइ परिधी, श मेरुस्स परिधी. २ उ °तले परिरओ तस्स, श °तले रुस्स. ३ ब °अद्धंहि मग्गदे. ४ उ श अविसेसो. ५ श कक्केरणकणय. ६ प ब मत्तो. ७ श खेयल. ८ उ सत्तछयचूयव्वण, प ब सत्तछयपण, श मत्तच्छयव्यूयव्वण.

कप्पूरणियररुक्खो तमालहिंतालतालवाउलिदो[1] । लवलीलवंगकलिदो अइमुत्तलयाउलसिरीओ ॥ ४५

णारंगफणसपउरो कदलीवणमंडिओ परमरम्मो । बहुजादिमल्लिखचिओ कुंदज्जुणकुडयपरियरिओ ॥ ४६

वरणालिएररइओ पूगप्फलतरुवरेहि रमणीओ । तंबूलवल्लिगहणो[2] कुंकुमवच्छेहि चिचइओ[3] ॥ ४७

एलामिरीइणिवहो कक्कोलाजादिफलसमिद्धो[4] य । चंदणपायवणिचिओ[5] अगरुलयाकत्थुरियसमग्गो[6] ॥ ४८

तस्स वणस्स दु मज्झे जिणिंदयंदाण[7] विगयमोहाणं । कंचणमणिरयणमया चत्तारि हवंति भवणाणि ॥ ४९

जोयणसयआयामा पण्णासा वित्थडा समुद्दिट्ठा । पण्णत्तरि उच्छेहा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ५०

अट्ठेव जोयणाइं[8] उच्छेहा होंति ताण दाराणिं[9] । चउजोयणविच्छिण्णा वित्थिण्णसमप्पवेसं[10] दु ॥ ५१

सोलसजोयणदीहा पीढाओ होंति ताण णिद्दिट्ठा । अट्ठेव य उव्विद्धा मणिकिरणदलंत[11]तिमिराओ ॥ ५२

तेसु[12] जिणाणं पडिमा पंचधणुस्सयपमाणउच्छेहा । होंति सुरासुरमहिया णाणामणिकणयपरिणामा ॥ ५३

एवं चेव दु णेया णंदीसर चेय णाम दीवस्स । बावण्णजिणवराणं[13] विक्खंभायामउच्छेहा ॥ ५४

आम्र वृक्षोंके वनोंसे व्याप्त, कर्पूर वृक्षोंके समूहसे युक्त; तमाल, हिंताल एवं ताल वृक्षोंसे व्याकुलित; लवली व लवंग वृक्षोंसे कलित, अतिमुक्त लताओंके समूहसे सुशोभित, नारंग व पनस वृक्षोंसे प्रचुर, कदलीवनसे मण्डित, अतिशय रमणीय, बहुत जातिके मल्लि वृक्षोंसे खचित, कुंद, अर्जुन एवं कुटज वृक्षोंसे वेष्टित; उत्तम नालिकेर वृक्षोंसे निर्मित, सुपारीके उत्तम वृक्षोंसे रमणीय, ताम्बूल बेलोंसे गहन, कुंकुम वृक्षोंसे मण्डित, इलायची व मिरिचके वृक्षसमूहसे युक्त, कंकोल व जातिफलोंसे समृद्ध, चन्दन वृक्षोंसे निचित, तथा अगरुलता व कस्तूरीसे समग्र है ॥ ४४–४८ ॥ उस वनके मध्यमें मोहसे रहित हुए जिनेन्द्र रूप चन्द्रोंके सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे निर्मित चार भवन हैं ॥ ४९ ॥ नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप वे जिनभवन सौ योजन आयत, पचास योजन विस्तृत और पचत्तर योजन ऊंचे कहे गये हैं ॥ ५० ॥ उक्त जिनभवनोंके द्वार आठ योजन ऊंचे, चार योजन विस्तृत और विस्तारके समान प्रवेशवाले होते हैं ॥ ५१ ॥ मणिकिरणोंसे अन्धकारको नष्ट करनेवाले उनके पीठ सोलह योजन दीर्घ और आठ योजन ऊंचे होते हैं ॥ ५२ ॥ उनके ऊपर सुर व असुरोंसे पूजित नाना मणियों एवं सुवर्णके परिणाम रूप पांच सौ धनुष ऊंची जिनप्रतिमायें होती हैं ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार ही नन्दीश्वर नामक द्वीपके बावन जिनगृहोंके भी विष्कम्भ, आयाम और उंचाईका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ५४ ॥ सब ही भद्रशालोंमें स्थित जिनगृह तीन छत्र, सिंहा-

---

१ उ हिंतालतालवाउलदो, श हिंतालवालदो. २ प ब गहणे. ३ उ श कुंकुमगोसेच्छेहि चिचइओ, प ब कुंकुमगछहि चिचिइयं ४ ब समधो. ५ उ पावय, श पाम. ६ प ब श अगुरु. ७ उ श जिणिंदइंदाण. ८ उ जोयणाए, श जोयणाए य. ९ प ब होंति ताणि दूराणि, श होंति सुरासुरताराणि. १० प ब °पवेसो. ११ प ब दलिव. १२ श तेसि. १३ श जिणव्वताणं.

छत्तत्तयसीहासणभामंडलचामरादिसंजुत्ता । बहुकुसुमवरिसदुंदुहिअसोयरुक्खेहि अहिरामा[2] ॥ ५५
भिंगारकलसदप्पणबुब्बुदबहुधवलचामरसणाहा । घंटापडायपउरा मंगलकलसेहिं संछण्णा ॥ ५६
बहुविविहपुप्फमालामुत्तादामेहि सोहिया[5] रम्मा । दज्झंतधूमणिवहा बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ ५७
सिदहरिकसणसामलरत्तंसुयपट्टसुत्तणिवहेहि[7] । बहुविहधयमालाउलपवणपणच्चंतसोहंता ॥ ५८
वरपडहभेरिमद्दलभंभावीणादिकंसतालेहिं । वज्जंततूरपउरा काहलकोलाहलरवेहिं ॥ ५९
संगीयसद्दबहिरियअच्छरणच्चंतमणहरालोय[12] । पवरच्छराहि भरिया सुरवरणिवहेहिं सोहंता ॥ ६०
[13]रयणमयवेदिणिवहा मणितोरणबहुविहेहि छज्जंता[14] । वरणट्टसालपउरा अहिसेयघरेहिं रमणीया ॥ ६१
पोक्खरणिवाविवप्पिणबहुभवणविचित्तकप्परुक्खेहिं । सोहंति जिणाण घरा सव्वेसु वि भद्दसालेसु ॥ ६२
एवं जे जिणभवणा णिद्दिट्ठा भद्दसालवणसंडे । चउसु वि अवसेसु वि वणेसु ते होंति अद्धद्धा ॥ ६३

सन, भामण्डल और चामरादिसे संयुक्त; बहुत कुसुमवृष्टि, दुंदुभि और अशोक वृक्षोंसे रमणीय; भृंगार, कलश, दर्पण, बुद्बुद और बहुतसे धवल चामरोंसे सनाथ; घंटा एवं पताकाओंसे प्रचुर, मंगलकलशोंसे व्याप्त, बहुतसी पुष्पमालाओं एवं मुक्तामालाओंसे शोभित, रमणीय, ऊपर उठते हुए धुंएके समूहसे सहित, बहुतसे फूलों द्वारा की गई पूजासे सनाथ; धवल, हरित, कृष्ण, श्यामल और रक्त वस्त्रों व रेशमी वस्त्रोंके समूहोंसे शोभायमान; वायुसे प्रेरित होकर नाचनेवाली बहुत प्रकारकी ध्वजाओंके समूहसे रमणीय, उत्तम पटह, भेरी, मर्दल, भंभा, वीणादि एवं कांस्यतालों तथा काहलके कोलाहल शब्दोंके साथ बजते हुए प्रचुर बाजोंसे सहित; संगीतके शब्दसे बहिरी हुई अप्सराओंके नृत्यसे मनोहर दिखनेवाले, श्रेष्ठ अप्सराओंसे परिपूर्ण, उत्तम देवोंके समूहोंसे शोभायमान, रत्नमय वेदियोंके समूहसे युक्त, बहुत प्रकारके मणितोरणोंसे सुशोभित, उत्तम एवं प्रचुर नाट्यशालाओंसे सहित, अभिषेकगृहोंसे रमणीय; तथा पुष्करिणी, वापियों एवं वप्रिणियोंसे सहित, बहुत प्रकारके भवनोंसे व विचित्र कल्पवृक्षोंसे शोभायमान हैं ॥ ५५-६२ ॥ इस प्रकार जो जिनभवन भद्रशाल वन-खंडमें कहे गये हैं उनसे आधे आधे वे शेष चारों ही वनोंमें हैं ॥ ६३ ॥ उनका उत्सेध,

---

१ उ श दुंदाहि. २ उ अहिराम, प ब असेरामा, श अराम. ३ श बुव्वध. ४ श विविहमंडमाला. ५ उ सोसिया, श सोईया. ६ उ श उक्तंत, प उज्झंत, ब (अस्पष्टम्). ७ उ श सुत्ताणिचे, प ब सुत्तणेहेहि. ८ श विहुविह. ९ उ पवणपणअंत, श पवलपणच्चंत. १० उ श सिंगीय. ११ प ब वहिरिया. १२ ब मणहरालोया. १३ प-बमत्योः ६१-६२तमगाथयोर्व्यत्ययो दृश्यते। १४ श सोहंता १५ उ प ब श पट्ट.

उच्छेहा आयामा विक्खंभा जोयणा य ते दिट्ठा[1] । णंदणसोमणपंडुवणेसु[2] ते होंति अद्धद्धा ॥ ६४
जंबूदीवस्स जहा मेरुस्स हवंति दिव्वजिणभवणा । सेसाणं मेरूणं तह एव हवंति जिणभवणा ॥ ६५
जह भद्दसालवणे जिणभवणा वण्णिदा समासेण । तह वण्णणा य सेसा सोमणसादीसु वि वणेसु ॥ ६६
एक्केक्कवरणगाणं वणसंडा सोलसा समुद्दिट्ठा । सव्वेसु वणेसु तहा जिणभवणा होंति णायव्वा ॥ ६७
मंदरवणेसु णेया जिणभवणाणं पमाणपरिसंखा । असिदी हवंति दिट्ठा उत्तमणाणप्पदीवेहिं ॥ ६८
एवं उत्तमभवणा[4] सव्वे वि हवंति कंचणमयाणि । णाणारयणविचित्ता णिच्चुज्जोया[5] सुगंधड्ढा ॥ ६९
सव्वे अणाइणिहणा सव्वे वरदिव्वरूवसंपण्णा । सव्वे अचिंतरूवा सव्वे बहुदेवदेविसंछण्णा[6] ॥ ७०
सव्वे तोरणणिवहा सव्वे वरवेदिएहि संजुत्ता[7] । सव्वे सणट्टसाला[8] सव्वे सोहंति जिणभवणा ॥ ७१
मंदर[9]महागिरीणं जिणभवणावण्णणा जहा[10] चेव । अवसेसाण गिरीणं जिणभवणावण्णणा तह य ॥ ७२
सव्वाण गिरिवराणं जिणवरभवणा जहा समुद्दिट्ठा । सव्वाणं दीवाणं[11] जिणवरभवणा तहा चेव ॥ ७३

आयाम और विष्कम्भ जितने योजन प्रमाण भद्रशाल वनमें कहा गया है, उनसे वह उत्तरोत्तर आधा आधा होता हुआ नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनोंमें है ॥ ६४ ॥ जिस प्रकार जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरुके दिव्य जिनभवन हैं, उसी प्रकार शेष मेरुओंके भी जिनभवन होते हैं ॥ ६५ ॥ जिस प्रकार भद्रशाल वनके जिनभवनोंका संक्षेपसे वर्णन किया है, उसी प्रकार शेष सौमनसादिक वनोंमें भी स्थित जिनभवनोंका वर्णन करना चाहिये ॥ ६६ ॥ एक एक उत्तम पर्वतके सोलह वन-खंड कहे गये हैं। तथा इन सब वनोंमें जिन-भवन भी होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६७ ॥ मन्दर पर्वत सम्बन्धी वनोंमें जिन-भवनोंके प्रमाणकी संख्या अस्सी है, ऐसा उत्तम ज्ञानरूपी दीपकसे संयुक्त जिन भगवान्ने कहा है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार सब ही उत्तम भवन सुवर्णसे निर्मित, नाना रत्नोंसे विचित्र, नित्य प्रकाशमान, सुगन्ध गन्धसे व्याप्त, सब ही अनादि-निधन, सब ही उत्तम दिव्य रूपसे सम्पन्न, सब ही अचिन्त्य रूपसे सहित, सब ही बहुतसे देव-देवियोंसे व्याप्त, सब ही तोरणसमूहसे संयुक्त, सब ही उत्तम वेदियोंसे सहित, तथा सब ही जिनभवन नाट्यशालाओंसे सहित होते हुए शोभायमान हैं ॥ ६९–७१ ॥ जिस प्रकार मन्दर महापर्वतों सम्बन्धी जिनभवनोंका वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष पर्वतोंके जिनभवनोंका वर्णन समझना चाहिये ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार [जम्बूद्वीप] सम्बन्धी सब श्रेष्ठ पर्वतोंके जिनेन्द्रभवन कहे गये हैं, उसी प्रकार सब द्वीपोंके [पर्वतोंपर] जिनेन्द्रभवन समझना चाहिये ॥ ७३ ॥ भद्रशाल वनमें मेरुके प्रदक्षिण क्रमसे

१ उ जोयणाण णिद्दिट्ठा, श जोयणा णिद्दिट्ठा. २ उ णंदसणसोमग, श णंदशणसोमण. ३ ब पंडुवणेसु. ४ प ब भुवणा. ५ उ णिछजोवा, श णिच्छजोवा. ६ प ब बहुदेवासछण्णा. ७ प ब सेजुलता. ८ उ श सपट्टसाला, प ब सुपट्टसाला. ९ प ब मंदिर. १० उ भवणाण जहा, श भवणावण्णाण जहा. ११ श जीवाणं.

तहिँ चेव भद्दसाले मेरुस्स पदाहिणेण णिद्दिट्ठा । णामेण दिसगइंदा अट्ठेव य पव्वया होंति ॥ ७४
पउमोत्तरो य णीलो सोवत्थिय अंजणो य कुमुदो य । पव्वदपलासणामो अवदंसो रोयणागिरी य[1] ॥ ७५
सयजोयणउव्विद्धा सयजोयणवित्थडा हु मूलेसु[2] । सिहरेसु[3] य पण्णासा पणुवीसा गाढ धरणियले ॥ ७६
सीदासीदोदाणं तडेसु ते होंति पव्वदा रम्मा । एक्केक्काण णदीणं चउरो चउरो य णायव्वा ॥ ७७
वणवेदीपरिखित्ता मूलेसु तहा णगाण[4] सिहरेसु । मणितोरणेहिं रम्मा णाणामणिरयणदिप्पंता ॥ ७८
सिहरेसु देवणयरा णाणापासादभूसिदा[5] रम्मा । सुरसुंदरिसंछण्णा वरपोक्खरिणीहि कयसोहा ॥ ७९
धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया मणभिरामा । सुरसयसहस्सपउरा अणाइणिहणा हु ते णयरा ॥ ८०
णयरेसु तेसु राया णामेण य दिसगइंदणामसुरा । पलिदोवमाउगा ते अच्छंति महाणुभावेण ॥ ८१
पंचसया उच्चत्तं मंदरतलपीढियाखिदितलादो[6] । वित्थिण्णा पंचसया पढमा सेढी णगवरस्स ॥ ८२
वणवेदीपरिखित्ते मणितोरणमंडिदे पढमपीढे । चदुसु वि दिसासु[7] रम्मा सुरभवणा होंति चत्तारि ॥ ८३

स्थित आठ दिग्गजेन्द्र नामक पर्वत कहे गये हैं ॥ ७४ ॥ पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक, अंजन, कुमुद, पलाश पर्वत, अवतंस और रोचनगिरि, ये उन दिग्गज पर्वतोंके नाम हैं ॥ ७५ ॥ उक्त पर्वत सौ योजन ऊंचे, मूलमें सौ तथा शिखरोंपर पचास योजन विस्तृत, और पृथ्वीतलमें पच्चीस योजन अवगाहसे युक्त हैं ॥ ७६ ॥ वे रमणीय पर्वत सीता-सीतोदा नदियोंमेंसे एक एकके तटोंपर चार चार जानने चाहिये ॥ ७७ ॥ उक्त पर्वत मूलमें और शिखरोंपर वनवेदीसे वेष्टित, मणिमय तोरणोंसे रमणीय और नाना मणियों एवं रत्नोंसे देदीप्यमान हैं ॥ ७८ ॥ पर्वतोंके शिखरोंपर जो देवनगर हैं वे नाना प्रासादोंसे भूषित, रमणीय, सुरसुन्दरियोंसे व्याप्त, उत्तम पुष्करिणियोंसे शोभायमान, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित, जिनभवनोंसे विभूषित, मनको अभिराम, लाखों देवोंसे प्रचुर और अनादि-निधन हैं ॥ ७९-८० ॥ उन नगरोंमें जो दिग्गजेन्द्र पर्वतोंके समान नामवाले अधिपति देव हैं वे पल्योपम प्रमाण आयुके धारक होते हुए वहां महा प्रभावके साथ रहते हैं ॥ ८१ ॥ मन्दरतलपीठिका रूप पृथिवीतलसे पांच सौ योजन ऊपर जाकर पांच सौ योजन विस्तीर्ण मेरु पर्वतकी प्रथम श्रेणी (प्रथम परिधि) है ॥ ८२ ॥ वनवेदीसे वेष्टित एवं मणिमय तोरणोंसे मण्डित उक्त प्रथम पीठपर चारों ही दिशाओंमें रमणीय चार देवप्रासाद हैं ॥ ८३ ॥ वहां सोम, यम, वरुण और कुबेर

---

१ उ गरीरा, श गरी य. २ उ श वित्थडा य ति मूलेसु. ३ उ श जिहरेसु. ४ उ प ब श णगण. ५ उ श भूमिदा, ब भूमिया. ६ प मंदिरागिरिपीढिया, ब मंदिरागिरिणीढिया. ७ उ श खिदितला. ८ उ श धण. ९ उ श दिसासु.

मणिभवणचारणालयगंधव्वणिवासचित्तणामाणि । सोमजमवरुणधणवइदेवाणं कीडणगेहा ॥ ८४

विक्खंभायामेण य जोयणतीसा हवंति णायव्वा । पण्णासा उत्तुंगा वरभवणा रयणपरिणामा ॥ ८५

णंदणवणम्मि णेया ते भवणा विविहरयणपरिणामा । पुव्वादिदिसविभागे पदाहिणा[1] होंति मेरुस्स ॥ ८६

अद्धुट्ठा कोडीओ गिरिकण्णाओ हवंति भवणेसु । एक्केक्केसु वियाणह णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहि ॥ ८७

लायण्णरूवजोव्वणअच्छेरयपेच्छणिज्ज सव्वा हुं । सोमादीदेवाणं णायव्वा होंति कण्णाओ ॥ ८८

सोमणसपंडुयाणं एसेव कमो हवइ णायव्वो[4] । देवीणं परिसंखा भवणाणं चावि एमेवं ॥ ८९

णवरि विसेसो जाणे उच्छेहायाम तह यं विक्खंभा । णामाणि य भवणाणं अण्णण्णं[7] होंति णिद्दिट्ठा ॥ ९०

वज्जभवणो य णामो वज्जप्पह तह सुवण्णणामा य । अवरो सुवण्णतेओ सोमणसवणस्स णायव्वा ॥ ९१

विक्खंभायामेण य पण्णरसा[8] जोयणा समुद्दिट्ठा । [9]पणुवीसा उच्छेहा वरभवणा होंति रयणमया ॥ ९२

लोहिय अंजणणामो हारिद्दो[10] भवण सेदणामो य । पासादा पंडुवणे णाणामणिरयणसंछण्णा ॥ ९३

विक्खंभायामेण य अद्धट्ठ[11] जोयणा समुद्दिट्ठा । अद्धत्तेरसतुंगा रयणमया पंडुवणगेहा ॥ ९४

देवोंके क्रमशः मणिभवन (मान, मानी), चारणालय, गन्धर्वनिवास और चित्र नामक क्रीड़ागृह हैं ॥ ८४ ॥ रत्नोंके परिणाम रूप वे उत्तम भवन तीस योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित तथा पचास योजन ऊंचे जानना चाहिये ॥ ८५ ॥ विविध रत्नोंके परिणाम रूप वे भवन नन्दन वनमें मेरुके प्रदक्षिणक्रमसे पूर्वादिक दिशाभागमें स्थित हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८६ ॥ एक एक भवनमें साढ़े तीन करोड़ गिरिकन्यायें होती हैं, ऐसा जिनेन्द्र देवके द्वारा निर्दिष्ट किया गया जानो ॥ ८७ ॥ आश्चर्यजनक लावण्य, रूप और यौवनसे दर्शनीय उक्त सब कन्यायें सोमादिक देवोंकी जाननी चाहिये ॥ ८८ ॥ यही क्रम सौमनस और पाण्डुक वनमें स्थित गृहोंका भी जानना चाहिये । वहां देवियों व भवनोंकी भी संख्या समान है ॥ ८९ ॥ विशेष केवल इतना जानना चाहिये कि भवनोंका उत्सेध, आयाम तथा विष्कम्भ और नाम भिन्न भिन्न कहे गये हैं ॥ ९० ॥ वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुवर्णतेज, ये सौमनस वनके भवनोंके नाम जानना चाहिये ॥ ९१ ॥ उक्त रत्नमय उत्तम भवन पन्द्रह योजन विष्कम्भ व आयामसे सहित तथा पच्चीस योजन ऊंचे कहे गये हैं ॥ ९२ ॥ लोहित, अंजन, हारिद्र और श्वेत (पाण्डु), ये पाण्डुक वनमें स्थित उन प्रासादोंके नाम हैं । ये प्रासाद नाना मणियों एवं रत्नोंसे व्याप्त हैं ॥ ९३ ॥ उक्त पाण्डुक वनके रत्नमय भवन साढ़े सात योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित तथा साढ़े बारह योजन ऊंचे हैं ॥ ९४ ॥ फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित, उत्तम

---

१ उ श पदाहिणे (शप्रतौ 'पदाहिणे' इत्यत आरभ्य 'हवंति भवणे-' पर्यन्तः पाठस्त्रुटितः). २ उ श जोयण. ३ उ प ब श सव्वासु. ४ उ श णायव्वा. ५ श वावि एममेव. ६ लह य ७ प ब अण्णाणा. ८ ब पण्णारसा. ९ प-बप्रत्योः ९२तमगाथाया उत्तरार्द्धं नोपलभ्यते. १० उ श हारिदो. ११ उ श अट्ठम.

पुव्वंतअयवडाया वरतोरणमंडिया परमरम्मा । कालागरुगंधड्ढा बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ ९५
सिंहासणसंजुत्ता कोमलपल्लंकसयणतलपउरा । पवरच्छराहि[1] भरिया अच्छेरयरूवसाराहि ॥ ९६
सव्वे वि पंचवण्णा णाणामणिकणयरयणसंछण्णा । उदियक्क[2]मंडलणिभा संपुण्णमियंकउज्जोवा ॥ ९७
सोमजमवरुणवासवणामाणं लोयवालदेवाणं । ते होंति हु पासादा पुव्वक्कयसुकयकम्मेहि ॥ ९८
जोयणसहस्स तुंगो विरिथण्णायाम तेत्तिओ दिट्ठो । बलभद्दणामकूडो णाणामणिरयणपरिणामो ॥ ९९
पुव्वुत्तरम्मि भागे ईसाणे होइ णंदणवणस्स । बलभद्दणामदेवो सिहरम्मि महाबलो वसइ ॥ १००
णंदणवण रुंभित्तो[3] पंचसया जोयणा दु णिस्सरिदो[4] । आयासं पंचसया रुंधित्ता ठाइ[5] सो सेलो ॥ १०१
सिहरम्मि तस्स णेया देवाण पुरा हवंति रमणीया । पायारगोउरजुदा वावीवणसंडसंजुत्ता ॥ १०२
णंदणमंदरणिसधा हिमविजया रुजयसायरा वज्जो[6] । अट्ठेव समुद्दिट्ठा मेरुस्स पदाहिणे कूडा ॥ १०३
विक्खंभायामेण य पंचेव सयाणि होंति मूलेसु । उच्छेहा पंचसया तदद्ध सिहरेसु विरिथण्णा ॥ १०४

तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, कालागरुके गन्धसे व्याप्त, बहुत कुसुमोंसे की गई पूजासे सनाथ, सिंहासनसे संयुक्त, प्रचुर कोमल पर्यंक (पलंग) एवं शय्यातलोंसे सहित, आश्चर्यजनक श्रेष्ठ रूपवाली उत्तम अप्सराओंसे परिपूर्ण, सब ही पांच वर्णवाले; नाना मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंसे व्याप्त, उदयको प्राप्त हुए सूर्यमण्डलके सदृश, और सम्पूर्ण चन्द्रमाके समान उद्योतवाले वे प्रासाद सोम, यम, वरुण और कुबेर नामक लोकपालोंके पूर्वकृत पुण्य कर्मसे होते हैं ॥ ९५-९८ ॥ नन्दन वनके पूर्वोत्तर भाग रूप ईशान दिशामें एक हजार योजन ऊंचा, इतना ही विस्तीर्ण व आयत, नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप बलभद्र नामक कूट कहा गया है । उसके शिखरपर महा बलवान् बलभद्र नामक देव निवास करता है ॥ ९९-१०० ॥ वह पर्वत पांच सौ योजन प्रमाण नन्दन वनको रोककर फिर वहांसे निकल पांच सौ योजन प्रमाण आकाशको रोककर स्थित है ॥ १०१ ॥ उसके शिखरपर प्राकार व गोपुरोंसे युक्त तथा वापी और वनखण्डोंसे संयुक्त देवोंके रमणीय नगर हैं ॥ १०२ ॥ [जिनभवनोंके दोनों पार्श्वभागोंमें] मेरुके प्रदक्षिण रूपसे नन्दन, मन्दर, निषध, हिम (हिमवान्), विजय (रजत), रुचक, सागर और वज्र, ये आठ कूट कहे गये हैं ॥ १०३ ॥ ये कूट मूलमें पांच सौ योजन विष्कम्भ व आयामसे सहित, पांच सौ योजन ऊंचे, और शिखरोंपर इससे आधे अर्थात् अढ़ाई सौ योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं ॥ १०४ ॥ नन्दन

---

१ उ श संदवा. २ प ब वय. ३ उ श परवच्छाय, प ब पवरच्छाय. ४ प ब छिय. ५ उ उदयवक, प ब उदयक, श उदयक. ६ श णंदणवरुंभिता. ७ उ श णिस्सरिदे. ८ प ब थाई, श थाइ. ९ उ अरुजसायरावज्जो, श अरुजसायरवज्जे.

णंदणवणस्स कूडा पुव्वादिकमेण होंति णायव्वा । जिणइंदभवणाणं उभयपासेसु[1] दो दो दु ॥ १०५
गिरिकूडवरगिहेसु य दिव्वामलरूवदेहधारीओ । दिसकण्णकुमारीओ वसंति[2] परिवारजुत्ताओ ॥ १०६
कण्णकुमारीण घरा कोसायामा तदद्धविक्खंभा । पण्णरस धणुसदाइं[3] उत्तुंगा कूडसिहरेसु ॥ १०७
मेघकरा मेघवदी सुमेघा तह मेघमालिणी णाम । तोयंधरा विचित्ता मणिमालिणि णिंदिदा इदरा[4] ॥ १०८
एदाओ देवीओ अट्ठेव य होंति तेसु कूडेसु । णंदणवणस्स णेया पदाहिणे मंदरगिरिस्स ॥ १०९
उप्पलकुमुदा णलिणा तह उप्पलउज्जला दु णामाओ । दक्खिणपुव्वे णेया वावीओ होंति विमलाओ ॥ ११०
भिंगा भिंगणिभा तह कज्जलवर कज्जलाभ पवराओ । दक्खिणपच्छिमभागे णिम्मलजलपुण्णवावीओ ॥ १११
सिरिभद्दा सिरिकंता सिरिमहिदा[5] तह य होदि सिरिणिलया । अवरुत्तरम्मि भागे णीलुप्पलकुमुदछण्णाओ ॥ ११२
णलिणा य णलिणगुम्मा कुमुदा कुमुदप्पभा य वावीओ[6] । पुव्वुत्तरम्मि भागे णायव्वा णंदणवणस्स ॥ ११३[7]
पणुवीसा विक्खंभा पण्णासा जोयणा य आयामा[8] । दस जोयणावगाढा वावीण पमाणपरिसंखा ॥ ११४
दिणयरमऊहचुंबियवियसियसयवत्तसंडगिवहाओ[9] । मयरंदरेणुपिंजरससिधवलसुगंधसलिलाओ ॥ ११५

वनके उपर्युक्त कूट पूर्वादिक्रमसे जिनभवनोंके दोनों पार्श्वभागोंमें दो दो होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १०५ ॥ गिरिके कूटोंपर स्थित गृहोंमें दिव्य व निर्मल रूपसे युक्त देहको धारण करनेवाली दिक्कन्याकुमारियां अपने परिवारसे युक्त होकर निवास करती हैं ॥ १०६ ॥ कूटशिखरोंपर स्थित उक्त दिक्कन्याकुमारियोंके गृह एक कोश आयत, इससे आधे विस्तृत, और पन्द्रह सौ धनुष प्रमाण ऊंचे हैं ॥ १०७ ॥ मन्दरगिरि सम्बन्धी नन्दन वनके उन कूटोंपर प्रदक्षिणक्रमसे मेघकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयंधरा, विचित्रा, मणिमालिनी और अनिंदिता, ये आठ देवियां रहती हैं ॥ १०८–१०९ ॥ नन्दन वनके दक्षिण-पूर्वमें उत्पला, कुमुदा, नलिना व उत्पलोज्ज्वला नामक निर्मल वापिकायें जाननी चाहिये ॥ ११० ॥ उसके दक्षिण-पश्चिम भागमें भृंगा, भृंगनिभा, कज्जला तथा कज्जलाभा नामक निर्मल जलसे परिपूर्ण श्रेष्ठ वापियां हैं ॥ १११ ॥ उसके पश्चिमोत्तर भागमें नीलोत्पल और कुमुदोंसे व्याप्त श्रीभद्रा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता तथा श्रीनिलया नामक वापियां हैं ॥ ११२ ॥ नन्दन वनके पूर्वोत्तर भागमें कुमुदोंसे व्याप्त नलिना, नलिनगुल्मा, कुमुदा और कुमुदप्रभा नामक वापियां हैं ॥ ११३ ॥ विष्कम्भ पच्चीस योजन, आयाम पचास योजन, और अवगाढ़ दश योजन, यह उन वापियोंके प्रमाणकी संख्या है ॥ ११४ ॥ उक्त सब वापियां दिनकर (सूर्य) की किरणोंसे चुम्बित होकर विकासको प्राप्त हुए कमलखण्डोंके समूहसे सहित, परागकी धूलिसे पीत वर्णको प्राप्त हुए चन्द्रवत् धवल

१ उ उभयपासेहु, प ब उभये पासेसु, श उभणें पासेसु. २ प ब वसंति. ३ प ब पण्णरस धदाई. ४ उ श मणमालिणि इदिदा इहरा. ५ प ब सिरिमहदा. ६ उ गुम्मा कुमुदप्पभा य वावीओ, श गुम्मा कुमुदा कुमुदप्पलकुमुदच्छण्णाओ. ७ शप्रतावेतस्या गाथाया उत्तरार्द्धं त्रुटितम्. ८ प ब पण्णासा जोय आयामा ९ उ दिणयरमऊहयुंबिय, श दियणरमओहचुंचिविय. १० प ब विया वियसियसत्तचत्त, श वियसियासियवत्त.

सिसिरयरकरविणिग्गये[1]विभिण्णवरकुसुदकुसुमपउराओ । पवणवसचलिय[2]णिम्मलतरंगरंगंतरमणाओ ॥
गयणयरजुवई[3]मज्जणवियलियधम्मिल्ल[4]कुसुमणिवहाओ । खयर[5]विलासिणिउरपद[6]कुंकुमपंकेण लित्ताओ ॥
विज्जाहरवरसुंदरि[7]जलकीडा[8]सद्दरावमुहलाओ । उच्छलियदूरबहुजलपडायसंवाये[9]रमणाओ ॥ ११८
वणवेदीजुत्ताओ वरतोरणमंडियाओ सव्वाओ । सोहंति हु[10] वावीओ णिम्मलसलिलेहिं पुण्णाओ ॥ ११९
दक्खिणदिसाविभागे सोहम्मिंदस्स होंति वावीओ । उत्तरदिसाविभाए ईसाणिंदस्स णायव्वा ॥ १२०
वावीसु होंति गेहा तरंगसंघट्ट[11]सद्दगंभीरा । दिव्वामोयसुयंधा रयणुज्जल[12]किरणपिंजरिया ॥ १२१
बासट्ठिजोयणाइं[13] बे कोसा वरघरा[14] समुत्तुंगा । सक्कोसा इगितीसा विक्खंभायाम णिद्दिट्ठा ॥ १२२
तेसु घरेसु[15] वि णेया णाणामणिविप्फुरंतकिरणेसु । सीहासणा विचित्ता इंदाण सभा समुद्दिट्ठा १२३
इंदा सलोयवाला अच्छरसहिदा य वाविभवणेसु । कीडंति पहिट्ठमणा पुव्वक्कय[16]णिम्मलतवेण ॥ १२४
एवं सोमणसवणे वावीओ विमलसलिलपुण्णाओ । कंचणकूडा य तहा पासादा होंति णायव्वा ॥ १२५

सुगन्धित जलसे परिपूर्ण, चन्द्रकिरणोंके निकलनेसे विकासको प्राप्त हुए प्रचुर उत्तम कुमुदकुसुमोंसे युक्त, पवनके प्रभावसे उठती हुई निर्मल तरंगोंके चलनेसे रमणीय, विद्याधरयुवतियोंके स्नान करनेमें निकले हुए चोटीके फूलोंके समूहसे संयुक्त, विद्याधरविलासिनियोंके उरस्थलसे निकले हुए कुंकुमपंकसे लिप्त, विद्याधरोंकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंकी जलक्रीड़ाके शब्दसे मुखरित, दूर तक उछलते हुए बहुतसे जलबिन्दुओंके संघातसे रमणीय, वन और वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, और निर्मल जलसे परिपूर्ण होती हुई शोभायमान हैं ॥ ११५-११९ ॥ दक्षिणदिशा विभागमें सौधर्म इन्द्रकी वापियां और उत्तरदिशा विभागमें ईशान इन्द्रकी वापियां जाननी चाहिये ॥ १२० ॥ वापियोंमें तरंगोंके टकरानेके शब्दसे गम्भीर, दिव्य आमोदसे सुगन्धित और रत्नोंकी उज्ज्वल किरणोंसे पीत वर्ण हुए गृह होते हैं ॥ १२१ ॥ इन उत्तम गृहोंकी उंचाई बासठ योजन दो कोश (६२ $\frac{1}{2}$ यो.) और विष्कम्भ तथा आयाम एक कोश सहित इकतीस (३१ $\frac{1}{4}$) योजन प्रमाण कहा गया है ॥ १२२ ॥ नाना मणियोंकी प्रकाशमान किरणोंसे सहित उन गृहोंमें भी विचित्र सिंहासनोंसे युक्त इन्द्रोंकी सभा कही गई है ॥ १२३ ॥ पूर्वकृत तपके प्रभावसे लोकपालों और अप्सराओंसे सहित इन्द्र मनमें हर्षित होते हुए इन वापीभवनोंमें क्रीड़ा करते हैं ॥ १२४ ॥ इसी प्रकार सौमनस वनमें भी निर्मल जलसे परिपूर्ण वापियां, कंचनकूट तथा प्रासाद जानना चाहिये ॥ १२५ ॥ नन्दन वनसे बासठ हजार पांच सौ

१ प ब सिसियरकरविणिग्गिय. २ श विलिय. ३ उ गयणयरज्जुवई, प ब गइणयरजुवय, श गयणयरहुवई. ४ श लम्मिल्ल. ५ उ श खयल, प ब खर. ६ उ उरयडु, प ब उरपड, श उरपड्ड. ७ उ श विज्जाहरिवरसुंदरि, प ब विज्जाहरवसुंदरि. ८ उ श कील, प ब कीला. ९ उ जलपाडयसंव्वाय, प ब जलपडायसंघाय, श जलपाछयसंव्वाय. १० उ सोहंति वहु. ११ श संवट्ट. १२ श सुगंधा णयणुज्जलं. १३ उ श जोयणाए. १४ उ श वरव्वरा. १५ उ श व्वरेसु. १६ उ पुव्वकय, श पुव्वकरा.

बासट्ठिं[1] च सहस्सा पंचसया जोयणा य उप्पइया[2] । णंदणवणादु णेया सोमणसवणं[3] समुद्दिट्ठं ॥ १२६

पंचेव[4] जोयणसया विस्थिण्णो रयणजालकिरणोहो । देवासुरिंदणिवहो जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ १२७

बेगाउदउव्विद्धा पंचधणुस्सयपमाणविस्थिण्णा । वणवेदी णिद्दिट्ठा णंदणवणसोमणस्साणं ॥ १२८

अवसेसाण वणाणं सव्वाण गिरीण[5] सव्वसरियाणं । उच्छेहो विक्खंभो एसेव कमो दु वेदीणं ॥ १२९

तत्तो[6] सोमणसादो उड्ढं छत्तीसजोयणसहस्सा । गंतूण पंडुकवणं होइ महातेयसंपण्णं ॥ १३०

छज्जोयणपरिहीणो पंचसया जोयणा य विस्थिण्णो । बहुविहतरुगणउरो[7] वरमंदरसिहरवणसंडो ॥ १३१

पंडुकवणस्स मज्झे वेरुलियमया दु[8] चूलिया दिट्ठा[9] । मणिगणजलंतणिवहा जोयणचालीसउत्तुंगा ॥ १३२

बारह जोयण मूले मज्झे अट्ठे व जोयणा णेया । सिहरे चत्तारि हवे विक्खंभायामपरिसंखा ॥ १३३

मंदरमहाणगाणं वेदीणं चूलियाण कूडाणं । सव्वाण पव्वदाणं भवणाणं वरघराणं[10] च ॥ १३४

योजन ऊपर सौमनस वन कहा गया जानना चाहिये ॥ १२६ ॥ यह दिव्य वन पांच सौ योजन विस्तीर्ण, रत्नसमूहकी किरणमालासे संयुक्त, देवेन्द्र एवं असुरेन्द्रोंके समूहसे सहित, और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ १२७ ॥ नन्दन वन और सौमनस वनकी वनवेदी दो कोश ऊंची और पांच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण कही गई है ॥ १२८ ॥ शेष सब वनों, पर्वतों और सब नदियोंकी वेदियोंकी उंचाई व विष्कम्भका यही क्रम जानना चाहिये ॥ १२९ ॥ सौमनस वनसे छत्तीस हजार योजन ऊपर जाकर महा तेजसे सम्पन्न पाण्डुक वन है ॥ १३० ॥ उत्तम मन्दर पर्वतके शिखर सम्बंधी यह वन-खण्ड छह योजन कम पांच सौ (४९४) योजन विस्तीर्ण व बहुत प्रकारके प्रचुर वृक्षोंके समूहसे सहित वनखण्डोंसे संयुक्त है ॥ १३१ ॥ पाण्डुक वनके मध्यमें चमकते हुए मणिसमूहोंसे सहित और चालीस योजन ऊंची दीर्घ वैडूर्यमय चूलिका है ॥ १३२ ॥ इसके विष्कम्भ और आयामका प्रमाण मूलमें बारह योजन, मध्यमें आठ योजन, और शिखरपर चार योजन जानना चाहिये ॥ १३३ ॥ कटि (मूलविस्तार) और शिर (शिखरविस्तार) को परस्परमें घटाकर [शेषको उत्सेधसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो] उतना भूमिकी अपेक्षा इनके विष्कम्भमें हानिका तथा मुखकी अपेक्षा वृद्धिका प्रमाण होता है । इसको अभीष्ट स्थानकी उंचाईसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसे मूलविस्तारमेंसे कम करने अथवा मुखमें मिला देनेपर अभीष्ट स्थानमें इच्छित विस्तारका प्रमाण होता है । इन करणगाथाओंके द्वारा मन्दर महापर्वतों, वेदियों, चूलिकाओं, कूटों,

---

१ उ श बाविट्ठिं. २ श उप्पायिया. ३ प ब सोमणवाणं ४ उ श पंचेण. ५ श सव्वाण सव्वगिरीण. ६ उ श घत्तो. ७ ब पवरो. ८ उ-श वेतुलियमया हुं, प ब वेरुलियमहा दु. ९ उ श दिघा. १० उ वरध्वराणं, श वरम्मणाणं.

कडिसिरविसुद्धसेसं इच्छगुणं तह य चेव काऊणं । विक्खंभहाणि-वड्ढी आणिज्जो करणगाहाहिं ॥ १३५
तुंगो चूलियसिहरो ण विलग्गइ[1] उडुविमाणणामस्स । तलभागे[2] णायव्वा बालपमाणेण णिद्दिट्ठा ॥ १३६
उत्तरकुरुमणुयाणं[3] कोमलसुकुमालॅणिद्धवण्णेण[4] । सिहरितलमज्झभागे[5] केसेण दु अंतरं होइ ॥ १३७
पंडुकसिला वि णेया कणयमया विविहरयणसंछण्णा । पुव्वुत्तरम्मि भागे इंदाउहसंणिहा होइ[6] ॥ १३८
दक्खिणपुव्वदिसाए पंडुकवरकंबला सिला होइ । कुंदिंदुसंखवण्णा अट्ठमिससिसंणिभा रम्मा ॥ १३९
दक्खिणपच्छिमभागे [[8]जासवणणिभा दु इंदधणुसरिसा[9] । णामेण रत्तकंबलमहासिला होइ णायव्वा ॥ १४०
उत्तरपच्छिमभागे] सुरिंदधणुसंणिभा परमरम्मा । रत्तासिला णायव्वा तवणिज्जणिभा[10] समुद्दिट्ठा ॥ १४१
पंचसया आयामा वित्थार तदद्ध होंति णिद्दिट्ठा । चत्तारि जोयणाइं उत्तुंगाओ वरसिलाओ ॥ १४२
अइउज्जलरूवाओ वरतोरणमंडियाओ दिव्वाओ । वरवेदियजुत्ताओ मणिरयणफुरंतकिरणाओ ॥ १४३
एगेगसिलापट्टे[11] सिंहासण तिण्णि तिण्णि णिद्दिट्ठा । मणिकंचणपरिणामा णिम्मलससिकंतकिरणोहा ॥ १४४

सब पर्वतों (?) भवनों और उत्तम गृहोंके इच्छित विस्तारको लाना चाहिये (देखिये पीछे गाथा ३२) ॥ १३४–३५ ॥ उन्नत चूलिकाशिखर बालके प्रमाणसे ऋतु नामक विमानके तलभागसे नहीं लगा है, अर्थात् मेरुचूलिकाके ऊपर बाल मात्रके अन्तरसे ऋतु विमान निरालम्ब स्थित है, ऐसा निर्दिष्ट जानना चाहिये ॥ १३६ ॥ मेरुके शिखर और ऋतु विमानतलके मध्य भागमें उत्तरकुरुमें उत्पन्न मनुष्योंके कोमल, सुकुमार एवं स्निग्ध वर्णवाले एक बाल मात्रका अन्तर है ॥ १३७ ॥ पूर्वोत्तर भाग (ईशान) में इन्द्रायुध (इन्द्रधनुष) के सदृश और विविध रत्नोंसे व्याप्त सुवर्णमय पाण्डुकशिला जानना चाहिये ॥ १३८ ॥ दक्षिण-पूर्वदिशा (आग्नेय) में कुंदपुष्प, चन्द्रमा एवं शंखके समान वर्णवाली अष्टमीके चन्द्रके सदृश रमणीय उत्तम पाण्डुकंबला नामक शिला है ॥ १३९ ॥ दक्षिण-पश्चिम भाग (नैऋत्य) में जपाकुसुम व इन्द्रधनुषके सदृश रक्तकंबला नामक महा शिला जाननी चाहिये ॥ १४० ॥ उत्तर-पश्चिम (वायव्य) भागमें इन्द्रधनुषके सदृश, अतिशय रमणीय और तपनीयके समान प्रभावाली रक्तशिला कही गई है ॥ १४१ ॥ इन उत्तम शिलाओंकी लम्बाई पांच सौ योजन, विस्तार इससे आधा अर्थात् अढ़ाई सौ योजन और उंचाई चार योजन प्रमाण कही गई है ॥ १४२ ॥ उक्त शिलायें अतिशय उज्ज्वल रूपवाली, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, श्रेष्ठ वेदीसे संयुक्त और मणि एवं रत्नोंकी प्रकाशमान किरणोंसे सहित हैं ॥ १४३ ॥ एक एक शिलापट्टपर मणि व सुवर्णके परिणाम रूप तथा निर्मल चन्द्रकान्त मणियोंके किरणसमूहसे संयुक्त तीन तीन सिंहासन कहे गये हैं ॥ १४४ ॥ ये सिंहासन पांच सौ धनुष ऊंचे, पांच सौ धनुष आयत,

---

१ उ लग्गइ, श लिग्गइ. २ प ब उडभागो. ३ श उत्तरकुणुयाणं. ४ उ श कुसुमाल. ५ उ णिधत्रणेण, श णिधवलेण. ६ उ श मागो. ७ उ श °उहसणिहाइ, ब °उहसणिहा होय. ८ प-बप्रत्योस्त्रुटितोऽयं कोष्ठकस्थः पाठः । ९ उ °भागे जासवणनिभा दु इंदुधणु, श °भागे सुरिंदधणु. १० उ तवणिज्जुणिभा, प ब तवणिज्जमा. श तवणिज्जुणिभा. ११ उ श पदे, प ब यट्टे.

पंचधणुसयतुंगा आयामा ते हवंति पंचसया। विक्खंभेण य णेया अड्ढाइज्जा धणुसदाणि ॥ १४५

पुव्वाभिमुहा सव्वा सिदादवत्ता सचामराडोवा। मज्झेसु होंति दिव्वा सिंहासण जिणवरिंदाणं ॥ १४६

सोहम्मीसाणाणं इंदाणं होंति दोसु पासेसु। दाहिणवामदिसाए जहाकमेणं समुद्दिट्टा ॥ १४७

ईसाणदिसाभागे भरहाजिणिंदाण[1] दिव्वदेहाणं। पंडुकासिलावले[2] तह जम्मणमहिमा समुद्दिट्टा ॥ १४८

अवरविदेहाण तहा वरपंडुयकंबलम्मि धूमदिसे[4]। वररत्तकंबलम्मि दु णेरदि एरावदाणं तु ॥ १४९

वाउदिसे रत्तसिला पुव्वविदेहाण जिणवरिंदाणं। जम्मणमहिमा मेरुप्पदाहिणेणं तु गंतूणं ॥ १५०

ससुरासुरदेवगणा आगंतूणं महाविभूदीए। सिंहासणेसु दिव्वा[5] जम्मणमहिमं पकुव्वंति ॥ १५१

संखवरपडहमणहरसिंहणिणाएहि घंटसद्देहि। भवणवइ[6]वाणविंतरजोइसकप्पाहिवा देवा ॥ १५२

णाऊण जिणुप्पत्तिं हरिसेहि महाविभूदिजुत्तेहि। आगच्छंति सुरवरा छायंता णहयलं सयलं ॥ १५३

इंदो वि महासत्तो तीहि[7] य परिसाहिं सत्तअणियाहि। गयवरखंधारूढो एदि महाइड्ढि[8]संपण्णो ॥ १५४

रविससिजदु त्ति णामा परिसाणं[9] महदरा[10] समुद्दिट्टा। अब्भंतरमज्झिमबाहिराण कमसो मुणेयव्वा ॥ १५५

और अढ़ाई सौ धनुष प्रमाण विष्कम्भसे सहित जानना चाहिये ॥ १४५ ॥ सब सिंहासन पूर्वाभिमुख, धवल आतपत्रसे संयुक्त और चामरोंके आटोपसे सहित हैं। इनमें मध्यके सिंहासन जिनेन्द्रोंके होते हैं ॥ १४६ ॥ उनके दोनों पार्श्वभागोंमें यथाक्रमसे दक्षिण और वाम (उत्तर) दिशामें सौधर्म और ईशान इन्द्रके सिंहासन कहे गये हैं ॥ १४७ ॥ ईशान दिशाभागमें स्थित पाण्डुकशिलातलपर दिव्य देहके धारक भरतक्षेत्र सम्बन्धी जिनेन्द्रोंके जन्मकी महिमा कही गई है ॥ १४८ ॥ अग्नि दिशामें स्थित उत्तम पाण्डुकम्बल शिलापर अपर विदेह सम्बन्धी जिनेन्द्रोंकी तथा नैऋत्य दिशामें स्थित उत्तम रक्तकम्बल शिलापर ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी जिनेन्द्रोंके जन्मकी महिमा कही गई है ॥ १४९ ॥ वायुदिशामें स्थित रक्तशिलापर पूर्व विदेह सम्बन्धी जिनेन्द्रोंके जन्मकी महिमा जानना चाहिये। सुर और असुरोंसे सहित देवगण मेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए महा विभूतिके साथ आकर सिंहासनोंपर दिव्य जन्ममहिमाको करते हैं ॥ १५०–१५१ ॥ भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पाधिपति देव क्रमशः शंख, उत्तम पटह, मनोहर सिंहनाद और घंटाके शब्दसे जिन भगवान्‌की उत्पत्तिको जानकर सहर्ष महा विभूतिसे युक्त होकर समस्त आकाशतलको आच्छादित करते हुये आते हैं ॥ १५२–१५३ ॥ महा बलवान् इन्द्र भी तीन परिषद और सात अनीकोंसे युक्त हो उत्तम हाथीके कन्धेपर चढ़कर महा ऋद्धिके साथ आता है ॥ १५४ ॥ अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य परिषद्‌के क्रमसे रवि चन्द्र और जतु नामक महत्तर कहे गये जानना चाहिये ॥ १५५ ॥ अभ्यन्तर परिषद्

---

१ उ ईसाण, प ब इसाण, श इसोण. २ प ब जिणंदाण. ३ प ब तहे. ४ उ श °दिसो. ५ उ दिव्वे, प ब दिव्वो, श दिव्वा. ६ श भावणाइइ. ७ उ श तिणि. ८ प ब रिधि. ९ उ श वि णा परिसाणं. १० उ महवरा, श महुवरा.

बारसयलयसहस्सा अब्भंतरपारिसा सुरा होंति । चउदसयसयसहस्सा मज्झिमपरिसा समुद्दिट्ठा ॥ १५६
सोलसयसयसहस्सा बाहिरपरिसासुराण परिसंखा । सव्वे वि दिव्वरूवा णाणाविहपहरणाभरणा[1] ॥ १५७
तिण्णि[2] वि परिसा कहिया एत्तो सत्ताणिया पवक्खामि । सोहम्मकप्पवासीइंदस्स[3] महाणुभावस्स[4] ॥ १५८
वसभरहतुरयमयगलणच्चणगंधव्वभिच्चवग्गाणं[5] । सत्ताणीया दिट्ठा सत्तहि कच्छाहि संजुत्ता ॥ १५९
चुलसीदिसयसहस्सा [धवलवसभा संखकुंदसंकासा । पढमाए कच्छाए पुरदो गच्छंति लीलाहिं ॥ १६०
अडसट्ठिसयसहस्सा] एया कोडी हवंति वरवसभा । जासवणकुसुमवण्णा मणिरयणविहूसिया दिव्वा ॥ १६१
तिण्णेव य कोडीओ छत्तीसा सयसहस्स वरवसहा । णीलुप्पलसंकासा तदियाकच्छम्मि णिद्दिट्ठा ॥ १६२
छच्चेव य कोडीओ बाहत्तरिसयसहस्स वरवसहा । मरगयमणिकिरणोहा चउत्थकच्छट्ठिया जंति ॥ १६३
तेरह चेव कोडीओ चउदाला सयसहस्स वरवसहा । कणयणिभा भिण्णेया पंचमकच्छम्हि णिद्दिट्ठा ॥ १६४
छव्वीसा कोडीओ अट्ठासीदा य सयसहस्साणि । छट्ठमकच्छे दिट्ठा भिण्णंजणसच्छहा वसभा ॥ १६५
तेवण्णा कोडीओ छावत्तरि सयसहस्स वरवसभा । सत्तमकच्छे दिट्ठा किंसुयकुसुमप्पभा[8] णेया ॥ १६६

देव बारह लाख, मध्यम पारिषद चौदह लाख और बाह्य पारिषद सोलह लाख प्रमाण कहे गये हैं । ये सब ही देव दिव्य रूपसे संयुक्त और नाना प्रकारके आयुधों एवं आभरणोंसे विभूषित होते हैं ॥ १५६–१५७ ॥ तीनों ही परिषदोंका कथन किया जा चुका है । अब यहांसे आगे महा प्रभावसे युक्त सौधर्म इन्द्रकी सात अनीकोंका वर्णन करते हैं ॥ १५८ ॥ वृषभ, रथ, तुरग, मदगल (हाथी), नर्तक, गन्धर्व और भृत्यवर्ग, इनकी सात कक्षाओंसे संयुक्त सात सेनायें कही गई हैं ॥ १५९ ॥ प्रथम कक्षामें शंख एवं कुंद पुष्पके सदृश धवल चौरासी लाख उत्तम वृषभ लीलापूर्वक आगे जाते हैं ॥ १६० ॥ द्वितीय कक्षामें जपा कुसुमके सदृश वर्णवाले और मणि एवं रत्नोंसे विभूषित वे उत्तम वृषभ एक करोड़ अडसठ लाख होते हैं ॥ १६१ ॥ तृतीय कक्षामें नील कमलके सदृश वर्णवाले उत्तम वृषभ तीन करोड़ छत्तीस लाख कहे गये हैं ॥ १६२ ॥ चतुर्थ कक्षामें स्थित मरकत मणिकी किरणोंके समूहके समान कान्तिवाले उत्तम वृषभ छह करोड़ बहत्तर लाख होते हैं ॥ १६३ ॥ पंचम कक्षामें सुवर्णके सदृश वर्णवाले उत्तम वृषभ तेरह करोड़ चवालीस लाख निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १६४ ॥ छठी कक्षामें भिन्न अंजनके सदृश कान्तिवाले वृषभ छव्वीस करोड़ अठासी लाख कहे गये हैं ॥ १६५ ॥ सातवीं कक्षामें किंशुक कुसुमके समान प्रभावाले उत्तम वृषभ तिरेपन करोड़ छयत्तर लाख कहे गये समझना चाहिये ॥ १६६ ॥ उनके मध्य मध्यमें बजते हुए महा वादित्रोंके

१ उ श पहरणावरणा, प ब पहरणावरणे. २ उ तिणि, श विण. ३ उ श इंदस, ब इंदस्सा. ४ श महणुभावस्सा. ५ प ब वसहसरहतुरिय. ६ श विच्च. ७ उ-शप्रत्योस्त्रुटितोऽयं कोष्ठकस्थः पाठः । ८ श ओहम. ९ प ब °प्पहा.

मज्झे मज्झे तेसिं वज्जंतमहंततूरणिग्घोसं । जिणजम्मणमहिमाए[1] वसभाणीया समुच्छरिया[2] ॥ १६७
घंटाकिंकिणिणिवहा वरचामरमंडिया मणभिरामा । मणिकुसुममालपउरा[3] अणोवमा रूवसंपण्णा ॥ १६८
वरकोमलपल्लाणा देवकुमारेहिं[4] वाहमाणा ते । सोहंति हु गच्छंता चलंतधरणीहरा चेव ॥ १६९
कोडीसय छब्भहिया अडसट्ठा लक्ख होंति णिद्दिट्ठा । सत्तविभागाण तहा वसभाणीयाण परिसंखा ॥ १७०
रूवूणअट्ठ विरलिय दो दो दाऊण तेसु रूवेसु । अण्णोण्णगुणेण तहा फलेण रूवूणेंजादेण[5] ॥ १७१
आदिमकच्छं गुणिदे[6] सत्त वि कच्छाण[7] होदि[8] वसभाणं । परिसंखा णिद्दिट्ठा जिणिंदइंदेहि णाणीहि ॥ १७२
सव्वाण अणीयाणं कच्छाणं पिंडसंखपरिमाणं । एस कमो णायव्वो संखेवेण य समुद्दिट्ठं[10] ॥ १७३
सिसिरयरहारहिमचयसंखेंदुमुणालकुंदकुसुदाभा । धवलादवत्तभासुर धवलरहा[11] पढमकच्छम्मि ॥ १७४
वेरुलियरयणणिम्मियचउचक्कविरायमाण गच्छंति । मंदारकुसुमसंणिह महारहा बिदियकच्छम्मि ॥ १७५

शब्दसे सहित वे वृषभानीक उछलते हुए जिन भगवान्‌के जन्मकल्याणकमें जाते हैं ॥१६७॥ घंटा व किंकिणियोंके समूहसे सहित, उत्तम चामरोंसे मण्डित, मनोहर, प्रचुर मणिमालाओं व पुष्प-मालाओंको पहिने हुए, अनुपम रूपसे सम्पन्न, उत्तम कोमल पलानसे सहित, और देवकुमारोंसे चलाये जानेवाले वे वृषभ चलते हुए पर्वतों जैसे शोभायमान होते हैं ॥ १६८-१६९ ॥ सात विभागोंके वृषभानीकोंकी संख्या एक सौ छह करोड़ अड़सठ लाख कही गई है ॥१७०॥ एक कम आठ अंकोंका विरलन करके उन अंकोंके ऊपर दो दो अंक देकर परस्पर गुणा करनेसे जो फल प्राप्त हो उसमेंसे एक कम करके शेषसे प्रथम कक्षाको गुणा करनेपर सातों कक्षाओं सम्बन्धी वृषभानीकोंकी संख्या प्राप्त होती है, ऐसा ज्ञानवान् जिनेन्द्र भगवान्‌ने निर्दिष्ट किया है ॥ १७१-१७२ ॥

उदाहरण— ८ - १ = ७; २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१; इनके परस्परका गुणनफल १२८; १२८ - १ = १२७; प्रथम कक्षामें ८४००००० ; ८४००००० × १२७ = १०६६८००००० समस्त वृषभानीकसंख्या ।

सब अनीकों सम्बन्धी कक्षाओंकी संख्याके पिंडप्रमाणको लानेके लिये संक्षेपसे यही क्रम कहा गया जानना चाहिये ॥१७३॥ प्रथम कक्षामें शिशिरकर (चन्द्र), हार, हिमचय, शंख, इन्दु, मृणाल एवं कुंद पुष्प जैसी प्रभावाले; धवल छत्रसे सुशोभित धवल रथ होते हैं ॥ १७४ ॥ द्वितीय कक्षामें वैडूर्य मणिसे निर्मित चार चाकोंसे विराजमान और मन्दार कुसुमके सदृश कान्तिवाले महारथ गमन करते हैं ॥ १७५ ॥ तृतीय कक्षामें सुवर्णमय छत्र, चामर और हिलते हुए उत्तम

१ प ब महिमाण २ उ श समोच्छारिया. ३ उ श परिहा. ४ उ प ब श देवकुमाराहि. ५ उ श तूवूण, प ब रूवेण. ६ प गुणिदो, ब गुणिहो. ७ उ श सत्त वि कछाण. ८ उ प ब श होंति. ९ उ श पिंठ. १० प ब संखेवेण समुद्दिट्ठं. ११ श सिसिरहार. १२ उ श धवलहरा.

कणयादवत्तचामरधयवडधुव्वंतभासुराडोवा । णिद्धंत[2]कणयसुघडियरह[3]पउरा तदियकच्छम्मि ॥ १७६
मरगयरयणविणिम्मियबहुचक्कुप्पण्ण[4]सद्दगंभीरा । [[5]दुव्वंकुरदलसंणिह महारहा तह चउत्थीए ॥ १७७
कक्केयणमणिणिम्मियबहुचक्कघुलंतसद्दगंभीरा ।] णीलुप्पलदलसंणिभ महारहा होंति पंचमिए ॥ १७८
वरपउमरायमणिमयवरधुरदड्ढ[6]अक्खचक्कसंघडिया । पप्फुल्लकमलसंणिभ महारहा होंति छट्ठीए ॥ १७९
सिदिकंठवण्णमणिमयणिम्मलकिरणोहजालपज्जलिया[7] । वरइंदणीलसंणिभ महारहा होंति सत्तमिए[8] ॥ १८०
एवं महारहाणं सत्त वि कच्छा जलंतमणिकिरणा । आयासं छायंता चलिया जिणजम्मकल्लाणे ॥ १८१
वज्जंततूरणिवहा रहकच्छा[9] अंतरेसु सव्वेसु । गच्छंता पवररहा सोहंति मणोहरा तुंगा ॥ १८२
बहुदेवदेविपुण्णा वरचामरछत्तधयवडा णिवहा । लंबंतकुसुममाला अच्छेरयरूवसंठाणा ॥ १८३
पुव्वक्कएण णेया मायारहिएण चरणसुद्धेण । धम्मेण तेण लद्धा इंदेण महाविहूईओ ॥ १८४
खरपवणवाय[10]वियलियखीरोवहिवरतरंगणिहवण्णा[11] । वरसियचलंतचामर धवलस्सा पढमकच्छाए ॥ १८५

ध्वजपटोंके आटोप (आडम्बर) से प्रकाशमान तथा अग्निसंयोगसे संशोधित निर्मल सुवर्णसे निर्मित प्रचुर रथ गमन करते हैं ॥ १७६ ॥ चतुर्थ कक्षामें मरकत मणियोंसे निर्मित बहुत चाकोंसे उत्पन्न हुए शब्दसे गम्भीर और दूर्वाङ्कुरके पत्तोंके सदृश वर्णवाले महारथ होते हैं ॥ १७७ ॥ पांचवीं कक्षामें कर्केतन रत्नोंसे निर्मित व बहुतसे चाकोंके घूमनेके शब्दसे गम्भीर महारथ नीलोत्पलपत्रके सदृश वर्णवाले होते हैं ॥ १७८ ॥ छठी कक्षामें उत्कृष्ट पद्मराग मणिमय उत्तम धुरा, दृढ अक्ष एवं चाकोंसे संघटित महारथ प्रफुल्ल कमलके सदृश वर्णवाले होते हैं ॥ १७९ ॥ सातवीं कक्षामें मयूरकण्ठके समान वर्णवाले व मणियोंसे निर्मित निर्मल किरणसमूहसे देदीप्यमान महारथ उत्तम इन्द्रनील मणिके सदृश कान्तिवाले होते हैं ॥ १८० ॥ इस प्रकार प्रकाशमान मणिकिरणोंसे सहित महारथोंकी सातों कक्षायें आकाशको आच्छादित करती हुई जिनजन्मकल्याणकमें जाती हैं ॥ १८१ ॥ सब रथ कक्षाओंके मध्यमें बजते हुए वादित्रोंके समूहसे सहित, उन्नत व मनोहर उत्तम रथ गमन करते हुए शोभायमान होते हैं ॥ १८२ ॥ बहुतसे देव देवियोंसे परिपूर्ण; उत्तम चमर, छत्र और ध्वजा-पताकाओंके समूहसे सहित; लटकती हुई कुसुमोंकी मालाओंसे सुशोभित, तथा आश्चर्यजनक रूप एवं आकृतिसे संयुक्त, उक्त रथ रूप महा विभूतियां सौधर्म इन्द्रको पूर्वकृत निष्कपट शुद्ध चारित्र रूप धर्मसे प्राप्त होती हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १८३ – १८४ ॥ प्रथम कक्षामें तीक्ष्ण पवनके घातसे विचलित हुए क्षीरोदधिकी उत्तम तरंगोंके सदृश वर्णवाले और चलते हुए उत्तम धवल चामरोंसे सहित धवल-अश्व होते हैं ॥ १८५ ॥ द्वितीय

१ उ श धयवर. २ प ब णिद्धस ३ उ श लह. ४ उ श चक्कप्पण, प ब चक्कान्न. ५ कोष्ठकस्थोऽयं पाठः प-बप्रत्योर्नोपलभ्यते । ६ उ श दड्ढ. ७ उ जालप्पंजरिया, प जाळपिंजरिया, ब जाळपिञ्जरिया, श जालप्पजरिया. ८ उ प सत्तामिए. ९ प रहच्छा, ब राहच्छा, शप्रतावतोऽग्रे स्खलितः पाठः । १० उ व्वायवियालिय, ब °वायवियलिया, श °वायविरलिय. ११ उ वरतुरंगणिसवणा, प ब वरंगतुरंगणिहवण्णा, श वरतुरंगणिवन्नणा.

उदयंतभाणुसंणिभमंदारासोगकमलसच्छाया । पचलंतचारुचामर रत्ततुरंगा हु विदियाए ॥ १८६

णिद्धंतकणयसंणिहखुरखुडभरजणिअरेणुपिंजरिया । वरगोरोयणसंणिभ वरतुरया तदियकच्छाए ॥ १८७

मरगयवण्णसमुज्जलतुंगमहाकाय गमणपरिहत्था । अभिणवतमालसामल तुरयवरा तह चउत्थीए ॥ १८८

रयणाभरणविहूसिय मणिकिरणसमूहणासियतमोहा । णीलुप्पलदलसंणिभ तुरगवरा पंचमाए दु ॥ १८९

ससहरकिरणसमागमविभिण्णवररत्तकुमुदवण्णाभा । जासवणकुसुमसंणिभ वरतुरया छट्ठमाए दु ॥ १९०

मणपवणगमणचंचलखरखुररवजणियसद्दगंभीरा । भिण्णिंदणीलसंणिभ वरतुरया सत्तमाए दु ॥ १९१

एवं तुरयाणीया सत्तविभागा हवंति णिद्दिट्ठा । दिव्वामलरूवधरा णाणाभरणेहि संछण्णा ॥ १९२

मज्झेसु तूरणिवहा पडहमुदिंगादिसद्दगंभीरा । वरकाहलमहुररवा पक्खुभियसमुद्दणिग्घोसा ॥ १९३

रयणमया पल्लाणा देवकुमारेहि वाहमाणा ते । सोहंति महाकाया देवाण विउव्वणा दिव्वा ॥ १९४

कक्षामें उदित होनेवाले सूर्यके सदृश अथवा मन्दार, अशोक एवं कमलके सदृश कान्तिवाले, तथा चलते हुए सुन्दर चामरोंसे सहित रक्त तुरंग होते हैं ॥ १८६ ॥ तृतीय कक्षामें अग्निसंयोगसे शुद्ध किये गये निर्मल सुवर्णके सदृश व खुरपुटोंके भारसे जनित धूलिसे पिंजरित उत्तम अश्व श्रेष्ठ गोरोचनके सदृश (पीत) होते हैं ॥ १८७ ॥ चतुर्थ कक्षामें मरकत जैसे वर्णवाले उज्ज्वल एवं उन्नत महान् शरीरसे संयुक्त तथा गमनमें दक्ष उत्तम अश्व नवीन तमाल वृक्षके समान श्याम वर्णवाले होते हैं ॥ १८८ ॥ पंचम कक्षामें रत्नोंके आभरणोंसे विभूषित व मणिकिरणोंके समूहसे अन्धकारसमूहको नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ अश्व नीलोत्पलपत्रके सदृश वर्णवाले होते हैं ॥ १८९ ॥ छठी कक्षामें शशधर (चन्द्र) के समागमसे विकासको प्राप्त उत्तम रक्त कमल जैसे वर्णवाले श्रेष्ठ अश्व जपा कुसुमके सदृश होते हैं ॥ १९० ॥ सातवीं कक्षामें मन अथवा पवनके समान गमन करनेमें चंचलताको प्राप्त तीक्ष्ण खुरोंके शब्दसे उत्पन्न शब्दसे गम्भीर उत्तम अश्व भिन्न इन्द्रनील मणिके सदृश होते हैं ॥ १९१ ॥ इस प्रकार दिव्य व निर्मल रूपको धारण करनेवालीं और नाना आभरणोंसे व्याप्त अश्व सेनायें सात विभागोंसे युक्त निर्दिष्ट की गई हैं ॥ १९२ ॥ मध्यमें वादित्रसमूहसे सहित, पटह व मृदंग आदिके शब्दसे गम्भीर, उत्तम काहलके मधुर शब्दसे युक्त, प्रक्षोभको प्राप्त हुए समुद्र जैसे निर्घोषसे संयुक्त, रत्नमय पल्लानोंसे सहित, और देवकुमारोंसे चलाये जानेवाले वे देवोंकी विक्रियासे निर्मित महाकाय दिव्य घोड़े शोभायमान होते हैं ॥ १९३–१९४ ॥ अनुपम रूप व तेजसे सम्पन्न वे महा बलवान्

---

१ प व पचलंत. २ उ खुरवड, प खुरउद, व खुरउड्ढ, श खुरकर. ३ उ श वरातुरया, प व वरतुरिया. ४ उ श ससहकिरण. ५ उ श वण्णड्ढा, व वण्णाभं. ६ उ श तुरय. ७ उ श पच्चलखर, प व पंचलखल. ८ उ श काहलमहुवररवापक्खुभिय, प व काहलमुदंगरवरपक्खुभिय, ९ प व समद्दुणिग्घोसा.

सव्वदिसा पूरंता अणोवमा तेयरूवसंपण्णा । जिणजम्मणमहिमाए गच्छंति महाबला तुरया ॥ १९५
चुलसीदिलक्खसंखा वियडघडा गुलगुलंतगज्जंता । गोखीरसंखधवला हत्थिघडा पढमकच्छाए ॥ १९६
अडसट्ठिसया णेया लक्खगुणा बालभाणुसमतेया । पगलंतदाणगंडा हत्थिघडा बिदियकच्छाए ॥ १९७
छत्तीसा तिण्णिसया हत्थिघडा सयसहस्ससंगुणिया । णिद्धंतकणयवण्णा तदियाए होंति कच्छाए ॥ १९८
बाहत्तरि छच्चसया लक्खगुणा सिरिसकुसुमसंकासा । उत्तुंगदंतमुसला चउत्थीए होंति ते णागा ॥ १९९
तेरससयचउदाला हत्थिघडा सयसहस्ससंगुणिया । णीलुप्पलसंकासा पंचमिए होंति कच्छाए ॥ २००
छव्वीससया णेया अट्ठासीदा य होंति लक्खगुणा । जासवणकुसुमवण्णा हत्थिघडा तह य छट्ठीए ॥ २०१
तेवण्णसया णेया छावत्तरि तह य होंति लक्खगुणा । अंजणगिरिसमतेया हत्थिघडा सत्तमाए दु ॥ २०२
अडसट्ठा छच्चसया दसयसहस्सा हवंति लक्खगुणा । सत्त वि गयकच्छाणं परिसंखा होंति णायव्वा ॥ २०३
कच्छपमाणं विरलिय इच्छगुणं तेसु उवरि दाऊणं । अण्णोण्णब्भत्थेण य लद्धेण य रूवरहिदेण ॥ २०४

घोड़े सब दिशाओंको पूर्ण करते हुए जिनजन्ममहिमामें जाते हैं ॥ १९५ ॥ प्रथम कक्षामें हर्षसे गुल-गुल गरजनेवाले चौरासी लाख हाथियोंके समूह गोक्षीर अथवा शंखके समान धवल होते हैं ॥ १९६ ॥ द्वितीय कक्षामें गण्डस्थलसे मदको बहानेवाले उन एक लाखसे गुणित एक सौ अड़सठ अर्थात् एक करोड़ अड़सठ लाख हाथियोंकी घटायें बाल सूर्यके सदृश कान्तिवाली जानना चाहिये ॥ १९७ ॥ तृतीय कक्षामें एक लाखसे गुणित तीन सौ छत्तीस (३३६००००००) हाथियोंकी घटायें अग्निसंयोगसे शुद्ध किये गये सुवर्ण जैसे वर्णवाली होती हैं ॥ १९८ ॥ चतुर्थ कक्षामें उन्नत दांत रूपी मूसलोंसे सहित वे एक लाखसे गुणित छह सौ बहत्तर (६७२००००००) हाथी शिरीष कुसुमके सदृश होते हैं ॥ १९९ ॥ पंचम कक्षामें एक लाखसे गुणित तेरह सौ चवालीस (१३४४०००००) हाथियोंकी घटायें नीलोत्पलके सदृश होती हैं ॥ २०० ॥ छठी कक्षामें एक लाखसे गुणित छब्बीस सौ अठासी (२६८८०००००) हाथियोंकी घटायें जपा कुसुम जैसे वर्णवाली होती हैं ॥ २०१ ॥ सातवीं कक्षामें एक लाखसे गुणित तिरेपन सौ छयत्तर (५३७६०००००) हाथियोंकी घटायें अंजनगिरिके समान कान्तिवाली होती हैं ॥ २०२ ॥ सातों कक्षाओंके हाथियोंकी संख्या एक लाखसे गुणित दश हजार छह सौ अड़सठ (१०६६८०००००) जानना चाहिये ॥ २०३ ॥ कक्षाके प्रमाणका विरलन कर उनके ऊपर इच्छित गुणकार (२) को देकर परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त हुई राशिमेंसे एक कम करनेपर जो शेष इच्छित गुणकार राशि रहे उससे फिर आदिधनको गुणित कर जो प्राप्त हो उतना सब कक्षाओंका इच्छित धन होता है (देखिये पीछे गा. १७१-७२) ॥ २०४-२०५ ॥ प्रत्येक कक्षाके आगे पटु पटह, शंख, मर्दल और

१ उ श पूरंता. २ श तेया. ३ श वियडव्वा गुलकुलंत. ४ उ श तेय. ५ उ श सिरस, प ब सरिस. ६ श हत्थिदयसलासहस्स. ७ उ श ओवरि. ८ उ श दाओणं.

इच्छगुणरासियाणं आदिधणं संगुणं पुणो किच्चा[1] । जं लद्धं णायव्वं इच्छधणं होइ सव्वाणं ॥ २०५

कच्छाए कच्छाए पुरदो वज्जंति तूररमणीया । पडुपडहसंखमद्दलकाहलकोलाहलरवेहिं ॥ २०६

उच्छंगदंतमुसला पभिण्णकरडा मुहा गुलगुलंता[2] । पगलंतदाणणिज्झरधरणीधरसंणिभा चेव ॥ २०७

लंबंतरयणघंटा णिम्मलमणिकुसुमदामकयसोहा । णाणापडायचित्ता[3] सिदादवत्तेहिं छज्जंता ॥ २०८

लंबंतकण्णचामर मणिकिंकिणिरणरणंतरमणीया । मणिकणयरज्जु[4]कच्छा कयलीहरछज्जिया[5] रम्मा ॥ २०९

वरदेविदेवपउरा अच्चब्भुद[6]सोहसारसंपण्णा । हत्थिहडाणं सेण्णं वित्थरइ समंतदो गयणं[7] ॥ २१०

एवं णागाणीया गच्छंता सुरवरा महासत्ता । दाविंता पुण्णफलं पच्चक्खं जीवलोयस्स ॥ २११

णट्टाणीया[8] वि सुरा णच्चंता[9] बहुविहेहिं रूवेहिं । गच्छंति[10] मेरुसिहरं जिणजम्मणमहिमअणुराया[11] ॥ २१२

विज्जाहरकुसुमाउहरायारायाहिवाण[12] चरियाणं । णच्चंति णच्चणसुरा पढमे कच्छम्मि णिद्दिट्ठा ॥ २१३

पुहइवइणं[13] चरियं सयलद्धमहंतमंडलीयाणं । विदियाए कच्छाए णच्चंता सुरवरा जंति ॥ २१४

काहलके कोलाहल शब्दोंके साथ रमणीय बाजे बजते हैं ॥ २०६ ॥ उन्नत दांतरूपी मूसलोंसे सहित, गण्डस्थलसे मदको बहानेवाले तथा मुखसे सहर्ष गरजनेवाले वे हाथी बहते हुए मद जैसे झरनासे युक्त पर्वतके समान ही प्रतीत होते हैं ॥ २०७ ॥ लटकते हुए रत्नमय घंटासे संयुक्त, निर्मल मणियों व कुसुमोंकी मालासे की गई शोभाको प्राप्त, नाना पताकाओंसे विचित्र, धवल छत्रसे सुशोभित, कानोंमें लटकते हुए चामरों और मणिमय क्षुद्र घंटिकाओंके रण-रण शब्दसे रमणीय, मणि एवं सुवर्णमय कक्षा (हाथीके पेटपर बांधनेकी रस्सी) से अलंकृत, कदलीमारसे सुशोभित, रमणीय, उत्तम देव-देवियोंसे प्रचुर तथा आश्चर्यजनक श्रेष्ठ शोभासे सम्पन्न उन हस्तिघटाओंकी सेना आकाशमें चारों ओर फैल जाती है ॥ २०८–२१० ॥ इस प्रकार महा बलवान् उत्तम नागानीक देव जीवलोकको प्रत्यक्षमें पुण्यफलको प्रगट करते हुए गमन करते हैं ॥ २११ ॥ नर्तकानीक देव भी बहुत प्रकारके वेषोंसे नाचते हुए जिनजन्ममहिमाके अनुरागसे मेरुशिखरपर जाते हैं ॥ २१२ ॥ नर्तकानीक देव प्रथम कक्षामें विद्याधर, कुसुमायुध (कामदेव) राजा और राजाधिपके चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥ २१३ ॥ द्वितीय कक्षाके नर्तक देव समस्त अर्ध मण्डलीक और महा मण्डलीक राजाओंके चरित्रका अभिनय करते हुए जाते हैं ॥ २१४ ॥ तृतीय कक्षाके नर्तक देवगण बलदेव, वासुदेव और

---

१ प ब किच्च, श कि: २ उ गुलुगुलिंता, प गुलुगुलंता, श गुलिंता. ३ उ पडापचित्ता, ब वडायचित्ता, श पडायविता. ४ श रज्ज. ५ उ कयलीहरछज्जुया, श कयलीहरच्छज्जुया. ६ उ अचुब्भद, प ब अच्चब्भुय, श अचुम्बद ७ प ब गाणं. ८ उ णदाणीया, श णदाणीया. ९ प ब णच्चंति. १० प व बहुविहेहिंगच्छंति. ११ उ श अणराय. १२ उ प ब रायाहियाण, श साहाहियाण. १३ उ पुहइवइण, प ब पुवइण.

बलदेवहरिगणाण य तप्पडिवक्खाणं तह य वरचरियं । णच्चंति अमरविंदा णिद्दिट्ठा तदियकच्छाए[1] ॥ २१५

चोद्दसरयणवईणं णवणिहिअक्खीणकोसणाहाणं । चक्कहराण य चरियं चउत्थकच्छम्मि णच्चंति ॥ २१६

सव्वाणं चरिमाणं सलोयवालाण सुरवरिंदाणं । चरियं णच्चंति[4] सुरा कच्छाए[5] पंचमाए दु ॥ २१७

णिम्मलवरबुद्धीणं अणिमादिविसुद्धरिद्धिपत्ताणं । गणहरदेवाण सुरा चरियं णच्चंति छट्ठीए[6] ॥ २१८

वरपाडिहेरअइसयकल्लाणअणंतसोक्खजुत्ताणं । जिणइंदाणं चरियं सत्तमकच्छम्मि णच्चंति ॥ २१९

तेवण्णकोडिदेवा छाहत्तरिलक्ख दिव्वदेहधरा[8] । णच्चंति य जिणचरियं सुरसुंदरिसंजुदा धीरा ॥ २२०

इच्छाठाणं विरलिय काऊणं एयरूवपरिहाणी[10] । इच्छगुणं दाऊण य[11] विरलियरूवेसु सव्वेसु ॥ २२१

अण्णोण्णब्भत्थेण य जादेण[12] य तेण रासिणा गुणिदे[13] । इच्छाण मूलरासिं इच्छधणं होइ सव्वाणं[14] ॥ २२२

रूऊणे अद्धाणे विरलिय रासिम्मि इच्छगुण दिण्णे । अण्णोण्णगुणेण हदे आदिधणं हवइ इच्छफलं ॥ २२३

दिव्वामलदेहधरा दिव्वालंकारभूसियसरीरा । णच्चंता गायंता मेरुं तत्तो समुप्पइया ॥ २२४

प्रतिशत्रुओंके (प्रतिनारायणोंके) उत्तम चरित्रका अभिनय करते हैं ॥ २१५ ॥ चतुर्थ कक्षाके नर्तक देव चौदह रत्नोंके अधिपति और नौ निधियों तथा अक्षीण कोषके स्वामी चक्रवर्तियोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥ २१६ ॥ पंचम कक्षाके नर्तक देव चरमशरीरियों और लोकपालों सहित समस्त इन्द्रोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥ २१७ ॥ छठी कक्षाके नर्तक देव निर्मल उत्तम बुद्धिके धारक तथा अणिमादि विशुद्ध ऋद्धियोंको प्राप्त हुए गणधर देवोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥ २१८ ॥ सातवीं कक्षाके नर्तक देव उत्तम प्रातिहार्य अतिशय, कल्याणक एवं अनन्त सुखसे संयुक्त जिनेन्द्रोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥ २१९ ॥ दिव्य देहके धारक उपर्युक्त तिरेपन करोड़ छयत्तर लाख (७ − १ = ६; २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४; ८४०००० × ६४ = ५३७६००००) धीर नर्तकानीक देव देवांगनाओंसे संयुक्त होकर जिनचरित्रका अभिनय करते हैं ॥ २२० ॥ इच्छित स्थानको एक अंकसे हीन कर विरलन करके विरलित सब अंकोंके प्रति इच्छित गुणकारको देकर परस्पर गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उससे इच्छित मूल राशिको गुणा करनेपर इच्छित सर्वधन प्राप्त होता है (देखिये पीछे गाथा २०४-५) ॥ २२१-२२२ ॥ एक कम अध्वानका (स्थानोंका) विरलन करके विरलित राशिके ऊपर इच्छित गुणकारको देकर परस्पर गुणित करनेसे जो प्राप्त हो उससे आदि धनको गुणा करनेपर इच्छाफल (इच्छित धन) प्राप्त होता है (देखिये पीछे गाथा २०४-५) ॥ २२३ ॥ दिव्य एवं निर्मल देहके धारक और दिव्य अलंकारोंसे विभूषित शरीरवाले उक्त देव नाचते गाते हुए वहांसे मेरुके ऊपर जाते हैं ॥ २२४ ॥ गन्धर्वोंकी सेनाके श्रेष्ठ देव जिन भगवान्के जन्मसे

---

१ प ब तप्पडवक्खाण. २ श णियकच्छाण. ३ श सेलोय ४ श गच्छंति. ५ श गच्छाए. ६ उ सुरा. कच्छा पंच छडमीए दु, श सुरा कच्छीय छडमाए दु. ७ उ श अइसया, प अइसुय, ब अहिसुय; ८ उ श गण. ९ उ श देहदिव्वधरा. १० उ श णच्चंति जिणवरेयं. ११ उ श परिहीणा, ब परिहाणं. ११ उ दाऊणं णाय, श दाऊणं णि य. १२ उ श जायेण. १३ प ब तोरणासिणा, गुणिदो १४ उ श इच्छगुणं होइ सव्वधणं.

गंधव्वाण अणीया सत्तसुरसंजुत्ता दु गायंता। गच्छंति सुरा पवरा जिणजम्मणजणियसंतोसा ॥ २२५
महुरमणोहरवक्का दिव्वाहरणेहि भूसिया देवा। सज्जसरेहिं य जुत्ता कच्छाए होंति पढमाए ॥ २२६
रिसभसरेण य जुत्ता वत्थाभरणेहिं मंडिया दिव्वा। विदियाए कच्छाए महुरं गायंति णच्चंति ॥ २२७
णीलुप्पलणीसासा अहिणवलावण्णरूवसंपण्णा। तदियाए कच्छाए गंधारसरेण गायंति ॥ २२८
मज्झिमसरेण जुत्ता जलंतवरमउडकुंडलाभरणा। गायंति पवरदेवा कच्छाए तह चउत्थीए ॥ २२९
पंचमसरेण जुत्ता सुकुमरसिंगारसद्दगंभीरा। कच्छाए पंचमिए णिद्दिट्ठा सुरवराणिवहा ॥ २३०
धइवदसरेण जुत्ता सायरणिग्घोससमणहरालावा। छट्ठीए कच्छाए अमरकुमारा समुद्दिट्ठा ॥ २३१
गायंति महुरमणहरणिसायघोसेण भासुरा समरा। सुरसुंदरिसंजुत्ता सत्तमिए तह य कच्छाए ॥ २३२
वंसीवीणावव्वीसमहुयरिकंसालतालियादीहिं। संजुत्ता देवीओ गायंति जिणाण भत्तीए ॥ २३३
ढक्कामुदिंगझल्लरिमहसारमउंदकिण्णरादीहिं। वज्जंतमहुरमणहरगंधव्वा सुरगणा चलिया ॥ २३४
सायरतरंगसंणिभ भमरंजणसच्छहा जगजगंता। पढमाए कच्छाए किण्हद्धयसंकुला णेया ॥ २३५

उत्पन्न हुए सन्तोषसे सात स्वर युक्त गान करते हुए जाते हैं ॥ २२५ ॥ मधुर एवं मनोहर मुखवाले तथा दिव्य आभरणोंसे भूषित उक्त देव प्रथम कक्षामें षड्ज स्वरोंसे युक्त होते हैं ॥ २२६ ॥ वस्त्राभरणोंसे मण्डित उक्त दिव्य देव द्वितीय कक्षामें ऋषभ स्वरसे युक्त मधुर गान करते व नाचते हैं ॥ २२७ ॥ तृतीय कक्षामें नीलोत्पलके समान निश्वासवाले और अभिनय लावण्यमय स्वरूपसे सम्पन्न वे देव गान्धार स्वरसे गाते हैं ॥ २२८ ॥ चतुर्थ कक्षामें चमकते हुए मुकुट एवं कुण्डल रूप आभरणोंसे सहित वे उत्तम देव मध्यम स्वरसे युक्त होकर गाते हैं ॥ २२९ ॥ पांचवीं कक्षामें सुकुमार (सुन्दर) आभूषणोंके शब्दसे गम्भीर उक्त श्रेष्ठ देवोंके समूह पंचम स्वरसे युक्त कहे गये हैं ॥ २३० ॥ छठी कक्षामें समुद्रके निर्घोषके समान मनोहर आलापवाले देवकुमार धैवत स्वरसे युक्त कहे गये हैं ॥ २३१ ॥ सातवीं कक्षामें सुन्दर कान्तिवाले उक्त देव देवांगनाओंसे संयुक्त होकर मधुर एवं मनोहर निषाद स्वरसे गाते हैं ॥ २३२ ॥ वंशी, वीणा, वव्वी (व्वी) सक, मधुकरी, कांस्याल और ताल (कंसिका) आदि वाद्यविशेषोंसे संयुक्त देवियां जिन भगवान्‌की भक्तिसे गान करती हैं ॥ २३३ ॥ ढक्का, मृदंग, झालर, महासार, मुकुंद (वाद्यविशेष) और किन्नर आदि वादित्रोंको बजाते हुए मधुर एवं मनोहर गन्धर्व देवोंके समूह प्रस्थित हुए ॥ २३४ ॥ प्रथम कक्षामें समुद्रतरंगके सदृश अथवा भ्रमर व अंजनके समान प्रभावाले जगमगाते हुए [भृत्य] कृष्ण ध्वजाओंसे युक्त जानना चाहिये ॥ २३५ ॥ [उक्त भृत्य] द्वितीय कक्षामें उन्नत

---

१ उ श °सरेहिं. २ प ब रिसतसरेण, श सितसेरण. ३ प ब महुरा. ४ उ श णच्चंति. ५ उ श सकुहरा. ६ उ श सुरणिवहा. ७ प ब मणहरावाला, श मणिहरालावा. ८ श मुदिए. ९ प ब महासरामदद. १० उ श गंधव्वसुरा गणा. ११ उ श किण्हव्भय, प ब किण्हज्झय,

कंचणदंडुत्तुंगा[1] मणिरयणफुरंतभासुराडोवा । चामरचलंतसिहरा णीलद्धय[2]संकुला विदिए ॥ २३६
वेरुलियदंडणिवहा कओदवण्णेहि वत्थणिवहेहि । देवकुमारकरत्था पंडुद्धय[3]संकुला तदिए[4] ॥ २३७
करिसीहवसहदप्पणसिहि[5]सारसगरुडचक्क[6]रविससिहरा । मरगयदंडुत्तुंगा कणयमया तह य चोत्थीए ॥ २३८
उब्भिण्ण[7]कमलपाडलमंदारासोय[8]किंसुककुसुमाभा । विद्दुमदंडुत्तुंगा पउमधया[9] पंचमाए दु ॥ २३९
गोखीरकुंदहिमचयसरयब्भतुसारहारसंकासा । णिम्मलकंचणदंडा धवलधया छट्ठकच्छाए ॥ २४०
मणिगणफुरंतदंडा मुत्तादामेहिं मंडिया दिव्वा । धवलादवत्तणिवहा[10] सत्तमियाए दु कच्छाए ॥ २४१
एवं सत्त वि कच्छा भिच्चाणीयाण होंति णायव्वा । जिणभत्तिरायरत्ता गच्छंति महाणुभावेण ॥ २४२
बावण्णा कोडीओ बाणउदा लक्ख होंति णिद्दिट्ठा । धयणिवहाणं संखा पवणवणच्चंतसोहंता ॥ २४३
तेवण्णा कोडीओ छावत्तरिलक्ख कुंदधवलाणं । छत्ताणं परिसंखा णायव्वा रयणचित्ताणं ॥ २४४

सुवर्णदण्डसे संयुक्त, मणि एवं रत्नोंके प्रकाशमान आटोपसे सहित तथा शिखरपर चलते हुए चामरोंसे शोभायमान नीली ध्वजाओंसे संयुक्त होते हैं ॥ २३६ ॥ तृतीय कक्षामें वैडूर्य मणिमय दण्डसमूहसे संयुक्त और कपोतवर्ण वस्त्रसमूहोंसे सहित वे कुमार देवोंके हाथोंमें स्थित ध्वजासमूह शुक्लवर्ण होते हैं ॥ २३७ ॥ चतुर्थ कक्षामें हाथी, सिंह, वृषभ, दर्पण, मयूर, सारस, गरुड़, चक्र, सूर्य और चन्द्र, ये उन्नत मरकतमय दण्डसे संयुक्त ध्वजायें सुवर्णमय (पीत) होती हैं ॥ २३८ ॥ पांचवीं कक्षामें विकसित कमल, पाटल, मंदार, अशोक और किंशुक कुसुमके समान कान्तिवाली पद्मध्वजायें मूंगेके उन्नत दण्डसे संयुक्त होती हैं ॥ २३९ ॥ छठी कक्षामें गोक्षीर, कुंद पुष्प, हिमसमूह, शरत्कालीन मेघ, तुषार और हारके सदृश धवल ध्वजायें निर्मल सुवर्णदण्डसे संयुक्त होती हैं ॥ २४० ॥ सातवीं कक्षामें मणिगणोंसे प्रकाशमान दण्डसे सहित और मुक्तामालाओंसे मण्डित दिव्य धवल आतपत्रोंके समूह होते हैं ॥ २४१ ॥ इस प्रकार भृत्यानीकोंकी सात कक्षायें होती हैं जो जिनभक्तिरागमें अनुरक्त होकर महा प्रभावसे जाती हैं ॥ २४२ ॥ पवनसे प्रेरित होकर नाचनेवाली उन शोभायमान ध्वजाओंके समूहोंकी संख्या बावन करोड़ बानवै लाख निर्दिष्ट की गई है ॥ २४३ ॥ कुन्द पुष्पके समान धवल और रत्नोंसे विचित्र छत्रोंकी संख्या तिरेपन करोड़ छयत्तर लाख जानना चाहिये ॥ २४४ ॥ सात अनीकों

---

१ प ब दंडतुगा. २ उ श णीलव्वय, प ब णीलव्वुय. ३ उ श पंडुज्झय. ४ प तिदिए, ब तिदिये. ५ प ब सिह. ६ ब गडुडवक्क. ७ प उभाब्भिण्ण, ब उभाब्जिण. ८ उ श मंदारसोय. ९ उ प ब श पउमज्झया. १० उ धवलादवत्तिणिवहा, श धवलदवातिणिवहा.

छाहत्तरिलक्खजुया छादाला सत्तकोडिसय संखा । सत्ताणीयाण[1] तहा उणवण्णाणं[2] दु कच्छाणं ॥ २४५

चुलसीदिलक्खगुणिदे सत्तावीसुत्तरेण य सएण । सत्तगुणेणुप्पज्जइ सत्ताणीयाण परिसंखा ॥ २४६

चुलसीदिलक्खदेवा पढमाए तह य[3] होंति कच्छाए । सव्वाणं अणियाणं आदिधणं एस णिद्दिट्ठं ॥ २४७

बिदियादीकच्छाणं दुगुणा दुगुणा हवंति णादव्वा । एवं सत्त वि कच्छा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥ २४८

सोहम्म[4]सुरवरस्स दु सत्ताणीया समासदो वुत्ता[5] । अवसेससुरिंदाणं एसेव कमो[6] मुणेयव्वो ॥ २४९

एसेव लोयपालाण चारुरूवाण[7] देवरायाणं । णवरि विसेसो णेओ[8] परिवारा होंति अद्धद्धा ॥ २५०

धणुफलह[9]सत्तितोमरणाणाविहपहरणेहि[10] बहुवेहि । इंदस्स पायरक्खा असंखदेवा मुणेयव्वा ॥ २५१

इंदो वि देवराया आरुहिऊणं गयंदपट्ठम्मि । सव्वादरेण जुत्तो गच्छइ परमाए भत्तीए ॥ २५२

अह सो सुरिंदहत्थी एरावणणामदो त्ति विक्खाओ । जोयणलक्खपमाणं विउव्वेई[11] णिम्मलं देहं ॥ २५३

सम्बन्धी उनंचास कक्षाओंकी संख्या सात सौ छयालीस करोड़ छयत्तर लाख है ॥ २४५ ॥ सातसे गुणित एक सौ सत्ताईससे चौरासी लाखको गुणा करनेपर उपर्युक्त सात अनीकोंकी संख्या उत्पन्न होती है [८४०००००×(१२७×७)=७४६७६०००००] ॥ २४६ ॥ प्रथम कक्षामें चौरासी लाख देव होते हैं । यह सब अनीकोंका आदिधन कहा गया है ॥ २४७ ॥ द्वितीयादिक कक्षाओंका प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दूना दूना जानना चाहिये । इस प्रकार सर्वदर्शियोंने सातों कक्षाओंका स्वरूप कहा है ॥ २४८ ॥ यहां संक्षेपसे सौधर्म इन्द्रकी सात कक्षाओंका कथन किया गया है । शेष सुरेन्द्रोंकी सात अनीकोंका भी यही क्रम समझना चाहिये ॥ २४९ ॥ सुन्दर स्वरूपवाले इन्द्रोंके लोकपालोंका भी यहीं क्रम जानना चाहिये । विशेषता केवल यह है कि उनके परिवार आधे आधे होते हैं ॥ २५० ॥ धनुषफलक, शक्ति और तोमर इत्यादि नाना प्रकारके बहुतसे शस्त्रोंसे सुसज्जित असंख्यात देव इन्द्रके पादरक्षक जानना चाहिये ॥ २५१ ॥ देवोंका राजा इन्द्र भी गजराजकी पीठपर चढ़कर पूर्ण आदरसे युक्त होता हुआ अतिशय भक्तिसे वहां जाता है ॥ २५२ ॥ ऐरावण नामसे विख्यात वह इन्द्रका हाथी एक लाख योजन प्रमाण निर्मल देहकी विक्रिया करता है ॥ २५३ ॥ शंख, चन्द्र और कुंद पुष्पके समान

---

१ उ श सत्ताणीयाणि. २ उ श उणवणाणं, प ब उवत्रणाणं. ३ उ श ताह य. ४ प ब सोहम्मि° ५ उ श वुत्ता. ६ उ श एसे कमो. ७ उ लोयपालारा चारु, प लोयपाला चारु, ब लोयपाला चार, श लोयपादाण चारु. ८ प ब णउ, श णिओ. ९ ब धणुहफलिह. १० उ श पहरिणेहि. ११ उ श विउव्वइ, प ब विउव्वइ.

संखेंदुकुंदधवलं णाणाहरणेहिं[1] मंडियं दिव्वं । घंटारणंतकक्खं तारायणभूसियं कुंभं ॥ २५४
बत्तीसवरमुहाणि य कंचणमणिरयणदामणिवहाणि[2] । एगेगदिसाभागे णायव्वा तस्स णागस्स ॥ २५५
एक्केक्कम्मि मुहम्मि दु मणिकंचणमंडिदम्मि दिव्वम्मि । अट्ठट्ठ धवलदंता णाणामणिरयणपरिणामा ॥
एक्केक्कम्मि य दंते एक्केक्का सरवरा विमलतोया । एक्केक्कसरवरम्मि दु एक्केक्का कमलगच्छाणि ॥
एगेगकमलसंडे एगेगविचित्तवेदिसंजुत्ता । एगेगदिसाभागा एगेगा तोरणा रम्मा ॥ २५८
एगेगम्मि य गच्छे बत्तीसा वियसिया महापउमा । पउमेसु तेसु णेया णाडयसंगीयरमणीया ॥ २५९
एगेगकमलकुसुमा[3] एगेगा जोयणा सुरभिगंधा । मणिकंचणपरिणामा अमराण विउव्वणा दिव्वा ॥ २६०
एगेगकमलकुसुमे एगेगा णाडया[4] मुणेयव्वा । एगेगणाडयम्मि य अच्छरसा होंति[5] बत्तीसा ॥ २६१
इट्ठाणि पियाणि तहा कंताणि य कोमलाणि रूवाणि । विउरुव्विऊण बहुलो णच्चंति अणोवमगुणड्ढं ॥
समतालकंसतालं वरवीणाविविहवंसवामिस्सं[6] । वरमुरवसद्दगहिरं णट्टं[7] णच्चंति देवीओ ॥ २६३

धवल, नाना आभरणोंसे मण्डित, दिव्य तथा घंटाके शब्द युक्त कक्षा (हाथीके पेटपर बांधनेकी रस्सी) वाला उसका कुम्भस्थल तारागणों (धवल बिन्दुओं) से भूपित होता है ॥ २५४ ॥ उस हाथीके एक एक दिशाभागमें सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंकी मालाओंके समूहसे संयुक्त बत्तीस उत्तम मुख होते हैं ॥ २५५ ॥ मणि और सुवर्णसे मण्डित एक एक दिव्य मुखमें नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप आठ आठ धवल दांत होते हैं ॥ २५६ ॥ एक एक दांतपर निर्मल जलसे परिपूर्ण एक सरोवर और एक एक सरोवरमें एक एक कमल-समूह होता है ॥ २५७ ॥ एक कमलसमूहमें एक एक विचित्र वेदीसे संयुक्त एक एक दिशाभागमें स्थित एक एक रमणीय तोरण होता है ॥ २५८ ॥ एक एक गच्छमें विकसित बत्तीस महापद्म होते हैं । उन पद्मोंपर नाट्य व संगीतसे रमणीय तथा एक एक योजन प्रमाण फैलनेवाली सुरभि गन्धसे संयुक्त एक एक कमल पुष्प होता है । मणियों एवं सुवर्णके परिणाम रूप ये दिव्य पुष्प देवोंकी विक्रिया रूप होते हैं ॥ २५९-२६० ॥ एक एक कमलकुसुमपर एक एक नाट्यशाला और एक एक नाट्यशालामें बत्तीस अप्सरायें होती हैं ॥ २६१ ॥ ये अप्सरायें इष्ट, प्रिय, कान्त तथा कोमल रूपोंकी विक्रिया कर अनुपम गुणोंसे युक्त बहुत प्रकारसे अभिनय करती हैं ॥ २६२ ॥ उक्त देवियां समतालसे युक्त कांस्यताल, उत्तम वीणा और विविध प्रकारकी बांसुरियोंसे मिश्रित तथा उत्तम मृदंगके शब्दसे गम्भीर नाट्यका अभिनय करती हैं ॥ २६३ ॥ जहां दक्षिण इन्द्र (सौधर्म) की बहुतसी

---

१ उ श णाणाहरिणेहि, २ उ श दामणिहाणि, प .... ब दामणिवहेमि. ३ प ब एगेगकमलकुसुते. ४ उ श णडया, प....; ब डया. ५ उ अच्छरसु होंति, प ब अच्छरसोहंति. ६ उ श वाम्मिसं. ७ उ श नट्टं.

लत्थ लयपल्लवेहि य मुहभंगवियारपायचलणेहि । णच्चंति अच्छराओ दक्खिणइंदस्स बहुगीओ ॥ २६४
वम्महदप्पुप्पाइय[1] तालो रइरागरहस्सजणणाइं[2] । रूवाइं[3] अच्छराओ रमयंति[4] अच्छेरयसमाइं ॥ २६५
कंतेहिं[5] कोमलेहि य अंगेहिं[6] अणंगरागजणणेहिं । णच्चंति अच्छराओ गइंदसरकमलसंडेसु ॥ २६६
एवं रूववईओ देवीओ णच्चमाण सव्वाओ । गच्छंति पहिट्ठमणा जिणजम्मणमहिमकल्लाणे ॥ २६७
कोडी सत्तावीसा[7] अच्छरसाओ[8] हवंति इंदस्स । अट्ठेव महादेवी एक्कं पुण वल्लहीयाओ ॥ २६८
एयाओ देवीओ आरुहिऊणं गइंदपट्ठम्मि । अइआयरजुत्ताओ[9] जम्मणमहिमाए गच्छंति ॥ २६९
दक्खिणइंदस्स जहा[10] सत्ताणीयादियाण परिसंखा । उत्तरइंदस्स तहा[11] परिसंखा होंति णायव्वा[12] ॥ २७०
ईसाणिंदो वि तहा आरुहिऊणं महंत [वं[13]सहम्मि । महदाइड्डिसमुदओ आगच्छइ भत्तिराएण[14] ॥ २७१
सव्वाणं इंदाणं सत्ताणीया ह-] वंति णिद्दिट्ठा । तिण्णि य परिसा णेया असंख तह आदरक्खा[15] य ॥ २७२
सव्वे वि सुरवरिंदा जम्मणमहिमेण चोइया[16] संता । णगणगविहूइसहिया छायंता णइयलं एंति ॥ २७३

अप्सरायें लतापल्लवोंसे, मुखभंगविकारसे और पादसंचारसे युक्त नृत्य करती हैं ॥ २६४ ॥ वे अप्सरायें मन्मथ (काम) के दर्पको उत्पन्न करनेवाले व रतिरागरहस्यके जनक आश्चर्यकारक वेषोंको रचती हैं ॥ २६५ ॥ उक्त अप्सरायें गजेन्द्रके दांतोंपर स्थित तालावोंके कमलसमूहोंपर कामविषयक रागको उत्पन्न करनेवाले कान्त (रमणीय) व कोमल अंगोंसे नाचती हैं ॥ २६६ ॥ इस प्रकार नृत्य करनेवाली उक्त सब रूपवती देवियां मनमें हर्षित होकर जिन भगवान्के जन्मकल्याणकमें जाती हैं ॥ २६७ ॥ इन्द्रके सत्ताईस करोड़ अप्सरायें, आठ महादेवियां और एक लाख वल्लभायें होती हैं ॥ २६८ ॥ ये देवियां गजराजकी पीठपर आरूढ होकर अति आदर युक्त होती हुई जन्ममहिमामें जाती हैं ॥ २६९ ॥ जिस प्रकार दक्षिण इन्द्रकी सात अनीकादिकोंकी संख्या है उसी प्रकार उत्तर इन्द्रकी सात अनीकादिकोंकी संख्या जानना चाहिये ॥ २७० ॥ उसी प्रकार ईशान इन्द्र भी महान् वृषभपर आरूढ़ हो बड़ी ऋद्धिसे युक्त होकर भक्तिसे यहां आता है ॥ २७१ ॥ सब इन्द्रोंके सात अनीक होती हैं । इनके अतिरिक्त उनके तीन पारिषद और असंख्यात आत्मरक्षक देव होते हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये ॥ २७२ ॥ सभी इन्द्र जन्ममहिमासे प्रेरित होकर अपनी अपनी विभूतिके साथ आकाशतलको व्याप्त करते हुए आते हैं

---

१ प ब हदप्पुरवाइं. २ उ रइरागरइस, श रहरागरहस. ३ श जवाइ. ४ उ श रयंत. ५ उ श फेतिहि. ६ प ब अंगाहि. ७ प ब कोडी सत्तवीसा, श कोडीओ तावीसा. ८ उ श वीसा कोडी अच्छरसाओ. ९ उ अइअइआयारजुताओ, श अइआरजुताओ. १० ब जह. ११ ब तह. १२ प ब होंति णिद्दिट्ठा. १३ प-प्रतावस्मिन्नेवायं कोष्ठकस्थः पाठः । १४ श माविणा एत्र १५ प ब आदिरक्खा. १६ प ब चोइया.

अवसेसा वि य णेया[1] णाणाजंपाणवाहणारूढा । [[2]सोहम्मादी जाव दु अच्चुदकप्पं सुरा चलिया ॥ २७४
भवणवइवाणविंतरजोइसिया विविहवाहणारूढा ।] जिणसासणभत्तिरया महाविहूईहिं ते चलिया ॥ २७५
अहमिंदा वि य देवा आसणकंपेण बोहिया संता । गंतूण य सत्तपयं तत्थेव ठिया णमंसंति ॥ २७६
सेदादवत्त[3]जिवहा वरचामरढुव्वमाण[4] बहुमाणा । णाणावडायचिण्हा बहुविहवरवाहणारूढा ॥ २७७
कंकणपिणद्ध[5]हत्था कंठाकडिसुत्तभूसियसरीरा । पजलंतमहामउडा मणिकुंडलमंडियागंडा ॥ २७८
हारविराइयवच्छा केऊरविहूसिया महा[6]बाहू । तुडियंग[7]दणेवत्था वरवत्थविहूसिया देहा ॥ २७९
गंधड्ढकुसुमाला[8]मलचंदणसुरहिगंधणिस्सासा । सुकुमालपाणिपादा बहुविहवण्णुज्जल[9]सरीरा ॥ २८०
एवं ते देवगणा आगंतूणं[10] महाविभूदीए । मंदरगिरिस्स सिहरे वरपंडुवणे विसालम्मि ॥ २८१
सिंहासणेसु णेया णाणामणिविप्फुरंतकिरणेसु । जिणइंदवरकुमारे खीरोदजलेण ण्हावंति[11] ॥ २८२
जोयणमुहवित्थारा अट्ठेव य जोयणा सुगंभीरा । अट्ठ सहस्सा कलसा मणिकंचणरयणकयसोहा ॥ २८३

॥ २७३ ॥ सौधर्म कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके शेष देव भी नाना जम्पान (वाहनविशेष) वाहनोंपर चढ़कर चल देते हैं ॥ २७४ ॥ भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव भी विविध वाहनोंपर चढ़कर जिनशासनकी भक्तिमें रत होते हुए महा विभूतियोंके साथ प्रस्थान करते हैं ॥ २७५ ॥ अहमिन्द्र देव भी आसनके कम्पित होनेसे प्रबोधित होते हुए सात पैर जाकर वहीं स्थित होकर नमस्कार करते हैं ॥ २७६ ॥ धवल छत्रोंके समूहसे सहित, ढुरते हुए उत्तम चामरोंसे संयुक्त, अतिशय आदर सहित, नाना प्रकार पताकाओंके चिह्नोंसे संयुक्त, बहुत प्रकारके उत्तम वाहनोंपर आरूढ़, हाथमें कंकण पहिने हुए, कंठा और कटिसूत्रसे विभूषित शरीरवाले, देदीप्यमान महा मुकुटसे सहित, मणिमय कुण्डलोंसे मण्डित कपोलोंसे संयुक्त, हारसे सुशोभित वक्षस्थलवाले, केयूरसे विभूषित महा बाहुओंसे सहित, त्रुटित (हाथका एक आभूषण) और अंगद युक्त वेषसे सहित, उत्तम वस्त्रोंसे विभूषित देहके धारक, गन्धसे व्याप्त कुसुममाला और निर्मल चन्दनकी सुगन्धित गन्धके समान निश्वासवाले, सुकुमार हाथ व पैरोंसे सहित, और बहुत प्रकारके वर्ण युक्त उज्ज्वल शरीरवाले, इस प्रकारके वे देवगण महा विभूतिके साथ मन्दर गिरिके शिखरपर विशाल व उत्तम पाण्डुक वनमें स्थित नाना मणियोंकी चमकती हुई किरणोंसे सहित सिंहासनोंपर श्रेष्ठ जिनेन्द्रकुमारोंको क्षीरसमुद्रके जलसे नहलाते हैं ॥ २७७-२८२ ॥ एक योजन प्रमाण मुखविस्तारसे सहित, आठ योजन गहरे ऐसे मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंसे शोभायमान जो एक हजार आठ कलश होते हैं,

---

१ उ त्रि अणेया, श वि णेया. २ उ-शप्रत्योस्त्रुटितोऽयं कोष्ठकस्थः पाठः । ३ उ श सेदादिवत्त, प ब सेहाहवत्त. ४ ब चामरराढ्वुव्वमाण. ५ उ कंकणपिणद्ध, प ब कंकणपिणच्च, श कंकणद्ध. ६ उ श तहा. ७ उ श उडियंग. ८ उ कुसुमाल, श कुसुममाल. ९ उ प ब श वणुज्जल. १० ब आणंतूणं. ११ उ ण्हाविति, प ब ण्हावंति, श एहविति..

रयणकलसेहिं तेहि य खीरोदसुगंधसलिलपुण्णेहिं । मुच्चंति जिणाणुवरिं एगीभूया सुरा सव्वे ॥ २८४
जइ[1] ते धारावडणा पव्वदसिहरे पडंति वेगेण । तो सो पव्वदसिहरो सयखंडो[2] तक्खणे होइ ॥ २८५
सव्वे वि जिणवरिंदा अणंतविरिया अणंतमाहप्पा । ते पुण धारावडणा मण्णंति कुसग्गबिंदु व्व ॥ २८६
पयढक्क[3]संखकाहलमुदिंगणिवहेहिं कंसतालेहिं । झल्लरिभेरीहिं[4] तहा दुंदुहिसद्देहि[5] विविहेहि[6] ॥ २८७
मद्दलतिवलीहिं तहा भेरीसद्देहि उवहिघोसेहि । जयघंटरवेहिं पुणो भंभारवमेघरावेहिं ॥ २८८
पडुपडह[7]रवेहिं तहा सायरगंभीरसद्दणिवहेहिं । वज्जंततूरणिवहं फुडियं व सपव्वदा[8] धरणी ॥ २८९
ण्हाविंता भत्तीए[9] वत्थालंकारभूसियं किच्चा । अणुलिंपिऊण पच्छा कुंकुमपंकेहि दिव्वेहि ॥ २९०
थोऊण जिणवरिंदं थुईहि संभूदगुणविसालाहि[10] । जेणागदा[11] पडिगदा धम्माणुराया सुरा सव्वे ॥ २९१
पंचमणाणसमग्गं पंचमगइदेसयं[12] पउमणाहं । वरपउमणंदिणमियं वंदे पउमप्पहं सिरसा[13] ॥ २९२

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे महाविदेहाहियारे चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ ४ ॥

क्षीरसमुद्रके जलसे परिपूर्ण उन रत्नमय कलशों द्वारा सब देव एकत्रित होकर जिन-भगवानोंके ऊपर [जलधारा] छोड़ते हैं ॥ २८३–२८४ ॥ यदि वे धारापतन वेगसे पर्वतशिखरपर गिरें तो वह पर्वतशिखर तत्क्षण सौ खण्ड हो जाय ॥ २८५ ॥ अनन्त बल और अनन्त माहात्म्यसे संयुक्त सब जिनेन्द्र उन धारापतनोंको कुशके अग्र भागपर स्थित बूंदके समान मानते हैं ॥ २८६ ॥ ढक्का, शंख, काहल, मृदंग, इनके समूहसे; कांस्यताल, झालर, भेरी व दुंदुभि, इनके विविध शब्दोंसे; मर्दल, तिवली तथा समुद्र-घोषके समान भेरीशब्दोंसे; पुनः जयघंटाशब्दोंसे, मेघके शब्दके समान भंभाशब्दोंसे, समुद्रके गम्भीर शब्दसमूहके समान पटुपटहके शब्दोंसे, तथा अन्य वाद्यसमूहके बजनेपर मानों पर्वत सहित पृथिवी विदीर्ण हो गई थी ॥ २८७–२८९ ॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक नहला कर व वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके पश्चात् दिव्य कुंकुमपंकका लेपन कर विशाल गुणोंको प्रगट करनेवाली स्तुतियों द्वारा स्तवन करके धर्मानुराग युक्त वे सब देव जिस प्रकारसे आये थे उसी प्रकारसे वापिस चले जाते हैं ॥ २९०–२९१ ॥ पंचम केवलज्ञानसे सम्पन्न, पंचम गति (मोक्ष) के उपदेष्टा और श्रेष्ठ पद्मनन्दि द्वारा नमस्कृत पद्मनाथ जिनेन्द्रको मैं शिरसे नमस्कार करता हूं ॥२९२ ॥

॥ इस प्रकार जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें महाविदेहाधिकारका वर्णन
करनेवाला चतुर्थ उद्देश समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

---

१ प ब जय, शप्रतौ 'जइ ते धारावडणा' इत्येतस्य स्थाने ' जोयण ' इत्येक एवायं शब्दः समुपलभ्यते. २ प तो सो सव्वदसिहरे सियक्खंडो, ब तो सो सव्वदसियरे सियक्खंडो ३ उ ब पयढक्क, प पयढक्क, श पटक्क. ४ उ श भरीहि. ५ उ श दुंदहि, प ब दुंदहि. ६ उ श सद्दोहि विविहोहि. ७ प पडुपह, ब पडुपह. ८ उ फुडियं व सपव्वदा, श फुडियं व उपुव्वदा. ९ उ ण्हाविंता मित्तीए, प ण्हाएंता भत्तीए, ब एहाएता भत्तीए, श एहाविंता मित्तीए. १० उ श विसालहि. ११ उ श जेण गदा. १२ प ब देसियं. १३ प ब सिरस्स.

[पंचमो उद्देसो]

णमिऊण सुपासजिणं सुरिंदवइसंथुवं विगयमोहं । मंदरजिणवरभवणं जहाकमं तं परूवेमि ॥ १
संखिंदुकुंदधवलो मणिगणकरजालखवियतिमिरोहो । जिणइंदपवरभवणो तिहुयणतिलओ त्ति णामेण ॥ २
पण्णत्तरिउच्छेहो पण्णासायाम तह य विक्खंभो । पुण्णिंदुमंडलणिभो गंधकुडी दिव्वपासादे[1] ॥ ३
सोलसजोयणतुंगा अट्ठेव य वित्थडा[2] समुद्दिट्ठा । वित्थारसमपवेसा तस्स दु दाराण परिसंखा ॥ ४
मंदरगिरिपढमवणे चत्तारि हवंति चदुसु वि दिसासु । जिणइंदाणं[3] भवणा अणाइणिहणा समुद्दिट्ठा ॥ ५
जोयणसयआयामा तदद्धवित्थार उभयदलतुंगा । उग्गाढ अद्धजोयण रयदमयाभित्तिजिणगेहा ॥ ६
जिणभवणस्सवगाढं दिवड्ढसयसंगुणेण जं लद्धं । तं उच्छेहं दिट्ठं पढमवणे जिणघराणं तु ॥ ७
गुणगारेण विभत्तं उच्छेहं जिणघराण जं लद्धं । तं अवगाहं[5] णेयं समासदो होइ णिद्दिट्ठं ॥ ८
अहवा आयामे पुण विक्खंभं पक्खिवित्तु अद्धकदे । जो लद्धो सो णेओ उच्छेहो सव्वभवणाणं ॥ ९

सुरेन्द्रपतियोंसे संस्तुत और मोहसे रहित सुपार्श्व जिनेन्द्रको नमस्कार करके क्रमानुसार उस मन्दर पर्वतस्थ जिनभवनका निरूपण करते हैं ॥ १ ॥ त्रिभुवनतिलक नामक वह जिनेन्द्र-भवन, शंख, चन्द्र और कुंद पुष्पके समान धवल तथा मणिगणोंके किरणसमूहसे अन्धकार-समूहको नष्ट करनेवाला है ॥ २ ॥ उस दिव्य प्रासादमें पचत्तर [योजन] ऊंची एवं पचास [योजन] आयाम व विष्कम्भसे सहित पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान गन्धकुटी है ॥ ३ ॥ इसके द्वार सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन विस्तृत और विस्तारके समान प्रवेशसे सहित हैं, यह उसके द्वारोंका प्रमाण है ॥ ४ ॥ मन्दर पर्वतके प्रथम वनमें चारों ही दिशाओंमें अनादिनिधन चार जिनेन्द्रभवन कहे गये हैं ॥ ५ ॥ रजतमय भित्तियोंसे संयुक्त ये जिनगृह सौ योजन आयत, उससे आधे अर्थात् पचास योजन विस्तृत, आयाम व विस्तारके सम्मिलित प्रमाणसे आधे ($\frac{१००+५०}{२} = ७५$ यो.) ऊंचे, तथा अर्ध योजन प्रमाण अवगाहसे सहित हैं ॥ ६ ॥ जिनभवनके अवगाहको डेढ़ सौसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उतना ($\frac{१}{२} \times \frac{१५०}{१} = ७५$) प्रथम वनमें स्थित जिनगृहोंका उत्सेध कहा गया है ॥ ७ ॥ उक्त गुणकारका उत्सेधमें भाग देनेपर जो लब्ध हो उतना जिनगृहोंका अवगाह जानना चाहिये, ऐसा संक्षेपसे निर्दिष्ट किया गया है ॥ ८ ॥ अथवा, आयाममें विष्कम्भको मिलाकर आधा करनेपर जो प्राप्त हो वह सब भवनोंका उत्सेध जानना चाहिये (देखिये ऊपर गा. ६) ॥ ९ ॥

---

१ उ श °पासादो, प ब °पासाहो. २ उ श अट्ठेव य जो वित्थडा. ३ प ब जिणयंदाणं. ४ उ श तदध. ५ प ब अवगाढं.

उच्छेहं विगुणित्ता पंचासेणूण होइ आयामं[1] । आयामद्धेण पुणो विक्खंभो[3] होइ भवणाणं ॥ १०
विक्खंभे पक्खित्ते आयामे[4] जादरासिणा तेण । उच्छेहे भागहिदे जं लद्धं होइ अवगाढं ॥ ११
तेसिं जिणभवणाणं पुव्वुत्तरदक्खिणेसु दाराणि । तिण्णेव समुद्दिट्ठा कंचणमणिरयणणिवहाणि ॥ १२
दाराणि मुणेयव्वा अट्ठेव य जोयणाणि[5] तुंगाणि । वित्थाराणि तदद्धं मुत्तामणिदामणिवहाणि ॥ १३
भवणेसु अवरपुव्वे मणिमालाविप्फुरंतकिरणाओ । अट्ठेव सहस्साओ लंबंतीओ[6] विचित्तवण्णाओ ॥ १४
चउवीससहस्साओ णिम्मलवरकणयदिव्वमालाओ । ताणंतरेसु णेया लंबंतीओ विरायंति ॥ १५
कप्पूरागरुचंदणतुरुक्खवरसुरभिधूमगंधड्ढा । धूवघडा[7][8] णायव्वा चउवीससहस्स परिसंखा ॥ १६
तरुणरवितेयणिवहा सुगंधदामाण अभिमुहा दिव्वा । बत्तीस रयणकलसा सहस्सगुणिदा समुद्दिट्ठा ॥ १७
चत्तारि सहस्साणि दु बाहिरभागम्मि[9] होंति मणिमाला । बारस चेव सहस्सा कंचणमाला समुद्दिट्ठा ॥ १८
धूवघडा[10] विण्णेया बाहिरभागम्मि बारससहस्सा । सोलस चेव सहस्सा कंचणकलसा समुद्दिट्ठा ॥ १९
समहियसोलसजोयणआयामा वित्थडा दु अट्ठधिया । वेजोयणउव्विद्धा पीढाण हवंति परिसंखा ॥ २०

उत्सेधको दूना करके पचास कम कर देनेसे भवनोंका आयाम और आयामसे आधा विष्कम्भ होता है ॥ १० ॥ आयाममें विष्कम्भके मिलानेपर उत्पन्न हुई उस राशिसे उत्सेधके भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना अवगाहका प्रमाण होता है ॥ ११ ॥ उन जिनभवनोंके पूर्व, उत्तर और दक्षिणमें सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके समूहसे संयुक्त तीन ही द्वार कहे गये हैं ॥ १२ ॥ मुक्ता एवं मणियोंकी मालाओंके समूहसे संयुक्त ये द्वार आठ योजन ऊंचे और इससे आधे विस्तारवाले हैं ॥ १३ ॥ भवनोंमें [द्वारके] पश्चिम-पूर्वमें प्रकाशमान किरणोंसे सहित और विचित्र वर्णवाली आठ हजार मणिमालायें लटकती रहती हैं ॥ १४ ॥ उनके अन्तरालमें निर्मल उत्तम सुवर्णकी चौबीस हजार दिव्य मालायें लटकती हुई विराजमान होती हैं ॥ १५ ॥ कर्पूर, अगरु, चन्दन और तुरुष्कके सुगन्धित उत्तम धूमके गन्धसे व्याप्त चौबीस हजार संख्या प्रमाण धूपघट जानना चाहिये ॥ १६ ॥ सुगन्धित मालाओंके अभिमुख तरुण सूर्यके समान तेजपुंजसे संयुक्त दिव्य बत्तीस हजार रत्नमय कलश कहे गये हैं ॥ १७ ॥ बाह्य भागमें चार हजार मणिमालायें और बारह हजार सुवर्णमालायें कही गई हैं ॥ १८ ॥ बाह्य भागमें बारह हजार धूपघट और सोलह हजार सुवर्णकलश कहे गये हैं ॥ १९ ॥ सोलह योजनसे अधिक आयत, आठ योजन विस्तीर्ण और दो योजन ऊंची, यह पीठोंके आयामादिका प्रमाण है ॥ २० ॥ भवनोंके ये पीठ वज्र, इन्द्रनील, मरकत,

१ उ विउणित्ता, श विउतिणा. २ प ब °णूण आयामं ३ उ श विक्खंसं ४ उ श आयामं. ५ प ब अट्ठेव जोयणाणि. ६ उ श लंबंत. ७ उ कप्पूरागरुचंदतुरुक, श कप्पूरावयचंदतुरुक. ८ उ धूमव्वडा, प ब धूमघडा, श धूमव्वटा. ९ उ भागाम्मि, श भागास्मि. १० उ धूमघडा, श धूमवडा.

वज्जिंदणीलमरगयकक्केयणपउमरायणिवहाणि । वरवेदिपरिउडाणि य भवणाणं होंति पीढाणि ॥ २१

सोलसजोयणदीहा विच्छिण्ण तदद्ध छच्च उत्तुंगा । बेगाउयअवगाढा मणिमयसोवाणपंतीओ ॥ २२

अट्ठुत्तरसयसंखा सोवाणा होंति तेसु भवणेसु । पंचधणुस्सयतुंगा साहियपणवण्णऊण इक्केक्को ॥ २३

बेगाउयउव्विद्धा पंचधणुस्सयपमाणविच्छिण्णा । पीढाणं[2] वेदीओ णिद्दिट्ठा होंति णायव्वा ॥ २४

फलिहमणिभित्तिणिवहा णाणामणिरयणजालपरियरिया[3] । वेरुलियखंभपउरा सोवाणतिगेहिं संजुत्ता ॥ २५

दिव्वामोदसुगंधा देवच्छंदेत्ति[4] णामदो णेया । वरगब्भघरा दिट्ठा पइण्णकुसुमच्चणसणाहा ॥ २६

जिणइंदाणं पडिमा अणाइणिहणा सहावणिप्पण्णा । पंचधणुस्सयतुंगा वरवंजणलक्खणोवेदा ॥ २७

अट्ठोत्तरसयसंखा णाणामणिकणयरयणपरिणामा । पीढेसु होंति णेया सयमेव जिणिंदपडिमाओ[5] ॥ २८

धवलादवत्तचामरहरिपीढमहंततेयसंजुत्ता । दुंदुहिअसोयतरुवरसुरकुसुमपडंतसंछण्णा ॥ २९

णाणाविहउवयरणा अट्ठोत्तरसयपमाणं णिद्दिट्ठा । पत्तेयं पत्तेयं एगेगाणं वियाणाहि ॥ ३०

कर्केतन और पद्मराग मणियोंके समूहसे निर्मित तथा उत्तम वेदीसे वेष्टित होते हैं ॥ २१ ॥ सोलह योजन दीर्घ, इससे आधी विस्तीर्ण, छह योजन ऊंची, और दो गव्यूति प्रमाण अवगाहसे सहित मणिमय सोपानपंक्तियां होती हैं ॥ २२ ॥ उन भवनोंमें एक सौ आठ सोपान होते हैं। इनमेंसे एक एक सोपान साधिक पचवन कम पांच सौ धनुष अर्थात् चार सौ चवालीस धनुषसे कुछ अधिक ऊंचा होता है ॥ २३ ॥ पीठोंकी वेदियां दो गव्यूति ऊंची और पांच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण होती हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये ॥ २४ ॥ स्फटिक मणिमय भित्तिसमूहसे सहित, नाना मणि एवं रत्नोंके समूहसे व्याप्त, वैडूर्य मणिमय खम्भोंसे प्रचुर, तीन सोपानोंसे संयुक्त, दिव्य आमोदसे सुगन्धित, और बिखरे हुए पूजाकुसुमोंसे सनाथ देवच्छन्द नामक श्रेष्ठ गर्भगृह कहे गये हैं ॥ २५–२६ ॥ उन पीठोंपर अनादि-निधन, स्वभावसे निष्पन्न, पांच सौ धनुष ऊंची, उत्तम व्यञ्जन एवं लक्षणोंसे संयुक्त ऐसी नाना मणियों, सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप स्वयमेव एक सौ आठ जिनेन्द्रप्रतिमायें होती हैं ॥ २७–२८ ॥ उक्त प्रतिमायें धवल छत्र, चामर, हरिपीठ (सिंहासन) और महान् तेज (भामण्डल) से संयुक्त तथा दुंदुभि, उत्तम अशोक वृक्ष और सुरों द्वारा की गई कुसुमवृष्टिसे व्याप्त होती हैं ॥ २९ ॥ एक एक (प्रतिमाके) समीप नाना प्रकारसे उपकरणों (मंगलद्रव्यों) मेंसे प्रत्येक प्रत्येक एक सौ आठ संख्या प्रमाण निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ३० ॥

---

१ प कणएवकवक, ब कुणएवककक्का. श तूणइक्केक्क. २ उ पीयदाणं, श पीत्तयणं. ३ प ब विजरिया. ४ उ श देवच्छंदो त्ति. ५ उ सयमेव जिणिंदयं देवं, श सयमेव दयं देवं.

रयणमए जगदीए रयदमयापीढेतुंगसिहरेसु । मणिमयखंभेसु तहा धयणिवहा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ३१
सीहगयहंसगोवइसयवत्तमऊरमयरधयाणिवहा । चक्कायवत्तगरुडा दसविहसंखा मुणेयव्वा[1] ॥ ३२
अट्ठसयं अट्ठसयं पुगेगधयाण होंति परिवारा । वरपंचवण्णदिव्वा मुत्तामणिदामकयसोहा ॥ ३३
मुहमंडवाण तिण्हं रयदसुवण्णाण बाहिरदिसाए । गोउरसमधियतुंगा समंतदो संठियपडाया ॥ ३४
कंचणमणिरयणमया पायारा तत्थ जोयणुव्विद्धा । सोलसयजोयणाइं तोरणदाराणि रम्माणि ॥ ३५
जोयणसयआयामा विक्खंभ तदद्ध सोलसुत्तुंगा[4] । मुहमंडवा वि णेया वेकोसवगाह[5] णिद्दिट्ठा ॥ ३६
पेक्खागिहा य पुरदो विक्खंभायाम जोयणसयाणि । समहियसोलसतुंगा जोयणअद्धा[6] दु अवगाहा ॥ ३७
सोलसजोयणतुंगा चउसट्ठायामवित्थडा णेया । ताणं पुरदो दिट्ठा सभावरा रयणसंछण्णा[7] ॥ ३८
ताणं सभाघराणं पीढाणि हवंति कंचणमयाणि । विक्खंभायामेण य असीदि तह जोयणाणि हवे[8] ॥ ३९
वेजोयणउच्चाणि य पउमप्पहवेदिएहि जुत्ताणि । रयणमयतोरणेहि य रम्माणि हवंति पीढाणि ॥ ४०

रत्नमय पृथिवीपर स्थित रजतमय पीठके ऊपर ऊंचे शिखरोंवाले मणिमय खम्भोंके ऊपर ध्वजासमूह निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ३१ ॥ सिंह, गज, हंस, गोपति (वृषभ), कमल, मयूर, मकर, चक्र, आतपत्र और गरुड़, इन दश प्रकारकी ध्वजाओंके समूह जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ इनमेंसे एक एक ध्वजाके मोतियों व मणियोंकी मालाओंसे शोभायमान उत्तम पांच वर्णवाली एक सौ आठ एक सौ आठ दिव्य परिवारध्वजायें होती हैं ॥ ३३ ॥ वहां रजत व सुवर्णमय मुखमण्डपोंके बाह्य भागमें गोपुरोंसे कुछ अधिक ऊंचे व चारों ओर स्थित पताकाओंसे सहित सुवर्ण, मणि एवं रत्नमय तीन प्राकार व उनमें एक योजन ऊंचे सोलह योजनके रमणीय तोरणद्वार होते हैं ॥ ३४–३५ ॥ मुखमण्डप भी सौ योजन आयत, इससे आधे विस्तृत, सोलह योजन ऊंचे और दो कोश अवगाहसे युक्त कहे गये हैं ॥ ३६ ॥ उनके आगे सौ योजन विष्कम्भ व आयामसे सहित, सोलह योजनसे कुछ अधिक ऊंचे, और अर्ध योजन अवगाहसे संयुक्त प्रेक्षागृह होते हैं ॥ ३७ ॥ उनके आगे सोलह योजन ऊंचे और चौंसठ योजन प्रमाण आयाम व विस्तारसे सहित रत्नोंसे व्याप्त सभागृह होते हैं ॥ ३८ ॥ उन सभागृहोंके सुवर्णमय पीठ अस्सी योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित होते हैं ॥ ३९ ॥ उक्त पीठ दो योजन ऊंचे, पद्म जैसी प्रभावाली वेदिकाओंसे युक्त और रत्नमय तोरणोंसे रम्य होते हैं ॥ ४० ॥ उन सभागृहोंके आगे जिनेन्द्रप्रतिमाओंसे

---

१ प ब रयणमहापीढ. २ उ मओरमयर, प ब मउरमरयं, श वओरमयर. ३ प ब संखा समुद्दिट्ठा. ४ उ श सोलउतुंगा. ५ प ब वेकोसगाह, श वेकोसाविगाह. ६ उ श अट्ठा. ७ ब श °वरा यणसंकण्णा, ८ ब मवे, श मावे.

ताणं सभाघराणं पुरदो थूहाणि होंति रम्माणि । जिणवरपडिमच्छण्णा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ४१
रयणमयविउलपीढं उत्तुंगं जोयणाणि[1] चालीसं । थूहस्स[2] दु चउवीसाकंचणवेदीसमाजुत्तं ॥ ४२
पीढस्सुवरि[3] विचित्तं तिमेहलापरिउडं महाथूहं[4] । आयामं विक्खंभं उच्छेहं होइ चउसट्ठी ॥ ४३
थूहादो पुव्वदिसं[5] गंतूणं होइ कणयमयपीढं । विक्खंभायामेण य सहस्स तह जोयणा णेया ॥ ४४
बारसवेदिसमग्गं वरतोरणमंडियं परमरम्मं । मणिगणजलंतणिवहं बहुतरुगणसंकुलं दिव्वं ॥ ४५
तस्स दु पीढस्सुवरिं सोलस तह जोयणा समुत्तुंगा । चेदियरुक्खा[7] णेया णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ४६
एगं[8] च सयसहस्सं चालीसा तह सहस्स परिसंखा । एगसयं वीसहिया सिद्धत्थतरूण परिसंखा ॥ ४७
उड्ढं गंतूण पुणो धरणीदो जोयणाणि चत्तारि । चदुसु वि दिसाविभागे[9] साहाओ[10] होंति णिद्दिट्ठा ॥ ४८
बारहजोयणदीहा सिद्धत्थयणामधेयरुक्खाणं[11] । विक्खंभेण य[12] जोयण णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ४९
अट्ठेव जोयणेसु य रुंदेसु महादुमेसु णिद्दिट्ठा । जिणइंदाणं पडिमा अकिट्टिमा सासयसभावा ॥ ५०
पलियंकासणबद्धा रयणमया पाडिहेरसंजुत्ता । सव्वाणं रुक्खाणं चदुसु वि भागेसु ते होंति ॥ ५१

युक्त नाना मणि एवं रत्नोंके परिणाम रूप रमणीय स्तूप होते हैं ॥ ४१ ॥ स्तूपका रत्नमय विशाल पीठ चौवीस सुवर्णमय वेदियोंसे संयुक्त तथा चालीस योजन ऊंचा होता है ॥ ४२ ॥ पीठके ऊपर तीन मेखलाओंसे वेष्टित महा स्तूप होता है । इसका आयाम, विष्कम्भ और उत्सेध चौंसठ योजन प्रमाण होता है ॥ ४३ ॥ स्तूपसे आगे पूर्व दिशामें जाकर एक हजार योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित सुवर्णमय पीठ जानना चाहिये ॥ ४४ ॥ यह दिव्य पीठ बारह वेदियोंसे परिपूर्ण, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, देदीप्यमान मणिगणोंके समूहोंसे युक्त और बहुतसे तरुगणोंसे व्याप्त होता है ॥ ४५ ॥ उस पीठके ऊपर स्थित सोलह योजन ऊंचे नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप चैत्य वृक्ष जानना चाहिये ॥ ४६ ॥ सिद्धार्थ वृक्षोंकी संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है ॥ ४७ ॥ पृथिवीसे चार योजन ऊपर जाकर चारों ही दिशाविभागोंमें उनकी शाखायें निर्दिष्ट की गई हैं ॥ ४८ ॥ सर्वदर्शियों द्वारा सिद्धार्थ नामक वृक्षोंकी [शाखायें] बारह योजन दीर्घ और एक योजन विष्कम्भसे युक्त निर्दिष्ट की गई हैं ॥ ४९ ॥ आठ योजन रुंदवाले उन महा द्रुमोंपर अकृत्रिम और शाश्वतिक स्वभाववाली जिनेन्द्रोंकी प्रतिमायें निर्दिष्ट की गई हैं ॥ ५० ॥ पल्यंकासनसे विराजमान और प्रातिहार्योंसे संयुक्त वे रत्नमय जिनप्रतिमायें सब वृक्षोंके चारों ही भागोंमें होती हैं ॥ ५१ ॥ उस वृक्षसमूहसे पुनः पूर्व दिशा भागमें जाकर

---

१ प जोयणेणि, ब जोयणेण. २ उ श थूहस. ३ उ श पीढेसुवरि. ४ प ब चित्तं तिमेहला°. ५ उ श महाथूळं. ६ उ पुव्वदिसे, प ब पुव्वदिसो. ७ उ श वेदीय, प ब वेदिय. ८ उ प ब श एवं; ९ उ प ब श दिसामिभागे. १० उ श सहाओ. ११ प ब सिद्धत्थं णामचेय. १२ ब विक्खंभेयण.

तत्तो दुमसंडादो गंतूण पुणो वि पुव्वदिसभागे । धयणिवहाणं पीढं बारसवेदीहिं संजुत्तं ॥ ५२
तम्मि वरपीढसिहरे सोलस तह जोयणा समुत्तुंगा । कोसेगं[1] होंति रुंदा वेरुलियमया महाखंभा ॥ ५३
खंभेसु होंति दिव्वा महाधया विविहवण्णसंजुत्ता[2] । छत्तत्तयवरसिहरा अणोवमा रूवसंपण्णा[3] ॥ ५४
धयणिवहाणं पुरदो वावीओ होंति सलिलपुण्णाओ । सयजोयणदीहाओ पण्णासाओ य रुंदाओ[4] ॥ ५५
दसजोयणउंडाओ[5] कंचणमणिवेदिएहिं[6] जुत्ताओ । मणितोरणणिवहाओ कमलुप्पलकुसुमछण्णाओ ॥ ५६
एवं पुव्वदिसाए जिणभवणं मंदरस्स णिद्दिट्ठं । अवसेसाण दिसाणं एमेव कमो मुणेयव्वो ॥ ५७
तत्तो दहादु परदो[7] पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसु । पासादा णायव्वा देवाणं कीडणा[8] होंति ॥ ५८
कणयमया पासादा पण्णासा जोयणा समुत्तुंगा । विक्खंभायामेण य पणवीसा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ५९
कणयमया पासादा वेरुलियमया य मरगयमया य । ससिकंतसूरकंताकक्केयणपुस्सरागमया[9] ॥ ६०
वरवेदिएहिं जुत्ता कंचणमणिरयणजालपरियरियं । अक्खयअणाइणिहणा[10] को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ ६१

बारह वेदियोंसे संयुक्त ध्वजासमूहोंका पीठ होता है ॥ ५२ ॥ उस उत्तम पीठके शिखरपर सोलह योजन ऊंचे और एक कोश विस्तारवाले वैडूर्यमणिमय विशाल खम्भ होते हैं ॥ ५३ ॥ खम्भोंपर विविध वर्णोंसे संयुक्त, शिखरपर उत्तम तीन छत्रोंसे सुशोभित और अनुपम रूपसे सम्पन्न दिव्य महाध्वजायें होती हैं ॥ ५४ ॥ ध्वजासमूहोंके आगे सौ योजन दीर्घ, पचास योजन विस्तृत, दश योजन गहरी, सुवर्ण एवं मणिमय वेदिकाओंसे युक्त, मणिमय तोरणसमूहसे संयुक्त, कमल व उत्पल कुसुमोंसे व्याप्त और जलसे परिपूर्ण वापियां होती हैं ॥ ५५–५६ ॥ इस प्रकार मन्दर पर्वतकी पूर्व दिशामें स्थित जिनभवनका स्वरूप निर्दिष्ट किया है । शेष दिशाओंके जिनभवनोंका भी यही क्रम जानना चाहिये ॥ ५७ ॥ उस द्रहके आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागोंमें देवोंके क्रीडाप्रासाद हैं ॥ ५८ ॥ ये सुवर्णमय प्रासाद पचास योजन ऊंचे और पच्चीस योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ५९ ॥ उक्त प्रासाद सुवर्ण, वैडूर्यमणि, मरकतमणि चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन एवं पुखराज मणियोंसे निर्मित, उत्तम वेदिकाओंसे युक्त, सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके समूहसे व्याप्त, अक्षयी व अनादि-निधन हैं । उनका सम्पूर्ण वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ है ? ॥ ६०–६१ ॥ उनसे आगे फिर भी पूर्व दिशामें जाकर

१ प ब कोसेव. २ उ विविहवणसंहुत्ता, श विविहसंजुत्तु. ३ प ब संपुण्णा. ४ उ पाण्णसाओ य रुंदाओ, प ब पण्णाउ य रुंदाओ, श पाण्णासाओ य रुंदाओ. ५ उ श उडाओ, प ब उदाओ. ६ ब वेदिओराहिं, श वेदिओएहिं. ७ प ब पुरदो. ८ प ब कोवीणा, श कोडणा. ९ प ब पुंसराय. १० उ श अणाइणिहं, प ब अणायणिहणा.

तेहिंतो गंतूणं पुव्वदिसाए पुणो वि णायव्वो[1] । वरतोरणं विचित्तं मणिकंचणरयणसंछण्णं ॥ ६२
जोयणसयद्धतुंगं तदद्धविस्थार भासुरं दिव्वं[2] । मुत्तादामेणद्धं वरघंटाजालरमणीयं ॥ ६३
तत्तो परं विचित्ता पासादा गोउराण पासेसु । जोयणसयउव्विद्धा दो दो दु हवंति णायव्वा ॥ ६४
तत्तो परं विचित्तो[3] धयणिवहा विविहवण्णजादीया । असिदी सहस्स संखा णिद्दिट्ठा होंति णायव्वा ॥ ६५
तोरणसयसंजुत्ता वरवेदीपरिउद्धा समुत्तुंगा । सायरतरंगभंगा सोहंति महाधया रम्मा ॥ ६६
तत्तो परं वियाणह वणसंडं विविहपायवाइण्णं[5] । वणवेदिएहि जुत्तं णाणामणिरयणपरिणामं ॥ ६७
रयणमयपीढसोहं मणितोरणमंडियं मणभिरामं । कणयमयकुसुमसोहं मरगयवरपत्तसंछण्णं ॥ ६८
चंपयअसोयगहणं सत्तच्छयअंबकप्पतरुणिवहं । वेरुलियफलसमिद्धं विद्दुमसाहाउलंसिरीयं ॥ ६९
ताणं कप्पदुमाणं मूलेसु हवंति चदुसु वि दिसासु । जिणइंदाणं[8] पडिमा सपाडिहेरा विरायंति ॥ ७०
सीहासणछत्तत्तयभामंडलचामरादिसंजुत्ता । पलियंकासणसंगद[9] अणोवमा रूवसंठाणा ॥ ७१

मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंसे व्याप्त विचित्र उत्तम तोरण जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ यह तोरण पचास योजन ऊंचा, इससे आधे (२५ यो.) विस्तारसे सहित, भासुर, दिव्य, मुक्तामालासे संयुक्त और उत्तम घंटा समूहसे रमणीय है ॥ ६३ ॥ इसके आगे गोपुरोंके पार्श्वभागोंमें सौ योजन ऊंचे दो दो विचित्र प्रासाद जानना चाहिये ॥ ६४ ॥ इसके आगे विविध वर्ण व जातिके एक हजार अस्सी (१०८ × १०) संख्या प्रमाण विचित्र ध्वजाओंके समूह निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ६५ ॥ सौ तोरणोंसे संयुक्त व उत्तम वेदीसे वेष्टित वे ऊंची रमणीय महा ध्वजायें समुद्रकी तरंगोंके भंगके समान शोभायमान होती हैं ॥ ६६ ॥ इसके आगे विविध पादपोंसे व्याप्त, वनवेदिकाओंसे युक्त, नाना मणियों व रत्नोंके परिणाम रूप, रत्नमय पीठसे शोभित, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, मनोहर, सुवर्णमय कुसुमोंसे शोभित, मरकत मणिमय उत्तम पत्तोंसे व्याप्त, चंपक व अशोक वृक्षोंसे गहन; सप्तच्छद व आम्र कल्पवृक्षोंके समूहसे परिपूर्ण, वैडूर्यमय फलोंसे समृद्ध, और मूंगामय शाखाओंकी शोभासे संयुक्त वनखण्ड जानना चाहिये ॥ ६७-६९ ॥ उन कल्पवृक्षोंके मूल भागोंमें चारों ही दिशाओंमें प्रातिहार्य सहित जिनेन्द्रोंकी प्रतिमायें विराजमान हैं ॥ ७० ॥ ये प्रतिमायें सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादिसे संयुक्त, पल्यंकासनसे स्थित और अनुपम रूप व संस्थानसे युक्त हैं ॥ ७१ ॥ इस प्रकार संक्षेपसे जम्बूद्वीप सम्बन्धी मंदर पर्वतके भद्रशाल वनमें स्थित

---

१ उ श णायव्वा. २ प ब दिव्वा. ३ उ श विचित्त. ४ ब विवह. ५ उ श पायवाइण्णं, प पाइवायण्णं, ब पाइवाइण्णं. ६ प ब मरगयवपत्त, श मरगयपरवत्त. ७ उ श सहाउल, प ब साहयळ. ८ उ श जेणइंदाणं. ९ उ पलियंकणिसण्णगदा, प पलियंकसंगदा, ब पलियंकणसंगदा, श पलियंकणिसणोगदा.

एवं तु भद्दसाले जंबूदीवस्स मंदरगिरिस्स । जिणभवणाण पमाणं समासदो होदि णायव्वा ॥ ७२
वेरुलियफलिहमरगयगव्हिंदमसाररयणचित्ताणि[1] । अंजणपवालमरगयजंबूणयभूसियतलाइं ॥ ७३
ससिकंतसूरकंता ताइं[2] वरवइरलोहियंकाइं[3] । वरमणिविउलसुणिम्मल सोहंति अणोवमगुणाइं ॥ ७४
सुविणिम्मलवरविउला[4] चोक्खा य पसाहिया[5] दरिसणिज्जा । अच्चंतमणहरा ते णाणाविहरूवसंपण्णा[6] ॥ ७५
वरकमलकुमुदकुवलयणीलुप्पलवउलतिलयकयसोहा[7] । कप्पूरागरुचंदणकालागरुधूमगंधड्ढा ॥ ७६
धयविजयवइजयंतीपडायबहुकुसुमसोहकयमाला । विलसंतमणभिरामा[8] बहुकोदुगमंगलसणाहा ॥ ७७
जगजगजगंतसोहा अच्छेरयरूवसारसंठाणा । ते[9] विविहरइयमंगलवंदणमालुज्जलसिरीया ॥ ७८
णिच्चं मणोभिरामा[11] फुरंतमणिकिरणसोहसंभारा[12] । कंचणरयणमहामणिभिसंतपासादसंघायं ॥ ७९
अगरुयतुरुक्कचंदणणाणाविहगंधरिद्धिसंपण्णा । दूरालोयमणोहर दीसंति महंतपासादा ॥ ८०
घंटाकिंकिणिवुब्बुदचामरणिवहेहिं सोहिया रम्मा । मेरुस्स य जिणभवणा समासदो होंति णिद्दिट्ठा ॥ ८१

....

जिनभवनोंका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ७२ ॥ ये जिनभवन वैडूर्य, स्फटिक, मरकत, मसारगल्ल और इन्द्र (इन्द्रनील) रत्नोंसे विचित्र; अंजन, प्रवाल, मरकत और सुवर्णसे भूषित तलवाले; चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, उत्तम वज्र एवं लोहितांकसे सहित; उत्तम व विपुल मणियोंसे अतिशय निर्मल तथा अनुपम गुणोंसे युक्त होते हुए शोभायमान हैं ॥ ७३–७४ ॥ अतिशय निर्मल, विस्तृत, शुद्ध, प्रसाधित (सजे हुए), दर्शनीय, अत्यन्त मनोहर, नाना प्रकारके आकार अथवा मूर्तियोंसे सम्पन्न उत्तम कमल, कुमुद, कुवलय, नीलोत्पल, वकुल और तिलक वृक्षोंसे शोभायमान; कर्पूर, अगरु, चन्दन और कालागरुके धुएंके गन्धसे व्याप्त; विजया व वैजयन्ती ध्वजा-पताकाओंसे सहित; बहुतसे कुसुमोंकी मालाओंसे शोभायमान, विलास युक्त, मनको अभिराम, बहुतसे कौतुक एवं मंगलसे सनाथ, जगमगाती हुई कान्तिसे सहित, आश्चर्यजनक रूप व श्रेष्ठ आकृतिसे युक्त, विविध प्रकारकी रची गई मंगल स्वरूप वन्दनमालाओंसे उज्ज्वल शोभावाले, नित्य मनोहर; प्रकाशमान मणिकिरणसमूहसे संयुक्त; सुवर्ण, रत्न एवं महामणियोंसे प्रकाशमान प्रासादसमूहसे युक्त, तथा अगरु, तुरुष्क व चन्दनकी नाना प्रकारकी गन्धऋद्धिसे सम्पन्न, ऐसे वे महाप्रासाद दूरसे देखनेमें मनोहर दिखते हैं ॥ ७५–८० ॥ घंटा, किंकिणी, बुद्बुद और चामरसमूहोंसे शोभायमान उन रमणीय मेरुके जिनभवनोंका संक्षेपसे स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है ॥ ८१ ॥

....

१ उ श मसारयणचिताणि. २ प ताइ, ब माइ. ३ उ लोहियंकाणं, श लोहियंकाल. ४ उ श मउला. ५ उ चोक्खा सुपसाहिया, श चोक्खा सुपसाहिया. ६ उ श रूवसंछण्णा. ७ प ब वउलयकय. ८ उ प ब विलसंतणाभिदामा, श विलसंताणमिधामा. ९ उ श तं. १० उ प ब श चंदण. ११ उ श मणाभिरामं. १२ उ श संभार, ब संभार. १३ ब इसंत, श णसंत.

बलिपुप्फगंधअक्खयपदीववरधूवसुरहितोएहिं । अच्चंति य वंदंति य सुरपवरा सव्वकालम्मि ॥ ८२
सव्वंगसुंदरीओ सव्वालंकारभूसिदंगीओ । कलमहुरसुस्सराओ इंदियपल्हायणकरीओ ॥ ८३
सुकुमारकोमलाओ[1] जोव्वण[2]गुणसालिणीओ सव्वाओ । पीदिं जणंति[3] ताओ अप्पडिरूवेहि रूवेहिं ॥ ८४
जिणइंदाणं[4] चरियं गणहरदेवाण हलधराणं[5] च । जिणभवणेसु वि णिच्चं अच्छराओ पणच्चंति[6] ॥ ८५
वरपडहभेरिमद्दलमुइंग[7]कंसालकाहलादीहिं । वायंति[8] सुरा तूरं झल्लरिबहुसंख[9]सद्देहिं ॥ ८६
महुरेहिं मणहरेहि य दुंदुहिघोसेहि दिव्ववयणेहि । गायंति किण्णरगणा संभूदगुणं जिणिंदाणं ॥ ८७
गंधव्वगीयवाइयणाडयसंगीय[10]सद्दगंभीरं । वरभद्दसालभवणं[11] समासदो होइ णिद्दिट्ठं ॥ ८८
जंबूदीवस्स जहा मेरुस्स जिणिंदइंद[12]वरभवणा । अवसेसमंदराणं[13] जिणिंदभवणा तहा चेव ॥ ८९
कुल[14]पव्वदेसु एवं वक्खारापव्वदेसु एमेव । णंदणवणेसु एवं जिणभवणा होंति णायव्वा ॥ ९०
णवरि विसेसो णेओ[15] वक्खारणगादिएसु[16] भवणाणं । विक्खंभा आयामा उच्छेहा होंति अण्णण्णा[17] ॥ ९१

श्रेष्ठ देव सर्वदा बलि (नैवेद्य) पुष्प, गन्ध, अक्षत, प्रदीप, उत्तम धूप व सुगन्धित जलसे पूजा करते हैं और वन्दना करते हैं ॥ ८२ ॥ इन जिनभवनोंमें समस्त अंगोंसे सुन्दर, सब अलंकारोंसे भूषित शरीरवाली, कल एवं मनोहर सुन्दर स्वरसे संयुक्त, इन्द्रियोंको आह्लादित करनेवाली, सुकुमार, कोमल, यौवनगुणोंसे शोभायमान, तथा अप्रतिम (अनुपम) रूपोंसे प्रीतिको उत्पन्न करनेवाली वे अप्सरायें नित्य जिनेन्द्र, गणधर देव और बलदेवोंके चरित्रका अभिनय करती हैं ॥ ८३–८५ ॥ देवगण झालर एवं बहुतसे शंखोंके शब्दोंके साथ उत्तम पटह, भेरी, मर्दल, मृदंग, कांस्याल और काहलादिक बाजोंको बजाते हैं ॥ ८६ ॥ किन्नरगण मधुर एवं मनोहर दुंदुभिघोषोंके साथ दिव्य वचनों द्वारा जिनेन्द्रोंके प्रचुर गुणोंको गाते हैं ॥ ८७ ॥ गन्धर्वोंके गीत, वादित्र, नाटक एवं संगीतके शब्दसे गम्भीर उस उत्तम भद्रशाल वनके जिनभवनका स्वरूप संक्षेपसे निर्दिष्ट किया गया है ॥ ८८ ॥ जिस प्रकार जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरुके उत्तम जिनेन्द्रभवनोंका स्वरूप कहा है उसी प्रकार शेष मेरु पर्वतोंके जिनेन्द्रभवनोंका स्वरूप समझना चाहिये ॥ ८९ ॥ इसी प्रकार कुलपर्वतोंपर, इसी प्रकार ही वक्षार पर्वतोंपर और इसी प्रकार नन्दन वनोंमें भी जिनभवन होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९० ॥ परन्तु विशेष इतना जानना चाहिये कि वक्षार पर्वतादिकोंके ऊपर स्थित जिनभवनोंका विष्कम्भ, आयाम और उत्सेध भिन्न भिन्न होता है ॥ ९१ ॥ चार निकायके देव महा विभूतिके साथ यहां आकर

१ प कुसुकुमारा, ब कुसुकुमार. २ प ब जोव्वाण. ३ उ श जणंदि. ४ प ब जिणयंदाणं. ५ प ब हरिहराणं. ६ प ब य णच्चंति. ७ प ब मुदंग. ८ उ यंति, श वायंत्ति. ९ प ब बहुससंख. १० उ श संघाय. ११ प ब वयणं. १२ प ब जिणिदयंद. १३ प ब मंदिराण. १४ उ श कुलु. १५ उ विसेसा णेया, श विसेसा णया १६ प ब सगादिएसु. १७ उ श अणोण्णा, प ब अण्णाणा.

देवा चउणिकाया आगंतूणं महाविभूदीए । पूजं[1] करेंति महदा णंदीसरअट्ठदिवसेसु ॥ ९२
गयवरखंधारूढो बहुविहमणिविप्फुरंतमणिमउडो । उज्जलवरवज्जकरो सोहम्मिंदो समोइण्णो[2] ॥ ९३
वरवसभसमारूढो कंठाकडिसुत्तभूसियसरीरो । णिम्मलतिसूलपाणी ईसाणिंदो समोइण्णो[3] ॥ ९४
वरसीहसमारूढो उदयक्कसमाणकुंडलाहरणो । वरअसिपहरणहत्थो सणक्कुमारो समोइण्णो[4] ॥ ९५
वरतुरयसमारूढो णाणामणिरयणभूसियसरीरो । परसुवरमंडियकरो माहिंदसुरो समोइण्णो ॥ ९६
ससिधवलहंससंचडिओ णिम्मलमणिदंडपहरणकरत्थो[5] । भवलादवत्तचिण्हो बंभसुरिंदो समोइण्णो[6] ॥ ९७
बंभुत्तरो वि इंदो सियचामरविज्जमाण बहुमाणो । वाणरपिट्ठम्मि ठिओ[7] पासकरत्थो समोइण्णो ॥ ९८
सारसविमाणरूढो तुडियंगदकणयकुंडलाभरणो । कोयंडदंडहत्थो लंतविंदो समोइण्णो ॥ ९९
काविट्ठो वि य इंदो मयरविमाणम्मि संठिओ धीरो । वरकमलकुसुमहत्थो महाबलो सो समोइण्णो ॥ १००
वरचक्कवायरूढो फलिहामलरयणकुंडलाहरणो । पूयफलगुच्छहत्थो सुक्कसुरो[10] सो समोइण्णो ॥ १०१

....

नन्दीश्वर (अष्टाह्निक पर्व) के आठ दिनोंमें महती पूजन करते हैं ॥ ९२ ॥ बहुत प्रकारकी मणियों द्वारा प्रकाशमान मणिमुकुटसे संयुक्त व हाथमें उज्ज्वल एवं श्रेष्ठ वज्रको लिये हुए सौधर्म इन्द्र उत्तम गजराजके कन्धेपर चढ़कर आता है ॥ ९३ ॥ कण्ठा व कटिसूत्रसे भूषित शरीरवाला ईशान इन्द्र उत्तम वृषभपर चढ़कर हाथमें निर्मल त्रिशूलको लिये हुए यहां आता है ॥ ९४ ॥ उदयकालीन सूर्यके समान कुण्डल रूप आभरणोंसे भूषित सनत्कुमार इन्द्र हाथमें तलवार आयुधको लिये हुए श्रेष्ठ सिंहपर चढ़कर यहां आता है ॥ ९५ ॥ नाना मणियों एवं रत्नोंसे भूषित शरीरवाला माहेन्द्र इन्द्र हाथमें श्रेष्ठ परशुको लिये हुए उत्तम अश्वपर चढ़कर आता है ॥ ९६ ॥ चन्द्रमाके समान धवल हंसपर आरूढ़ और धवल आतपत्रसे चिह्नित ब्रह्मेन्द्र हाथमें निर्मल मणिदण्ड आयुधको लिये हुए आता है ॥ ९७ ॥ धवल चामरोंसे वीज्यमान, बहुत आदरसे संयुक्त और वानरकी पीठपर स्थित ब्रह्मोत्तर इन्द्र भी हाथमें पाशको लिये हुए आता हैं ॥ ९८ ॥ त्रुटित (हाथका आभरणविशेष), अंगद एवं सुवर्णमय कुण्डल रूप आभरणोंसे भूषित लान्तव इन्द्र हाथमें धनुर्दण्डको लिये हुए सारस विमानपर चढ़कर आता है ॥ ९९ ॥ मकर विमानपर स्थित, धीर और महा बलवान् वह कापिष्ठ इन्द्र भी हाथमें उत्तम कमल कुसुमको लिये हुए आता है ॥ १०० ॥ उत्तम चक्रवाकपर आरूढ़ और स्फटिकमणिमय निर्मल रत्नकुण्डल रूप आभरणोंसे विभूषित वह शुक्रइन्द्र हाथमें सुपाड़ीके गुच्छेको लिये हुए आता है ॥ १०१ ॥ श्रेष्ठ देवोंसे वेष्टित,

---

१ उ श पूर्य. २ उ समाइण्णो, प ..., श समाइणो. ३ उ ब समाइण्णो, श समाइणो. ४ उ समाइण्णो, प ..., ब सणाइण्णो, श समाइणो. ५ उ श हंसि. ६ उ श पहरणावरणो. ७ श समोइण्णो. ८ उ वाणरपिट्ठम्मि ठिओ, प ..., ब वानारपिट्ठमि इओ, श वाणरपिट्ठिम्मि विओ. ९ प ब गोछ. १० प ब धरो.

महसुक्कसुराहिवई सुरवरपरिवारिओ[1] महासत्तो । पुप्फकविमाणरूढो गयहत्थो सो समोइण्णो ॥ १०२
सदरविमाणाहिवई मंगलणिवहेहि तूरसद्देहि । परहुअविमाणरूढो तोमरहत्थो समोइण्णो ॥ १०३
गरुडविमाणारूढो णाणाभरणेहिं भूसियसरीरो । हलमुसलभूसियकरो सहसारिंदो समोइण्णो ॥ १०४
संखेंदुकुंदवण्णो[2] सियचामरविज्जमाण बहुमाणो । सियकुसुममालहत्थो आणदइंदो समोइण्णो[3] ॥ १०५
पाणदइंदो[4] वि तहा कमलविमाणम्मि तत्थ चडिऊणं । वरकमलमालहत्थो हरिसाउण्णो[5] समोइण्णो ॥ १०६
णलिणविमाणारूढो[6] णवचंपयविमलमालकयहत्थो । पजलंतमहामउडो आरणइंदो अणुप्पत्तो ॥ १०७
कुमुदविमाणारूढो कडयंगदमउडकुंडलाहरणो । मुत्तादामकरग्गो अच्चुदइंदो अणुप्पत्तो ॥ १०८
अवसेसा वि य देवा सगसगजंपाणवाहणारूढा । णाणापहरणहत्था सगसगसोभाहिं[8] संपत्ता ॥ १०९
भवणवइवाणविंतरजोइसिया कुंडलंकियागंडा । णाणावाहणरूढा असुरिंदाई अणुप्पत्ता ॥ ११०
धुव्वंतचारुचामरवज्जंतमहंततूरणिग्घोसा । सेदादवत्तचिण्हा असुरिंदा आगदा बहवा ॥ १११

महा बलवान् वह महाशुक्र इन्द्र हाथमें गदाको लिये हुए पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर आता है ॥ १०२ ॥ परभृत (कोयल) विमानपर आरूढ़ शतार विमानका अधिपति मंगलमय वादित्रशब्दोंके साथ हाथमें तोमर (बाणविशेष) लेकर आता है ॥ १०३ ॥ गरुड़ विमानपर आरूढ़ और नाना भूषणोंसे भूषित शरीरवाला सहस्रार इन्द्र हाथमें हल और मूसलको लेकर आता है ॥ १०४ ॥ शंख, चन्द्र एवं कुंद पुष्पके समान वर्णवाला, धवल चामरोंसे वीज्यमान और अतिशय आदरसे युक्त आनत इन्द्र हाथमें धवल कुसुमोंकी मालाको लेकर आता है ॥ १०५ ॥ हर्षसे परिपूर्ण प्राणत इन्द्र भी हाथमें उत्तम कमलोंकी मालाको लिए हुए कमल विमानपर आरूढ़ होकर आता है ॥ १०६ ॥ नलिन विमानपर आरूढ़ और देदीप्यमान महामुकुटसे संयुक्त आरण इन्द्र हाथमें नवचम्पककी निर्मल मालाको लेकर आता है ॥ १०७ ॥ कुमुद विमानपर आरूढ़ और कटक, अंगद, मुकुट एवं कुण्डल रूप आभरणोंसे भूषित अच्युत इन्द्र हाथमें मुक्ताओंकी मालाको लेकर आता है ॥१०८॥ अपने अपने जम्पान वाहनोंपर आरूढ़ शेष देव भी नाना आयुधोंको हाथमें लेकर अपनी अपनी शोभाओंके साथ आते हैं ॥१०९॥ कुण्डलोंसे अलंकृत कपोलोंवाले भवनपति, वानव्यन्तर और ज्योतिषी असुरेन्द्र आदि नाना वाहनोंपर आरूढ़ होकर आते हैं ॥ ११० ॥ ढुरते हुए सुन्दर चामरोंसे और बजते हुए महा वादित्रोंके निर्घोषसे सहित तथा धवल आतपत्र रूप चिह्नसे संयुक्त बहुतसे असुरेन्द्र आते हैं । ॥ १११ ॥

---

१ प ब सुरकरवारिउ. २ उ सरिकंदु, ब संखेहु, श दरिकंदु. ३ प ब हत्थो हरिसाउणो समोइण्णो. ४ प ब पाणइंदो. ५ उ श हरिसाऊणो, प ब आणदइंदो. ६ उ प ब श °विमानरूढो. ७ उ श मउड. ८ प ब सोसाहि.

एवं आगंतूणं अट्ठमिदिवसेसु[1] मंदरगिरिस्स । जिणभवणेसु[2] य पडिमा जिणिंदइंदाण पूयंति ॥ ११२
अट्ठसहस्सेहिं तहा खीरोवहिसलिलपुण्णकलसेहिं । ण्हावंति पहिट्ठमणा[3] परमाए भत्तिराएण ॥ ११३
पडुपडहसंखकाहलमद्दलकंसालतालणिवहेहिं । वज्जंतपवरतूरं[4] महिमं कुव्वंति देविंदा ॥ ११४
गोसीसमलयचंदणकुंकुमपंकेहि चच्चियं काउं । वरपंचवण्णे[5]णिम्मलसुगंधदामेहिं अच्चंति ॥ ११५
ससिधवलसुरहिकोमलणाणाविहभक्खभोज्जमादीहिं । पूयंति जिणवरिंदे सगुरासुरसुरगणा सव्वे[6] ॥ ११६
दीवेहिं[7] य धूवेहि य चरुअक्खयफलविचित्तकुसुमेहि । अच्चंति य पूयंति य पहिट्ठमणसा सुरा सव्वे ॥११७
एवं पूएऊणं वंदंति विसुद्धभावहियएण । चदुमंगलचदुसरणा[8] विसुद्धसम्मत्तसंजुत्ता ॥ ११८
एवं थोऊण जिणं[9] अमरिंदा अमलपुण्णसंजुत्ता । जेणागदा पडिगदा घेत्तूणं धम्मवररयणं ॥ ११९
णंदीसरम्मि दीवे जिणवरभवणा हवंति एमेवं[10] । कुंडलदीवेसु तहा मणुमुत्तररुजगसेलेसु ॥ १२०

इस प्रकार आकर वे अष्टाह्निक दिनोंमें मन्दर पर्वतके जिनभवनोंमें जिनेन्द्रप्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ ११२ ॥ तथा वे मनमें हर्षित होकर क्षीरसमुद्रके जलसे परिपूर्ण एक हजार आठ कलशों द्वारा उत्कृष्ट भक्तिरागसे अभिषेक करते हैं ॥ ११३ ॥ वे देवेन्द्र पटु पटह, शंख, काहल, मर्दल, कांस्याल और ताल समूहोंके साथ उत्तम वादित्रोंको बजाते हुए उत्सवको करते हैं ॥ ११४ ॥ उक्त देव उन्हें गोशीर्ष, मलयचन्दन और कुंकुम-पंकसे लिप्त करके उत्तम पांच वर्णकी निर्मल व सुगन्धित मालाओंसे पूजा करते हैं ॥ ११५ ॥ सुरों व असुरोंके साथ सब देवगण चन्द्रवत् धवल, सुगन्धित एवं कोमल नाना प्रकारके भक्ष्य नैवेद्योंके द्वारा जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं ॥ ११६ ॥ सब देव मनमें हर्षित होकर दीप, धूप, चरु, अक्षत, फल एवं विचित्र कुसुमोंसे जिन भगवान्‌की अर्चा व पूजा करते हैं ॥ ११७ ॥ इस प्रकारसे पूजा करके वे हृदयमें निर्मल भावोंको धारण कर चार मंगलों (चत्तारि मंगलं-- अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं), चतुःशरणों (चत्तारि सरणं पवज्जामि-- अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि) और विशुद्ध सम्यक्त्वसे संयुक्त होते हुए वन्दना करते हैं ॥ ११८ ॥ इस प्रकार जिन भगवान्‌की स्तुति करके निर्मल पुण्यसे संयुक्त वे देवेन्द्र जिस रूपसे आये थे उसी रूपसे धर्मरूपी उत्तम रत्नको ग्रहण करके वापिस चले जाते हैं ॥ ११९ ॥ इसी प्रकार ही नन्दीश्वर द्वीपमें, कुण्डलवर द्वीपमें, और मानुषोत्तर पर्वत व रुचक पर्वतपर भी जिनभवन हैं ॥ १२० ॥ जिस प्रकार भद्रशाल वनमें

१-उ श अट्ठामिदिवसेसु. २ प व भुवणेसु. ३ प व पहिट्ठमाणा. ४ उ श परमतूरं. ५ उ पंचवण्णा, श पंचवणा. ६ प व समुरासुरवरवरगणा सव्वो, श समुरासुरगणा सव्वे. ७ उ प व श दिव्वेहि ८ प चदुस्सरणो, व चदुस्सरणे. ९ उ श जिणि. १० उ प व श एसेव.

जहं भद्दसालवणे जिणभवणावण्णणा हवे सयला । तह णंदीसरदीवे जिणभवणावण्णणा होइ ॥ १२१
जिणभवणथूहमंडवपेक्खाघरकप्परुक्खधयणिवहा । वणसंडवाविगोउरपायारा वेइया दिव्वा ॥ १२२
उच्छेहा आयामा विक्खंभवगाह ताण सव्वाणं । णंदीसरवरदीवे सरिसा ते होंति पढमवणे ॥ १२३
णंदणसोमणपंडुववणाणं भवणा हवंति एमेव । णवरि विसेसो जाणे अद्धद्धा होंति णिद्दिट्ठा ॥ १२४
चउविहसुरगणणमियं अइसयचउतीससंजुयं परमं । वरपउमणंदिणमियं चंदप्पहजिणवरं वंदे ॥ १२५

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे महाविदेहाहियारे मंदरगिरिजिणभवणवण्णणो णाम
पंचमो उद्देसो समत्तो ॥ ५ ॥

जिनभवनोंका सम्पूर्ण वर्णन किया गया है उसी प्रकार नन्दीश्वर द्वीपमें स्थित जिनभवनोंका भी वर्णन समझना चाहिये ॥ १२१ ॥ जिनभवन सम्बन्धी स्तूप, मण्डप, प्रेक्षागृह, कल्पवृक्ष व ध्वजासमूह, वनखण्ड, वापी, गोपुर, प्राकार और दिव्य वेदिका इन सबका उत्सेध, आयाम, विष्कम्भ व अवगाह नन्दीश्वर द्वीपमें प्रथम (भद्रशाल) वनके सदृश हैं ॥ १२२–२३ ॥ नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनोंके जिनभवन भी इसी प्रकारके हैं । विशेष केवल इतना जानना चाहिये कि वे प्रमाणमें क्रमशः आधे आधे निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १२४ ॥ मैं चार प्रकारके देवगणों द्वारा नमस्कृत, चौंतीस अतिशयोंसे संयुक्त और उत्तम पद्मनन्दिसे नमस्कृत श्रेष्ठ चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रकी वन्दना करता हूं ॥ १२५ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें महाविदेहाधिकारमें
मन्दरगिरिजिनभवन वर्णन नामक पांचवां
उद्देश समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

---

१ उ श जिह. २ उ श चेइया दिया, प ब चेइया दिव्वा. ३ प ब सरिसा होंति. ४ उ प ब श. पंडुवणाणा. ५ उ श देवं.

[छट्ठो उद्देसो]

णमिऊण पुप्फदंतं सुरिंदवइसंथुयं विगयमोहं । दे[1]उत्तरकुरुखेत्तं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ १
पुव्वेण मालवंतो[2] अवरेण गंधमादणो सेलो । मेरुस्स य उत्तरदो दक्खिणदो णीलवंतस्स[3] ॥ २
एदम्हि अंतरम्हि दु उत्तरकुरु वित्थडो सहस्साणि । एयारस बादाला अट्ठसदा बेकला अधिया ॥ ३
तेवण्णं च सहस्सा जीवा तस्सुत्तरम्हि भागम्हि । वंसधरो हि[5] दु मूले णीलवंतो[6] समल्लीणो ॥ ४
सट्ठिं चेव सहस्सा चत्तारि सया हवंति अट्ठरसा । बारसकला समधिया धणुपट्ठं तस्स णायव्वा ॥ ५
तीसं चेव सहस्सा बे चेव सदा णउत्तरा होंति । भागा छच्चेव हवे आयामो मालवंतस्स ॥ ६
इसुवग्गं चउगुणिदं[7] जीवावग्गम्हि पक्खिवित्ताणं । चदुगुणिदिसुणा भजिदे[8] णियमा वट्टस्स विक्खंभो ॥
एगत्तरि य सहस्सा तेदालसदं कला य चदुरो दु । उत्तरकुरुविक्खंभो कलणवभागेण[9] संजुत्तो ॥ ८
ओगाढूणविखंभे ओगाढसंगुणं कुज्जा । चदुगुणिदस्स दु मूलं सा जीवा तत्थ णायव्वा ॥ ९

सुरेन्द्रपतिसे संस्तुत और मोहसे रहित पुष्पदन्त भगवान्को नमस्कार करके आनुपूर्वीके अनुसार देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रको कहते हैं ॥ १ ॥ जिसके पूर्वमें माल्यवन्त और पश्चिममें गन्धमादन पर्वत हैं वह उत्तरकुरु क्षेत्र मेरु पर्वतके उत्तर और नील पर्वतके दक्षिण इस अन्तरालमें स्थित है। इसका विस्तार ग्यारह हजार आठ सौ व्यालीस (११८४२) योजन व दो कला अधिक है ॥ २-३ ॥ उत्तर भागमें उसकी जीवा तिरेपन हजार योजन प्रमाण है। इसके मूलमें नीलवान् वर्षधर (कुलपर्वत) लगा हुआ है ॥ ४ ॥ उसका धनुपपृष्ठ साठ हजार चार सौ अठारह योजन और बारह कलाओंसे अधिक जानना चाहिये ॥ ५ ॥ माल्यवान् पर्वतका आयाम तीस हजार दो सौ नौ योजन और छह कला ($३०२०९\frac{६}{१९}$) प्रमाण है ॥ ६ ॥ बाणके वर्गको चौगुणा करके जीवाके वर्गमें मिलाकर जो प्राप्त हो उसमें चौगुणे बाणका भाग देनेपर वृत्त क्षेत्रका विष्कम्भ होता है ॥ ७ ॥ उत्तरकुरुका विष्कम्भ इकत्तर हजार एक सौ तेतालीस योजन और नवम भाग ($\frac{३}{९}$) से सहित चार कला प्रमाण है [$(\frac{२२५०००}{१९})^२ \times ४ + ५३०००^२ \div (\frac{२२५०००}{१९} \times ४) = ७११४३\frac{३७}{१७१}$] ॥ ८ ॥ बाणसे रहित विष्कम्भको बाणसे गुणित करे, फिर उसे चारसे गुणित करके वर्गमूल निकालनेपर जो प्राप्त हो वह जीवाका प्रमाण जानना चाहिये [उत्तरकुरुका वृत्तविष्कम्भ $७११४३\frac{३७}{१७१} = \frac{१२१६५४९०}{१७१}$; $\sqrt{\frac{१२१६५४९०}{१७१} - \frac{२०२५०००}{१७१} \times \frac{२०२५०००}{१७१} \times ४} = ५३०००$ यो.] ॥ ९ ॥ छहसे गुणित बाणके वर्गको जीवाके

१ उ श देवत्तर. २ उ श मालवतो. ३ प व णीलवणस्स. ४ श केवल. ५ श हंसधरंहि. ६ उ णीलवण्णो, श णीलवणो. ७ उ विगिदिगुणं, प..., व विगिहि गुणं, श विदुदिगुणं. ८ उ श भजिदो. ९ प च भागेग.

इसुवग्गं छहि गुणिदं जीवावग्गम्हि पक्खिवित्ताणं । जं तस्स वग्गमूलं तं धणुपट्ठं वियाणाहि ॥ १०
जीवाविक्खंभाणं वग्गविसेसस्स हवइ जं मूलं । विक्खंभादो सोधय सेसस्सद्धं इसुं वियाणाहि ॥ ११
जीवावग्गं इसुणा चदुरब्भत्थेण विभज जं लद्धं । तं इसुसहिदं जाणसु णियमा वट्टस्स विक्खंभं ॥ १२
मंदरविक्खंभूणं विदेहविक्खंभअद्धपरिमाणं । उत्तरकुरुविक्खंभं णिद्दिट्ठं होइ णायव्वं ॥ १३
दो जमगा णाम गिरी कंचणणगाण सदा[1] गिरीणं तु । सीदाए पंचेव दु तत्थ दहा होंति णायव्वा ॥ १४
णीलस्स दु दक्खिणदो एयं जोयणसहस्समाबाधा । सीदाए उभयकूले[2] जमका ते होंति णायव्वा ॥ १५
उच्चत्तेण[3] सहस्सा अड्ढादिज्जा सदाण उव्विद्धो[4] । जंबूदीवे जमगा बोधव्वा उत्तरकुरुस्स ॥ १६
मूले सहस्समेयं मज्झे अद्धट्ठ[5]माणि य सदाणि । पंचेव जोयणसदा सिहरितले वित्थडा सेला ॥ १७
दोजमगाणं अंतर पंचेव सयाणि जोयणाणि हवे[6] । मूले सिहरे वि तहा वणवेदीपरिउडा रम्मा ॥ १८
सिहरेसु तेसु णेया मणिमयपासादपंति रमणीया । पोक्खरिणिवाविपउरा मणितोरणमंडिया रम्मा ॥ १९

वर्गमें मिलाकर जो उसका वर्गमूल हो वह उत्तरकुरुका धनुषपृष्ठ जानना चाहिये $\sqrt{(\frac{२२५०००}{१९})^२ \times ६ + ५३०००^२} = \frac{११४७९६४}{१९} = ६०४१८\frac{१२}{१९}$ यो. ॥ १० ॥ जीवा और विष्कम्भके वर्गको परस्परमें घटाकर जो उसका वर्गमूल हो उसे विष्कम्भमेंसे कम करके शेषके अर्ध भाग प्रमाण बाण जानना चाहिये $\frac{१२१६५४९०}{१७१} - \sqrt{(\frac{१२१६५४९०}{१७१})^२ - ५३०००^२} \div २ = \frac{२२५००}{१९}$ ॥ ११ ॥ जीवाके वर्गको चौगुणे बाणसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो उसमें बाणके मिलानेपर नियमसे वृत्त क्षेत्रका विष्कम्भ होता है $५३०००^२ \div (\frac{२२५०००\times४}{१९}) + \frac{२२५०००}{१९} = ७११४३\frac{३७}{१७१}$ यो. ॥ १२ ॥ मन्दर पर्वतके विष्कम्भसे रहित विदेहके विष्कम्भको आधा करनेपर उत्तरकुरुके विष्कम्भका प्रमाण होता है $\frac{६४००००}{१९} - \frac{१९००००}{१९} \div २ = \frac{२२५०००}{१९}$ ॥ १३ ॥ सीताके [किनारेपर] दो यमक गिरि, सौ कंचन नग और पांच द्रह हैं ॥ १४ ॥ वे यमक पर्वत नील पर्वतके दक्षिणमें एक हजार योजन आगे जाकर सीताके उभय तटोंपर स्थित हैं ॥ १५ ॥ जम्बूद्वीपमें उत्तरकुरु सम्बन्धी यमक गिरि एक हजार योजन ऊंचे और अढ़ाई सौ योजन प्रमाण अवगाहसे सहित हैं ॥ १६ ॥ ये शैल मूलमें एक हजार योजन, मध्यमें साढ़े सात सौ योजन और शिखरतलपर पांच सौ योजन प्रमाण विस्तृत हैं ॥ १७ ॥ दो यमकोंका अन्तर पांच सौ योजन प्रमाण है । ये रमणीय पर्वत मूलमें तथा शिखरपर भी वनवेदीसे वेष्टित हैं ॥ १८ ॥ उनके शिखरोंपर प्रचुर पुष्करिणी एवं वापियोंसे सहित, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, रमणीय,

---

१ प ब दोजमणामाजगरी कंचणणागाण सद. २ उ श सीदाउवधोकूल, प ब सीदाय उभयकूल. ३ ब उछत्तेण. ४ उ श सदेण उव्विधो, प ब सदाण उव्वेध. ५ उ प ब श अद्धद्ध°. ६ उ वहे, प ब हिवे, श हवो.

धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । णाणातरुवरगहणा सुरसुंदरिसंकुला दिव्वा ॥ २०
जमगा णामेण सुरा पलिदोवमआउगा परिवसंति । सेलेसु तेसु णेया मणिकंचणरयणणिवहेसु ॥ २१
जमकूडकंचणाचल तह चित्तविचित्तकूडसेलेसु[1] । जमदेवकणयणामा चित्तसुरो[2] तह विचित्तो[3] य ॥ २२
वरमउडकुंडलधरा सियचामरविज्जमाण बहुमाणा[4] । सीहासणमज्झगया बहुपरिवारपरिउडा णेया ॥ २३
णवचंपयगंधड्ढा अहिणवलावण्णरूवसंपण्णा । पुण्णेग जणियभोगा अच्छंति सुराहिवा तेसु ॥ २४
बे कोसा बासट्ठा जोयणउत्तुंग दिव्वभवणेसु । इगितीसा सक्कोसा विक्खंभायामजुत्तेसु ॥ २५
गंतूण णीलगिरिदो अड्ढादिज्जा सहस्स[5] दक्खिणदिसाए । सीदाए सरि मज्झे पंचदहा होंति णायव्वा ॥ २६
दसजोयणावगाढा आयामा जोयणा सहस्साणि । पंचसदा विच्छारा पंचसदा अंतरेक्केक्का ॥ २७
तह णीलवंतपवरो उत्तरकुरुदहवरो दु चंदसरो । एरावयविउलदहो पंचम दह मालवंतो य ॥ २८
वरसुरहिगंधसलिला णीलुप्पलकमलकुवलयसणाहा । रंगंतवरतरंगा संखिंदुमुणालसंकासा ॥ २९

फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, नाना उत्तम वृक्षोंसे गहन और देवांगनाओंसे व्याप्त दिव्य मणिमय प्रासादोंकी पंक्तियां हैं ॥ १९–२० ॥ मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके समूहसे परिपूर्ण उन शैलोंपर पल्योपम प्रमाण आयुवाले यमक पर्वतोंके समान नामोंके धारक देव निवास करते हैं ॥ २१ ॥ यमकूट व कंचन पर्वत [मेघकूट], तथा चित्र-विचित्र शैलोंपर स्थित साढ़े बासठ योजन ऊंचे और सवा इकतीस योजन प्रमाण विष्कम्भ एवं आयामसे युक्त उन दिव्य भवनोंमें उत्तम मुकुट एवं कुण्डलोंके धारक, धवल चामरोंसे वीज्यमान, बहुत आदरसे संयुक्त, सिंहासनके मध्यमें स्थित, बहुत परिवारसे वेष्टित, नव चम्पक जैसी गन्धसे युक्त, अभिनव लावण्यमय रूपसे सम्पन्न, और पुण्यसे उत्पन्न हुए भोगोंसे संयुक्त क्रमसे यम देव, कनक (कंचन) देव, चित्र सुर तथा विचित्र देव, ये चार देवोंके अधिपति देव स्थित हैं ॥ २२–२५ ॥ नीलगिरिसे दक्षिण दिशामें अढ़ाई हजार [१००० + १००० + ५००] योजन जाकर सीता सरित्के मध्यमें पांच द्रह जानना चाहिये ॥ २६ ॥ एक एक द्रह दश योजन गहरे, एक हजार योजन लम्बे, पांच सौ योजन विस्तृत और पांच सौ योजनके अन्तरालमें स्थित हैं ॥ २७ ॥ नीलवान् द्रह, उत्तरकुरु द्रह, चन्द्र द्रह, ऐरावत द्रह और पांचवां माल्यवान् नामक, इस प्रकार ये उन विशाल द्रहोंके नाम हैं ॥ २८ ॥ ये महा द्रह उत्तम सुगन्धित जलसे परिपूर्ण, नीलोत्पल, कमल और कुवलय पुष्पोंसे सनाथ, चलती हुई उत्तम तरंगोंसे संयुक्त; शंख, चन्द्रमा एवं मृणालके सदृश, रत्नमय वेदिकासमूहसे

१ उ श चित्तविचित्तकूडसलेसु, ब चित्तविचित्तकूडसेलेसु. २ उ श चित्तसुरा. ३ उ श विचित्ता. ४ प ब बहुमाण. ५ प ब अड्ढाइसहस्स.

रयणमयवेदिणिवहा मणितोरणमंडिया परमरम्मा । उववणकाणणसहिया महादहा होंति णायव्वा ॥ ३०
तेसु मणिरयणकमला वे कोसा उट्ठिया जलंतादो । चत्तारि य विस्थिण्णा मज्झे अंतेसु दो कोसा ॥ ३१
वेरुलियविमलणाला[1] सुगंधगंधुद्धुदा परमरम्मा । एयारसेहि गुणिदा सहस्सदलसंजुदा दिव्वा ॥ ३२
कमलेसु तेसु भवणा कोसायामा तदद्धवित्थारा । उभयद्ध[2] होंति तुंगा कंचणमणिरयणपरिणामा ॥ ३३
चउचउसहस्स कमला चउसु वि दिसासु[3] होंति णायव्वा । बत्तीससहस्साइं[4] अग्गिदिसाए हवे कमला ॥ ३४
दक्खिणदिसाविभागे चालीससहस्स होंति कमलाणि । णेरिदिये[5] दिसाभागे अडदालसहस्स णिद्दिट्ठा ॥ ३५
पच्छिमदिसाविभागे सत्तेव हवंति पउमपुप्फाणि । अट्ठुत्तरसय[6]कमला परिवेढे सव्वदो होंति ॥ ३६
चत्तारि सहस्साइं उत्तरईसाणवाउदेसेसु । इंभित्ता होंति तहा दरवियसियकमलकुसुमाणि ॥ ३७
णीलकुमारीणामा उत्तरचंदा[7]कुमारि तह णामा । एरावयाकुमारी तह पच्छा मालवंती दु ॥ ३८
णागकुमारीयाओ एदाओ हवंति कमलभवणेसु । पलिदोवमाउगाओ दसधणुउत्तुंगदेहाओ ॥ ३९
जह हिमगिरिदहकमले सिरिदेवि[8]सुराण होंति परिसंखा । तह सीदादहवासिणिदेवीणं होंति परिसंखा ॥ ४०

युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय और वन-उपवनोंसे सहित हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ २९-३० ॥ उन द्रहोंमें जलसे दो कोश ऊंचे, मध्यमें चार और अन्तमें दो कोश विस्तीर्ण, वैडूर्यमय निर्मल नालसे सहित, सुगन्ध गन्धसे युक्त, अतिशय रमणीय, और ग्यारह हजार पत्रोंसे संयुक्त दिव्य मणिमय एवं रत्नमय कमल हैं ॥ ३१-३२ ॥ उन कमलोंपर एक कोश आयत, इससे आधे विस्तृत और उभय अर्थात् आयाम व विस्तारके सम्मिलित प्रमाणसे आधे (पौन कोश) ऊंचे, ऐसे सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके परिणाम रूप भवन हैं ॥ ३३ ॥ उक्त द्रहोंमें चारों दिशाओंमें चार चार हजार और अग्नि दिशामें बत्तीस हजार कमल जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ दक्षिण दिशाभागमें चालीस हजार और नैऋत्य दिशाभागमें अडतालीस हजार कमल निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ३५ ॥ पश्चिम दिशाभागमें सात ही कमल पुष्प हैं तथा परिवेष (मण्डल) में अर्थात् प्रत्येक दिशामें चौदह चौदह और प्रत्येक विदिशामें तेरह तेरह, इस प्रकार एक सौ आठ कमल हैं ॥ ३६ ॥ तथा उत्तर, ईशान और वायु दिशाभागोंको रोककर किंचित् विकसित चार हजार कमल कुसुम हैं ॥ ३७ ॥ कमलभवनोंमें पल्योपम प्रमाण आयुकी धारक और दश धनुष उन्नत देहवाली नीलकुमारी, उत्तरकुमारी, चन्द्रकुमारी, ऐरावतकुमारी तथा माल्यवन्ती नामकी ये देवियां स्थित हैं ॥ ३८-३९ ॥ जिस प्रकार हिमगिरि सम्बन्धी द्रहके कमलपर स्थित श्री देवीके परिवार देवोंकी संख्यायें हैं उसी प्रकार सीताद्रहवासिनी देवियोंके भी परिवारदेवोंकी संख्यायें हैं ॥ ४० ॥ एक एक द्रहमें एक

---

१ उ श विमलणाणा. २ प ब सदद्ध. ३ उ श चउसु वि विदिसासु. ४ उ श सहस्सायं. ५ प ब णेरदिय. ६ उ श अदुधुत्तर. ७ उ प श चंद. ८ प ब सिरिदेव, श सुरिदेवि.

एक्केक्कम्मि दहम्मि दु कमलाणि हवंति सयसहस्सं च । एगं चत्तसहस्सा[1] सयं च्च तह सोलसा अहिया ॥ ४१
सत्तेव होंति लक्खा छच्चेव सया य तह य वीसूणा । भवणाणि[2] वि तावदियाँ[3] णायव्वा होंति णियमेण ॥ ४२
सव्वेसु य कमलेसु य जिणवरपडिमा हवंति णायव्वा । वरपाडिहेरसहिया णाणामणिरयणसंपण्णा ॥ ४३
ताण दहाणं होंति हु पुव्वेण य पच्छिमेण्णे[4] पासेसु । दसदसकंचणसेला बहुविहमणिरयणपज्जलिया ॥ ४४
जोयणसयमुव्विद्धा पणुवीसं जोयणाणि उव्वेधो[5] । जंबूदीवे णेया कंचणणगपव्वदा रम्मा ॥ ४५
मूले सयमेयं खलु पण्णत्तरि जोयणा य मज्झम्हि । पण्णासजोयणाइं सिहरितडे[6] वित्थडा सेला ॥ ४६
जदिथिच्छसि विक्खंभं कंचणसिहरादु ओवदित्ताणं[7] । तं सगकायविभत्तं सिरसहिदं जाण विक्खंभं ॥ ४७
कंचणणगाण णेया वेदीओ होंति मूलसिहरेसु । वरतोरण णिद्दिट्ठा[8] णाणामणिरयणणिवहाणि ॥ ४८

लाख चालीस हजार एक सौ सोलह कमल होते हैं [१६००० + ३२००० + ४०००० + ४८०००$\frac{3}{2}$+ ७ + १०८ + ४००० + १ = १४०११६] ॥ ४१ ॥ [उक्त पांचों द्रहोंमें] सात लाख और बीस कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अस्सी कमल [१४०११६× ५ = ७००५८०] और उतने ही भवन भी जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ सब ही कमलोंपर उत्तम प्रतिहार्योंसे सहित और नाना मणियों एवं रत्नोंसे सम्पन्न जिनेन्द्रप्रतिमायें होती हैं ॥ ४३ ॥ उन द्रहोंके पूर्व और पश्चिम पार्श्वभागोंमें बहुत प्रकारके मणियों एवं रत्नोंसे प्रज्वलित दश दश कंचन शैल स्थित हैं ॥ ४४ ॥ जम्बूद्वीपमें स्थित रमणीय कंचन पर्वत सौ योजन ऊंचे और पच्चीस योजन प्रमाण अवगाहसे युक्त है ॥ ४५ ॥ उक्त शैल निश्चयसे मूलमें एक सौ योजन, मध्यमें पचत्तर योजन और शिखरतलपर पचास योजन प्रमाण विस्तृत हैं ॥ ४६ ॥ कंचन पर्वतके शिखरसे नीचे उतर जितने योजन जाकर विस्तारके जाननेकी इच्छा हो उतने योजनोंको अपनी काय (उंचाई) से विभक्त करके [फिर इच्छासे गुणित करनेपर] जो लब्ध हो उसमें शिर (शिखरविस्तार) को मिला देनेपर प्राप्त राशि प्रमाण अभीष्ट विस्तार जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

उदाहरण— यदि कंचन शैलके शिखरसे ५० यो. नीचे जाकर विस्तार जानना अभीष्ट है तो वह इस प्रक्रियासे जाना जा सकता है— $\frac{५०}{१००}$ × ५० + ५० = ७५ यो. ।

कंचन पर्वतोंके मूलमें और शिखरपर वेदियां तथा नाना मणियों एवं रत्नोंके समूहसे संयुक्त उत्तम तोरण निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ कंचन शैलोंके शिखरोंपर

१ उ श एवं चत्तसहस्सा, प..., ब एगं च तह सहस्सा. २ उ श भवणाण. ३ प ब ताविदिया. ४ उ श पच्छिमेसु. ५ उ उघेघो, प ब उव्विद्धो, श उव्वध्यो. ६ उ श तडे. ७ उ श सिहरावउवदित्ताणं, प सेहरादिउववणहित्ताणं, ब सिहरादिउववदित्ताणं. ८ उ तोरणा णिदिट्ठा, प ब तोरणा णिदिट्ठा, श तोरणा दिणिट्ठा.

कप्पतरुसंकुलाणि य पासादा वलहितोरणादीणि । कंचणगाण णेया सिहरेसु हवंति णगराणि ॥ ४९
तेसु णगरेसु राया कंचणदेवा हवंति णामेण । पलिदोवमाउगा ते दसधणुउत्तुंगवरदेहा ॥ ५०
पजलंतरयणमाला णाणामणिविप्फुरंतवरमउडा । केऊरभूसियकरा मणिकुंडलमंडियागंडा ॥ ५१
सेदादवत्तचिण्हा सिंहासणलंठिदा महासत्ता । बहुदेवदेविसहिया कंचणसिहरेसु णिद्दिट्ठा ॥ ५२
सव्वेसु णगेसु तहा कंचणणामेसु रयणणिवहेसु । जिणभवणा णिद्दिट्ठा मणितोरणमंडिया रम्मा ॥ ५३
धुव्वंतधयवडाया णाणाकुसुमोवहारकयसोहा । जिणसिद्धबिंबणिवहा बहुकोदुगमंगलसणाहा ॥ ५४
सीदा वि दक्खिणेण य दहाण मज्झेण तेण गंतूणं । पुणरवि पुव्वाभिमुहा गुहामुहे मालवंतस्स ॥ ५५
पविसित्ता णीसरिदा विदेहमज्झेण तह पुणो जाइ । पुव्वसमुद्दं पविसइ तोरणदारेण रम्मेण ॥ ५६
उत्तरकुरुम्मि मज्झे होइ महारयणजालपिंजरिओ । उत्तरपुव्वदिसाए मेरुस्स सुदंसणो जंबू ॥ ५७
पंचेव जोयणसया विक्खंभायाम कणयमयपीढं । बारहजोयणबहलं मज्झे अंते च दो कोसा ॥ ५८

कल्पवृक्षोंसे व्याप्त और प्रासाद, वलभी एवं तोरणादिकोंसे सहित नगर हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ ४९ ॥ उन नगरोंमें अधिपति स्वरूप जो कंचन देव हैं वे पल्योपम प्रमाण आयुके धारक और दश धनुष उन्नत उत्तम देहसे संयुक्त होते हैं ॥ ५० ॥ कंचनशिखरों-पर स्थित उक्त देव चमकती हुई रत्नमालाओंसे सहित, नाना मणियोंसे प्रकाशमान उत्तम मुकुटसे विभूषित, केयूरोंसे भूषित हाथोंवाले, मणिमय कुण्डलोंसे मण्डित कपोलोंके धारक, अधिपतित्वके चिह्न स्वरूप धवल आतपत्रसे संयुक्त, सिंहासनोंपर स्थित, महाबलवान्, और बहुत देव-देवियोंसे सहित कहे गये हैं ॥ ५१-५२ ॥ रत्नसमूहसे संयुक्त उन कंचन नामक सब पर्वतोंपर मणिमय तोरणोंसे मण्डित रमणीय जिनभवन निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ५३ ॥ ये जिनभवन फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित, नाना कुसुमोंके उपहारसे की गई शोभासे संयुक्त, जिनों व सिद्धोंके बिम्बसमूहसे युक्त, और बहुत कौतुक एवं मंगलोंसे सनाथ हैं ॥ ५४ ॥ सीता नदी भी द्रहोंके मध्यमेंसे दक्षिणकी ओर जाकर फिर पूर्वाभिमुख होती हुई माल्यवंत पर्वतकी गुफाके मुखमें प्रविष्ट होकर बाहिर निकलती हुई विदेहके मध्यसे जाती है व रमणीय तोरणद्वारसे पूर्व समुद्रमें प्रवेश करती है ॥ ५५-५६ ॥ उत्तर-कुरुके मध्यमें मेरुके उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशामें महा रत्नोंके समूहसे पिंजरित सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष है ॥ ५७ ॥ पांच सौ योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित, मध्यमें बारह योजन व अन्तमें दो कोश बाहल्यसे संयुक्त, उत्तम वेदिकाओंसे युक्त, मणिमय उत्तम

१ प ब वलइ. २ उ श गणेसु. ३ उ श उत्तरपुरच्छिमेण य.

वरवेदिएहि जुत्तं मणिमयवरतोरणेहि रमणीयं । णाणातरुगणणिवहं जिणभवणविहूसियं रम्मं ॥ ५९

तस्स बहुमज्झदेसे जंबूणद अट्ठजोयणायामं । चदुजोयणउत्तुंगं विक्खंभ हवंति चत्तारि ॥ ६०

णिम्मलमणिमयपीढं बारसवेदीहि परिउडं दिव्वं । णाणातोरणणिवहं कंचणमणिरयणसंछण्णं ॥ ६१

तस्स दु मज्झे अवरं णायव्वं अट्ठजोयणुत्तुंगं । चउजोयणवित्थिण्णं मणिमयवरभासुरं पीढं ॥ ६२

तस्स दु पीढस्सुवरिं सुदंसणो णामदो हवे जंबू । बेगाउवबाहल्लं अट्ठेव य जोयणुत्तुंगं[1] ॥ ६३

छज्जोयणा य विडवी[2] णाणामणिकणयकुसुमफलपउरं । वेरुलियरयणमूलं मरगयवरपत्तरमणीयं ॥ ६४

चदुसु वि दिसासु भागे[3] चत्तारि हवंति तस्स वरसाहा । छज्जोयणआयामा वित्थारा[4] होंति बे कोसा ॥ ६५

सव्वेसु होंति गेहा कोसायामा तदद्धविक्खंभा । पादूण[5]कोसतुंगा चदुसु वि साहेसु बोद्धव्वा ॥ ६६

उत्तरदिसाविभागे[6] जिणिंदइंदाण होइ वरभवणं । अवसेसतिण्णिभवणा जक्खस्स यणाढियस्स हवे[7] ॥ ६७

जंबूदुमा वि णेया बत्तीससहस्स होंति धूमदिसे[8] । दक्खिणदिसे वि णेया चालीससहस्स दुमणिवहा ॥ ६८

णेरिदिदिसाविभागे अडदालसहस्स होंति जंबुदुमा । एदे तिण्णि वि संडा तिण्णि वि परिसाण णायव्वा ॥

तोरणोंसे रमणीय, नाना तरुगणोंके समूहसे परिपूर्ण, और जिनभवनोंसे भूषित रमणीय सुवर्णमय पीठ है ॥ ५८–५९ ॥ उसके बहुमध्य देशमें आठ योजन आयात, चार योजन ऊंचा व चार योजन विस्तृत, बारह वेदियोंसे वेष्टित, नाना तोरणोंसे सहित तथा सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे व्याप्त निर्मल मणिमय सुवर्ण पीठ है ॥ ६०–६१ ॥ उसके मध्यमें आठ योजन ऊंचा और चार योजन विस्तीर्ण दीप्तिमान् उत्तम मणिमय दूसरा पीठ जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ उस पीठके ऊपर दो कोश बाहल्यवाला व आठ योजन ऊंचा सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष है ॥ ६३ ॥ छह योजन प्रमाण [मध्य शाखा (विडिमा) से संयुक्त] उक्त वृक्ष, नाना मणि एवं सुवर्णमय कुसुमों व फलोंकी प्रचुरतासे सहित, वैडूर्य रत्नमय मूलसे संयुक्त; और मरकतमय उत्तम पत्रोंसे रमणीय है ॥ ६४ ॥ उसकी चारों ही दिशाओंमें छह योजन लम्बी और दो कोश विस्तारवाली चार उत्तम शाखायें हैं ॥ ६५ ॥ इन चारों ही शाखाओंपर एक कोश आयत, इससे आधे विस्तृत और पौन कोश ऊंचे प्रासाद जानना चाहिये ॥ ६६ ॥ इनमेंसे उत्तर दिशाभागमें स्थित श्रेष्ठ भवन जिनेन्द्र-इन्द्रोंका तथा शेष तीन भवन अनादृत- यक्षके हैं ॥ ६७ ॥ जम्बू वृक्षके परिवार वृक्ष भी बत्तीस हजार धूम (आग्नेय) दिशामें, चालीस हजार दक्षिण दिशामें और अड़तालीस हजार नैऋत्य दिसा विभागमें जानना चाहिये । ये तीनों समूह तीनों पारिषद देवोंके समझना चाहिये ॥ ६८–६९ ॥ पश्चिम दिशामें सात वृक्ष सात अनीकोंके तथा

---

१ प ब जोयणातुंगं, श जोयणतुंगं. २ ब विट्ठवी. ३ प ब दिसाविभागे. ४ प ब वित्थारो. ५ प ब पाइणं. ६ उ श दिसामिमागे. ७ उ अणादियस्र हावे, प..., ब अणाढियस्स हवे, श अणाढियस हावे. ८ उ सहस्स होंति धूमदिसो, श सहस्स दुमणिवहाओ.

सत्ताणियाणि तहा सत्तदुमा होंति पच्छिमदिसाए । चदुसु वि दिसाविभागे[1] चत्तारि हवंति महिसीणं ॥ ७०
उत्तरपच्छिमभागे उत्तरभागे य पुव्वउत्तरदो । चत्तारिसहस्सदुमा सामाणियाणं[2] बोधव्वा ॥ ७१
चउरो चउरो य तहा सहस्सगुणिया दुमाण जंबूणं । पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमेसु कमसो मुणेयव्वा ॥ ७२
अट्ठोत्तरसयसंखा अट्ठसु वि दिसासु होंति रमणीया । आणाढियजक्खस्स य णायव्वा आदरक्खाणं ॥ ७३
चालीसं च सहस्सा सदं च वीसहिय तह य णायव्वा । एवं च सयसहस्सं जंबूणं होइ परिसंखा ॥ ७४
जिणभवणाण वि संखा तेत्तियमत्ता हवंति जंबूसु । णाणारयणमयाणं अकिट्टिमाणं समुद्दिट्ठा ॥ ७५
जंबूपायवसिहरे छत्तत्तयचामरादिसंजुत्ता । बहुविहकेदुपडाया पलंबमाणा विरायंति ॥ ७६
जक्खिंदो वि महप्पा सिंहासणसंठिओ महसत्तो । वरचामरधुव्वंतो बहुविहसुरसमिदिपणदंगो ॥ ७७
हारविराइयवच्छो वरकुंडलमंडिओ विउलबाहू । णीलुप्पलसंकासो सिदादवत्तेण रमणीओ ॥ ७८
सम्मदंसणसुद्धो सम्मादिट्ठीण वच्छलो धीरो । सयलं जंबूदीवं सो भुंजइ एयछत्तेण[3] ॥ ७९
पुव्वं कदेण[4] धम्मे सो भुंजइ उत्तमं विसयसोक्खं । एवं णाऊण णरा धम्मम्मि सुआढिया होइ[5] ॥ ८०

चारों ही दिशाओंमें स्थित चार वृक्ष चार अग्र देवियोंके हैं ॥ ७० ॥ उत्तर-पश्चिम (वायव्य) भागमें, उत्तर भागमें और पूर्वोत्तर (ईशान) भागमें सामानिक देवोंके चार हजार वृक्ष जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ [आत्मरक्षक देवोंके] चार चार हजार जम्बू वृक्ष क्रमसे पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशामें जानना चाहिये ॥७२॥ आठों ही दिशाओंमें रमणीय एक सौ आठ वृक्ष अनादृत यक्षके आत्मरक्षक [प्रतीहार, मंत्री व दूत] देवोंके हैं ॥ ७३ ॥ जम्बू वृक्षोंकी संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ वीस जानना चाहिये (१ + ३२००० + ४०००० + ४८००० + ७ + ४ + ४००० + १६००० + १०८ = १४०१२०) ॥ ७४ ॥ जम्बू वृक्षोंपर स्थित नाना रत्नमय अकृत्रिम जिनभवनोंकी भी संख्या उतनी मात्र अर्थात् एक लाख चालीस हजार एक सौ वीस कही गई है ॥ ७५ ॥ जम्बू वृक्षके शिखरपर तीन छत्र व चामरादिसे संयुक्त लटकती हुई बहुत प्रकारकी ध्वजा-पताकायें विराजमान हैं ॥ ७६ ॥ सिंहासनपर स्थित, महाबलवान्, उत्तम चामरोंसे वीज्यमान, बहुत प्रकारके देवोंके समूहोंसे नमस्कृत, हारसे शोभायमान वक्षस्थलवाला, उत्तम कुण्डलोंसे मण्डित, विशाल भुजाओंसे संयुक्त, नीलोत्पलके सदृश प्रभावाला, धवल आतपत्रसे रमणीय, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध व सम्यग्दृष्टियोंका प्रेमी, ऐसा वह धीर महात्मा यक्षेन्द्र भी समस्त जम्बू द्वीपको एकाधिपत्यसे भोगता है ॥ ७७-७९ ॥ वह यक्षेन्द्र पूर्वकृत धर्मसे उत्तम विषयसुखको भोगता है, इस प्रकार जानकर मनुष्योंको धर्ममें अतिशय आदर युक्त होना चाहिये ॥८०॥ सौमनस गजदन्तके पश्चिम,

१ उ श दिसाभागे. २ उ प ब श सामाणियस्स. ३ उ श कोदु. ४ प ब समदि. ५ प ब धम्मंको थो सोक्खं, एवं णाऊणं णरा वं सो भुंजइय एयछत्तेण. ६ उ श पुव्विकदेण, प ब पुव्विंकदूण. ७ उ सुआदिय होइ, प ब सुयादियाइ, श सुआढिय होइ.

सोमणसस्स य अवरे विज्जुप्पहणामयस्स पुव्वेण । मंदरदक्खिणपासे देवकुरू होइ णायव्वा ॥ ८१
एक्को य चित्तकूडो[1] विचित्तकूडो य पव्वदो पवरो । एक्कं च कंचणसयं णियमा तत्थ दु मुणेयव्वा[2] ॥ ८२
णिसधद्दहो य पढमो देवकुरुद्दहो तहेव बिदिओ य । सूरद्दहो य णेया सुरसद्दह[3] विज्जुतेओ य[4] ॥ ८३
पंचेव जोयणसदा विच्छिण्णा दस य[5] होंति उव्वेधा । जोयणसहस्सायामा[6] सव्वदहा होंति णायव्वा ॥ ८४
सीदोदापणदीए तत्थ दहा पंच होंति णायव्वा । मेरुस्स सामलीओ दक्खिणपच्छिमे होइ ॥ ८५
तस्सेव य उच्चत्तं णायव्वा अट्ठ जोयणाणं तु । णामेण वेणुदेवो तत्थ य गरुडाहिवो वसइ ॥ ८६
णिसधादो[8] गंतूणं सहस्स तह जोयणा दु उत्तरदो । सीदोदाउभयतडे चित्तविचित्ता णगा होंति ॥ ८७
एक्केक्काणं अंतर पंचेव सयाणि जोयणा णेया । जोयणसहस्सतुंगा सहस्सविच्थार मूलेसु ॥ ८८
सत्तसदा पण्णासा मज्झेसु हवंति विच्थडा सेला । पंचेय जोयणसदा सिहरेसु हवंति णायव्वा ॥ ८९
अवगाहा सेलाणं बे चेव सया हवंति पण्णासा । णाणामणिपरिणमा अणोवमा रूवसंठाणा ॥ ९०
वरवेदिएहिं जुत्ता मणितोरणमंडिया मणभिरामा । वज्जिंदणीलमरगयणाणाविहरयणसंछण्णा ॥ ९१

विद्युत्प्रभ नामक गजदन्तके पूर्व और मन्दर गिरिके दक्षिण-पार्श्व भागमें देवकुरु स्थित है ॥ ८१ ॥ वहां नियमसे एक चित्रकूट व दूसरा विचित्रकूट ये दो श्रेष्ठ यमक पर्वत तथा एक सौ कंचन पर्वत जानना चाहिये ॥ ८२ ॥ प्रथम निषध द्रह, द्वितीय देवकुरु द्रह, सूर द्रह, सुरस (सुलस) द्रह और विद्युत्तेज, ये पांच द्रह जानना चाहिये । सब द्रह पांच सौ योजन विस्तीर्ण, दश योजन उद्वेधसे सहित और एक हजार योजन आयत जानना चाहिये ॥ ८३–८४ ॥ ये पांच द्रह वहां सीतोदाके प्रणिधि भागमें जानना चाहिये । मेरुके दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) में शाल्मलि वृक्ष है ॥ ८५ ॥ उसकी उंचाई आठ योजन प्रमाण जानना चाहिये । वहांपर वेणुदेव नामक गरुड़कुमारोंका अधिपति निवास करता है ॥ ८६ ॥ निषध पर्वतके उत्तरमें एक हजार योजन जाकर सीतोदा नदीके उभय तटोंपर चित्र और विचित्र नामके यमक पर्वत हैं ॥ ८७ ॥ एक एक पर्वतका अन्तर पांच सौ योजन प्रमाण जानना चाहिये । ये शैल एक हजार योजन ऊंचे तथा मूलमें एक हजार योजन, मध्यमें सात सौ पचास योजन और शिखरोंपर पांच सौ योजन प्रमाण विस्तृत हैं ॥ ८८–८९ ॥ इन शैलोंका अवगाह दो सौ पचास योजन प्रमाण है । ये पर्वत नाना मणियोंके परिणाम रूप, अनुपम रूप व आकारसे सहित, उत्तम वेदियोंसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम; तथा वज्र, इन्द्रनील व मरकत रूप नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त हैं ॥ ९०–९१ ॥ नाना मणियोंसे

१ उ श एक्को चित्तकूडो. २ प ब मुणेयव्वो. ३ प ब सुलसद्दह. ४ उ श यो. ५ प ब तह य. ६ प ब सहस्सयामा. ७ उ श अट्ठजोयणुत्तुंगो. ८ उ श णिसिधादो.

तेसु सेलेसु णेया णाणामणिमंडिएसु दिव्वेसु । देवाण दु पासादा मणिकंचणमंडिया पवरा ॥ ९२
कणयमया पासादा वेरुलियमया य मरगयमया य[1] । ससिकंतसूरकंताकक्केयणपउमरायमया ॥ ९३
णवचंपयवरवण्णा णीलुप्पलसंणिहा समुत्तुंगा । वरकमलकुसुमवण्णा पासादा होंति रमणीया ॥ ९४
सत्ताणीयाण[2] तहा पासादा होंति कंचणमयाणि । तिण्णि य परिसाण तहा मणिपासादा समुद्दिट्ठा ९५
चदुरो य महीसीणं[3] पासादा विविहरयणसंछण्णा । सामाणियाण वि तहा[4] पासादा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ९६
मणिकंचणपासादा सुराण तह यादरक्खणामाणं[5] । अवसेसाण सुराणं पासादा होंति णायव्वा ॥ ९७
मंदरमहाचलाणं वक्खारणगाण कंचणणगाणं । गयदंतणगाण तहा कुलगिरिवेदड्ढसेलाणं ॥ ९८
दिसकरिवरसेलाणं णाभिगिरीणं च सव्ववेदीणं । वरतोरणदाराणं गोउरदाराण य तहेव ॥ ९९
अण्णेसि[6] पव्वदाणं वणसंडाणं तहेव सव्वाणं । संखादीदाण तहा सायरदीवाण सव्वाणं ॥ १००
जमगाण जहा दिट्ठा तह तेसिं विविह होंति पासादा[7] । णिम्मलमणिरयदमया वरकंचणमंडिया पवरा ॥ १०१
जमगाण जहा दिट्ठा सत्ताणीयादियाण[8] पासादा[9] । तह तेसिं सव्वाणं पासादा होंति णायव्वा ॥ १०२
ते विविहरइदमंगलविलसंतमहंतकंतकयसोहा[10] । पवरच्छराहि भरिया[11] अच्छेरयरूवसाराहि ॥ १०३

मण्डित उन दिव्य शैलोंपर मणि एवं सुवर्णसे मण्डित, सुवर्णमय, वैडूर्यमय, मरकतमय तथा चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन और पद्मरागसे निर्मित, नव चम्पकके समान उत्तम वर्णवाले नीलोत्पलके सदृश और उत्तम कमल कुसुमके समान वर्णसे संयुक्त देवोंके उन्नत रमणीय श्रेष्ठ प्रासाद हैं ॥ ९२–९४ ॥ सात अनीकोंके सुवर्णमय प्रासाद और तीन परिषदोंके मणिमय प्रासाद कहे गये हैं ॥ ९५ ॥ चार अग्र देवियोंके चार प्रासाद तथा सामानिक देवोंके प्रासाद विविध रत्नोंसे व्याप्त कहे गये हैं ॥ ९६ ॥ आत्मरक्ष नामक सुरोंके तथा शेष देवोंके प्रासाद मणि एवं सुवर्णमय जानना चाहिये ॥ ९७ ॥ मन्दर महा पर्वत, वक्षार नग, कंचन नग, गजदन्त नग, कुलगिरि, वैताढ्य शैल, दिग्गज शैल, नाभिगिरि, सब वेदियां, उत्तम तोरणद्वार तथा गोपुरद्वार, अन्य पर्वत, सब वनखण्ड, तथा असंख्यात सब द्वीप-समुद्र, इन सबके ऊपर भी यमकोंके समान निर्मल मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित और सुवर्णसे मण्डित उत्तम विविध प्रकारके प्रासाद होते हैं ॥ ९८–१०१ ॥ यमकोंके ऊपर जैसे सात अनीक आदिके प्रासाद कहे गये हैं वैसे ही प्रासाद उन सबके भी जानना चाहिये ॥ १०२ ॥ वे प्रासाद विविध प्रकारके रचे गये मंगलोंकी प्रकाशमान महाकान्ति द्वारा की गई शोभासे संयुक्त, आश्चर्यजनक श्रेष्ठ रूपवाली उत्तम अप्सराओंसे परिपूर्ण, रत्नमय होते हुए भी बहुत प्रकारकी सुवर्ण, मणि एवं

१ उ श कंचणमया य, ब मरगयससा ध. २ उ श सत्तअणीयाणि, प ब सत्ताणीयाणि. ३ ब महासीणं. ४ उ श सामाणियाणि वि तहा, प ब सामाणियाणि तहा. ५ उ श तह यादरक्खणामाणं, प ब तह आदरक्खणामा. ६ उ श अण्णे वि, प ब अणेय. ७ प तेसिं ति विविहपासादा, ब तेसिं त विवहपासादा. ८ श सत्ताणीयाण. ९ प ब परिसंखा. १० उ श सोहं. ११ उ श भरियं.

रयणमया वि य बहुसो[1] कंचणमणिरयणभित्तिकयसोहा । हरियंमरकतसिरी[2] पासाया संठिया णाइ ॥ १०४
कंचणमणिरयणमया णिम्मल मलवज्जिया रयणचित्ता । बहुगंधपुप्फपउरा[4] सुगंधगंधुद्धुदा[5] रम्मा ॥ १०५
अवरे अणोवमगुणा वररयणविचित्तभूसियपदेसा । कप्पविमाणपुरवरप्पासादघरा विलंबंति[7] ॥ १०६
धवलहरेहिं ससिणिम्मलेहि अण्णोण्णमभिलसंतेहि । वज्जाउहणगरी इव[8] दूरालोया सुहं दट्ठुं ॥ १०७
अद्धविमाणच्छंदा विमाणछंदा य रयणपासादा । सग्गविमाणसिरीयं ठेऊण[9] य णिम्मिया णाइं ॥ १०८
धवलहरपुंडरीएसु तेसु अवितण्ह[10] पेच्छणिज्जेसु । घरविक्खंभा खंभा सचित्तकम्मा विरायंति ॥ १०९
मणिरयणभित्तिचित्ताइं ताइं पासादचित्तवलहीहि[11] । उप्पयइ व सुरलोयं विमाणवासं उवहसंता ॥ ११०
अहमहमहं ति[12] णज्जइ मत्तगइंदा[13] व संठिया केई । आयासं लंघित्ता[14] रुद्धाइ य णाइ अवरेहि[15] ॥ १११
बहुसो य गिरिसरिच्छा कप्पविमाणा व हंससंकासा । सत्ततला पासादा सोहम्मसिरिं विलंबंति ॥ ११२
अरहंताणं पडिमा पंचधणुस्सयसमुच्छिदा दिव्वा । पलियंकासणबद्धा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ ११३

रत्नमय भित्तियोंसे सुशोभित; हरित् एवं मरकतकी श्रीसे संयुक्त, सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे निर्मित, निर्मल अर्थात् मलसे रहित, रत्नोंसे विचित्र, बहुतसे सुगन्धित पुष्पोंकी प्रचुरतासे युक्त, सुगन्ध गन्धको फैलानेवाले, रमणीय, दूसरे अनुपम गुणवाले, उत्तम रत्नोंसे विचित्र, सुशोभित प्रदेशवाले उपर्युक्त प्रासाद-गृह कल्पवासियोंके श्रेष्ठ नगरको तिरस्कृत करते हैं ॥१०३-१०६ ॥ दूरसे दर्शनीय इन्द्रनगरी (अमरावती) को मानों सुखसे परस्पर देखनेकी अभिलाषा करनेवाले ऐसे चन्द्रके समान निर्मल धवल प्रासादोंके द्वारा अर्ध विमानछन्द, विमानछद रत्नमय प्रासाद मानों स्वर्ग विमानोंकी शोभाको ले करके ही रचे गये हैं ॥ १०७-१०८ ॥ अतिशय तृष्णा युक्त होकर देखने योग्य उन श्रेष्ठ धवल प्रासादोंमें गृहविस्तार प्रमाण चित्रकारी युक्त खम्भे विराजमान हैं ॥ १०९ ॥ मणि एवं रत्नमय भित्तियोंके वे चित्र भवनोंके विचित्र छज्जोंके द्वारा विमानवासका उपहास करते हुए मानों स्वर्गलोककी ओर उड़ रहे हैं ॥ ११० ॥ मत्त गजराजके समान स्थित कितने ही प्रासाद अहमहमिका अर्थात् 'मैं मैं मैं' इस प्रकारसे आकाशको लांघकर मानो दूसरोंके द्वारा रोक लिये गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है ॥ १११ ॥ पर्वतके सदृश, कल्पविमानके सदृश अथवा हंसके सदृश बहुतसे प्रासाद सात खण्डोंसे युक्त होते हुए सौधर्म स्वर्गकी शोभाको धारण करते हैं ॥ ११२ ॥ उन श्रेष्ठ प्रासादोंमें पांच सौ धनुष ऊंची, दिव्य, पल्यंकासनसे युक्त, नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप, लक्षण एवं व्यंजनोंसे

१ प ब रयणमया बहुविह सो. २ ब मचि. ३ उ श हरियं नरकचसिरी, प ब हरिउणरकत्तसिरि. ४ उ श पयरा. ५ उ श गंधुद्धुरा. ६ प य विमाणा पुरवर. ७ प विलंबिति, य विलंबिमि. ८ उ श विव. ९ ब ग ब श होऊण. १० ब अवितण्हु. ११ ब वालिहीहि. १२ उ श अहंमहमह त्ति. १३ ग ब णज्जइव मत्तगयंदा. १४ प ब लंघंता. १५ प ब अवेरहिं.

लक्खणवंजणकलिया संपुण्णमियंकसोम्ममुहकमला[1]। उदयक्कमंडलणिभा विबुद्धसयवत्तकरकमला ॥ ११४
आरत्तकमलचरणा[3] भिण्णंजणसंणिहा हुवे केसा। आरत्तकमलणेत्ता विद्दुमसमतेयवरअहरा[4] ॥ ११५
सीहासणछत्तत्तयभामंडलधवलचामराजुत्ता। मणिकंचणरयणमया पासादवरेसु[6] ते होंति ॥ ११६
चित्तविचित्तकुमारा ते देवा होंति तेसु सेलेसु। भोगोवभोगजुत्ता बहुअच्छरपरिउडा धीरा ॥ ११७
उत्तरदिसाविभागं[7] गंतूणं जोयणाणि पंचसदा। जमगेहिंतो परदो महादहा होंति सरिमज्झे ॥ ११८
वरवेदिएहिं जुत्ता तोरणदारेहि मंडिया दिव्वा। अक्खयअगाहतोया पंचेव य होंति णायव्वा ॥ ११९
एक्केक्काणं अंतर पंचेव हवंति जोयणसयाणि। तेवीसा बादाला बे चेव कला य मेरुस्स[8] ॥ १२०
[9]तेसीदा बादाला बे चेव कला य होइ परिमाणं। दहमेरूणं अंतर णादव्वं होइ जिणदिट्ठं ॥ १२१
पुव्वावरविच्छिण्णा पंचेव हवंति जोयणसयाणि। उत्तरदक्खिणभागे सहस्समेयं[10] वियाणाहि ॥ १२२
पायालम्मि पइट्ठे[11] दसजोयण वण्णिया समासेण। पप्फुल्ल[12]कमलकुवलयणीलुप्पलकुमुदसंछण्णा ॥ १२३

सहित, सम्पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य मुख-कमलवाली, उदयकालीन सूर्यमण्डलके सदृश, विकसित कमलके समान कर-कमलोंसे संयुक्त, किंचित् लाल कमलके समान चरणोंवाली, भिन्न अंजनके सदृश केशोंसे संयुक्त, किंचित् लाल कमलके समान नेत्रोंसे सहित, विद्रुमके समान कान्तिवाले उत्तम अधरोष्ठोंसे विभूषित, तथा सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल एवं धवल चामरोंसे युक्त; ऐसी मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप अरहन्तोंकी प्रतिमायें हैं ॥ ११३-११६ ॥ उन शैलोंपर भोगोपभोगसे युक्त और बहुत अप्सराओंसे वेष्टित वे धैर्यशाली चित्रकुमार और विचित्रकुमार देव रहते हैं ॥ ११७ ॥ यमक पर्वतोंसे आगे उत्तर दिशा-विभागमें पांच सौ योजन जाकर नदीके मध्यमें महा द्रह हैं ॥ ११८ ॥ उत्तम वेदियोंसे युक्त, तोरणद्वारोंसे मण्डित, दिव्य और अक्षय अगाध जलसे परिपूर्ण वे द्रह पांच ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ११९ ॥ एक एक द्रहका अन्तर पांच सौ योजन है। तेईस ब्यालीस व दो कला मेरुका है (?) ॥ १२० ॥ तेरासी ब्यालीस व दो कला प्रमाण, यह जिन भगवान्के द्वारा देखा गया द्रह और मेरुका अन्तर जानना चाहिये (?) ॥ १२१ ॥ उक्त द्रह पूर्व-पश्चिममें पांच सौ योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं। उत्तर-दक्षिण भागमें इनका विस्तार एक हजार योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १२२ ॥ प्रफुल्लित कमल, कुवलय, नीलोत्पल और कुमुदोंसे व्याप्त वे द्रह पातालमें प्रविष्ट होनेपर दश योजन अवगाहसे युक्त हैं। इस प्रकार संक्षेपसे उनका वर्णन किया गया है ॥ १२३ ॥ उनमें एक योजन प्रमाण विष्कम्भ

---

१ उ श संपुण्णवियंक. २ प ब मुह. ३ प ब अरहंतचरणकमला. ४ उ श कहारा. ५ उ श बासा. ६ उ श पासादवसेसु, प ब पासादावेरसु. ७ उ श दिसाभिमागं. ८ प ब य मेरुम्मि, श य होइ परिमाणं. ९ प ब तेवीसा बादाला दहमेरूणंतरं कला दोण्णि। जोयणसंखा भणिया सयाहि (ब सहाहि) सव्वण्हदरिसीहिं ॥. १० उ श सहस्सवेयं. ११ प ब पइट्ठा. १२ प ब पप्फल.

तेसु वरपउमपुप्फा विक्खंभायाम जोयणपमाणा । बाहल्लेण य कोसा जलादु वे उण्णया कोसा ॥ १२४
वरकण्णिया दुकोसा कोसपमाणा हवंति तह पत्ता । णालाण रुंद कोसा दसजोयण साहिया दीहा ॥ १२५
वेरुलियरयणणाला कंचणवरकण्णिया य णायव्वा । विद्दुमपत्तेयारससहस्सगुणिदा समुद्दिट्ठा ॥ १२६
दिव्वामोदसुगंधा णववियसियपउमकुसुमसंकासा । पउम त्ति तेण णामा जिणिंदइंदेहिं णिद्दिट्ठा ॥ १२७
एयं[1] च सयसहस्सं चालीसा तह सहस्ससंगुणिदा । एयं[2] च सयं सोलस पउमाणं होंति परिसंखा ॥ १२८
सत्तेव सयसहस्सा पंचसया तह असीदा य । पंचण्हं तु दहाणं परिमाणं हुंति[3] पउमाणं ॥ १२९
जिणइंदवरगुरूणं सुरिंदवरविट्ठमउडचलणाणं । रयणमया वरपडिमा पउमिणिपुप्फेसु णिद्दिट्ठा ॥ १३०
[4]तेसु पउमेसु णेयं कंचणमणिरयणसंघसंछण्णा । लंबंतकुसुममाला कालागरुकुसुमगंधड्ढा ॥ १३१
धुव्वंतधयवडाया मुत्तादामेहिं सोहिया रम्मा । गोउरकवाडजुत्ता मणिवेदिविहूसिया दिव्वा ॥ १३२
गाउअदलविक्खंभा गाउवदीहा दहाण पउमेसु । गाउयचउभागूणा उत्तुंगा होंति पासादा[6] ॥ १३३
णिसधकुमारी णेया तह चेव य देवकुरुकुमारी य । सूरकुमारी सुलसा विज्जुप्पह तह कुमारी य[7] ॥ १३४

....

व आयाम तथा एक कोश बाहल्यसे सहित और जलसे दो कोश ऊंचे उत्तम कमल पुष्प हैं ॥ १२४ ॥ इनकी उत्तम कर्णिका दो कोश और पत्र एक कोश प्रमाण हैं। नालोंका विस्तार एक कोश और दीर्घता दश योजनसे अधिक है ॥ १२५ ॥ इनके नाल वैडूर्यमणिमय और कर्णिकायें सुवर्णमय जानना चाहिये। उनके विद्रुममय पत्ते ग्यारह हजार कहे गये हैं ॥ १२६ ॥ चूंकि उक्त [पार्थिव] कमल दिव्य आमोदसे सुगंधित और नवीन विकसित पद्म कुसुमके सदृश हैं, इसीलिये जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा इनके नाम पद्म निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १२७ ॥ पद्मोंकी संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह (१४०११६) है ॥ १२८ ॥ पांचों द्रहोंके कमलोंका प्रमाण सात लाख पांच सौ अस्सी (१४०११६ × ५ = ७००५८०) है ॥ १२९ ॥ पद्मिनिपुष्पोंपर, जिनके चरणोंमें श्रेष्ठ सुरेन्द्रोंने अपने मुकुटको घिसा है अर्थात् नमस्कार किया है, ऐसी श्रेष्ठ जिनेन्द्र गुरुओंकी रत्नमय उत्तम प्रतिमायें निर्दिष्ट की गई हैं ॥ १३० ॥ द्रहोंके उन कमलोंपर सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके समूहसे व्याप्त, लटकती हुई कुसुममालाओंसे सहित, कालागरु व कुसुमोंकी गन्धसे युक्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त, मुक्तामालाओंसे शोभित, रमणीय, गोपुरकपाटों (गोपुरद्वारों) से युक्त, मणिमय वेदियोंसे विभूषित, दिव्य, अर्ध कोश विस्तृत, एक कोश दीर्घ और चतुर्थ भागसे हीन एक (¾) कोश ऊंचे प्रासाद हैं ॥ १३१-१३३ ॥ निषधकुमारी, देवकुरुकुमारी, सूरकुमारी, सुलसाकुमारी तथा विद्युत्प्रभकुमारी नामक ये नागकुमारोंकी उत्तम कुमारियां

....

१ उ श एवं. २ प ब होंति. ३ उ विहु, प ब विट्ठ, श विट्ठा. ४ गाथेयं नोपलभ्यते उ श प्रत्योः । ५ प ब सव. ६ उ श पाणादा. ७ उ श प ब य.

एदाओ णामाओ णागकुमाराण वरकुमारीओ । एगपल्लाउगाओ दसधणुउत्तुंगदेहाओ ॥ १३५

णिच्चं कुमारियाओ[1] अहिणवलावण्णरूवजुत्ताओ । आहरणभूसियाओ मिदुकोमलमहुरवयणाओ ॥ १३६

तेसु भवणेसु णेया देवीओ होंति चारुरूवाओ[2] । धम्मेणुप्पण्णाओ विसुद्धसीलस्सभावाओ ॥ १३७

देवीण तिण्णि परिसा[3] सत्ताणीया हवंति णायव्वा । तह आदरक्खअसुरा सामाणीया य सुरसंघा ॥ १३८

तिण्णेव[4] य परिसाणं धूमदिसे[5] सीहसाणभागेसु । होंति भवणाणि णेया पफुल्लपउमेसु सव्वेसु ॥ १३९

बत्तीसा चालीसा अडदाला तह सहस्ससंगुणिदा । परिसंखा णिद्दिट्ठा समासदो ताण सव्वाणं ॥ १४०

धयसीहवसहगयवरदिसासु[6] पउमाणि होंति रक्खाणं[7] । पत्तेयं पत्तेयं चदुरो चदुरो सहस्साणि ॥ १४१

सामाणियाण वि तहा खरगजढंखेसु चदुसहस्साणि । सत्त पउमाणि णेया सत्ताणीयाण वसहम्मि ॥ १४२

धय[8]धूमसिंहमंडलगोवइ[9]खरणागढंखआसासु । होंति पउमाणि णेया सदं च[10] अट्ठाणि देवाणं ॥ १४३

एक्केक्काण दहाणं दोदोपासेसु पुव्वपच्छिमदो । कंचणसेला दस दस णायव्वा होंति रमणीया ॥ १४४

एक पल्य प्रमाण आयुवाली और दश धनुष उन्नत देहकी धारक हैं ॥ १३४–१३५ ॥ उन भवनोंमें सदा कुमारी रहनेवाली ये देवियां अभिनव लावण्यमय रूपसे संयुक्त, आभरणोंसे भूषित; मृदु, कोमल एवं मधुर वचनोंको बोलनेवाली, सुन्दर रूपसे सहित और विशुद्ध शील व स्वभावसे सम्पन्न होती हैं ॥ १३६–१३७ ॥ इन देवियोंके तीन पारिषद, सात अनीक तथा आत्मरक्षक देवों एवं सामानिक देवोंके समूह होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३८ ॥ तीनों पारिषद देवोंके भवन आग्नेय, दक्षिण और ईशान भागोंमें स्थित सब विकसित पद्मोंके ऊपर होते हैं ॥ १३९ ॥ उन सबकी संख्या संक्षेपसे क्रमशः बत्तीस हजार, चालीस हजार और अड़तालीस हजार निर्दिष्ट की गई है ॥ १४० ॥ ध्वजा, सिंह, वृषभ और गज दिशाओं (पूर्वादिक चारों) मेंसे प्रत्येक दिशामें आत्मरक्षक देवोंके चार चार हजार कमल हैं ॥ १४१ ॥ तथा सामानिक जातिके देवोंके भी चार हजार कमल खर, गज और ढंख अर्थात् काक (ईशान, उत्तर व वायव्य) दिशाओंमें हैं। सात अनीकोंके सात कमल वृषभ (पश्चिम) दिशामें जानना चाहिये ॥ १४२ ॥ ध्वजा, धूम, सिंह, मण्डल गोपति (वृषभ), खर, नाग (गज) और ढंख (ध्वाङ्क्ष) इन आठ दिशाओंमें [प्रतीहार, मंत्री व दूत] देवोंके एक सौ आठ पद्म जानना चाहिये ॥ १४३ ॥ प्रत्येक द्रहके पूर्व व पश्चिम दो दो पार्श्वभागोंमें रमणीय दश दश कंचन शैल जानना चाहिये ॥ १४४ ॥ वन

---

१ उ श कुमारीओ. २ उ श चारुहवीओ. ३ उ श तिण्णपरिसा, ब विण्णिपरिसा. ४ ब विण्णेव. ५ उ श धूमदिसो. ६ उ श झयसीहवसयगजेसु. ७ उ श रुक्खाणं. ८ ब श झय. ९ उ श गेवइ. १० श अदं.

वणवेदिविप्फुरंता मणिकंचणतोरणेहि संजुत्ता । जोयणसयमुव्विद्धा[1] तदद्धविस्थारवरसिहरा ॥ १४५
बहुभवणसंपरिउडा णाणाविहकप्परुक्खसंछण्णा । पोक्खरिणिवाविपउरा जिणभवणविहूसिया रम्मा ॥ १४६
बहुदेवदेविणिवहा तण्णामादेवरायसाहीणा । देवकुरुम्मि वि खेत्ते सुवण्णसेला समुद्दिट्ठा ॥ १४७
देवकुरुम्मि दु वंसे सीदोदापच्छिमे तडे रुक्खो । मंदरगिरिस्स णेया ईसाणदिसाए[2] हवे सादी ॥ १४८
पंचेव जोयणसदा विक्खंभायामदिव्वमणिपीढं । मज्झे बारहबहलं जोयणअद्धं तु अंतम्मि ॥ १४९
वरवेदिएहि जुत्तं मणितोरणमंडियं मणभिरामं । बहुविहपायवणिवहं[3] सरवरवावीहिं रमणीयं ॥ १५०
तस्स बहुमज्झदेसे होइ तहा दक्खिणुत्तरायामं । अट्ठेव जोयणाइं[5] तदद्धउत्तुंग मणिपीढं ॥ १५१
चउजोयणविक्खंभं बारहवेदीहिं परिउडं दिव्वं । मणिगणजलंतभासुर तोरणअडदालसंछण्णं ॥ १५२
तं मज्झगयं पीढं मणिमय अट्ठद्धजोयणुत्तुंगं[7] । जोयणसमचउरस्सं[8] णाणामणिरयणसंछण्णं ॥ १५३
तस्स दु उवरिं होदि य सामलिरुक्खो महब्भसंकासो । साहोवसाहगहणो[10] मणिकंचणरयणपरिणामो ॥ १५४

व वेदियोंसे स्फुरायमान, मणिमय एवं सुवर्णमय तोरणोंसे संयुक्त, सौ योजन ऊंचे, इससे आधे (५० यो.) शिखरविस्तारसे युक्त, बहुत भवनोंसे वेष्टित, नाना प्रकारके कल्प वृक्षोंसे व्याप्त, प्रचुर पुष्करिणी व वापियोंसे सहित, जिनभवनोंसे विभूषित, रमणीय, बहुत देव-देवियोंके समूहसे सहित, तथा उन्हीं पर्वतों जैसे नामोंके धारक देवराजोंके स्वाधीन ऐसे सुवर्ण (कंचन) शैल देवकुरु क्षेत्रमें भी कहे गये हैं ॥ १४५–१४७ ॥ देवकुरु क्षेत्रमें मन्दर गिरिकी ईशान (नैऋत्य?) दिशामें सीतोदाके पश्चिम तटपर स्वाति (शाल्मलि) वृक्ष जानना चाहिये ॥ १४८ ॥ पांच सौ योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयामसे सहित तथा मध्यमें बारह व अन्तमें अर्ध योजन बाहल्यवाला दिव्य मणिमय पीठ है ॥ १४९ ॥ यह मणिपीठ उत्तम वेदियोंसे सहित, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, बहुत प्रकारके वृक्षोंके समूहसे सहित, और सरोवर एवं वापियोंसे रमणीय है ॥ १५० ॥ उसके बहुमध्य भागमें आठ योजन दक्षिण-उत्तर लंबा, इससे आधा ऊंचा, चार योजन विस्तृत, बारह वेदियोंसे वेष्टित, मणिसमूहकी दीप्तिसे भासुर तथा अड़तालीस तोरणोंसे व्याप्त दूसरा मणिमय दिव्य पीठ है ॥ १५१–१५२ ॥ वह मध्यगत मणिमय पीठ आठके आधे अर्थात् चार योजन ऊंचा, एक योजन समचतुष्कोण और नाना मणियों व रत्नोंसे व्याप्त है ॥ १५३ ॥ उसके ऊपर महामेघके सदृश, शाखा-उपशाखाओंसे गहन; मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप, दो कोश अवगाहसे युक्त,

१ उ श सयसमुव्विद्धा. २ उ गिरिस णेहा ईसाण, प ब गिरिस्स णेया साण, श गिरिस णेइसाण. ३ प ब पयात्र ४ उ श सुरवर. ५ उ ब जोयणायं, श जोयणाय. ६ उ श बहु॰ ७ उ श अद्धद्धजोयणुत्तुगं, प ब अद्धजोयणातुंगा. ८ ब बहुरंसं. ९ ब महत्त. १० प ब गमणो.

बेगाउयमवगाढो अट्ठेव जोयणसमुत्तुंगो[1] । बे चेव कोसरुंदो रयणमओ णिम्मलो दिव्वो ॥ १५५
बेजोयणउप्पइया धरणीदो[2] तस्स होंति साहाओ[3] । छज्जोयणतुंगाओ मरगयपत्तेहिं छण्णाओ ॥ १५६
साहोवसाहसहिओ मज्झे छज्जोयणा हुवे बहलो । सिहरे चत्तारि हवे बहुविहमणिकुसुमफलणिवहो ॥ १५७
साहासु होंति दिव्वा पासादा कणयरयणपरिणामा । दक्खिणदिसाविभागे जिणइंदाणं समुद्दिट्ठा ॥ १५८
कोसं आयामेण य कोसद्धं तह य होंति विक्खंभा । देसूणयं च कोसं उच्छेहा[4] होंति पासादा ॥ १५९
णामेण वेणुदेवो गरुडाणं अहिवई महासत्तो । सामलितरुम्मि णेया अच्छइ दिव्वाणुभावेण ॥ १६०
साहासिहरेसु तहा णाणाविहधयवडा समुत्तुंगा । वरचामरछत्तत्तयसंजुत्ता होंति णायव्वा ॥ १६१
चदुसु वि दिसाविभागे सामलिरुक्खा हवंति णायव्वा । चदु चदु चेव सहस्सा तह चेव य आदरक्खाणं ॥
दक्खिणपुव्वदिसाए अब्भंतरपरिसाए अमराणं । सामलिपादवसंखा बत्तीससहस्स णिद्दिट्ठा ॥ १६३
तह दक्खिणे वि णेया चालीससहस्स संवलीरुक्खा । मज्झिमपरिसाए तहा णायव्वा होंति णियमेण ॥१६४
अट्ठेदालसहस्सा बाहिरपरिसाए होंति णायव्वा । दक्खिणपच्छिमभागे णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ १६५

आठ योजन ऊंचा, दो कोश विस्तारसे सहित, रत्नमय, निर्मल और दिव्य शाल्मलि वृक्ष स्थित है ॥ १५४-१५५ ॥ पृथिवीसे दो योजन ऊपर जाकर उसकी छह योजन ऊंची और मरकतमय पत्तोंसे व्याप्त शाखायें हैं ॥ १५६ ॥ शाखा-उपशाखाओंसे सहित वह वृक्ष मध्यमें छह योजन व शिखरपर चार योजन बाहल्यसे सहित और बहुत प्रकारके मणिमय कुसुमों एवं फलोंके समूहसे संयुक्त है ॥ १५७ ॥ इन शाखाओंपर सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप दिव्य प्रासाद हैं । इनमेंसे दक्षिण दिशा विभागमें स्थित प्रासाद जिनेन्द्रोंके कहे गये हैं ॥ १५८ ॥ ये प्रासाद एक कोश आयत, अर्ध कोश विस्तृत और कुछ कम एक कोश ऊंचे हैं ॥ १५९ ॥ शाल्मलि वृक्षपर गरुडकुमारोंका स्वामी वेणु नामक महाबलवान् देव दिव्य प्रभावसे रहता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १६० ॥ शाखाशिखरोंपर उत्तम चामरों व तीन छत्रोंसे संयुक्त उन्नत नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकायें जानना चाहिये ॥ १६१ ॥ चारों ही दिशाविभागोंमें स्थित चार चार हजार शाल्मलि वृक्ष आत्मरक्ष देवोंके जानना चाहिये ॥ १६२ ॥ दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशामें अभ्यन्तर पारिषद देवोंके बत्तीस हजार शाल्मलि वृक्ष निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १६३ ॥ तथा दक्षिण दिशामें नियमसे मध्यम पारिषद देवोंके चालीस हजार शाल्मलि वृक्ष हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १६४ ॥ दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) भागमें सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट किये गये बाह्य पारिषद देवोंके अड़तालीस हजार शाल्मलि वृक्ष जानना चाहिये ॥ १६५ ॥ पश्चिम दिशामें भी सात अनीक देवोंके सात वृक्ष

---

१ प ब अट्ठेव हु जोयणा समत्तुंगो. २ प ब उप्पइउ धरणीउ. ३ उ श सहाओ. ४ उ श उच्छेहे.

पच्छिमदिसे वि णेया सत्ताणीयाण सत्त रुक्खा य । अट्ठोत्तरसयरुक्खा अट्ठसु वि दिसासु ते होंति ॥ १६६
पच्छिमउत्तरकोणे उत्तरभागे य पुव्वउत्तरदो । सामाणियाण होंति हु चत्तारिसहस्स मणिरुक्खा ॥ १६७
चत्तारि तुंग[1] पायव देवीणं होंति चदुसु वि दिसासु । सव्वेसु पायवेसु य पासादा होंति णायव्वा ॥ १६८
सव्वेसु य पासादे जिणपडिमा होंति रूवसंपण्णा । सीहासणछत्तत्तयभामंडलसंजुया सव्वे ॥ १६९
उत्तरकुरुदेवकुरुखेत्तेसु हवंति तेसु जे जादा । मणुया तिकोसउच्चा वरलक्खणवंजणोकलिया ॥ १७०
तिण्णिपलिदोवमाऊ तिहिं तिहिं दिवसेहि ते दु भुंजंति[2] । वरअमिदरसाहारा बदरपमाणेण णिद्दिट्ठा ॥ १७१
जुवला जुवला जादा इत्थी पुरिसा हवंति[3] ते सव्वे । णत्थि णउंसयवेदा तिरिया वि य होंति एमेव ॥ १७२
जे कम्मभूमिजादा दाणं दाऊण उत्तमे पत्ते । मरिऊण ते मणुस्सा जायंति य भोगभूमीसु ॥ १७३
बद्धाउगा मणुस्सा तिरिक्खमज्झम्मि मिच्छभावेण । दाणाणुमोदणेण य कुरूसु ते होंति तिरिया दु ॥ १७४
ते सुस्सरा सुरूवा मंदकसाया अपावबुद्धीया । णरणारिगणा सव्वे तिरिया वि हवंति णायव्वा ॥ १७५

....

जानना चाहिये । [मंत्री व प्रतीहारादि रूप देवोंके जो] एक सौ आठ वृक्ष हैं वे आठों ही दिशाओंमें स्थित हैं ॥ १६६ ॥ पश्चिम-उत्तर (वायव्य) कोणमें, उत्तर भागमें और पूर्व-उत्तर (ईशान) दिशामें सामानिक देवोंके चार हजार मणिमय वृक्ष हैं ॥ १६७ ॥ चार अग्र देवियोंके उन्नत चार वृक्ष चारों ही दिशाओंमें स्थित हैं । इन सब वृक्षोंपर प्रासाद होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १६८ ॥ सभी प्रासादोंमें सुन्दर रूपसे सम्पन्न जिनप्रतिमायें हैं । ये सब प्रतिमायें, सिंहासन, तीन छत्र एवं भामण्डल-से संयुक्त होती हैं ॥ १६९ ॥ उन उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रोंमें जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं वे तीन कोश ऊंचे और उत्तम लक्षण व व्यंजनोंसे युक्त होते हैं ॥ १७० ॥ वे मनुष्य तीन पल्योपम प्रमाण आयुसे युक्त होते हुए तीन दिवसमें भोजन करते हैं । इनका अमृतमय उत्तम आहार बेरके बराबर कहा गया है ॥ १७१ ॥ युगल युगल रूपसे उत्पन्न हुए वे सब स्त्री व पुरुष लिंगसे युक्त होते हैं । वहां नपुंसक वेद नहीं होता । इसी प्रकार तिर्यंच भी वहां उक्त दो लिंगोंसे ही संयुक्त हैं ॥ १७२ ॥ जो कर्म-भूमिमें उत्पन्न होकर उत्तम पात्रको दान देते हैं वे मरकर भोगभूमिमें मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥ १७३ ॥ मिथ्यात्व भावके साथ तिर्यंच आयुको बांधनेवाले मनुष्य दानकी अनुमोदनासे कुरु क्षेत्रोंमें तिर्यंच होते हैं ॥ १७४ ॥ वे सब स्त्री-पुरुषोंके समूह तथा तिर्यंच भी सुन्दर स्वरवाले, उत्तम रूपसे युक्त, मन्दकषायी और पापबुद्धिसे रहित होते हैं, ऐसा जानना चाहिये

....

१ ब श ढंग. २ प तिहिं दिवसे ते दु भुजंति, ब विहिं तिवसे तें दु भुञ्जंति. ३ ब श हुंति.

भोत्तूण दिव्वसोक्खं दसविहतरुसंभवं मणभिरामं । कालं कादूण तदो सव्वे देवत्तणमुविंति[1] ॥ १७६
देउत्तरकुरुखेत्तं एवं कहियं[2] समासदो भेदा । तत्तो उड्ढं णेया सेसाणं वण्णणा होइ ॥ १७७
सीलगुणरयणणिवहं सीलफलुद्देसयं विगदमोहं । वरपउमणंदिणमियं सीयलणाहं सदा वंदे ॥ १७८

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे[3] महाविदेहाहियारे देवकुरु-उत्तरकुरुविण्णासपत्थारो[4] णाम छट्ठओ उद्देसो समत्तो ॥ ६ ॥

॥ १७५ ॥ वे सब दश प्रकारके वृक्षोंसे उत्पन्न मनोहर दिव्य सुखको भोग कर मृत्युके पश्चात् देव पर्यायको प्राप्त करते हैं ॥ १७६ ॥ इस प्रकार संक्षेपसे देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रका कथन किया है । इसके आगे शेष क्षेत्रोंका वर्णन जानना चाहिये ॥ १७७ ॥ शीलगुणरूपी रत्नसमूहसे सहित, शीलके फलके उपदेशक, मोहसे रहित, और उत्तम पद्मनन्दिसे नमस्कृत ऐसे शीतलनाथको मैं सदा प्रणाम करता हूं ॥ १७८ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें महाविदेहाधिकारमें देवकुरु-उत्तरकुरु-विन्यासप्रस्तार नामक छठा उद्देश समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

---

१ उ श ०मुर्दिति. २ प एवकेरहियं, ब यवकेकहियं. ३ प ब पण्णातीवित्थरे. ४ प विण्णाणपत्थारो, ब विसमणपत्थारो.



[सत्तमो उद्देसो]

सेयंसजिणं पणमिय ससुरासुरवंदियं धुदकिलेसं। वोच्छं विदेहवंसं[1] जहदिट्ठं सव्वदरिसीहिं ॥ १
णिसहस्स यं उत्तरदो दक्खिणदो णीलवंतसेलस्स। वंसो महाविदेहो चउद्दिसं मंदरविहत्तो ॥ २
विक्खंभो य सहस्सा तेत्तीसं छस्सदा य चुरुसीदा[2]। चत्तारि चेव भागा मज्झे जीवा सयसहस्सा[3] ॥ ३
एक्कं[4] च सयसहस्सा अट्ठावण्णं तहा सहस्साणि। तेरस सदं कलाओ सोलस अद्धं च धणुपुट्ठं ॥ ४
तेत्तीसं च सहस्सा सत्तट्ठाणि य[5] सदाणि सत्त भवे। पुव्वावरपस्सभुजा विदेहवंसम्मि सत्त कला ॥ ५
एगं बाणउदीं[6] च य दोण्णिसहस्सा तहेव बोद्धव्वा। अट्ठारस य कलाओ विदेहअद्धम्मि चूलिया होइ ॥ ६
विक्खंभं आयामं मेरुस्स हवंति दो वि सरिसाणि। दस य सहस्सा णेया जोयणसंखा समुद्दिट्ठा ॥ ७
आयामं विक्खंभं वोच्छामि समासदो दु सेसाणं। दोण्हं[7] वणसंडाणं पायवसंघायणिचियाणं[8] ॥ ८
देवारण्णचदुण्हं अट्ठण्हं वेदियाण दिव्वाणं। बारसणदीण णेया विभंगणामाण सव्वाणं ॥ ९
सोलसवक्खाराणं बत्तीसण्हं तु विउलविजयाणं। चउसट्ठिवरणदीणं गंगासिंधूण आयामं ॥ १०

सुरों व असुरोंसे वन्दित और क्लेशसे रहित श्रेयांस जिनेन्द्रको प्रणाम करके विदेह वर्षका वर्णन करते हैं जैसा कि सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ १ ॥ निषधके उत्तरमें और नील पर्वतके दक्षिणमें स्थित वह विदेह क्षेत्र चारों ओर मन्दरसे विभक्त अर्थात् उसके मध्यमें मन्दर पर्वत स्थित है ॥ २ ॥ विदेह क्षेत्रका विष्कम्भ तेतीस हजार छह सौ चौरासी योजन और चार भाग (३३६८४$\frac{४}{१९}$), तथा मध्यमें जीवा एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है ॥ ३ ॥ उसका धनुषपृष्ठ एक लाख अट्ठावन हजार एक सौ तेरह योजन और साढ़े सोलह कला (१५८११३$\frac{३३}{३८}$) प्रमाण है ॥ ४ ॥ विदेह वर्षमें पूर्वापर पार्श्वभुजाका प्रमाण तेतीस हजार सात सौ सड़सठ योजन और सात कला (३३७६७$\frac{७}{१९}$) है ॥ ५ ॥ एक, बानवै और दो हजार अर्थात् दो हजार नौ सौ इक्कीस योजन व अठारह कला (२९२१$\frac{१८}{१९}$) प्रमाण अर्ध विदेहमें चूलिका है ॥ ६ ॥ मेरुका विष्कम्भ व आयाम दोनों समान रूपसे दश हजार योजन प्रमाण कहे गये जानना चाहिये ॥ ७ ॥ अब वृक्षसमूहसे परिपूर्ण शेष दो वनखण्डों (भद्रशाल), चार देवारण्यों, आठ दिव्य वेदिकाओं, बारह विभंगा नदियों, सोलह वक्षार पर्वतों, विशाल बत्तीस विजयों, तथा गंगा-सिन्धू आदिक चौंसठ उत्तम

---

१ प ब वोच्छामिदेहवंसं. २ उ छस्सदा ध कुलसीदा, श छस्सदा द कुलसीदा. ३ उ श सयसहस्स. ४ प ब एवं. ५ उ सत्तणाणि य. श सत्ताणि य. ६ प ब बाणउदिं. ७ उ दोवण्हं, श दोवण्हा. ८ उ श णिम्भियाणं, प......, ब णिवियाणं.

सोलस चेव सहस्सा पंचेव सदा हवंति बाणउदा। जोयणसंखा दिट्ठा वे चेव कला हवे[1] अहिया ॥ ११
सीदासीदोदाणं विक्खंभं पंच जोयणसयाणि। तं सोहिऊण सव्वं विदेहविक्खंभमज्झम्मि ॥ १२
सेसं अद्धं किच्चा जं लद्धं होइ ताण आयामं। पव्वदखेत्तादीणं णदीण सव्वाण णायव्वा ॥ १३
बावीसं च सहस्सा जोयणसंखापमाण णिद्दिट्ठा। दोण्हं वणाण णेया विक्खंभं होइ णियमेण ॥ १४
उणतीसजोयणसया बावीसा तह य होइ विक्खंभो। देवारण्णचउण्हं णायव्वा उवहियंतम्मि ॥ १५
वेगाउयउव्विद्धा पंचेव य धणुसया हवे विउला। अट्ठण्हं[2] वेदीणं णायव्वं होइ विक्खंभं ॥ १६
पणुवीस जोयणसयं विदेहमज्झम्मि तह य णिद्दिट्ठा। बारसणदीण णेया विभंगणामाण विक्खंभं ॥ १७
पंचेव जोयणसया विक्खंभं होइ तह य णायव्वं[3]। सोलसवक्खाराणं णिद्दिट्ठं सव्वदरिसीहिं ॥ १८
णीलणिसहाण भागे सेला[4] चदुसय जोयणा समुत्तुंगा[5]। सीदासीदोदाण य तडेसु ते होंति पंचसया ॥ १९
बावीसजोयणसया बारस सत्तट्ठभागअब्भधियं[6]। बत्तीसण्हं णेया विजयाणं होइ विक्खंभं ॥ २०
कुंडाण तह समीवे सक्कोसा जोयणा य छच्चेव। चउसट्ठिवरणदीणं विक्खंभं होइ णायव्वं ॥ २१

नदियोंके विष्कम्भ व आयामका संक्षेपसे कथन करते हैं। इन सबका आयाम सोलह हजार पांच सौ बानबै योजन और दो कला अधिक कहा गया है ॥ ८-११ ॥ सीता-सीतोदाका विस्तार पांच सौ योजन प्रमाण है। उस सबको विदेहके विस्तारमेंसे कम करके शेषको आधा करनेपर जो लब्ध हो उतना उन पर्वत, क्षेत्रादिक तथा सब नदियोंका आयाम जानना चाहिये ($३३६८४\frac{४}{१९} - ५०० \div २ = १६५९२\frac{२}{१९}$) ॥ १२-१३ ॥ दोनों [भद्रशाल] वनोंका विष्कम्भ नियमसे बाईस हजार योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ १४ ॥ समुद्र तक स्थित चार देवारण्योंका विष्कम्भ उनतीस सौ बाईस (२९२२) योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १५ ॥ आठों वेदियोंकी उंचाई दो कोश और विष्कम्भ पांच सौ धनुष प्रमाण जानना चाहिये ॥ १६ ॥ विदेहके मध्यमें विभंगा नामक बारह नदियोंका विस्तार एक सौ पच्चीस योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ १७ ॥ सोलह वक्षार पर्वतोंका विष्कम्भ सर्वदर्शियोंने पांच सौ योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया है ॥ १८ ॥ ये शैल नील और निषधके पासमें चार सौ योजन तथा सीता-सीतोदाके तटोंपर पांच सौ योजन प्रमाण ऊंचे हैं ॥ १९ ॥ बत्तीस विजयोंका विष्कम्भ बाईस सौ बारह योजन और एक योजनके आठ भागोंमेंसे सात भाग अधिक जानना चाहिये ॥ २० ॥ चौंसठ उत्तम नदियोंका विष्कम्भ कुण्डोंके समीपमें एक कोश सहित छह ($६\frac{१}{४}$) योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ २१ ॥ उक्त नदियोंका विस्तार सीता-सीतोदाके जलमें प्रवेश करते

---

१ उ श सवे. २ उ श अच्छंण्हं. ३ उ श तह य होइ णायव्वा. ४ उ सेल, श सोला. ५ प ब चदुजोयणसमतुंगा, श चदुजोयणा समुत्तुंगा. ६ उ भागअजाधियं, प ब भागमज्झधियं, श भागअलीधियं.

बेकोससमधियेया[1] बासट्ठा जोयणा समुद्दिट्ठा । सीदासीदोदजलं पवेसमाणेण विक्खंभं ॥ २२
विक्खंभ इच्छरहियं विक्खंभाखिल मेळवेदूणं । जंबूदीवस्स तहा विक्खंभे सोहिऊण पुणो[2] ॥ २३
अवसेसं जं दिट्ठं विक्खंभिच्छेण भाजिदे लद्धं । तं होदि इच्छिदाणं सव्वाणं इच्छविक्खंभं ॥ २४
इह होइ सोज्झरासी जोयणलक्खं अवट्ठिदं[3] सददं । अणवट्ठिदा य णेया सोहणरासी समुद्दिट्ठा ॥ २५
चउसट्ठिं च सहस्सा पंचेव सया हवंति चउणउदा । सोहणरासी णेया विदेहवंसस्स विजयाणं ॥ २६
सो ज्झम्मि दु परिसुद्धं[4] सेसं तह सोळसेहि पविभत्तं । जं लद्धं णायव्वं विजयाणं होइ विक्खंभं ॥ २७
छण्णउदिं च सहस्सा सोज्झम्मि य सोहिदूण[5] अवसेसं । अट्ठविभत्ते लद्धं वक्खाराणं तु विक्खंभं ॥ २८

समय दो कोशोंसे अधिक बासठ (६२½) योजन प्रमाण कहा गया है ॥ २२ ॥ इच्छित (विजय आदि) के विष्कम्भसे रहित शेष सबके विष्कम्भको मिलाकर तथा उसे जम्बू द्वीपके विष्कम्भमेंसे घटा कर जो शेष दृष्टिगत हो उसे विष्कम्भकी इच्छा अर्थात् विजयादिकोंकी संख्या (१६,८,६,२,२) से भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना इच्छित सब विजयादिकोंका इच्छित विष्कम्भ होता है ॥ २३-२४ ॥ यहां शोध्य राशि (जिसमेंसे घटाना अभीष्ट है) जो एक लाख योजन है वह सदा अवस्थित है । शोधन (घटाई जानेवाली) राशि अनवस्थित कही गई जानना चाहिये ॥ २५ ॥ विदेह वर्षके विजयोंकी शोधन राशि चौंसठ हजार पांच सौ चौरानबै जानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस राशिको शोध्य राशिमेंसे शुद्ध करके शेषको सोलहसे विभक्त करनेपर जो लब्ध हो उतना विजयोंका विष्कम्भ जानना चाहिये ॥ २७ ॥

उदाहरण— यदि हम विदेह क्षेत्रस्थ १६ विजयोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार जानना चाहते हैं तो उक्त १६ विजयोंके समुदित विस्तारको छोड़कर शेष ८ वक्षार पर्वतों (५००×८ = ४००० यो.) ६ विभंगा नदियों (१२५ × ६ = ७५० यो.), २ देवारण्यों (२९२२× २ = ५८४४), २ भद्रशाल वनों (२२००० × २ = ४४०००) तथा मेरु पर्वतके विस्तार (१०००० यो.) को मिलाकर उसे १००००० यो. (जम्बू द्वीपका विस्तार) में से कम करना चाहिये— ४००० + ७५० + ५८४४ + ४४००० + १०००० = ६४५९४; १००००० − ६४५९४ = ३५४०६ । अब चूंकि विजयोंकी संख्या १६ है, अत एव इसमें १६ का भाग देनेपर इष्ट प्रत्येक विजयका विस्तार प्राप्त हो जाता है— ३५४०६ ÷ १६ = २२१२⅞ यो. प्रत्येक विजयका विस्तार ।

छ्यानबै हजार (३५४०६ + ७५० + ५८४४ + ४४००० + १०००० = ९६०००) को शोध्य राशिमेंसे घटाकर शेषको आठसे विभक्त करनेपर जो लब्ध हो उतना वक्षारोंका विष्कम्भ होता है ॥ २८ ॥ निन्यानबै हजार दो सौ पचास (३५४०६

१ उ प ब श समधिया. २ उ श पुरो. ३ उ श अवट्ठिदं. ४ उ श परिसादं. ५ प ब सोज्झम्मि दु सो सोहऊण.

णवणउदिं च सहस्सा बेसयपण्णास सोहणक्खादा । सोज्झम्मि सुद्धसेसं विभंगविक्खंभ छब्भागो[1] ॥ २९
चउणउदिं च सहस्सा छप्पण्ण सयं च सुद्धअवसेसं[2] । दोभागेण य लद्धं देवारण्णाण विक्खंभं ॥ ३०
छप्पण्णं च सहस्सा सोहणरासी विहीण सोज्झम्मि । सेसं दलेण होदि य विक्खंभं भद्दसालस्स ॥ ३१
णउदिं चेव सहस्सा सोहणरासी समासदो णेया । सोज्झम्मि सुद्धसेसं होदि य मेरुस्स विक्खंभं ॥ ३२
सीदाए उत्तरदो णीलस्स[3] दु दक्खिणेण भागेण[4] । उत्तरकुरुस्स पुव्वे पच्छिमदो चित्तकूडस्स ॥ ३३
एदम्हि[5] अंतरम्हि दु कच्छाविजओ त्ति णामदो णेओ । देसो[6] अणादिणिहणो बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ ३४
परचक्कईदि[7]रहिदो णाणापासंडसमयपरिहीणो । धणधण्णरयणणिवहो गोमहिसिकुलाउलसिरीओ ॥ ३५
जवसालिउच्छुपउरो[8] तिलमासमसूरगोहुमाइण्णो । दुब्भिक्खमारिरहिदो णिच्चुच्छवतूररमणीओ ॥ ३६
णाणाजणपदणिवहो णरणारिवियक्खणेहि परिपुण्णो । पोक्खरिणिवाविपउरो बहुविहदुमसंकुलो रम्मो ॥ ३७

+ ४००० + ५८४४ + ४४००० + १०००० = ९९२५०) इस शोधन नामक राशिको शोध्य राशिमेंसे शुद्ध करके शेषमें छहका भाग देनेपर विभंगा नदियोंका विष्कम्भ होता है ॥ २९ ॥ चौरानवै हजार एक सौ छप्पन (३५४०६ + ४००० + ७५० + ४४००० + १०००० = ९४१५६) को शोध्य राशिमेंसे कम करके शेषमें दोका भाग देनेसे जो लब्ध हो उतना देवारण्योंका विष्कम्भ होता है ॥ ३० ॥ छप्पन हजार (३५४०६ + ४००० + ७५० + ५८४४ + १०००० = ५६०००) इस शोधन राशिको शोध्यमेंसे कम करके शेषको आधा करनेसे भद्रशाल वनका विष्कम्भ होता है ॥ ३१ ॥ नब्बै हजार (३५४०६ + ४००० + ७५० + ५८४४ + ४४००० = ९००००) इस शोधन राशिको शोध्य राशिमेंसे शुद्ध करनेपर जो शेष रहे उतना मेरुका विष्कम्भ होता है ॥ ३२ ॥ सीता नदीके उत्तर, नील पर्वतके दक्षिण, उत्तर कुरुके पूर्व तथा चित्रकूट पर्वतके पश्चिम भाग; इस अन्तरमें कच्छा नामक विजय स्थित जानना चाहिये । यह देश अनादिनिधन, बहुत ग्रामोंसे व्याप्त, रमणीय, परचक्र व ईतिसे रहित, नाना पाखण्डी समयोंसे विहीन; धन-धान्य और रत्नोंके समूहसे परिपूर्ण; गाय और भैंसोंके कुलोंसे व्याप्त शोभावाला; जौ, शालि धान्य एवं ईखकी प्रचुरतासे सहित; तिल, उड़द, मसूर और गोधूम (गेहूं) से परिपूर्ण; दुर्भिक्ष व मारि (प्लेग आदि) से रहित, सदा होनेवाले उत्सवोंके वादित्रोंसे रमणीय, नाना जनपदोंके समूहसे संयुक्त, बुद्धिमान् नर-नारियोंसे परिपूर्ण, प्रचुर पुष्करिणी व वापियोंसे सहित तथा बहुत प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त होता हुआ रमणीय है ॥ ३३–३७ ॥ उस

---

१ उ श छभागा, प ब छभागो. २ प ब अवसेसो. ३ प ब लीलस्स. ४ प ब भामेण. ५ प ब एदेहि. ६ उ श देसे. ७ उ इदि, श इंदी. ८ उ श पवरो.

देसस्स तस्स मज्झे खेमा णामेण पुरवरो रम्मो । रयणमयभवणणिवहो कणयमणिरयणसंछण्णो ॥ ३८
पायारसंपरिउडो मणितोरणमंडिओ मणभिरामो[1] । वरखाइएहि जुत्तो जिणभवणविहूसिओ परमरम्मो[2] ॥ ३९
बारहजोयण णेओ आयामो पुरवरस्स णिद्दिट्ठो । णवजोयणविक्खंभो कंचणमणिरयणघरणिवहो ॥ ४०
गोउरसहस्सपउरो खडकीदाराणि[3] होंति पंचसया । बारहसहस्स रत्था सहस्स[4] चउक्का समुद्दिट्ठा[5] ॥ ४१
एक्केक्कदिसाभागे वणसंडा विविहकुसुमफलपउरा । तिण्णेव सया सट्ठी णायव्वा होंति णियमेण ॥ ४२
तस्स णगरस्स राया अणंतबलरूवतेयसंपण्णो[6] । पंचधणुस्सयतुंगो देवासुरजक्खपडिवक्खो ॥ ४३
परमाउ पुव्वकोडी सम्मादिट्ठी विसालवरबुद्धी । भोगोवभोगसहिओ छक्खंडणराहिओ धीरो ॥ ४४
बत्तीससहस्साणं रायाणं सामिओ महासत्तो । तावदियपमाणाणं देसाणं अहिवई दिट्ठो ॥ ४५
णवणउदिं च सहस्सा दोणमुहाइं हवंति णायव्वा । सीदासरिजलसंभवखुल्लोवहिवडसमीवेसु ॥ ४६
अट्ठेदाल सहस्सा णाणामणिरयणसंभवा[7] दिव्वा । तह पट्टणा वि णेया विसालउत्तुंगवरभवणा ॥ ४७

देशके मध्यमें क्षेमा नामक रमणीय उत्तम पुर है । यह पुर रत्नमय भवनोंके समूहसे सहित, सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे व्याप्त, प्राकारसे वेष्टित, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, उत्तम खाईसे युक्त और जिनभवनोंसे विभूषित होता हुआ अतिशय रमणीय है ॥ ३८-३९ ॥ सुवर्ण, मणि एवं रत्नमय गृहोंके समूहसे सहित इस श्रेष्ठ पुरका आयाम बारह योजन और विष्कम्भ नौ योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ ४० ॥ इसमें एक हजार गोपुर, पांच सौ खिड़की द्वार, बारह हजार वीथियां और एक हजार चतुष्पथ कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ इसके एक एक दिशाभागमें विविध कुसुमों एवं फलोंकी प्रचुरतासे युक्त तीन सौ साठ वनखण्ड जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ उस नगरका राजा अनन्त बल, रूप व तेजसे सम्पन्न; पांच सौ धनुष ऊंचा; देव, असुर एवं यक्षोंका शत्रु; एक पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट आयुका धारक, सम्यग्दृष्टि, विशाल उत्तम बुद्धिसे संयुक्त, भोग-उपभोगोंसे सहित, छह खण्डोंका अधिपति, धीर, महाबलवान्-बत्तीस हजार राजाओंका स्वामी, और इतने मात्र (३२०००) देशोंका अधिपति कहा गया है ॥ ४३-४५ ॥ उक्त चक्रवर्तीके सीता नदीके जलसे उत्पन्न होनेवाले क्षुद्र समुद्रोंके समीपमें निन्यानबै हजार (९९०००) द्रोणमुख जानना चाहिये ॥ ४६ ॥ तथा विशाल व उन्नत उत्तम भवनोंसे संयुक्त और नाना मणियों एवं रत्नोंको उत्पन्न करनेवाले अड़तालीस हजार (४८०००) दिव्य पट्टन भी जानना चाहिये ॥ ४७ ॥ बहुत धन-सम्पत्ति व

---

१ प ब परमरम्मो. २ उ श परमो. ३ प ब दारेण. ४ प ब सहस्स. ५ उ श सहस्सचक्को समुद्दिट्ठो. ६ प ब संपुण्णो. ७ उ श मणिसंभवा.

छव्वीसं च सहस्सा वरणयरा[1] विविहरयणसंछण्णा । बहुसारभंडणिवहा[2] कप्पूरमरीचिपरिपुण्णा ॥ ४८
पंचसयगामजुत्ता मडंबणामा हवंति णायव्वा । चत्तारि सहस्साइं[5] बहुविहघरसंकुला रम्मा ॥ ४९
कव्वडणामाणि तहा धरणीधरपरिउडा धणसमिद्धा[6] । चउतीसं च सहस्सा बहुभवणविहूसिया दिव्वा ॥ ५०
सरिपव्वदाण[7] मज्झे खेडा[8] णामेण होंति णायव्वा । सोलस चेव सहस्सा णाणाविहभवणसंछण्णा ॥ ५१
गिरिवरसिहरेसु तहा संवाहा णामदो समुद्दिट्ठा । चउदस चेव सहस्सा कंचणमणिरयणघरणिवहा ॥ ५२
छप्पण्णं रयणदीवा रयणाणं जणणि एव संजाया । सीदाउत्तरकूले[10] हवंति ते उवसमुद्दम्मि ॥ ५३
छण्णउइगामकोडी उत्तुंगमहंतभवणकयसोहा । संकिट्ठलद्धसीमा[11] कुक्कुडसंडेवया[12] दिव्वा ॥ ५४
धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया हवे दिट्ठा[13] । मिच्छत्तभवणरहिया गामादीणं समुद्दिट्ठा ॥ ५५
[15]णाणामणिरयणमया जिणभवणविभूसिया परमरम्मा । मिच्छत्तभवणरहिया गामादीया समुद्दिट्ठा ॥ ५६
सत्तेव महामेघा भवरंजणसंणिभा सलिलपुण्णा । तह सत्त सत्त दिवसा वासारत्तम्मि वरिसंति[16] ॥ ५७

बर्तन-भांडोंके समूहसे युक्त, कर्पूर व मरीचिसे परिपूर्ण और विविध रत्नोंसे व्याप्त ऐसे छब्बीस हजार उत्तम नगर होते हैं ॥ ४८ ॥ पांच सौ ग्रामोंसे युक्त और बहुत प्रकारके घरोंसे व्याप्त रमणीय चार हजार मटंब जानना चाहिये ॥ ४९ ॥ पर्वतसे वेष्टित, धनसे समृद्ध और बहुतसे भवनोंसे विभूषित चौंतीस हजार दिव्य कर्वट होते हैं ॥ ५० ॥ नदी और पर्वतके मध्यमें स्थित व नाना प्रकारके भवनोंसे सहित सोलह हजार दिव्य खेट जानना चाहिये ॥ ५१ ॥ पर्वतशिखरोंपर स्थित व सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके गृहसमूहसे संयुक्त चौदह हजार संवाह कहे गये हैं ॥ ५२ ॥ रत्नोंके उत्पादक जो छप्पन रत्नद्वीप (अन्तर्द्वीप) हैं वे सीताके उत्तर तटपर उपसमुद्रमें उत्पन्न होते हैं ॥ ५३ ॥ उन्नत एवं विशाल भवनोंसे शोभायमान संक्लिष्ट होकर प्राप्त सीमासे संयुक्त तथा मुर्गाके उड़ने योग्य अर्थात् पास पासमें स्थित ऐसे छयानबे करोड़ दिव्य ग्राम होते हैं ॥ ५४ ॥ ये ग्रामादिक फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं-से संयुक्त, जिनभवनोंसे विभूषित और मिथ्यादृष्टियोंके भवनोंसे रहित कहे गये हैं ॥ ५५ ॥ उक्त ग्रामादिक नाना मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय और मिथ्यादृष्टियोंके भवनोंसे रहित कहे गये हैं ॥ ५६ ॥ भ्रमर व अंजनके सदृश वर्णवाले तथा जलसे परिपूर्ण सातों ही महामेघ सात सात दिन तक रात-दिन बरसते हैं ॥ ५७ ॥ कुंद पुष्प

१ उ श वारागरा, प ब वरागरा. २ प ब मड. ३ ब णित्रहाणिव्वहा. ४ उ श करीचि. ५ उ श सहस्साएं. ६ उ श धणसमिद्धा, प ब वणसमिधा. ७ उ श पव्वदोण. ८ प ब खेडा. ९ प ब कव्वामणि. १० ब कूलो. ११ उ श संकिट्ठिणलद्धसीमा. १२ उ श संडेवया, प ब संगीवया. १३ श वदिट्ठा. १४ प ब सत्तभवण. १५ गाथेयं नोपलभ्यते उ-शप्रत्योः । १६ उ श वरसंति.

बारस य दोणमेहा कुंदेंदुसमप्पहा सलिलपउरा । वीसुत्तरतिण्णिसया सरिवडणो होंति एक्केक्को[1] ॥ ५८
तत्थ दु खत्तियवंसो रायाणं बहुविहो हवे भेदो । वइसाण होइ वंसो सुद्दाणं तह य णायव्वा ॥ ५९
तिण्णेव होंति वंसा अवसेसा तत्थ णत्थि वंसा दु । दुव्वुट्ठिअणावुट्ठी ण वि[3] होंति दु सव्वकालम्मि ॥ ६०
तित्थयरपरमदेवा अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ता । पंचमहाकल्लाणा चउतीसविसेससंपण्णा ॥ ६१
देवासुरिंदमहिया णाणाविहलक्खणेहि संजुत्ता । चक्कहरणमियचलणा तिलोगणाहा हवे तत्थ[4] ॥ ६२
सत्तविहरिद्धिपत्ता गणहरदेवा हवंति णायव्वा । अमरिंदणमियचलणा सद्धम्मपयासया तत्थ ॥ ६३
पवरवरपुरिससीहा केवलणाणी हवंति संबद्धा[5] । णाणाविहतवणिरदा साहुगणा होंति तत्थेव ॥ ६४
अंजणगिरिसरिसाणं चुलसीदीसयसहस्स णागाणं । तावदियरहवराणं णवणिहिअक्खीणकोसाणं ॥ ६५
अट्ठारहकोडीणं अस्साणं[6] वाउवेगगमणाणं । जे सामिय माहप्पा अखलियपरक्कमा धीरा ॥ ६६
ते होंति चक्कवट्टी चउदसरयणाहिवा महासत्ता । छण्णउइसहस्साणं महिलाणं सामिया तत्थ ॥ ६७
बलदेववासुदेवा सप्पडिवक्खा[7] हवंति तत्थेव । धम्माणुभावजणिया अतुट्टसंताणणरपत्ती[8] ॥ ६८

...

और चन्द्रके समान प्रभावाले तथा प्रचुर जलसे परिपूर्ण बारह द्रोणमेघ भी बरसते हैं । एक एकके तीन सौ बीस सरित्प्रपात होते हैं ॥ ५८ ॥ वहां बहुत प्रकारके भेदोंसे युक्त राजाओंका क्षत्रिय वंश, वैश्योंका वंश और शूद्रोंका वंश, ये तीन ही वंश हैं; शेष वंश वहां नहीं हैं, ऐसा जानना चाहिये । तथा वहां सर्व काल दुर्वृष्टि (अतिवृष्टि) और अनावृष्टि भी नहीं होती ॥ ५९–६० ॥ वहां आठ महा प्रातिहार्योंसे संयुक्त, पांच महा कल्याणकोंसे युक्त, चौंतीस अतिशयोंसे सम्पन्न, देवेन्द्रों व असुरेन्द्रोंसे पूजित, नाना प्रकारके लक्षणोंसे संयुक्त, चक्रवर्तियोंसे नमस्कृत चरणोंवाले और तीनों लोकोंके स्वामी ऐसे तीर्थंकर परम देव विद्यमान हैं ॥ ६१–६२ ॥ वहांपर सात प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त और देवेन्द्रोंसे नमस्कृत चरणोंवाले, गणधर देव समीचीन धर्मके प्रकाशक हैं ॥ ६३ ॥ वहांपर पुरुषोंमें श्रेष्ठ संबद्ध (अनुबद्ध) केवली और नाना प्रकारके तपोंमें निरत साधुसमूह भी हैं ॥ ६४ ॥ जो महापुरुष अंजन गिरिके सदृश चौरासी लाख हाथियों, इतने ही उत्तम रथों, नौ निधियों, अक्षीण कोष, और वायुके वेगके समान गमन करनेवाले अठारह करोड़ अश्वोंके स्वामी और निर्बाध पराक्रमके धारक होते हैं । वे चौदह रत्नोंके अधिपति, महाबलवान् और छयानवै हजार महिलाओंके स्वामी चक्रवर्ती वहां विद्यमान रहते हैं ॥ ६५–६७ ॥ अविच्छिन्न परम्परासे संयुक्त बलदेव, वासुदेव, और उनके प्रतिपक्षी (प्रतिवासुदेव) नृपति भी वहां धर्मके प्रभावसे उत्पन्न होते

...

१ प ब सिरिवडणा, श सरिवडाणा. २ प ब एक्कक्क. ३ उ श दुव्विट्ठिअणावुट्ठी न व. ४ प ब तस्स. ५ प ब संबंधा. ६ उ प ब श असाणं. ७ प ब तह पडिवक्खा, श तत्थेपिविवक्खा. ८ उ संताणणरवंती, प संमाणाणरपत्ती, ब संताणणरपत्ती, श संताणणंति.

रायाहिरायवसहा होंति महाराय अद्धमंडलिया । तह सयलमंडलीया तम्मि महामंडलीया य ॥ ६९
सव्वाण विदेहाणं एवं सव्वेसु चेव विजयेसु । पुरिसाणं उप्पत्ती णायव्वा होइ णियमेणं ॥ ७०
कच्छाविजयस्स जहा समासदो वण्णणा समुद्दिट्ठा । सेसाणं विजयाणं एसेव कमो वियाणाहि ॥ ७१
रत्तारत्तोदेहि य वेदड्ढणगेण भाजिदो संतो । छक्खंडकच्छविजओ समासदो होइ णायव्वो ॥ ७२
कच्छाखंडाण तहा विक्खंभो णीलवंतपासम्मि । सत्तसया तेत्तीसा छब्भागविहीणबेकोसा[1] ॥ ७३
एगत्तरि विण्णिसदा अट्ठसहस्सा य जोयणा णेया । एगं[2] च कला दिट्ठा खंडाणं होइ आयामं ॥ ७४
विजयाणं विक्खंभे सरीण विक्खंभ सोधइत्ताणं । सेसं तिभागलद्धं खंडाणं होइ विक्खंभं ॥ ७५
विजयाणं आयामे वेदड्ढस्स य तहेव विक्खंभं[3] । सुद्धावसेसदलिदं खंडाणं[4] होइ आयामं ॥ ७६
अद्धुट्ठकोसं[5]सहिया बारस बावीसजोयणसयाणि । कच्छाविजए दिट्ठो वेदड्ढगिरिस्स आयामो ॥ ७७
पण्णासा[6] विक्खंभो पणुवीस तुंग रयदपरिणामो । सक्कोसछावगाढो तिसेढि[7]परिमंडिओ दिव्वो ॥ ७८

हैं ॥ ६८ ॥ श्रेष्ठ राजाधिराज, महाराज, अर्धमण्डलीक, सकलमण्डलीक और महामण्डलीक भी वहांपर विद्यमान रहते हैं ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार सब विदेहोंके सभी विजयोंमें नियमसे पुरुषोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये ॥ ७० ॥ जिस प्रकार कच्छा विजयका संक्षेपसे वर्णन किया गया है उसी प्रकारका यही क्रम शेष विजयोंका भी जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ रक्ता-रक्तोदा और विजयार्ध गिरिसे विभागको प्राप्त होकर कच्छा विजय संक्षेपसे छह खण्डोंसे युक्त जानना चाहिये ॥ ७२ ॥ नील पर्वतके पासमें कच्छाखण्डोंका विष्कम्भ सात सौ तेतीस योजन और छह भागोंसे हीन दो कोश है ॥ ७३ ॥ उक्त खण्डोंका आयाम आठ हजार दो सौ इकत्तर योजन और एक कला प्रमाण कहा गया है ॥ ७४ ॥ विजयोंके विष्कम्भमेंसे नदियों-के विष्कम्भको घटाकर शेषके तीन भाग करनेपर जो लब्ध आवे उतना [$२२१२\frac{७}{८}$ − ($६\frac{१}{४} + ६\frac{१}{४}$) ÷ ३ = $७३३\frac{१}{२}\frac{१}{४}$ यो.] खण्डोंका विष्कम्भ होता है ॥ ७५ ॥ विजयोंके आयाममेंसे विजयार्धके विष्कम्भको कम करके शेषको आधा करनेपर खण्डोंका आयाम ($१६५९२\frac{२}{१९}$ − ५० ÷ २ = $८२७१\frac{१}{१९}$ यो.) होता है ॥ ७६ ॥ कच्छा विजयमें वैताढ्य पर्वतका आयाम बाईस सौ बारह योजन और साढ़े तीन कोश प्रमाण कहा गया है ॥ ७७ ॥ चांदीके परिणाम रूप और तीन श्रेणियोंसे मण्डित इस दिव्य पर्वतका विष्कम्भ पचास योजन, उंचाई पच्चीस योजन और अवगाढ़ एक कोश सहित छह ($६\frac{१}{४}$) योजन है

१ उ श वेकोसा । २ प ब एवं. ३ प ब वेददस्स य विक्खंभं, श वदड्ढसयहामे विक्खंभं. ४ उ श दलिदंक्खंजणं, प ब दलिदं खंडाणं. ५ उ श अद्धठकोस, प ब अद्धुट्ठकोस. ६ उ श पाण्णासा. ७ उ श तेसेदि.

वेदड्ढणगो पवरो विज्जाहरसुरगणाण आवासो । कच्छविजयम्मि मज्झे परिट्ठिओ होइ रमणीओ ॥ ७९

कुंदेंदुसंखवण्णो जिणभवणविहूसिओ परमरम्मो । वणवेदिएहिं जुत्तो तोरणणिवहेहिं कयसोहो[1] ॥ ८०

पणवण्णा उत्तरदो दक्खिणदो तह य होंति पणवण्णा । णगराणि तत्थ णेया विज्जाहरपवररायाणं ॥ ८१

णव चेव होंति कूडा कंचणमणिरयणमंडिया दिव्वा । अभिजोगसुराण तहा पासादा तत्थ णायव्वा ॥ ८२

पोक्खरिणिवाविपउरो[2] णाणातरुसंकुलो मणभिरामो । वज्जंततूरणिवहो धयवडधुव्वंतरमणीओ ॥ ८३

वेदड्ढसेलमूले चउदस तह[3] जोयणा य सत्तसया । विक्खंभं णायव्वं[4] कच्छाविजयस्स खंडाणं ॥ ८४

छावट्ठा छच्चं[5] सया पंच सहस्सा धणूणं[6] णायव्वा । वे चेव होंति हत्था सोलस तह अंगुला दिट्ठा ॥ ८५

समहियदिवड्ढकोसा चउतीसा जोयणा णदी रत्ता । रत्तोदा वि य होंति य विक्खंभा रयदगिरिमूले ॥ ८६

...

॥ ७८ ॥ विद्याधरों व देवगणोंके आवास स्वरूप यह रमणीक श्रेष्ठ वैताढ्य पर्वत कच्छा विजयके मध्यमें स्थित है ॥ ७९ ॥ उक्त पर्वत कुंद पुष्प, चन्द्र और शंखके समान वर्णवाला; जिनभवनसे विभूषित, अतिशय रमणीय, वनवेदियोंसे युक्त और तोरणसमूहोंसे शोभायमान है ॥ ८० ॥ उसके ऊपर उत्तरकी ओर पचवन तथा दक्षिणकी ओर पचवन श्रेष्ठ विद्याधर राजाओंके नगर जानना चाहिये ॥ ८१ ॥ उक्त पर्वतपर सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे मण्डित दिव्य नौ कूट तथा आभियोग्य सुरोंके प्रासाद जानना चाहिये ॥ ८२ ॥ ये प्रासाद प्रचुर पुष्करिणी व वापियोंसे सहित, नाना वृक्षोंसे व्याप्त, मनोहर, बजते हुए वादित्रसमूहसे सहित, और फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे रमणीय हैं ॥ ८३ ॥ विजयार्ध पर्वतके मूलमें कच्छा विजयके खण्डोंका विष्कम्भ सात सौ चौदह योजन, पांच हजार छह सौ छयासठ धनुष, दो हाथ तथा सोलह अंगुल प्रमाण कहा गया है ॥ ८४–८५ ॥

विशेषार्थ— कच्छा विजयका विष्कम्भ २२१२$\frac{७}{८}$ यो. है । इसमेंसे विजयार्धके समीपमें रक्ता व रक्तोदा नदियोंमेंसे प्रत्येकका विष्कम्भ जो ३४ यो. व साधिक डेढ कोश (३४$\frac{३}{८}$ यो.) प्रमाण है उसे कम करके शेषमें २ का भाग देनेपर विजयार्धके समीपमें प्रत्येक खण्डका विष्कम्भप्रमाण प्राप्त होता है— २२१२$\frac{७}{८}$ – (३४$\frac{३}{८}$ × २) ÷ २ = ७१४ यो. ५६६६ धनुष २ हाथ १६ अंगुल ।

विजयार्ध पर्वतके मूलमें रक्ता व रक्तोदा नदियोंमेंसे प्रत्येका विष्कम्भ चौंतीस योजन और डेढ कोशसे कुछ अधिक है ॥ ८६ ॥ उक्त दोनों नदियां अपने अपने कुण्डके मुख

...

१ उ श कलसोहो. २ उ श पउरा पउरो, प ब पवरो. ३ उ श चउदसत. ४ उ श णायव्वं. ५ प ब छच्च, ६ धणू.

छज्जोयणा सकोसा कुंडमुहे[1] वित्थडाओ सरियाओ । बासट्ठा[2] बेकोसा सीदाए पविसमाणीओ ॥ ८७
छण्णउदा छच्च सया जोयणसंखा सडंसपरिहीणा । सीदावरसरितीरे[3] कच्छाविजयस्स विक्खंभो ॥ ८८
णीलगिरिस्स दु हेट्ठा कुंडाणि हवंति सलिलपुण्णाणि । वणवेदियजुत्ताणि य तोरणदारेहि रम्माणि ॥ ८९
कुंडाणं णायव्वा विक्खंभायाम जोयणपमाणा । बासट्ठा वे कोसा दसावगाहा समुद्दिट्ठा ॥ ९०
रत्ता रत्तोदा वि य णीसरिदूणं[6] महंतकुंडादो । संकुडिऊणं ताओ वेदड्ढगुहेसु पविसंति ॥ ९१
वेदड्ढगुहाण तहा दाराण वियाण वित्थडायामा । उच्छेहा[7] तह जोयण बारस पण्णास अट्ठेव[8] ॥ ९२
परिहाणिवड्ढिवज्जियगुहाणं मज्झेसु होंति सरियाओ । अट्ठेव दु वित्थिण्णा सव्वत्थ[10] समा समुद्दिट्ठा ॥ ९३
वेयड्ढमज्झभागे दो दो सरियाओ तेसु पविसंति । रत्तारत्तोदेसु य उम्मग्गणिमग्गणामाओ ॥ ९४
कुंडेहि णिग्गदाओ दो दो जोयण हवंति दीहाओ । वरचक्कवट्टिणिम्मियसंकमसोहंतकूलाओ ॥ ९५
वरतोरणजुत्ताओ कंचणवेदीहि परिउडाओ दु । वणसंडभूसियाओ मणिमयसोवाणणिवहाओ ॥ ९६

....

(उद्‌गमस्थान) में एक कोश सहित छह योजन ($६\frac{१}{४}$) तथा सीता नदीमें प्रवेश करते समय बासठ योजन व दो कोश प्रमाण विस्तृत हैं ॥ ८७ ॥ उत्तम सीता नदीके तीरपर कच्छा विजयके [खण्डोंका] विष्कम्भ छठे भागसे हीन छह सौ छयानवै योजन प्रमाण है [$२२१२\frac{७}{८} - (६२\frac{१}{२} \times २) \div ३ = ६९५\frac{२३}{२४}$ यो.] ॥ ८८ ॥ नील पर्वतके नीचे वनवेदियोंसे युक्त और तोरणद्वारोंसे रमणीय जलसे परिपूर्ण कुण्ड हैं ॥ ८९ ॥ कुण्डोंका विष्कम्भ व आयाम बासठ योजन दो कोश और अवगाह दश योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ ९० ॥ रक्ता और रक्तोदा नामक वे नदियां विशाल कुण्डोंसे निकल कर संकुचित होती हुई विजयार्धकी गुफाओंमें प्रवेश करती हैं ॥ ९१ ॥ विजयार्धकी उन गुफाओंके द्वारोंका विस्तार, आयाम तथा उत्सेध क्रमसे बारह, पचास और आठ योजन प्रमाण है ॥ ९२ ॥ हानि-वृद्धिसे रहित उन गुफाओंके मध्यमें उक्त नदियां सर्वत्र समान रूपसे आठ योजन विस्तीर्ण कही गई हैं ॥ ९३ ॥ विजयार्धके भीतर उन्मग्ना और निमग्ना नामक दो दो नदियां उन रक्ता-रक्तोदा नदियोंमें प्रवेश करती हैं ॥ ९४ ॥ अपने अपने कुण्डसे निकलती हुई वे नदियां दो दो योजन दीर्घ, श्रेष्ठ चक्रवर्तियोंसे निर्मित उत्तम पुलोंसे शोभायमान तीरोंवाली, उत्तम तोरणोंसे युक्त, सुवर्णमय वेदियोंसे वेष्टित, वनखण्डोंसे भूषित और मणिमय सोपानसमूहसे संयुक्त हैं ॥ ९५-९६ ॥ रक्ता और

....

१ उ श कुंडलमुहे. २ प ब बासट्ठे. ३ उ श सीदावरिसरितीरे, प सदावरसरितीरे, ब सदावरती. ४ प ब णाल. ५ ब वराविदिय. ६ उ श य रसीसरिदूणं. ७ उ श उच्छेया. ८ उ श अट्ठवो. ९ प ब पराह. १० उ श सवत्थ.

रत्तारत्तोदाओ णीसरिदूणं गिरिस्स मज्झादो । तोरणदारेहिं तहा गंतूणं दक्खिणमुहेण ॥ ९७
चोद्दसणदीहि सहिया सहस्सगुणिदाहि विमलसलिलाहिं । तोरणदारेहिं तहा सीदासलिलं अणुविसंति ॥ ९८
चउणउदिजोयणाणि य पादविहूणाणि[1] तुंगसिहराणि । तोरणदाराणि[2] तहा कंचणमणिरयणणिवहाणि[3] ॥ ९९
बासट्ठिजोयणाणि य वेकोसा[4] होंति णायव्वा । तोरणदाराण तहा आयामं जिणवरुद्दिट्ठं[5] ॥ १००
विक्खंभा[6] वि य णेया जोयण अट्ठा[7] हवंति णायव्वा । देहलितलेहिं ताओ सरियाओ तार्ण पविसंति ॥ १०१
तोरणदारेसु तहा देवाणं तेसु होंति णगराणि । बहुभवणसंकुलाणि दु मणिकंचणरयणणिवहाणि ॥ १०२
उज्जाणभवणकाणणपोक्खरिणीवाविएहि रम्माणि । जिणभवणमंडियाणि य गोउरदाराणि णायव्वा ॥ १०३
मागधणामो दीवो वरतणुदीवो पभासदीवो य । तिण्णेदे वरदीवा कच्छाविजयस्स णायव्वा ॥ १०४
रत्तारत्तोदेहि य अंतरिदाओ हवंति ते दीवा । मणिकंचणरयणमया वरवेदीपरिउडा रम्मा ॥ १०५
वरतोरणेहिं जुत्ता णाणापासादसंकुला रम्मा । सीदाए णायव्वा तडेसु ते होंति वरदीवा ॥ १०६
णाणातरुवरणिवहा जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । पोक्खरिणिवाविपउरा सुरगणिसुरसंकुला रम्मा ॥ १०७
बहुअच्छरपरियरिया हवंति सव्वेसु तेसु सुरराया । मागधवरतणुणामा पभासणामेण बोद्धव्वा ॥ १०८

....

रक्तोदा नदियां नील पर्वतके मध्यसे निकल कर तोरणद्वारोंसे दक्षिणकी ओर जाकर निर्मल जलवाली चौदह हजार नदियोंसे संयुक्त होती हुईं तोरणद्वारोंसे सीता नदीके जलमें प्रवेश करती हैं ॥ ९७–९८ ॥ सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके समूह रूप वे तोरणद्वार उन्नत शिखरसे युक्त होकर एक पादसे कम चौरानबै (९३$\frac{3}{4}$) योजन ऊंचे हैं ॥ ९९ ॥ जिनेन्द्र भगवान्‌से उपदिष्ट उक्त तोरणद्वारोंका आयाम दो कोश अधिक बासठ योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १०० ॥ उक्त तोरणोंका विष्कम्भ आठ योजन प्रमाण जानना चाहिये। वे नदियां उनके देहलितलोंसे सीता नदीमें प्रवेश करती हैं ॥ १०१ ॥ उन तोरणद्वारोंके ऊपर बहुतसे भवनोंसे युक्त; मणि, सुवर्ण एवं रत्नसमूहसे सहित; उद्यान, भवन, वन, पुष्करिणी एवं वापियोंसे रमणीय; जिनभवनोंसे मण्डित, और गोपुरद्वारोंसे संयुक्त देवोंके नगर जानना चाहिये ॥ १०२-१०३ ॥ कच्छा विजयके मागध नामक द्वीप, वरतनु द्वीप और प्रभास द्वीप, ये तीन उत्तम द्वीप जानना चाहिये ॥ १०४ ॥ वे द्वीप रक्ता-रक्तोदासे अन्तरित; मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम रूप; उत्तम वेदियोंसे वेष्टित, रमणीय, उत्तम तोरणोंसे युक्त और नाना प्रासादोंसे व्याप्त होते हुए सीताके तटोंपर स्थित जानना चाहिये ॥ १०५–१०६ ॥ उक्त द्वीप श्रेष्ठ नाना वृक्षसमूहोंसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, अतिशय रमणीय, प्रचुर पुष्करिणी व वापियोंसे संयुक्त तथा देवाङ्गनाओंके स्वरोंसे व्याप्त होते हुए रमणीय हैं ॥ १०७ ॥ उन द्वीपोंमें बहुतसी अप्सराओंसे वेष्टित मागध, वरतनु और प्रभास नामक अधिपति देव

....

१ प ब विहुणाणि. २ प ब दाराण. ३ उ श कंचणमय, प ..., बप्रतौ त्रुटितोऽत्र पाठः । ४ उ श कोसाहियाण, बप्रतौ त्रुटितोऽत्र पाठः । ५ उ श जिणवरुद्दिट्ठा. ६ उ श विक्खंभो. ७ उ श अट्ठा. ८ प ब ता. ९ उ श दुल्माण. १० उ श कच्छ. ११ उ श वरातिल्या. १२ उ °तणुणाम, श °तणुणामु.

दो मेच्छाणं खंडा आरियखंडो य होंति बोद्धव्वा । सीदासमीवदेसो णिद्दिट्ठो कच्छविजयस्स ॥ १०९

णाहलपुलिंदबब्बरसबरकिरायाण सिंहलादीणं[1] । मेच्छाण सेसखंडा णिल्लीणा णीलवंतस्स ॥ ११०

खेमापुराहिवइया चक्कहरा सुरसहस्सपरिवारा । चउसट्ठिलक्खणहरा समचदुरसरीरसंठाणा ॥ १११

वरवज्जरिसहवइरयणारायणेअट्ठिबंधणसरीरा । संपुण्णचंदवयणा णीलुप्पलसुरहिणीसासा ॥ ११२

मत्तगयगमणलीला करिवरकरथोरदीहभुयदंडा । भाणु व्व तेयवंता सुरवइ इव भोगसंपण्णा ॥ ११३

कुसुमाउह व्व सुभगा धणवइ इव दाणविहवसारेण । सायर इव अक्खोहा धीरत्ते[4] तह य मेरु व्व[5] ॥११४

ते ते[6] महाणुभावा विजयं कुव्वंत वसुमइं[7] सयलं । दक्खिणमुहेण चलिया अमराणं उवरि सरिदीवे ॥११५

गंतूण दीवणियडं[10] करणं काऊण ठाणवइसाहं[11] । तह अप्फालइ धणुहं[12] जह अमरा संकिया जाया ॥११६

धीरेण[13] तेण मुक्का धणुबाणागहिमणेहि हत्थेहि[14] । पवरसरा संपत्ता सुराण असुराण[15] वरगेहं ॥ ११७

जानना चाहिये ॥ १०८ ॥ कक्षा विजयका जो प्रदेश सीता नदीके समीपमें है उसमें दो म्लेच्छखण्ड और एक आर्यखण्ड जानना चाहिये ॥ १०९ ॥ उक्त विजयका जो प्रदेश नील पर्वतकी ओर स्थित है उसमें शेष तीन खण्ड लाहल, पुलिन्द, बर्बर, शबर, किरात और सिंहल आदिक म्लेच्छोंके हैं ॥ ११० ॥ क्षेमापुरके अधिपति चक्रवर्ती हजारों देवोंके परिवारसे सहित, चौंसठ लक्षणोंके धारक, समचतुरस्रशरीरसंस्थानसे युक्त, वज्रवृषभनाराच रूप अस्थिबन्धन (संहनन) से युक्त शरीरवाले, सम्पूर्ण चन्द्रके समान मुखसे सहित, नीलोत्पलके सदृश सुगन्धित निश्वाससे संयुक्त, मत्त गजके समान लीलासे गमन करनेवाले, उत्तम हाथीके शुण्डादण्डके समान दीर्घ भुज-दण्डोंसे सहित, सूर्यके समान तेजस्वी, इन्द्रके समान भोगोंसे सम्पन्न, कामदेवके समान सुन्दर, दान-विभवकी श्रेष्ठतासे कुबेरके सदृश, समुद्रके समान गम्भीर तथा धीरतामें मेरुके समान होते हैं ॥ १११-११४ ॥ उक्त वे चक्रवर्ती महानुभाव समस्त पृथिवीको वशमें करनेके लिये दक्षिणकी ओर स्थित देवोंके नदी सम्बन्धी द्वीपोंमें जाते हैं ॥ ११५ ॥ द्वीपोंके निकट जाकर वे महानुभाव वैशाखस्थान आसनको करके धनुषको कान तक ऐसा खींचते हैं कि जिससे देव शंकित हो जाते हैं ॥ ११६ ॥ उस साहसी चक्रवर्ती द्वारा धनुष-बाण युक्त हाथोंसे छोड़े गये उत्तम बाण सुर-असुरोंके उत्कृष्ट गृहको प्राप्त होते हैं ॥ ११७ ॥ चक्रवर्तियोंके नामसे

---

१ प ब आयरि. २ प ब सिंघलादाणं ३ उ अइयरणारायण, श वरियरणायामेण. ४ प ब सुभरा. ५ उ विविह, प ब विहव, श विवह. ६ ब धारत्ते. ७ प ब मेरुव्वा. ८ प ब तो ते. ९ प ब मरिवइं. १० प ब दीवणिवडइं. ११ उ ठाणावइवइसाहं, प ठाणवहसाहं, ब बाणयइसाहं, श ठाणवइसाणं. १२ उ तह अप्फालयधणुहं जह, प ब तह फालइ धणवर, श तण अप्फालय धणुहं. १३ प ब वीरेण. १४ प-बप्रत्योर्नोपलभ्यते पदमेतत्. १५ प ब असुराण.

बारह जोयण गंतुं सरा[1] हु णिवडंति चक्कवट्टीणं । णामेण अमोघसरा[2] चक्कीणं णामसाहीणा ॥ ११८
अत्थाणम्मि य पडियं बाणं दट्ठूण सुरवरा खुहिया । मागधवरतणुणामा पभासदीवाहिवा सव्वे[3] ॥ ११९
णाऊण चक्कवट्टिं देवगणा विविहरयणवत्थेहिं । पूजंति पहिट्ठमणा पभासवरमागधादीया ॥ १२०
एवं काऊण वसं दक्खिणसुरखेयराण सव्वाणं । उत्तरसुराण उवरिं संचलिया उत्तरमुहेण ॥ १२१
वेदड्ढगिरीमूलं आवासेऊण सव्ववरसेण्णं । चक्काउहो[4] महप्पा अच्छइ दिव्वाणुभावेण ॥ १२२
सेणावई वि धीरो गहिऊणं रयणदंड पजलंतं । चडिऊण अस्सरयणं वेदड्ढसमीवमल्लियइ ॥ १२३
ढुक्कित्तु तिमिसदारं पहणइ दंडेण रयणणिवहेण । सुग्घडइ तं दुवारं रयणपहावेण हयमत्तो ॥ १२४
वेगेण पुणो गच्छइ सेणावइ चक्कवट्टिवरसेण्णं । सेणो वि ताम अच्छइ जाम गुहा सीयला होइ ॥ १२५
छम्मासेण वरगुहा सीयलभावं[5] उवेदि णादव्वा । अवसेससव्वकालं अग्गीओ अहियउण्हयरा[6] ॥ १२६
सेण्णं अणोरपारं पविसित्ता जाइ वरगुहामज्झे । पणुवीस जोयणाइं[7] गंतूणं तत्थ[8] वीसमइ[9] ॥ १२७

अंकित वे चक्रवर्तियोंके अमोघ नामक बाण बारह योजन जाकर नीचे गिरते हैं ॥ ११८ ॥ आस्थान (आंगन) में गिरे हुए बाणको देख कर मागध, वरतनु और प्रभास द्वीपोंके अधिपति सब देवगण क्षोभको प्राप्त होते हैं ॥ ११९ ॥ प्रभास, वरतनु और मागध आदिक देवगण चक्रवर्तीको जानकर हर्षितमन होते हुए विविध रत्नों और वस्त्रोंसे पूजते हैं ॥१२०॥ इस प्रकार दक्षिणके सब देवों व विद्याधरोंको वशमें करके उत्तरकी ओरसे उत्तरके देवोंके ऊपर आक्रमण करनेके लिये जाते हैं ॥१२१॥ चक्र रत्न रूप आयुधके धारक चक्रवर्ती महात्मा विजयार्ध पर्वतके मूलमें सब उत्तम सैन्यको ठहराकर दिव्य प्रभावसे स्थित रहते हैं ॥ १२२ ॥ धीर सेनापति भी जाज्वल्यमान दण्ड-रत्नको ग्रहण करके अश्व-रत्नपर आरूढ़ हो विजयार्ध पर्वतके समीप जाता है ॥ १२३ ॥ वह तिमिस्र गुफाके द्वारपर पहुंच कर रत्नोंके समूह रूप दण्ड-रत्नसे उसे ठोकर मारता है। ठोकर मात्रसे वह द्वार रत्नके प्रभावसे सहज ही खुल जाता है ॥१२४॥ तब सेनापति शीघ्र ही फिरसे चक्रवर्तीकी उत्तम सेनाके पास पहुंच जाता है। सेना भी जब तक गुफा शीतल होती है तब तक वहीं स्थित रहती है ॥ १२५ ॥ वह उत्तम गुफा छह मासमें शीतलताको प्राप्त होती है, शेष सब कालमें अग्निसे अधिक उष्ण रहती है ॥१२६॥ पश्चात् वह ओर छोर रहित अति विस्तीर्ण सेना उस उत्तम गुफाके मध्यमें प्रविष्ट होकर जाती है और पच्चीस योजन जाकर वहां रुक जाती है ॥ १२७ ॥ जहां उन्मग्नजला

---

१ उ श सस. २ उ श अमोघस्मा, ब अमोघमर. ३ प ब दीवोहिवा सव्वो. श दीवाहिवा सव्वो. ४ प ब चउक्कहो ५ प ब मावा श भवं. ६ उ श उण्हदो. ७ उ श जोयणाए. ८ प तत्थ, ब सत्थ. ९ श तत्थ वीसजोयणाएइ.

उम्मग्गणिमग्गजला[1] सरियाओ जत्थ होंति[2] णिद्दिट्ठा । तहि आवासइ सेण्णं परदो[3] ण तरिज्जदे[4] गंतुं ॥ १२८
वेगेण वहइ सरिया उभयतडे पूरिऊण सलिलेण । सेण्णो वि तह विसण्णो[5] अच्छइ चिंताउरो[6] लोओ ॥
ण वि को वि जाणइ णरो[7] गमणोवायं णदिस्स[8] परतीरं । मोत्तूण[9] चक्कवट्टी तक्खगरयणो य ते दोण्णि[10] ॥
वड्ढइरयणेण पुणो महंत जं तं तु[11] संकमं वद्धं । तेण वरसंकमेण य खंदावारो समुत्तरिदो[12] ॥ १३१
तत्तो दु संकमादो पणुवीसं[13] जोयणाणि गंतूणं । सेण्णं णीसरदि पुणो उत्तरवारेण दिव्वेण ॥ १३२
सेण्णं णीसरिदूणं आवासइ मेच्छखंडमज्झम्मि । मिच्छणरिंदा य[14] पुणो सणं दट्ठूण[15] संभंता ॥ १३३
कुलदेवदाण पासं[16] गंतूणं विण्णवेंति[17] ते मिच्छा । सेण्णस्स दु[18] आगमणं सोऊण य ते[19] वि परिकुविदा ॥
मेघमुहणामदेवो[20] आगंतूण करेदि[21] उवसग्गं । णाणाविहेहिं बहुसो वस्सादी[22] घोररूवेहिं ॥ १३५
णवि खुब्भइ[23] सो सेण्णो बहुविहउवसग्गएहिं जाएहिं । चक्कहरणरवरस्स दु सद्धम्ममहप्प[24]भावेण ॥ १३६

और निमग्नजला नदियां निर्दिष्ट की गई हैं वहां सेनाको ठहरा देते हैं, क्योंकि, इससे आगे जानेके लिये वह सैन्य समर्थ नहीं होता ॥ १२८ ॥ जलसे उभय तटोंको पूर्ण करके नदी वेगसे बहती है । ऐसी अवस्थामें सेना व सब जनसमुदाय खिन्न एवं चिन्तातुर होकर स्थित रह जाता है ॥ १२९ ॥ चक्रवर्ती और तक्षक रत्न, इन दोको छोड़कर कोई भी मनुष्य नदीके उस पार जानेके उपायको नहीं जानता ॥ १३० ॥ फिर बढ़ई रत्नके द्वारा जो वह विशाल पुल बांधा जाता है उस उत्कृष्ट पुलपरसे सब सेना पार हो जाती है ॥ १३१ ॥ उस पुलसे पच्चीस योजन जाकर वह सैन्य दिव्य उत्तर द्वारसे निकलता है ॥ १३२ ॥ सेना गुफासे निकल कर म्लेच्छखण्डके मध्यमें ठहरा दी जाती है । उस सेनाको देख कर म्लेच्छ राजा घबड़ा जाते हैं ॥ १३३ ॥ वे म्लेच्छ राजा कुलदेवताओंके पास जाकर विनती करते हैं । वे भी सैन्यके आगमनको सुनकर कोपको प्राप्त होते हैं ॥ १३४ ॥ मेघमुख नामक देव आकर नाना प्रकारके भयानक रूपोंसे वर्षा आदि रूप उपद्रव करता है ॥ १३५ ॥ परन्तु वह सेना पुरुषपुंगव चक्रवर्तीके धर्म-पुण्यके महान् प्रभावसे उन बहुत प्रकारके उत्पन्न हुए उपसर्गों द्वारा क्षोभको प्राप्त नहीं होती ॥ १३६ ॥ फिर भी वह मेघमुख

---

१ उ उम्मग्गणिम्मग्गजला, श उम्मग्गणिम्मल्लजला. २ प ब सरियाओ होंति. ३ ब परिदो. ४ उ तिरिज्जदे, प ···, ब तरिज्जए, श तिरिज्झदे. ५ उ सेण्णो विविहसण्णो, श सेण्णो विविहविसण्णो. ६ प ब चिंतावरो. ७ प कोवि जाइरो, ब को वि जाडमइरो. ८ उ तदिस्स, श तसिस्स. ९ प ब सोदूण १० उ श दोणि. ११ उ महत्तजतं तु, प ब महंतउजंतं तु, श महत्त जंतितु १२ उ श समुद्दिट्ठा. १३ प ब पणवीसा. १४ प ब मेच्छणरिंदाण. १५ उ चदूण, प दट्ठुण, ब दट्ठूणं श चदु. १६ प ब वासं. १७ उ श विणवंति. १८ उ सेणसरय, श सेणस्याम. १९ उ श से. २० उ श मेघमुहा णामदेवो, प ब मेघमुहा णमुदेवा. २१ उ श कीरिदि. २२ उ वाग्घादी, प ब वघादी, श वग्वादी. २३ उ श सुब्भइ. २४ प ब माहप्प.

पुणरवि विउव्विऊणं[1] अंजणगिरिसंणिभं महामेघं । वरिसइ सेणस्सुवरिं मुसलप्पमाणेहिं धारेहिं ॥ १३७

मेघावच्छण्णयणं विज्जुलयाविप्फुरंतरमणीयं । गज्जंतघोरसद्दं फुडियं इव अंबरं सयलं ॥ १३८

अंतररहियं वरिसइ दिणरयणी[2] सत्त सत्त परिमाणं । जायं सायरसरिसं गिरिवरबुड्डंतबहुसलिलं[3] ॥ १३९

सलिलम्मि तम्मि उवरिं तरंतवरचम्मरयणठियसेण्णं[4] । उवरिम्मिदाइवत्तं विसायपरिवज्जियं सव्वं ॥ १४०

विक्खंभायामेण य बारहजोयणपमाण णिद्दिट्ठं । चम्मरयणस्स संखा सिदाइवत्तस्स तह चेव[5] ॥ १४१

चम्मरयणो ण बुड्डइ[6] जलम्मि सेदादवत्तवररयणो । ण वि छिज्जइ ण वि भिज्जइ सहस्सदेवेहिं कयरक्खो[7] ॥ १४२

णाऊण य चक्कहरो देवेहि कओ त्ति घोरउवसग्गं । तह मुच्चइ वरबाणं जह देवा णिप्पभा जादा ॥ १४३

बलविक्कममाहप्पं दट्ठूणं ते सुरा य मिच्छा[8] य । आगंतूणं सव्वे णरिंदइंदस्स पणमंति ॥ १४४

कण्णारयणेहि तहा हत्थीअस्सादिएहिं[9] बहुएहिं[10] । कंचणमणिरयणेहि य णरिंदइंदं पपुज्जंति ॥ १४५

णाऊण सयमहप्पं चक्कहरो माणगव्विओ होइ । णवि को वि मज्झसरिसो पयावजुत्तो त्ति मण्णंतो[11] ॥ १४६

देव अंजनगिरि जैसे महामेघकी विक्रिया करके सेनाके ऊपर मूसलके बराबर मोटी धाराओंसे वर्षा करता है ॥ १३७ ॥ उस समय मेघोंसे आच्छादित, विद्युत् रूप लताके प्रकाशसे रमणीय और मेघगर्जनके भयानक शब्दसे संयुक्त समस्त आकाश मानो फट पड़ता है ॥ १३८ ॥ उक्त देव सात सात दिन-रात्रि प्रमाण निरन्तर वर्षा करता है, जिससे समुद्रके समान बड़े बड़े पर्वतोंको डुबानेवाला जल उत्पन्न हो जाता है ॥ १३९ ॥ उस जलके ऊपर तैरते हुए उत्तम चर्म-रत्नपर स्थित और धवल आतपत्र (छत्र-रत्न) को ऊपर किये हुए समस्त सेना विषादसे रहित होती है ॥ १४० ॥ चर्म-रत्नका विष्कम्भ व आयाम बारह योजन प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है । यही प्रमाण धवल आतपत्रके विष्कम्भ व आयामका भी है ॥ १४१ ॥ हजार देवोंसे रक्षित चर्म-रत्न और धवल आतपत्र-रत्न न जलमें डूबते हैं और न छेदे-भेदे भी जाते हैं ॥ १४२ ॥ देवोंसे किये गये घोर उपसर्गको जानकर चक्रवर्ती ऐसा उत्तम बाण छोड़ते हैं जिससे वे देव निष्प्रभ हो जाते हैं ॥ १४३ ॥ चक्रवर्तीके बल-विक्रमके माहात्म्यको देखकर वे सब देव और म्लेच्छ राजा आकर उसको प्रणाम करते हैं ॥ १४४ ॥ इसके अतिरिक्त ये बहुतसे कन्या-रत्नोंसे, हाथी व अश्वादिकोंसे तथा सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे चक्रवर्तीकी पूजा करते हैं ॥ १४५ ॥ मुझ जैसा प्रतापी दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा मानता हुआ अपने माहात्म्यको जानकर वह चक्रवर्ती मानसे गर्वको प्राप्त होता है

---

१ उ पुण्णरविओव्विण्णे, श पुण्णरवि विओव्विण्णं. २ प ब दिणरयणणी. ३ उ श बुड्डंतबहुसलिलं, प ब च्बुदुइंतवरखल्लिा. ४ उ चम्मरयणथियसेणं, प ब चमरयणट्ठियणेवं, श चम्मरयसरिसेणं. ५ प ब विसया. ६ श दिवादवत्तवररय चेव. ७ उ बुड्ड, प ब बुड्ड, श बुडदु. ८ प ब मिच्छो. ९ उ श आसादिएहिं, ब आसादिएहिं. १० उ बहुदेहिं, श बहुदेहं. ११ प ब पयाविजुत्तो ति मण्णतो.

माणेण तेण राया महंतगव्वेण गव्विदो संतो । चिंतेदि सयमहप्पकित्तिं ठावेमि गिरिसिहरे[1] ॥ १४७

दट्ठूण रिसभसेलं णाणाचक्कीण णामसंछण्णं[2] । चक्कहरो णरपवरो णिम्माणी तक्खणे[3] जाओ[4] ॥ १४८

लुहिऊण एक्कणामं अप्पणणामं[5] पि तत्थ लिहिऊण । साहित्ता तेखंडे तेणेव कमेण णीसरइ[7] ॥ १४९

णिग्गइ अवरेण णिवो पुव्वदुवारेण तह य णीसरइ । वेदड्ढस्स य[8] णेया संखेवेण य समुद्दिट्ठा ॥ १५०

छक्खंडकच्छविजयं साहित्ता सुरणरिंदसंजुत्तो । राया ससेणसहिओ खेमाणयरिं अणुप्पत्तो ॥ १५१

विजओ दु समुद्दिट्ठो[9] खेमाणयरस्स चक्कवट्टीणं । सव्वाण ताण णेया एसेव कमो समासेण ॥ १५२

वासवतिरीडचुंबियपयकमलजुगं महंतगुणजुत्तं । वरपउमणंदिणमियं सुवासुपुज्जं[10] जिणं वंदे ॥ १५३

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे महाविदेहाहियारे कच्छाविजयवण्णणो
णाम सत्तमो उद्देसो समत्तो ॥ ७ ॥

॥ १४६ ॥ चक्रवर्ती उस मानसे महान् गर्वको प्राप्त होकर अपने महात्म्यकी कीर्तिको ऋषभाचलके शिखरपर स्थापित करनेका विचार करता है ॥ १४७ ॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ चक्रवर्ती ऋषभ शैलको नाना चक्रवर्तियोंके नामोंसे व्याप्त देखकर तत्क्षण मानसे रहित हो जाता है ॥ १४८ ॥ उन अनेक नामोंमेंसे एक नामको मिटाकर और वहां अपना भी नाम लिखकर तीन म्लेच्छखण्डोंको वशमें करनेके पश्चात् चक्रवर्ती उसी क्रमसे बाहिर आता है ॥ १४९ ॥ चक्रवर्ती पश्चिम द्वारसे विजयार्ध पर्वतके भीतर प्रवेश करता है और पूर्व द्वारसे वापिस आता है, ऐसा संक्षेपसे निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये ॥ १५० ॥ छह खण्ड युक्त कच्छा विजयको जीत कर देवों व राजाओंसे संयुक्त चक्रवर्ती अपने सैन्य सहित क्षेमा नगरीको प्राप्त होता है ॥ १५१ ॥ यह क्षेमा नगरीके चक्रवर्तियोंकी विजयका वर्णन किया गया है । यही क्रम संक्षेपसे सब चक्रवर्तियोंके विजयका जानना चाहिये ॥ १५२ ॥ जिनका चरण-कमलयुगल इन्द्रके मुकुटसे चुम्बित है अर्थात् जिनके चरणोंमें इन्द्र मुकुटको रखकर नमस्कार करते हैं, जो महागुणोंसे युक्त हैं, और श्रेष्ठ पद्मनन्दिसे नमस्कृत हैं, उन वासुपूज्य जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूं ॥ १५३ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें महाविदेहाधिकारमें
कक्षा-विजय-वर्णन नामक सातवां उद्देश
समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

---

१ प ब ठावेसि गिरिसिहरो. २ प ब सछण्ण. ३ प ब मक्खणे. ४ उ प ब श जाउ. ५ प ब आयाणणामं. ६ उ सोहित्ता, श सोहित. ७ प ब कम्मेण णिस्सरइ. ८ प ब वेदड्ढसया. ९ उ श विजओ समुद्दिट्ठो, प ब विजउ सम्मुद्दिट्ठो. १० प ब सवासपुज्जं.

[अट्ठमो उद्देसो]

विमलजिणिंदं पणमिय विसुद्धवरणाणदंसणपईवं । पुव्वविदेहविभागं समासदो संपवक्खामि ॥ १
कच्छाणं पुव्वेणं गंतूणं तत्थ होइ वरसेलो । वणवेदिएहिं जुत्तो वरतोरणमंडिओ पवरो ॥ २
णामेण चित्तकूडो णाणापासादसंकुलो दिव्वो । चउकूडतुंगसिहरो जिणभवणविहूसिओ रम्मो ॥ ३
बहुदेवदेविपुण्णो अस्समुहाकार तस्स संठाणो । वरकंचणपरिणामो मणिरयणविहूसिओ परमरम्मो ॥ ४
दक्खिणदिसेण तुंगो तण्णामादेवरायसाहीणो । णाणातरुवरगहणो पोक्खरणितडायसंजुत्तो ॥ ५
तत्तो णगादु पुव्वे देसो बहुगामसंकुलो होइ । णामेण तह सुकच्छा कच्छासमसरिस णिद्दिट्ठो ॥ ६
छक्खंडमंडिओ सो णगरायरखेडपट्टणसमग्गो । दोणामुहेहि रम्मो रयणद्दीवेहि संपुण्णो ॥ ७
रत्तारत्तोदेहि य वेदड्ढणगेण मंडिओ पवरो। पोक्खरणिवाविपउरो उवसायरसद्दगंभीरो ॥ ८
वरसालिवप्पपउरो जवगोहुमउच्छुखेत्तसंपुण्णो । णाणादुमगणणिवहो वरपव्वदमंडिओ दिव्वो ॥ ९
तस्स विजयस्स मज्झे खेमपुरी णाम पट्टणो पवरो । खेमापुरविच्छारो बहुभवणविहूसिओ रम्मो ॥ १०

विशुद्ध व उत्तम ज्ञान-दर्शन रूप प्रदीपसे युक्त ऐसे विमल जिनेन्द्रको प्रणाम करके संक्षेपसे पूर्व विदेहके विभागका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ कच्छाके पूर्वमें जाकर वहां वनवेदियोंसे युक्त और उत्तम तोरणोंसे मण्डित श्रेष्ठ पर्वत है । यह चित्रकूट नामका पर्वत नाना प्रासादोंसे व्याप्त, दिव्य, चार कूटोंसे युक्त उन्नत शिखरवाला, जिनभवनसे विभूषित, रमणीय, बहुत देव-देवियोंसे परिपूर्ण, घोड़ेके मुख जैसे आकारवाला, उत्तम सुवर्णके परिणाम रूप, मणि व रत्नोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, दक्षिण दिशाकी ओर उन्नत, अपने समान नामवाले देवराजके स्वाधीन, नाना तरुवरोंसे गहन और पुष्करिणी व तालाबोंसे संयुक्त है ॥ २–५ ॥ उस पर्वतके पूर्वमें बहुत ग्रामोंसे व्याप्त सुकच्छा नामक देश है, जो कच्छाके सम-सदृश कहा गया है ॥ ६ ॥ वह दिव्य देश छह खण्डोंसे मण्डित; नगर, आकर, खेड़ों एवं पट्टनोंसे परिपूर्ण; द्रोणमुखोंसे रमणीय, रत्नद्वीपोंसे सम्पूर्ण, रक्ता-रक्तोदा नदियों व विजयार्ध पर्वतसे मण्डित, श्रेष्ठ, प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे सहित, उपसमुद्रके शब्दसे गम्भीर, उत्तम शालि धान्यके खेतोंकी प्रचुरतासे युक्त; जौ, गेहूं एवं ईखके खेतोंसे सम्पूर्ण, नाना वृक्षजातियोंके समूहसे संयुक्त और उत्तम पर्वतोंसे मण्डित है ॥ ७–९ ॥ सुकच्छा विजयके मध्यमें क्षेमपुरी नामकी श्रेष्ठ नगरी है । क्षेमापुरके समान विस्तारवाली यह रमणीय नगरी बहुत भवनोंसे विभूषित है

---

१ प ब जिणंदं. २ प ब विदेहभागं. ३ प ब पुव्वाणं. ४ उ श पासादा. ५ प ब संठाणं, श संठाणे. ६ उ श विहूसिओ रम्मो. ७ प ब गसो. ८ प ब सुकच्छो तह कच्छा. ९ उ श रयणदीविहि. १० उ श जवगोहूमउच्छ, प ब जावगेहुमउच्छ.

खेमपुररायधाणी बारहणवजोयणा समुद्दिट्ठा । आयामा विक्खंभा मणिमयपासादसंछण्णा ॥ ॥ ११
बारहसहस्स रत्था सहस्सवरगोउरा रयणचित्ता । तावइचउक्कणिवहा[1] तदद्धखडकी समुद्दिट्ठा ॥ १२
णंदणवणसंछण्णा जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । वप्पिणतलायवावीपोक्खरणिविराइया दिव्वा ॥ १३
णरणारिएहिं पुण्णा[2] विण्णाणवियक्खणेहिं सुभगेहि । मुणिगणणिवहेहि तहा दंसणणाणोवजुत्तेहि ॥ १४
पुव्वेण तदो गंतुं होइ णदी गहवइ त्ति णामेण । अट्ठावीससहस्सणदीहि परिवेढिया रम्मा ॥ १५
कंचणसोवाणजुदा[3] सुयंधसलिलेण पूरिया दिव्वा । णिज्झरझरंतसद्दा पवणाहयउम्मिरमणीया ॥ १६
वणवेदिएहि जुत्ता मणितोरणमंडिया मणभिरामा । दक्खिणमुहेण गंतुं सीयासलिलं पविसई सरिया ॥ १७
तत्तो पुव्वेण पुणो होइ महाकच्छ जणवओ रम्मो । धण्णड्ढगामणिवहो[4] णयररायरमंडिओ विउलो ॥ १८
रत्तारत्तोदेहि य वेदड्ढेण य कओ महासीमो । छक्खंडमंडिओ सो मडंबखेडायर[5]सिरीओ ॥ १९
बहुरयणदीवणिवहो [पट्टणदोणामुहेहि संछण्णो । उवजलणिहिसंजुत्तो कव्वडसंवाहसंपुण्णो ॥ २०[6]

....

॥ १० ॥ मणिमय प्रासादोंसे युक्त क्षेमपुरी राजधानीका आयाम व विष्कम्भ क्रमसे बारह और नौ योजन प्रमाण कहा गया है ॥ ११ ॥ इस राजधानीमें बारह हजार रथमार्ग, रत्नोंसे विचित्र एक हजार गोपुर, इतने ही चतुष्पथ और इससे आधीं अर्थात् पांच सौ खिड़कियां कही गई हैं ॥ १२ ॥ उक्त नगरी नन्दनवन जैसे वनोंसे व्याप्त, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय; वप्पिण, तालाब, वापी एवं पुष्करणियोंसे विराजित; दिव्य, विशेष ज्ञानवान् चतुर व सुन्दर नर-नारियोंसे परिपूर्ण, तथा दर्शन एवं ज्ञान रूप उपयोगोंसे युक्त ऐसे मुनिगणोंके समूहोंसे परिपूर्ण है ॥ १३-१४ ॥ उसके पूर्वमें जाकर अट्ठाईस हजार नदियों-से वेष्टित रमणीय ग्रहवती नामकी नदी है ॥ १५ ॥ सुवर्णमय सोपानोंसे युक्त, सुगन्धित जलसे पूरित, दिव्य, निर्झरोंके झर-झर शब्दसे संयुक्त, पवनसे ताड़ित तरंगोंसे रमणीय, वन-वेदियोंसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित और मनको अभिराम ऐसी वह नदी दक्षिणमुखसे जाकर सीता नदीके जलमें प्रवेश करती है ॥ १६-१७ ॥ सुकच्छाके पूर्वमें महाकच्छा नामका रमणीय देश है । वह धनाढ्य ग्रामसमूहोंसे सहित, नगरों व आकरोंसे मण्डित, विपुल, रक्ता व रक्तोदा नदियों एवं विजयार्ध पर्वतसे की गई महा सीमासे संयुक्त, छह खण्डोंसे मण्डित; मटंब, खेट एवं आकरोंसे शोभायमान, बहुतसे रत्नद्वीपोंके समूहसे सहित, पट्टन व द्रोणमुखोंसे व्याप्त, उपजलधिसे संयुक्त और कर्वट एवं संवाहोंसे सम्पूर्ण है ॥ १८-२० ॥ उस देशमें

....

१ उ श तावद्दु. २ श णरणारिएहिं जुत्तं पुण्णा. ३ उ श जुय. ४ उ श धणड्ढगामिण्णवहो, प बण्णड्ढगामणिवहो, ब धण्णड्ढणमणिवहो. ५ प ब मंडखेडायर, श मटंबखेडार. ६ कोष्ठकस्थोऽयं पाठः प-ब-प्रत्योर्नोपलभ्यते ।

तत्थ य अरिट्ठणगरी णव बारस वित्थडा हवे दीहा]। जोयणसंखुद्दिट्ठा मणिभवणसमाउला रम्मा ॥ २१
पंचसयखुल्लदारा तद्दुगुणा होंति गोउरदुवारा। तत्तियमेत्तचउक्का उव्वारसंगुणा रत्था ॥ २२
पुव्वेण तदो गंतुं णिद्धंतसुवण्णसंणिभो सेलो। णामेण पउमकूडो जिणभवणविहूसिओ होइ ॥ २३
वणवेदिएहिं जुत्तो वरतोरणमंडिओ मणभिरामो। चत्तारिकूडसहिओ तण्णामादेवसाहीणो ॥ २४
पोक्खरणिवाविपउरो बहुविहपासादसंकुलो रम्मो। णाणातरुवरणिवहो तुरंगकंठो व्व रमणीओ ॥ २५
गंतूण तदो पुव्वे होइ तहाँ कच्छकावदी देसो। संकिट्ठलद्धसीमो बहुगामसमाउलो मुदिदो ॥ २६
णाणाजणवदणिविडो अट्ठारसदेसभाससंजुत्तो। गयरहतुरंगणिवहो णरणारिसमाउलो रम्मो ॥ २७
वेदड्ढपव्वदेण य रत्तारत्तोदएहिं कयसीमो। णयरायरसंछण्णो छक्खंडणिविट्ठरमणीओ ॥ २८
तहिं होइ रायधाणी अरिट्ठपुरी णामदो समुद्दिट्ठा। पायारसंपरिउडा णाणापासादसंछण्णा ॥ २९
बारहजोयणदीहा णवजोयणवित्थडा मुणेयव्वा। बारहसहस्सरत्था सहस्सवरगोउरा तुंगा ॥ ३०
धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसियाँ परमरम्मा। पंचसयखुल्लदारा चउक्क तद्दुगुण णिद्दिट्ठा ॥ ३१

....

अरिष्ट नगरी है जो नौ योजन विस्तृत, बारह योजन दीर्घ, मणिमय भवनोंसे व्याप्त, रमणीय, पांच सौ क्षुद्र द्वारोंसे सहित, इससे दूने गोपुरद्वारोंसे संयुक्त, इतने ही अर्थात् एक हजार चतुष्पथोंसे युक्त, और उनसे बारहगुणे रथमार्गोंसे परिपूर्ण है ॥ २१–२२ ॥ उसके पूर्वमें जाकर खूब तपाये हुए सुवर्णके समान पद्मकूट नामका पर्वत है। यह पर्वत जिन-भवनसे विभूषित, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, चार कूटोंसे सहित उसके (अपने) नामवाले देवके स्वाधीन, पुष्करिणी व वापियोंकी प्रचुरतासे संयुक्त, बहुत प्रकारके प्रासादोंसे व्याप्त, रमणीय, नाना वृक्षोंके समूहसे युक्त और घोड़ेके कंठके समान होता हुआ रमणीय है ॥ २३–२५ ॥ उसके पूर्वमें जाकर कच्छकावती देश है। यह देश संक्लेशसे सीमाको प्राप्त हुए बहुत ग्रामोंसे व्याप्त, मुदित, नाना जनपदोंसे निबिड (सान्द्र) अठारह देशभाषाओंसे संयुक्त; गज, हाथी, रथ, एवं अश्वोंके समूहसे युक्त, नर-नारियोंसे परिपूर्ण, रम्य, वैताढ्य पर्वत और रक्ता-रक्तोदासे की गई सीमासे संयुक्त, नगरों व आकरोंसे व्याप्त और छह खण्डोंके निवेशसे रमणीय है ॥ २६–२८ ॥ उस देशमें अरिष्टपुरी नामकी राजधानी है। यह नगरी प्राकारसे वेष्टित, नाना प्रासादोंसे व्याप्त, बारह योजन दीर्घ, नौ योजन विस्तृत, बारह हजार रथमार्गोंसे सहित, उन्नत एक हजार उत्तम गोपुरोंसे संयुक्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, पांच सौ क्षुद्र द्वारोंसे सहित और इससे दूने अर्थात् एक हजार चतुष्पथोंसे संयुक्त कही गई है ॥ २९–३१ ॥

....

१ प ब तं बारस. २ उ श साहीओ. ३ प ब तदो. ४ उ श णिविओ, प ब णिवडो. ५ प ब वर. ६ श धुव्वंतधयवडावा अरिट्ठ. ७ उ श भवणविहूणविहूसिया.

तत्तो पुव्वेण तहा द्दहवइणामा णदी समुद्दिट्ठा । मणिमयसोवाणजुदा वणवेदिविहूसिया दिव्वा ॥ ३२
मणितोरणेहि जुत्ता अट्ठावीसासहस्सणदिसहिदा । सीयासलिलं पविसइ तोरणदारेण दिव्वेण ॥ ३३
पुव्वेण तदो गंतुं आवत्ता[1] णाम जणवदो होइ । धणधण्णरयणकलिदो णयरायरमंडिओ पवरो ॥ ३४
छण्णवइगामकोडीहिं भूसिओ गोउलेहि संछण्णो । रत्तारत्तोदेहि य वेदड्ढणगेण कयसीमो ॥ ३५
वरसालिवप्पपउरो फणसंवमऊहकयलिसंछण्णो[2] । पोक्खरणिवाविपउरो सग्गविमाणच्छविं हरइ[3] ॥ ३६
देसम्मि होइ णयरी खग्गा णामेण दसदिसक्खादा । बहुभवणसंपरिउडा सुरिंदणगरी व पच्चक्खा ॥ ३७
तित्थयरपरमदेवा गणहरदेवा तहेव चक्कधरा । बलदेववासुदेवा मंडलिया तत्थ साहीणा ॥ ३८
गंतूण तदो पुव्वे होइ तहा णलिणकूडगिरिपवरो । कंचणमओ विचित्तो चदुसिहरविहूसिओ रम्मो ॥ ३९
वणसंडेहि य रम्मो[4] वेगाउयवित्थरेहि रम्मेहि । वरतोरणेहिं जुत्तो मणिमयवेदीहि परियरिओ[5] ॥ ४०
चउकूडतुंगसिहरो वावीपोक्खरणिसंजुदो दिव्वो । तण्णामदेवसहिओ जिणभवणविहूसिओ परमो ॥ ४१

इसके पूर्वमें द्रहवती नामकी नदी कही गई है। यह नदी मणिमय सोपानोंसे युक्त, वन-वेदियोंसे विभूषित, दिव्य, मणिमय तोरणोंसे युक्त और अट्ठाईस हजार नदियोंसे सहित होती हुई दिव्य तोरणद्वारसे सीता नदीके जलमें प्रवेश करती है ॥ ३२-३३ ॥ उसके पूर्वमें जाकर आवर्ता नामका देश है। यह देश धन-धान्य व रत्नोंसे युक्त, नगरों व आकरोंसे मण्डित, श्रेष्ठ, छयानवै करोड़ ग्रामोंसे भूषित, गोकुलोंसे व्याप्त, रक्ता-रक्तोदा व वैताढ्य पर्वतसे की गई सीमासे संयुक्त, उत्तम शालि धान्यके प्रचुर खेतोंसे सहित; पनस, आम्र, महुआ एवं कदली वृक्षोंसे व्याप्त और पुष्करिणियों व वापियोंकी प्रचुरतासे युक्त होता हुआ स्वर्गविमानकी छविको फीका करता है ॥ ३४-३६ ॥ उस देशमें बहुतसे भवनोंसे वेष्टित और दशों दिशाओंमें प्रसिद्ध जो खड्गा नामकी नगरी है वह साक्षात् सुरेन्द्रनगरी (अमरावती) के समान है ॥ ३७ ॥ उस नगरीमें देवाधिदेव तीर्थंकर, गणधरदेव, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव तथा मण्डलीक राजा स्वतंत्रतापूर्वक रहते हैं ॥ ३८ ॥ उसके पूर्वमें जाकर नलिनकूट नामक उत्तम पर्वत है। यह सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत विचित्र, चार शिखरों (कूटों) से विभूषित, रम्य, दो कोश विस्तारवाले रम्य वनसमूहोंसे रमणीय, उत्तम तोरणोंसे युक्त, मणिमय वेदीसे वेष्टित, चार कूटोंसे युक्त उन्नत शिखरवाला, वापियों व पुष्करिणियोंसे संयुक्त, दिव्य, अपने नामवाले देवसे सहित और जिनभवनसे विभूषित है ॥ ३९-४१ ॥ उसकी पूर्व दिशामें

---

१ उ श आवत्तो. २ ब श फणसंचयदउइकलियसंछण्णो, प ब फणसंबहुक्यकदलिसंछण्णो. ३ रहइ. ४ उ वणसंडोहि य रम्मो, श वणसंडोहि य रम्मो. ५ उ श गवय. ६ प परियारिओ, ब परियरिय.
जं. दी. १८.

तत्तो इंददिसाए देसो णामेण मंगलावत्तो । विविहवरगामजुत्तो होइ महाजणवयाइण्णो[1] ॥ ४२

धणधण्णसंपरिउण्णो णयरायरमंडिओ मणभिरामो । पट्टणमडंबपउरो रयणदीवेहि[2] कयसोहो ॥ ४३

रत्ताणदिसंजुत्तो रत्तोदावाहिणीसमाजुत्तो । वेदड्ढणगिंदरिमज्झो[4] सोहइ सो[5] जणवदो[6] रम्मो ॥ ४४

सहस्सेहिं चउदसेहिं य णदीहि दुगुणाहि सुद्धकयसीमो[7] । काणणवणेहि दिव्वो वप्पिणवावीहि रमणीओ ॥ ४५

देसम्मि तम्मि णयरी[8] णामेण य तह य होइ मंजूसा । मणिकंचणघरणिवहा जिणभवणविहूसिया रम्मा ॥ ४६

तियतिगुणा विक्खंभा छद्दुगुणा जोयणा दु आयामा । कंचणपायारजुदा मणितोरणमंडिया दिव्वा ॥ ४७

पुव्वेण तदो गंतुं पंकवदी णामदो णदी होइ । वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ ४८

अट्ठावीसाहिं तहा सहस्सगुणिदाहि वेदिणिवहाहि । वरतोरणजुत्ताहि य खुल्लगसरियाहि[9] संजुत्ता ॥ ४९

एसा[10] विभंगसरिया णिस्सरिदूणं तहेव कुंडादो । सीदासलिलं पविसइ तोरणदारेण दिव्वेण ॥ ५०

सत्तासीदा जोयण सयं च बेकोससमदिरेगा[11] य । जाण विभंगणदीणं तोरणदाराण उच्छेहं ॥ ५१

मंगलावर्त नामक देश है । यह रम्य देश विविध प्रकारके उत्तम ग्रामोंसे युक्त, महा जनपदोंसे व्याप्त, धन-धान्यसे सहित, नगरों व आकरोंसे मण्डित, मनको अभिराम, पट्टन व मटंबोंकी प्रचुरतासे युक्त, रत्नद्वीपोंसे शोभायमान, रक्ता और रक्तोदा नदियोंसे संयुक्त तथा मध्यमें स्थित वैताढ्य पर्वतसे सहित होता हुआ शोभायमान है ॥ ४२–४४ ॥ उस देशमें दुगुणित चौदह अर्थात् अट्ठाईस हजार नदियोंसे शोभायमान, कानन व वनोंसे दिव्य और वप्रिण एवं वापियोंसे रमणीय है ॥ ४५ ॥ उस देशमें मंजूषा नामक नगरी है । यह नगरी मणि एवं सुवर्णमय गृहसमूहसे संयुक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, रम्य, त्रिगुणित तीन अर्थात् नौ योजन विष्कम्भवाली, दुगुणित छह अर्थात् बारह योजन आयत, सुवर्णमय प्राकारसे युक्त, दिव्य और मणिमय तोरणोंसे मण्डित है ॥ ४६–४७ ॥ उसके पूर्वमें जाकर पंकवती नामकी नदी है । यह नदी वनों व वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य और वेदियोंके समूहोंसे तथा उत्तम तोरणोंसे युक्त ऐसी अन्य अट्ठाईस हजार क्षुद्र नदियोंसे संयुक्त है ॥ ४८–४९ ॥ यह विभंगा नदी उसी प्रकार कुण्डसे निकलकर दिव्य तोरणद्वारसे सीतानदीके जलमें प्रवेश करती है ॥ ५० ॥ विभंगा नदियोंके तोरणोंका उत्सेध एक सौ सतासी योजन और दो कोश जानना चाहिये ॥ ५१ ॥ उक्त तोरणद्वारोंका आयाम

१ ब जणचयाइण्णो. २ प ब मंडव. ३ उ श दीवेहि. ४ उ प ब श मज्झे. ५ उ श ण. ६ प ब जिणवदो. ७ उ श सिद्धकयसिमो. ८ उ श देसम्मि णयरी..., ९ उ श सरिसाहि, प...,ब सरसाहिं. १० उ प ब श तोसा. ११ उ श बेकोसमिमिरेया.

पणुवीससमहिरेया[1] जोयणसय होइ तह य आयामं । जोयणविक्खंभेण य तोरणदाराण परिसंखा ॥ ५२
वरतोरणेसु णेया देवाणं तेसु होंति णगराणि । पासादसंकुलाणि य जिणभवणमयाणि सव्वाणि ॥ ५३
काणणवणजुत्ताणि य दीहियपोक्खरणिवाविपउराणि । सुरसुंदरिणिवहाणि य वणवेदीतोरणमयाणि ॥ ५४
पुव्वेण तदो गंतुं णामेण य पुक्खला समुद्दिट्ठा । [[2]देसो अणाइणिहणो छक्खंडविहूसिओ दिव्वो ॥ ५५
छण्णवदिकोडिएहिं गामेहिं समाउलो परमरम्मो ।] छव्वीससहस्सेहि य णगरेहि विहूसिओ पवरो ॥ ५६
खेडेहि मंडिओ सो सहस्स तह सोलसेहि दिव्वेहि । चउवीससहस्सेहि य कव्वडपवरेहि[3] संछण्णो ॥ ५७
चत्तारिसहस्सेहि य मडंबणिवहेहि मंडिओ दिव्वो । वरपट्टणेहि जुत्तो अडदालसहस्सगुणिदेहि[4] ॥ ५८
णवणवदिसहस्सेहि य बहुविहदोणामुहेहिं संजुत्तो । संवाहेहि य रम्मो[7] चउदसयसहस्सगुणिदेहि ॥ ५९
मागधवरतणुवेहि य पभासदीवेण[9] भूसिओ देसो । छप्पण्णासेहि तहा रयणादीवेहि[10] कयसोहो ॥ ६०
देसम्मि होइ णगरी णामेण य ओसधि त्ति विक्खाया । कंचणपासादजुदा जिणभवणविहूसिया रम्मा ॥ ६१
पायारसंपरिउदा वरतोरणमंडिया परमरम्मा । विरिथिण्णखादिजुत्ता वणसंडविहूसिया दिव्वा ॥ ६२

....

एक सौ पच्चीस योजन और विष्कम्भ एक योजन है ॥ ५२ ॥ उन उत्तम तोरणोंपर प्रासादोंसे व्याप्त देवोंके नगर हैं । सब नगर जिनभवनोंसे संयुक्त, कानन व वनोंसे युक्त; दीर्घिका, पुष्करिणी व वापियोंकी प्रचुरतासे सहित, सुरसुन्दरियोंके समूहोंसे परिपूर्ण और वन, वेदी एवं तोरणोंसे युक्त हैं ॥ ५३–५४ ॥ उसके पूर्वमें जाकर पुष्कला नामका देश कहा गया है । यह दिव्य देश अनादि-निधन, छह खण्डोंसे विभूषित, छ्यानवै करोड़ ग्रामोंसे व्याप्त, अतिशय रमणीय, छव्वीस हजार नगरोंसे विभूषित, श्रेष्ठ, सोलह हजार दिव्य खेड़ोंसे मण्डित, चौबीस हजार श्रेष्ठ कर्वटोंसे व्याप्त, चार हजार मटंबोंके समूहसे मण्डित, दिव्य, अड़तालीस हजार उत्तम पट्टनोंसे युक्त, निन्यानवै हजार बहुत प्रकारके द्रोणमुखोंसे संयुक्त, चौदह हजार संवाहोंसे रमणीय; मागध, वरतनु एवं प्रभास द्वीपोंसे भूषित, तथा छप्पन रत्नद्वीपोंसे शोभायमान है ॥ ५५–६० ॥ इस देशमें औषधि नामसे विख्यात नगरी है । यह सुवर्णमय प्रासादोंसे युक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, रम्य, प्राकारसे वेष्टित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, विस्तीर्ण खातिकासे युक्त, वनखण्डोंसे विभूषित, दिव्य, बहुतसे भव्य

....

१ उ श समसिरेया, ब समहिरेहिय. २ कोष्ठकस्थोऽयं पाठ उ-शप्रत्योर्नोपलभ्यते । ३ उ श पउरेहि. ४ प ब मंडल. ५ उ श मुणिदेहि. ६ प ब बहुहि ७ प ब संवाहणेहि रम्मो. ८ उ प ब श चउदससयसहस्स. ९ प ब वरसणएहि य पमासदेसेण. १० उ श छप्पण्णसएहि तहा रयणीदीवेहि. ११ उ श पासाद.

बहुभव्वजणसमिद्धा केवलणाणप्पदीवमुणिवसहा[1] । णाणामुणिगणपउरा धणधण्णसमिद्ध[3]कुलउण्णा ॥ ६३

गंतूण तदो पुव्वे होइ महापव्वदो मणभिरामो । णामेण एक्कसेलो कणयसिलाजालपरिणद्धो[4] ॥ ६४

वरकमलगब्भगउरो अस्समुहागारसंठिओ रम्मो । सीदातडम्मि तुंगो णीलसमीवे हवे हीणो ॥ ६५

वणसंडसंपरिउडो मणिमयवरवेदिएहिं संजुत्तो । चदुकूडतुंगसिहरो जिणभवणविहूसिओ रम्मो ॥ ६६

वरतोरणसंछण्णो णाणापासादसंकुलो दिव्वो । तण्णामदेवसहिओ सुगंधगंधुद्धुरो[6] पवरो ॥ ६७

पुव्वेण तदो गंतुं होइ महापुक्खलावदी विजओ । छब्भागेहि विभत्तो पव्वदसरियाहि संजुत्तो ॥ ६८

गामाणुगामणिचिओ[7] पट्टणदोणामुहेहि संछण्णो । कव्वडमडंबसहिओ रयणायरमंडिओ दिव्वो ॥ ६९

रत्तारत्तोदेहि य वेदड्ढणगेण मंडिओ दिव्वो । वप्पिणतलायणिवहो णाणाविहधम्मधणणिचिओ[8] ॥ ७०

पुंड्डुच्छुसालिपउरो गोहुमजवमुग्गमाससंछण्णो[11] । अयसितिलमसुरणिवहो जीरयजूवेहि रमणीओ ॥ ७१

देसस्स तिलयभूदा णामेण य पुंडरीगिणी णयरी । बहुभव्वपुंडरीया[12] जत्थ मणुस्सा परिवसंति ॥ ७२

जनोंसे समृद्ध, केवलज्ञान रूप दीपकसे युक्त ऐसे श्रेष्ठ मुनियोंसे परिपूर्ण, नाना मुनिगणोंकी प्रचुरतासे सहित, और धन-धान्यसमृद्ध कुलोंसे पूर्ण है ॥ ६१–६३ ॥ उसके पूर्वमें जाकर मनोहर एकशैल नामका महा पर्वत है । यह पर्वत सुवर्णशिलाओंके समूहसे वेष्टित, उत्तम कमलगर्भके समान गौर, घोड़ेके मुखके आकारसे स्थित, रमणीय, सीता नदीके तटपर उन्नत, नील पर्वतके समीपमें हीन, वनखण्डोंसे वेष्टित, मणिमय उत्तम वेदियोंसे संयुक्त, चार कूटोंसे युक्त उन्नत शिखरवाला, जिनभवनसे विभूषित, रम्य, उत्तम तोरणोंसे व्याप्त, नाना प्रासादोंसे वेष्टित, दिव्य, अपने जैसे नामवाले देवसे सहित, श्रेष्ठ और सुगन्धित गन्धसे व्याप्त है ॥ ६४–६७ ॥ उसके पूर्वमें जाकर महा पुष्कलावती देश है । यह देश छह भागोंसे विभक्त, पर्वत व नदियोंसे संयुक्त, ग्रामों व अनुग्रामोंसे परिपूर्ण, पट्टनों व द्रोणमुखोंसे व्याप्त, कर्वटों व मटंबोंसे सहित, रत्नाकरोंसे मण्डित, दिव्य, रक्ता-रक्तोदा नदियों एवं वैताढ्य पर्वतसे मण्डित, दिव्य, वप्रिण व तालाबोंके समूहसे परिपूर्ण, नाना प्रकार गुण संयुक्त धनसे सहित; पुंड्र (पौंडा) ईख व शालि धानकी प्रचुरतासे सहित; गेहूं, जौ, मूंग व उड़दसे व्याप्त; अलसी, तिल व मसूरके समूहसे संयुक्त और जीराके जूटोंसे रमणीय है ॥ ६८–७१ ॥ इस देशकी तिलकभूत पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है, जहां बहुतसे श्रेष्ठ भव्य जन निवास

१ प ब समिधा कवलणाण. २ उ श मुणिणिवहा. ३ उ श सविद्ध. ४ उ श जाणपरिणद्धो, प ब जार्कपरिणद्धा. ५ उ श बहु. ६ उ श सुगंधगंधदुधुरो. प ब सुगंधुद्धदो. ७ उ श गामाणुगामिणिचिओ. ८ उ धणधणनिचिओ, प ब धम्मधणाणिविदो, श मणधण्णनिचिओ. ९ उ श पंड्डच्छु. प ब पुंडच्छु. १० उ श गोद्धुव. ११ ब मासंछण्णो, श सोससंछण्णो. ११ प ब जीरहि. १२ उ प ब श बहुभवपुंडरिया.

कंचणपायाररजुदा मणिमयवरतोरणेहिं रमणीया । जलउण्णखादिजुत्ता वणसंडविराइया दिव्वा ॥ ७३
वज्जिंदणीलमरगयकक्केयणपउमरायघरणिवहा । कालागरुगंधड्ढा जिणभवणविहूसिया रम्मा ॥ ७४
तत्तो पुव्वदिसाए कणयमया वेदिया हवे णेया । वेगाउयउव्विद्धा पंचेव धणुस्सया विउला ॥ ७५
वरपउमरायमरगयणाणाविहरयणजालकिरणोहा । वज्जमयरयणमूला कोदंडसहस्सअवगाहा ॥ ७६
पुव्वेण होइ तत्तो देवारण्णं समुद्दतीरम्मि । णाणातरुवरगहणं बहुभवणसमाउलं परमं । ७७
पुण्णायणायपउरं सुरतरुसत्तच्छदेहिं संछण्णं । चंपयअसोयकप्पूरबउलमंदारतरुणिवहं ॥ ७८
तत्थ दु देवारण्णे पासादा होंति रयणपरिणामा । वरवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ ७९
पोक्खरणिवाविपउरा कीडासाला सभाघरा पवरा । उववादभवणरम्मा सोहणसाला विसाला य ॥ ८०
लंबंतकुसुममाला जिणभवणविहूसिया रम्मा । कालागरुगंधड्ढा बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ ८१
चदुसु वि दिसाविभागे रयणमया विप्फुरंतमणिकिरणा । पासादा णायव्वा देवाणं आदरक्खाणं ॥ ८२

करते हैं ॥ ७२ ॥ यह रमणीय नगरी सुवर्णमय प्राकारसे युक्त, मणिमय उत्तम तोरणोंसे रमणीय, जलपूर्ण खातिकासे युक्त, वनखण्डोंसे विराजित, दिव्य; वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन एवं पद्मराग मणिमय गृहसमूहसे युक्त; कालागरुकी गन्धसे व्याप्त और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ ७३–७४ ॥ उससे पूर्वकी ओर स्थित सुवर्णमय वेदिका जानना चाहिये । यह वेदिका दो कोश ऊंची, पांच सौ धनुष विस्तृत; उत्तम पद्मराग एवं मरकत आदि नाना प्रकारके रत्नजालके किरणसमूहसे संयुक्त, वज्र रत्नमय मूलभागसे सहित, तथा एक हजार धनुष प्रमाण अवगाहसे युक्त है ॥ ७५–७६ ॥ उसके पूर्वमें समुद्रके तीरपर देवारण्य नामका वन है । यह वन उत्तम नाना वृक्षोंसे गहन, बहुत भवनोंसे व्याप्त, श्रेष्ठ, पुन्नाग व नाग वृक्षोंकी प्रचुरतासे युक्त, कल्पवृक्ष व सप्तच्छद वृक्षोंसे व्याप्त; तथा चम्पक, अशोक, कर्पूर, बकुल, एवं मन्दार वृक्षोंके समूहसे संयुक्त है ॥ ७७–७८ ॥ उस देवारण्यमें रत्नोंके परिणाम रूप जो प्रासाद हैं वे उत्तम वेदियोंसे युक्त, श्रेष्ठ तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, पुष्करिणियों व वापियोंकी प्रचुरतासे संयुक्त, श्रेष्ठ, क्रीडाशालाओं और सभागृहोंसे सहित, उपपादभवनोंसे रमणीय, विशाल, शोभनशालाओं (मैथुनशालाओं ?) से परिपूर्ण, लटकती हुई कुसुममालाओंसे युक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, रम्य, कालागरुकी गन्धसे व्याप्त और बहुत कुसमोंसे की गई सजावट सहित हैं ॥ ७९–८१ ॥ इनमें प्रकाशमान मणिकिरणोंसे सहित आत्मरक्ष देवोंके रत्नमय प्रासाद चारों ही दिशाओंमें स्थित जानना चाहिये ॥ ८२ ॥ दक्षिण दिशामें तीन

---

१ उ श पयार. २ उ श णया, प ब णेय. ३ उ श मज्ज. ४ प ब विउल. ५ उ मायंदतरुनिवहं, श मायंतदरु निवयं. ६ प ब देवरण्णे. ७ उ श पउरा. ८ उ श कयव्वण. ९ उ श दिसामिमागे, प ब दिसाइ भागे.

दक्खिणदिसेण णेया तिण्हं परिसाण तह य पासादा । पच्छिमदिसाविभागे[1] सत्ताणीयाण पुण होंति ॥ ८३

किब्बिसदेवाण तहा होंति पुणो विविहरयणपासादा । अभिजोगसुराण तहा पासादा तत्थ णायव्वा ॥ ८४

सम्मोहसुराण तहा देवारण्णम्मि होंति पासादा । कंदप्पाण सुराणं पासादा होंति तत्थेव ॥ ८५

तत्तो दु दक्खिणदिसे गंतूणं होदि विविहतरुगहणं । अवरं देवारण्णं सीदाए दक्खिणतडम्मि ॥ ८६

तं बउलतिलयणिवहं पुण्णायणाये[3]पादवसणाहं । लवलीलवंगपउरं तमालदलसंकुलं रम्मं[4] ॥ ८७

णारंगपणसे[5]णिवहं कयलीदुमणालिएरसंछण्णं । तंबूलवल्लिगहणं अइमुत्तलयाउलसिरीयं ॥ ८८

तम्मि वणे णायव्वा णयराणि हवंति सयसहस्साणि । देवाणं णिद्दिट्ठा कंचणमणिरयण[7]णिवहाणि ॥ ८९

पायार[8]परिउडाणि य गोउरणिवहाणि होंति सव्वाणं[9] । कंचणरयणमयाणि य णाणापासादपंतीणं[10] ॥ ९०

णगरेसु तेसु णेया रायाणं[11] होंति सव्वाणं[12] । वर सत्त सत्त कच्छा सत्ताणीयाहि संजुत्ता ॥ ९१

भाणु[13]ससिजदुपसिद्धा तिण्णि य परिसा हवंति णायव्वा । अब्भंतरमज्झिमबाहिरा दु कमसो मुणेयव्वा ॥ ९२

तिण्णि[14]परिसेहि सहिया तह य महादेविचदुहि संजुत्ता । अच्छरकोडीहि तहा पदादिणिवहेहि थुव्वंता ॥ ९३

पारिषद देवोंके तथा पश्चिम दिशाविभागमें सात अनीक देवोंके प्रासाद जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ वहां किल्बिष तथा आभियोग्य जातिके देवोंके विविध रत्नमय प्रासाद हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८४ ॥ वहां देवारण्यमें सम्मोह सुरोंके भी प्रासाद हैं । कन्दर्प सुरोंके प्रासाद वहां ही हैं ॥ ८५ ॥ उससे दक्षिणकी ओर जाकर सीता नदीके दक्षिण तटपर विविध वृक्षोंसे गहन दूसरा देवारण्य है ॥ ८६ ॥ यह वन बकुल व तिलक वृक्षोंके समूहसे युक्त, पुन्नाग व नाग वृक्षोंसे सनाथ, लवली व लवंग वृक्षोंकी प्रचुरतासे सहित, तमालपत्रोंसे व्याप्त, रम्य, नारंग व पनस वृक्षोंके समूहसे संयुक्त, केला व नारियलके वृक्षोंसे व्याप्त, ताम्बूलकी वेलोंसे गहन और अतिमुक्त लताओंकी अतुल शोभासे युक्त है ॥ ८७-८८ ॥ उस वनमें देवोंके सुवर्ण एवं रत्नसमूहसे निर्मित लाखों नगर निर्दिष्ट किये गये हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८९ ॥ बहुविध प्रासादोंकी सभी पंक्तियोंके गोपुर-समूह प्राकारोंसे वेष्टित तथा सुवर्ण और रत्नोंसे निर्मित हैं ॥ ९० ॥ उन नगरोंमें सब देवराजोंके सात अनीकोंसे संयुक्त सात सात कक्षायें हैं ॥ ९१ ॥ भानु, शशि एवं जतु नामसे प्रसिद्ध क्रमशः अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य, ये तीन परिषद् जानना चाहिये ॥ ९२ ॥ तीन परिषदोंसे सहित, चार महा देवियोंसे संयुक्त, करोड़ों अप्सराओंसे सहित, पदातिसमूहोंसे स्तुत, सामानिकों

---

१ उ श दिसाभिभागे. २ उ श खिब्भिस, प ब किब्भिस. ३ प ब पुण्णायाणाय. ४ प ब रम्मा. ५ प ब पाणस. ६ प ब तालएव. ७ उ मयरयण, श मयेरयण. ८ उ श पयार. ९ प ब सव्वाणि. १० ब श पंतीणा. ११ ब श रायणे. १२ ब श होंति देवसव्वाणं. १३ प ब णाए. १४ ब श तिण.

सामाणिएहिं सहिया देवा तह आदरक्खणिवहेहिं । गणणातीदेहिं तहा अवसेससुरेहिं संजुत्ता ॥ ९४
सिंहासणमज्झगया सियचामरधुव्वमाणवरदेहा । सेदादवत्तणिवहा णाणाविहकेदुकयचिण्हा ॥ ९५
पज्जलंतमहामउडा[1] णिम्मलमणिरयणकुंडलाभरणा । हारविराइयवच्छा केयूरविहूसियाबाहू[४] ॥ ९६
कडिसुत्तकडयकंठा[५] तुडियंगदवत्थभूसियसरीरा । वरपंचवण्णदेहा णीलुप्पलसुरहिणीसासा ॥ ९७
सम्मदंसणसुद्धा जिणवरमुणिवंदणुज्जया धीरा । पुण्णेण समुप्पण्णा देवारण्णम्मि वरदेवा ॥ ९८
देवारण्णम्मि तहा जिणिंदइंदाण होंति भवणाणि । कंचणरयणमयाणि य अणाइणिहणाणि बहुयाणि ॥ ९९
तत्तो देववणादो विजया वक्खारपव्वदादीया । ताव गया णायव्वा जाव दु अवरोवहीअंतं ॥ १००
तत्तो[७] वरम्मि भागे होइ[८] समुत्तुंगवेदिया दिव्वा । पंचधणुस्सयविउला चत्तारिसहस्सउच्छेहा ॥ १०१
णाणामणिगणणिवहा विबुद्धवरकमलगब्भसंकासा । वज्जमया णिद्दिट्ठा सहस्सधणुधरणिअवगाहा ॥ १०२
गंतूण तदो अवरे वच्छा णामेण जणवदो होइ । सज्जणजणेहि भरिओ बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ १०३

तथा आत्मरक्ष देवोंके समूहोंसे सहित, इनके अतिरिक्त शेष असंख्यात देवोंसे संयुक्त, सिंहासनके मध्यमें स्थित, धवल चामरोंसे वीज्यमान उत्तम देहसे संयुक्त, धवल आतपत्रसमूहसे युक्त, नाना प्रकारके केतुओं द्वारा किये गये चिह्नोंसे संयुक्त, चमकते हुए महा मुकुटसे शोभायमान, निर्मल मणिमय रत्नकुण्डलोंसे अलंकृत, हारसे विराजमान वक्षस्थलवाले, केयूरोंसे विभूषित बाहुओंसे सहित, कटिसूत्र, कटक, कंठा, त्रुटित (हाथका एक आभूषणविशेष), अंगद रूप आभरणों एवं वस्त्रोंसे भूषित शरीरवाले, उत्तम पांच वर्णोंसे युक्त देहके धारक, नीलोत्पलके समान सुगन्धित निश्वाससे युक्त, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध, जिनेन्द्र व मुनियोंकी वन्दनामें उद्यत, तथा धीर ऐसे उत्तम देव पुण्यके प्रभावसे उस देवारण्यमें उत्पन्न होते हैं ॥९३–९८॥ देवारण्यमें सुवर्ण एवं रत्नमय अनादि-निधन बहुतसे जिनेन्द्रभवन हैं ॥ ९९ ॥ इस देववनसे आगे विजय और वक्षार पर्वत आदिक तब तक जानना चाहिये जब तक अपर समुद्रका अन्त नहीं आता है ॥ १०० ॥ उससे आगेके भागमें पांच सौ धनुष विस्तृत और चार हजार धनुष ऊंची उन्नत दिव्य वेदिका है ॥ १०१ ॥ नाना मणिगणोंके समूहसे सहित, विकसित उत्तम कमलके गर्भके सदृश और वज्रमय उस वेदिका अवगाह पृथिवीमें एक हजार धनुष प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥१०२॥ उसके पश्चिममें जाकर वत्सा नामक देश है । यह देश सज्जन जनोंसे परिपूर्ण, बहुत ग्रामोंसे युक्त, रम्य, धन-धान्य एवं रत्नोंके समूहसे सहित, संगीत व मृदंगके शब्द-निर्घोष-

१ उ श सामाणियाहि. २ श मउला. ३ श णिम्मलरयण. ४ श विहूसिया रम्मा. ५ प ब कंठा. ६ प ब तुडियंमंदवत्थतूसिय. ७ उ श एत्तो. ८ प ब भागो होइ.

जत्थ[1] य गंगा पवहइ वणवेदीतोरणेहिं कयसोहा । सिंधुणदिएण सहिया सो देसो मणहरो होइ ॥ १२४

जत्थ दु वेदड्ढणगो णवकूडविहूसिओ समुत्तुंगो[2] । पुव्वावरेण दीहो अच्छइ सो मणहरो देसो ॥ १२५

तस्स[3] देसस्स णेया अवराजिदणामदो दु वरणयरी । कंचणपायारजुदा[4] वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १२६

उत्तुंगभवणणिवहा जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । उववणकाणणसहिया वावीपोक्खरणिरमणीया ॥ १२७

अवराजिदणगरादो गंतूणं होइ पच्छिमदिसाए । वेसमणणामकूडो वक्खारापव्वदो तुंगो ॥ १२८

वणवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ मणभिरामो । कणयमओ रमणीओ जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ १२९

देवाण भवणणिवहो[5] बहुविहवरदेवदेविसंछण्णो । णाणादुमगणगहणो सरवरवावीहिं कयसोहो ॥ १३०

वेसमणणामदेवो सुराण राया तहिं[6] समुद्दिट्ठो । वरअच्छरमज्झगदो अच्छइ दिव्वाणुभावेण ॥ १३१

अवरेण तदो गंतुं होइ तहा वच्छकावदीविजओ । सग्ग इव सोक्खसारो सायर इव सो रयणसंछण्णो ॥ १३२

गंगासिंधूहि जुदो वेदड्ढणगेण तह य रमणीओ । बहुपट्टणसंपण्णो बहुगामसमाउलो दिव्वो ॥ १३३

कव्वडमडंबणिवहो[7] दोणामुहरयणदीवसंछण्णो । संवाहसंपउत्तो णयरायरपरिउडो रम्मो ॥ १३४

शोभायमान गंगा नदी बहती है वह देश मनोहर है ॥ १२४ ॥ जहां पर नौ कूटोंसे विभूषित, उन्नत और पूर्व-पश्चिम दीर्घ वैताढ्य पर्वत स्थित है वह देश मनोहर है ॥ १२५ ॥ उस देशकी राजधानी अपराजिता नामकी उत्तम नगरी जानना चाहिये । यह नगरी सुवर्णमय प्राकारसे सहित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, उन्नत भवनोंके समूहसे संयुक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, उपवन-काननोंसे सहित तथा वापियों व पुष्करिणियोंसे रमणीय है ॥ १२६-१२७ ॥ अपराजित नगरसे पश्चिमकी ओर जाकर वैश्रवणकूट नामक उन्नत वक्षार पर्वत है । यह पर्वत वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, सुवर्णमय, रमणीय, जिनभवनसे विभूषित, दिव्य, देवोंके भवनसमूहसे संयुक्त, बहुत प्रकारके उत्तम देव-देवियोंसे व्याप्त, नाना वृक्षसमूहोंसे गहन और सरोवरों एवं वापियोंसे शोभायमान है ॥ १२८-१३० ॥ उस पर्वतपर सुरोंका राजा वैश्रवण नामक देव कहा गया है । वह उत्तम अप्सराओंके मध्यमें स्थित होकर दिव्य प्रभावसे रहता है ॥ १३१ ॥ उसके पश्चिममें जाकर वत्सकावती देश है । वह रमणीय देश स्वर्गके समान सुखकी प्रकर्षतासे युक्त, समुद्रके समान रत्नोंसे व्याप्त, गंगा-सिन्धु नदियोंसे युक्त, वैताढ्य पर्वतसे रमणीय, बहुतसे पट्टनोंसे सम्पन्न, बहुत ग्रामोंसे व्याप्त, दिव्य, कर्वटों व मटंबोंके समूहसे युक्त, द्रोणमुखों व रत्नद्वीपोंसे व्याप्त, संवाहोंसे संयुक्त, रम्य तथा नगरों व आकरोंसे वेष्टित है

---

१ उ प ब श तत्थ. २ प ब समतुंगो. ३ उ श तत्थ. ४ प ब पयार. ५ ब उवग. ६ प गणणिवहो, ब गरणिवहो. ७ प ब रया तहि. ८ प ब कव्वडमंडणिवहो.

देसस्स तस्स णेया णामेण पभंकरा हव णगरी । पायारगोउरजुदा मणितोरणमंडिया दिव्वा ॥ १३५

मरगयपासादजुदा विद्दुमवरपउमरायघराणिवहा । फलिहमणिभवणपउरा कंचणपासादसंजुत्ता ॥ १३६

धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । उववणकाणणसहिया वरपोक्खरणीहिं रमणीया ॥ १३७

तत्तो अवरदिसाए[1] मत्तजला णामदो णदी होइ । वरवेदिएहि जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १३८

सत्तसहस्सणदीहि य चउरब्भत्थेहि[2] वह य संजुत्ता । कुंडादो णिस्सरिदुं सीदासलिलं पविसइ सरिया ॥

तत्तो अवरदिसाए रम्मा णामेण जणवदो होइ । बहुविहजणसंपण्णो[4] रम्मो[5] सो सव्वलोयाणं ॥ १४०

रमणीयकव्वडजुदो रमणीयमडंवखेडसंपुण्णो[6] । रमणीयखेत्तणिवहो रमणीयणदीहिं संपण्णो[7] ॥ १४१

रमणीयगामपउरो रमणीयमहंतपट्टणाइण्णो । रमणीयणगरणिवहो रम्मा[8] सो तेण[9] गुणणामो ॥ ॥ १४२

देसस्स मज्झभागे गंगा तह सिंधु णाम सरियाओ । चउदसणदीहि सहिया सहस्सगुणिदाहि दीसंति[10] ॥ १४३

वेदड्ढगिरी वि[11] तहा दीसइ देसस्स मज्झभागम्मि । दसअहियसएहिं तहा णगरेहि विहूसिओ तुंगो ॥ १४४

॥ १३२-१३४ ॥ उस देशकी राजधानी प्रभंकरा नामक नगरी है । यह नगरी प्राकार व गोपुरोंसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, मरकतमणिमय प्रासादोंसे युक्त, मूंगा व उत्तम पद्मरागसे निर्मित गृहसमूहसे सहित, स्फटिकमणिमय भवनोंकी प्रचुरतासे युक्त, सुवर्ण-मय प्रासादोंसे संयुक्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित, जिनभवनोंसे विभूषित, अति-शय रमणीय, उपवन-काननोंसे सहित, तथा उत्तम पुष्करिणियोंसे रमणीय है ॥१३५-१३७॥ उससे पश्चिमकी ओर मत्तजला नामकी नदी है । यह नदी उत्तम वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य और चारसे गुणित सात, अर्थात् अट्ठाईस हजार नदियोंसे संयुक्त होती हुई कुण्डसे निकलकर सीता नदीके जलमें प्रवेश करती है ॥ १३८-१३९ ॥ उससे पश्चिमकी ओर रम्या नामक देश है । वह देश बहुत प्रकारके जनोंसे सम्पन्न, सब लोगोंके मनको हरनेवाला, रमणीय कर्वटोंसे युक्त, रमणीय मटंबों व खेडोंसे परिपूर्ण, रमणीय खेतोंके समूहसे सहित, रमणीय नदियोंसे सम्पन्न, रमणीय प्रचुर ग्रामोंसे संयुक्त, रमणीय महा पट्टनोंसे व्याप्त और रमणीय नगरसमूहसे युक्त है । इसी कारण वह 'रम्या' इस सार्थक नामसे संयुक्त है ॥ १४०-१४२ ॥ उस देशके मध्य भागमें गंगा तथा सिन्धु नामक नदियां चौदह हजार नदियोंसे सहित दिखती हैं ॥ १४३ ॥ तथा उक्त देशके मध्य भागमें एक सौ दश नगरोंसे विभूषित उन्नत वैताढ्य पर्वत भी दिखता है ॥ १४४ ॥ उस देशकी

---

१ प अवरिंदसाण, ब अवरिंदसाए. २ उ श चउरुब्भच्छेहि, प चमरवछेहि, ब चउरत्तछेहि. ३ प ..., ब सदा, श साया. ४ उ श संपुण्णो. ५ प ब रम्मे. ६ प ब संपण्णो. ७ प ब संछण्णो. ८ उ श रम्मो. ९ प ब घेण. १० उ श °गुणिदहि दसंति. ११ उ श व.

धणधण्णरयणणिवहो संगीयमुयंगसद्दणिग्घोसो[1] । णिच्चुच्छवेहि[2] जुत्तो सुरिंदलोगोवमो दिव्वो ॥ १०४
गंगासिंधूहि तहा वेदड्ढणगेहि मंडिओ पवरो । पोक्खरणिवाविपउरो णाणादुमसंकुलो दिव्वो ॥ १०५
छब्भेदभागभिण्णो अज्जपुलिंदाण खंडसंजुत्तो[3] । बहुणयर[4]खेडणिवहो पट्टणदोणामुह[5]समग्गो ॥ १०६
विजयम्मि तम्मि मज्झे होदि सुसीमा[6] त्ति णामदो णयरी । वरवेदिएहिं जुत्ता मणितोरणमंडिया दिव्वा ॥
पप्फुल्लकमलकुवलयणीलुप्पलसुरहिकुसुमरिद्धीहि । पयरंतमच्छकच्छवविसालखादीहि[7] संजुत्ता ॥ १०८
कंचणपासादजुदा जिणभवणविहूसिया मणभिरामा । बहुआवणसंछण्णा णाणाविहहट्टकयभूसा[8] ॥ १०९
अवरेण तदो[9] गंतुं होदि तिकूडो त्ति पव्वदो पवरो । कंचणमओ विचित्तो[10] चउकूडविहूसिओ तुंगो ॥ ११०
वरवज्जरयणमूलो जिणभवणविहूसिओ महासिहरो । वरवेदिएहि जुत्तो मणितोरणमंडिओ दिव्वो ॥ १११
णगराणि बहुविहाणि य देवाण हवंति सेलसिहरम्मि । कंचणरयणमएहि य पासादवरेहिं[11] छण्णाणि ॥ ११२
वरवेदिएहि[12] जुत्ताणि ताणि वरतोरणेहि सहियाणि । णगराणि होंति तस्स दु तिकूडणामस्स अमरस्स ॥ ११३

से संयुक्त, नित्य होनेवाले उत्सवोंसे परिपूर्ण, सुरेन्द्रलोककी उपमाको धारण करनेवाला, दिव्य, गंगा-सिन्धु नदियों तथा वैताढ्य पर्वतोंसे मण्डित, श्रेष्ठ, प्रचुर पुष्करिणी व वापियोंसे सहित, नाना वृक्षोंसे व्याप्त, दिव्य, छह भेद रूप भागोंमें विभक्त, आर्य और म्लेच्छोंके खण्डोंसे संयुक्त, बहुत नगरों एवं खेड़ोंके समूहसे सहित, तथा पट्टनों व द्रोणमुखोंसे परिपूर्ण है ॥ १०३–१०६ ॥ उस देशके मध्यमें सुसीमा नामक नगरी है। यह नगरी उत्तम वेदिकाओंसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, दिव्य; विकसित कमल, कुवलय व नीलोत्पल जैसे सुगन्धित कुसुमों रूप ऋद्धियोंसे तथा तैरते हुए मत्स्य एवं कछवाओंसे सहित ऐसी विशाल खातिकाओंसे संयुक्त, सुवर्णमय प्रासादोंसे युक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, मनको अभिराम, बहुतसी दूकानों-से व्याप्त, तथा नाना प्रकारके हाटोंसे की गई सजावटसे सम्पन्न है ॥ १०७–१०९ ॥ उससे पश्चिममें जाकर त्रिकूट नामक श्रेष्ठ पर्वत है। यह दिव्य पर्वत सुवर्णमय, विचित्र, चार कूटोंसे विभूषित, उन्नत, उत्तम वज्ररत्नमय मूलभागसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, महा शिखरसे संयुक्त, उत्तम वेदियोंसे युक्त और मणिमय तोरणोंसे मण्डित है ॥ ११०-१११ ॥ इस शैलके शिखरपर सुवर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित और श्रेष्ठ प्रासादोंसे व्याप्त देवोंके बहुत प्रकारके नगर हैं ॥ ११२ ॥ उत्तम वेदियोंसे युक्त और तोरणोंसे सहित वे नगर उस त्रिकूट नामक देवके हैं ॥ ११३ ॥ उससे पश्चिम दिशामें जाकर रम्य सुवत्सा नामक देश है।

१ प सुइंदसद्दणिवोसो, व सुइंदसद्दणिवोसो. २ प व णिच्चुछवेदि ३ उ श संडुत्ता. ४ उ प ब श रयण. ५ प व दोणसुह. ६ उ श सुसीम. ७ उ श पयंतमच्छकच्छवि, प व पयरंतिमछकच्छवा. ८ उ श संछण्णा णाणाविहहट्टकायभूसा, प व संछाणणाणविहट्ठद्दकयभूमो ९ उ श तहो. १० प व विछित्तो. ११ उ पासादव्वेरहि, प ..., ब पासादप्परेहिं, श पासादव्वेरहि. १२ उ वरवेदिएहि, श वरवेदि.

गंतूण पच्छिमदिसे होइ सुवच्छो त्ति जणवदो रम्मो । धणधण्णरयणणिवहो बहुगामसमाउलो परमो[1] ॥ ११४
गंगासिंधूहि तहा वेदड्ढणगेण[2] सुट्ठु कयसीमो । छक्खंडमणभिरामो पमुदिदपक्कीलिदो[3] देसो ॥ ११५
पुंडुच्छुवाडपउरो[4] सुगंधसालीहि[5] पूरियपदेसो । पूगफलरुक्खणिवहो तंबूललयाउलसिरीओ[6] ॥ ११६
तस्स विजयस्स णेया णामेण य कुंडला हवे णयरी । बारहजोयणदीहा णवजोयणवित्थडा दिव्वा ॥ ११७
बारहसहस्सरत्था[7] सहस्स तह[8] होंति वरचउक्का[9] य । गोउरसहस्सणिवहा तदद्धवरतोरणा रम्मा ॥ ११८
वइरिंदणीलमरगयककेयणपउमरायपासादा । धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ ११९
अवरेण तदो गंतुं तत्तजला णामदो णदी होइ । वरतोरणसंजुत्ता[10] वणवेदीपरिउडा दिव्वा ॥ १२०
वरणदिगणेहि[11] जुत्ता अट्ठावीसासहस्सगुणिदेहि । णिग्गंतूण विभंगा कुंडाणं तोरणमुहादो ॥ १२१
उत्तरमुहेण गंतुं विजयाणं मज्झदेसभागेण । सीयासलिलं पविसइ तोरणदारेण विउलेण ॥ १२२
अवरेण तदो गंतुं होइ महावच्छजणवदो अवरो । गामाणुगामणिचिदो[12, 13] णयरागरमंडिओ विउलो ॥ १२३

यह देश धन-धान्य व रत्नसमूहसे सहित, बहुत ग्रामोंसे युक्त, श्रेष्ठ, गंगा-सिन्धु नदियों तथा वैताढ्य पर्वतसे की गई सुन्दर सीमासे सहित, छह खण्डोंसे मनोहर, प्रमोदप्राप्त जनोंकी क्रीड़ासे सहित, पुण्ड्र (पौंडा) एवं ईखके खेतोंकी प्रचुरतासे युक्त, सुगन्धित शालि धान्योंसे पूरित प्रदेशवाला, सुपाड़ीके वृक्षसमूहसे सहित, और ताम्बूल लताओंकी अनुपम शोभासे सम्पन्न है ॥ ११४–११६ ॥ कुण्डला नामक नगरी उस देशकी राजधानी जानना चाहिये । यह नगरी बारह योजन दीर्घ, नौ योजन विस्तृत, दिव्य, बारह हजार रथमार्गोंसे सहित, एक हजार उत्तम चतुष्पथोंसे संयुक्त, एक हजार गोपुरोंके समूहसे युक्त, इससे आधे (५००) उत्तम तोरणद्वारोंसे सहित, रमणीय; वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतन एवं पद्मरागसे निर्मित प्रासादोंसे परिपूर्ण; फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे शोभित, दिव्य और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ ११७–११९ ॥ उसके पश्चिममें जाकर तप्तजला नामक विभंगा नदी है । यह नदी उत्तम तोरणोंसे संयुक्त, वन-वेदियोंसे वेष्टित, दिव्य और उत्तम अट्ठाईस हजार नदियोंके समूहोंसे युक्त होती हुई कुण्डोंके तोरणमुखसे निकलकर विजयोंके मध्य भागमेंसे उत्तरकी ओर जाकर विशाल तोरणद्वारसे सीता नदीके जलमें प्रवेश करती है ॥ १२०–१२२ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर महावत्सा नामक दूसरा देश है । यह विशाल देश ग्राम-अनुग्रामोंसे व्याप्त एवं नगरों व आकरोंसे मण्डित है ॥ १२३ ॥ जहां सिन्धु नदीके साथ वनों, वेदियों व तोरणोंसे

१ ब श समउलो पउरो, ब समाउलो परम्मो. २ प ब णगेण. ३ उ श पमुदियकीलिदो, प···, ब पमुदिदपक्कालिदो. ४ पुंडच्छवाड. ५ प ब सालीहिं. ६ उ श सिरीए, प ब सिरीउ. ७ प ब रत्था. ८ प ब तहा. ९ प ब चउक्का. १० प ब तोरणरणसंजुत्ता. ११ प वरणदिपगण्णेहि, ब वरणदिमणएहि. १२ ब श गामणगाम. १३ प ब णिचिउ.

देसस्स तस्स[1] णेया अंकावदि णामदो दु वरणयरी । मणिमयपायारजुदा मणितोरणमंडिया दिव्वा ॥ १४५
मणिकंचणवरणिवहा जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । वरखादियाहिं जुत्ता वणसंडविराइया[2] विउला ॥
अवरेण तदो गंतुं अंजणगिरि णामदो तहिं होइ । वणवेदियाहिं[3] जुत्तो वरतोरणमंडिओ दिव्वो ॥ १४७
कंचणमओ सुतुंगो णाणापासादसंकुलो पवरो । जिणइंदभवणणिवहो चउकूडविहूसिओ रम्मो ॥ १४८
सीहासणमज्झगओ वरचामरविज्जमाण बहुमाणी । अंजणगिरिम्मि अच्छइ अंजणणामो सुरो पवरो ॥ १४९
अवरेण तदो गंतुं होइ सुरम्म त्ति[4] णामदो विसओ । सुविसुद्धरयणणिवहो सुविसालदीवेहि मंडिओ दिव्वो ॥
सुविसालणयरणिवहो सुविउलदीवेहि मंडिओ दिव्वो[6] । सुविसालखेडपवरो सुविउलरयणायराइण्णो[7] ॥ १५१
सुविसालपट्टणजुदो सुविउलदोणामुहेहिं संछण्णो । सुविसालखेत्तणिवहो तेण सुरम्म त्ति[8] विक्खाओ ॥ १५२
पउमावइ त्ति णामा णयरी तहिं होइ देसमज्झम्मि । वणवेदियाहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १५३
कंचणमरगयविद्दुमकक्केयणपउमरायवरणिवहा । जिणइंदभवणपउरा धयवडचुंबंतरमणीया ॥ १५४

अंकावती नामक उत्तम नगरी राजधानी जानना चाहिये। यह विशाल नगरी मणिमय प्राकारसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, मणिमय एवं सुवर्णमय गृहसमूहसे सहित, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, उत्तम खातिकाओंसे युक्त और वनखण्डोंसे विराजित है ॥ १४५–१४६ ॥ उसके पश्चिममें जाकर वहां अंजन नामक पर्वत है। यह रमणीय पर्वत वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, सुवर्णमय, अतिशय उन्नत, नाना प्रासादोंसे व्याप्त, श्रेष्ठ, जिनेन्द्रभवनोंके समूहसे सहित और चार कूटोंसे विभूषित है ॥ १४७–१४८ ॥ अंजनगिरिपर सिंहासनके मध्यको प्राप्त, उत्तम चामरोंसे वीज्यमान और बहुमानी अंजन नामक श्रेष्ठ देव स्थित है ॥ १४९ ॥ उसके पश्चिममें जाकर सुरम्य नामक देश है। यह देश अत्यन्त विशुद्ध रत्नसमूहसे सहित, अत्यन्त विशाल द्वीपोंसे मण्डित, दिव्य, अतिशय विशाल नगरोंके समूहसे सहित, अत्यन्त विपुल द्वीपोंसे मण्डित, दिव्य, अतिशय विशाल प्रचुर खेटोंसे सहित, अत्यन्त विपुल रत्नाकरोंसे व्याप्त, अतिशय विशाल पट्टनोंसे युक्त, अत्यन्त विपुल द्रोणमुखोंसे व्याप्त और अतिशय विशाल खेतोंके समूहसे सहित है, इसीलिये यह 'सुरम्या' इस सार्थक नामसे विख्यात है ॥ १५०–१५२ ॥ उस देशके मध्यमें पद्मावती नामक नगरी है। यह नगरी वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, सुवर्ण, मरकत, मूंगा, कर्केतन, एवं पद्मराग मणियोंसे निर्मित गृहसमूहसे सहित; प्रचुर जिनेन्द्रभवनोंसे संयुक्त और फहराती हुई ध्वजाओंके वस्त्रोंसे रमणीय है ॥ १५३–१५४ ॥ उसके पश्चिम दिशाभागमें विभंगा

---

१ उ श तस्स. २ प ब विराजिया. ३ प ब वदणवेदियाहिं. ४ ब श सुरम त्ति. ५ ब श रयण. ६ प ब मंडिओ रम्मो. ७ प ब रमणीयसंकण्णो. ८ ब श सुरम्म त्ति, प ब विस्सो त्ति.

तत्तो विभंगणामा होइ णदी पच्छिमे दिसाभागे । उम्मत्तजला जेया विदिया णामा दु[1] तस्सेव ॥ १५५

पणुवीससमधिरेया[2] जोयणसयवित्थडा परमरम्मा[3] । बेजोयणअवगाढा बेकोसहिया विभंगा दु[4] ॥ १५६

सोलस चेव सहस्सा चत्तारि सया हवंति[5] सत्तट्ठा । बे चेव कला अहिया विभंगआयाम णिद्दिट्ठा ॥ १५७

विक्खंभायामेण य समहियपणुवीसजोयणसयं तु । जोयणवीसवगाहं[6] विहंगकुंडं समुद्दिट्ठं ॥ १५८

जवणिय कुंडायामं[7] विजयायामे हवेज्ज जं सेसं । सव्वाणं सरियाणं आयामो होइ णायव्वो ॥ १५९

बेकोससमहिरेया सत्तासीदी सयं च णिद्दिट्ठा । तोरणदारुच्छेहा विभंगसरियाण णायव्वा ॥ १६०

तोरणदारायामं[8] पणुवीसहिया सयं[9] च णायव्वा । विक्खंभ एय जोयण होइ विभंगाण सव्वाणं ॥ १६१

वरवज्जणीलमरगयसोवाणगणेहि सोहिया दिव्वा । कंचणवेदीहि जुदा वणसंडविहूसिया रम्मा ॥ १६२

अट्ठावीसेहि तहा सहस्सगुणिदाहिं संजुदा रम्मा । उभयतडं पूरंती वच्चइ विजयाण मज्झेण ॥ १६३

कुंदेंदुसंखसण्णिभसुगंधसलिलेहिं पूरिया दिव्वा । गंतूण उत्तरदिसे पविसइ सीयाणदीमज्झे ॥ १६४

नामकी नदी है । 'उन्मत्तजला' यह उसका ही दूसरा नाम जानना चाहिये ॥ १५५ ॥ अतिशय रमणीय वह विभंगा नदी एक सौ पच्चीस योजन विस्तृत और दो कोश अधिक दो योजन अवगाहसे संयुक्त है ॥ १५६ ॥ विभंगा नदीका आयाम सोलह हजार चार सौ सड़सठ योजन और दो कला अधिक ($१६५९२\frac{२}{१९} - १२५ = १६४६७\frac{२}{१९}$) यो. कहा गया है ॥ १५७ ॥ एक सौ पच्चीस योजन विष्कम्भ और आयाम तथा बीस योजन अवगाहसे सहित विभंगाकुंड कहा गया है ॥ १५८ ॥ विजयके आयाममेंसे कुण्डके आयामको कम करनेपर जो शेष रहे उतना सब नदियोंका आयाम जानना चाहिये ॥ १५९ ॥ विभंगा नदियोंके तोरणद्वारोंका उत्सेध एक सौ सतासी योजन और दो कोश प्रमाण निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये ॥ १६० ॥ सब विभंगा नदियोंके तोरणद्वारोंका आयाम एक सौ पच्चीस योजन और विष्कम्भ एक योजन प्रमाण जानना चाहिये ॥ १६१ ॥ उक्त विभंगा नदी उत्तम वज्र, नील एवं मरकत मणिमय सोपानसमूहोंसे शोभित, दिव्य, सुवर्णमय वेदियोंसे युक्त, वनखण्डोंसे विभूषित, रम्य और अट्ठाईस हजार [नदियोंसे] संयुक्त होकर उभय तटोंको जलसे पूर्ण करती हुई विजयोंके मध्यसे जाती है ॥ १६२-१६३ ॥ कुन्द पुष्प, चन्द्र एवं शंखके समान धवल व सुगन्धित जलसे परिपूर्ण वह दिव्य नदी उत्तर दिशामें जाकर सीता नदीके मध्यमें प्रवेश

---

१ श विदिणायामा दु. २ उ श समभिरेया, श समसिरेये. ३ श जोयअवगादा परमरम्मा. ४ प ब बेकोसा सहिया अभंगा दु, श कोसहिया विभंगा दु. ५ उ श चत्तारि. हवंति. ६ उ श °वीसविगाहं ७ ब श कुंडयामं. ८ उ श तोरण. ९ ब पणुवीसाहिया सयं, श पणुवीससाहिया सयं.

अवरेण तदो गंतुं रमणिज्जो णामदो त्ति विक्खादो[1] । विजओ होदि समिद्धो[2] बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ १६५
छक्खंडेहि[3] विभत्तो अज्जअणज्जेहिं भेदसंजुत्तो । गंगासिंधूहिं तहा[4] वेदड्ढणगेण कयसीमो[5] ॥ १६६
देसम्मि तम्मि णेया होइ सुहा णामदो त्ति वरणयरी । वणवेदिएहिं जुत्ता मणितोरणमंडिया दिव्वा ॥ १६७
कंचणपासादजुदा जिणभवणविहूसिया मणभिरामा[8] । उववणकाणणसहिया वावीपोक्खरणिकयसोहा ॥ १६८
अवरेण तदो गंतुं आदंस [ज] णामदो णगो होइ । णिद्धंतकणयवण्णो मणिरयणविहूसिओ रम्मो ॥ १६९
चत्तारिजोयणसदा उव्विद्धो णिसधपव्वदसमीवे[11] । सीदाणदिस्स तीरे पंचसया जोयणुत्तुंगा[12] ॥ १७०
सीदासमीवदेसे सयं च पणुवीसजोयणवगाढो[13] । जोयणसयमवगाढो[14] णिसढसमीवे समुद्दिट्ठो ॥ १७१
वणवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ मणभिरामो[15] । पंचेव जोयणसया विच्छिण्णो होइ वरसेलो[16] ॥ १७२
बाणउदा पंचसया वे चेव कला हवे समहिरेया । छद्दससहस्सजोयण आयामं तस्स सेलस्स ॥ १७३
पोक्खरणिवाविपउरो[18] णाणापासादसंकुलो रम्मो । तण्णामदेवसहिओ जिणभवणविहूसिओ रम्मो ॥ १७४

करती है ॥ १६४ ॥ उसके उत्तरमें जाकर 'रमणीय' नामसे विख्यात समृद्ध विजय है । यह विजय बहुत ग्रामोंसे वेष्टित, रम्य, छह खण्डोंसे विभक्त, आर्य-अनार्योंके द्वारा भेदसे संयुक्त और गंगा-सिन्धु नदियों तथा वैताढ्य पर्वतसे की गई सीमासे सहित है ॥ १६५–१६६ ॥ उस देशमें शुभा नामक उत्तम नगरी जानना चाहिये । यह नगरी वन-वेदियोंसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, सुवर्णमय प्रासादोंसे संयुक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, मनको अभिराम, उपवन-काननोंसे सहित और वापियों एवं पुष्करिणियोंसे शोभायमान है ॥ १६७–१६८ ॥ उसके पश्चिममें जाकर आदर्श [आत्मांजन] नामक वक्षार पर्वत है । यह पर्वत खूब तपाये गये सुवर्णके समान वर्णवाला, मणियों व रत्नोंसे विभूषित, रम्य, निषध पर्वतके समीपमें चार सौ और सीता नदीके तीरपर पांच सौ योजन ऊंचा, तथा सीताके समीप देशमें एक सौ पच्चीस योजन और निषधके समीपमें सौ योजन अवगाहसे युक्त कहा गया है ॥ १६९–१७१ ॥ वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित और मनको अभिराम ऐसा वह उत्तम पर्वत पांच सौ योजन प्रमाण विस्तृत है ॥ १७२ ॥ उस पर्वतका आयाम छह और दश अर्थात् सोलह हजार पांच सौ बानबै योजन और दो कला अधिक है ॥ १७३ ॥ उक्त रमणीय पर्वत प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे सहित, नाना प्रासादोंसे घिरा हुआ, रम्य, अपने जैसे नामवाले देवसे सहित और जिनभवनसे विभूषित है ॥ १७४ ॥ उसके पश्चिममें जाकर धन-

---

१ प ब रमणिज्जो दो ति विक्खादा. २ प ब समियो, श समद्धो. ३ उ श छक्खंडेण. ४ प तता, ब तत. ५ प ब कदोसीमो. ६ प ब वरतोरण. ७ प ब सुवण. ८ उ श रम्मा. ९ प ब कयंसूसा. १० प ''', ब आदेसण. ११ उ श समीवो. १२ उ पंचसया जोयणो तुंगा, श पंचसय जोतगा. १३ उ श जोयणा गाढो. १४ प-बप्रत्योर्नोपलभ्यते तृतीयचरणमेतत्. १५ उ श मणभिरम्मो. १६ उ सया वे चेव कला हवे समभिरेया, श सया वे वे कला हवे समभिरेया. १७ प ब छद्दससदस्स. १८ प ब पवरो.

अवरेण तदो गंतुं होइ पुणो मंगलावदी विजओ। धणधण्णरयणपुण्णो बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ १७५
सोलस चेव सहस्सा पंचेव सया हवंति बाणउदा। बे चेव कला अधिया आयामो तस्स विजयस्स ॥ १७६
बावीसजोयणसया बारह तह जोयणा समुद्दिट्ठा। सत्तट्ठभागसहिया विक्खंभो तस्स देसस्स ॥ १७७
णयरखेडकव्वडमडंबदोणामुहेहिं संछण्णो। बहुदीवविउलपट्टणरयणायरमंडिओ दिव्वो ॥ १७८
गंगासिंधू वि तहा दो वि णदी उत्तरामुही जंति। वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १७९
दुकला बेकोससहिया उणतीसा तह य सोलससहस्सा। पंचेव जोयणसया गंगासिंधूण आयामं ॥ १८०
छज्जोयण सक्कोसा णिसहसमीवे णदीण विक्खंभा। गाउवअद्धवगाहं दसगुण सीयासमीवम्मि ॥ १८१
बेकोसा बासट्ठा गंगाकुंडप्पमाणविक्खंभं। आयामं णिदिट्ठं दसजोयण होइ अवगाहं ॥ १८२
छज्जोयण सक्कोसा आयामा तोरणा समुद्दिट्ठा। जोयणचउत्थभागा विक्खंभा होंति णायव्वा ॥ १८३
समहियदिवड्ढकोसा णवजोयण तोरणा समुत्तुंगा। गंगासिंधूण तहा णिसधसमीवे वियाणाहि ॥ १८४

धान्य एवं रत्नोंसे परिपूर्ण और बहुत ग्रामोंसे घिरा हुआ रमणीय मंगलावती नामक विजय है ॥ १७५ ॥ उस विजयका आयाम सोलह हजार पांच सौ बानबै योजन और दो कला अधिक है ॥ १७६ ॥ उस देशका विष्कम्भ बाईस सौ बारह योजन और एक योजनके आठ भागोंमेंसे सात भाग अधिक कहा गया है ॥ १७७ ॥ उक्त दिव्य विजय उत्तम नगरों, खेडों, कर्वटों, मटंबों और द्रोणमुखोंसे व्याप्त तथा बहुतसे द्वीपों, विशाल पट्टनों एवं रत्नाकरोंसे मण्डित है ॥ १७८ ॥ वन-वेदियोंसे युक्त और उत्तम तोरणोंसे मण्डित दिव्य गंगा व सिन्धु नामकी दोनों हि नदियां उत्तराभिमुख होकर जाती हैं ॥ १७९ ॥ गंगा और सिन्धु नदियोंका आयाम सोलह हजार पांच सौ उनतीस योजन, दो कोश और दो कला अधिक $(१६५९२\frac{२}{१९} - ६२\frac{१}{२} = १६५२९\frac{३}{८})$ है ॥ १८० ॥ निषध पर्वतके समीपमें उक्त दोनों नदियोंका विष्कम्भ छह योजन एक कोश और अवगाह आधा कोश मात्र है। सीता नदीके समीपमें उक्त नदियोंका विष्कम्भ व अवगाह इससे दशगुणा है ॥ १८१ ॥ गंगा-कुण्डके विष्कम्भ व आयामका प्रमाण दो कोश व बासठ योजन तथा अवगाह दश योजन मात्र है ॥ १८२ ॥ तोरणोंका आयाम छह योजन एक कोश और विष्कम्भ योजनके चतुर्थ भाग प्रमाण जानना चाहिये ॥ १८३ ॥ गंगा-सिन्धु नदियोंके तोरण निषधके समीपमें नौ योजन और डेढ़ कोश प्रमाण ऊंचे जानना चाहिये ॥ १८४ ॥ जिनेन्द्रोंके द्वारा निर्दिष्ट गंगा-सिन्धु

---

१ प ब रयणपउरो. २ प सिहिया, ब सिहिय. ३ प मदंव, ब दंव. ४ प ब एदण. ५ प ब अवंति. ६ ब उणतीसा सहिया सोलस. ७ उ श णिसहसमेवेण विक्खंभ. ८ प ब गाउय. ९ ब कुंड. १० उ निसह, श निध.

तिण्णेव हवे कोसा तेणउदा जोयणा समुत्तुंगा । बेकोसा बासट्ठा[1] आयामा तोरणा णेया ॥ १८५
बे कोसा विक्खंभा गंगासिंधूण तोरणदुवारा[2] । सीदाणदीसमीवे णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहि ॥ १८६
करणदिया णायव्वा चउदस-चउदससहस्स[3]परिवारा । एक्केक्काण णदीणं गंगासिंधूणं परिवारा ॥ १८७
सव्वा वि वेदिसहिया सव्वा वणसंडमंडिया[4] दिव्वा । सव्वा तोरणणिवहा सव्वा कुंडेसु उप्पण्णा ॥ १८८
देसस्स मज्झभागे वेदड्ढो पव्वदो समुत्तुंगो[5] । वणवेदिएहिं जुत्तो वरतोरणमंडिओ होइ ॥ १८९
उत्तरसेढीए पुणो[6] पणवण्णाणि हवंति णगराणि । जिणभवणभूसियाणि य दक्खिणदो चावि एमेव ॥ १९०
देसम्मि तम्मि होइ[7] य णामेण य रयणसंचया णगरी । रयणमयभवणणिवहा वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १९१
मरगयपायारजुदा अगाहखाईहिं परिउडा दिव्वा । धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ १९२
पुव्वविदेहे णेया तित्थयरा सव्वकाल साहीणा[9] । गणहरदेवा य तहा[10] चक्कहरा तह य णायव्वा ॥ १९३
छम्मासे छम्मासे णियमा सिज्झंति[11] तेसु खेत्तेसु । उक्कस्सेण य णेया[12] जहण्णदो एक्कसमएण ॥ १९४
जिणइंदाणं णेया[13] अट्ठमहापाडिहेरजुत्ताणं । दिव्वं समोवसरणं सव्वेसु वि अत्थि खेत्तेसु ॥ १९५

नदियोंके तोरणद्वार सीता नदीके समीपमें तेरानबै योजन और तीन कोश ऊंचे, बासठ योजन व दो कोश आयत, तथा दो कोश विस्तृत जानना चाहिये ॥ १८५–१८६ ॥ गंगा-सिन्धु नदियोंमेंसे प्रत्येक नदीकी परिवार नदियां चौदह-चौदह हजार प्रमाण जानना चाहिये ॥ १८७ ॥ ये सभी दिव्य नदियां वेदियोंसे सहित, सभी वनखण्डोंसे मण्डित, सभी तोरणसमूहसे सहित, और सभी कुण्डोंसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १८८ ॥ इस देशके मध्य भागमें वन-वेदियोंसे युक्त और उत्तम तोरणोंसे मण्डित वैताढ्य नामक ऊंचा पर्वत है ॥ १८९ ॥ इस पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें जिनभवनोंसे भूषित पचवन नगर हैं । इसी प्रकार दक्षिण श्रेणिमें भी पचवन नगर जानना चाहिये ॥ १९० ॥ उस देशमें रत्नसंचया नामकी नगरी है । यह दिव्य नगरी रत्नमय भवन-समूहसे सहित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, मरकतमणिमय प्राकारसे युक्त, अगाध खातिकाओंसे वेष्टित, दिव्य, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ १९१–१९२ ॥ पूर्व विदेहमें स्वाधीन तीर्थंकर, गणधर देव तथा चक्रवर्ती सर्व काल स्थित जानना चाहिये ॥ १९३ ॥ उन क्षेत्रोंमें उत्कर्षसे छह छह मासमें तथा जघन्यसे एक समयमें जीव नियमसे सिद्ध होते हैं ॥ १९४ ॥ सभी क्षेत्रोंमें आठ महा प्रातिहार्योंसे युक्त जिनेन्द्र देवोंका दिव्य समवसरण रहता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १९५ ॥

१ उ श बेकोसावणट्ठा, प ..,ब कोसट्ठा बासट्ठा. २ प ब गंगासिंधूतोरण. ३ उ श सहस्सा. ४ प ब मुंडिया. ५ ब समतुंगो. ६ प ब पुणा. ७ उ श होंवि, प..., ब होइ. ८ प..., ब णामेण रयण. ९ प ब साहीण, श साहीरा. १० प ब देवाण तहा. ११ ब णियमा तिष्ठंति तेसु. १२ प उक्कस्सेण दु णेया, ब उक्कस्सेण दु णेय. १३ प ब जिणयंदाणं णेय.

ण वि धम्मो वोच्छिज्जइ केवलणाणी ण चावि परिहीणा[1] । पुव्वविदेहे णेया सव्वेसु वि[2] विउलविजएसु ॥

चाउव्वण्णो संघो पुव्वविदेहम्मि होंति संबद्धा[3] । पुरिसो लिकमेण तहा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ १९७

अमरिंदणमियचलणं[4] अणंतवरणाणदंसणपईवं[5] । वरपउमणंदिणमियं अणंतजिणसामियं वंदे ॥ १९८

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे महाविदेहाहियारे पुव्वविदेहवण्णणो णाम

अट्ठमो[6] उद्देसो समत्तो ॥ ८ ॥

पूर्व विदेहके भीतर सभी विशाल विजयोंमें न धर्मकी व्युच्छित्ति होती है और न केवलियोंका भी अभाव होता है ॥ १९६ ॥ पूर्व विदेहमें चातुवर्ण्य संघका संयोग पुरुषपरम्पराके क्रमसे सर्वदा रहता है, ऐसा सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ १९७ ॥ जिनके चरणोंमें देवोंके इन्द्र नमस्कार करते हैं तथा जो उत्कृष्ट अनन्त ज्ञान-दर्शनरूपी प्रदीपसे संयुक्त व उत्तम पद्मनन्दि मुनिके द्वारा नमस्कृत हैं, ऐसे अनन्त जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १९८ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें महाविदेहाधिकारमें

पूर्वविदेहवर्णन नामक आठवां उद्देश

समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

---

१ उ श परिहीणो. २ ब सव्वे वि. ३ उ प ब श पुव्वविदेहम्मि होंति संबधा, क पुव्वविदेहे हवंति संबद्धो. ४ ब णमियवलं. ५ उ श पइतं. ६ प ब अट्ठमओ उद्देशो.



[णवमो उद्देसो]

धम्मजिणिंदं पणमिय सद्धम्मुवदेसयं विगयमोहं । धणधण्णसमिद्धवरं अवरविदेहं पवक्खामि ॥ १
अवरेण तदो गंतुं णामेण य रयणसंचयपुरादो । वरवेदिया विचित्ता कणयमया होइ णायव्वा ॥ २
तत्तो दु वेदियादो[1] पंचसया जोयणाणि गंतूणं । होदि णगो सोमणसो णिसधसमीवे समुद्दिट्ठो ॥ ३
चत्तारि जोयणसया उव्विद्धो वित्थडो दु पंचसया । जोयणसयअवगाढो रुप्पमओ होइ णायव्वो ॥ ४
तत्तो दु वेदियादो गंतूणं भद्दसालवणमज्झे । मंदरपासे णेया बावीसा जोयणसहस्सा ॥ ५
पंचेव जोयणसया उव्विद्धो संखकुंदसंकासो । पणुवीससमहिरेओ[2] सयावगाढो दु वज्जमओ ॥ ६
सोमणसस्सायामं तीससहस्सा य बेसया णेया । णवजोयणा य दिट्ठा छच्चेव कला हवे अहिया ॥ ७
चदुकूडतुंगसिहरो बहुभवणविहूसिओ मणाभिरामो । बहुदेवदेविणिवहो वणकाणणमंडिओ विउलो ॥ ८
वरवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ परमरम्मो । सोमपहदेवसहिओ जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ ९
तत्तो सोमणसादो[3] तेवण्णसहस्स जोयणा गंतुं । अवरदिसे णायव्वो विज्जुप्पहणामदो[4] होइ ॥ १०
तवणिज्ज[5]णिभो सेलो कुरुधणुपट्ठद्ध होइ आयामो । सोमणससमो दिव्वो उण्णयचउभागअवगाढो ॥ ११

सद्धर्मके उपदेशक और मोहसे रहित धर्मनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करके धन-धान्यसे समृद्ध उत्तम अपर विदेहका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ उस रत्नसंचयपुरसे पश्चिममें जाकर सुवर्णमय विचित्र उत्तम वेदिका जानना चाहिये ॥ २ ॥ उस वेदिकासे पांच सौ योजन जाकर सौमनस नामक पर्वत स्थित है । यह रजतमय पर्वत निषधके समीपमें चार सौ योजन ऊंचा, पांच सौ योजन विस्तृत और सौ योजन अवगाहसे युक्त जानना चाहिये ॥ ३–४ ॥ उस वेदिकासे बाईस हजार योजन प्रमाण भद्रशाल वनके मध्यमें जाकर शंख एवं कुन्द पुष्पके सदृश वर्णवाला वह पर्वत मन्दर पर्वतके पासमें पांच सौ योजन ऊंचा, तथा एक सौ पच्चीस योजन प्रमाण वज्रमय अवगाहसे युक्त जानना चाहिये ॥ ५–६ ॥ सौमनस पर्वतका आयाम तीस हजार दो सौ नौ योजन और छह कला अधिक कहा गया है ॥ ७ ॥ यह दिव्य पर्वत चार कूटोंसे युक्त, उन्नत शिखरवाला, बहुत भवनोंसे विभूषित, मनको अभिराम, बहुत देव-देवियोंके समूहसे संयुक्त, वन-काननोंसे मण्डित, विपुल, उत्तम वेदिकाओंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित अतिशय रमणीय, सोमप्रभ देवसे सहित और जिनभवनसे विभूषित है ॥ ८–९ ॥ उस सौमनस पर्वतसे आगे तिरेपन हजार योजन जाकर पश्चिम दिशामें विद्युत्प्रभ नामक पर्वत जानना चाहिये ॥ १० ॥ यह पर्वत तपाये गये सुवर्णके सदृश, कुरु क्षेत्रके अर्ध धनुषपृष्ठके प्रमाण आयामवाला, सौमनसके समान आकारवाला, दिव्य, उंचाईके चतुर्थ भाग प्रमाण अवगाहसे संयुक्त,

---

१ ब वेदियदो. २ उ पुणवीससमिधिरेओ, ब पणुवीससमधिरेय, श पुणवीससुमधिरेओ. ३ उ श सोमणषादो तेवण, ब सोमणसाहो तेवण. ४ उ श विज्जुप्पम. ५ ब णवणिज्ज.

वणवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ परमरम्मो । जिणचंद[1]भवणणिवहो विज्जुप्पभदेवसाहीणो ॥ १२
तत्तो पच्छिमभागे गंतूणं पंचजोयणसयाणि । होइ हु कंचणवेदी णिसधसमीवे समुद्दिट्ठा ॥ १३
विज्जुप्पभसेलादो[2] गंतूणं भद्दसालवणमज्झे । बावीसं च सहस्सा जोयणसंखेहि तहिं होदि ॥ १४
वरवेदिया विचित्ता पंचेव धणुसया हु वित्थिण्णा । बेकोससमुत्तुंगा णाणाविहरयणसंछण्णा ॥ १५
तत्तो अवरदिसाए पउमा णामेण जणवदो होइ । पउमुप्पलपुप्फेहि[3] य पउ[4]मिणिसंडेहि रमणीओ ॥ १६
वरकमलसालिएहि य वप्पिणणिवहेहि[5] मंडिओ रम्मो । णिप्पण्णसव्वधण्णो समिद्धगामेहि[6] संछण्णो ॥ १७
गंगासिंधूहि तहा वेदड्ढणगेण भूसिओ पवरो । छक्खंडपउमविजओ णिद्दिट्ठो सव्वदरिसीहि ॥ १८
तस्स देसस्स णेया णयरी णामेण अस्सपुरी । वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १९
मणिरयणभवणणिवहा कंचणपासादसंकुला[7] रम्मा । जिणइंदगेहपउरा इंदपुरी णाइ[8] पच्चक्खा ॥ २०
अवरेण तदो गंतुं सद्दावदि[9]णामपव्वदो होइ । अद्धट्ठसिहरणिवहो जिणभवणविहूसिओ तुंगो ॥ २१
कंचणमओ विसालो गइंदकुंभागदी परमरम्मो[10] । वणवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ दिव्वो ॥ २२

वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, जिनभवनोंके समूहसे युक्त और विद्युत्प्रभ देवके स्वाधीन है ॥ ११-१२ ॥ उससे पश्चिम भागमें पांच सौ योजन जाकर निषध पर्वतके समीपमें सुवर्णमय वेदी निर्दिष्ट की गई है ॥ १३ ॥ विद्युत्प्रभ शैलसे बाईस हजार योजन प्रमाण भद्रशाल वनके मध्यमें जाकर वहां पांच सौ धनुष विस्तीर्ण, दो कोश ऊंची और नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त विचित्र उत्तम वेदिका है ॥ १४-१५ ॥ उससे पश्चिम दिशामें पद्मा नामक देश है। छह खण्डोंसे युक्त वह श्रेष्ठ पद्म विजय पद्म व उत्पल पुष्पों एवं पद्मिनियोंके समूहोंसे रमणीय, उत्तम कलम धानसे शोभायमान खेतोंके समूहोंसे मण्डित, रम्य, समस्त धान्योंकी निष्पत्तिसे सहित, समृद्ध ग्रामोंसे व्याप्त तथा गंगा व सिन्धु नदियों एवं वैताढ्य पर्वतसे भूषित है; ऐसा सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ १६-१८ ॥ उस देशकी राजधानी अश्वपुरी नामकी नगरी जानना चाहिये। यह नगरी वन-वेदियोंसे युक्त उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, मणि एवं रत्नमय भवनसमूहसे सहित, सुवर्णमय प्रासादोंसे व्याप्त, रम्य तथा प्रचुर जिनेन्द्रगृहोंसे सहित होती हुई साक्षात् इन्द्रपुरी जैसी प्रतीत होती है ॥ १९-२० ॥ उसके पश्चिममें जाकर श्रद्धावती (शब्दावनि) नामक पर्वत है। यह पर्वत आठके आधे अर्थात् चार शिखरोंके समूहसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, उन्नत, सुवर्णमय, विशाल, गजराजके कुम्भके समान आकृतिवाला, अतिशय रमणीय, वन-वेदियोंसे युक्त,

---

१ क ब जिणयंद. २ ब °सेलाहो. ३ उ श पउमप्पलपुप्फेहि, ब पउमप्पहपुप्फेहि. ४ ब पहु. ५ उ श वप्पणणामेहि, ब वप्पिणिणिवहेहि. ६ उ श सव्वधम्मो पुण्णागामेहि, ब सव्वधण्णो समिधगामेहि. ७ उ श संकुल. ८ ब णाय. ९ उ श सद्दावदि, ब संडावदि. १० क गइंदकुंभाकिदी य परमरम्मो, ब कुंभागही. परमरम्मो.

मणिकंचणघरणिवहो अच्छरबहुकोडिसंजुदो रम्मो । काणणवणसंछण्णो सद्धावदिणामसुरजुत्तो ॥ २३
अवरेण तदो गंतुं होइ सुपउमो त्ति[1] णामदो विजओ । णीलुप्पलछण्णाहिं वप्पिणणिवहेहि संछण्णो[2] ॥ २४
रयणागरेहि[4] जुत्तो पट्टणदोणामुहेहि संछण्णो । कव्वडमडंबणिवहो बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ २५
गंगाजलेण सित्तो सिंधू[5]सलिलेण पीणिओ[6] उदरो । वेदड्ढतुंगमउडो विजयणरिंदो मणभिरामो ॥ २६
देसम्मि तम्मि मज्झे सिंहपुरी णाम होइ वरणयरी । सीहपरक्कमजुत्ता णरसीहा जत्थ[7] बहु अत्थि ॥ २७
वणवेदियाहि जुत्ता वरतोरणमंडिया मणभिरामा[8] । धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ २८
अवरेण तदो गंतुं खारोदा णामदो णदी होइ । मणिमयसोवाणजुदा णिम्मलसलिलेहि परिउण्णा ॥ २९
कणयमयवेदिणिवहा वणसंडविहूसिया मणाभिरामा[10] । मणिगणणिवहेहि तहा तोरणदारेहि साहीणा ॥ ३०
अट्ठावीसाहि तहा सहस्सगुणिदाहि[12] णदिहिं संजुत्ता । सीदोदासरिसलिलं पविसइ दारेण[13] तुंगेण ॥ ३१
अवरेण तदो गंतुं होइ महापउमणामवरदेसो । अमरकुमारसमाणा णरपवरा जत्थ दीसंति ॥ ३२

उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, मणिमय एवं सुवर्णमय गृहसमूहसे सहित, कई करोड़ अप्सराओं-से संयुक्त, रम्य, कानन-वनोंसे व्याप्त और श्रद्धावती नामक देवसे युक्त है ॥ २१–२३ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर सुपद्म नामक विजय है । यह विजय नीलोत्पलोंसे व्याप्त वप्रिणसमूहोंसे घिरा हुआ, रत्नाकरोंसे युक्त, पट्टनों व द्रोणमुखोंसे व्याप्त, कर्वटों व मटंबोंके समूहोंसे सहित, रम्य और बहुत ग्रामोंसे व्याप्त है ॥ २४–२५ ॥ उक्त विजय रूपी नरेन्द्र गंगाजलसे अभिषिक्त, सिन्धुसलिलसे प्रीणित (पुष्ट) उदरवाला अथवा उदार और वैताढ्य पर्वत रूपी उन्नत मुकुटसे सहित होता हुआ मनोहर है ॥ २६ ॥ उस देशके मध्यमें सिंहपुरी नामकी उत्तम नगरी है, जहां सिंहके समान पराक्रमसे युक्त बहुतसे श्रेष्ठ मनुष्य हैं ॥ २७ ॥ यह दिव्य नगरी वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ २८ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर क्षारोदा नामकी नदी है । यह नदी मणिमय सोपानोंसे युक्त, निर्मल जलसे परिपूर्ण, सुवर्णमय वेदीसमूहसे सहित, वनखण्डोंसे विभूषित, मनको अभिराम, मणिगणोंके समूहोंसे तथा तोरणद्वारोंसे स्वाधीन और अट्ठाईस हजार नदियोंसे संयुक्त होकर उन्नत द्वारसे सीतोदा नदीके जलमें प्रवेश करती है ॥ २९–३१ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर महापद्म नामका उत्तम देश है, जहांके श्रेष्ठ मनुष्य देवकुमारोंके समान दिखते हैं ॥ ३२ ॥ यह देश उत्तम

---

१ उ श सर. २ ब सुपउसु त्ति. ३ ब °छण्णाहिं या वप्पिण, श छण्णाहं वप्पिण. ४ उ रयणयरेहि, श रयणवरेहि. ५ उ श संधू. ६ ब पीणिदो. ७ उ श तत्थ. ८ उ मणभिरम्मा, श मणभिरामो. ९ उ श मिणि. १० उ श मणभिरम्मा. ११ उ श मिण. १२ उ श अट्ठावीसेहि तहा सहस्सगुणिदाहिं, ब अट्ठावीसेहि तह सहस्सगुणिदेहिं. १३ उ श दाराण.

वरगामणयरणिवहो मडंबखेडाहि मंडिओ दिव्वो । णयरायरपरिकिण्णो रयणद्दीवेहि संछण्णो ॥ ३३

देसस्स तस्स णेया महापुरी णामदो त्ति व[1]रणयरी । रयणमयभवणणिवहा मणिकंचणरयणपरिणामा ॥ ३४

मणिमयपायारजुदा णिम्मलमणिकणय[2]गोउरदुवारा । जिणइंदभवणणिवहा सोहइ सा सव्वदोभद्दा ॥ ३५

अवरेण तदो गंतुं विगडावदि णामदो हवे सेलो । कणयमओ उत्तुंगो णाणाविहरयणसंछण्णो ॥ ३६

वणसंडखंडपरिउडो मणितोरणमंडिओ मणाभिरामो । चत्तारिसिहरसहिओ जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ ३७

मायंगकुंभसरिसो विगडासुर[3]णामदेवसाहीणो । बहुदेवभवणछण्णो वरपोक्खरणीहि रमणीओ ॥ ३८

अवरेण तदो गंतुं होइ तहा पउमकावदी विजओ । पट्टणमडंबपउरो बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ ३९

वररयणायरपउरो दोणामुहकव्वडेहि[4] कयसोहो । गंगासिंधूहि जुदो वेदड्ढणगेण रमणीओ ॥ ४०

देसस्स रायधाणी विजयपुरी णामदो त्ति णिद्दिट्ठा । वज्जिंदणीलमरगयपासादवरेहिं संछण्णा ॥ ४१

धवलब्भकूडसरिस[5]णाणाभवणेहि सोहिया दिव्वा । जिणभवणसिद्धणिवहा सुगंधगंधुद्धुदा[6] रम्मा ॥ ४२

ग्रामों व नगरोंके समूहसे सहित, मटंबों व खेड़ोंसे मण्डित, दिव्य नगरों व आकरोंसे व्याप्त और रत्नद्वीपोंसे घिरा हुआ है ॥ ३३ ॥ उस देशकी राजधानी महापुरी नामकी उत्तम नगरी जानना चाहिये । वह नगरी रत्नमय भवनसमूहसे सहित; मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंके परिणाम स्वरूप; मणिमय प्राकारसे युक्त, निर्मल मणि व सुवर्णमय गोपुरद्वारोंसे संयुक्त, जिनेन्द्रभवनोंके समूहसे युक्त और सर्वतः मंगलमय होती हुई शोभायमान है ॥ ३४–३५ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर विक-[विज] टावती नामका शैल है । यह शैल सुवर्णमय, उन्नत, नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त, वनखण्डोंसे वेष्टित, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, चार शिखरोंसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, दिव्य, हाथीके कुम्भस्थलके सदृश, विकटासुर नामक देवके स्वाधीन, बहुत देवभवनोंसे व्याप्त और उत्तम पुष्करिणियोंसे रमणीय है ॥ ३६–३८ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर पद्मकावती नामका देश है । यह देश प्रचुर पट्टनों व मटंबोंसे सहित, बहुत ग्रामोंसे भरा हुआ, रम्य, उत्तम रत्नाकरोंकी प्रचुरतासे संयुक्त, द्रोणमुखोंसे व कर्वटोंसे शोभायमान, गंगा-सिन्धु नदियोंसे युक्त और वैताढ्य पर्वतसे रमणीय है ॥ ३९–४० ॥ उस देशकी राजधानी विजयपुरी नामसे निर्दिष्ट की गई है । यह नगरी वज्र, इन्द्रनील एवं मरकत मणिमय श्रेष्ठ प्रासादोंसे व्याप्त, धवल मेघकूटके सदृश नाना भवनोंसे शोभित, दिव्य, जिनभवनों व सिद्धभवनोंके समूहसे संयुक्त, सुगन्ध गन्धसे व्याप्त, रम्य, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम

---

१ ब महापुरीदोत्तिणोमवर. २ ब णिम्मलवरकणय. ३ ब वेगडादिसुर. ४ श बहुगामकव्वडेहि. ५ ब सरिस. ६ उ श सुगंधुगंधुद्धुदा, ब सुगंधुगंधद्धुदा.

वणवेदिएहि जुत्ता[1] वरतोरणमंडिया मणभिरामा । णाणापडायणिवहा अमरिंदपुरी व पच्चक्खा ॥ ४३
अवरेण तदो गंतुं सीदोद[2] विभंगणामदो होइ । वरणदि अगाहतोया दक्खिणदो उत्तरे वहइ ॥ ४४
वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया मणभिरामा । अट्ठावीससहस्सणदीहि परिवेढिया[3] वहइ ॥ ४५
अवरेण तदो गंतुं संखा णामेण जणवदो होइ । वरसालिछेत्त[4]णिवहो पुंडुच्छु[5]वणेहि संछण्णो ॥ ४६
कल्हारकमलकंदलणीलुप्पलकुमुदछण्ण[6]दीहीहि । वरपोक्खरिणीहिं तहा सोहइ सो जणवदो रम्मो ॥ ४७
गंगा सिंधू य तहा गच्छंति य उत्तरेहि[7] य मुहेहि । देसम्मि तम्मि मज्झे रुप्पमओ होइ वेदड्ढो ॥ ४८
तस्स देसस्स मज्झे अरया णामेण होइ वरणयरी । अमरावइसमसरिसा मणिकंचणरयणसारेण ॥ ४९
फलिहमणिभवणणिवहा कंचणपासादमंडिया दिव्वा । वणवेदिएहि जुत्ता वरतोरणभूसिया रम्मा ॥ ५०
पोक्खरणिवाविपउरा जिणभवणविहूसिया मणभिरामा । उज्जाणवणसमिद्धा णरणारिगणेहि रमणीया ॥ ५१
अवरेण तदो गंतुं आसीविसपव्वदो पुणो होइ । णिद्धंतकणयवण्णो बहुविहमणिकिरणपज्जलिओ ॥ ५२
रयणमयभवणणिवहो विज्जाहरगरुडकिंणरावासो । सुरसयसहस्सपउरो जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ ५३

तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम और नाना पताकाओंके समूहसे सहित होती हुई साक्षात् इन्द्रपुरीके समान प्रतीत होती है ॥ ४१-४३ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर अगाध जलसे संयुक्त सीतोदा नामकी उत्तम विभंगा नदी है, जो दक्षिणसे उत्तरकी ओर बहती है ॥ ४४ ॥ यह नदी वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम और अट्ठाईस हजार नदियोंसे वेष्टित होकर जाती है ॥ ४५ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर शंखा नामक देश है। वह रम्य देश उत्तम शालि धानके खेतोंके समूहसे सहित, पौंडा व ईखके वनोंसे व्याप्त तथा कल्हार, कमल, कन्दल, नीलोत्पल एवं कुमुदोंसे आच्छादित ऐसी दीर्घिकाओं एवं पुष्करिणियोंसे शोभायमान है ॥ ४६-४७ ॥ वहां गंगा-सिन्धु नदियां उत्तरकी ओर जाती हैं। उस देशके मध्यमें रजतमय वैताढ्य पर्वत है ॥ ४८ ॥ उस देशके मध्यमें अरजा नामक श्रेष्ठ नगरी है। यह नगरी मणि, सुवर्ण एवं रत्न रूप धनसे अमरावतीके सम-सदृश है ॥ ४९ ॥ उक्त नगरी स्फटिकमणिमय भवनसमूहसे सहित, सुवर्णमय प्रासादोंसे मण्डित, दिव्य, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे भूषित, रम्य, प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे संयुक्त, जिनभवनोंसे विभूषित, मनको अभिराम, उद्यान-वनोंसे समृद्ध और नर-नारीगणोंसे रमणीय है ॥ ५०-५१ ॥ फिर उससे पश्चिमकी ओर जाकर आशीविष नामका पर्वत है। यह पर्वत खूब तपाये गये सुवर्णके सदृश वर्णवाला, बहुत प्रकारके मणियोंके किरणोंसे प्रज्वलित, रत्नमय भवनोंके समूहसे सहित; विद्याधर, गरुड़ एवं किन्नरोंका आवासस्थान, लाखों देवोंकी प्रचुरतासे युक्त, जिनभवनसे विभूषित,

---

१ उ श जुत्तो. २ क ब सीदोदा. ३ उ श वरिवेढिया. ४ उ श सालिच्छेत. ५ ब पुंडछु. ६ उ श कुमुदुच्छण्ण. ७ ब सिंधू तह गच्छंति दु उत्तरेहि.

वणवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ परमरम्मो । आसीविससुरसहिओ सुरिंदकरिकुंभसमसिहरो ॥ ५४
तत्तो अवरदिसाए णलिणो[1] णामेण जणवदो[2] होइ । णलिणि[3]वणेहि सरेहि य सोहइ सो सव्वदोभद्दो ॥ ५५
जवसालिधण्णपउरो तुवरीकप्पासगोहुमाइण्णो । वरराजमासपउरो मरीचि[4]वेल्लीहि[5] संछण्णो ॥ ५६
गंगाणदीहि रम्मो सिंधूसरिएहि भूसियपदेसो[6] । छक्खंडणलिणविजओ वेदड्ढगगेण अभिरामो ॥ ५७
तम्मि देसम्मि मज्झे विरजा णामेण होइ वरणयरी । मणिरयणभवणणिवहा कंचणपायाररमणीया ॥ ५८
वेरुलियदार[7]पउरा अगाहखाईहि परिउडा दिव्वा । जिणइंदभवणणिवहा उत्तुंगपडायसंछण्णा ॥ ५९
अवरेण तदो गंतुं होइ णदी सोदवाहिणीणामा[8] । वणवेदिएहि जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ ६०
मरगयकंचणविद्दुमसोवाणगणेहि सोहिया दिव्वा । संखेंदुकुंदपंडुर तरंगभंगेहि रमणीया ॥ ६१
अट्ठावीसाहि तहा सहस्सगुणिदाहि णदिहि[9] संजुत्ता । देहलितलेण पविसइ सीतोदा तोरणवरस्स ॥ ६२
णेया विभंगसरिया सीदोदजलं अणंतगंभीरं । पविसइ वेगेण पुणो वणसायरसद्दणिवहेण[10] ॥ ६३

दिव्य, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, अतिशय रमणीय, आशीविष नामक देवसे सहित और ऐरावत हाथीके कुम्भके सदृश शिखरसे संयुक्त है ॥ ५२-५४ ॥ उससे पश्चिम दिशामें जाकर नलिना नामक देश है । सर्वतः मंगलमय वह देश नलिनीवनों और सरोवरोंसे शोभायमान है ॥ ५५ ॥ छह खण्डोंसे युक्त यह नलिना देश जौ एवं शालि धान्यकी प्रचुरतासे सहित; तूवर, कपास व गेहूंसे भरपूर; उत्तम राजमापकी प्रचुरतासे युक्त, मरीचि (मिर्च) की वेलोंसे व्याप्त, गंगा नदी व सिन्धु नदीसे भूषित प्रदेशवाला और वैताढ्य पर्वतसे सुशोभित है ॥ ५६-५७ ॥ उस देशके मध्यमें विरजा नामक उत्तम नगरी है । यह नगरी मणियों एवं रत्नोंके भवनसमूहसे सहित, सुवर्णमय प्राकारसे रमणीय, वैडूर्य मणिमय प्रचुर द्वारोंसे सहित; अगाध खातिकाओंसे वेष्टित, दिव्य, जिनेन्द्रोंके भवनसमूहसे संयुक्त और उन्नत पताकाओंसे व्याप्त है ॥ ५८-५९ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर स्रोतोवाहिनी नामकी नदी है । यह नदी वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, मरकत, सुवर्ण एवं विद्रुममय सोपान समूहोंसे शोभित, दिव्य; शंख, चन्द्रमा एवं कुन्द पुष्पके समान धवल तरंगों-भंगोंसे रमणीय और अट्ठाईस हजार नदियोंसे संयुक्त होती हुई उत्तम तोरणद्वारके देहलितलसे सीतोदा नदीमें प्रवेश करती है ॥ ६०-६२ ॥ यह विभंगा नदी बादल अथवा समुद्र जैसे शब्द समूहके साथ वेगसे अनंतगंभीर (अथाह) सीतोदा नदीके जलमें प्रवेश करती है, ऐसा जानना चाहिये

१ ब णलिणो. २ उ जणवहो, श जणवेदो. ३ ब णलिण. ४ उ श वण्ण, ब वल्ल. ५ ब सरीचि. ६ ब सिंधूसरियहि भूसियापएसो, श सिंधूसरिएहि रम्मो प पदेसो. ७ श दारु. ८ उ श णाम. ९ कप्रतिपाठोऽयम्, उ ब श गुणिदाणदीहि. १० उ श व्वण.

अवरेण तदो गंतुं कुमुदा णामेण जणवदो होइ। धणधण्णरयणणिवहो णगरायरमंडिओ पवरो ॥ ६४
कलमं[1]बहुपोसवल्लियहरिकेसरिरत्त[2]सालिछेत्तड्ढो[3]। रज्जण्ण[4]महिससालिवसंतसालीहि संछण्णो ॥ ६५
गंगासिंधूहि तहा वेदड्ढणगेण भूसिओ देसो। बहुगामणयरपट्टणमडंबखेडेहि रमणीओ ॥ ६६
विसयम्मि तम्मि मज्झे होइ असोग त्ति णामदो णयरी। सज्जणजणेहिं भरिया कलगुणविण्णाणजुत्तेहि ॥
वरवज्जकणयमरगयणाणापासादसंकुला रम्मा। वेरुलियवेदिणिवहा[5] मरगयवरतोरणुत्तुंगा[6] ॥ ६८
ससिकंतरयणसिहरा[7] जिणभवणविहूसिया परमरम्मा। पोक्खरणिवाविपउरा वणसंडविहूसिया दिव्वा ॥ ६९
तत्तो अवरदिसाए सुहावहो[8] णामदो णगो[9] होइ। अट्ठसिहरसहिओ जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ ७०
कमलाभवेदिणिवहो[10] फलिहामयतोरणेहि कयसोहो। कणियारकेसरणिभो वणसंडविहूसिओ दिव्वो ॥ ७१
मणिमयपासादजुदो[12] संगीयमुइंगसद्दगंभीरो। तण्णामदेवसहिओ सुरसुंदरिसंकुलो दिव्वो ॥ ७२
अवरेण तदो गंतुं सरिदा णामेण जणवदो होइ। बहुगामणयरपउरो[13] रयणदीवेहि कयसोहो ॥ ७३
पट्टणमडंबपउरो[14] दोणामुहबहुविहेहिं रमणीओ। संवाहणिवहसहिओ कव्वडणिवहेहि रमणीओ ॥ ७४

॥ ६३ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर कुमुदा नामका देश है। यह देश धन, धान्य एवं रत्नोंके समूहसे सहित, नगरों व आकरोंसे मण्डित, श्रेष्ठ; कलम धान, बहुपोप बल्लि, हरि केसरि व रक्तशालि धानके खेतोंसे व्याप्त, राजधान्य (श्यामा) महिष शालि व वसंत शालिसे ढका हुआ(?) गंगा-सिन्धु नदियों तथा वैताढ्य पर्वतसे भूषित और बहुत ग्रामों, नगरों, पट्टनों, मटंबों एवं खेड़ोंसे रमणीय है ॥ ६४–६६ ॥ उस देशके मध्यमें अशोका नामकी नगरी है। यह नगरी कला-गुण एवं विज्ञानसे युक्त सज्जन जनोंसे परिपूर्ण, उत्तम वज्र, सुवर्ण व मरकतमय नाना प्रासादोंसे व्याप्त, रम्य, वैडूर्यमय वेदीसमूहसे युक्त, मरकतमय उत्तम उन्नत तोरणोंसे संयुक्त, चन्द्रकान्त मणियोंके शिखरोंसे सहित ऐसे जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे संयुक्त, दिव्य और वनखडोंसे विभूषित है ॥६७–६९॥ उससे पश्चिम दिशामें सुखावह नामका पर्वत है। यह दिव्य पर्वत चार शिखरोंसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, दिव्य, उत्तम पद्म जैसी प्रभावाली वेदिकाओंके समूहसे सहित, स्फटिकमणिमय तोरणोंसे शोभायमान, कनेरके परागके सदृश प्रभावाली, वनखण्डोंसे विभूषित, दिव्य, मणिमय प्रासादोंसे युक्त, संगीत व मृदंगके शब्दसे गम्भीर, उसके नामवाले (सुखावह) देवसे सहित और देवांगनाओंसे व्याप्त है ॥ ७०–७२ ॥ उससे पश्चिमकी ओर जाकर सरिता नामक देश है। यह देश प्रचुर ग्रामों व नगरोंसे युक्त, रत्नद्वीपोंसे शोभायमान, पट्टनों व मटंबोंकी प्रचुरतासे सहित, बहुत प्रकारके द्रोणमुखोंसे रमणीय, संवाहसमूहसे सहित और कर्वटसमुदायसे रमणीय है ॥ ७३–७४ ॥

१ उ श कलव, क ब कमल. २ श हरिकसोरत. ३ उ चछेत्तछो, ब छेत्तट्ठो, श छेत्तट्ठो. ४ उ श रज्जण्ण, क ब राजण्ण. ५ उ श णिवह. ६ ब वरतोरणतुंगा ७ ब सियरा. ८ ब सुहावहा. ९ श सुहावहो मंदरगो. १० उ कमलाहवेदिण्णिवहो, क कमलाभवेदिणिवहो, ब कमलाहवेदिणिवहो, श कमलहवि-दिण्णिवहो. ११ ब वणमंड. १२ ब पासाइ. १३ ब गामयरपउरो; श गामणयपउरो. १४ उ श पवरो.

णामेण विगयसोगा वरणगरी होइ तस्स देसस्स । मणिरयणभवणणिवहा कंचणपासादरमणीया ॥ ७५
ससिकंतवेदिणिवहा[1] मरगयवरतोरणेहि रमणीया । धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ ७६
तत्तो अवरदिसाए कणयमया वेदिया समुद्दिट्ठा । वेकोससमुत्तुंगा पंचेव धणुस्सया विउला ॥ ७७
तत्तो अवरदिसाए देवारण्णं हवे समुद्दिट्ठं । णाणादुमगणगहणं बहुभवणसमाउलं रम्मं ॥ ७८
पणदालीस सहस्सा सोज्झा रासी अवट्ठिया होइ । अणवट्ठिदा य सेसा[2] सोहणरासी समुद्दिट्ठा ॥ ७९
सत्तावीससहस्सा बे चेव सया य सत्तणउदा य । सोहम्मि य परिसुद्धं[3] सेसं अट्ठेहि पविहत्तं ॥ ८०
जं लद्धं णायव्वा विजयाणं तह य होइ विक्खंभं[4] । अवरस्स विदेहस्स य[5] समासओ होइ णिद्दिट्ठो[6] ॥ ८१
तेयालीससहस्सा सोज्झम्मि य सोहिऊण अवसेसं । चउभजिएण य लद्धं वक्खाराणं[7] तु विक्खंभं ॥ ८२
चउदालीससहस्सा छच्चेव सया तहेव[8] पणुवीसा । सोज्झम्मि सुद्धसेसं तिहि भजिए होइ सरियाणं ॥ ८३

उस देशकी राजधानी विगत (वीत) शोका नामकी उत्तम नगरी है। यह नगरी मणियों एवं रत्नोंके भवनसमूहसे सहित, सुवर्णमय प्रासादोंसे रमणीय, चन्द्रकान्त मणिमय वेदीसमूहसे युक्त, मरकतमय उत्तम तोरणोंसे रमणीय, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त, दिव्य और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ ७५-७६ ॥ उससे पश्चिम दिशामें जाकर सुवर्णमय वेदिका कही गई है। यह वेदिका दो कोश ऊंची और पांच सौ धनुष विस्तृत है ॥ ७७ ॥ उससे पश्चिम दिशामें नाना वृक्षोंसे गहन और बहुतसे भवनोंसे व्याप्त रमणीय देवारण्य कहा गया है ॥ ७८ ॥ पैंतालीस हजार शोध्य राशि अवस्थित है, शेष शोधन राशि है जो अनवस्थित कही गई है ॥ ७९ ॥ सत्ताईस हजार दो सौ सतानबै [(५००×४) + (१२५×३) + २९२२ + २२००० = २७२९७] को शोध्य राशिमेंसे कम करके शेषको आठसे विभक्त करनेपर जो लब्ध हो उतना (४५००० − २७२९७ ÷ ८ = २२१२ ७/८) अपर विदेहके विजयोंका विष्कम्भ जानना चाहिये, ऐसा संक्षेपसे निर्दिष्ट किया गया है ॥ ८०-८१ ॥ शोध्य राशिमेंसे तेतालीस हजारको घटाकर शेषको चारसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना [४५००० − (१७७०२ + ३७५ + २९२२ + २२०००) ÷ ४ = ५००] वक्षारोंका विष्कम्भ होता है ॥ ८२ ॥ चवालीस हजार छह सौ पच्चीसको शोध्य राशिमेंसे घटाकर शेषको तीनसे भाजित करनेपर नदियोंके विष्कम्भका प्रमाण [४५००० − (१७७०२ + २००० + २९२२ + २२०००) ÷ ३ = १२५] होता है ॥ ८३ ॥ ब्यालीस हजार

१ ब वेदणिवहा. २ उ श अणवट्ठियाए सेसा. ३ उ श सोहम्मि य परिसुद्धं, ब सोज्झम्मि दु परिसिद्धं. ४ ब होइ तह य विक्खंभा. ५ ब हु. ६ उ श होइ ति णिद्दिट्ठो. ७ ब चहुभजिणेण य णेयं वक्खाराणं. ८ ब तह य.

बादालीसलहस्सा अट्ठत्तरि सोहिऊण[2] सोज्झम्मि[3] । जं सेसं तं होदि य[4] देवारण्णस्स विक्खंभं ॥ ८४
दीवस्स दु विक्खंभे विक्खंभविहीण मंदरगिरिस्स[5] । सेसद्धकदे[6] होदि य सोज्झा रासी वियाणाहि ॥ ८५
विक्खंभइच्छरहिदं[7] विक्खंभवसेसं मेलवेदूणं । जं लद्धं तं णेया सोहणरासी हवे दिट्ठा ॥ ८६
सीदोदाविक्खंभं सोहेऊणं विदेहविक्खंभे[8] । सेसद्धेण दु णेया आयामं होइ विजयाणं ॥ ८७
तत्तो देववणादो गंतूणं उत्तरे दिसाभागे । अवरं देवारण्णं होइ महादुमगणाइण्णं ॥ ८८
कप्पूरागरुणिवहं असोयपुण्णायणायतरुगहणं । कुडवकयंबाइण्णं[9] चंपयमंदारसंछण्णं ॥ ८९
तम्मि दु देवारण्णे देवाणं होंति दिव्वणगराणि । कोडाकोडीणि[10] तहा कंचणमणिरयणणिवहाणि ॥ ९०
भवणाणि जिणिंदाणं[11] तत्थेव हवंति तुंगकूडाणि । वरइंदणीलमरगयकक्केयणरयणणिवहाणि ॥ ९१
पुव्वेण तदो गंतुं कणयमया वेदिया समुद्दिट्ठा । पंचसयदंडविउला उव्विद्धा होइ वे कोसा ॥ ९२
तत्तो पुव्वेण पुणो वप्पा विजओ त्ति णामदो देसो । होइ धणधण्णणिवहो बहुगामसमाउलो रम्मो ॥ ९३

अठत्तरको शोध्य राशिमेंसे घटाकर जो शेष रहे उतना [४५००० – (१७७०३ + २००० + ३७५ + २२०००) = २९२२] देवारण्यका विष्कम्भ होता है ॥ ८४ ॥ द्वीपके विष्कम्भमेंसे मन्दर गिरिके विष्कम्भको घटाकर शेषको आधा करनेपर ($\frac{१०००००-१००००}{२}$) शोध्य राशि होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८५ ॥ इच्छित विष्कम्भसे रहित शेष सबके विष्कम्भको मिलाकर जो लब्ध हो उतनी शोधन राशि निर्दिष्ट की गई जानना चाहिये ॥८६॥ विदेहके विष्कम्भमेंसे सीतोदाके विष्कम्भको घटाकर शेषको आधा करनेसे विजयोंका आयाम होता है (देखिये पीछे गा. ७, १२-१३) ॥ ८७ ॥ उस देववनसे उत्तर दिशाभागमें जाकर महा वृक्षोंके समूहसे व्याप्त दूसरा देवारण्य है ॥ ८८ ॥ यह देवारण्य कपूर व अगरु वृक्षोंके समूहसे सहित; अशोक, पुन्नाग व नाग तरुओंसे गहन; कुटज एवं कदंब वृक्षोंसे व्याप्त तथा चंपक व मन्दार वृक्षोंसे घिरा हुआ है ॥ ८९ ॥ उस देवारण्यमें देवोंके सुवर्ण, मणियों एवं रत्नोंके समूहसे युक्त करोड़ों दिव्य नगर हैं ॥ ९० ॥ वहां उत्तम इन्द्रनील, मरकत एवं कर्केतन रत्नोंके समूहसे निर्मित, उन्नत शिखरोंवाले जिनेन्द्रोंके भवन हैं ॥ ९१ ॥ उससे पूर्वमें जाकर सुवर्णमय वेदी कही गई है । यह वेदी पांच सौ धनुष विस्तृत और दो कोश ऊंची है ॥ ९२ ॥ उससे पूर्वकी ओर वप्राविजय नामका देश है । यह दिव्य देश धन-धान्यसमूहसे सहित, बहुत ग्रामोंसे व्याप्त, रम्य, प्रचुर पट्टनों व मटम्बोंसे संयुक्त; द्रोणमुखों,

---

१ उ श बयालीस. २ उ श सोदिऊण. ३ ब सज्झम्मि. ४ उ श दोदि य. ५ हु विक्खंभो विहीणविक्खंभ मंदर. ६ उ श सेसस्सकदि. ७ उ श इच्छदेरहिदं. ८ उ श विक्खंभो. ९ उ श कंयवायण्णं. १० क दिव्वणगराणि कोडाकोडीहि, ब दिव्वाणाराणि कोडाकोडीहि. ११ उ-श जिणंदाणं

पट्टणमडंबपउरो दोणामुहखेडकव्वडसणाहो । बहुरयणदीवणिवहो णयरायरमंडिओ दिव्वो ॥ ९४
रत्तारत्तोदाओ णदियाओ जत्थ होंति दिव्वाओ । वरपव्वदो वि रम्मो वेदड्ढो होइ वरसिहरो ॥ ९५
तित्थयरचक्कवट्टीबलदेवा वासुदेवमंडलिया । उप्पज्जंति महप्पा वप्पाविजयम्मि[1] णायव्वा ॥ ९६
तस्स देसस्स णेया विजयपुरी णामदो त्ति विक्खाया[2] । होइ मणिकणयणिवहा सुरिंदणयरीसमा दिव्वा ॥ ९७
रविकंतवेदिणिवहा[3] विद्दुमवरतुंगगोउरसणाहा । मणिरयणभवणणिवहा जिणइंदघरेहि[4] रमणीया ॥ ९८
पुव्वेण तदो गंतुं होइ पुणो चंदपव्वदो तुंगो[5] । कोरंटकुसुमवण्णो णाणाविहरयणकिरणड्ढो ॥ ९९
कणयमयवेदिणिवहो वेरुलियमहंतगोउरसणाहो । वणसंडमंडिओ सो मणिमयपासादसंछण्णो ॥ १००
मत्तकरिकुंभसिहरो[6] चउकूडविहूसिओ परमरम्मो । चंदसुररायसहिओ जिणभवणविराजिओ दिव्वो ॥ १०१
पुव्वेण तदो गंतुं होइ सुवप्पो त्ति[7] जणवदो विउलो । बहुगामणयरणिवहो रयणद्दीवेहि संछण्णो ॥ १०२
कव्वडमडंबणिवहो पट्टणदोणामुहेहि घणणिचिओ । संवाहखेडपउरो बहुविहणयरेहि संछण्णो ॥ १०३

खेड़ों व कर्वटोंसे सनाथ, बहुतसे रत्नद्वीपोंके समूहसे युक्त, और नगरों व आकरोंसे मण्डित है ॥ ९३-९४ ॥ जहां रक्ता-रक्तोदा नामकी दिव्य नदियां तथा उत्तम शिखरवाला रमणीय वैताढ्य नामक श्रेष्ठ पर्वत भी है । उस वप्रा विजयमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव एवं मण्डलीक महापुरुष उत्पन्न होते रहते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९५-९६ ॥ उस देशकी राजधानी विजयपुरी नामसे विख्यात नगरी जानना चाहिये । सुरेन्द्रनगरीके समान वह दिव्य नगरी मणियों एवं सुवर्णके समूहसे संयुक्त, सूर्यकान्त मणिमय वेदीसमूहसे सहित, विद्रुममय उत्तम ऊंचे गोपुरोंसे सनाथ, मणियों एवं रत्नोंके भवनसमूहसे युक्त और जिनेन्द्रगृहोंसे रमणीय है ॥ ९७-९८ ॥ उसके पूर्वमें जाकर चन्द्र नामका उन्नत वक्षार पर्वत है । वह पर्वत कोरंट वृक्षके फूलोंके समान वर्णवाला, नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त, सुवर्णमय वेदी-समूहसे सहित, वैडूर्यमणिमय महा गोपुरोंसे सनाथ, वनखण्डोंसे मण्डित, मणिमय प्रासादोंसे व्याप्त, मत्त हाथीके कुम्भस्थल जैसे शिखरवाला, चार कूटोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, चन्द्र नामक देवराजसे सहित, दिव्य और जिनभवनसे सुशोभित है ॥ ९९-१०१ ॥ उसके पूर्वमें जाकर सुवप्र नामक विशाल देश है । यह देश बहुत ग्रामों व नगरोंके समूहसे सहित, रत्नद्वीपोंसे व्याप्त, कर्वटों व मटंबोंके समूहसे संयुक्त, पट्टनों व द्रोणमुखोंसे अत्यन्त निबिड, संवाहों व खेड़ोंके प्राचुर्यसे युक्त और बहुत प्रकारके नगरोंसे व्याप्त है ॥ १०२-१०३ ॥ इस देशके

---

१ उ श विसयम्मि. २ ब णामदो त्ति वारणयरी. ३ उ श रविकंतिवेदिणिवहा, ब रविकंतवेदणिवहा, श रविकंतिवेदणिवहा. ४ उ श वरेहि. ५ ब गंतु होइ पुणो चंदप्पहो तुंगो, श गंतुं गो. ६ ब सियरो. ७ ब सुण्णाचि.

चोद्दसयसहस्सेहिं[1] य णईहि सहिया महाणदी रत्ता[2] । रत्तोदा वि तह च्चिय[3] वहंति देसस्स मज्झेण ॥ १०४
दक्खिणमुहेण गंतुं वेदीणिवहेहि तोरणजुदेहि । सीदोदाए सलिलं पविसंति दु तोरणमुहेण ॥ १०५
वेदड्ढो वि य सेलो मेरुं काऊण णाइ सुणिविट्ठो[4] (?)। देसस्स मज्झभागे रयदमओ तिसेढिसंजुत्तो[5] ॥ १०६
णामेण वइजयंती सुवप्पविजयस्स होइ वरणयरी । कंचणपायारजुदा मरगयवरतोरणसणाहा ॥ १०७
वरपउमरायमरगयकक्केयणइंदणीलघरणिवहा । वेरुलियवज्जकंचणजिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ १०८
[[6]पुव्वेण तदो गंतुं वरणइ गंभीरमालिणीणामा । होइ विहंगा णेया कंचणसोवाणरमणीया ॥ १०९
मरगयवेदीणिवहा कक्केयणतोरणेहि संछण्णा । णाणातरुवरगहणा वणसंडविहूसिया दिव्वा ॥ ११०]
अट्ठावीसाहिं तहा सहस्सणइयाहिं[7] संजुया सरिया । दक्खिणमुहेण गंतुं सीदोदजलं समाविसइ[8] ॥ १११
पुव्वेण तदो गंतुं होइ महावप्पणामओ देसो । [[9]हुवप्पसालिणिवहो जवगोहुममाससंछण्णो ॥ ११२
रयणायरेहि रम्मो मडंवणिवहेहि मंडिओ दिव्वो ।] बहुपट्टणेहि[12] पुण्णो कव्वडखेडेहि[13] रमणीओ ॥ ११३

मध्यमें चौदह हजार नदियोंसे सहित महानदी रक्ता तथा उतनी ही नदियोंसे संयुक्त रक्तोदा भी, ये दो नदियां बहती हैं ॥ १०४ ॥ उक्त दोनों नदियां तोरण युक्त वेदीसमूहसे सहित होकर दक्षिणकी ओर जाती हुई तोरणद्वारसे सीतोदाके जलमें प्रवेश करती हैं ॥१०५॥ देशके मध्य भागमें तीन श्रेणियोंसे संयुक्त रजतमय वैताढ्य पर्वत भी स्थित है जो मेरु जैसा प्रतीत होता है ॥१०६॥ सुवप्रा विजयका राजधानी वैजयन्ती नामक नगरी है। यह दिव्य नगरी सुवर्णमय प्राकारसे युक्त, मरकतमय उत्तम तोरणोंसे सनाथ; उत्तम पद्मराग, मरकत, कर्केतन व इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित ऐसे गृहसमूहसे सहित और वैडूर्य, वज्र एवं सुवर्णमय जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ १०७–१०८ ॥ उसके पूर्वमें जाकर गम्भीरमालिनी नामकी उत्तम विभंगा नदी है। यह नदी सुवर्णमय सोपानोंसे रमणीय, मरकतमय वेदीसमूहसे संयुक्त, कर्केतन रत्नोंसे निर्मित तोरणोंसे व्याप्त, अनेक उत्तम वृक्षोंसे गहन, वनखण्डोंसे विभूषित, दिव्य और अट्ठाईस हजार नदियोंसे संयुक्त होती हुई दक्षिणकी ओर जाकर सीतोदाके जलमें प्रवेश करती है ॥ १०९–१११ ॥ उसके पूर्वमें जाकर महावप्रा नामका देश है। यह देश बहुतसे खेतों व शालिसमूहसे सहित; जौ, गेहूं व उड़दसे व्याप्त, रत्नाकरोंसे रमणीय, मटंबोंके समूहसे मण्डित, दिव्य, बहुत पट्टनोंसे पूर्ण, कर्वटों व खेडोंसे रमणीय, धान्यसे परिपूर्ण ग्रामोंके समूहसे संयुक्त,

---

१ उ चोद्दससयसहसेहि, ब चउदससयस्सेहि, श चोद्दससयसहेहि. २ श नदीहि संछण्णो रत्ता. ३ ब तहं विय. ४ उ श णाइसुणिविदिट्ठो, ब णाइसुणिविट्ठो. ५ रयणमओ सोट्टिसंजुत्तो. ६ बप्रतौ नोपलभ्यतेऽयं कोष्ठकस्थः पाठः। ७ उ सहस्साणइयाहि, श सहस्साइयाहि. ८ श दक्खिणमुहेण गंतुं होइ महावप्पणामओ देसो वसइ. ९ ब वण. १० बप्रतौ नोपलभ्यतेऽयं कोष्ठकस्थः पाठः। ११ उ श गेहूवमास. १२ ब वउवप्पट्टणेहि. १३ उ श पुणो कव्वंडखेडाहि, ब पुणो कव्वडसेडेहि.

धण्णद्दगामणिवहो णाणादोणामुहेहि कयसोहो । वरदीवणयरपउरो संवाहविहूसिओ रम्मो[1] ॥ ११४
वेदड्ढपव्वएण[2] य रत्तारत्तोदएहि कयसोहो । पोक्खरणिवाविपउरो वणसंडविहूसिओ दिव्वो ॥ ११५
देसस्स तस्स णेया होइ जयंत त्ति[4] णामओ णयरी । वेरुलियकणयमरगयरयणप्पासायसंछण्णा ॥ ११६
वरपउमरायपायारपरिउडा खाइएहि संजुत्ता । जासवणकुसुमसण्णिभमणितोरणभासुरा रम्मा ॥ ११७
सिसिरयरहारसंणिमजिणिंदभवणेहि सोहिया दिव्वा । वरपंचवण्णणिम्मलपडायणिवहेहिं सोहंता[7] ॥ ११८
पुव्वेण तदो गंतुं होइ पुणो सूरपव्वदो रम्मो । णवचंपयवरवण्णो[8] जिणभवणविहूसिओ तुंगो ॥ ११९
कणयमयवेदिणिवहो[9] मरगयमणितोरणेहि कयसोहो । अद्धट्ठकूडसहिओ बहुभवणविहूसिओ दिव्वो ॥१२०
आइच्चदेवसहिओ वणसंडविहूसिओ मणभिरामो । सुरसुंदरिसंछण्णो पउमिणिसंडेहि रमणीओ ॥ १२१
पुव्वेण तदो गंतुं होइ तहा वप्पकावदी विजओ । धणधण्णरयणणिवहो गोमहिसीसमाउलो दिव्वो ॥ १२२
बहुकव्वडेहि[10] रम्मो पट्टणणिवहेहि मंडिओ दिव्वो । रयणायरेहि[11] पुण्णो मडंबखेडाहि रमणीओ ॥ १२३
दोणामुहेहि छण्णो णाणागामेहि तह य कयसोहो । संवाहणयरपउरो वरदीवविहूसिओ रम्मो ॥ १२४

नाना द्रोणमुखोंसे शोभायमान, उत्तम द्वीपों व नगरोंके प्राचुर्यसे सहित, संवाहोंसे विभूषित, रम्य, वैताढ्य पर्वत व रक्ता-रक्तोदा नदियोंसे शोभायमान, प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे युक्त, दिव्य और वनखण्डोंसे विभूषित है ॥ ११२-११५ ॥ उस देशकी राजधानी जयन्ता नामकी नगरी जानना चाहिये । यह नगरी वैडूर्यमणि, सुवर्ण व मरकत रत्नोंके प्रासादोंसे व्याप्त; उत्तम पद्मराग मणिमय प्राकारसे वेष्टित, खातिकाओंसे संयुक्त, जपाकुसुमके सदृश मणिमय तोरणोंसे भासुर, रम्य, चन्द्र व हारके सदृश वर्णवाले जिनेन्द्रभवनोंसे शोभित, दिव्य, और उत्तम पांच वर्णवाली निर्मल पताकाओंके समूहोंसे शोभायमान है ॥ ११६-११८ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर रम्य सूर पर्वत है । यह पर्वत उत्तम नवीन चम्पकके समान वर्णवाला, जिनभवनसे विभूषित, उन्नत, सुवर्णमय वेदिसमूहसे युक्त, मरकतमणिके तोरणोंसे शोभायमान, आठके आधे अर्थात् चार कूटोंसे सहित, बहुत भवनोंसे विभूषित, दिव्य, आदित्य नामक देवसे सहित, वनखण्डोंसे विभूषित, मनको अभिराम, देवांगनाओंसे व्याप्त और पद्मिनीखण्डोंसे रमणीय है ॥ ११९-१२१ ॥ उसके पूर्वमें जाकर वप्रकावती नामका देश है । यह देश धन-धान्य व रत्नसमूहसे सहित, गायों व भैंसोंसे भरपूर, दिव्य, बहुत कर्वटोंसे रमणीय, पट्टन-समूहोंसे मण्डित, दिव्य, रत्नाकरोंसे पूर्ण, मटंबों व खेड़ोंसे रमणीय, द्रोणमुखोंसे आच्छन्न, नाना ग्रामोंसे शोभायमान, प्रचुर संवाहों व नगरोंसे सहित, रम्य और उत्तम द्वीपोंसे विभूषित है

---

१ उ श विहूसिओ परम्मो, ब विभूसिउरम्मेण. २ उ श पुव्वएण. ३ उ श वय. ४ क जयंति त्ति. ५ उ श पायर. ६ ब सिसिरयणहार. ७ उ श सोहंतं. ८ श वणवण्णो. ९ उ श णवहो. १० उ श बहुव्वकवडेहि, ब बहुकुव्वडेहि. ११ ब रययणायरेहि. १२ ब देव.

देसस्स तस्स णेया होदि य अवराजिद त्ति[1] वरणयरी । कंचणपायारजुदा मणितोरणभासुरा दिव्वा ॥ १२५
वेरुलियवज्जमरगयपवालवरकणयभवणसंछण्णा । जिणइंदभवणणिवहा सुगंधगंधुद्धुदा[2] रम्मा ॥ १२६
पुव्वेण तदो गंतुं होइ णदी फेणमालिणीणामा[3] । मरगयकंचणविद्दुमसोवाणगणेहि सोहंती[4] ॥ १२७
कंचणवेदीहि जुदा ससिकंतमणीहि तोरणुत्तुंगा[5] । वियरंतमच्छकच्छवसुगंधजलपूरिया दिव्वा ॥ १२८
अट्ठावीसाहि तहा सहस्सणदियाहि संजुदा रम्मा । दक्खिणमुहेण गंतुं पवहइ सीदोदमज्झेण ॥ १२९
पुव्वेण तदो गंतुं वग्गू णामेण जणवदो होइ । बहुगामसमाइण्णो[8] णाणाविहधण्णसंपण्णो ॥ १३०
दिव्वसंवाहणिवहो दिव्वमडंबेहि भूसिओ रम्मो । दिव्वणयरेहि पुण्णो[10] दिव्वायरमंडिओ पवरो ॥ १३१
दिव्वखेडेहि जुत्तो[11] दिव्वमहापट्टणेहि रमणीओ । दिव्वबहुकव्वडजुदो दिव्वो वरदोणमुहसहिओ[12] ॥ १३२
वेदड्ढरिसभपव्वदरत्तारत्तोदएहि रमणीओ । पोक्खरणिवाविपउरो वणसंडविहूसिओ दिव्वो ॥ १३३
देसस्स तस्स णेया चक्कपुरी[13] णामदो त्ति वरणयरी । वरचक्कवट्टिसहिया णरपवरा सव्वकालम्मि ॥ १३४

॥ १२२-१२४ ॥ उस देशकी राजधानी अपराजिता नामकी उत्तम नगरी जानना चाहिये । यह नगरी सुवर्णमय प्राकारसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे भासुर, दिव्य; वैडूर्य, वज्र, मरकत, प्रवाल और उत्तम सुवर्णके भवनोंसे घिरी हुई, जिनेन्द्रभवनोंके समूहसे सहित, रम्य तथा सुगन्ध गन्धसे युक्त है ॥ १२५-१२६ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर फेनमालिनी नामकी रमणीय नदी है। यह नदी मरकत, सुवर्ण एवं विद्रुममय सोपानगणोंसे शोभित; सुवर्णमय वेदियोंसे युक्त, चन्द्रकान्त मणिमय उन्नत तोरणोंसे संयुक्त, विचरते हुए मत्स्यों व कछवाओंसे सहित, सुगन्धित जलसे परिपूर्ण, दिव्य तथा अट्ठाईस हजार नदियोंसे संयुक्त होती हुई दक्षिणकी ओर जाकर सीतोदाके मध्यसे बहती है ॥ १२७-१२९ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर वल्गू नामक देश है । यह देश बहुत ग्रामोंसे व्याप्त, नाना प्रकारके धान्यसे सम्पन्न, दिव्य संवाहसमूहसे सहित, दिव्य मटंबोंसे भूषित, रम्य, दिव्य नगरोंसे पूर्ण, दिव्य आकरोंसे मण्डित, श्रेष्ठ, दिव्य खेड़ोंसे युक्त, दिव्य महा पट्टनोंसे रमणीय, बहुतसे दिव्य कर्वटोंसे युक्त, दिव्य, उत्तम द्रोणमुखोंसे सहित, वैताढ्य व ऋषभ पर्वतों तथा रक्ता-रक्तोदा नदियोंसे रमणीय, प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे सहित, दिव्य और वनखण्डोंसे विभूषित है ॥ १३०-१३३ ॥ उस देशकी राजधानी चक्रपुरी नामकी उत्तम नगरी जानना चाहिये, जहां श्रेष्ठ चक्रवर्ती सहित उत्तम मनुष्य सब कालमें

१ ब अवराजिदो त्ति. २ ब सुगंधुगंधद्धुवा. ३ उ श णाम. ४ ब संहंति, क सोहंति. ५ उ श कंति. ६ ब जुदससिकंतमणीहि तोरणतुंगा. ७ बप्रतावेतस्या गाथाया उत्तरार्धभागोऽयं नोपलभ्यते, तत्रैतस्य स्थाने १३१तम-गाथाया उत्तरार्धभाग उपलभ्यते. ८ उ समावण्णो, श समाउवणो. ९ ब संवाहदिव्व. १० ब पुणो. ११ उ दिव्वखेचेहि हुत्तो, ब दिव्ववखेचेहि जुदो, श दिव्वजेचेहि जुत्तो. १२ उ श दिव्वरदोणमुह, ब दिव्वावरदोणमुह. १३ उ श चक्कपुरा.

वेरुलियवेदिणिवहा कंचणवरतोरणेहि रमणीया । वज्जिंदणीलमरगयविद्दुमपासादसंछण्णा ॥ १३५

भिंगारकलसदप्पणचामरघंटादिधयवडाजुत्ता । मुत्तादामसंसग्गा जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ १३६

पुव्वेण तदो गंतुं होइ महाणागपव्वदो तुंगो । णागवरकुंभसरिसो चउसिहरविहूसिओ दिव्वो ॥ १३७

वणवेदिएहिं जुत्तो वरतोरणमंडिओ मणभिरामो । णागसुररायसहिओ जिणभवणविहूसिओ विउलो ॥ १३८

पुव्वेण तदो गंतुं होइ सुवग्गु त्ति जणवदो रम्मो । अमरकुमारसमाणा णरपवरा जत्थ दीसंति ॥ १३९

चारुखेडेहिं जुत्तो चारुमहापट्टणेहि रमणीओ । चारुवरकव्वडजुदो चारु पुणो दोणमुहसहिओ ॥ १४०

चारुसंवाहणिवहो चारुमडंवेहि भूसिओ रम्मो । चारुणयरेहि जुत्तो चारुमहागामसंछण्णो ॥ १४१

रत्ताणदिसंजुत्तो वेदड्ढणगेण मंडिओ पवरो । रत्तोदाएण जुदो रिसिभगिरिविहूसिओ दिव्वो ॥ १४२

देसस्स तस्स णेया खग्गपुरी णामदो त्ति वरणयरी । मरगयपासादजुदा पवालवरतोरणारम्मा ॥ १४३

वरवज्जरजदमरगयकंचणपासादसंकुला रम्मा । घंटापडायणिवहा वरभवणविहूसिया दिव्वा ॥ १४४

रहते हैं । उक्त दिव्य नगरी वैडूर्य मणिमय वेदिसमूहसे युक्त, सुवर्णमय उत्तम तोरणोंसे रमणीय; वज्र, इन्द्रनील, मरकत एवं विद्रुमसे निर्मित प्रासादोंसे व्याप्त; भृंगार, कलश, दर्पण, चामर, घंटा आदिक तथा ध्वजपटोंसे युक्त, मुक्तामालाओंसे परिपूर्ण और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ १३४–१३६ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर उन्नत महानाग नामक पर्वत है । यह विशाल पर्वत उत्तम हाथीके कुम्भके सदृश, चार शिखरोंसे विभूषित, दिव्य, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, नाग नामक देवराजसे सहित और जिनभवनसे विभूषित है ॥ १३७–१३८ ॥ उससे पूर्वमें जाकर सुवल्गू नामक रमणीय देश है, जहांके श्रेष्ठ मनुष्य देवकुमारोंके सदृश दिखते हैं ॥ १३९ ॥ यह दिव्य देश सुन्दर खेड़ोंसे युक्त, सुन्दर महा पट्टनोंसे रमणीय, सुन्दर उत्तम कर्वटोंसे युक्त, सुन्दर द्रोणमुखोंसे सहित, सुन्दर संवाहसमूहसे संयुक्त, सुन्दर मटंबोंसे भूषित, रम्य, सुन्दर नगरोंसे युक्त, सुन्दर महाग्रामोंसे व्याप्त, रक्ता नदीसे युक्त, वैताढ्य पर्वतसे मण्डित, श्रेष्ठ, रक्तोदासे युक्त और ऋषभ गिरिसे विभूषित है ॥ १४०–१४२ ॥ उस देशकी राजधानी खड्गपुरी नामकी उत्तम नगरी जानना चाहिये । यह नगरी मरकत मणिमय प्रासादोंसे युक्त, प्रवालमय उत्तम तोरणोंसे रमणीय, उत्तम वज्र, रजत, मरकत एवं सुवर्णके प्रासादोंसे व्याप्त, रमणीय, घंटा व पताकासमूहसे संयुक्त, दिव्य व उत्तम भवनोंसे विभूषित है ॥ १४३–१४४ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर ऊर्मिमालिनी नामकी नदी

---

१ उ विद्दुपासाद, श विद्दुमुपासाद. २ ब धयवडाजुत्ता दाम. ३ उ श णाठावरकंभ, ब णागावरकुसम. ४ उ चातुखेडाहि, ब चारुसुखेहि, श चतुखेडाहि. ५ उ श फव्वड. ६ ब संवाहचारुणिवहो. ७ उ श रिसिभ.

पुव्वेण तदो गंतुं होइ णदी उम्मिमालिणी णाम । विदिया विभंगसरिया दो णामा होंति सव्वाणं ॥ १४५
वेरुलियवेदिणिवहा विद्दुमवरतोरणेहि संजुत्ता । मणिमयसोवाणजुदा सुगंधसलिलेहि संपुण्णा ॥ १४६
वणसंडेहि य सहिया अट्ठावीसासहस्सणइजुत्ता[1] । दक्खिणमुहेण गंतुं सीदोदजलं विसइ[2] सरिया ॥ १४७
वरतोरणदाराणं देहलियाणं तलेण पविसंति[3] । सव्वाओ सरियाओ णायव्वा[4] होंति णिद्दिट्ठा ॥ १४८
पुव्वेण तदो गंतुं गंधिलणामो त्ति जणवदो होइ । वरगंधसलिलपउरो[5] जवगोहुमसुग्गसंपण्णो[6] ॥ १४९
वरगामणयरपट्टणमडंबदोणामुहेहि संच्छण्णो । संवाहखेडकव्वडरयणायरमंडिओ दिव्वो ॥ १५०
रिसभगिरिरूप्पपव्वदरत्तारत्तोदएहि रमणीओ । कमलुप्पलछण्णेहि[7] य वावीदीहीहि कयसोहो ॥ १५१
देसस्स तस्स दिट्ठा होदि यउज्झ त्ति णामदो णयरी । अज्जुणपायारजुदा पवालमणितोरणदुवारा ॥ १५२
ससिसूरकंतमरगयपवालवरपउमरायवरणिवहा । फलिहमणिकणयविद्दुमजिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ १५३
पुव्वेण तदो गंतुं णामेण य देवपव्वदो[10] होइ । ससिकंतवेदिणिवहो पवालवरतोरणुत्तुंगो[11] ॥ १५४
मत्तकरिकुंभसरिसो चउसिहरविहूसिओ मणभिरामो । तुंगजिणभवणणिवहो बहुभवणसमाउलो रम्मो ॥ १५५

है । इसका दूसरा नाम विभंगा सरित् है । इन सब नदियोंके दो नाम होते हैं ॥१४५॥ उक्त नदी वैडूर्य मणिमय वेदीसमूहसे सहित, विद्रुममय उत्तम तोरणोंसे संयुक्त, मणिमय सोपानोंसे युक्त, सुगन्ध जलसे सम्पूर्ण, वनखण्डोंसे सहित और अट्ठाईस हजार नदियोंसे युक्त होती हुई दक्षिणकी ओर जाकर सीतोदाके जलमें प्रवेश करती हैं ॥ १४६–१४७ ॥ सब नदियां उत्तम तोरणद्वारोंकी देहलियोंके तलसे प्रवेश करती हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये ॥ १४८ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर गन्धिला नामक देश है । यह देश उत्तम गन्धयुक्त प्रचुर जलसे परिपूर्ण; जौ, गेहूं एवं मूंगसे सम्पूर्ण; उत्तम ग्रामों, नगरों, पट्टनों, मटंबों व द्रोणमुखोंसे व्याप्त; संवाहों, खेडों, कर्वटों एवं रत्नाकरोंसे मण्डित; दिव्य, ऋषभगिरि व रूपाचल पर्वतों एवं रक्ता-रक्तोदा नदियोंसे रमणीय, तथा कमलों व उत्पलोंसे व्याप्त ऐसी वापियों एवं दीर्घिकाओंसे शोभायमान है ॥ १४९–१५१ ॥ उस देशकी राजधानी अयोध्या नामक नगरी निर्दिष्ट की गई है । यह दिव्य नगरी रजतमय प्राकारसे युक्त, प्रवाल मणिमय तोरणद्वारोंसे सहित; चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, मरकत प्रवाल एवं उत्तम पद्मराग मणियोंके गृहसमूहसे सहित तथा स्फटिक मणि, सुवर्ण एवं विद्रुममय जिनभवनोंसे विभूषित है ॥१५२–१५३॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर देव (देवमाल) नामका पर्वत है । यह पर्वत चन्द्रकान्त मणिमय वेदीसमूहसे सहित, प्रवालमय उत्तम उन्नत तोरणोंसे संयुक्त, मत्त हाथीके कुम्भके सदृश, चार शिखरोंसे विभूषित, मनको अभिराम, उन्नत जिनभवनोंके समूहसे सहित, बहुत भवनोंसे व्याप्त, रम्य, नाना वृक्षसमूहोंसे गहन, बहुत

१ गाथेयं नोपलभ्यते बप्रतौ । २ उ श विभ्भंग. ३ ब जुदा. ४ उ श पविसइ. ५ ब पविसंता. ६ ब णायव्वो. ७ ब वरगंधसलिलपउरो, श वरगंधसाधिपवरो. ८ उ श संपण्णा. ९ ब छसोहि. १० ब णामेण य एव्वदो. ११ ब तोरणातुंगो.

णाणादुमगणगहणो बहुदेवसमाउलो[1] परमरम्मो । तण्णामदेवसहिओ दीहीपोक्खरणिरमणीओ ॥ १५६
पुव्वेण तदो गंतुं होइ पुणो गंधमालिणी विजओ । वरगंधसालिपउरो पुंडुच्छुवणेहिं[2] संछण्णो ॥ १५७
छण्णउदिगामकोडीहिं मंडिओ विविहधण्णणिवहेहिं । छव्वीससहस्सेहिं य आगरणिवहेहिं संछण्णो ॥ १५८
चउवीससहस्सेहिं य कव्वडणिवहेहिं मंडिओ दिव्वो । अडदालसहस्सेहिं य पट्टणपवरेहिं[3] कयसोहो ॥ १५९
दोणामुहेहिं य तहा णवणउदिसहस्सएहि संजुत्तो । चत्तारिसहस्सेहिं य मडंबणिवहेहिं रमणीओ ॥ १६०
चोद्दसयसहस्सेहिं संवाहवरेहिं भूसियो देसो । दुगुणट्ठसहस्सेहिं य खेडाहि य मंडिओ पवरो ॥ १६१
छप्पण्णरयणदीवेहिं[4] मंडिओ विविहरयणणिवहेहिं । मागधवरतणुएहि य पभासदीवेण रमणीओ ॥ १६२
रत्ताणदीए जुत्तो रत्तोदाएण[5] तह य रमणीओ । गोवहगिरिणा सहिओ विज्जाहरसेलसंजुत्तो ॥ १६३
देसम्मि तम्मि मज्झे होइ अवज्झ त्ति णामदो णयरी । कंचणपवालमरगयकक्केयणरयणघरणिवहा ॥ १६४
बारहसहस्सरत्थेहिं मंडिया विविहरयणणिवहेहिं । चच्चरचउक्कएहि य सहस्ससंखेहिं रमणीया ॥ १६५
गोउरदारसहस्सा कंचणमणिरयणमंडिया दिव्वा । तोरणदारा णेया पंचेव सया दु णयरीए ॥ १६६

देवोंसे व्याप्त, अतिशय रमणीय, उसके (अपने) नामवाले देवसे सहित और दीर्घिकाओं एवं पुष्करिणियोंसे रमणीय है ॥ १५४-१५६ ॥ उससे पूर्वकी ओर जाकर गन्धमालिनी देश है । यह देश उत्तम गन्धवाली प्रचुर शालि धान्यसे संयुक्त, पौंड़ा व ईखके वनोंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके धान्यके समूहोंसे संयुक्त ऐसे छयानबै करोड़ ग्रामोंसे मण्डित, छब्बीस हजार आकरोंके समूहोंसे व्याप्त, चौबीस हजार कर्बटसमूहोंसे मण्डित, दिव्य, अड़तालीस हजार श्रेष्ठ पट्टनोंसे शोभायमान, निन्यानबै हजार द्रोणमुखोंसे संयुक्त, चार हजार मटंबोंके समूहोंसे रमणीय, चौदह हजार उत्तम संबाहोंसे भूषित, दुगुणित आठ हजार (१६०००) खेड़ोंसे मण्डित, श्रेष्ठ, विविध प्रकारके रत्नसमूहोंसे युक्त ऐसे छप्पन रत्नद्वीपोंसे मण्डित; मागध, वरतनु एवं प्रभास द्वीपोंसे रमणीय; रक्ता नदीसे युक्त, तथा रक्तोदा नदीसे रमणीय, वृषभ-गिरिसे सहित, और विद्याधरशैल (विजयार्ध पर्वत) से संयुक्त है ॥१५७-१६३ ॥ उस देशके मध्यमें अवध्या नामकी नगरी है । यह दिव्य नगरी सुवर्ण, प्रवाल, मरकत एवं कर्केतन रत्नोंके गृहसमूहसे युक्त; विविध प्रकारके रत्नसमूहोंसे संयुक्त ऐसे बारह हजार रथमार्गोंसे मण्डित, एक हजार चत्वरों— चतुष्पथोंसे रमणीय, एक हजार गोपुरद्वारोंसे सहित, तथा सुवर्ण मणि एवं रत्नोंसे मण्डित है । उस नगरीमें पांच सौ तोरणद्वार जानना चाहिये । सुवर्णमय प्राकारसे युक्त,

१ ब बहुभवणसमाउलो. २ उ वणोहिं, श वरोहिं. ३ उ श पट्टणणिवहेहिं. ४ उ श दीवोहिं. ५ ब रत्तोदाएहिं.

कंचणपायारजुदा अगाहखाईहि परिउडा' रम्मा । पोक्खरणिवाविपउरा उज्जाणवणेहि रमणीया ॥ १६७
धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । णाणाजणसंकिण्णा सुरिंदणगरी व रमणीया ॥ १६८
तित्थयरपरमदेवा गणहरदेवा य चक्कवट्टीया' । बलदेववासुदेवा णरपवरा जत्थ' जायंति ॥ १६९
अरहंतपरमदेवेहि भासिओ धम्मदीवपज्जलिया । धम्माणुभासरहिया मिच्छत्तकुलिंगपरिहीणा ॥ १७०
बम्हाविण्हुमहेसरदुग्गाआइच्चचंदबुद्धाणं । भवणाणि णत्थि तम्मि दु विदेहवस्सम्मि णायव्वा ॥ १७१
णइयाइयवइसेसियमीमंसा'संखकपिलमदभेदा । सुद्धोदणादिदरिसणं कदावि' ण वि होंति विजएसु ॥ १७२
पुव्वेण तदो गंतुं कणयमया वेदिया पुणो होइ । जोयणअद्धुत्तुंगा पंचेव धणुस्सया विउला ॥ १७३
पुव्वेण तदो गंतुं पंचसया जोयणाणि वेदीदो । णीलसमीवे होइ य कणयमओ दिव्ववरसेलो' ॥ १७४
बावीससहस्साइं' गंतूण य भद्दसालवणमज्झे । वरगंधमादणणगो मेरुसमीवे समुद्दिट्ठो ॥ १७५
चत्तारिकूडसहिओ जिणभवणविहूसिओ परमरम्मो । वणवेदिएहि जुत्तो वरतोरणमंडिओ दिव्वो ॥ १७६
बहुभवणसंपरिउडो तण्णामादेवरायसाहीणो । अमरविलासिणिपउरो गयकुंभसमो समुत्तुंगो ॥ १७७

अगाध खातिकासे वेष्टित, रम्य, प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे संयुक्त, उद्यान-वनोंसे रमणीय, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित, जिनभवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय और नाना जनोंसे संकीर्ण वह नगरी सुरेन्द्रनगरीके समान रमणीय है, जहां तीर्थंकर परमदेव, गणदेव, चक्रवर्ती, बलदेव एवं वासुदेव रूप पुरुष-पुंगव जन्म लेते हैं। तथा वह नगरी अरहंत परमदेवोंसे उपदिष्ट धर्म-प्रदीपसे प्रकाशित, धर्माभासोंसे रहित और मिथ्यात्व व कुलिंगसे हीन है ॥ १६४-१७० ॥ उस विदेह वर्षमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य, चन्द्र और बुद्धदेवके भवन नहीं हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ १७१ ॥ उन विजयोंमें नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक, सांख्य-कपिल, ये मतभेद तथा शुद्धोदन (बुद्ध) आदिके दर्शन कदाचित् भी नहीं होते ॥ १७२ ॥ उससे आगे पूर्वकी ओर जाकर सुवर्णमय वेदिका है, जो अर्ध योजन ऊंची और पांच सौ धनुष विस्तृत है ॥१७३॥ उस वेदीसे आगे पांच सौ योजन पूर्वकी ओर जाकर नील पर्वतके समीपमें सुवर्णमय दिव्य उत्तम पर्वत स्थित है ॥ १७४ ॥ भद्रशाल वनके मध्यमें बाईस हजार योजन जाकर मेरुके समीपमें स्थित उत्तम गन्धमादन पर्वत कहा गया है ॥१७५॥ यह उन्नत पर्वत चार कूटोंसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, अतिशय रमणीय, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, बहुत भवनोंसे वेष्टित, उसीके नामवाले देवराजके स्वाधीन, प्रचुर देवांगनाओंसे सहित और हाथीके कुम्भके सदृश है ॥ १७६-१७७ ॥

---

१ उ खाइपरिउडा, श खाईपरिउडा. २ ब देवाण चक्कवट्टी य. ३ उ श जित्य. ४ उ मीसंमा, श मीसंसा. ५ उ ब श मह. ६ उ सुद्धोदणाहिदरिसण, श सुद्धोदणाहिदरिसयण. ७ ब कदावि. ८ उ णीलसमीव होदि य कमेणमउ दिव्ववरसेलो, श णीलसमीव होदि द य कमेणमउ दिव्ववसेलो. ९ उ श सहस्साई. १० ब श वर.

पुव्वेण तदो गंतुं तेवण्णसहस्सजोयणपमाणो । वेरुलियरयणवण्णो होइ णगो मालवंतो त्ति ॥ १७८
अट्ठक्खसिहरसहिओ बहुभवणसमाउलो[2] परमरम्मो । तण्णामदेवसहिओ जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ १७९
मरगयपासादजुदो[3] विद्दुमवरतोरणेहि रमणीओ । बहुदेवदेविणिवहो गइंदसंठाणरमणीओ ॥ १८०
सुरणगरसंपरिउडो वावीपोक्खरणिवप्पिणसणाहो । वणसंडमणभिरामो धयवडधुव्वंतकयसोहो ॥ १८१
पुव्वेण तदो गंतुं पंचसया जोयणाणि सेलादो[4] । कणयमया वरवेदी होइ पुणो णीलपासम्मि ॥ १८२
तत्तो दु पव्वदादो गंतूणं भद्दसालवणमज्झे[5] । बावीसं च सहस्सा सीदापासम्मि सा वेदी ॥ १८३
बेगाउदउत्तुंगा सगउण्णय[6]अट्ठभागवित्थिण्णा । णाणामणिगणणिवहा सुरभवणसमाउला रम्मा ॥ १८४
णेया णदीण तीरे वीसदिवक्खारपव्वदाणं तु । भवणाणि जिणिंदाणं णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहि ॥ १८५
पासादा णायव्वा पणुवीसा जोयणा दु वित्थारा । पण्णासा आयामा किंचूणडतीसउत्तुंगा[7] ॥ १८६
तिण्णेव वरदुवारा मणितोरणमंडिया मणभिरामा । वणवेदिएहिं जुत्ता णाणामणिरयणपरिणामा ॥ १८७
घंटापडायपउरा मुत्तादामेहि मंडिया दिव्वा । भिंगारकलसणिवहा वरदप्पणभूसिया[8] पवरा ॥ १८८

उससे आगे पूर्वकी ओर तिरेपन हजार योजन प्रमाण जाकर वैडूर्य रत्नके समान वर्णवाला माल्यवन्त नामक पर्वत है। यह पर्वत चार शिखरोंसे सहित, बहुत भवनोंसे युक्त, अतिशय रमणीय, उसके ही नामवाले देवसे सहित, जिनभवनसे विभूषित, दिव्य, मरकतमय प्रासादों-से युक्त, विद्रुममय उत्तम तोरणोंसे रमणीय, बहुत देव-देवियोंके समूहसे युक्त, गजेन्द्रा-कृतिसे रमणीय, देवनगरोंसे वेष्टित, वापियों, पुष्करिणियों व खेतोंसे सनाथ, वनखण्डोंसे मनो-हर और फहराते हुए ध्वजपटोंसे शोभायमान है ॥ १७८-१८१ ॥ पुनः उस पर्वतसे पूर्वकी ओर पांच सौ योजन जाकर नील पर्वतके पासमें सुवर्णमय उत्तम वेदी स्थित है ॥ १८२ ॥ वह वेदी उस पर्वतसे आगे भद्रशाल वनके मध्यमें बाईस हजार योजन जाकर सीताके पासमें स्थित है ॥ १८३ ॥ यह रमणीय वेदी दो कोश ऊंची, उंचाईके आठवें भाग (५०० धनुष) प्रमाण विस्तीर्ण, नाना मणिगणोंके समूहसे युक्त और देवभवनोंसे व्याप्त है ॥ १८४ ॥ नदियोंके किनारे बीस वक्षार पर्वतोंके ऊपर सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट जिनेन्द्रोंके भवन जानना चाहिये ॥ १८५ ॥ वे प्रासाद पच्चीस योजन विस्तृत, पचास योजन आयत और कुछ कम अड़तीस योजन ऊंचे जानना चाहिये ॥ १८६ ॥ तीन उत्तम द्वारोंसे युक्त, मणिमय तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, वन-वेदियोंसे युक्त, नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप, प्रचुर घंटाओं व पताकाओंसे सहित, मुक्तामालाओंसे मण्डित, दिव्य, भृंगारों व कलशोंके समूहसे सहित,

१ उ श वेरुलिय. २ उ श बहुगामसमाउलो. ३ उ श पायर, ब पायार. ४ उ श पंचसयजोयणादु सेलादो. ५ उ श मद्दसालमज्झेण, ब भद्दसालवणमज्झेण. ६ उ सगउन्नया, क ब सगउण्णय, श सन्नउन्नया. ७ उ किंचूण उतीडसत्तुंगा, ब किंचूणं अडतीसउत्तुंगा, श किंचूणउतीसउत्तुंगा. ८ उ श कलसदप्पणवररयणविहूसिया, ब कलसणिवहा वहा वरदप्पणभूसिया.

लंबंतकुसुममाला गंधव्वमुदिंगसद्दगंभीरा। वरबुब्बुदेहिं छण्णा किंकिणिझंकाररमणीया ॥ १८९

वज्जंततूरणिवहा सुरबहुणट्टेहि सुट्ठुरमणीया। कालागरुगंधड्ढा बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ १९०

बलिधूवदीवणिवहा कुंकुमकप्पूरगंधसंपण्णा। णाणापडायपउरा बहुकोदुगमंगलसणाहा ॥ १९१

सीहासणछत्तत्तयभामंडलचामरादिसंजुत्ता। जिणपडिमा णिद्दिट्ठा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ १९२

एक्केक्के पासादे[3] जिणपडिमा विविहरयणसंछण्णा। अट्ठसयं अट्ठसयं णायव्वा होंति णियमेण ॥ १९३

पंचधणुस्सयउतुंगा पलियंकासणणिबद्धवरदेहा। लक्खणवंजणकलिया अंगोवंगेहि संछण्णा ॥ १९४

अट्ठसयं अट्ठसयं एक्केक्कजिणिंदपडिमस्स। उवयरणा णिद्दिट्ठा कंचणमणिरयणकयसोहा ॥ १९५

ससुरासुरदेवगणा विज्जाहरगरुडकिंणरा जक्खा। महिमं करंति सददं जिणपडिमाणं पयत्तेण ॥ १९६

सयलावबोहसहियं संतियरं सयलदोसपरिहीणं। वरपउमणंदिणमियं संतिजिणिंदं णमंसामि ॥ १९७

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे महाविदेहाहियारे अवरविदेहवण्णणो णाम णवमो उद्देसो समत्तो ॥ ९ ॥

उत्तम दर्पणोंसे विभूषित, श्रेष्ठ, लटकती हुई पुष्पमालाओंसे संयुक्त, गन्धर्वों व मृदंगके शब्दसे गम्भीर, उत्तम बुद्बुदोंसे व्याप्त, किंकिणियोंके झंकारसे रमणीय, बजते हुए वादित्रसमूहसे युक्त, बहुतसे नर्तक देवोंसे अतिशय रमणीय, कालागरुके गन्धसे व्याप्त, बहुत कुसुमों द्वारा की गई पूजासे सनाथ; बलि, धूप व दीपोंके समूहसे संयुक्त; कुंकुम व कपूरके गन्धसे सम्पन्न, नाना पताकाओंके प्राचुर्यसे सहित और बहुत कौतुक-मंगलोंसे सनाथ हैं ॥ १८७–१९१ ॥ उन जिनप्रासादोंमें सिंहासन, तीन छत्रों, भामण्डल व चामरादिसे संयुक्त ऐसी नाना रत्नोंके परिणाम रूप जिनप्रतिमायें निर्दिष्ट की गई हैं ॥१९२॥ विविध रत्नोंसे व्याप्त ये जिनप्रतिमायें एक एक प्रासादमें नियमसे एक सौ आठ एक सा आठ जानना चाहिये ॥१९३॥ उक्त जिनप्रतिमायें पांच सौ धनुष ऊंची, पल्यंकासनसे युक्त उत्तम देहवाली तथा लक्षणों व व्यञ्जनोंसे युक्त अंगोपांगोंसे व्याप्त हैं ॥ १९४ ॥ एक एक जिनेन्द्रप्रतिमाके सुवर्ण, मणि व रत्नोंसे की गई शोभासे सम्पन्न एक सौ आठ एक सौ आठ उपकरण निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ १९५ ॥ सुर व असुर देवोंके समूह, विद्याधर, गरुड़, किंनर और यक्ष निरन्तर उन जिनप्रतिमाओंकी प्रयत्नपूर्वक महिमा (पूजा) करते हैं ॥ १९६ ॥ पूर्ण ज्ञानसे सहित, शान्तिकारक, समस्त दोषोंसे रहित और उत्तम पद्मनन्दिसे वन्दित ऐसे शान्ति जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १९७ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें महाविदेहाधिकारमें अपरविदेहवर्णन नामक नौवां उद्देश समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

---

१ उ श णट्टेहि सुट्ठु, क ब णट्टेहि सुठ्ठ. २ क बलिधूवणिवहा कुंकुम, श विहूसियावपरा णिवहा कुंकुम. ३ उ यासदे, ब पासादा, श पासदे. ४ उ ब श धणुसय.

[दसमो उद्देसो]

कुंथुजिणिंदं पणमिय कम्मारिकलंकपंकउम्मुक्कं । लवणसमुद्दविभागं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ १

जंबूदीवं परियदि[1] समंतदो लवणतोयउदधी दु । सो बेण्णिसयसहस्सा णिद्दिट्ठो चक्कवालेण ॥ २

पुव्वेण दु पायालं वलयमुहं तह य होइ अवरेण । दक्खिणदिसे कदंबगजुवकेसरि[2] होइ उत्तरदो ॥ ३

पंचाणउदिसहस्सा ओगाहिय लवणचक्कवालम्मि । ते खिदिविवरे जाणसु अरंजणागार[3]संठाणा ॥ ४

मूलेसु य वदणेसु य[4] वित्थारा दससहस्स णिद्दिट्ठा । ओगाढ सयसहस्सा[5] तत्तियमेत्ता य मज्झेसु ॥ ५

पायालस्स तिभागो[6] हवदि य तेत्तीसजोयणसहस्सा । तिण्णिसया[7] तेत्तीसा एक्कतिभागेण अदिरेया[8] ॥ ६

हेट्ठिल्लम्हि तिभागे वादो[9] उदकं तु उवरिमतिभागे । मज्झिल्लम्हि तिभागे जलवादो[10] चलाचलो तत्थ ॥७

मज्झिल्लम्हि दु भागे उप्पिल्ले लवणउस्सओ[11] परमो । उप्पिल्ले उवसंते अवट्ठिदा बेल उयहिस्स[12] ॥ ८

कर्म-शत्रुरूपी कलंक-पंकसे रहित ऐसे कुंथु जिनेन्द्रको प्रणाम करके आनुपूर्वीके अनुसार लवण समुद्रके विभागको कहते हैं ॥ १ ॥ दो लाख योजन विस्तारवाला वह लवण समुद्र वृत्ताकार होकर चारों ओरसे जम्बूद्वीपको वेष्टित करता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ॥ २ ॥ पूर्वमें पाताल, पश्चिममें वलयमुख (वडवामुख), दक्षिण दिशामें कदंबक और उत्तरमें यूपकेसरी, इस प्रकार ये चार पाताल लवण समुद्रकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ३ ॥ वलयाकार लवण समुद्रमें पंचानवै हजार योजन जाकर वे पाताल रांजनके आकारसे स्थित हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४ ॥ इनका विस्तार मूलमें व मुखमें दश हजार योजन, अवगाह एक लाख योजन तथा इतना (एक लाख यो.) ही मध्यमें विस्तार भी निर्दिष्ट किया गया है ॥ ५ ॥ पातालके तीन त्रिभागोंमेंसे प्रत्येक त्रिभाग तेतीस हजार तीन सौ तेतीस योजन और एक तृतीय भागसे अधिक (३३३३३$\frac{1}{3}$ यो.) है ॥ ६ ॥ पातालोंके अधस्तन त्रिभागमें वायु, उपरिम त्रिभागमें जल, और मध्यम त्रिभागमें चलाचल जल-वायु है ॥ ७ ॥ मध्यम त्रिभागके उत्पीड़ित होनेपर अर्थात् उसके जलभागसे रहित होकर केवल वायुसे परिपूर्ण होनेपर लवण समुद्रका उत्कृष्ट उत्सेध होता है । उत्पीड़नके शान्त होनेपर समुद्रकी बेला अवस्थित रहती है ॥ ८ ॥ उनके

---

१ उ श परियदि. २ उ कलंवगहुत्रकेसरि, क कलंबुअजुगकेसरि, ब कलंबुगजुगकेसरि, श कलंत्रकजुवकेसरि. ३ क अलजणायार, ब अलंजेणायार. ४ उ मूलेसु वि वदणेसु वि, ब मूलेसु य वहणेसु य, श मूलेसु वि दणेसु वि. ५ उ उग्गाय सय, ब उग्गाड सय, श उग्गायण सय. ६ उ श पायालसतिभागो, ब पायलस्स विभागे. ७ उ श तन्निसया. ८ उ श एक्कतिभागेण अइरेय, क एयतिभागेहिं अधिरेया, ब एयतिभागेय अधिरेया. ९ क तेहिं तिभागेहिं अधो वादो, ब तिहि तिंभागेहिं अधो वादो. १० उ श जलवदो, क ब जलवाद. ११ उ श उ संओ, ब उस्सउ. १२ उ श अवट्ठिदो चेल उवहिस्स, क अवट्ठिदा वेल उहियस्स.

तेसिं उस्ससणेण य सिहा पवट्टेदि[1] सव्वदो लवणे। सोलससहस्स मज्झे जोयणअद्धं तु तह अंते[2] ॥ ९
अवराणि य अण्णाणि य[3] सहस्सं तम्हि[4] सागरे। ओगाढाणि समंतेण जलदो वित्थडाणि य[5] ॥ १०
चदुसु वि दिसासु चत्तारि जेट्ठया[6] मज्झिमा[7] य विदिसासु। अवरुत्तरमेक्केक्कं[8] पणुवीस सयं जहण्णा दु ॥ ११
एगसहस्सं अट्ठुत्तरं तु पादालसंख[9] विण्णेया[10]। मुहमूलेसु सदं खलु सहस्स ओवेह डहराणं ॥ १२
मुहमूले[11] वेहो वि य डहराणं[12] दसगुणं तु मज्झिमया। सव्वत्थ मज्झिमा वि य दसगुणिय महल्लया होंति ॥
णव चेव सयसहस्सा अडदालाइं सहस्स छच्च सया। तेसीदिजोयणाइं समधिय परिधी समुद्दिट्ठा ॥ १४
सत्तावीससहस्सा दोण्णि य लक्खा तहेव सदरिं सदं। साहियतिण्णि य कोसा तइंतरं[13] जाण जेट्ठाणं ॥ १५
एक्कं च सदसहस्सा[14] पंचासीदा य तेरससहस्सा। मज्झिमपादालाणं तइंतरं साहियक्कोसं[15] ॥ १६

उच्छ्वाससे अर्थात् नीचेके दो त्रिभागोंके केवल वायुसे पूर्ण होनेपर लवण समुद्रके सब ओर मध्यमें सोलह हजार योजन और अन्तमें अर्ध योजन प्रमाण शिखा प्रवृत्त होती है ॥ ९ ॥ उस समुद्रमें अन्य एक हजार जघन्य पाताल भी हैं। उनका अवगाह और मध्यम विस्तार (सौ योजन) समान है (?) ॥ १० ॥ चारों दिशाओंमें चार ज्येष्ठ पाताल और विदिशाओंमें चार मध्यम पाताल हैं। इनमेंसे एक एकके इस ओर तथा उस ओर एक सौ पच्चीस जघन्य पाताल स्थित हैं ॥ ११ ॥ पातालोंकी संख्या एक हजार आठ जानना चाहिये। इन जघन्य पातालोंका विस्तार मुखमें और मूलमें सौ योजन तथा उद्वेध एक हजार योजन प्रमाण है ॥१२॥ मध्यम पातालोंके मुख व मूलमें विस्तार तथा उद्वेधका प्रमाण जघन्य पातालोंकी अपेक्षा दशगुणा (१०००) है। ज्येष्ठ पाताल सर्वत्र मध्यम पातालोंकी अपेक्षा दशगुणित है ॥ १३ ॥ लवण समुद्रकी [मध्यम] परिधि नौ लाख अड़तालीस हजार छह सौ तेरासी योजनोंसे कुछ अधिक कही गई है ॥ १४ ॥ ज्येष्ठ पातालोंका अन्तर दो लाख सत्ताईस हजार एक सौ सत्तर योजन और तीन कोशसे कुछ अधिक जानना चाहिये ($९४८६८३ - ४०००० \div ४ = २२७१७० \frac{३}{४}$) ॥१५॥ [ज्येष्ठ] और मध्यम पातालोंका अन्तर एक लाख तेरह हजार पचासी योजन और एक कोशसे कुछ अधिक है ($२२७१७० \frac{३}{४} - १००० \div २ = ११३०८५ \frac{३}{८}$) ॥१६॥

---

१ उ श उस्ससमाणे सीहा वदंति, ब उस्ससेण य सिहा पवट्टेदि. २ उ श अद्धं मंते अंतो. ३ उ श अवराणि य अंताणि, ब अवराणि च्चं अण्णाणि व. ४ क ब तहिं. ५ उ श जलादो वित्थडाणि य, क जलदो वित्थडाणि य, ब जलादो वित्थडा य. ६ क जेट्ठाया, ब जेडाया. ७ उ श मज्झिमाया, ब मज्झिमाए. ८ उ अवरुत्तरमरकक्कं, ब अवरोत्तरमेक्केक्कं, श अवरुत्तरमक्ककक्क. ९ क बादाल. १० उ श ब विण्णेय. ११ उ श मूलो. १२ ब य अडहराणं. १३ उ श तिण्णि य कोसा मणिया तहत्तरं. १४ उ श एवं च सयस्सा, ब एक्कं च सदसहस्सा. १५ उ श तहतरं होइ कोसहिया.

सत्तसदट्ठाणउदा सत्ततीसा य जोयणा भणिया[1] । खुल्लगपादालाणं अंतरमधियं मुणेदव्वं[2] ॥ १७
पुण्णिमदिवसे लवणो[3] सोलसजोयणसहस्सउत्तुंगो । अमवासिदिणे[4] णेया एयारसजोयणसहस्सा ॥ १८
समहियतिभाग जोयण तिण्णेय सया हवंति तेत्तीसा । लवणोदयपरिवड्ढी दिवसे दिवसे समुद्दिट्ठा ॥ १९
किण्हेण होइ हाणी सुक्किलपक्खेण[5] होइ परिवड्ढी । पण्णरसेणं विभत्ता पंचसहस्सा समुद्दिट्ठा ॥ २०
सुहभूमिविसेसेण य उच्छयभजिदं तु सा हवे वड्ढी । इच्छागुणियं मुहपक्खित्ते य होइ इच्छफलं[6] ॥ २१
वित्थार दससहस्सा मज्झम्मि दु होइ लवणउवहिस्सं[7] । अवगाढो दु सहस्सं मक्खीपक्खोवमो अंते[8] ॥ २२

क्षुद्र पातालोंका अन्तर सात सौ अट्ठानबै योजन और [एक योजनके एक सौ छब्बीस भागोंमेंसे] सैंतीस भागोंसे कुछ अधिक कहा गया जानना चाहिये {११३०८५$\frac{३}{८}$ – (१२५ × १००) ÷ १२६ = ७९८$\frac{२९९}{१००८}$} ॥ १७ ॥ लवण समुद्र पूर्णिमाके दिन सोलह हजार योजन और अमावस्याके दिन ग्यारह हजार योजन ऊंचा जानना चाहिये ॥ १८ ॥ लवण समुद्रके जलमें प्रतिदिन एक त्रिभागसे अधिक तीन सौ तेतीस योजन प्रमाण वृद्धि कही गई है ॥ १९ ॥ कृष्ण पक्षमें लवण समुद्रके जलमें [प्रतिदिन] पन्द्रहसे विभक्त पांच हजार ($\frac{५०००}{१५}$ = ३३३$\frac{१}{३}$) योजन प्रमाण हानि और शुक्ल पक्षमें उतनी ही वृद्धि कही गई है ॥ २० ॥ भूमिमेंसे मुखको कम करके उत्सेधका भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है । इच्छासे गुणित वृद्धिको मुखमें मिलानेपर इच्छित फल होता है ॥ २१ ॥

उदाहरण— अमावस्याके दिन लवण समुद्रके जलकी ऊंचाई ११००० यो. होती है । शुक्ल पक्षमें वह क्रमशः प्रतिदिन बढ़कर पूर्णिमाके दिन १६००० यो. प्रमाण हो जाती है । अब यदि हम अभीष्ट १२ वें दिन (द्वादशीको) लवण समुद्रके जलमें कितनी ऊंचाई होती है, यह जानना चाहते हैं तो वह इस करणसूत्रके अनुसार जानी जा सकती है । जैसे— भूमि १६०००, मुख ११०००, उत्सेध १५ दिन; अतः १६००० – ११००० = ५०००; ५००० ÷ १५ = ३३३$\frac{१}{३}$ यो., यह प्रतिदिन होनेवाली वृद्धिका प्रमाण हुआ । अब चूंकि १२ वें दिन होनेवाली जलकी ऊंचाई जानना अभीष्ट है, अतः इस वृद्धिके प्रमाणको १२ से गुणित करके मुखमें मिला देनेपर वह इस प्रकार प्राप्त हो जाती है— ३३३$\frac{१}{३}$ × १२ + ११००० = १५००० यो. ।

लवण समुद्रका विस्तार मध्यमें दश हजार योजन और अवगाह एक हजार योजन प्रमाण है । अन्तमें वह मक्खीके पंखके समान है ॥ २२ ॥ लवण समुद्रके अवगाह अर्थात्

---

१ क सत्तसदट्ठाणउदा जोयण भायाण सत्ततीसा य. २ उ अंतरमेगं मुणेदव्वा, ब अंतरमाधियं मुणेदव्वा, श अंतरमेगं दु णेयव्वा. ३ उ पुण्णिमदिवसे लवणे, ब पुण्णिमहिवसे लवणे, श पुन्निमदिवसे लवणे. ४ क ब अमवासिदिणे. ५ उ सुकिक्कपक्खेण, श सुकिपक्खेण. ६ क उछ, ब उछय, श उच्छिय. ७ उ, श लवणउदिस्स. ८ उ श अंतो.

अवगाढो पुण णेओ[1] हाणी वड्ढी य होइ[2] लवणस्स । पविसंतो परिवड्ढी[3] णीयंतो होइ परिहाणी ॥ २३
पंचाणउदिसहस्सा जोयणसंखा य हाणिवड्ढिस्स । खेत्तस्स दु णायव्वा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ २४
मज्झम्मि[4] दु णायव्वो अवट्ठिदो तत्थ होइ अवगाढो । दोसु वि पासेसु तहा खेत्तो अणवट्ठिदो लवणे[5] ॥
पंचाणउदा भागा हाणी वड्ढी दु होइ णायव्वा । इच्छगुणं काऊणं जं लद्धं होइ इच्छफलं ॥ २६

....

विस्तारमें हानि और वृद्धि जानना चाहिये । इनमेंसे प्रवेश करते समय वृद्धि और आते समय हानि हुई है ॥ २३ ॥ सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट हानि-वृद्धिके क्षेत्रका प्रमाण पंचानबै हजार योजन जानना चाहिये ॥ २४ ॥ वहां लवण समुद्रका अवगाह (विस्तार) मध्यमें अवस्थित और दोनों ही पार्श्व भागोंमें विस्तारक्षेत्र अनवस्थित है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २५ ॥ जलशिखाके विस्तारमें [सोलह हजार योजन प्रमाण उंचाईमेंसे प्रत्येक योजनकी उंचाईपर आठसे भाजित] पंचानबै भाग ($\frac{९५}{८}$) प्रमाण हानि अथवा वृद्धि होती है, ऐसा जानना चाहिये । इस हानि-वृद्धिको इच्छासे गुणित करके जो प्राप्त हो वह इच्छित फल होता है ॥ २६ ॥

विशेषार्थ— लवण समुद्रका आकार एक नावके ऊपर उलटी करके रखी हुई दूसरी नावके समान है । उसका विस्तार नीचे पृथ्वीतलमें १०००० यो. है । ऊपर क्रमशः वह वृद्धिंगत होकर सम भूमिमें २ लाख यो. प्रमाण हो गया है । सम भूमिसे ऊपर आकाशमें उसकी जलशिखा है । यह अमावस्याके दिन सम भूमिसे ११००० यो. प्रमाण ऊंची रहती है । फिर वह शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर पूर्णिमाके दिन १६००० यो. प्रमाण ऊंची हो जाती है । इसका विस्तार सम भूमिपर २ लाख यो. और फिर वह क्रमशः दोनों ओरसे हीन होकर अन्तमें १०००० यो. प्रमाण हो गया है । इस प्रकार जलशिखाके विस्तारमें १६ हजार यो. की उंचाईपर दोनों ओर समान रूपसे १९०००० (९५००० × २) यो. की हानि हो गई है । अब १६ हजार यो. ऊंची जलशिखाका यदि विवक्षित (जैसे ११ हजार यो.) उंचाईपर विस्तार जानना अभीष्ट है तो ‘ मुहभूमिविसेसेण य ’ इस करणसूत्रके अनुसार भूमि (२ लाख यो.) मेंसे मुख (१०००० यो.) को कम करके शेषको उत्सेधसे भाजित करे । इस प्रकार जो प्राप्त हो उसे अभीष्ट उंचाईसे गुणित करनेपर प्राप्त राशिको भूमिमेंसे कम कर देनेसे इच्छित विस्तार प्राप्त हो जाता है । जैसे ११००० यो. की उंचाईपर उसके विस्तारका प्रमाण— $\frac{२०००००-१००००}{१६०००} = \frac{९५}{८} = ११\frac{७}{८}$ प्रति योजनकी उंचाईपर होनेवाली हानि-वृद्धिका प्रमाण; $११००० \times ११\frac{७}{८} = १३०६२५$;

....

१ उ श णेया. २ क वड्ढीए होइ, व वड्ढी दु होय. ३ उ श पविसेतो परिवड्ढइ. ४ उ श मज्झिम्मि. ५ उ खेत्तो अणवट्ठिदो लवणो, व खेत्तो अणवट्ठिदो लवणो, श खित्तो अणवट्ठिदो तत्थ होइ लवणो.

बादालीस सहस्सा गंतूणं जोयणाणि वेदीदो । वेलंधरदेवाणं अट्ठेव य पव्वदा होंति ॥ २७
जोयणसहस्सतुंगा कलसद्धसमाणभासुरा विउला । वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ २८
वलयामुहाण[2] णेया दो दो पासेसु होंति णायव्वा । अक्खयअणाइणिहणा णाणामणिरयणपरिणामा ॥ २९
पुव्वेण होंति णेया कोत्थुभणामा[3] णगा हु कणयमया । कोत्थुभणाम[4]सुरिंदा वसंति वेलंधरा तेसु ॥ ३०
दक्खिणदिसेण णेया दगभासा[5] अंकरयणमयसेला[6] । दगभासदेवसहिया बहुविहपासादसंच्छण्णा ॥ ३१
पच्छिमदिसेण सेला रुप्पमया संखजुवलवरणामा[7] । संखजुगलाभिधाणा[8] वसंति वेलंधरा देवा ॥ ३२
उत्तरदिसेण णेया वेरुलियमयी हवंति वरसेला । दगसीमेदेवसहिया दससीमा[12] होंति णामेण ॥ ३३

भूमि २०००००; २००००० - १३०६२५ = ६९३७५; अथवा मुखकी ओरसे ५०००×११$\frac{७}{८}$ = ५९३७५; ५९३७५ + १०००० = ६९३७५ योजन। अथवा यही अभीष्ट विस्तारका प्रमाण निम्न प्रकार त्रैराशिकसे भी प्राप्त हो जाता है। जैसे— यदि १६००० यो. की उंचाईपर जलशिखाके विस्तारमें १९०००० यो. की हानि होती है, तो ११००० यो. की उंचाईपर उसमें कितनी हानि होगी? $\frac{१९०००० \times ११०००}{१६०००}$ = १३०६२५; २००००० – १३०६२५ = ६९३७५ यो.।

वेदीसे व्यालीस हजार योजन जाकर वेलंधर देवोंके आठ पर्वत हैं ॥ २७ ॥ एक हजार योजन ऊंचे, अर्ध कलशके समान भासुर, विशाल, वन-वेदियोंसे युक्त, दिव्य और उत्तम तोरणोंसे मण्डित वे पर्वत वलयमुख (वडवामुख) प्रभृति पातालोंके दो पार्श्वभागोंमें दो दो हैं, ऐसा जानना चाहिये। ये पर्वत अक्षय, अनादिनिधन और नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप हैं ॥ २८–२९ ॥ इनमेंसे पूर्वकी ओर कौस्तुभ [और कौस्तुभास] नामक सुवर्णमय पर्वत हैं। उनके ऊपर कौस्तुभ [और कौस्तुभास] नामक वेलंधर सुरेन्द्र रहते हैं ॥ ३० ॥ दक्षिण दिशाकी ओर [उदक और] उदकभास देवोंसे सहित तथा बहुत प्रकारके प्रासादोंसे व्याप्त अंकरत्नमय [उदक और] उदकभास नामक शैल जानना चाहिये ॥ ३१ ॥ पश्चिम दिशामें उत्तम शंखयुगल (शंख व महाशंख) नामवाले रजतमय शैल जानना चाहिये। इनके ऊपर शंखयुगल (शंख और महाशंख) नामक वेलंधर देव निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ उत्तर दिशामें वैडूर्यमणिमय उदकसीम [उदक और उदवास] नामक उत्तम शैल हैं इनके ऊपर उदकसीम [उदक और उदवास] नामक देव हैं ॥ ३३ ॥ सब ही दिव्य पर्वत

---

१ क कलसट्ठसहस्स; ब कालसव्दसमाण. २ ब वलयामुहेण. ३ क कोंथुम, ब कोछुंभ. ४ क कुंथुम ब कुंथुम. ५ क ब दय. ६ श णेया वेरुलियमण हवंति मयसेला. ७ उ श परिणामा. ८ उ संखजुवलाभिणाया, श संखजुवलाभिणेया. ९ उ श उत्तरदिसेहि. १० उ वेरुलिय हवंति, श वेरुलियमण हवंति ११ उ क दससीम, ब दसमाम, श दसमीम. १२ उ क ब दससीमा, श दसमीमा.

जं. दी. २३.

सव्वे वि वेदिसहिया[1] वरतोरणमंडिया मणभिरामा । धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ ३४
पायालाणं णेया उभये पासेसु[2] तह य सिहरेसु । आयासे णिद्दिट्ठा पण्णगदेवाण णगराणि ॥ ३५
वावत्तरिं सहस्सा बाहिरमब्भंतरं च बाचत्ता[3] । अग्गोदगं धरंता[4] अट्ठावीसं सहस्साणि ॥ ३६
एयं[5] च सयसहस्सा भुजग सहस्साणि चेव बाचत्तं[6] । वेलासु दोसु अग्गोदगे[7] य लवणम्हि अच्छंता[8] ॥ ३७
तत्तो वेदीदो पुण बादालसहस्स जोयणा गंतुं । विदिसासु होंति दीवा बादालसहस्सवित्थिण्णा ॥ ३८
दीवेसु तेसु णेया णगराणि हवंति रयणणिवहाणि । णागाणं णिद्दिट्ठा गोउरपायारणिवहाणि ॥ ३९
वेदीदो गंतूणं बारह तह जोयणसहस्साणि । वायव्वदिसेण पुणो होइ समुद्दम्मि वरदीवो ॥ ४०.
बारहसहस्सतुंगो वित्थिण्णायामतेत्तिओ चेव । कंचणवेदीसहिओ मरगयवरतोरणुत्तुंगो[9] ॥ ४१
ससिकंतसूरकंतो कक्केयणपउमरायमणिणिवहो । वरवज्जकणयविद्दुममरगयपासादसंजुत्तो ॥ ४२
गोदुमणामो दीवो णाणातरुगहणसंकुलो रम्मो । पोक्खरणिवाविपउरो जिणभवणविहूसिओ दिव्वो ॥ ४३
बेकोससमहिरेया[10] बासट्ठा जोयणा समुत्तुंगा । गोदुम[11]सुरस्स भवणं तदद्धविक्खंभआयामं ॥ ४४

वेदीसे सहित, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित और जिनभवनसे विभूषित हैं ॥ ३४ ॥ पातालोंके उभय पार्श्वभागोंमें तथा शिखरोंपर आकाशमें पन्नग (नागकुमार) देवोंके नगर निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ३५ ॥ लवण समुद्रकी बाह्य (धातकीखंडकी ओर) वेलाको धारण करनेवाले बहत्तर हजार, अभ्यन्तर (जम्बूद्वीपकी ओर) वेलाको धारण करनेवाले ब्यालीस हजार और अग्रोदक (जलशिखा) को धारण करनेवाले अट्ठाईस हजार इस प्रकार लवण समुद्रमें दोनों वेलाओंके ऊपर व अग्रोदक (शिखर) पर एक लाख ब्यालीस हजार (७२००० + ४२००० + २८०००) नागकुमार देव स्थित हैं ॥३६–३७॥ पुनः उस वेदीसे ब्यालीस हजार योजन जाकर विदिशाओंमें ब्यालीस हजार योजन विस्तीर्ण [आठ] द्वीप हैं ॥ ३८ ॥ उन द्वीपोंमें रत्नसमूहोंसे युक्त और गोपुर एवं प्राकार समूहसे संयुक्त नागकुमारोंके नगर निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये ॥ ३९ ॥ वेदीसे वायव्य दिशाकी ओर बारह हजार योजन जाकर समुद्रमें गोतम नामक उत्तम द्वीप है । यह दिव्य द्वीप बारह हजार योजन ऊंचा, इतने ही विस्तार व आयामसे संयुक्त, सुवर्णमय वेदीसे सहित, मरकत मणिमय उत्तम तोरणोंसे उन्नत; चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन एवं पद्मराग मणियोंके समूहसे सहित; उत्तम वज्र, सुवर्ण, विद्रुम एवं मरकत मणिमय प्रासादोंसे संयुक्त; नाना वृक्षोंके वनोंसे व्याप्त, रम्य, प्रचुर पुष्करिणियों एवं वापिकाओंसे युक्त और जिनभवनोंसे विभूषित है ॥ ४०–४३ ॥ इस द्वीपमें दो कोश अधिक बासठ योजन ऊंचा, इससे आधे विस्तार व आयामसे सहित, दो कोश अवगाहसे युक्त, नाना मणियों एवं रत्नोंसे मण्डित, तथा

---

१ उ वि वेदिसया, श वि विदेसाया. २ क पासे. ३ उ श वाचित्ता, ४ उ श धरत्ता, क ब धरिता. ५ उ श एवं. ६ उ दावत्तं, क बाचत्तं, ब वाचत्तां, श वावत्तं. ७ उ क ब श अगोदगे. ८ उ श आछुत्तो, क ब आरत्ता. ९ उ श तोरणचुंगा. १० उ श समविरेया. ११ उ क श गोदुम, ब गादुम.

बेगाउवमवगाहं णाणामणिरयणमंडियं दिव्वं । जोयणअट्ठुत्तुंग[1] तदद्धविक्खंभ वरदारं ॥ ४५
पल्लाउगा महप्पा दसधणुउत्तुंगदिव्ववरदेहा । दीवेसु होंति देवा आभरणविहूसियसरीरा ॥ ४६
वेदीदो गंतूणं पंचसया जोयणाणि लवणम्मि । चदुसु वि दिसासु होंति हु जोयणसयवित्थडा दीवा ॥ ४७
पुणरवि तत्तो गंतुं पण्णासा जोयणाणि पंचसया । विदिसासु होंति दीवा पण्णासा वित्थडा णेया ॥ ४८
दिसिविदिसंतरदीवा पण्णासा वित्थडा जलणिहिम्मि । वेदीदो गंतूणं पंचेव सयाणि पुण होंति ॥ ४९
गिरिसीसगया दीवा[2] पणुवीसा वित्थडा समुद्दिट्ठा । वेदीदो गंतूणं छच्चेव[3] य जोयणसयाणि ॥ ५०
चदुसु वि दिसासु चउरो विदिसासु वि तेत्तिया समुद्दिट्ठा । गिरिसीसगया अट्ठ य तावदिया अंतरे दीवा ॥
चउवीस वि ते दीवा चउकोसा उट्ठिया जलंतादो[5] । वरवेदिएहि जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ ५२
एगोरुगा य लंगोलिगा[6] य वेसाणिगा[7] य ते कमसो । पुव्वादिसु णायव्वा अभासगा[8] उ णरा होंति ॥ ५३
सक्कुलिकण्णा[9] णेया कण्णप्पावरणं[10] लंबकण्णा य । ससकण्णा कुमणुस्सा[11] कमसो विदिसासु विण्णेया ॥ ५४
सीहमुहा अस्समुहा साणमुहा अंतरेसु[12] महिसमुहा । सूयरमुहवग्घमुहा घूग[13]मुहा कविमुहा चेव ॥ ५५

आठ योजन ऊंचे एवं इससे आधे विस्तारवाले उत्तम द्वारोंसे युक्त गोतम सुरका दिव्य भवन है ॥४४–४५॥ द्वीपोंमें पल्य प्रमाण आयुके धारक, महात्मा, दश धनुष ऊंचे उत्तम दिव्य शरीरसे युक्त और आभरणोंसे विभूषित देहवाले देव स्थित हैं ॥ ४६ ॥ वेदीसे पांच सौ योजन लवण समुद्रमें जाकर चारों ही दिशाओंमें एक सौ योजन विस्तारवाले द्वीप हैं ॥ ४७ ॥ फिर भी उक्त वेदीसे पांच सौ पचास योजन लवण समुद्रके भीतर जाकर विदिशाओंमें पचास योजन विस्तारवाले द्वीप जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ पुनः वेदीसे पांच सौ योजन समुद्रमें जाकर दिशा-विदिशाओंके अन्तरालमें पचास योजन विस्तृत अन्तरद्वीप हैं ॥ ४९ ॥ वेदीसे छह सौ योजन जाकर [हिमवान्, विजयार्ध व शिखरी] पर्वतोंके शिखरपर (प्रणिधि भागमें) स्थित द्वीप पच्चीस योजन विस्तृत कहे गये हैं ॥ ५० ॥ चारों दिशाओंमें चार, विदिशाओंमें चार, गिरिशिखरगत आठ और इतने ही द्वीप दिशा-विदिशाओंके अन्तरमें स्थित कहे गये हैं ॥ ५१ ॥ वे चौबीस ही दिव्य द्वीप जलसे चार कोश ऊंचे, उत्तम वेदियोंसे युक्त और उत्तम तोरणोंसे मण्डित हैं ॥ ५२ ॥ पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित उक्त द्वीपोंमें क्रमसे एक ऊरुवाले, पुच्छवाले, विषाणी और अभाषक (गूंगे) मनुष्य होते हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ ५३ ॥ विदिशाओंमें क्रमसे शष्कुलिकर्ण, कर्णप्रावरण, लंबकर्ण और शशकर्ण कुमानुष जानना चाहिये ॥ ५४ ॥ अन्तरद्वीपोंमें सिंहमुख, अश्वमुख, श्वानमुख, महिषमुख, शूकरमुख, व्याघ्रमुख, घूकमुख और

---

१ उ क श अद्धुत्तुंगं, ब अद्धंतुंग. २ उ क श दिसि. ३ क दिव्वा. ४ श पंचेव. ५ क जलादादो. ६ उ ब श णंगोलिया. ७ ब वेसोणिगा. ८ उ क श अभासकाउत्तरा, ब अभासगाउत्तरा. ९ उ संक्कुलिवण्णा, क संक्कुलिकण्णा, ब संकुलिकण्णा, श सक्कुलियाणा. १० उ श कणप्पावरण, क कण्णायावरण, ब कण्णयवरण. ११ क य कुमाणुस, ब य कुमारास. १२ क अंतेसु. १३ उ ब श घूव.

हेमगिरिस्स य पुव्वावरम्हि मच्छमुहकालवदणा य । तह दक्खिणवेदड्ढे मेसमुहा[1] गोमुहा होंति ॥ ५६
मेहमुहा विज्जुमुहा सिहरिस्स गिरिस्स पुव्वअवरम्हि । आदंसणहत्थिमुहा उत्तरवेदड्ढणगसीसे ॥ ५७
एगोरुगा गुहाए भूमिं जेमंति सेसगा य दुमे[2] । जेमंति[3] पुप्फफलभोयणाणि[4] पल्लाउगा सव्वे[5] ॥ ५८
अदिकोहलोहहीणा मंदकसाया पियंवदा धीरा । धम्माभासं किच्चा मिच्छत्तकलंकदोसेण ॥ ५९
धम्मफलं मग्गंता कायकिलेसं करित्तु गरुयं[6] पि । अण्णाणतिमिरछण्णा पंचग्गितवं परमघोरं ॥ ६०
ते[7] तेण तवेण तहा[8] मरिऊणं अंतरेसु दीवेसु[9] । उप्पज्जंति महप्पा कुमाणुसा भोगसंपण्णा ॥ ६१
सम्मद्दंसणहीणा काऊणं बहुविहं तवोकम्मं । उप्पज्जंति यधण्णा कुमाणुसा रूवपरिहीणा ॥ ६२
अदिमाणगव्विदा जे साहूणं पुण करंति अवमाणं । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६३
संजमतवोधणाणं णिग्गंथाणं भसंति[10] जे पावा । ते कालगदा संता[11] कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६४
संजमतवेण हीणा मायाचारी हवंति जे पावा । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६५
रसइड्ढिसादगारवमेहुणसण्णेहि मोहिदा जे दु । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६६

कपिमुख मनुष्य होते हैं ॥ ५५ ॥ हिमवान् पर्वतके पूर्व व पश्चिम भागमें मत्स्यमुख और कालमुख, दक्षिण वैताढ्यके दोनों ओर मेषमुख और गोमुख, शिखरी पर्वतके पूर्व व पश्चिम भागमें मेघमुख और विद्युन्मुख, तथा उत्तर वैताढ्यके शिखरपर आदर्शमुख और हस्तिमुख मनुष्य रहते हैं ॥ ५६–५७ ॥ एक ऊरुवाले कुमानुष गुफामें रहते हुए मिट्टीको खाते हैं, तथा शेष कुमानुष वृक्षके नीचे रहकर पुष्प व फल रूप भोजनोंको खाते हैं । इन सबकी आयु एक पल्य प्रमाण होती है ॥ ५८ ॥ अधिक क्रोध व लोभसे रहित, मंदकषायी, प्रियभाषी और धीर प्राणी मिथ्यात्व रूप कलंकके दोषसे धर्माभासका सेवन करके, धर्मफल (सुख) को खोजते हुए भारी कायक्लेशको करके, तथा अज्ञानांधकारसे व्याप्त होते हुए अतिशय घोर पंचाग्नि तपको तपकर उस घोर तपके प्रभावसे मरकर वे प्राणी अन्तरद्वीपोंमें भोगोंसे सम्पन्न कुमानुष महात्मा उत्पन्न होते हैं ॥ ५९–६१ ॥ सम्यग्दर्शनसे हीन होकर जो बहुत प्रकारके तपश्चरणको करते हैं वे पापी सुन्दरतासे रहित होते हुए कुमानुष उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ मानसे अत्यन्त गर्वित होकर जो साधुओंका अपमान करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६३ ॥ जो पापी संयम व तपरूपी धनसे युक्त निर्ग्रंथोंको भूंकते हैं, अर्थात् निन्दा करते हैं, वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ६४ ॥ जो पापी संयम व तपसे हीन तथा मायाचारी होते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ जो रस, ऋद्धि

---

१ उ श मेंढमुहा, क मंदमुहा, ब मेहमुहा. २ उ श दुमो. ३ क ब जायंति. ४ क ब भोइणो य. ५ उ ब श सव्वो. ६ ब बहुयं. ७ उ क ब तो. ८ क ब तदा. ९ श मरिऊणं बहुविहं तवो कम्मेसु. १० ब तसंति. ११ उ तक्कालगदा सत्ता, श तक्कालगदा साता. १२ उ ब श सत्ता.

थूलसुहुमादिचारं णालोचइ जे[1] गुरूण पासम्मि । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६७
सज्झायणियमवंदण गुरुणा सहियं तु जे ण कुव्वंति । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६८
रिसिसंघं छंडित्ता अच्छइ जइ को वि तह य एगागी । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ६९
सव्वेहिं जणेहिं समं कलहं कुव्वंति जे हु पाविट्ठा[4] । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७०
आहारसण्णपउरा लोभकसाएण मोहिया जे दु । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७१
धरिऊण लिंगरूवं पावं कुव्वंति जे दु पाविट्ठा । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७२
ण करंति जे हु भत्ती अरहंताणं तहेव साहूणं । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७३
चाउव्वण्णे संघे वच्छल्लं तह य जे ण कुव्वंति । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७४
सिद्धंतं छंडित्ता[5] जोइसमंतादिएसु[7] जे मूढा । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७५
धणधण्णसुवण्णादिं संजदरूवम्हि[8] जे दु गिण्हंति । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७६
कण्णाविवाहमादिं संजदरूवम्हि[9] जेणुमोदंति । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७७
मोणं परिच्चइत्ता भुंजंति पुणो वि जे दु पाविट्ठा । ते कालगदा संता कुमाणुसा होंति णायव्वा ॥ ७८

एवं सात इन तीन गारवोंसे तथा मैथुन संज्ञासे मोहित हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ६६ ॥ जो गुरुओंके पासमें स्थूल व सूक्ष्मादि क्रियाओंकी आलोचना नहीं करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ६७ ॥ जो गुरुके साथ स्वाध्याय, नियम व वन्दना नहीं करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ६८ ॥ यदि कोई ऋषिसंघको छोड़कर एकाकी रहते हैं तो वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ६९ ॥ जो पापी सब जनोंके साथ कलह करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७० ॥ जो आहार संज्ञाकी प्रचुरतासे संयुक्त और लोभ कषायसे मोहित हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७१ ॥ जो पापिष्ठ [जिन] लिंग रूपको धारण कर पाप करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७२ ॥ जो अरहंतों तथा साधुओंकी भक्ति नहीं करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७३ ॥ जो चातुर्वर्ण्य संघमें वात्सल्य भावको नहीं करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७४ ॥ जो सिद्धान्तको छोड़कर ज्योतिष एवं मंत्रादिकोंमें मुग्ध होते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७५ ॥ जो संयत रूपमें धन, धान्य एवं सुवर्णादिको ग्रहण करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७६ ॥ जो संयत अवस्थामें कन्याविवाहादिकी अनुमोदना करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७७ ॥ जो पापिष्ठ मौनको छोड़कर भोजन करते हैं वे मरकर कुमानुष होते हैं ॥ ७८ ॥ कर्मोदयसे सम्यक्त्वकी विराधना करके

१ उ क ब श जो. २ श थूलसज्झाय. ३ श सीरीसंवच्छदुता. ४ उ श कुव्वंति सददं जे पावा, ब कुव्वंति सदद जे पावा. ५ उ च्छंडित्ता, क छड्डित्ता, ब कढित्ता. ६ उ श जोइस. ७ उ ब श मंतादिएहिं. ८ उ श सुवण्णादिं संजमरूवेहिं, क ब सुवण्णादी, संजमरूवेहिं. ९ उ धण्णाविवाहमादि संजमरूवेहिं, ब कण्णाविवाहमाहिं संजदरूवेहिं, श धण्णाविवाहमदिं संजमरूवेहिं.

कम्मोदएण जीवा सम्मत्तं विराहिऊणं[1] ते सव्वे । उप्पज्जंति वराया कुमाणुसा लवणदीवेसु ॥ ७९
गब्भादो ते मणुगा णिस्सरिऊणं सुहेण वरजुअला । उणवण्णदिणेहिं पुणो सुजोव्वणा होंति णायव्वा ॥ ८०
वेधणुसहस्सतुंगा मंदकसाया महंतलायण्णा । सुकुमारपाणिपादा णीलुप्पलसुरहिगंधड्ढा ॥ ८१
वरपंचवण्णजुत्ता णिम्मलदेहा अणेगसंठाणा । कप्पतरुजणियभोगा पलिदोवमआउगा सव्वे ॥ ८२
लवणोवहिदीवेसु य भोत्तूणं कुमाणुसाण वरभोगं । मरिऊण सुहेण पुणो णरणारिगणा य जे तेसु ॥ ८३
उप्पज्जंति महप्पा मणिकंचणमंडिदेसु दिव्वेसु[2] । सुरसुंदरिपउरेसु य[3] ते सव्वे देवलोएसु ॥ ८४
भवणवइवाणविंतरजोइसभवणेसु ताण उप्पत्ती । ण य अण्णत्थुप्पत्ती बोद्धव्वा होइ णियमेण ॥ ८५
सम्मदंसणरयणं[4] जेहिं सुगहियं णरेहिं णारीहिं[5] । ते सव्वे मरिऊणं सोहम्माईसु जायंति ॥ ८६
पण्णारसयसहस्सा एगासीदा सयं च उगुदालं[5] । किंचिविसेसेणूणा होइ य लवणोवहिप्परिधी[6] ॥ ८७
बाहिरसूचीवग्गो अब्भंतरसूचिवग्गपरिहीणो । जंबूदीवपमाणा खंडा ते होंति णायव्वा ॥ ८८

वे सब जीव बेचारे इन लवण समुद्रके द्वीपोंमें कुमानुष उत्पन्न होते हैं ॥ ७९ ॥ वे मनुष्य सुखपूर्वक गर्भसे उत्तम युगलके रूपमें निकल कर उनंचास दिनमें यौवन युक्त हो जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८० ॥ वे सब दो हजार धनुष ऊंचे, मंदकषायी, अतिशय सौन्दर्यसे परिपूर्ण, सुकुमार हाथ-पैरोंसे सहित, नीलोत्पलके समान सुगन्ध गन्धसे व्याप्त, उत्तम पांच वर्णोंसे युक्त निर्मल देहवाले, अनेक आकारसे सहित, कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न भोगोंसे युक्त और पल्योपम प्रमाण आयुसे सहित होते हैं ॥ ८१-८२ ॥ जो नर-नारीगण लवणोदधिके उन द्वीपोंमें कुमानुषोंके उत्तम भोगको भोगकर सुखसे मरते हैं वे सब महात्मा मणियों व सुवर्णसे मण्डित तथा प्रचुर देवाङ्गनाओंसे संयुक्त ऐसे दिव्य देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८३-८४ ॥ उनकी उत्पत्ति नियमसे भवनपति, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके भवनोंमें होती है, अन्यत्र नहीं होती; ऐसा जानना चाहिये ॥ ८५ ॥ जिन नर-नारियोंने सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको ग्रहण कर लिया है वे सब मरकर सौधर्मादिक स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८६ ॥ लवणोदधिकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी [हजार] एक सौ उनतालीस (१५८११३९) योजनसे कुछ कम है ॥ ८७ ॥ अभ्यन्तर सूचीके वर्गसे रहित बाह्य सूचीके वर्गको [वर्गात्मक जम्बूद्वीपके विष्कम्भसे विभक्त करनेपर] जम्बूद्वीपके प्रमाण खण्ड होते हैं $\{(५०००००^2 - १०००००^2) \div १०००००^2 = २४\}$ ॥ ८८ ॥ विष्कम्भसे रहित [बाह्य] सूचीको चौगुणे

---

१ उ श समत्तविराहिओण, क सम्मत्ते विराहिऊण, ब सम्मत्ताविराहिऊण. २ ब मंडिदसु सव्वेसु. ३ ब पवरेसु य, श दिव्वेसु य. ४ उ श संजमदंसण. ५ श रयणं रेहि-णारीहिं. ५ उ श एगासीदा स सयं च उगुदाळा, ब एगासीदो सय च उगुदाळं. ६ उ लवणोयहीपरिही, ब लवणोवहीपरिधा, श लवणोयहीपरिहीणो.

सूची विक्खंभूणा विक्खंभचदुगुणेण संगुणिदं । जंबूदीवपमाणं खंडा ते होंति णायव्वा ॥ ८९

जंबूदीवो दीवो जावदिओ होइ खेत्तगणिदेण । तावदियाणि दु लवणे खेत्तेण हवंति[1] चउवीसा ॥ ९०

दुगुणम्हि दु विक्खंभे[2] दोसु वि पासेसु सोहियस्स कदी ।
सोज्झस्स[3] दु चदुभागो[4] वग्गिदगुणिदं च दसगुणं गणिदं[5] ॥ ९१

विक्खंभकदीय कदी दसगुण[6] करणी य होदि चदुभजिदं । वासद्धकदीय कदी[7] दसगुण करणीय गणिदपदं ॥

एगट्ठ णव य सत्त य तिय छ छक्क पंच णव य छ द्दस य[8] । जोयणसंखा भणिया लवणसमुद्दम्हि गणितपदं ॥

एगणवसत्तछच्चदुदुगतिगपंचतियसत्तछहसुण्णं[10] । जोयणसंखा भणिदा उभयोरवि होइ गणितपदं ॥ ९४

दीवस्स समुद्दस्स य विक्खंभं चदुहि[11] संगुणं णियमा । तिहि सदसहस्स ऊणा[12] सा सूची सव्वकरणेसु ॥

जत्थिच्छसि विक्खंभं लवणादी जाव ताव[1] दुगरासी । अण्णोण्णेहि य गुणिदे पुणरवि गुणिदं सदसहस्सा[2] ॥

विष्कम्भसे गुणित करके पुनः [एक लाखके वर्गसे विभक्त करनेपर] जम्बूद्वीपके प्रमाण खण्ड होते हैं $\{(५००००० - २०००००) \times (२००००० \times ४) \div १०००००^{२} = २४\}$ ॥ ८९ ॥ क्षेत्रफलकी अपेक्षा जितना जम्बूद्वीप है उतने क्षेत्रके प्रमाणसे लवण समुद्रके चौबीस खण्ड होते हैं ॥ ९० ॥ दोनों ही पार्श्वों (बाह्य सूची) मेंसे दुगुणे व्यासको घटाकर शेषके वर्गको शोध्य राशिके चतुर्थ भागके वर्गसे गुणित कर पुनः दशगुणा करनेपर प्राप्त राशिके वर्गमूल प्रमाण [वलयाकार क्षेत्रका] क्षेत्रफल होता है (?) ॥ ९१ ॥ विष्कम्भके वर्गके वर्गको दशगुणा कर उसका वर्गमूल निकालनेपर जो प्राप्त हो उसमें चारका भाग देनेसे [वृत्त क्षेत्रका] क्षेत्रफल होता है । अथवा, अर्ध व्यासके वर्गके वर्गको दशगुणा करके उसका वर्गमूल निकालनेपर [वृत्तक्षेत्रका] क्षेत्रफल निकलता है ॥ ९२ ॥ अंकक्रमसे एक, आठ, नौ, सात, तीन, छह, छह, पांच, नौ, छह और दश (१८९७३६६५९६१०) इतने योजन प्रमाण लवण समुद्रका क्षेत्रफल कहा गया है ॥ ९३ ॥ एक, नौ, सात, छह, चार, दो तीन, पांच, तीन, सात, छह और शून्य, इन अंकोंके क्रमसे जो संख्या (१९७६४२३५३७६०) उत्पन्न हो उतने योजन प्रमाण जम्बूद्वीप और लवण समुद्र इन दोनोंका सम्मिलित क्षेत्रफल कहा गया है ॥ ९४ ॥ द्वीप अथवा समुद्रके विष्कम्भको चारसे गुणित करके जो प्राप्त हो उसमेंस तीन लाख कम कर देनेपर शेष रहा नियमसे सब करणोंमें उसकी सूची (बाह्य) का प्रमाण होता है ॥ ९५ ॥ लवण समुद्रको आदि लेकर जिस किसी भी द्वीप अथवा समुद्रके विस्तारके जाननेकी इच्छा, हो उतने दो अंकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उसे एक लाखसे फिरसे

---

१ उ श हवे. २ क ब विक्खंभो. ३ ब सोहस्स. ४ ब चदुभागे. ५ ब गणिदे. ६ उ श दसदसगुण. ७ उ सड्ढिकदीयकदी, श वासड्ढिकदीयकदी. ८ उ श तियच्छक्कंपिंच णव य सट्ठसयं, ब तिय छ छप्पंणणव य छद्दस य. ९ उ एग णवच्छ सत्तच्छच्चदु, ब पग णव सत्त छव्वदु, श एग णवच्छ सत णच्चदु. १० उ श तिसयवच्छहसुण्णं. ११ ब चदुह. १२ उ श तड्ढिदसहस्सजीणा.

लवणसमुद्दस्स तहा वज्जमया[3] वेदिया समुद्दिट्ठा । अट्ठेव य उव्विद्धा कंचणमणिरयणसंछण्णा ॥ ९७
मूले बारह जोयण मज्झे अट्ठेव जोयणा णेया । सिहरे चत्तारि हवे विच्छिण्णा वेदिया दिव्वा ॥ ९८
बेजोयणअवगाढा धयचामरमंडिया मणभिरामा । सुरसुंदरिसंजुत्ता सुरभवणसमाउला रम्मा ॥ ९९
धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । परिवेढिऊण[4] उवहिं समंतदो संठिया दिव्वा ॥ १००
चदुगोउरसंजुत्ता चोद्दसवरतोरणेहि रमणीया । वरकप्परुक्खपउरा णाणातरुसंकुला रम्मा ॥ १०१
॥ अट्ठद्धकम्मरहियं अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्तं । वरपउमणंदिणमियं अरतित्थयरं णमंसामि ॥ १०२

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे लवणसमुद्दवण्णणो णाम दसमो उद्देसो समत्तो ॥ १० ॥

गुणित करना चाहिये । जैसे पुष्कर द्वीपका विस्तार— १००००० × (२ × २ × २ × २) = १६००००० यो.] ॥ ९६ ॥ तथा लवण समुद्रकी सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंसे व्याप्त आठ योजन ऊंची वज्रमय वेदिका कही गई है ॥ ९७ ॥ यह दिव्य वेदिका मूलमें बारह, मध्यमें आठ और शिखरपर चार योजन विस्तीर्ण है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९८ ॥ दो योजन अवगाहसे युक्त, ध्वजाओं व चामरोंसे मण्डित, मनको अभिराम, सुरसुन्दरियोंसे संयुक्त, रम्य, देवभवनोंसे व्याप्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित और जिनभवनसे विभूषित ऐसी वह अतिशय रमणीय दिव्य वेदिका लवण समुद्रको सब ओरसे वेष्टित करके स्थित है ॥ ९९-१०० ॥ उक्त रमणीय वेदिका चार गोपुरोंसे संयुक्त, चौदह उत्तम तोरणोंसे रमणीय, श्रेष्ठ कल्पवृक्षोंकी प्रचुरतासे सहित और नाना वृक्षोंसे व्याप्त है ॥ १०१ ॥ आठके आधे अर्थात् चार कर्मोंसे रहित, आठ महाप्रातिहार्योंसे संयुक्त और श्रेष्ठ पद्मनन्दिसे नमस्कृत ऐसे अर तीर्थंकरको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १०२ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें लवणसमुद्रव्यावर्णन नामक दशवां उद्देश समाप्त हुआ ॥ १० ॥

---

१ उ श जाम ताम. २ उ श सयसहस्सं, ब सहसहस्सा. ३ उ श वज्जमय. ४ उ परवेदिओण, श वरिवेड्ढिओण.



[एक्कारसमो उद्देसो]

मल्लिजिणिंदं पणमिय महंतवरणाणदंसणपईवं । दीवोवहिअहलोए[1] सुरलोयं[2] संपवक्खामि ॥ १
धादगिसंडो दीवो उदधिं लवणोदयं परिक्खिवदि । चत्तारिसयसहस्सा वित्थिण्णो चक्कवालम्हि ॥ २
दक्खिणउत्तरभागेसु तस्स दो दक्खिणुत्तरायामा । दीवस्स दु उसुगारा[3] धादगिदीवं पविभजंति ॥ ३
णिसधस्सुच्छेहसमा पुट्ठा[4] कालोदयं च लवणं च । बाहिरपेरंतेसु य खुरप्परूवा गिरी होंति[5] ॥ ४
अंते[6] अंकमुहा खलु सहस्समेयं च होंति वित्थिण्णा । सयमेयं उव्वेहो आयामो दक्खिणुत्तरदो ॥ ५
वंसधरा वंसधरो[7] चउग्गुणो होइ धादगीसंडे । वंसादो वि य वंसो चउग्गुणो होइ बोद्धव्वो[8] ॥ ६
जो जस्स पडिणिही[9] खलु णदी दहो चावि[10] अहव वंसधरो । उव्वेधुव्वेहसमा दुगुणा दुगुणा य वित्थारो[11] ॥ ७
अरविवरसंठियाणि य धादगिसंडम्हि होंति वंसाणि । अंतो संखित्ताइं[12] बाहिरपासम्हि रुंदाइं ॥ ८
धादगिसंडे दीवे सव्वत्थ समा हवंति वंसधरा । भरहेसु रेवदे[13] खलु वित्थिण्णा दीहवेदड्ढा ॥ ९

महान् व उत्तम ज्ञान-दर्शनरूपी प्रदीपसे युक्त मल्लि जिनेन्द्रको प्रणाम करके द्वीप, उदधि, अधोलोक और सुरलोककी प्ररूपणा करते हैं ॥ १ ॥ धातकीखण्ड द्वीप लवण समुद्रको वेष्टित करता है । यह द्वीप वलयाकारसे चार लाख योजन विस्तृत है ॥ २ ॥ उस धातकीखण्ड द्वीपके दक्षिण-उत्तर भागोंमें दक्षिण-उत्तर आयत ऐसे दो इष्वाकार पर्वत हैं, जो धातकीखण्ड द्वीपका विभाग करते हैं ॥ ३ ॥ निषध पर्वतके समान उत्सेधवाले तथा लवण व कालोद समुद्रसे स्पृष्ट ऐसे वे इष्वाकार पर्वत बाह्य भागमें क्षुरप्रके आकार तथा अभ्यन्तर भागमें अंकमुख हैं । इनका विस्तार एक हजार योजन, उद्वेध एक सौ योजन और आयाम दक्षिण-उत्तरमें [धातकीखण्डके विस्तार प्रमाण] है ॥ ४-५ ॥ धातकीखण्ड द्वीपमें कुलपर्वतसे कुलपर्वत और क्षेत्रसे क्षेत्र चौगुणे जानना चाहिये [जैसे भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार ६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ यो. है, इससे चौगुणा (२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$ यो.) हैमवतक्षेत्रका अभ्यन्तर विस्तार है ।] ॥ ६ ॥ इस द्वीपमें स्थित नदी, द्रह और कुलपर्वत, इनमें जो जिसका प्रतिनिधि है उसका उद्वेध [जम्बूद्वीपके समान; परन्तु विस्तार [जम्बूद्वीपकी अपेक्षा] दूना दूना है ॥ ७ ॥ धातकीखण्डमें स्थित क्षेत्र अरविवर (पहियेके मध्यमें लगी हुई लकड़ियोंके बीचके छेद) के आकार होते हुए अभ्यन्तर भागमें संक्षिप्त और बाह्य पार्श्वमें विस्तीर्ण हैं ॥ ८ ॥ धातकीखण्ड द्वीपमें वर्षधर पर्वत सर्वत्र समान हैं । यहां भरत और ऐरावत- क्षेत्रोंमें विस्तीर्ण दीर्घ वैताढ्य पर्वत स्थित हैं ॥ ९ ॥

१ उ श अवलोए, ब अवलोय. २ उ श सुरलोए. ३ उ क ब उसगारा. ४ उ श पुव्वा. ५ उ श पेरंतेसु व खुरुप्परूवा गिदी होंति, क परंतेसु य खुरप्परूवा गिरि होइ, ब पेरंतेसु व खुरुप्परूवा गिरि होइ. ६ उ श अंतो. ७ उ श वंसवरो. ८ उ श बोधव्वा. ९ श पडिही. १० क ब वावि. ११ उ ब श वित्थारे. १२ उ अत्तो संखित्ताइं, ब अंत्तोखित्ताइं, श अतोसंखिताइ. १३ क भरदे य रेवदे.

अंकमुहसंठिदाइं अंतो वंसाणि धादगीसंडे । सत्तिमुहसंठिदाइं बाहिरसगडुद्धियाबाहा[1] ॥ १०

लक्खा य अट्ठवीसा छादालसहस्समेव[2] पण्णं च । धादगिसंडे मज्झे परिरयमेदं[3] वियाणाहि ॥ ११

इगिदालसयसहस्सा[4] दुसयसहस्सा सदा य णव होंति । एगट्ठी[5] किंचूणा बाहिरदो धादगीसंडे[6] १२

अट्ठसदा बादाला अट्ठत्तरिमेगसयसहस्सं च । वंसधरेसु य रुद्धं[7] जं खेत्तं धादगीसंडे ॥ १३

वंसधरविरहिदं खलु जं खेत्तं हवदि धादगीसंडे[8] । तस्स दु छेदा[9] णियमा वे चेव सदाणि बाराणि ॥ १४

छच्चेव सहस्साइं छच्च सया चोद्दसुत्तरा होंति । अब्भंतरविक्खंभो ऊणत्तीसं च भागसदं ॥ १५

बारस चेव सहस्सा एयासीदा सदा य पंच हवे[10] । मज्झम्हि दु विक्खंभो भागा य हवंति छत्तीसा ॥ १६

अट्ठारस य सहस्सा सिगिदालीसा सया य पंच[11] भवे । बाहिरदो विक्खंभो पंचावण्णं च भागसयं ॥ १७

धादगिपुक्खरमेरू[12] चतुरासीदिं च जोयणसहस्सा । उच्छेधेण दु एदे सहस्स[13]मोगाढ धरणितले ॥ १८

जत्थिच्छसि विक्खंभं चुल्लयमेरुम्हि उवदित्ताणं[14] । दसभजिदे जं लद्धं सहस्ससहिदं वियाणाहि ॥ १९

धातकीखण्ड द्वीपके क्षेत्र अन्तमें अंकमुखाकार और बाह्यमें शक्तिमुखाकारसे स्थित हैं । इनकी भुजा गाड़ीकी ऊर्ध्विकाके समान है ॥ १० ॥ धातकीखण्डके मध्यमें परिधिका प्रमाण अट्ठाईस लाख छयालीस हजार पचास (२८४६०५०) योजन जानना चाहिये ॥ ११ ॥ धातकीखण्डकी बाह्य परिधि इकतालीस लाख दश हजार नौ सौ इकसठ (४११०९६१) योजनसे कुछ कम है ॥ १२ ॥ धातकीखण्डमें एक लाख अठत्तर हजार आठ सौ व्यालीस [योजन और दो कला (१७८८४२ $\frac{२}{२१२}$)] प्रमाण क्षेत्र पर्वतोंसे रुद्ध है ॥ १३ ॥ धातकीखण्ड द्वीपमें जो पर्वत रहित क्षेत्र है उसके नियमसे दो सौ बारह खण्ड हैं {(१+४+१६+६४+१६+४+१) × २ = २१२} ॥ १४ ॥ छह हजार छह सौ चौदह योजन और दो सौ बारह भागोंमेंसे एक सौ उनतीस भाग (६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$) प्रमाण [भरतक्षेत्रका] अभ्यन्तर विष्कम्भ है ॥ १५ ॥ बारह हजार पांच सौ इक्यासी योजन और छत्तीस भाग (१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$) प्रमाण [भरतक्षेत्रका] मध्यविस्तार है ॥ १६ ॥ अठारह हजार पांच सौ सैंतालीस योजन और पचवन भाग (१८५४७ $\frac{५५}{२१२}$) प्रमाण [भरतक्षेत्रका] बाह्य विष्कम्भ है ॥ १७ ॥ धातकीखण्ड और पुष्कर द्वीप सम्बन्धी मेरु चौरासी हजार योजन ऊंचे और पृथिवीतलमें एक हजार योजन प्रमाण अवगाहसे सहित हैं ॥ १८ ॥ ऊपरसे नीचेकी ओर आते हुए जितने योजन नीचे जाकर इन क्षुद्र मेरुओंका विस्तार जानना अभीष्ट हो उनमें दशका भाग देनेपर जो प्राप्त हो, एक हजार योजनोंसे सहित उतना वहांपर विस्तार जानना चाहिये ॥ १९ ॥

---

१ उ श सगडुद्धिया, क सगडद्धि---, ब सगडुव्विया २ क बादाल. ३ उ श परिरयमेवं. ४ उ श इतिदाल, ब इदाल. ५ उ श एगट्ठि, ब पगट्ठि. ६ उ ब श मंडो. ७ ब वंसधरेसुवरुधं. ८ शप्रतौ नोपलभ्यतेऽयं पूर्वार्धभागोऽस्या गाथायाः । ९ उ क दु च्छेदो, ब दु छेदो, श तु च्छेदो. १० उ श सदा वा य पंच भवे. ११ उ श सिगिदालीसा सया व पंच. १२ कप्रतौ 'मेरू' इत्यत आरभ्य अग्रिमगाथायाः 'मेरुम्हि' पदपर्यन्तः पाठस्त्रुटितोऽस्ति. १३ उ द रादसहस्स, ब द येदोसहस्स, श दु रागदसहस्स. १४ उ उयदित्ताणं, क ओवदित्ताणं, श उपादित्ताणं.

मूलम्हि दु विक्खंभो पंचाणउदिं च जोयणसदाणि[1] । परिरयं[2] तीससहस्सा बादालीसा[3] य किंचूणा ॥ २०
धरणितले विक्खंभो[4] चदुणउदी होंति जोयणसदाणि । परिरय ऊणातीसं सत्त य पणुवीस साहीया ॥ २१
पंचेव जोयणसया उड्ढं गंतूण णंदणं होइ । पंचसदा विच्छिण्णा पढमा सेढी दु खुल्लाणं[5] ॥ २२
तेणउदिं[6] पण्णासा बाहिरविक्खंभ परिरओ तस्स । ऊणातीससहस्सा पंच य सत्तट्ठि साहीया ॥ २३
तेसीदिं पण्णासा अंतोविक्खंभपरिरओ[7] तस्स । छव्वीसं च सहस्सा चदुसद पंचेव साहीया ॥ २४
पणवण्णं च सहस्सा पंचेव सदाणि उवरि गंतूणं । सोमणसं णाम वणं णंदणवणसरिसवित्थारं ॥ २५
अट्ठत्तीससदाइं बाहिरविक्खंभपरिरओ[8] तस्स । बारस[9] चेव सहस्सा सत्तरसा होंति किंचूणा ॥ २६
अट्ठावीससदाइं अंतोविक्खंभ[10] परिरओ तस्स । अट्ठासीदिसदाइं चदुवण्णा[11] होंति साधीया ॥ २७
अट्ठावीससहस्सा उवरिं गंतूण पंडुगं होदि । सेसवियप्पा उवरिं तुल्ला सव्वेसिं[12] मेरूणं ॥ २८

उदाहरण—ऊपरसे ८४००० यो. नीचे (भूमितलपर) आकर क्षुद्र मेरुओंका विस्तार ८४००० ÷ १० + १००० = ९४०० यो. ।

इन मेरुओंका विस्तार मूलमें पंचानवै सौ (९५००) योजन प्रमाण है। इनकी परिधि तीस हजार ब्यालीस (३००४२) योजनसे कुछ कम है ॥ २० ॥ उक्त मेरुओंका विस्तार पृथिवीतलपर चौरानवै सौ (९४००) योजन प्रमाण और परिधि उनतीस [हजार] सात सौ पच्चीस (२९७२५) योजनसे कुछ अधिक है ॥२१॥ मेरुके ऊपर पांच सौ योजन जाकर पांच सौ योजन विस्तीर्ण नन्दन वन है। यह क्षुद्र मेरुओंकी प्रथम श्रेणी है ॥ २२ ॥ नन्दन वनके समीप क्षुद्र मेरुओंका बाह्य विष्कम्भ तेरानवै सौ पचास (९३५०) योजन और इसकी परिधि उनतीस हजार पांच सौ सड़सठ (२९५६७) योजनसे कुछ अधिक है ॥ २३ ॥ नन्दन वनके समीप क्षुद्र मेरुओंका अभ्यन्तर विष्कम्भ तेरासी सौ पचास (८३५०) योजन और इसकी परिधि छब्वीस हजार चार सौ पांच (२६४०५) योजनसे कुछ अधिक है ॥ २४ ॥ नन्दन वनसे पचवन हजार पांच सौ योजन ऊपर जाकर उक्त वनके समान विस्तारवाला सौमनस नामक वन स्थित है ॥ २५ ॥ सौमनस वनके समीपमें क्षुद्र मेरुओंका बाह्य विस्तार अड़तीस सौ (३८००) योजन और उसकी परिधि बारह हजार सत्तरह (१२०१७) योजनसे कुछ कम है ॥ २६ ॥ सौमनस वनके समीपमें उक्त मेरुओंका अभ्यन्तर विष्कम्भ अट्ठाईस सौ (२८००) योजन और उसकी परिधि अठासी सौ चौवन (८८५४) योजनसे कुछ अधिक है ॥ २७ ॥ सौमनस वनसे अट्ठाईस हजार योजन ऊपर जाकर पाण्डुक वन स्थित है। शेष ऊपरके विकल्प सब मेरुओंके समान हैं ॥ २८ ॥ धातकीखण्डमें स्थित दो मेरु, दो इष्वाकार पर्वत,

---

१ श जोयणसया. २ श णाहिय. ३ उ श वयालीसा. ४ उ विक्खंभे, श विक्खंभो. ५ उ श खुल्लाणं. ६ उ तेणउदिं, श तेणउदि. ७ श तेसीदि पणासीय परिरउ. ८ उ श सदायं बाहिरणविक्खंभ. ९ श अरस. १० उ श अंते विक्खंभे, ब तत्तो विक्खंभ. ११ उ श चदुवणा. १२ उ श सव्वेस.

दोण्हं मेरूण तहा दोण्हं इसुगारपव्वदाणं तु । धादगिदुमाण दोण्हं दोण्हं वरसामलिदुमाणं ॥ २९

अट्ठण्हं जमगाणं गयदंताणं तहेव अट्ठण्हं । दिसगयवरणामाणं[2] सोलसवरतुंगसेलाणं ॥ ३०

चउवीसविभंगाणं अट्ठावीसामहाणदीणं तु । वक्खारणगाण तहा बत्तीसण्हं विचित्तवण्णाणं[3] ॥ ३१

बत्तीसदहवराणं बारसकुलपव्वदाण तुंगाणं । अट्ठण्हं णायव्वा णाभिगिरीणामसेलाणं ॥ ३२

अडसट्ठिकुमुदसंणिभवेदड्ढणगाण धादगीसंडे । छण्णं कम्मखिदीणं[4] छप्पण्णसदाण[5] तह य कुंडाणं ॥ ३३

धादगिसंडस्स तहा चउवीसविहंगकुंडाणं । अडसट्ठिकणयसंणिभरिसभगिरीणामसेलाणं ॥ ३४

सव्वाणं पव्वदाणं चदुसदवरकणयणामधेयाणं । जह वण्णणा दु पुव्वं णिरवयवा तह य कायव्वा ॥ ३५

सव्वे वि वेदिसहिया सव्वे वणसंडमंडिया दिव्वा । सव्वे तोरणणिवहा जिणभवणविहूसिया दिव्वा ॥ ३६

अडवीससयणदीणं बारसवरभोगपउरभूमीणं । छक्खंडाण य णेया अडसट्ठा भेदभिण्णाणं ॥ ३७

जंबूदीवस्स पुणो जह पुव्वं वण्णणा समुद्दिट्ठा । धादगिसंडस्स तहा णिरवयवा वण्णणा होइ ॥ ३८

जंबूदीवो भणिदो[6] जावदियं चावि खेत्तगणिदेण । तावदियं च सदं खलु चोदालं[7] धादगीसंडे ॥ ३९

एक्कारसट्ठतीसा इगिदालं तह य होदि णवणउदा । सगवण्णा छच्च सदा एगट्ठा[8] खेत्तगणिदेण ॥ ४०

दो धातकी वृक्ष, दो शाल्मलि वृक्ष, आठ यमक, उसी प्रकार आठ गजदन्त, सोलह उन्नत उत्तम दिग्गजेन्द्र नामक शैल, चौबीस विभंगानदियां, अट्ठाईस महानदियां, विचित्र वर्णवाले बत्तीस वक्षार-पर्वत, बत्तीस उत्तम द्रह, उन्नत बारह कुलपर्वत, आठ नाभिगिरि नामक शैल, कुमुद (सफेद कमल) के सदृश अड़सठ वैताढ्य पर्वत, छह कर्मभूमियां (२ भरत, २ ऐरावत, २ विदेह); गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा के एक सौ छप्पन कुण्ड; चौबीस विभंगाकुण्ड, सुवर्ण सदृश अड़सठ ऋषभगिरि नामक शैल तथा चार सौ उत्तम कांचन नामक पर्वत, इन सबका पूर्वमें जैसा वर्णन किया गया है वैसा ही पूर्ण रूपसे यहां भी करना चाहिये ॥ २९–३५ ॥ सब ही [उपर्युक्त मेरुपर्वतादि] वेदियोंसे सहित, वनखण्डोंसे मण्डित, दिव्य, सब तोरणसमूहसे सहित और जिनभवनोंसे विभूषित हैं ॥ ३६ ॥ चौंसठ विजयोंकी एक सौ अठाईस नदियों, बारह श्रेष्ठ भोगप्रचुर भूमियों (२ हैमवत, २ हरि, २ देवकुरु, २ उत्तरकुरु, २ रम्यक २ हैरण्यवत) और अड़सठ भेदोंसे भिन्न छह (६८ × ६) खण्डोंका जैसा वर्णन जम्बूद्वीपमें किया गया है वैसा ही वर्णन पूर्णतया धातकीखण्डमें भी है ॥ ३७–३८ ॥ जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलका जितना प्रमाण कहा गया है उतने क्षेत्रफलकी अपेक्षा धातकीखण्डके एक सौ चवालीस खण्ड होते हैं ॥ ३९ ॥ धातकीखण्डका क्षेत्रफल ग्यारह, अड़तीस, इकतालीस, निन्यानबै, सत्तावन और छह सौ इकसठ (११३८४१९९५७६६१) योजन प्रमाण है ॥ ४० ॥ एक, तीन,

१ उ इसुगाण, श इसुराण. २ उ श दिसगयवराणमाणं. ३ क ब वत्तीसविचित्तविण्णाणं. ४ ब अडसट्ठि, श अणवहि. ५ उ श सदाणि. ६ उ श जंबूदीवेहि णिदो. ७ क सदं चोदालं, ब सदं खलु चउद्दालं. ८ उ श एक्कट्ठा.

एक्कं च तिण्णि तिण्णिं य छह सुण्णं छक्कं दोण्णि तिण्णेगं। एक्कचदुदोण्णिएक्कं धादगिसंडम्हि गणिदपदं ॥ ४१

वरवज्जमया वेदी धादगिसंडस्स होइ णादव्वा। चउगोउरसंजुत्ता चउदसवरतोरणुत्तुंगा ॥ ४२

धादगिसंडं दीवं उदधी कालोदओ परिक्खिवदि। सो अट्ठसयसहस्सा वित्थिण्णो चक्कवालम्हि ॥ ४३

कालसमुद्दप्पहुदी बोद्धव्वा होंति टंकछिण्णाओ। उव्वेधेण सहस्सं पादाला णेव तत्थत्थि ॥ ४४

इगिणउदिसदसहस्सा सदरिसहस्साइं छस्सदा णेया। जोयणपंचब्भहिया परिही कालोदए दिट्ठा ॥ ४५

पंच तियं बारसयं बावट्ठी छक्क तह य छादालं। णव सुण्णं बासीदं कालयणामम्हि गणितपदं ॥ ४६

छावट्ठिं अडदालं अट्ठाट्ठिं सत्तसीदिमसिदिं च। पण्णासं च चउक्कं हवदि य कालोदधीसंखा ॥ ४७

जंबूदीवो भणिदो जावदियं चावि खेत्तगणिदेण। छच्चेव सदा बावत्तरिं च कालोदधिं जाणे ॥ ४८

गंगादीणदियाणं हिमवंतादी तहेव सेलाणं। ताणभिमुहेण होंति य कुमाणुसाणं महादीवा ॥ ४९

वणवेदिएहि जुत्ता वरतोरणमंडिया मणभिरामा। कालोदयम्मि दीवा णिदिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ५०

तीन, छह, शून्य, छह, दो, तीन, एक, एक, चार, दो और एक (१२४११३२६०६३१) इतने योजन प्रमाण [जम्बूद्वीप व लवणसमुद्रसे संयुक्त] धातकीखण्डका क्षेत्रफल है ॥ ४१ ॥ धातकीखण्डकी उत्तम वज्रमय वेदी चार गोपुरोंसे संयुक्त और उत्तम चौदह तोरणोंसे उन्नत जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ धातकीखण्ड द्वीपको कालोद समुद्र वेष्टित करता है। वह मण्डलाकारमें आठ लाख योजन विस्तीर्ण है ॥ ४३ ॥ कालोद समुद्र आदि आगेके समुद्र टांकीसे उकेरे हुएके समान जानना चाहिये। ये एक हजार योजन गहरे हैं तथा उनमें पाताल नहीं हैं ॥ ४४ ॥ कालोदक समुद्रकी परिधि इक्यानबै लाख सत्तर हजार छह सौ पांच (९१७०६०५) योजन प्रमाण निर्दिष्ट की गई है ॥ ४५ ॥ कालोद समुद्रका क्षेत्रफल पांच, तीन, बारह, बासठ, छह, छयालीस, नौ, शून्य और ब्यासी (८२०९४६६६२१२३५) इतने योजन प्रमाण है ॥ ४६ ॥ [जम्बूद्वीपादिके क्षेत्रफलसे युक्त] कालोद समुद्रका क्षेत्रफल छयासठ, अड़तालीस, अड़सठ, सतासी, अस्सी, पचास और चार (४५०८०८७६८४८६६) इतने योजन प्रमाण है ॥ ४७ ॥ जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलका जितना प्रमाण कहा गया है उसकी अपेक्षा कालोद समुद्रका क्षेत्रफल छह सौ बहत्तरगुणा जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ गंगादिक नदियों तथा हिमवान् आदि शैलोंके अभिमुख कुमानुषोंके महा द्वीप हैं ॥ ४९ ॥ कालोद समुद्रमें स्थित ये द्वीप सर्वदर्शियोंके द्वारा वन-वेदियोंसे संयुक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित और मनको अभिराम निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ५० ॥ कालोद समुद्रस्थ इन द्वीपोंमें स्थित कुमानुष

---

१ उ श मिंनि. २ उ श चेक. ३ उ श तिण्णेक्को. ४ उ श छक्क. ५ क ब संडेहिं. ६ क ब धादगिसंडो दीवो उदधि कालोदयं परिक्खिवदि. ७ उ श कालसमुद्दापहुदी, क कालसमुद्दप्पहुदिं, ब कालसमुद्दापहुदिं. ८ उ श पादाले ण तवत्थक्कच्छि, ९ उ श सदसहस्सा य, (कप्रतौ त्रुटितास्तीयं गाथा). १० उ श वादालं. ११ उ कालयणामो दु गणितपदं, श कालयणामो दु गणिएपदं.

एगोरुगवेसाणिगलंगूलिग तह अभासया[2] णेया। हयकण्णा य कुमाणुस तहेव वरकण्णपावरणा ॥ ५१
लंबससकण्णमणुया तुरंगवरसीहसुणहमहिसमुहा। सूवर[3]वग्घउलूमुहं[4] मिगवाणरमीणवरवयणा ॥ ५२
गोमेसमेघवदणा विज्जूआदरिसमत्तंकरिवदणा[5]। कालोदए समुद्दे कुमाणुसा होंति णिद्दिट्ठा ॥ ५३
कोसेक्कसमुत्तुंगा पलिदोवमआउगा समुद्दिट्ठा। अमलयमाणाहारा[6] चउत्थभत्तेण पारिंति[7] ॥ ५४
भोत्तूण मणुयभोयं मरिदूण य ते कुमाणुसा सव्वे। उप्पज्जंति महप्पा तिवग्गदेवाण भवणेसु ॥ ५५
कालसमुद्दस्स तहा वज्जमया वेदिया समुद्दिट्ठा। चउगोउरसंजुत्ता चउदसवरतोरणुत्तुंगा[8] ॥ ५६
पोक्खरवरो दु दीवो उदधिं कालोदयं परिक्खिवदि। सोलस दु सयसहस्सा वित्थारो चक्कवालम्हि ॥ ५७
तस्स य दीवस्सद्धं परिरयदि य[9] माणुसोत्तरो सेलो। बाहिरभागणिविट्ठो[10] तद्दीवद्धं परिक्खिवदि ॥ ५८
सत्तरस एक्कवीसाणि उच्छिओ[11] माणुसुत्तरो सेलो। चत्तारि जोयणसया तीसं कोसं च उव्वेधो ॥ ५९
चत्तारि जोयणसदा चउवीसाइं च वित्थडा[12] उवरिं। दस बावीसा मूले[13] तेवीसा सत्त मज्झम्हि ॥ ६०

एक ऊरुवाले, वैषाणिक, लांगूलिक, तथा अभाषक, अश्वकर्ण, कर्णप्रावरण, लम्बकर्ण, शशकर्ण, तुरंगमुख, उत्तम सिंहमुख, श्वानमुख, महिषमुख, शूकरमुख, व्याघ्रमुख, उलूकमुख, मृगवदन, वानरवदन, मीनवदन, गोवदन, मेषवदन, मेघवदन, विद्युद्वदन, आदर्शवदन और गजवदन होते हैं; ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ॥ ५१–५३ ॥ एक कोश ऊंचे, एक पल्योपम प्रमाण आयुवाले और आंवलेके प्रमाण आहार करनेवाले ये कुमानुष चतुर्थ भक्तसे पारणा करते हैं ॥ ५४ ॥ वे सब कुमानुष मनुष्योंके योग्य भोगको भोग कर और फिर मरकर भवनत्रिक देवोंके भवनोंमें महात्मा उत्पन्न होते हैं ॥ ५५ ॥ धातकीखण्ड द्वीपके समान कालोदक समुद्रके भी चार गोपुरोंसे संयुक्त और उत्तम चउदह तोरणोंसे समुन्नत वज्रमय वेदिका निर्दिष्ट की गई है ॥ ५६ ॥ कालोद समुद्रको चारों ओरसे पुष्करवर द्वीप वेष्टित करता है। इसका मण्डलाकार विस्तार सोलह लाख योजन है ॥ ५७ ॥ उस द्वीपके अर्ध भागको मानुषोत्तर शैल वेष्टित करता है। पुष्करार्द्धके बाह्य भागमें स्थित यह पर्वत उक्त द्वीपके अर्ध भागको वेष्टित करता है ॥ ५८ ॥ मानुषोत्तर शैल सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊंचा तथा चार सौ तीस योजन व एक कोश अवगाहसे संयुक्त है ॥ ५९ ॥ इसका विस्तार ऊपर चार सौ चौबीस योजन, मूलमें दश सौ बाईस योजन और मध्यमें सात सौ तेईस योजन है ॥ ६० ॥ मानुषोत्तर शैलपर चारों ही

१ उ श वेसोणिग, ब वसाणिग. २ उ क ब यमासया. ३ क ब सूयर. ४ क अलूमुह. ५ उ श विज्जूआदरसमंत, ब विज्जयादरीसमत्त, क विज्जुयादरसमत्त. ६ उ श आमलपमाणहारा, ब आमलपमाणहाणा. ७ क पारंति, ब आरंति, श परिंति. ८ श चउदसवरसमुत्तुंगा. ९ ब परिरयदी व. १० उ श निविट्ठो. ११ उ श एक्कवीसाणि उस्सिदो. १२ क वीत्थरो, ब वित्थरो. १३ उ श चूले.

मणुसुत्तरम्मि सेले चदुसु वि य दिसासु होंति चत्तारि । तुंगा विचित्तवण्णा मणिकंचणरयणपरिणामा ॥ ६१
धुव्वंतधयवडाया मुत्तादामेहि मंडिया दिव्वा । भिंगारकलसपउरा बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ ६२
कालागरुगंधड्ढा संगीयमुदिंगसद्दगंभीरा । घंटाकिंकिणिणिवहा जिणिंदइंदाण वरभवणा ॥ ६३
मंदरसेलस्स वणे जिणिंदइंदाण पवरपासादा । जह वण्णिया असेसा तह एत्थ वि वण्णणा होइ[1] ॥ ६४
सत्तरससदसहस्सा चदुसद कोडी य[2] सत्तवीसाणि । पोक्खरवरद्धमज्झे परिरयमेदं वियाणाहि ॥ ६५
बादालसदसहस्सा तीससहस्सा सदा य वे कोडी । माणुसखेत्तपरिरओ सविसेसं चूणवण्णा य[5] ॥ ६६
वंसधरा वंसधरो चदुग्गुणो होइ पुक्खरवरम्मि । वंसादो वि य वंसो चदुग्गुणो होइ बोद्धव्वा[6] ॥ ६७
तिण्णेव सयसहस्सा पणवण्णं होइ तह सहस्साइं[7] । छच्च सदा[8] चुलसीदा रुद्धं तु णगेहि दीवद्धो ॥ ६८
वंसहरविरहियं खलु जं खेत्तं हवइ पोक्खरद्धम्हि । तस्स दु छेदा[9] णियमा वे चेव सदाणि बाराणि ॥ ६९
इगिदालीससहस्सा ऊणासीदा सदा य पंच हवे । तेहत्तरिभागसदं अंतो भरहस्स विक्खंभो ॥ ७०

दिशाओंमें उन्नत, विचित्र वर्णवाले; मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित; फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त, मुक्तामालाओंसे मण्डित, दिव्य, भृंगार एवं कलशोंकी प्रचुरतासे संयुक्त, बहुत कुसुमोंसे की गई पूजासे सनाथ, कालागरुकी गन्धसे व्याप्त, संगीत एवं मृदंगके शब्दसे गंभीर, तथा घंटा व किंकिणियोंके समूहसे सहित ऐसे श्रेष्ठ चार जिनेन्द्रप्रासाद हैं। जैसे पहिले मन्दर पर्वतके वनमें स्थित सब उत्तम जिनेन्द्रप्रासादोंका वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन यहां भी जानना चाहिये ॥ ६१-६४ ॥ एक करोड़ सत्तरह लाख चार सौ सत्ताईस (११७००४२७) योजन, यह पुष्करार्धके मध्यमें परिधिका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ मनुष्यक्षेत्रकी परिधि एक करोड़ ब्यालीस लाख तीस हजार दो सौ उनंचास (१४२३०२४९) योजनसे कुछ कम है ॥ ६६ ॥ पुष्करवर द्वीपमें पूर्व पूर्व कुलपर्वतकी अपेक्षा आगे आगेका कुलपर्वत तथा पूर्व पूर्व क्षेत्रकी अपेक्षा आगे आगेका क्षेत्र भी चौगुणा जानना चाहिये ॥ ६७ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीप तीन लाख पचवन हजार छह सौ चौरासी योजन प्रमाण पर्वतोंसे रुद्ध है ॥ ६८ ॥ पुष्करार्द्ध द्वीपमें जो क्षेत्र कुलपर्वतोंसे रहित है उसके नियमसे दो सौ बारह (१ + ४ + १६ + ६४ + १६ + ४ + १) × २ = २१२) खण्ड हैं ॥ ६९ ॥ इकतालीस हजार पांच सौ उन्यासी योजन और एक सौ तिहत्तर भाग ($४१५७९\frac{१७३}{२१२}$) प्रमाण भरतक्षेत्रका अभ्यन्तर विष्कम्भ है ॥ ७० ॥ भरतक्षेत्रका

---

१ उ श इत्थ वि वण्णणोह. २ उ श कोडि य, क कोडीउ. ३ उ बादल, श बाहुल. ४ श सद-सहस्सा सदा य. ५ उ श सविसेसुगुणपवणा य ६ क श णायव्वा. ७ उ श तह य सहस्साइं. ८ उ श चया. ९ उ क ब श छेदो.

तेवण्णं च सहस्सा पंचेव सदाणि बाराणि । णवणउदिं भागसदं मज्झे भरहस्स विक्खंभो ॥ ७१
पण्णट्ठिं च सहस्सा चत्तारि सदाणि होंति छादाला । तेरस चेव य भागा बाहिरभरहस्स विक्खंभो ॥ ७२
जंबूदीवो भणिदो जावदिओ चावि खेत्तगणिदेण । तावदियाणि सहस्सा चुलसीदि सदं च दीवद्धो[२] ॥ ७३
बे दीवा बे उदधी जावदिया चावि खेत्तगणिदेण । तं तु दिवड्ढं ऊणं (?) खेत्तपमाणेण दीवद्धे[३] ॥ ७४
दोण्हं गिरिरायाणं दोण्हं इसुगारणामसेलाणं । सामलितरूण दोण्हं दोण्हं वरपउमरुक्खाणं ॥ ७५
अट्ठण्हं जमगाणं अट्ठण्हं वरकरिंददंताणं । बारसवंसहराणं बारसवरभोगभूमीणं ॥ ७६
दिसिगयवरणामाणं अट्ठण्हं दुगुणिदाण[५] सेलाणं । चउसयकणयणगाणं णाहिगिरीणं तु अट्ठण्हं ॥ ७७
चउवीसविभंगाणं अट्ठावीसं महाणदीणं तु । बत्तीसदहवराणं वक्खाराणं तु तह य णायव्वा ॥ ७८
विज्जाहरसेलाणं अडसट्ठाणं तु तह य णायव्वा । अडसट्ठाणं च तहा वसभगिरीणामसेलाणं ॥ ७९
छण्हं कम्मखिदीणं छप्पण्णसदाण तह य कुंडाणं । अडवीससदणदीणं चउवीसविभंगकुंडाणं ॥ ८०
सट्ठी अट्ठहियाणं छक्खंडविमंडियाण विजयाणं । पोक्खरवरअद्धस्स य अण्णे वि णगाणदीणं तु ॥ ८१
होंति महावेदीओ मणिकंचणरयणतोरणा दिव्वा । रयणमया पासादा वणसंडा तह य णायव्वा ॥ ८२

विस्तार मध्यमें तिरेपन हजार पांच सौ बारह योजन और एक सौ निन्यानबै भाग (५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$) प्रमाण है ॥ ७१ ॥ बाह्य भरतक्षेत्रका विष्कम्भ पैंसठ हजार चार सौ छयालीस योजन और तेरह भाग (६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$) प्रमाण है ॥ ७२ ॥ क्षेत्रफलके प्रमाणसे जितना जम्बूद्वीप कहा गया है उतने प्रमाणसे पुष्करार्द्धके एक हजार एक सौ चौरासी (११८४) खण्ड जानना चाहिये ॥ ७३ ॥ क्षेत्रफलकी अपेक्षा जितने मात्र दो द्वीप और दो समुद्र हैं उतने क्षेत्रप्रमाणसे पुष्करार्द्ध द्वीप डेढ़गुणेसे कुछ कम है (?) ॥ ७४ ॥ पुष्करवर द्वीप सम्बन्धी दो मेरु, दो इष्वाकार नामक शैल, दो शाल्मली वृक्ष, दो श्रेष्ठ पद्म (पुष्कर) वृक्ष, आठ यमक, आठ उत्तम गजदन्त, बारह कुलपर्वत, बारह उत्तम भोगभूमियां, दुगुणित आठ अर्थात् सोलह दिग्गजेन्द्र पर्वत, चार सौ कांचन पर्वत, आठ नाभिगिरि, चौबीस विभंगानदियां, अट्ठाईस महानदियां, बत्तीस उत्तम द्रह, तथा बत्तीस वक्षार पर्वत, अड़सठ विद्याधरशैल (विजयार्ध), तथा अड़सठ वृषभगिरि नामक पर्वत, छह कर्मभूमियां, एक सौ छप्पन कुण्ड, एक सौ अट्ठाईस नदियां, चौबीस विभंगाकुण्ड, छह खण्डोंसे मण्डित आठसे अधिक साठ अर्थात् अड़सठ विजय, तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी जो पर्वत व नदियां हैं उन सबके मणि, सुवर्ण एवं रत्नमय तोरणोंसे संयुक्त दिव्य महा वेदियां, रत्नमय प्रासाद तथा वनखण्ड जानना चाहिये ॥ ७५–८२ ॥

१ उ श व. २ क ब दीवद्धे. ३ उ श दीवद्धो. ४ श जमकरिंद. ५ श दुगिणिदाण.

धुव्वंतधयवडाया जिणगेहा ताण होंति सव्वाणं । पोक्खरणिवावियाओ णिद्दिट्ठा[1] तह य णायव्वा ॥ ८३
जंबूदीवो धादइसंडो[2] पुक्खरवरो य तह दीवो । वारुणिवर[3] खीरवरो घयवर तह खोदवरदीवो[4] ॥ ८४
णंदीसरो य अरुणो अरुणब्भासो य कुंडलवरो य । संखवर रुजग भुजगो वर कुसवर कोंचवरदीवो[5] ॥ ८५
एदे सोलस दीवा णामा एदे हि आणुपुव्वीए । तेण परं जे सेसा णामा संखा इमा[6] तेसिं ॥ ८६
जावदियाणि य लोए सुभणामा ते इमेहि णामेहि । दीवा वि य णायव्वा बहुवा[7] एक्केक्क[8]णामेहि ॥ ८७
दीवं सयंभुरमणं जंबूदीवादि जाव अरुणंते[9] । वज्जिय सेसा दीवा सव्वे णामेहि सामण्णा[10] ॥ ८८
जंबूदीवे लवणो धादगिसंडम्मि हवदि[11] कालोदो । सेसाणं दीवाणं दीवसरिसणामया उदधी ॥ ८९
जंबूदीवादीया दीवा लवणादिया तहा उदधी । जाव दु सयंभुरमणो[12] विण्णेया दीव उदधी य ॥ ९०
लवणो कालयसलिलो सयंभुरमणोवही य तिण्णेदे । मच्छाण[13] कुम्मणिलया झसकुम्मविवज्जिया सेसा ॥ ९१
अट्ठारसजोयणिया[14] लवणे णवजोयणा णदिमुहेसु । छत्तीसगा य कालोदयम्मि अट्ठारसा णदिमुहेसु ॥ ९२

उन सबके फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त जिनगृह होते ह। तथा इन जिनगृहोंमें पुष्करिणियां एवं वापिकायें भी निर्दिष्ट की गई जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करवर द्वीप, वारुणिवर, क्षीरवर, घृतवर, क्षौद्रवर द्वीप, नन्दीश्वर, अरुण, अरुणाभास, कुण्डलवर, शंखवर, रुचकवर, भुजगवर, कुशवर और क्रौंचवर द्वीप, ये जो सोलह द्वीप हैं उनके ये अनुक्रमसे नाम हैं। इसके आगे जो शेष द्वीप हैं उनके नाम व संख्या यह है। वे द्वीप भी लोकमें जितने शुभ नाम हैं उन नामोंसे सहित जानना चाहिये। बहुतसे द्वीप एक एक (समान) नामोंसे संयुक्त हैं ॥ ८४–८७ ॥ जम्बूद्वीपको आदि लेकर स्वयम्भुरमण द्वीप तक अरुण पर्यन्त छोड़कर शेष सब द्वीप नामोंसे समान हैं (?) ॥ ८८ ॥ जम्बूद्वीपमें लवणसमुद्र और धातकीखण्ड द्वीपमें कालोद समुद्र है। शेष द्वीपोंके समुद्र द्वीपके समान नामवाले हैं ॥ ८९ ॥ जम्बूद्वीपको आदि लेकर द्वीप तथा लवण समुद्रको आदि लेकर समुद्र इस प्रकार स्वयम्भुरमण पर्यन्त द्वीप-समुद्र जानना चाहिये ॥ ९० ॥ लवणोद, कालोद और स्वयम्भुरमण ये तीन समुद्र मछलियों और कछुओं (जलचर जीवों) के आवास रूप हैं; शेष समुद्र मछलियों और कछुओंसे रहित हैं ॥ ९१ ॥ लवण समुद्रमें [मध्यमें] अठारह योजन व नदिमुखोंमें नौ योजन, कालोदक समुद्रमें [मध्यमें] छत्तीस योजन व नदीमुखोंमें अठारह योजन, तथा स्वयम्भुरमण

१ श दिट्ठा. २ उ घादगिरिसंडो, श धागिरिसंडो. ३ उ श वरुणिवर. ४ उ श दीवे, ब दीउ. ५ उ श कुंच. ६ ब इमे. ७ क ब बहुगा. ८ श एएक्कक्क. ९ उ जंबूदीवादि जामरुअणंते, श जंबूदीवामरु-अणंते. १० क ब सावन्ना. ११ उ लवणो घादइसंडे य हवदि, श लवणे धादइसंझे य हकहि. १२ उ श रवणो, ब रमणे. १३ उ मच्छाय (शप्रतौ स्खलितोऽत्र पाठः) १४ श जोयणणिय.

साहस्सिया दु मच्छा सयंभुरमणोदधिम्हि[1] बोद्धव्वा। एमेव झसवराणं[2] उक्कस्सं[3] होइ उच्चत्तं ॥ ९३

पत्तेयरसा चत्तारि सायरा[4] तिण्णि होंति उदयरसा। अवसेसा य समुद्दा बोद्धव्वा होंति खोदरसा[5] ॥ ९४

लवणो वारुणितोओ[6] खीरवरो घयवरो[7] य पत्तेया। कालो पोक्खरउदधी सयंभुरमणो य उदयरसा ॥ ९५

जा दक्खिणदीवंते णीलादो दक्खिणे गदा रज्जू[8]। तिस्से[9] मज्झे गंठी[10] किं वंसे अहव वंसधरे[11] ॥ ९६

णिसधगिरिस्सुत्तरदो[12] बेसदतेवट्ठि जोयणसदेसु। भागे च तिण्णि गंतुं सा[13] गंठी होइ देवकुरुं[14] ॥ ९७

मंदरतलमज्झादो भरहंता जा गदा हवे रज्जू। तिस्से मज्झे गंठी किं वंसे अहव वंसधरे[15] ॥ ९८

सत्तावण्णं च सदा अट्ठसहस्सा कला य सत्तरसा। णिसहगिरिस्सुत्तरदो ओगाहिय सा हवे गंठी ॥ ९९

मंदरतलमज्झादो सयंभुरमणम्मि जा गया रज्जू[16]। तिस्से[17] मज्झे गंठी किं दीवे अहव उदधीए ॥ १००

अब्भंतरम्मि भागे[18] सयंभुरमणोदयस्स दीवस्स। पण्णत्तरि य सहस्सा ओगाहिय[19] सा हवे गंठी ॥ १०१

समुद्रमें एक हजार योजन [दीर्घ] मत्स्य जानना चाहिये। यही महामत्स्योंकी उत्कृष्ट उंचाई है ॥ ९२–९३ ॥ चार समुद्र प्रत्येकरस अर्थात् अपने अपने नामके अनुसार रसवाले, तीन समुद्र जलके समान रसवाले, और शेष समुद्र क्षोदरस (ऊखके समान रसवाले) जानना चाहिये ॥ ९४ ॥ लवण, वारुणीवर, क्षीरवर और घृतवर, ये चार समुद्र प्रत्येकरस तथा कालोद, पुष्करवर और स्वयम्भुरमण, ये तीन समुद्र उदकरस हैं ॥ ९५ ॥ नील पर्वतसे दक्षिणकी ओर दक्षिण द्वीपान्तमें जो रज्जु गई है उसके मध्यमें स्थित ग्रन्थि [अर्धच्छेद] क्या वर्षमें है अथवा वर्षधरमें है ? ॥ ९६ ॥ निषध पर्वतके उत्तरमें दो सौ तिरेसठ योजन व तीन भाग जाकर वह ग्रन्थि देवकुरु [में पड़ती] है ॥ ९७ ॥ मन्दरतलके मध्य भागसे भरतक्षेत्र पर्यन्त जो रज्जु गई है उसके मध्यमें स्थित ग्रन्थि क्या वर्षमें है अथवा वर्षधरमें है ? ॥ ९८ ॥ वह ग्रन्थि निषध पर्वतके उत्तरमें आठ हजार एक सौ सत्तावन योजन और सत्तरह कला अवगाहन करके स्थित है ॥ ९९ ॥ मन्दरतलके मध्य भागसे स्वयम्भुरमण समुद्रमें जो रज्जु गई है उसके मध्यमें स्थित ग्रन्थि क्या द्वीपमें है अथवा समुद्रमें है ? ॥ १०० ॥ वह ग्रन्थि स्वयम्भुरमण समुद्रके अभ्यन्तर भागमें एक हजार पचत्तर योजन द्वीपका अवगाहन करके स्थित है ॥ १०१ ॥ मन्दरतलके मध्य भागसे लोकके अन्त तक

१ उ श रमणोदधीहिं, ब रमणोदधीहि. २ ब एमेव सवराणं ३ उ श उक्कसं. ४ उ श सयाए. ५ श सोदरसा. ६ उ श तेओ. ७ उ घयवरो, श घवरो. ८ उ दीवंतेसु नीलवंतादु दक्खिणागदा रद्दू, क दीवंते णीलादो दक्खिणे गया रज्जू, ब दीवंते सीलवंता दु दक्खिणा रज्जू, श दीवंतेसु नीलवण्णा दक्खिणेगदा रज्जू. ९ उ श तिसे, ब तस्से. १० क गंठे. ११ क अधव वसधरे, ब अधव वसंधरा, श अहव वसंधरो. १२ उ श गिरीसुत्तरदो. १३ उ श च तदो गंतुं सो. १४ श गंठी किं वंसे देवकुरू. १५ उ श वंसवरे. १६ उ श सयंभुरमणोदधी गया रज्जू, ब स्वयंभुरवणादधी गया रज्जू. १७ उ श तिसे, क ब तस्से. १८ क अब्भंतरिमा भागा, ब अकंतरिमा भागो, श अब्भंतरम्मि विभागे. १९ उ श उग्गाहिय, ब उग्गाहिया.

मंदरतलमज्झादो लोगंता जा गदा उदधिवंतं[1] । तिस्से मज्झे गंठी इमं तु[2] विज्जापदविसेसं ॥ १०२
पण्णत्तरि य सहस्सा ओगाहियं[3] सा दु होदि बोद्धव्वो[4] । दीवम्हि समुद्दम्हि य मज्झे जो जत्थ पुच्छेज्जो[5] ॥ १०३
जे कम्मभूमिजादा मच्छा मणुया[6] य पावसंजुत्ता । ते कालगदा संता उवेंति[7] णिरएसु[8] घोरेसु ॥ १०४
पावेण अहोलोयं[9] पुण्णेण पुणो वि उड्ढलोगं तु । गच्छंति णरा तिरिया तिरिक्खखेत्तेसु[10] संभूया[11] ॥ १०५
हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासणझल्लरीमुदिंगणिभो । मज्झिमवित्थारेण दु चोद्दसगुणमायदो[12] लोगो ॥ १०६
लोयस्स दु[13] विक्खंभो चदुप्पयारेण होदि बोद्धव्वो । सत्तेक्कगो य पंचेक्कगो य रज्जू[14] मुणेयव्वो[15] ॥ १०७
मुहतलसमासअद्धं[16] उच्छेहगुणं गुणं च वेधेण[17] । घणगणिदं जाणेज्जो[18] वेत्तासणसंठिदे खेत्ते[19] ॥ १०८
भणिदो य अधोलोगो छण्णउदि सदेण होदि रज्जूणि । णिप्पण्ण उड्ढलोगो[20] सदेण खलु सत्तदालेणं[21] ॥ १०९

समुद्र पर्यन्त जो रज्जु गई है उसके मध्यमें जो ग्रन्थि स्थित है वह तो विद्यापदविशेष है ॥ १०२ ॥ वह ग्रन्थि एक हजार पचत्तर योजन अवगाहन करके द्वीप व समुद्रमें जानना चाहिये । मध्यमें जो जहां हो पूछना [पूछकर जानना] चाहिये (?) ॥ १०३ ॥ जो मनुष्य व मत्स्य (तिर्यंच) कर्मभूमिजात हैं वे पापसे संयुक्त होते हुए मृत्युको प्राप्त होकर भयानक नरकोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १०४ ॥ तिर्यग्लोक (मध्यलोक) में उत्पन्न हुए मनुष्य व तिर्यंच पापके वश होकर अधोलोकमें तथा पुण्यके वश होकर ऊर्ध्व लोकमें जाते हैं ॥ १०५ ॥ यह लोक नीचे, मध्यमें और ऊपर क्रमसे वेत्रासन, झल्लरी व मृदंगके सदृश है । यह मध्यम लोकके विस्तार (१ राजु) की अपेक्षा चौदहगुणा आयत (ऊंचा) है ॥ १०६ ॥ लोकका विस्तार [अधोलोकके अन्तमें, मध्यलोकमें, ब्रह्म स्वर्गके अन्तमें तथा ऊर्ध्वलोकके अन्तमें क्रमसे] सात, एक, पांच और एक राजु; इस तरह चार प्रकारका जानना चाहिये ॥ १०७ ॥ मुख और तल (भूमि) को जोड़कर व उसे आधा करके फिर उंचाईसे तथा मुटाईसे गुणित करनेपर वेत्रासन सदृश क्षेत्र अर्थात् अधोलोकका घनफल प्राप्त होता है, ऐसा जानना चाहिये [जैसे— मुख १ राजु, भूमि ७ राजु, उंचाई ७ राजु, मुटाई ७ राजु; ($\frac{१+७}{२}$) × ७ × ७ = १९६ राजु] ॥ १०८ ॥ अधोलोकका घनफल एक सौ छयानबै राजु तथा ऊर्ध्वलोकका एक सौ सैंतालीस [($\frac{१+५}{२}$) × ७ × ७ = १४७] राजु प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ १०९ ॥ मूलको मध्यसे गुणित करके जो प्राप्त

१ उ उदधिअंतां, श उदधिअंती. २ क इमा तु विज्जापदविसेमा. ३ उ श उग्गाहिय. ४ श सो दु हो विव्वो. ५ उ मज्झे जो जत्थ, श मज्झे जो ज जेच्छ. ६ उ श माणुया. ७ उ उविंति, ब उवएति, श उविंति. ८ क णरएसु, ब णारएसु. ९ उ श अधोलोए. १० श गच्छंति णिरा तिरिक्खेत्तेसु. ११ ब संभूय. १२ उ श चोदसगुणमायगो. १३ क ब दु १४ क सत्तेक्कगो य रज्जू. १५ क मुणेयव्वा, ब मुनेयव्वा. १६ उ श मुहतसलमोसमद्धं. १७ उ च वेधेन, श चेवेन. १८ उ श जाणिज्जा. १९ क ब लेत्तो. २० उ श णिपुण्ण. २१ उ सत्ततालेण, श सत्ताणेल.

मूलं मज्झेण गुणं मुहसहिदद्धं तु तुंगकदिगुणिदं[1] । घणगणिदं[2] जाणिज्जो मुदिंगसंठाणखेत्तम्हि ॥ ११०
तिरियाल्लोयायारप्पमाणं[3] हेट्ठा दु सत्तपुढवी णं । आयासंतरिदाओ वित्थिण्णयरा य हेट्ठिट्ठा[4] ॥ १११
घम्मा वंसा मेघा[5] अंजणरिट्ठा य होदि अणिउज्झा[6] । छट्ठी मघवी पुढवी सत्तमिया माघवी णाम ॥ ११२
रयणा[7]सक्करवालुयपंकप्पभ धूम पंचमी पुढवी । छट्ठी तमप्पभा वि य सत्तमिया तमतमा णाम ॥ ११३
एयं च सयसहस्सा होदि असीदिं च जोयणसहस्सा । रयणप्पभाबहुलियं[8] भागेसु वि[9] तीसु पविभत्तं ॥११४
खरभागपंकबहुला अप्पबहुलो य होइ णायव्वा । एदे तिण्णि विभागा रयणप्पभणामपुढवीए ॥ ११५
सोलस दु खरे भागे पंकबहुले तहा य चुलसीदिं । अप्पबहुले असीदी बोद्धव्वा जोयणसहस्सा ॥ ११६

हो उसमें मुखप्रमाणको मिलाकर और फिर उसे आधा करके उंचाईके वर्गसे गुणित करनेपर प्राप्त राशि मृदंगाकार क्षेत्र (मध्यलोक) में घनफलका प्रमाण जानना चाहिये (?) ॥ ११० ॥

विशेषार्थ— वृत्त क्षेत्रके विस्तारका जो प्रमाण हो उसका वर्ग करके फिर उसे दशसे गुणित करे । इस प्रकार जो राशि प्राप्त हो उसका वर्गमूल निकालनेपर वृत्त क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है । इस परिधिप्रमाणको विस्तारके चतुर्थ भाग ($\frac{1}{4}$) से गुणित करनेपर वृत्त क्षेत्रका क्षेत्रफल व उक्त क्षेत्रफलको वृत्त क्षेत्रके बाहल्यसे गुणित करनेपर उसके घनफलका प्रमाण आता है । जैसे— मनुष्यलोकका विस्तार ४५००००० यो. व बाहल्य उसका १००००० यो. है । अत एव $\sqrt{४५०००००^2 \times १०}$ = १४२३०२४९ यो. परिधि; १४२३०२४९ $\times \frac{४५०००००}{४}$ = १६००९०३०१२५००० क्षेत्रफल; १६००९०३०-१२५००० $\times$ १००००० = १६००९०३०१२५०००००००० घनफल ।

तिर्यग्लोकके नीचे घर्मा, वंशा, मेघा, अंजना और अरिष्टा ये यादृच्छिक नामवाली तथा छठी मघवी और सातवीं माघवी नामक, ये उत्तरोत्तर अधिक अधिक विस्तीर्ण सात पृथिवियां आकाशसे अन्तरित होती हुईं नीचे नीचे स्थित हैं ॥१११–११२॥ रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, पांचवीं धूमप्रभा, छठी तमःप्रभा और सातवीं तमस्तमःप्रभा, ये उक्त पृथिवियोंके नामान्तर हैं ॥११३॥ तीनों ही भागोंमें विभक्त रत्नप्रभाका बाहल्य एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है ॥ ११४ ॥ खरभाग, पंकबहुलभाग और अब्बहुलभाग, ये तीन रत्नप्रभा नामक पृथिवीके विभाग जानना चाहिये ॥ ११५ ॥ इनमेंसे खरभागका सोलह हजार, पंकबहुलभागका चौरासी हजार और अब्बहुलभागका अस्सी हजार योजन प्रमाण बाहल्य जानना चाहिये ॥ ११६ ॥ चित्रा, वज्रा, वैडूर्या, लोहितांका,

१ ब तुंगतुगकदिगुणिदं, श तु तुंगगुणिदं. २ उ श घणगुणिदं. ३ उ क श °लोयायारं पमाण, ब लोयायारं पमाणं. ४ उ श वित्थिणयरायहेट्ठिट्ठा, क ब वित्थिण्णयरायहेट्टेट्ठा. ५ उ ब श घम्मा मेघा वंसा. ६ उ श अणिउंज्जा. ७ उ ब श रयणा. ८ उ बेहुलियं, क ब बेहुलिया, श बेहुलियं. ९ क अ.

चित्ते वइरे वेरुलि लोहियअंके मसारगल्ले य । गोमज्जए[1] पवाले य तह जोइरसेत्ति य ॥ ११७
णवमे अंजणे वुत्ते दसमे अंजणमूलये । अंके एक्कारसे वुत्ते फलिहंके बारसेत्ति य[2] ॥ ११८
चंदणे वच्चगे[3] चावि बहुले[4] पण्णारसेत्ति[5] य । सिलामए वि अक्खाए[6] सोलसे पुढवी तले ॥ ११९
सोलस चेव सहस्सा रयणाइं होंति चेव बोद्धव्वा । तलउवरिमम्मि भागे जेण दु रयणप्पभा णाम[7] ॥ १२०
अवसेसा पुढवीओ बोद्धव्वा होंति पंकबहुलाओ । बेहुलिएहि य तेसिं छण्हं पि इमं कमं जाणे[8] ॥ १२१
बत्तीसं च सहस्सा अट्ठावीसा तहेव चउवीसा । वीसा सोलसं[9] अट्ठ य ओसरणकमेणं[10] बेहुलियं ॥ १२२
पंकबहुलम्मि भागे बोद्धव्वा रक्खसाणमावासा । असुराण य[11] चेव तहा अवसेसाणं खरे भागे ॥ १२३
असुरा णागसुवण्णा दीवोदधिथणिअविज्जुदिसणामा[12] । अग्गीवादकुमारा दसधा भणिदा[13] भवणवासी ॥ १२४
चदुसट्ठि चुलसीदी बावत्तरि[14] चेव सदसहस्साणि । छावत्तरिं च छण्हं[15] बादिदाणं च छण्णउदिं ॥ १२५

मसारगल्ला, गोमेदका, प्रवाला, ज्योतिरसा, नवमी अंजना, दशवीं अंजनमूलका, ग्यारहवीं अंका, बारहवीं स्फटिका, चन्दना, वर्चका (सर्वार्थका), पन्द्रहवीं बहुला (बकुला) और शिलामय, इस प्रकार तलभागमें सोलह हजार योजनकी मुटाईमें ये सोलह पृथिवियां हैं। चूंकि इसके तल व उपरिम भागमें रत्नादि हैं, इसीलिये इसका नाम रत्नप्रभा जानना चाहिये ॥ ११७-१२० ॥ शेष छह पृथिवियां पंकबहुल जानना चाहिये । उन छहों पृथिवियोंके बाहल्यका क्रम यह है ॥ १२१ ॥ बत्तीस हजार, अट्ठाईस हजार, चौबीस हजार, वीस हजार, सोलह हजार और आठ हजार, इस प्रकार यह नीचे नीचे क्रमसे उक्त पृथिवियोंका बाहल्य जानना चाहिये ॥ १२२ ॥ पंकबहुलभागमें राक्षसों और असुरकुमारोंके आवास तथा खरभागमें शेष व्यन्तर व भवनवासी देवोंके आवास जानना चाहिये ॥ १२३ ॥ असुरकुमार नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वातकुमार, ये दश प्रकारके भवनवासी कहे गये हैं ॥ १२४ ॥ चौंसठ लाख (३४००००००+३००००००) चौरासी लाख (४४०००००+४००००००), बहत्तर लाख (३८०००००+३४०००००), छहके छयत्तर लाख (४०००००० + ३६०००००), और वायुकुमारोंके छयानवै लाख (५००००००+४६०००००), यह उन दश प्रकारके भवनवासियोंके भवनोंका प्रमाण है ॥१२५॥ चमर व वैरोचनादि सब इन्द्रोंके क्रमशः चौंतीस लाख

१ उ श गोमजेये, ब णेमज्जए. २ उ श पलिबे वारसमेत्ति य, क ब फलिहंके वारसे त्ति य (ब 'या'). ३ ब वव्विगे, क ववगे, ब वचगे, श वधिगे. ४ क वकुले, ब वकुले. ५ ब यण्णारमेत्ति, श पण्णासेर त्ति. ६ श य यक्खाए. ७ उ श णामा. ८ क पि इसंकमं जाणे, ब वि इमं जाणे. ९ ब लोलस्स. १० उ अह या ओरसणकमेण, ब अट य उसरणकम्मेण, श अट्ठा ओसरणकमेण. ११ असुरण य, श असुचरय. १२ उ यणियविज्जुदसणामा, श यणिविजुदसणामा, १३ उ श वणिदा. १४ उ विसत्तरिं, श विसरित्तं. १५ 'छण्हं' इत्यत आरम्य अग्रिमछण्हं-पदपर्यन्तः पाठस्त्रुटितोऽस्ति कप्रतौ.

चोत्तीस तीस चोदाल तालं अडतीसमेव चोत्तीसा । तालं छत्तीसं पि य छण्हं पण्णासमेव छादाला ॥ १२६
सव्वेसिं एदाणं पत्तेयं जिणघरे णमंसामि । सत्तेव य कोडीओ बावत्तरिलक्खअब्भधिया ॥ १२७
सव्वे वि वेदिसहिया सव्वे वरतोरणेहि कयसोहा । सव्वे अणाइणिहणो सव्वे मणिरयणसंछण्णा[4] ॥ १२८
धुव्वंतधयवडाया मुत्तादामेहि मंडिया दिव्वा । कालागरुगंधड्ढा बहुकुसुमकयच्चणसणाहा ॥ १२९
णाइणिगणसंछण्णा संगीयमुदिंगसद्दगंभीरा । वज्जिंदणीलमरगयणाणामणिरयणपरिणामा[5] ॥ १३०
सत्ताणीयाणि तहा तिण्णि य परिसाहि सादरक्खाहिं[5] । सामाणियाहि जुत्ता णागकुमारा समुद्दिट्ठा ॥ १३१
बहुअच्छेरहिं जुत्ता सव्वाहरणेहि मंडियसरीरा । पुण्णेण समुप्पण्णा देवा भवणेसु णायव्वा ॥ १३२
कडिसुत्तकडयकंठावरहारविहूसिया मणभिरामा । पजलंतमहामउडा मणिकुंडलमंडिया गंडा[8] ॥ १३३
सुकुमारपाणिपादा णीलुप्पलसुरहिगंधणीसासा । लायण्णरूवकलिया संपुण्णमियंकवरवयणा ॥ १३४
सिंहासणमज्झगया सियचामरविज्जमाण बहुमाणा । सेदादवत्तचिण्हा भवणिंदा सुरवरा णेया ॥ १३५

व तीस लाख, चवालीस लाख व चालीस लाख, अड़तीस लाख व चौंतीस लाख, छहके चालीस लाख व छत्तीस लाख, तथा पचास लाख व छ्यालीस लाख भवन हैं । इन सब भवनोंमेंसे प्रत्येक भवनमें जिनगृह हैं । उन जिनगृहोंको मैं नमस्कार करता हूं । उनका समस्त प्रमाण सात करोड़ बहत्तर लाख (७७२०००००) है ॥१२६–१२७॥ सब ही जिनप्रासाद वेदियोंसे सहित, सब उत्तम तोरणोंसे शोभायमान, सब अनादि-निधन, सब मणियों एवं रत्नोंसे व्याप्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित, मुक्तामालाओंसे मण्डित, दिव्य, कालागरुकी गन्धसे व्याप्त, बहुत कुसुमोंके द्वारा की गई पूजासे सनाथ, नर्तकियोंके समूहसे व्याप्त, संगीत एवं मृदंगके शब्दसे गंभीर; तथा वज्र, इन्द्रनील व मरकत रूप नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम स्वरूप हैं ॥ १२८–१३० ॥ नागकुमार देव सात अनीक, तीन प्रकारके पारिषद, आत्मरक्ष और सामानिक देवोंसे युक्त कहे गये हैं ॥ १३१ ॥ बहुतसी अप्सराओंसे संयुक्त व समस्त आभरणोंसे अलंकृत शरीरवाले वे देव पुण्यके प्रभावसे उक्त भवनोंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३२ ॥ उपर्युक्त भवनवासी देवेन्द्र कटिसूत्र, कटक, कंठा व उत्तम हारसे विभूषित; मनको अभिराम, चमकते हुए महा मुकुटसे संयुक्त, मणिमय कुण्डलोंसे मण्डित कपोलोंवाले, सुकुमार हाथ-पैरोंसे युक्त, नीलोत्पलके समान सुगन्धित निश्वाससे सहित, लावण्यमय रूपसे संयुक्त, पूर्ण चन्द्रके सदृश मुखवाले, सिंहासनके मध्यमें स्थित, धवल चामरोंसे वीज्यमान, बहुत सम्मानित, तथा श्वेत छत्र रूप चिह्नसे संयुक्त हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ १३३–१३५ ॥ अधोलोकमें भूतोंके चौदह

---

१ ब दाल. २ श जिगव्वरे नमंमि तेव. ३ उ श संपुण्णा. ४ श रयणसंपुणा. ५ उ श परिसादि यादरग्याहि, ब परिसादि आदरक्खाहि. ६ श प्रतौ त्रुटिता जानेयं गाथा. ७ उ ब मंडिया. ८ क मंडिया दिव्वा, ब मंडिया मंडा.

चउदस चेव सहस्सा भूदाणं होंति अधियलोयम्हि [1] । सोलस चेव सहस्सा रक्खसदेवाण विण्णेया ॥ १३६
पढमादियउक्कस्सं बिदियादिय साधियं हवे जहण्णं तु । घम्माये [2] भवणविंतर वाससहस्सा दस जहण्णा ॥ १३७
असुरेसु सागरोवम तिपल्ल पल्लं च णागभोमाणं [3] । अड्ढादिज्ज सुवण्णा दु दीव सेसा [4] दिवड्ढं च ॥ १३८
पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराण दसघणू चेव । विंतरजोइसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा ॥ १३९
पणुवीस जोयणाणं ओही विंतरकुमारवग्गाणं । संखेज्जजोयणाणि [5] दु जोइसियाणं जहण्णोही [6] ॥ १४०
असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोइसगणाणं [7] । संखातीदसहस्सा उक्कस्सो ओधिविसओ दु ॥ १४१
अप्पबहुलम्हि [8] भागे पढमाए खिदीए [9] होंति णिरया दु । वज्जित्ताण सहस्सं [10] उवरिमतलहेट्ठिमतलादो ॥ १४२
तीसं च सयसहस्सा पणुवीसा तह य होइ पण्णरसा । दस तिण्णि सदसहस्सा एगं पंचूणयं पंच ॥ १४३
एसा दु णिरयसंखा [11] रयणादीया कमेण पविभत्ता [12] । संवग्गेण [13] दु णिरया चदुरासीदिं च सदसहस्सा [14] ॥ १४४

हजार और राक्षस देवोंके सोलह हजार [भवन] जानना चाहिये ॥ १३६ ॥ प्रथमादि पृथिवियोंमें जो उत्कृष्ट आयुका प्रमाण है वही साधिक (एक समय अधिक) द्वितीय आदि पृथिवियोंकी जघन्य आयुका प्रमाण होता है । घर्मा पृथिवीमें तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्ष प्रमाण होती है ॥१३७॥ उत्कृष्ट आयु असुरकुमारोंकी एक सागरोपम, नागकुमारोंकी तीन पल्योपम, व्यन्तरोंकी एक पल्योपम, सुपर्णकुमारोंकी अढ़ाई पल्योपम, द्वीपकुमारोंकी दो पल्योपम और शेष भवनवासियोंकी उत्कृष्ट आयु डेढ़ पल्योपम प्रमाण है ॥१३८॥ असुरकुमारोंका शरीरोत्सेध पच्चीस धनुष और शेष कुमारोंका दश धनुष प्रमाण है । व्यन्तर व ज्योतिषी देवोंके शरीरकी उंचाई क्रमशः दश और सात धनुष प्रमाण जानना चाहिये ॥ १३९ ॥ व्यन्तर और कुमार देवोंके अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र पच्चीस योजन तथा ज्योतिषियोंके जघन्य अवधिका क्षेत्र संख्यात योजन प्रमाण है ॥ १४० ॥ असुरकुमारोंके उत्कृष्ट अवधिका क्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन और शेष भवनवासी तथा ज्योतिषियोंके उत्कृष्ट अवधिका क्षेत्र असंख्यात हजार योजन प्रमाण है ॥ १४१ ॥ अब्बहुलभागमें प्रथम पृथवीके उपरिम व अधस्तन तल भागमें एक एक हजार योजन छोड़कर नरक स्थित हैं ॥ १४२ ॥ तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और केवल पांच; यह रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें क्रमसे नरकसंख्या कही गई है । इसको मिलानेपर समस्त बिलोंका प्रमाण चौरासी लाख होता है

१ उ श लोयाणं. २ उ श धम्माय, ब धमाय. ३ क भउमाणं, ब तोमाणं. ४ उ श सोसा. ५ उ सेखेयजोयणाणि, श सेलेयसोयणाणि. ६ क ब जहण्णम्हि. ७ उ श जोइसन्नाणं, क जोयसगणाणं, ब जोयसगणाणं. ८ क आपबहुलम्हि. ९ क खिदियाय, ब खिदिआय. १० क ब सहस्सा. ११ क ब णरयसंखा रदणादीया. १२ उ श पविलित्ता. १३ उ श संवेग्गेण, ब संवगोण. १४ क चदुरासीदा सदसंहस्सा, ब चदुरासीदिं सदसहस्सा.

णेया तेरेक्कारस णव सत्त य पंच तिण्णि एक्कं च । रयणादितमतमंतो[1] पुढवीणं पत्थडा भणिदा ॥ १४५
सीमंतगो दु पढमो णिरओ पुण रोरुगो[2] त्ति बोद्धव्वो[3] । भंतो भवदि[4] चउत्थो उब्भंतो पंचमो णिरओ ॥ १४६
संभंतमसंभंतो विब्भंतो[5] चेव अट्ठमो णिरओ । तत्तो णवमो णिरओ दसमो तसिदो त्ति बोद्धव्वो ॥ १४७
चक्कंतमचक्कंतो विक्कंतो[6] चेव तेरसो णिरओ । पढमाए पुढवीए तेरस णिरइंदया भणिया ॥ १४८
थडगे[7] थणगे चेव य मणगे वणगे तहेव[8] बोद्धव्वा । घाडे तह संघाडे जिब्भे पुण जिब्भिगे[9] चेव ॥ १४९
लोले च लोलगे खलु तहेव थणलोलुवे य बोद्धव्वा । विदियाए पुढवीए एयारस इंदया भणिया ॥ १५०
तत्तो तसिदो तवणो तावणो होइ पंचम णिदाहो[10] । छट्ठो पुण पज्जलिदो उज्जलिदो सत्तमो[11] णिरओ ॥ १५१
संजलिदो अट्ठमओ संपज्जलिदो य होदि णवमो दु । तदियाए पुढवीए णव खलु णिरइंदया[12] भणिया ॥ १५२
आरे मारे तारे तत्ते तमगे य होदि बोद्धव्वा । खाडे य खडखडे खलु इंदयणिरया चउत्थीए ॥ १५३
तमे भमे झसे[13] चेव अंधे तिमिसे य होदि बोद्धव्वा । पंचेंदयणिरयौ[14] खलु पंचमखिदिए जहुद्दिट्ठं ॥ १५४
हिमवद्दलल्लंकं[15] इंदयणिरया हवंति छट्ठीए । एक्को पुण सत्तमिए अवधिट्ठाणो[16] त्ति बोद्धव्वा ॥ १५५

॥ १४३–१४४॥ रत्नप्रभासे लेकर तमस्तमा पृथिवी तक क्रमशः तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन और एक; इस प्रकार पाथड़े कहे गये हैं ॥ १४५ ॥ प्रथम सीमन्तक, निरय (नरक), रोरुक, चतुर्थ भ्रान्त, पंचम उद्भ्रान्त, संभ्रान्त, असंभ्रान्त, आठवां विभ्रान्त, नौवां तप्त, दशवां त्रसित, चक्रान्त (वक्रान्त), अचक्रान्त (अवक्रान्त) और तेरहवां विक्रान्त, ये तेरह इन्द्रक बिल प्रथम पृथिवीमें कहे गये हैं ॥ १४६–१४८ ॥ थडग, स्तनक, मनक, वनक, घाट, संघाट, जिह्व, जिह्विक, लोल, लोलक और स्तनलोलुक, ये ग्यारह इन्द्रक द्वितीय पृथिवीमें कहे गये जानना चाहिये ॥ १४९–१५० ॥ तप्त, त्रसित (शीत), तपन, तापन, पांचवां निदाघ, छठा प्रज्वलित, सातवां उज्ज्वलित, आठवां संज्वलित और नौवां संप्रज्वलित, ये नौ इन्द्रक बिल तृतीय पृथिवीमें कहे गये हैं ॥ १५१–१५२ ॥ आर, मार, तार, तप्त, तमक, खाड और खडखड, ये सात इन्द्रक बिल चतुर्थ पृथिवीमें कहे गये हैं ॥ १५३ ॥ तम, भ्रम, झष, अन्ध और तिमिस्र, ये पांच इन्द्रक बिल पांचवीं पृथिवीमें कहे गये हैं ॥ १५४ ॥ हिम, वर्दल और लल्लंक, ये तीन इन्द्रक बिल छठी पृथिवीमें तथा केवल अवधिष्ठान नामक एक इन्द्रक बिल सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिये ॥ १५५ ॥ जो दुराचारी जीव विषयोंमें आसक्त हैं,

---

१ उ श रयणाचित्तमतमंत. २ उ श णिरगो पुण व्वोरुगो. ३ क ब बोधव्वा. ४ उ तवो भवदि, ब भत्तो भवदि, श तत्तो भवदि. ५ ब सज्ञंतमसज्ञतो विसंतो. ६ उ श चिक्कंतो. ७ श यणगे. ८ उ श मणागे वणगे तहेव, क ब मणगे तणगे य चेव. ९ उ श जित्ते पुण जिभिगे, ब जिह्ने पुण जितगे. १० उ श पंचमो निजहो, ब पंचमो णिठाहो. ११ उ श पज्जलिदो सत्तमो, ब पज्जलिदो उज्जलदो सत्तमो. १२ उ श खलु निरयंदया, ब खलु इंदयरि. १३ क ब तमे चमेज्झसे. १४ क पंचिंदियनिरया, ब पंचेंदियणिरया. १५ उ हिमवदलल्लक्खं, क ब हिममद्दलल्लकं, श इमवदलल्लक्कं. १६ क ब अवधिट्ठाणे.

विसयासत्ता जीवा कसायलेस्सुक्कडा य लोहिल्ला[1]। दारुणमंसाहारा पडंति णरए दुरायारा ॥ १५६
पिसुणासया[2] य चंडा मच्छरिया चोरकवड[3]मायावी। णिंदणवधकरणरदा पडंति णिरए खडक्खडंतो[4] ॥ १५७
जोयणसयप्पमाणा तत्तकवल्लिम्हि ते दु छुब्भंति[5]। डज्झंति धगधगंतो[6] महिसोरडिगं करेमाणा ॥ १५८
हम्मंति ओरसंता[7] दढप्पहारेहि णरयपालेहिं[8]। छिंदंति तडतडेंता[9] वज्जकुदारेहिं घेत्तूणं[10] ॥ १५९
भज्जंति[11] कडकडेहि हड्डुइं चूरंति[12] लउडपहरेहि[13]। बंधेवि[14] अग्गिमज्झे छुहंति जमदूव रोसेहिं ॥ १६०
रोवंति य विलवंति य पायपडंतम्मि णाहि[15] मेल्लंति। पीडंति[16] चादुरोधा[17] काऊण छुहंति चुल्लीसु ॥१६१
तत्तकवल्लिहिं छुद्धा[18] अण्णे खरफरुसवज्जमूलेहिं। अण्णे वइतरणीहि य खारणदीएहि छुब्भंति[19] ॥ १६२

तीव्र कषाय व दुर्लेश्यासे सहित हैं, लोभसे युक्त हैं, क्रोधी हैं, तथा मांसभोजी है वे नरकोंमें पड़ते हैं ॥१५६॥ जो जीव पिशुनाशय अर्थात् परनिन्दा रूप अभिप्रायसे सहित, क्रोधी, मात्सर्य भावसे संयुक्त, चोर, कपटी, मायाचारी तथा परनिन्दा व जीवहिंसा करनेमें तल्लीन हैं वे खडखड नरक (चतुर्थ पृथिवीका अन्तिम इन्द्रक बिल) पर्यन्त नरकमें पड़ते हैं ॥१५७॥ [इन नरकोंमें परस्पर] वे नारकी वहां सौ योजन प्रमाण संतप्त कड़ाहीमें डाले जाते हैं, जहां वे महिषके समान रुदन करते हुए धग्-धग् शब्दपूर्वक जलते हैं ॥१५८॥ वे रुदन करते हुए नरकपालों अर्थात् अम्बावरीष जातिके असुरकुमारोंके द्वारा दृढ प्रहारोंसे मारे जाते हैं। वे उन्हें पकड़ कर वज्रके समान कठोर कुठारोंके द्वारा तड़-तड़ शब्दपूर्वक छेदते हैं ॥ १५९ ॥ यमके दूतोंके समान वे क्रुद्ध होकर उन्हें कड़-कड़ शब्दोंके साथ भग्न करते हैं, डंडोंके प्रहारों द्वारा उनकी हड्डियोंको चूर-चूर करते है, तथा बांधकर अग्निके मध्यमें डालते हैं ॥ १६० ॥ इस अवस्थामें वे नरकी रोते व विलाप करते हैं। पैरोंमें गिरनेपर भी वे असुरसमूह उन्हें छोड़ते नहीं हैं, किन्तु पीड़ा देते हैं। चारों ओरसे अवरुद्ध करके वे उन्हें चूल्होंमें फेंकते हैं ॥ १६१ ॥ दूसरे कितने ही नारकी संतप्त कड़ाहीमें फेंके जाते हैं, तथा कितने ही अन्य नारकी तीक्ष्ण स्पर्शवाली वज्रशूलियोंपर व क्षारनदी वैतरिणीमें फेंक दिये जाते हैं ॥ १६२ ॥ कितने ही पापी नारकी वसा, रुधिर एवं पीवके

१ उ श लेसुक्कडा य लोहिल्ला, क लेसुकडा य लोभिक्खा, (बप्रतौ त्रुटितेयं गाथा) २ उ क पिसुणासढा य, ब पिसुणासंढा य, श पिणासड्डा य. ३ उ कव्वड, श कव्वण. ४ क ब खडक्खडंता. ५ उ श तत्तकववीहि ते दु च्छुब्भंति, क तत्तकवल्लीहिं ते दु वुज्झंति, ब तत्ताकवलीहिं ते दु छुज्झंति. ६ क डब्भंति धगधगेता. श डज्झंति धगडंता. ७ ब उरसंता. ८ उ श रयणपालेहि. ९ उ श छिंदंति तडितडिंता. ब छिंदंति तडतडिता. १० उ वज्जावुढारेहि घेत्तूणं, श वज्जुकडारेहि गंतूणा. ११ ब वज्जंति. १२ उ हदुइ चूरंति, क हद्दइं चूरंति, ब हदुइ चूरेहि, श हदुइं तूरंति. १३ क पेहेरेहिं, ब पउरेहिं, श यहरहि, १४ ब बंधवि. १५ क णाहिं, ब णाह. १६ क पीलंति. १७ उ श चादुरोधा, क चादुचोप्पा, ब चादुरोप्पा. १८ उ तत्तकवल्लिहिं च्छूडा, क तत्तकवल्लिहिं छूटा, ब तत्तकवल्लिहिं छूढा, श तत्तकवल्लिहि छूढा. १९ उ खारणदीये य छुब्भंति, श खारणदीए ए छुब्भति.

वसरुहिरपूयमज्झे तडतडफुट्टंत[1] सव्वसंधीसु । पीलिज्जंति अधण्णा जंतसहस्सेहि घेत्तूणं ॥ १६३
लंबंतचम्मपोट्टा[2] अण्णे धावंति तुरियवेगेणं[3] । पेच्छंति गिरिवरिंदा तत्थ गिलुक्कंति[4] झाडेहिं[5] ॥ १६४
दरिविवरेसु पइट्टा तत्थ वि खज्जंति वग्घसिंघेहिं[6] । सप्पेहि घोणसेहि य खज्जंति हु वज्जतुंडेहि ॥ १६५
कंदरविवरदरीसु वि सिलाण विच्चेसु तेसु पविसंति । तत्थ वि य धगधगंतो[7] सहसा उट्ठाविओ अग्गी ॥
सुमरेदि पुव्वकम्मं[8] गुलुगुलु गज्जंति भीमसद्देण । कालसिला उप्पाडेंति[9] उप्पयंता अधण्णाणं ॥ १६७
घादंता जीवाणं णियमं खायंति[10] तह य मंसाणि । सासिज्जंति[11] यधण्णाचाराणं[12] णरयपालेहिं ॥ १६८
संडासेहिं य जीहा उप्पाडिज्जंति[13] तह रसंताणं[14] । छिंदंति हत्थपादा[15] कण्णाहरणासियादीणि ॥ १६९
फाडेंति आरडंता[16] मोग्गरछुरियापहारघाएहिं । असिवत्तवणेहि तहा पावंति[17] महंतदुक्खाणि ॥ १७०

बीच समस्त सन्धियोंमें तड़-तड़ टूटते हुए ग्रहण करके हजारों यंत्रोंके द्वारा पेरे जाते हैं ॥ १६३ ॥ जिनके पेटका चमड़ा लटक रहा है ऐसे अन्य नारकी बड़े वेगसे दौड़कर महान् पर्वतोंको देखते हैं और वहां झाड़ोंमें छिप जाते हैं ॥ १६४ ॥ कितने ही नारकी गुफाओंके भीतर प्रविष्ट होकर वहां भी वाघों और सिंहोंके द्वारा खाये हैं, तथा कितने हीं वज्रके समान कठोर मुखवाले सर्पो व घोनसों (विशेष जातिके सर्पो) के द्वारा खाये जाते हैं ॥ १६५ ॥ कितने ही नारकी उन कन्दराओं व गुफाओंके भीतर भी शिलाओंके मध्यमें प्रविष्ट होते हैं । वहांपर भी सहसा धग्-धग् करती हुई अग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ १६६ ॥ वे पूर्वकृत कर्मका स्मरण करते हैं और हाथीके समान भयंकर शब्दसे गुल-गुल गर्जना करते हुए कूदकर पापी नारकियोंके लिये कालशिलाओंको उखाड़ते हैं ॥ १६७ ॥ तथा जीवोंका घात करनेवाले उन दुराचरी नारकियोंको स्वकीय मांस खिलाकर अम्बावरीष जातिके असुरकुमारों द्वारा शिक्षित (दण्डित) किया जाता है ॥ १६८ ॥ उक्त देवोंके द्वारा चिल्लाते हुए उन नारकियोंकी जीभें संसियोंसे उखाड़ी जाती हैं तथा हाथ, पैर, कान, अधरोष्ठ एवं नासिका आदि अंग-उपांग छेदे जाते हैं ॥ १६९ ॥ रोते हुए वे नारकी जीव मुद्गर एवं छुरीके प्रहारों व अभिवातों द्वारा फाड़े जाते हैं तथा असिपत्रवनोंके द्वारा महान् दुःखोंको प्राप्त होते हैं ।

१ उ कुछंति, श कुट्टंति. २ उ लवणत्तचम्मपोड्डा, क लंबंतिचम्मपोट्टा, ब लंवतचम्मयोट्ट, श लवणतचम्मपोढा. ३ ब तुरयवेगेण. ४ श निलुक्कंतु. ५ उ धाडेहि, क झाडेहि, ब झाडेहिं, श घाडेहि- ६ उ वग्घसिंग्घेहिं, ब सिंघवाघेहिं, श वग्घसिंघेहि. ७ उ श तित्थ वि य धगधगिंतो, ब तत्थ वियधगधगंता. ८ उ श सारोवि पुव्ववाम्मे, क सुमरेवि पुव्वकम्मं, ब सुमरेवि पुव्वकम्मे. ९ उ श उपाडंति, क उपाडेंति, ब उप्पाडिंति. १० उ णियमं खयंति, क णिअयं खायंति, ब णिचयं खायंति, श णियं खयंति. ११ उ सो सेज्जंति, क सासिज्जंति, ब सासज्जति, श सो सिज्जंति. १२ उ श अधणाचाराणं, ब यधण्णाचाराणं. १३ उ श संडासेही य जीया उप्पाडिजंति. १४ श रससाणं. १५ उ श तत्थपादा, ब तत्थपाद १६ उ श फाडंति अरडंता, ब फाडंति आरडंता. १७ उ श असपत्तवणेहिं तहा पावंत.

हुयवह[1]जालापहदा डज्झंता वि प्पियं पलोयंता । पविसंति तत्थ सहसा[2] असिपत्तवणं महाघोरं ॥ १७१
छिंदंति य भिंदंति य उवरि पडंतेहिं पत्तखग्गेहिं[3] । वेरुंडिया व जंति वायवसा पडियपत्तेहिं[4] ॥ १७२
गलसंखलासु बद्धा संछुब्भंति य तत्तचुल्लीहिं[5] । तत्तकवल्लिसु अण्णे[6] पच्चंति य सिमिसिमिंतेणं[7] ॥ १७३
अच्छोडेप्पिणु अण्णे संचलि[8]रुक्खम्मि कंटयाइण्णे[9] । कड्ढिज्जंति[10] रसंता मंसवसारुहिरविच्छड्डा[11] ॥ १७४
छिंदंति य करवत्ते बंधेप्पिणु संखलाहि[12] खंभेसु । कप्पिज्जंति[13] रसंता करंगुलीयाओ चक्केहि[14] ॥ १७५
एवं छिंदणभिंदणताडणदहदहणदंडभेआं[15] य । पावंति वेयणाओ रयणाइतमतमं जाम[16] ॥ १७६
सत्त वि फरुसाओ[17] कक्कसघोराओ दुक्खबहुलाओ । णामं पि ताण घेत्तुं[18] ण सक्कए कहं[19] पुणो वसिदुं ॥

॥ १७० ॥ उक्त नारकी जीव आगकी ज्वालाओंसे आहत होकर जलते हुए भी प्रिय समझ कर सहसा वहां महा भयानक असिपत्रवनमें प्रविष्ट होते हैं ॥ १७१ ॥ वहांपर वे ऊपर गिरते हुए पत्तों रूपी खड्गोंके द्वारा छेदे-भेदे जाते हैं। वायुके वश ऊपर गिरे हुए पत्तोंसे वे रुंड (छिन्नसिर) के समान जाते हैं ॥ १७२ ॥ वे नारकी गलेकी सांकलोंमें बांधे जाकर गरम चूल्हेमें फेंके जाते हैं तथा दूसरे नारकी तपे हुए कड़ाहोंमें सिम-सिम· शब्द पूर्वक पकाये जाते हैं ॥ १७३ ॥ अन्य नारकी कण्टकोंसे व्याप्त सेमर वृक्षके ऊपर पटके जाकर रोते हुए मांस, वसा एवं रुधिरके विस्तारसे संयुक्त होकर काटे जाते हैं ॥ १७४ ॥ उक्त नारकी खम्भोंमें सांकलोंसे बांधे जाकर करपत्र (आरी) के द्वारा छेदे जाते हैं तथा रोते हुए उनके हाथोंकी अंगुलियां चक्रों द्वारा काटी जाती ह ॥ १७५ ॥ इस प्रकार रत्नप्रभासे लेकर तमस्तमा पृथिवी पर्यन्त वे नारकी जीव छेदना, भेदना, ताड़न करना, तपाना व आगमें जलाना आदि दण्डविशेषोंको· प्राप्त होकर वेदनाओंको प्राप्त करते हैं ॥ १७६ ॥ उक्त सातों पृथिवियां कठोर स्पर्शसे संयुक्त, कर्कश, भयानक और प्रचुर दुःखोंसे व्याप्त हैं। उनका नाम लेना भी जब शक्य नहीं है तब भला उनमें रहना कैसे शक्य होगा ? ॥ १७७ ॥ उन रत्नप्रभादिक

---

१ व बहुवह. २ उ तत्थ सहरसा, क तत्तु सहसा, व तत्थ सहस्सा, श तत्थ तहसा. ३ उ उपर पडंतेहि पत्तक्खग्गेहि, श उपर परंतिहि पत्तक्खग्गेहि. ४ उ श वेरुंडियावजंतिवयवसा (श जंति यवसा) पडिवत्तेहि, क व वेरुंठिया (व वेरट्टिया) य जंती वायवसा पडियपत्तेहिं. ५ क तत्थ, व तच्च. ६ उ श तत्तकवल्लीसु अणे, क तत्तकवल्लिसु अवणे, व तत्थ कवल्लिसु अण्णो. ७ उ श सिमिसिमंतेण, क मिसिमिसिंतेण, व सिमसिमंतेण. ८ क सेंवलि. ९ उ श कंटयाइल्ले, व कट्टकाण्णे. १० उ कड्ढिजंति, क कट्टिज्जंति, व कप्पिज्जंति, श कटिजंति. ११ क मंसावसरुहिरविछड्डा, व मंसावसरुहिरविछद्दा. १२ क संकलाहिं. १३ उ श कप्पज्जंति. १४ उ करंगुलियाउ चक्केहि, व करंगुलीयाउ चक्केहिं, श कारंकुलियाउ चक्केहि. १५ उ ताडणदहदहण्णदहदहणदंडभेया, श तादुणदहदद्दण्णदुहदणदंणभेया. १६ श यावंति वेयणाओ तमत्तमं जाम, क व पावंति वेदणाओ णेरइया तमतमा जाव. १७ उ खरपरमाओ, व क्खरफरुंसाउ, श खरयरमाओ १८ उ ब्वित्तु, क व घेतू, श वितुं. १९ उ श तह.

एक्कं च तिण्णि सत्त य दस सत्तरसं तहेव[1] बावीसा। तेत्तीसउदधिआऊ[2] पुढवीणं होंति उक्कस्सं ॥ १७८
जंबूदीवस्स तहा धादइसंडस्स पोक्खरद्धस्स। खेत्तेसु समुद्दिट्ठा सत्तरिसदभेदभिण्णेसु[3] ॥ १७९
जे उप्पण्णा तिरिया मणुया वा घोरपावसंजुत्ता। मरिऊण पुणो णेया णरयं गच्छंति ते जीवा ॥ १८०
लवणे कालसमुद्दे सयंभुरमणोदधिम्मि जे मच्छा। पंचेंदिया दु तिरिया सयंभुरमणस्स दीवस्स ॥ १८१
ते कालगदा संतो[4] णरयं गच्छंति णिचिदघणकम्मा। सम्मत्तरयणरहिया मिच्छत्तकलंकिदा[5] जीवा ॥ १८२
पणवीसं[6]कोडिकोडीउद्धारपमाणविउलपल्लाणं। जावदिया खलु रोमा तावदिया होंति दीवुदधी[7] ॥ १८३
बारसकोडाकोडी पण्णासं लक्खकोडि पल्लाणं[8]। जेत्तियमेत्ता रोमा दीवा पुण तेत्तिया होंति[9] ॥ १८४
उदधी वि होंति तेत्तिय णिद्दिट्ठा सव्वभावदरिसीहि। वणवेदिएहि जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १८५
जंबूधादइपोक्खरसयंभुरमणाभिधाण जे दीवा। ते वज्जित्ता चदुरो अवसेसअसंखदीवेसु ॥ १८६
जे उप्पण्णा तिरिया पंचिंदिय सण्णिणो य पज्जत्ता। पल्लाउगा महप्पा बेदंडसहस्सउत्तुंगा ॥ १८७

पृथिवियोंमें स्थित नारकियोंकी क्रमशः एक, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस तथा तेतीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥ १७८ ॥ जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड तथा पुष्करार्द्ध द्वीपके एक सौ सत्तर भेदोंसे भिन्न क्षेत्रों (जम्बूद्वीपका १ भरत, १ ऐरावत व ३२ विदेह; धातकीखण्डके २ भरत, २ ऐरावत व ६४ विदेह; तथा पुष्करार्द्धके भी २ भरत, २ ऐरावत और ६४ विदेह) में जो मनुष्य अथवा तिर्यंच उत्पन्न होते हैं वे जीव घोर पापसे संयुक्त होते हुए मरकर नरकमें जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १७९–१८० ॥ लवणोद, कालोद और स्वयंभुरमण समुद्रमें जो मत्स्य हैं वे तथा स्वयंभुरमण द्वीपके जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव हैं वे दृढ़ कर्मोंसे व्याप्त होकर सम्यक्त्व-रत्नसे रहित और मिथ्यात्वसे कलंकित होते हुए मरकर नरकको जाते हैं ॥ १८१–१८२ ॥ पच्चीस कोड़ाकोड़ि उद्धारपल्योंके जितने रोम होते हैं उतने द्वीप-समुद्र हैं ॥ १८३ ॥ बारह कोड़ाकोड़ि पचास लाख करोड़ (साढ़े बारह कोड़ाकोड़ि) उद्धारपल्योंके जितने रोम होते हैं उतने द्वीप होते हैं तथा उतने ही समुद्र होते हैं, ऐसा सर्वभावदर्शियों (सर्वज्ञों) द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। ये दिव्य द्वीप-समुद्र वन-वेदियोंसे युक्त और उत्तम तोरणोंसे मण्डित हैं ॥ १८४–१८५ ॥ जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करार्द्ध और स्वयंभुरमण नामक जो चार द्वीप हैं उनको छोड़कर शेष असंख्यात द्वीपोंमें उत्पन्न हुए जो पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच जीव पल्य प्रमाण आयुसे युक्त, महात्मा, दो हजार धनुष ऊंचे, सुकुमार कोमल

१ उ श तधेव. २ श तेतीसओउधिआओ. ३ उ सत्तरिदसमदभिन्नेसु; व सत्तरिसदभेण्णेसु, श रिदसभेदभिन्नेसु. ४ उ व श सत्ता. ५ क कलंकिया. ६ उ पुणुवीस, व पणुवीस, श पुणुवीसं. ७ उ दिउदधी, व दीउदधी, श दिउदद्धी. ८ उ कोडिपुव्वाणं, श फोपुव्वाणं, ९ श तेत्तियणिद्दिट्ठसव्वभावदरिसीहि होंनि.

सुकुमारकोमलंगा[1] मंदकसाया फलासिणो[2] जीवा । जुवलाजुवलुप्पण्णा चउत्थभत्तेण पारिंति[3] ॥ १८८
ते सव्वे मरिऊणं णियमा गच्छंति तह य सुरलोयं । ण य अण्णत्थुप्पत्ती णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ १८९
जंबूधादगिपोक्खरदीवाणं तीसु भोगभूमीसु । जे[4] जादा णरतिरिया णियमा ते जंति सुरलोयं ॥ १९०
भवणवइवाणविंतरजोइसभवणेसु[5] ताण उप्पत्ती । सम्मत्तेण य जुत्ता सोधम्मादीसु जायंति ॥ १९१
जे सेसा णरतिरिया धम्मं काऊण सुद्धभावेण । ते कालगदा संता विमाणवासेसु जायंति ॥ १९२
णवणउदिजोयणाइं[6] उड्ढं गंतूण तह सहस्साइं[7] । तो चूलियाए उवरिं होइ विमाणं उडुविमाणं ॥ १९३
मणिरयणभित्तिचित्तं[8] कंचणवरवइरसोहियपदेसं[9] । माणुसखेत्तपमाणं होइ विमाणं उडुविमाणं ॥ १९४
एक्कं तु उडुविमाणं माणुसखेत्तेण होदि सममाणं । अवसेसा दु विमाणा लोगादो जाव लोगंतं ॥ १९५
तं सुचिणिम्मलकोमल[10]तोरणवरमंगलुस्सविदसोहं[11] । पासादवलभिविरइयं[12] उब्भासंतं दसदिसाओ ॥ १९६
णिच्चं मणोभिरामं फुरंतमणिकिरणसोहसंभारं । कंचणरयणमहामणिल्हसंतपासादसंघायं[13] ॥ १९७

अंगोंवाले, मंदकषायी, फलभोजी एवं युगल-युगल रूपसे उत्पन्न होकर चतुर्थ भक्तसे भोजन करते हैं; वे सब मरकर नियमसे सुरलोकको जाते हैं। उनकी उत्पत्ति सर्वदर्शियों द्वारा अन्यत्र नहीं निर्दिष्ट की गई है ॥१८६-१८९॥ जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्कर द्वीपोंकी तीन (उत्तम, मध्यम व जघन्य) या तीस भोगभूमियोंमें जो मनुष्य व तिर्यंच उत्पन्न होते हैं वे नियमसे सुरलोकको जाते हैं। [इनमें जो सम्यक्त्वसे रहित होते हैं] उनकी उत्पत्ति भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके भवनोंमें है। किन्तु जो सम्यक्त्वसे युक्त हैं वे सौधर्मादिकोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १९०-१९१ ॥ शेष जो मनुष्य व तिर्यंच शुद्ध भावसे धर्मको करके मरणको प्राप्त होते हैं वे विमानवासी देवोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १९२ ॥ निन्यानबै हजार योजन ऊपर जाकर मेरुकी चूलिकाके ऊपर ऋतु विमान स्थित है ॥ १९३ ॥ मणिमय एवं रत्नमय भित्तियोंसे विचित्र और सुवर्ण व उत्तम वज्रसे शोभित प्रदेशवाला वह ऋतु-विमान मानुषक्षेत्रके प्रमाण अर्थात् पैंतालीस लाख योजन विस्तृत है ॥ १९४ ॥ एक ऋतु विमान तो मानुषक्षेत्रके बराबर है, शेष विमान लोकसे लोकके अन्त तक हैं ॥ १९५ ॥ वह विमान पवित्र, निर्मल, कोमल व श्रेष्ठ तोरणरूप मंगलोत्सवसे शोभायमान; प्रासाद व वलभियोंसे विरचित, दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला, नित्य मनोहर, प्रकाशमान मणिकिरणोंकी शोभाके संभारसे संयुक्त; सुवर्ण, रत्नों व महामणियोंसे चमकते हुए प्रासादसमूहसे सहित;

१ उ श कोवलंगा. २ उ फलोसिणो, क फलसिणा, ब कलासिणो, श फलोसणो. ३ क ब मुंजंति, श परिंति. ४ उ श जो. ५ जोइससिठाणेसु. ६ क ब णवणवइ जोयणाणं, श णवणउदिजोयणइं. ७ क तो सहस्साइं, ब तो सहइसाइं, श सहसहस्साइं. ८ ब भतिचित्तं कंचण, श भित्तिकंचण. ९ क सोहेयपदेसे, ब सोहियपदेसे. १० उ ब श तं सुविणिम्मल. ११ क मंगलस्स किदसोहं, ब मंगलुस्सकिदसोहं. १२ उ श वलइविरहिय. १३ श ल्हसंतपासादसव्वाए.

जयविजयवेजयंतीपडायबहुकुसुमसोहकयमालं । विलसंत[1]णाभिदामं चोक्खं सुचियं[2] पवित्तं च ॥ १९८
जगजगजगंतसोहं अच्चब्भुद[3]रूवसारसंठाणं । पुप्फोवयारपउरं[4] बहुकोदुयमंगलसणाहं ॥ १९९
जंबूणयरयणमयं णिच्चुज्जलरयणचोक्खकदसोहं । किं जंपिएण बहुणा पुण्णफलं चेव पच्चक्खं[5] ॥ २००
जं तत्थ देवदेवीण वरसुहं[6] जं च रूवलायण्णं[7] । को वण्णेज्ज[8] मणुस्सो अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥ २०१
तत्तो दु असंखेज्जा जोयणकोडीसदा अदिक्कम्मं[9] । विमलं णाम विमाणं जत्थावासा सपुण्णाणं ॥ २०२
तत्तो दु पुणो गंतुं जोयणकोडीसदा असंखेज्जा । चंदं णाम विमाणं अत्थि सुरूवं[10] मणभिरामं ॥ २०३
तत्तो दु असंखेज्जा जोयणकोडीसदा अदिक्कम्मं[11] । वग्गूणामविमाणं पमुदिदपक्कीलिदं रम्मं[12] ॥ २०४
तत्तो वि असंखेज्जा जोयणकोडीसदा अदिक्कम्मं[13] । वीरं[14] णाम विमाणं पंचमपडलो समुद्दिट्ठो[15] ॥ २०५
पत्तेयं पत्तेयं जोयणकोडीसदा असंखेज्जा । सव्वाण विमाणाणं पडलं[16] पडलं तदो होइ ॥ २०६

जयन्ती, विजयन्ती व वैजयन्ती पताकाओं तथा बहुतसे फूलोंकी मालाओंसे शोभायमान; नाभिमें मालासे सुशोभित, चोखा, शुचि एवं पवित्र, अतिशय चमकते हुए सौधोंसे सहित, अत्यन्त अद्भुत श्रेष्ठ रूप व आकृतिसे संयुक्त, प्रचुर पुष्पोंके उपहारसे युक्त, बहुत कौतुक व मंगलोंसे सनाथ, सुवर्ण व रत्नोंसे निर्मित, और नित्य उज्ज्वल चोखे रत्नोंसे शोभायमान है। बहुत कहनेसे क्या ? यह प्रत्यक्ष पुण्यका ही फल है ॥ १९६–२०० ॥ वहां देव-देवियोंको जो उत्तम सुख और रूप-लावण्य प्राप्त है उसका वर्णन कौनसा मनुष्य हजारों करोड़ वर्षोंमें भी कर सकता है ? ॥ २०१ ॥ ऋतु विमानसे असंख्यात सौ करोड़ योजन अतिक्रमण करके विमल नामक विमान है जहां पुण्यात्मा जीवोंका निवास है ॥ २०२ ॥ फिर उससे असंख्यात सौ करोड़ योजन जाकर सुन्दर आकृतिसे युक्त मनोहर चन्द्र नामक विमान स्थित है ॥ २०३ ॥ उससे असंख्यात सौ करोड़ योजन जाकर वल्गु नामक विमान है जो प्रमोदप्राप्त देवोंकी क्रीड़ाका रमणीय स्थल है ॥ २०४ ॥ उससे भी असंख्यात सौ करोड़ योजन जाकर वीर नामक विमान है। यह पाचवां पटल कहा गया है ॥ २०५ ॥ इसके आगे प्रत्येक प्रत्येक असंख्यात सौ करोड़ योजनके अन्तरसे सब विमानोंके पटल हैं ॥ २०६ ॥ फिर इससे आगे

१ उ श विलसंति. २ उ श सुचिय. ३ उ श अच्चुभुद, व अब्बब्भद. ४ उ श पुप्फोवयालपउरं. क व पुप्फोपचारपउरं. ५ उ पुप्फफलं चेय पच्चक्खं, श पुप्फफलं चेय यस्सक्कं. ६ क सुहं. ७ उ देवदेवीन वरसुहं जं च तत्थ ण्णायण्णं, श देवदेवीनवं सुहं जं च तत्थ ण्णायण्णं. ८ उ श वण्णिज्ज, व वणिज्ज. ९ उ अदिक्कमं, व आदिकम्मं, श अदक्कमं. १० उ श अत्थि सुतवं, व अविछ सुरूवं. ११ उ अदिक्किम्मं, व आदिकम्मं, श अधिकम्मं. १२ उ श पनुदिदपक्कीलिदं नाम, क पमुदिदपक्खिलद्धदं रम्मं, व पुमुदिद-पक्खिलद्धदं णाम. १३ व आदिकम्मं, श अधिक्काम्मं. १४ व धीरं. १५ उ व श पंचयपडला समुद्दिहा. १६ व सव्वाण विमाणाणं पडलं, श वेरुलिय त्ति विमाणं पडलं पडलं.

तत्तो य पुणो अरुणं णंदण णलिणं च कंचणं रुहियं[1] । चंचारुगं[2] च भणियं तहेव पुण रिद्धिसं होइ[3] ॥ २०७
तत्तो य पुणो गंतुं जोयणकोडीसदा अदिक्कम्मं । वेरुलिय त्ति विमाणं पभंकरं[4] चेव रमणीयं ॥ २०८
रुधिरं अंकं फलिहं तवणिज्जं चेव उत्तमसिरीयं । मेघं तह वीसदिमं मणिकंचणभूसियपदेसं[5] ॥ २०९
अब्भं तह हारिद्दं पउमं तह लोहियंक वइरं च । णंदावत्तविमाणं पभंकरं चेव रमणिज्जं ॥ २१०
अवरं च पिट्ठणामं[6] तहा गयं होइ मत्तणामं च । एदे तीस विमाणा एगत्तीसं पभं णाम ॥ २११
एदे एक्कत्तीसं हवंति पडला सुहम्मकप्पस्स । सेढिविमाणेहि गदा लोगादो जाँव लोगंतं ॥ २१२
एकतीसदिमं[7] पडलं जंबूणदरयणं[8]अंकवइरमयं । तम्मूले[10] सोहम्मं जत्थ सुरिंदो सयं वसइ ॥ २१३
समचउरंसा दिव्वा जोयणमेगं च समधियं जत्थ । णामेण सा सुधम्मा सोधम्मं जीए[11] णामेण ॥ २१४
तत्थ दु विक्खंभमज्झे[12] हवंति णयराणिमाणि[13] चत्तारि । कंचणमसोगमंदिरमसारगल्लं च सोहम्मे[14] ॥ २१५
तो तत्थ लोगपाला चदुसु वि य दिसासु[15] होंति चत्तारि । जमवरुणसोममादी एदेसु हवंति णगरेसुं[16] ॥२१६
वेमाणिया य एदे जमवरुणकुबेरसोममादीया[17] । पडिइंदा इंदस्स दु उत्तमभोगा महिड्ढीया ॥ २१७

अरुण, नन्दन, नलिन, कांचन, रोहित, चंचत्, अरुण (मरुत्), तथा ऋद्धीश विमान कहे गये हैं ॥ २०७ ॥ पुनः उससे सैकड़ों करोड़ योजन जाकर वैडूर्य विमान और रमणीय प्रभंकर (रुचक) विमान है । उससे आगे रुधिर (रुचिर), अंक, स्फटिक, तपनीय तथा बीसवां उत्तम श्रीसे युक्त और मणि एवं सुवर्णसे भूषित प्रदेशवाला मेघ विमान है ॥ २०८–२०९ ॥ इसके आगे अभ्र, हारिद्र, पद्म, लोहित, अंक, वज्र, नंदावर्त, रमणीय प्रभंकर, पृष्ठ नामक, गज और मत्त (मित्र) नामक, ये तीस विमान तथा इकतीसवां प्रभ नामक; इस प्रकार ये इकतीस पटल सौधर्म कल्पके हैं जो श्रेणिबद्ध विमानोंके साथ लोकसे लोक पर्यन्त स्थित हैं ॥ २१०–२१२ ॥ इकतीसवां पटल सुवर्ण, रत्न, अंक व वज्रमय है । उसके मूलमें सौधर्म कल्प है जहां स्वयं सुरेन्द्र रहता है, तथा जहां समचतुष्कोण दिव्य एक योजनसे कुछ अधिक विस्तृत सुधर्मा नामकी सभा है, जिसके नामसे उस कल्पका भी सौधर्म नाम प्रसिद्ध है ॥ २१३–२१४ ॥ वहां सौधर्म कल्पमें विष्कम्भके मध्यमें कांचन, अशोक, मंदिर और मसारगल्ल, ये चार नगर हैं ॥ २१५ ॥ वहां चारों दिशाओंमें स्थित इन नगरोंमें यम, वरुण और सोमादि (सोम और कुबेर) ये चार लोकपाल रहते हैं ॥ २१६ ॥ उत्तम भोग एवं महर्द्धिसे संयुक्त ये यम, वरुण, कुबेर और सोमादि वैमानिक देव इन्द्रके प्रतीन्द्र होते

---

१ उ श रुधियं. २ उ श चंदारुणं. ३ उ तहेव पुणिढिड्ढिसंपण्णं, क तहेव पुण ढिड्ढिसं होइ, ब तेट्टव पुण्णादेट्ठिसं होइ, श तहेव रिट्ठिसंपण्णं. ४ श मयंकरं. ५ उ श भूसियापदेसं. ६ उ श विद्धणामं. ७ उ श वत्तीसदिमं. ९ क रयर, ब रयद. १० उ क ब श तं मूले. ११ क जीय, (ब सुधण्णो णाम. ८ उ श वत्तीसदिमं.) १२ उ श तिरक्खंभ. १३ उ श णयरा इमाणि. १४ उ श सोहम्मं. सोधम्म जीव णामेण), श जीये. १५ क ब वि दिसासु. १६ श एदे जमवरुणकुवेरगरेसु. १७ उ श सोमवादीया.

एक्कत्तीसं पडलाइं[1] वत्तीसं चेय सयसहस्साइं । ताइं तु विमाणाइं[2] हवंति सोहम्मकप्पस्स ॥ २१८
मज्झिमयम्मि विमाणे मसारगल्लम्मि मणहरालोए । मज्झम्मि[3] रयणचित्ता सोहम्मसहा विमाणं च ॥ २१९
वत्तीससयसहस्साण सामिओ दिव्ववरविमाणाणं । तेलोक्कपायडभडो[4] जत्थ सुरिंदो सयं[5] वसइ ॥ २२०
सो भुंजइ सोहम्मं सयल समंतेण[6] तिहुयणेण समं । बहुविहपावविहम्मो सद्धम्मो[7] सोहगो जस्स ॥ २२१
गिरुवहद्‌जठरकोमलअदिसयवररूवसत्तिसंपण्णो । तरुणाइच्चसमाणो समचदुरंसेण ठाणेण ॥ २२२
कह कीरइ से उवमा अंगाणं[8] तस्स सुरवरिंदस्स । जस्स दु अणंतरूवे रूवम्मि अणोवमा कंती ॥ २२३
वरमउडकुंडलहरो उत्तममणिरयणपवरपालंबो[9] । केऊरकडयसुत्तयवरहारविहूसियसरीरो ॥ २२४
तत्तो दु विमाणादो गंतूणं जोयणा असंखेज्जा । तो होदि पभविमाणं पभमंडलमंडियं दिव्वं[10] ॥ २२५
तत्थ पभम्मि विमाणे[11] पभंकरा णाम रायधाणी से[12] । अमरावइ इंदपुरी सोहम्मपुरी य से णामं ॥ २२६
तीए पुण मज्झदेसे भासुररूवा सभा सुधम्म त्ति । तीए वि मज्झदेसे खग्गं किर उत्तमसिरीयं[13] ॥ २२७

हैं ॥ २१७ ॥ इकतीस पटल और वे वत्तीस लाख विमान सौधर्म कल्पके हैं ॥ २१८ ॥ मनोहर आलोकवाले मध्यम मसारगल्ल विमानमें रत्नोंसे चित्रित सौधर्मसभा व विमान हैं, जिसमें वत्तीस लाख उत्तम दिव्य विमानोंका स्वामी व तीन लोकोंका प्रगट सुभट स्वयं सौधर्म सुरेन्द्र निवास करता है ॥ २१९–२२० ॥ वह सौधर्म इन्द्र, जिसके कि पासमें बहुत प्रकारके पापोंका विघातक शोभायमान उत्तम धर्म विद्यमान है, समस्त सौधर्म कल्पको त्रिभुवनके समान सब ओरसे पालता है ॥ २२१ ॥ उक्त इन्द्र अपघात रहित उदरसे संयुक्त, अत्यन्त सुन्दर रूप व शक्तिसे सम्पन्न, तरुण सूर्यके समान तेजस्वी और समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त है ॥ २२२ ॥ उस सुरेन्द्रके अंगोंकी उपमा कैसे की जा सकती है जिसके अनन्त सौन्दर्यवाले रूपमें अनुपम कान्ति विद्यमान है ॥ २२३ ॥ वह उत्तम मुकुट व कुण्डलोंको धारण करनेवाला, उत्तम मणियों व रत्नोंके श्रेष्ठ प्रालम्ब (गलेका आभूषण) से युक्त तथा केयूर, कटक, सूत्र व उत्तम हारसे विभूषित शरीरसे संयुक्त है ॥ २२४ ॥ उस विमानसे असंख्यात योजन जाकर प्रभामण्डलसे मण्डित दिव्य प्रभ विमान स्थित है ॥ २२५ ॥ उस प्रभ विमानमें प्रभंकरा नामकी राजधानी है । उसका नाम अमरावती, इन्द्रपुरी व सौधर्मपुरी भी है ॥ २२६ ॥ उसके मध्य देशमें भास्वर रूपवाली सुधर्मा नामकी सभा है । उसके भी मध्य देशमें उत्तम श्रीसे संयुक्त

१ उ श वत्तीसं पडल्लाइं. २ व श विमाणए. ३ क व मज्झिम्मि. ४ उ क तेलोक्कपयाडभडो, व तेलोकपायडतडे, श तेलोकपायडभेडो. ५ उ श सइं. ६ क समत्तेण. ७ क श पावविधम्मो सोधम्मो, व पावविहम्मो सोधम्मो. ८ क अंगागं. ९ क परपालंबो, श पवरवालंबो. १० उ पभमंडयमंडियं दिव्वं, क पभमंडलणिम्मलं दिव्वं, व यसमंडलणिम्मलं दिव्वं. ११ उ श विमाणं. १२ उ रायधाणी सो, श रायधणी से. १३ उ खग्गं किर उत्तमसिरीरां, क खग्गं किरणुत्तमसिरीयं, व खग्गकिरणुत्तमसिरीय, श खग्गं किर उत्तमसिरीएं.

खग्गसहस्सवगूढं[1] मणिकंचणरयणभूसियसरीरं । किं बहुणा तं खग्गं[2] अच्छेरयसारसंभूदं ॥ २२८
तस्स बहुमज्झदेसे[3] रमणिज्जुज्जलविचित्तमणिसोहं । सिंहासणं सुरम्मं सपायपीठं अणोवमियं ॥ २२९
सो तत्थ सुहम्मवदी वरचामरविज्जमाणबहुमाणो । संतुट्ठसुहणिसण्णो सेविज्जई सुरसहस्सेहि ॥ २३०
तं च सुहम्मवरसभं[7] सिंहासणमुत्तमं सुरिंदं च । अच्छरसाण य सोहं को वण्णेदुं[8] समुच्छहदि[9] ॥ २३१
दिव्वविमाणसभाए तीए अच्छेररूवकलिदाए । को उवमाणं कीरउ[11] तिहुयणसारेक्कसाराए[12] ॥ २३२
को व अणोवमरूवं रूवं उवमेज्ज अण्णरूवेण[13] । अमराहिवस्स सयलं अच्चब्भुदरूवसारस्स[14] ॥ २३३
जोयणसयं समहियं सा तस्स[15] सभा सभावणिम्मादा[16] । भरइ णिरंतरणिचिदा देवेहि महाणुभावेहि[17] ॥ २३४
विलसंत[18]धयवडाया मुत्तामणिहेमजालकयसोहा । पुढवीवरपरिणामा णिच्चचिदं[19] सुरहिमल्लेहिं ॥ २३५

खग्ग (?)-है ॥ २२७ ॥ उक्त खग्ग हजारों खड्गोंसे आलिंगित तथा मणि, सुवर्ण एवं रत्नोंसे भूषित शरीरवाला है । बहुत कहनेसे क्या? वह खग्ग आश्चर्यजनक श्रेष्ठ द्रव्योंसे उत्पन्न हुआ है ॥२२८॥ उसके बहुमध्य भागमें रमणीय, उज्ज्वल व विचित्र मणियोंसे शोभायमान एवं पादपीठसे सहित सुन्दर अनुपम सिंहासन है ॥२२९॥ उसके ऊपर संतुष्ट होकर सुखपूर्वक स्थित वह सौधर्म इन्द्र उत्तम चामरोंसे वीज्यमान व बहुत सन्मानको प्राप्त होकर हजारों देवोंसे सेवित है ॥ २३० ॥ उस उत्तम सुधर्मा सभा, उत्तम सिंहासन, सुरेन्द्र और अप्सराओंकी शोभाका वर्णन करनेके लिये कौन उत्साहित होता है ? अर्थात् कोई भी उनका वर्णन करनेके लिये समर्थ नहीं है ॥ २३१ ॥ आश्चर्यजनक रूपसे सहित और तीनो लोकोंकी सारभूत वस्तुओंमें अद्वितीय उस दिव्य विमानसभाके लिये कौनसी उपमा की जाय ? अर्थात् वह सर्वश्रेष्ठ होनेसे उपमातीत है ॥ २३२ ॥ अत्यन्त आश्चर्यजनक श्रेष्ठ रूपसे संयुक्त उस सुरेन्द्रके अनुपम सुन्दरतासे परिपूर्ण समस्त रूपकी अन्य किसके रूपसे तुलना की जा सकती है ? अर्थात् नहीं की जा सकती ॥ २३३ ॥ एक सौ योजनसे कुछ अधिक व स्वभावसे निर्मित वह सौधर्म इन्द्रकी सभा महान् प्रभाववाले देवोंसे निरन्तर भरी रहती है ॥ २३४ ॥ शोभायमान ध्वजा-पताकाओंसे सहित; मोतियों, मणियों व सुवर्णके समूहसे की गई शोभासे सम्पन्न, पृथिवीके उत्तम परिणाम

---

१ उ श खग्गसहस्सगूढं. २ उ खग्गं, श खस्सं. ३ क ब बहुदेसमज्झे. ४ ब वरविसुज्जल. ५ उ श तस्स. ६ उ संचिट्ठसुहतिसण्णो विज्जइ, क प ब संचिट्ठसुहणिसण्णो सेविज्जइ, श संचिट्ठसुहतिसण्णो सेवज्जइ. ७ उ तत्थ सुहम्मवरसहं, श सुहम्मवरसहं. ८ उ सोहं को वणेउं, क सोक्खं को वण्णेदुं, श सोहं को वणे अमराहिवस्स वणेउं. ९ क ब समुच्छहइ. १० उ श सभाए अच्छेर. ११ क कोवमाणपमाणं कीरइ, ब को उवमाणपमाणं कीरइ. १२ ब तिहुयणसारिकसाराए. १३ उ श अणोवमरूवं उवमिज्ज अणत्तवेण. १४ उ अच्चब्भद-रूवसारस्स, श अच्चब्भदतवसारस. १५ उ ब श तत्थ. १६ ब णिम्मदा. १७ उ निरिदादिव्वेहि सहानुभावेहि, श निरिदादिव्वेहि सदाणुभावेहि. १८ क विलसंति. १९ क णिच्चंद, ब णिच्चंचद, श निच्चिद.

गोसीसमलयचंदणसुगंधगंधुद्धुरेणं[1] गंधेण । वासेदि य सुरलोयं सा सग्गसिरी[2] विडंबंती[3] ॥ २३६

सक्को-वि महड्ढीओ महाणुभागो महाजुदी धीरो[4] । भासुरवरबोंदिधरो[5] सम्मादिट्ठी[6] तिणाणीओ ॥ २३७

सो कायपडिच्चारो[7] पुरिसो इव[8] पुरिसकारणिप्पण्णो । भुंजदि उत्तमभोगं देवीहिं समं गुणसमिद्धं ॥ २३८

बत्तीसं देविंदा (?) तायत्तीसा य उत्तिमा[9] पुरिसा । चुलसीदिं च सहस्सा देवा सामाणिया तस्स ॥ २३९

अट्ठ य पणट्ठसोया ताओ अइरूवसारसोहाओ[11] । अग्गवरमहिसियाओ अच्छेरयपेच्छणिज्जाओ ॥ २४०

अणियाणं सत्तण्ह य परिसाणं सामिओ सुरवरिंदो । चुलसीदिं च सहस्सा (?) परिसाए आदरक्खाणं[12] ॥

संणद्धबद्धकवया[13] उप्पीलियसारपट्टियामज्झा[14] । बहुविहउज्जयहत्था सूरसमत्था य आयरक्खा[15] य ॥ २४२

चत्तारिलोयवालाण तत्थ[16] जमवरुणसोममादीणं । सामित्तं भट्टित्तं[17] करेदि कालं असंखेज्जं[18] ॥ २४३

संखेज्जवित्थडाणि य असंखपरिमाणवित्थडाणि च । दिव्वविमाणाणि तहिं कोडिसहस्साणि बहुयाणि[19] ॥

रूप तथा सुगन्धित मालाओंसे सदा व्याप्त रहनेवाली वह सभा स्वर्गश्रीको तिरस्कृत करती हुई सुगन्ध गन्धसे उत्कट गन्धके द्वारा स्वर्गलोकको सुवासित करती है ॥२३५–२३६॥ महाविभूतिसे संयुक्त, महाप्रभावसे सहित, महाकान्तिका धारक, धीर, भास्वर उत्तम रूपको धारण करनेवाला, सम्यग्दृष्टि, तीन (मति, श्रुत व अवधि) ज्ञानोंसे युक्त, पुरुषके समान कायप्रवीचारसे सहित तथा पौरुषसे निष्पन्न वह सौधर्म इन्द्र भी देवियोंके साथ गुणोंसे समृद्ध उत्तम भोगको भोगता है ॥२३७–२३८॥ उक्त इन्द्रके बत्तीस देवेन्द्र, त्रायस्त्रिंश, चौरासी हजार सामानिक देव ये उत्तम पुरुष हैं; तथा शोकसे रहित, अत्यन्त श्रेष्ठ रूपसे सुशोभित एवं आश्चर्यपूर्वक दर्शनीय ऐसी उत्तम आठ अग्रमहिषियां होती हैं ॥२३९–२४०॥ उक्त सुरेन्द्र सात अनीकों, अभ्यन्तरादि परिषदोंमें बैठने योग्य चौरासी [१२+१४+१६] हजार पारिषद देवों तथा [३३६०००] आत्मरक्ष देवोंका स्वामी है ॥२४१॥ युद्धके लिये उद्यत होकर कवचको व मध्यमें सारपट्टिकाको कसकर बांधे हुए तथा बहुत प्रकार उद्यम युक्त हाथोंवाले ये आत्मरक्षक देव शूरोंमें समर्थ होते हैं ॥२४२॥ वह सौधर्म इन्द्र वहां यम वरुण और सोमादि (सोम व कुबेर) चार लोकपालोंके स्वामित्व व भर्तृत्वको असंख्येय काल तक करता है ॥ २४३ ॥ उपर्युक्त दिव्य विमान संख्यात योजन विस्तारवाले व असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं । उनमें हजारों करोड़ योजन (असंख्येय) विस्तारवाले विमान बहुत (अपनी संख्याके ४/५ भाग) हैं ॥ २४४ ॥ संख्येय विस्तारवाले विमान संख्यात करोड़

1 क सुगंधगंधुद्देण, ब सुगंधगंधद्धुदेण. २ उ सुरलोए सामग्गसिरि, श सुरलेएं सामग्गसिरि. ३ क विलंबेती. ४ उ श दीरो. ५ ब वेदिधरो. ६ उ श सम्मदिट्ठि, ब समादिट्ठी. ७ ब पाडिचारो. ८ उ पुरिसं पिव, श पुरिसं पुव. ९ क उत्तिम. १० ब उत्तमा. ११ उ श सोयस्स तस्स अइरूवसोहसाराओ, ब सोया ताउ आइरूवसारसोहाउ. १२ ब सहस्सा देवा सामाणिया तस्स (अतोऽग्रे प्रतावस्यां २४०-४१ तमं गाथाद्वयं पुनर्लिखितमस्ति; तत्र 'सहस्सा परिसाय आदरक्खाणं' एवंविध एव पाठः). १३ उ श कवय. १४ उ सारपदियामज्झ, श सारमदियायज्झ. १५ क ब आवरक्खा. १६ उ श लोयपाला तत्थ. १७ उ श भट्टित्तं. १८ उ श असंखेज्जं. १९ क बहुगाणि.

संखेज्जवित्थडा किर संखेज्जा जोयणाण कोडीओ । जे होंति असंखेज्जा ते दु असंखेज्जकोडीओ ॥ २४५

सिरिवच्छसंखसत्थियअरविंदयचक्कवट्टिया बहुया । समचउरंसा तंसा अणेगसंठाणपरिणामा[1] ॥ २४६

पायारगोउरट्टालएहि वरतोरणेहिं चित्तेहिं । वंदणमालाहि तहा[2] वरमंगलपुण्णकलसेहिं ॥ २४७

कंचणमणिरयणमया णिम्मलमलवज्जिदा रयणचित्ता । बहुपुप्फगंधपउरा विमाणवासा सपुण्णाणं ॥ २४८

अगरु[3]तुरुक्कचंदणगोसीस[4]सुगंधवासपडिपुण्णा[5] । पवरच्छराहि भरिया[6] अच्छेरगरूवसाराहिं[7] ॥ २४९

तत्थ पभम्मि विमाणे एरावणवाहणो[8] दु वज्जधरो । इंदो महाणुभावो जुदीए सहिदो महड्ढीओ[9] ॥ २५०

वेसागरोवमाइं[10] तस्स ठिदी तम्मि वरविमाणम्मि । भासुरवरबोंदिधरो अच्चब्भुदरूवसंठाणो ॥ २५१

दोण्हं वाससहस्सा तस्स य आहार[11]कारणं णिद्दिट्ठं । उस्सासो णिस्सासो दोण्हं पुण तत्थ पक्खाणं ॥ २५२

सत्तरदणी य णेयो उच्छेहो[12] तस्स सुरवरिंदस्स । सेसाणं पि सुराणं सोहम्मे[13] होइ उच्छेहो ॥ २५३

अट्ठगुणमहिड्ढीओ सुहविउव्वणविसेससंजुत्तो[14] । समचउरंससुसंठिय संघदणेसु य असंघदणो ॥ २५४

योजन तथा जो असंख्येय विस्तारवाले हैं वे असंख्यात करोड़ योजन विस्तृत हैं ॥ २४५ ॥ बहुतसे विमान श्रीवृक्ष, शंख, स्वस्तिक, पद्म व चक्रके समान वर्तुलाकार तथा बहुतसे समचतुष्कोण व त्रिकोण अनेक आकारोंमें परिणत हैं ॥ २४६ ॥ उक्त विमान प्राकार, गोपुर, अट्टालयों, विचित्र उत्तम तोरणों, वन्दनमालाओं तथा मंगलकारक उत्तम पूर्णकलशोंसे [सुशोभित हैं] ॥२४७॥ सुवर्ण, मणियों एवं रत्नोंके परिणाम स्वरूप; निर्मल— मलसे रहित, रत्नोंसे विचित्र और बहुत पुष्पोंकी गन्धसे प्रचुर वे विमानालय पुण्यात्मा जीवोंके हैं ॥ २४८ ॥ उक्त विमान अगरु, तुरुष्क, चन्दन व गोशीर्ष रूप सुगन्धित द्रव्योंसे परिपूर्ण तथा आश्चर्यजनक सुन्दर रूपवाली श्रेष्ठ अप्सराओंसे व्याप्त हैं ॥ २४९ ॥ वहां प्रभ नामक विमानमें ऐरावत वाहन (आभियोग्य) देवसे संयुक्त, वज्रको धारण करनेवाला, महाप्रभावशाली तथा कान्तिसे सहित महर्द्धिक सौधर्म इन्द्र रहता है ॥ २५० ॥ उस उत्तम विमानमें स्थित उसकी आयु दो सागरोपम प्रमाण है । वह इन्द्र भास्वर उत्तम रूपको धारण करनेवाला तथा अतिशय आश्चर्यकारक रूप व आकृतिसे संयुक्त है ॥ २५१ ॥ उसके आहारकालका प्रमाण दो हजार वर्ष तथा उच्छ्वास-निश्वासका काल दो पक्ष प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ २५२ ॥ उस श्रेष्ठ सुरेन्द्रका उत्सेध सात रत्नि प्रमाण जानना चाहिये । सौधर्म स्वर्गमें स्थित शेष देवोंका भी उत्सेध सात रत्नि है ॥ २५३ ॥ अणिमा-महिमा आदि आठ गुणों व महा-ऋद्धिसे सहित, शुभ विक्रियाविशेषसे संयुक्त, समचतुरस्र शरीरसंस्थानसे युक्त, [छह] संहननोंमें संहननसे रहित, आभिनिबोधिकज्ञानी,

---

१ उ श संठा परिणामा. २ क श तहिं. ३ क अगरुग. ४ उ श गोसीरस. ५ उ श पडिपुण्णो, ब पडिपुण्णो. ६ उ श भरियो. ७ उ तवसाराहिं, क रूवसोहाणं, ब रूवसाराणं, श नसाराणं. ८ क ब एरावंद. ९ उ महिड्ढीए, श महिड्ढीय. १० उ श वेसागरोधमाए तस्सा. ११ उ श अहार. १२ उ श णेया उच्छेहो, क ब णेया उच्छेहा. १३ उ ब श सोहम्मो. १४ क ब विउरुव्वण.

आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओधिणाणिया केई । सागारो उवजोगो[1] उवजोगो चेव अणगारो[2] ॥ २५५
मणजोगि[3] कायजोगी वचिजोगी तत्थ होंति ते सव्वे । देवा इह दिविलोएं[4] चदुसु वि ठाणेसु णायव्वा ॥ २५६
उप्पज्जंति चयंति य देवाणं तत्थ सदसहस्साइं । गेहविमाणा दिव्वा अकिट्टिमा सासदसभावा ॥ २५७
पउमा सिवा य सुलसा सची य अंजू[5] तहेव कालिंदी । सामा भाणू[6] य तहा सक्कस्स दु अग्गमहिसीओ ॥ २५८
पउमा दु महादेवी सव्वंगसुजादसुंदरसुरूवा । कलमहुरसुस्सरसरा इंदियपल्हायणकरी य ॥ २५९
सव्वंगसुंदरी सा सव्वालंकारभूसियसरीरा । रूवे सद्दे गंधे फासेण यें[7] णिच्च सा सुभगा ॥ २६०
पियदंसणाभिरामा इट्ठा कंता पिया य सक्कस्स । सोलसदेविसहस्सा विउरुव्वदि उत्तमसिरीया ॥ २६१
इट्ठाओ कंताओ जोव्वण[8]गुणसालिणीओ[9] सव्वाओ । पीदिं जणंति तस्स दु अप्पडिरूवेहि रूवेहि ॥ २६२
पीदिमणाणंदमणा विणएण कदंजली णमंसंति । विणएण विणयकलिदं[10] सक्कं चित्तेण रामेंति[11] ॥ २६३
विउरुव्वणा पभावो रूवं फासो तहेव गंधो य । अट्ठण्ह वि देवीणं[12] एस सभावो[13] समासेण ॥ २६४

....

श्रुतज्ञानी व कोई अवधिज्ञानी तथा साकार व निराकार उपयोगसे सहित है ॥ २५४-२५५ ॥ वहां वे सब देव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होते हैं । स्वर्गलोकमें देव चार ही गुणस्थानोंमें स्थित होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ २५६ ॥ वहां अकृत्रिम एवं शाश्वत स्वभाववाले जो लाखों दिव्य गृहविमान हैं उनमें देव उत्पन्न होते व मरते हैं ॥ २५७ ॥ पद्मा, शिवा, सुलसा, शची, अञ्जू, कालिंदी, श्यामा तथा भानु, ये सौधर्म इन्द्रकी अग्रदेवियां हैं ॥२५८॥ सब अंगोंमें उत्पन्न सुन्दर रूपसे सहित, कल एवं मधुर सुन्दर स्वरसे संयुक्त, इन्द्रियोंको आल्हादित करनेवाली, सर्वांगसुन्दरी तथा सब अलंकारोंसे भूपित शरीरसे संयुक्त जो पद्मा महादेवी है वह रूप, शब्द, गन्ध व स्पर्शसे नित्य ही सुभग है ॥ २५९–२६० ॥ उक्त महादेवी इन्द्रकी प्रियदर्शना, अभिराम वल्लभा व इष्ट प्रिया है । उत्तम श्रीसे संयुक्त वह देवी सोलह हजार देवियोंके रूपोंकी विक्रिया करती है ॥२६१॥ यौवन गुणसे शोभायमान सब इष्ट वल्लभायें अपने अनुपम रूपोंवाले रूपोंसे इन्द्रको प्रीति उत्पन्न करती हैं ॥ २६२ ॥ मनमें प्रीति व आनन्दको धारण करनेवाली वे देवियां विनयसे हाथ जोड़कर नमस्कार करती हैं और विनयसे सहित होती हुई मन लगाकर नम्रतापूर्वक सौधर्म इन्द्रको रमाती हैं ॥२६३॥ विक्रिया, प्रभाव, रूप, स्पर्श तथा गन्ध यह संक्षेपसे आठों ही देवियोंका स्वभाव है । अर्थात् ये उन आठों ही देवियोंके समान होते हैं ॥२६४॥

....

१ उ ब श सागारे उवजोगे, क सागरे उपजोगे. २ उ श चेव जोयणागारे, क चेव अणगारे, ब चेव अणागारो. ३ उ क ब श मणजोग. ४ क ब दिवलोए. ५ उ ब अंइ्, क ब य मंजू, श व अंदू. ६ उ श भणू. ७ उ श या. ८ उ श जोधण. ९ उ ब श सालिणीउ. १० उ विणयफलिदा, श बोतूवं फलिदा. ११ उ श रमंति ब रामंति. १२ क अट्ठण्हं देवीणं. १३ क ब पभावो.

हियमणोगयभावं ताओ णाऊण अमरवहुयाओ । हिययइच्छिदाइं बहुसो पूरिंति मणोरहसदाइं ॥ २६५
बत्तीससहस्साइं[2] वल्लहियाणं पुणो वि अवराणं[3] । सव्वंगसुंदरीणं[4] अच्छेरयपेच्छणिज्जाणं ॥ २६६
पत्तेयं पत्तेयं वल्लहियाओ य ताओ सव्वाओ । विउरुव्वंति सरूवा[5] सोलसदेवीसहस्साणि ॥ २६७
पंचपलिदोवमाइं आउट्ठिदि विसयइड्ढितुल्लाणं[6] । सव्वाणं देवीणं एसेव कमो मुणेयव्वो ॥ २६८
बेसायरोवमाइं[7] आउट्ठिदि तस्स सुरवरिंदस्स । ताव अणेगा देवी उप्पज्जंती चयंती य ॥ २६९
पडिइंदत्तायत्तीसा सामाणिया तह य लोयवालाणं । तिण्हं पि यं[8] परिसाणं णामविभत्ती ससंखा य[9] ॥ २७०
समिदा चंदा य जदू[10] परिसाणं तिण्णि होंति णामाणि । अब्भंतरमज्झिमबाहिरा य कमसो मुणेयव्वा ॥ २७१
दस दो य सहस्साइं[11] अब्भंतरपारिसाय समिदाए[12] । मज्झिमपरिसा चंदा[13] चउदससाहस्सिया भणिदा ॥ २७२
बाहिरपरिसाए पुणो णामेण जदू जगम्मि विक्खादा । सोलसयसहस्साइं[14] परिसाए तीए णायव्वा ॥ २७३
अवरे वि य सेयणिया(?)सत्त वि यं[15] जहाकमं णिसामेह । पायाइं[16]गयहयाण य वसहाण य सिग्घगामीणं[17] ॥

वे देवांगनायें इन्द्रके हृदय अथवा मनमें स्थित भावको जानकर उसके सैकड़ों अभीष्ट मनोरथोंको बहुत प्रकारसे पूर्ण करती हैं ॥२६५॥ अग्रदेवियोंके अतिरिक्त उक्त सौधर्म इन्द्रके बत्तीस हजार वल्लभायें होती हैं जो सर्वांगसुन्दरी एवं साश्चर्य दर्शनीय हैं ॥ २६६ ॥ उन सब वल्लभाओंमें प्रत्येक वल्लभा अपने रूपके साथ सोलह हजार देवियोंके रूपोंकी विक्रिया करती है ॥ २६७ ॥ विषय व ऋद्धिमें समानताको प्राप्त उन देवियोंकी आयुस्थिति पांच पल्योपम प्रमाण है । सब देवियोंके यही क्रम जानना चाहिये ॥२६८॥ उस श्रेष्ठ सुरेन्द्रकी आयुस्थिति दो सागरोपम प्रमाण है । इतने समयमें अनेक देवियां उत्पन्न होती हैं और मरती हैं ॥ २६९ ॥ प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक, लोकपालों तथा तीनों ही परिषदोंके संख्या सहित नामोंका विभाग [इस प्रकार है] ॥ २७० ॥ अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य, इन तीन परिषदोंके क्रमशः समिता, चन्द्रा व जतु ये तीन नाम जानना चाहिये ॥ २७१ ॥ इनमेंसे समिता नामक अभ्यन्तर परिषद्में बारह हजार और चन्द्रा नामक मध्यम पारिषदमें चौदह हजार देव कहे गये हैं ॥ २७२ ॥ जो बाह्य परिषद् जगतमें 'जतु' नामसे प्रसिद्ध है उस बाह्य परिषद्में सोलह हजार देव जानना चाहिये ॥ २७३ ॥ पदाति, गज, अश्व, शीघ्रगामी वृषभ तथा और भी जो सेना है; यथाक्रमसे उस सात प्रकारकी सेनाकी [विशेषताको] सुनो ॥ २७४ ॥ पदाति, पीठ, वृषभ, रथ, तुरग, गजेन्द्र

१ क मनोहर. २ उ श सहस्साए. ३ उ ब श अमराणं, श अम्पाणं. ४ श सव्वंगसुरिंदसुरीणं. ५ उ श सुरूवा. ६ क उल्लाइं, ब तुलाइं. ७ उ श वेसागरोवमाए. ८ क ब य. ९ उ श यसंखाया. १० उ श चंदो य जहू. ११ उ श य सयसहस्सा. १२ उ श समिदीए, ब समिदीण. १३ उ श मज्झिमरिसचंदा. १४ उ श सोलसयसहस्साई. १५ उ श अवरे वि सेयणेया सत्तमि य. १६ उ क प ब श पायाल. १७ उ सिग्घगामीणं, श सिव्वगामीणं.

पायाइपीढवसहा रहतुरयगइंददिव्वगंधव्वा । णट्टाणीयाण तहा णीलंजस महदरी जत्थ ॥ २७५
वाऊ णामेण तहिं पायाइबलस्स महदरो णेओ । सण्णद्धबद्धकवओ सत्ताहि कच्छाहि परिकिण्णो ॥ २७६
पढमिल्लयकच्छाए चुलसीदी होंति सदसहस्साइं । बिदियाए तद्दुगुणा सण्णद्धा सुरवरा होंति ॥ २७७
एवं दुगुणा दुगुणा जाव गया होंति सत्तमीकच्छं[8] । सत्तण्हं अणियाणं एसेव कमो मुणेयव्वो ॥ २७८
उज्जुदसत्था सव्वे णाणाविहगहियपहरणाभरणा । संणद्धबद्धकवया आरक्खा सुरवरिंदस्स ॥ २७९
बाहिरपरिसा णेया अइरुंदा णिट्ठुरा पयंडा य । वंठा उज्जुदसत्था अवसारं तत्थ घोसंति[10] ॥ २८०
वेत्तलदागहियकरा मज्झिम आरूढवेसधारी[11] य । कंचुइकदणेवत्था अंतेउरमहदरा बहुधा[12] ॥ २८१
वव्वरिचिलादिखुज्जा[13]कम्मंतियदासिचेडिवग्गो य । अंतेउराभिओगा करंति णाणाविधे वेसे ॥ २८२
पीढाणीयस्स तहा[14] महदरओ सो हरि त्ति णायव्वो । उच्चासणा सहस्सा सपायपीठा तहिं देदि ॥ २८३
तस्स वि य सत्तकच्छा[15] बोद्धव्वा होंति आणुपुव्वीय । कच्छासु सो विरिंचदि[16] भूमिभागं वियाणंतो ॥ २८४

....

और दिव्य गन्धर्व ये सात अनीक हैं, तथा जहां नर्तकी अनीकोंकी महत्तरी नीलंजसा है ॥२७५॥ युद्धमें उद्युक्त होकर कवचको बांधनेवाला व सात कक्षाओंसे वेष्टित वायु नामक देव उक्त सेनाओंमेंसे पदाति सेनाका महत्तर जानना चाहिये ॥ २७६ ॥ प्रथम कक्षामें चौरासी लाख [हजार] और द्वितीय कक्षामें युद्धार्थ तत्पर रहनेवाले उत्तम देव उनसे दुगुणे होते हैं ॥२७७॥ इस प्रकार सातवीं कक्षा तक उत्तरोत्तर दुगुणे दुगुणे देव हैं । सात अनीकोंका यही क्रम जानना चाहिये ॥ २७८ ॥ शस्त्र धारण करनेमें उद्युक्त व नाना प्रकारके शस्त्रों रूपी आभरणोंको ग्रहण करनेवाले तथा युद्धमें तत्पर होकर कवचको बांधे हुए वे सब सैनिक देव इन्द्रके रक्षक हैं ॥ २७९ ॥ बाह्य पारिषद देव अत्यन्त स्थूल, निष्ठुर, क्रोधी, अविवाहित और शस्त्रोंसे उद्युक्त जानना चाहिये। वे वहां 'अपसर' (दूर हटो) की घोषणा करते हैं ॥२८०॥ वेत रूपी लताको हाथमें ग्रहण करनेवाले, आरूढ वेषके धारक तथा कंचुकी (अन्तःपुरका द्वारपाल)की पोशाक पहने हुए मध्यम [पारिषद] बहुधा अन्तःपुरके महत्तर होते हैं ॥ २८१ ॥ वर्वरी, किराती, कुब्जा, कर्मान्तिका, दासी और चेटी इनका समुदाय नाना प्रकारके वेषमें अन्तःपुरके अभियोगको करता है ॥ २८२ ॥ तथा पीठानीकका महत्तर हरि नामक देव जानना चाहिये । वह वहां पादपीठ सहित हजारों उच्च आसनोंको देता है ॥ २८३ ॥ उसकी भी क्रमशः सात कक्षायें जानना चाहिये। वह उन कक्षाओंमें भूमिके विभागको जानता हुआ उसे विभाजित करता है ॥ २८४ ॥ जो जिसके योग्य

....

१ उ श पायालपीड, क पायालपेढ, ब पायालपीद. २ उ श तला. ३ उ जच्छा, ब अछ, श अछा. ४ उ क प ब श पायालबलस्स. ५ उ श पढमिल्लकच्छाए. ६ क कच्छा. ७ उ क प ब श पहरणावरणा. ८ उ श अइतुंदा, ब अइरुंदा. ९ क ब उग्गदहत्था, श उजूद. १० उ घोसेंति, श व्वोसेंति. ११ उ श वेसधरी. १२ क बहुया. १३ उ क श चिदाद. १४ क तहिं. १५ क सत्त वि य सत्त, ब सत्त वि सत्त, (शप्रतावसम्बद्धपाठेयं गाथा). १६ क ब विरिंचेदि.

जं जस्स जोग्गमहरिह उच्चं णिच्चं[1] च आसणं दिव्वं । तं तस्स भूमिभागं णाऊण तहिं तहिं देदि ॥ २८५
वसभाणीयस्स तहिं महदरओ सो दु णाम दामड्डी[2] । तस्स वि य सत्त कच्छा देवाणं[3] वसभरूवाणं ॥ २८६
पवणंजओ त्ति णामेण तस्स वरतुरगमहदरो देवो । सत्तहिं कच्छाहिं समं तुरयसहस्सा बहुं देइ ॥ २८७
एरावणो त्ति णामेण महदरो होदि सो गयाणीओ । विउरुव्वदि[4] साहस्सी[5] मत्तगयंदाण णेगाणं[7] ॥ २८८
उत्तुंग[8]मुसलदंता पभिण्णकरडा[9] महागुलगुलिता । सत्तहिं कच्छाहिं ठिदा कुंजररूवेहि ते दिव्वा ॥ २८९
अवरो वि रहाणीओ[10] महदरओ मादलि त्ति विक्खादो । सत्तहिं कच्छाहिं ठिदो देइ[11] रहाणं सदसहस्सा ॥ २९०
णामेण अरिट्ठजसो गंधव्वाणीयमहदरो अवरो । सत्तहि कच्छाहिं समं गायदि दिव्वं महुरसद्दं ॥ २९१
णट्टाणीयमहदरी णीलंजसा[12] णट्टलक्खणपगब्भा । सत्तहिं कच्छाहिं समं णच्चदि णट्टं बहुवियप्पं ॥ २९२
गायंति य णच्चंति य अभिरामंति य अणोवमसुहेहिं । अमरे य अमरबहुओ इंदियविसएहिं सव्वेहिं ॥ [२९३]
इंदस्स दु को विहवं उवभोगं तस्स तह य परिभोगं । वण्णेऊण समत्थो सोहग्गं रूवसारं च ॥ २९४

महार्ह (बहुमूल्य) ऊंचा व नीचा दिव्य आसन होता है वह उसके योग्य भूमिभागको जानकर वहां वहां उसे देता है ॥२८५॥ वहां वृषभानीकका महत्तर वह दामर्द्धि (दामयष्टि) नामक देव है। उसके भी वृषभरूप देवोंकी सात कक्षायें होती हैं ॥ २८६ ॥ उस अश्वसेनाका महत्तर पवनञ्जय नामक देव होता है । वह अपनी सात कक्षाओंके साथ अनेक सहस्र अश्वोंको देता है ॥२८७॥ गजानीकका महत्तर वह ऐरावत नामक देव होता है । वह अनेक सहस्र मत्त गजेन्द्रोंकी विक्रिया करता है ॥ २८८ ॥ मूसलके समान उन्नत दांतोंसे सहित, मदको झरानेवाले गण्डस्थलोंसे युक्त, और गुल-गुल महा गर्जना करनेवाले वे दिव्य देव हाथी रूप सात कक्षाओंके साथ स्थित रहते हैं ॥२८९॥ मातली नामसे विख्यात दूसरा रथ अनीकका महत्तर भी सात कक्षाओंसे स्थित होकर लाखों रथोंको देता है ॥ २९० ॥ अरिष्टयश नामसे प्रसिद्ध दूसरा गन्धर्व अनीकका महत्तर सात कक्षाओंके साथ मधुर स्वरसे दिव्य गान करता है ॥ २९१ ॥ नाट्यलक्षणमें समर्थ नीलंजसा नामक नर्तक सैन्यकी महत्तरी सात कक्षाओंके साथ बहुत प्रकारका अभिनय करती है ॥ २९२ ॥ वे देवांगनायें गाती हैं, नाचती हैं, तथा अनुपम सुखकारक सब इन्द्रियविषयोंसे देवोंको रमाती हैं ॥ २९३ ॥ उस इन्द्रके विभव, उपभोग, परिभोग, सौभाग्य तथा श्रेष्ठ रूपका वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं है ॥२९४॥ इस प्रकार महाऋद्धिका

१ उ श उच्चं णिच्चुच्च. २ उ ब श दामट्ठी. ३ क ब दिव्वाणं. ४ क एरामणो. ५ उ श विउरुव्वदि. ६ सहस्सा. ७ क णामाणं, ब णागाणं. ८ उ श उच्छंग, ब उछंग. ९ क ब पभिण्णकरगमुहा. १० क ब रहाणीदो. ११ उ श देहि. १२ क णीळजसा.

एवं तु महड्ढीओ[1] महाणुभागी महाजुदी सक्को[2] । तेल्लोक्कसारपिंडं भुंजदि अच्छेरयब्भूदं ॥ २९५
सो तस्स विउलतवपुण्णसंचओ संजमेण णिप्पण्णो । ण चइज्जइ वण्णेदुं[5] वाससहस्साण कोडीहिं ॥ २९६
इंदपुरीदो वि पुणो पुव्वाए दिसाए जोयणा बहुगा । गंतूण होइ तत्तो दिव्वविमाणं वरपभेत्ति ॥ २९७
जंबूणदरयणमयं अच्चब्भुदविचित्तवलहिपासादं । सासदसभावसोहं इंदपुरीए समप्पभं[8] एदं ॥ २९८
तत्थ दु महाणुभावो सोमो णामेण विस्सुदजसोघो[9] । सामाणिओ सुरूवो[10] पडिइंदो तस्स इंदस्स ॥ २९९
अद्धुट्ठा कोडीओ अच्छरसाणं च तस्स सोमस्स । अग्गमहिसीओ चदुरो णायव्वा सपरिवाराओ ॥ ३००
तिण्णि य परिसा तस्स वि[11] सत्तेव य होंति वरअणीयाणि । इंदादो अद्धद्धं परिवार उणो[12] मुणेयव्वो ॥
एवं तु सुकयतवसंचएण वदसंजमोवदेसेण[13] । भासुरवरबोंदिधरा देवा सामाणिया[14] होंति ॥ ३०२
दक्खिणदिसाए दूरं गंतूणं वरसिखं ति[15] णामेण । दिव्वं रयणविमाणं जत्थ दु सामणिओ[16] अवरो ॥ ३०३

धारक, महाप्रभावसे संयुक्त, महाकान्तिसे सुशोभित वह सौधर्म इन्द्र तीनों लोकोंमें सारभूत आश्चर्यजनक एवं अद्भुत [विषयसुखको] भोगता है ॥२९५॥ उस सौधर्म इन्द्रका वह महान् तप युक्त पुण्यका संचय संयमसे उत्पन्न हुआ है । इसका वर्णन हजार करोड़ वर्षोंके द्वारा भी नहीं किया जा सकता ॥ २९६ ॥ इन्द्रपुरीसे पूर्व दिशामें बहुत योजन जाकर श्रेष्ठ प्रभ (स्वयंप्रभ) नामक दिव्य विमान है ॥ २९७ ॥ सुवर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित, अत्यन्त आश्चर्यजनक विचित्र व वलभी युक्त प्रासादोंसे संयुक्त तथा अविनश्वर स्वभाववाली शोभासे (अथवा सौधोंसे) सम्पन्न यह विमान इन्द्रपुरीके समान प्रभावाला है ॥२९८॥ उस विमानमें 'सोम' नामसे प्रसिद्ध कीर्तिवाला, महाप्रभावशाली एवं सुन्दर रूपसे सम्पन्न ऐसा उस इन्द्रका सामानिक प्रतीन्द्र रहता है ॥२९९॥ उस सोम लोकपालके साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) अप्सरायें और सपरिवार चार अग्रदेवियां जानना चाहिये ॥ ३०० ॥ उसके भी तीन परिषद् तथा सातों ही उत्तम सेनायें होती हैं । परन्तु परिवार इन्द्रसे आधा आधा जानना चाहिये ॥ ३०१ ॥ इस प्रकार व्रत एवं संयमसे युक्त पुण्य व तपके संचयसे वे सामानिक देव भास्वर उत्तम रूपको धारण करनेवाले होते हैं ॥ ३०२ ॥ दक्षिण दिशामें दूर जाकर वरशिख (वरशिष्ट) नामक दिव्य रत्नमय विमान है; जहां दूसरा सामानिक (यम) देव रहता है ॥ ३०३ ॥ पश्चिम दिशामें

---

१ उ श महिड्ढीओ. २ श सक्के. ३ उ श तोलोक्क. ४ क भवपुण्ण. ५ उ न रइज्जइ वणेदुं, क ण चइजइ वण्णेदुं, प व णि चइजइ वण्णेदुं, श णरइज्जवणेहिं. ६ उ श जंबूद. ७ उ श चित्त. ८ उ इंदपुरीए समप्पमवं, श इंदपुरीव समप्पमवं. ९ उ श विस्सदजसोघो, प व विस्सदससोघो. १० क सरूवो. ११ व तिण्णि वि. १२ क प व परिवारूणो. १३ उ तवसंवराणवरसंजमोववेदेण, क प व तवसंचएणवरसंजमोवदेदेण, श तवसंवएणवरसंजमोववेदेण. १४ क सविमाणया, प व सविमाणिया. १५ क पासिखत्ति, प व वरसिक्खति, श वरसखंति. १६ उ जेच्छेव समाणिओ, प व जच्छेव समाणिओ, श सेच्छेव समाणीओ.

पच्छिदिसाए गंतुं णामेण य जलजलं ति[1] विक्खायं । उत्तरदिसाए[2] गंतुं दिव्वविमाणं रयणचित्तं[3] ॥ ३०४
एदेसु लोगवाला[4] वसंति सामाणिया य अवरेसु । पडिइंदा इंदस्स दु चदुसु वि दिसासु णायव्वा ॥ ३०५
तुल्लबलरूवविक्कमपयावजुत्ता हवंति ते सव्वे । सामाणिया वि[5] देवा अणुसरिसा[6] लोगवालाणं ॥ ३०६
अच्चब्भुदइड्ढिजुदा अच्चब्भुदरूवकित्तिसंजुत्ता । अच्चब्भुदेण णेया उववण्णा[7] ते तवेणं पि ॥ ३०७
उत्तरसेढीए पुणो[8] गंतूणं जोयणा असंखेज्जा[9] । ईसाणस्स दु सीमा दंडायदवेदिया दिव्वा[10] ॥ ३०८
तत्तो दु पभादो वि य अट्ठारसमम्मि वरविमाणम्मि । ईसाणेत्ति विमाणं ईसाणिंदो तहिं वसइ ॥ ३०९
तस्स वि य लोगपाला सत्ताणीया य तिण्णि परिसाओ । महदाइड्ढीए जुदो सोधम्मादो विसेसेण ॥ ३१०
चुलसीदिं च सहस्सा तस्स वि सामाणियाण देवाणं । बलरिद्धिसुहपभावो सोहम्मादो विसेसेण ॥ ३११
धिदिइड्ढिविसयतुल्ला सामाणियलोगपालदेवेहिं । आणाइस्सरिएण[11] य अधिओ इंदो दु णायव्वो ॥ ३१२
सिरिमदि[12] तहा सुसीमा वसुमित्त वसुंधरा य धुवसेणा[13] । जयसेणा य सुसेणा अट्ठमिया से पभासंती[14] ॥ ३१३

जाकर जल-जल (जलप्रभ) नामसे विख्यात और उत्तर दिशामें जाकर रत्नचित (वल्गु) दिव्य विमान है ॥३०४॥ इन विमानोंमें लोकपाल देव रहते हैं तथा इतर विमानोंमें सामानिक देव रहते हैं । इन्द्रके प्रतीन्द्र चारों ही दिशाओंमें स्थित जानना चाहिये ॥ ३०५ ॥ वे सब तुल्य बल, रूप, विक्रम एवं प्रतापसे युक्त होते हैं । सामानिक देव भी लोकपालोंके सदृश होते हैं ॥३०६॥ अत्यन्त आश्चर्यजनक ऋद्धिसे युक्त, तथा अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप एवं कीर्तिसे संयुक्त वे देव अतिशय आश्चर्यकारक तपसे ही उत्पन्न होते हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ ३०७ ॥ पुनः उत्तर श्रेणिमें असंख्यात योजन जाकर ईशान कल्पकी सीमा स्वरूप दण्डके समान आयत दिव्य वेदिका स्थित है ॥ ३०८ ॥ उस प्रभ इन्द्रकी [उत्तर दिशामें स्थित बत्तीस श्रेणिबद्धोंमें] अठारहवें ईशान नामक श्रेष्ठ श्रेणिबद्ध विमानमें ईशानेन्द्र निवास करता है ॥ ३०९ ॥ उस ईशान इन्द्रके भी लोकपाल, सात अनीक और पारिषद देव हैं । सौधर्म इन्द्रकी अपेक्षा यह विशेषतया महा ऋद्धिसे संयुक्त है ॥ ३१० ॥ उसके भी सामानिक देवोंका प्रमाण चौरासी हजार है । यह सौधर्म इन्द्रकी अपेक्षा विशेषतया बल, ऋद्धि, सुख एवं प्रभावसे युक्त है ॥ ३११ ॥ सामानिक व लोकपाल देव धृति, ऋद्धि और विषयोंमें इन्द्रके समान होते हैं । इन्द्र केवल इनसे आज्ञा व ऐश्वर्यमें अधिक जानना चाहिये ॥ ३१२ ॥ श्रीमती, सुसीमा, वसुमित्रा, वसुन्धरा, ध्रुवसेना, जयसेना, सुसेना और आठवीं प्रभासंती (प्रभावती), ये आठ ईशानेन्द्रकी

---

१ उ गंतूणामेलयजलजलं ति, क गंतुं णामेण जयंजल चि, प गंतुं णामेण जलजल चि, ब गंतुं णामेण जल चि, श गंतूणामेव य जलजलं ति २ उ श उत्तरदिसाएण. ३ क प ब रयणचित्तं. ४ उ श एदे सलोगपाला, क देवा सलोयपाला, प ब देवसुलोगपाला. ५ प ब सामाणियाणि. ६ उ प ब श मणुसरिसा. ७ उ श उववण्णो. ८ क प ब पुण. ९ उ श यसंखेज्जा, प ब असंखेज्जं. १० प ब वेदियावुद्धा, क वेदिया वद्धा. ११ क ईसरिएण, प ब इसरिएण १२ उ श सिरिमादि· १३ उ श य हुवसेणा, क य जुवसेणा. प ब या जुवसेण. १४ उ अट्ठमिया से पभासेचि, क प ब अट्ठमिया से पभासंति, श अट्ठमिया भासे त्ति.

सोलस देविसहस्सा पत्तेयं महिलियाण परिवारा । वररूवसालिणीओ अच्छेरयपेच्छणिज्जाओ ॥ ३१४
को एदाण मणुस्सो अणंतरूवाण चेव देवीणं । वण्णेउं[1] रूवविभवं इड्ढिविलासं[2] च सोक्खं च ॥ ३१५
मणिरयणहेमजालाउलेसु सिरिदामगंधकलिदेसु । सुचिणिम्मलदेहधरा रमंति कालं तहिं सुचिरं ॥ ३१६
ईसाणविमाणादो गंतूणं जोयणा असंखेज्जा । पच्छिमदिसासु दिव्वं[3] होदि अवरं तु सव्वदोभद्दं[4] ॥ ३१७
जंबूणयरयदमए णाणामणिकिरणविप्फुरंतम्मि । जत्थ जमो त्ति महप्पा पढमिल्लयलोगपालो सो[5] ॥ ३१८
सोधम्मे[6] जह सोमो तह सो वि जमो[7] अणोवमसिरीओ । सामाणियग्गमहिसीहिं चेय तहिं[8] चउहिं संजुत्तो ॥
इंदविमाणादु पुणो गंतूणं जोयणा असंखेज्जा । अत्थि सुभद्द त्ति तहिं देवविमाणं रदणचित्तं ॥ ३२०
जत्थ कुबेरो त्ति सुरो पडिइंदो इंदतेयंसुरसारो[10] । सो विदियलोगपालो अच्छेरयभोगपरिभोगो[11] ॥ ३२१
ईसाणिंदपुरादो गंतूणं जोयणो[12] असंखिज्जा । पुव्वेण वरविमाणं समिदं किर णाम णामेणं[13] ॥ ३२२
तत्थ अणोवमसोभो[14] मुत्तामणिहेमजालकलिदम्मि[15] । वरुणो त्ति लोगपालो तिहुवणविक्खादकित्तीओ ॥

अग्रदेवियां हैं ॥ ३१३ ॥ इन महिलाओंमेंसे प्रत्येकके उत्तम रूपसे शोभायमान और साश्चर्य दर्शनीय सोलह हजार परिवारदेवियां होती हैं ॥ ३१४ ॥ अनन्त सौन्दर्यवाली इन देवियोंके रूप-वैभव, ऋद्धि, विलास व सौख्यका वर्णन कौन मनुष्य कर सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं कर सकता ॥ ३१५ ॥ मणि, रत्न व सुवर्णके समूहसे व्याप्त तथा सुन्दर मालाओंके गन्धसे सहित वहां (विमानोंमें) शुचि एवं निर्मल देहको धारण करनेवाली वे देवियां चिर काल तक रमण करती हैं ॥ ३१६ ॥ ईशान विमानसे असंख्यात योजन जाकर पश्चिम दिशामें सर्वतोभद्र नामक दूसरा दिव्य विमान है, सुवर्ण व रजतसे निर्मित तथा नाना मणियोंकी किरणोंसे प्रकाशमान जिस विमानमें यम नामक महात्मा निवास करता है । वह उक्त इन्द्रका प्रथम लोकपाल है ॥ ३१७–३१८ ॥ सौधर्म विमानमें जिस प्रकार सोम लोकपाल रहता है उसी प्रकार अनुपम शोभावाला वह यम लोकपाल भी सामानिकों और चार अग्रदेवियोंसे संयुक्त होकर वहां रहता है ॥ ३१९ ॥ पुनः इन्द्रकविमानसे असंख्यात योजन जाकर वहां रत्नोंसे विचित्र सुभद्र नामक देवविमान है, जहां इन्द्रके समान तेजस्वी श्रेष्ठ देवोंसे सहित और आश्चर्यजनक भोग-परिभोगोंसे संयुक्त वह कुबेर नामक द्वितीय लोकपाल प्रतीन्द्र रहता है ॥ ३२०-३२१ ॥ ईशानेन्द्रपुरसे असंख्यात योजन जाकर पूर्वमें समित (अमित) नामक उत्तम विमान है ॥ ३२२ ॥ मुक्ता, मणि एवं हेमजालसे कलित उस विमानमें, जिसकी कीर्ति तीनों लोकोंमें विख्यात है ऐसा अनुपम शोभावाला वरुण नामक लोकपाल निवास करता है

---

१ उ प ब श वण्णिज्ज. २ उ प ब श विसालं. ३ उ दिसासु दिट्ठं, श दिसासमुद्दिट्ठं. ४ उ यवरसवदोभद्दं, प ब यवरसव्वदोमव्वं. ५ क से. ६ प ब सोधम्मो, श धम्मो. ७ क जओ, प ब जउ. ८ क प ब चेव तह. ९ उ श इंदतोय. १० क पडिइंदतिलयसमासारो. ११ उ प ब श पडिभोगो. १२ उ श जोयण. १३ उ किर णामेण. १४ उ श अणोवसोभे. १५ उ श कलदम्मि.

एवं ते देववरा वरहारविहूसियों महासत्ता। आललिदेंचवलकुंडलें सच्छंदविउव्वणाभरणों ॥ ३२४
बहुविविहसोहविरइयदिव्वविमाणोहचित्तसोहाणि। ताणि विमाणवराइं[5] अच्छेरयपेच्छणिज्जाणि[6] ॥ ३२५
सुकयतवसीलसंचयँविणयसमाधी र्य धम्मसीलाणं। वररदणसमुब्भूदों ते आवासा सपुण्णाणं ॥ ३२६
उत्तरलोयद्धवदी[10] अट्ठावीसं तु सयसहस्साणं। सामी ईसाणिंदो रदणविमाणाण दिव्वाणं ॥ ३२७
तत्तो उड्ढं गंतुं जोयणकोडी असंखेज्जा। ताहे सणक्कुमारे कप्पे रुजगंजणं णाम ॥ ३२८
णामेण अंजणं णाम तत्थ मणिकणयरयणवेयडियं[11]। वणमालं तह णागं गरुलं चें अणोवमसिरीयं ॥ ३२९
वरमणिविभूसिदं च पियदंसणं च विक्खादं। बलभद्दं तह छट्ठं[13] चक्कं च अणोवमसिरीयं ॥ ३३०
होइ अरिट्ठविमाणं विमलं तह देवसम्मिदं[14] चेव। एदे चत्तालीसं इंदयपडला मुणेयव्वा ॥ ३३१
बंभं बंभुत्तर[15] बंभतिलय तह लंतवं च काविट्ठं। सुक्कं च सहस्सारं णादव्वं आणदं चेव ॥ ३३२
पाणदपडलं च तहा पुप्फुत्तर सायरं च पण्णासं। आरणकप्पं च तहा अच्चुदकप्पं च णादव्वं[17] ॥ ३३३
हेट्ठिमगेवेज्जाण य आदीसु सुदंसणं अमोघं च। तह चेव सुप्पबुद्धं तदियं पडलं मुणेयव्वं[18] ॥ ३३४

॥ ३२३ ॥ इस प्रकार वे श्रेष्ठ देव उत्तम हारसे विभूषित, महाबलवान्, सुन्दर व चंचल कुण्डलोंसे अलंकृत तथा इच्छानुसार विक्रिया एवं आभरणोंको धारण करनेवाले हैं ॥ ३२४ ॥ विविध प्रकारके बहुतसे प्रासादोंकी रचनासे सहित, दिव्य विमान समूहकी विचित्र शोभासे सम्पन्न, तथा आश्चर्यपूर्वक दर्शनीय वे उत्तम विमान भले प्रकार किये गये तप व शीलके संचय सहित विनय एवं धार्मिक स्वभाववाले पुण्यवान् जीवोंके निवास रूप होते हैं। वे आवास उत्तम रत्नोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३२५–३२६ ॥ उत्तरलोकार्धका अधिपति ईशानेन्द्र अट्ठाईस लाख रत्नमय दिव्य विमानोंका स्वामी है ॥ ३२७ ॥ प्रभ पटलसे असंख्यात करोड़ योजन ऊपर जाकर तब सनत्कुमार कल्पमें रुचकांजन (?) है। वहां मणियों, सुवर्ण एवं रत्नोंसे खचित अंजन नामक पटल, वनमाल, तथा नाग, अनुपम शोभावाला गरुड, उत्तम मणियोंसे विभूषित प्रसिद्ध प्रियदर्शन [लांगल], छठा बलभद्र, अनुपम शोभासे सम्पन्न चक्र पटल, अरिष्ट विमान, तथा विमल देवसम्मित (सुरसमिति), ये चालीस इन्द्रक पटल जानना चाहिये ॥ ३२८–३३१ ॥ इसके ऊपर ब्रम्ह, ब्रम्होत्तर, ब्रम्हतिलक (ब्रम्हहृदय), लांतव, कापिष्ठ (?), शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत पटल, तथा पुष्पोत्तर (पुष्पक), पचासवां सागर (शातंकर–शातक), आरण कल्प तथा अच्युत कल्प जानना चाहिये ॥ ३३२–३३३ ॥ अधस्तन ग्रैवेयकोंके आदिमें सुदर्शन, अमोघ तथा तृतीय सुप्रबुद्ध पटल जानना चाहिये ॥ ३३४ ॥ मध्यम ग्रैवेयकोंमें क्रमसे

१ क वरहाविभूसिया. २ उ श आलुलिय. ३ प ब ववलकुंडल. ४ क सछंदविउव्वणाभरणा, प ब सछंदावेउव्वणाभवणा. ५ उ श ताण विमाणविराइं. ६ उ श °पेच्छणिज्जाहि. ७ प संचया, ब संवय. ८ विणयसाधीय, प विणयसमाधाय. ९ उ श समब्भूदा. १० क लोयद्दत्वदी, प ब लोयठवदी, श लोए टवदी. ११ क सत्थमणिरयणकणयवेयडियं. १२ उ श ववणमालं तवणागं गरुडं व, क ब वणमालं तह णागं गरुलं च. १३ उ तह च्छत्तं, क तह छट्ठं, प ब तह छट्ठे. १४ क देव संसदं. १५ उ श वंभुवंभुत्तरं, क वंभं वंभुत्तरं, प वंभ वंभुत्तर, ब वंभे वंभुत्तर. १६ उ श तह पुप्फत्तर. १७ उ श णादव्वा. १८ क सुणायव्वं.

मज्झिमगेवज्जेसु य तिण्णेव[1] कमेण होंति णायव्वा । जसहरसुभद्दणामा सुविसाल कमेणं[2] अहमिंदा ॥३३५
सुमणस तह सोमणसं[3] भणियं पीदिंकरं च इगिसट्ठिं । उवरिमगेवज्जम्मि य तिण्णि य पडला समक्खादा ॥
ताहे अणुद्दिसं किर आदिच्चं[4] चेव होदि णामेण । जस्स दु इमे विमाणा चदुद्दिसं होंति चत्तारि ॥ ३३७
अच्ची य अच्चिमालिणि[5] दिव्वं वइरोयणं[6] पभासं च । पुव्वावरदक्खिणउत्तरेण आदिच्चदो होंति ॥३३८
एदे पंचविमाणा जे होंति अणुत्तरा दु सव्वट्ठे[7] । जम्मि य सव्वट्ठादो सुहसादअणंतयं जत्थ ॥ ३३९
विजयं च[8] वेजयंतं जयंतमपराजियं च णामेण । सव्वट्ठस्स दु एदे चदुसु वि य दिसासुं[9] चत्तारि ॥ ३४०
एदे विमाणपडला होंति तिसट्ठी कमेण बोद्धव्वा । कप्पा सोधम्मादी णादव्वा अच्चुदो जाम ॥ ३४१
गेवज्जादिं काउं जावं[10] विमाणा अणुत्तरा पंच । एदे विमाणवासी समए भणिदा समासेण ॥ ३४२
एक्केक्कस्स विमाणस्स अंतरं जोयणा असंखेज्जा । एक्केक्कं च विमाणं होदि असंखेज्जवित्थारं ॥ ३४३
माणुसखेत्तपमाणं[11] सोधम्मे[12] होदि उडुविमाणं[13] तु । जंबूदीवपमाणं होदि विमाणं तु सव्वट्ठं ॥ ३४४
पुप्फोवइण्णएसु य सेढिविमाणेसु चेव सव्वेसुं[14] । आयामो विक्खंभो जोयणकोडी असंखेज्जा ॥ ३४५

यशोधर, सुभद्र नामक और सुविशाल, ये तीन अहमिन्द्र पटल हैं ॥ ३३५ ॥ उपरिम ग्रैवेयकमें सुमनस, सौमनस और इकसठवां प्रीतिंकर, ये तीन पटल कहे गये हैं ॥३३६॥ तत्र अनुदिशोंमें आदित्य नामक दिव्य एक ही इन्द्रक पटल है, जिसकी चारों दिशाओंमें ये चार विमान हैं ॥ ३३७ ॥ अर्चि, अर्चिमालिनी, दिव्य वैरोचन और प्रभास ये चार विमान आदित्य पटलके पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तरमें हैं ॥ ३३८ ॥ [सर्वार्थसिद्धिके साथ] ये पांच अनुत्तरविमान सर्वार्थ पटलमें हैं, जिस सर्वार्थसिद्धिमें अनन्त सुख-साता है ॥ ३३९ ॥ विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक ये चार विमान सर्वार्थ पटलकी चारों ही दिशाओंमें स्थित हैं ॥३४०॥ ये विमानपटल क्रमसे तिरेसठ होते हैं, ऐसा जानना चाहिये । सौधर्मसे लेकर अच्युत पर्यन्त कल्प जानना चाहिये ॥ ३४१ ॥ आगममें संक्षेपसे ग्रैवेयकको आदि लेकर पांच अनुत्तर विमानों तक ये विमानवासी [कल्पातीत] कहे गये हैं ॥ ३४२ ॥ एक एक विमानका अन्तर असंख्यात योजन है, तथा एक एक विमान असंख्यात योजन प्रमाण विस्तारसे सहित है ॥ ३४३ ॥ सौधर्म कल्पमें स्थित ऋतु विमानका विस्तार मानुषक्षेत्र प्रमाण (पैंतालीस लाख योजन) और सर्वार्थ विमानका विस्तार जम्बूद्वीप प्रमाण (एक लाख योजन) है ॥ ३४४ ॥ पुष्पोंके समान इधर उधर बिखरे हुए प्रकीर्णक विमानोंका विस्तार [संख्यात व असंख्यात योजन] तथा सब ही श्रेणिबद्ध विमानोंका आयाम व विष्कम्भ असंख्यात करोड़ योजन है ॥ ३४५ ॥

१ क तेणेव. २ श णामेण विसालकमेण. ३ क सोमपासं. ४ उ श तणुदिसं किर आदिव्वं. ५ उ ब श अच्ची अच्चिदमालिणि. ६ उ श वयरोयणं, क वइरोचणं. ७ उ श सव्वट्ठो. ८ क विजयंत. ९ उ श वि दिसासु. १० उ गेवज्जादि कादुं जाम, प ब गोवज्जादि काउ जाम, श गेवज्जादुं कादुं जाम. ११ प ब खेत्तविमाणं. १२ उ श सोधम्मो. १३ क सोधम्मे रिदुविमाणं. १४ उ श सद्देसु.

सोहम्मीसाणसुरा रदणीओ होंति सत्त उच्चत्तं । छच्चेव दु उस्सेधो माहिंदसणक्कुमारेसु ॥ ३४६
बम्हा बम्हुत्तरिया देवा किर पंच होंति रदणीओ । तह अद्धपंचमा खलु लंतवकाविट्ठया होंति ॥ ३४७
सुक्कमहासुक्केसु य सदारकप्पे तहा सहस्सारे । चत्तारि य रदणीओ उच्छेहा होंति ते देवा ॥ ३४८
आणदपाणददेवा अद्धुट्ठा तह य होंति[1] रदणीओ । आरणअच्चुदया पुण तिण्णेव[2] कमेण णिद्दिट्ठा ॥ ३४९
आउट्ठिदी वि ताणं बावीसा सागरोवमा भणिया । उस्सासो पक्खेणं वाससहस्सेण आहारो ॥ ३५०
हेट्ठिमगेवज्जाणं[3] मज्झिमयाणं च उवरिमाणं च । अड्ढाइज्जा भणियाँ[4] अणुक्कमेणं मुणेयव्वा ॥ ३५१
होदि दिवड्ढा रदणी अणुदिसाणं तु देवसंघाणं । रदणी किर उस्छेहो सव्वट्ठमणुत्तराणं[5] तु ॥ ३५२
बे सत्त दस य चउदस सोलस अट्ठरसं[6] वीस बावीसा। एक्काधिया य एत्तो[7] उक्कस्सं जाम[8] तेत्तीसं ॥ ३५३
उवरिं उवरिं च पुणो जाइं[9] विमाणाणि रदणपत्थारे । ताइं तु महल्लाइं[10] सेढिमयाइं[11] विसेसेण(?) ॥ ३५४
वावीहि विमलजलसीयलाहिं[12] पउमुप्पलोवसोहाहिं[13] । उज्जाणेहि य बहुसो रम्माइं य[14] रइयसत्ताणं ॥३५५
तवविणयसीलकलिया विरदाविरदा य संजदा[15] चेव । उप्पज्जंति मणुस्सा तिरिया वि सुरालये के वि[16] ॥३५६

सौधर्म व ईशान कल्पोंमें देवोंकी उंचाई सात रत्नि तथा सनत्कुमार व माहेन्द्र कल्पोंमें छह रत्नि प्रमाण है ॥३४६॥ ब्रम्ह व ब्रम्होत्तर कल्पवासी देवोंकी उंचाई पांच रत्नि और लान्तव-कापिष्ठवासी देवोंकी उंचाई साढ़े चार रत्नि प्रमाण है ॥३४७॥ शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्पोंमें उन देवोंकी उंचाई चार रत्नि प्रमाण है ॥ ३४८ ॥ आनत-प्राणतकल्पवासी देवोंकी उंचाई साढ़े तीन रत्नि तथा आरण-अच्युतकल्पवासी देवोंकी उंचाई तीन रत्नि प्रमाण ही निर्दिष्ट की गई है ॥ ३४९ ॥ उन आरण-अच्युतकल्पवासी देवोंकी आयुस्थिति बाईस सागरोपम प्रमाण कही गई है । [जिन देवोंकी जितने सागरोपम प्रमाण आयु होती है उतने] पक्षोंमें वे उच्छ्वास लेते और उतने ही हजार वर्षोंमें आहार ग्रहण करते हैं ॥ ३५० ॥ अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकोंमें अनुक्रमसे अढ़ाई, [दो और डेढ़ रत्नि प्रमाण शरीरकी उंचाई] कही गई है ॥३५१॥ अनुदिशोंके देवसमूहोंकी उंचाई डेढ़ रत्नि तथा सर्वार्थसिद्धि एवं विजयादि अनुत्तरवासी देवोंकी उंचाई एक रत्नि मात्र है ॥ ६५२ ॥ [सौधर्म-ईशान आदिक युगलोंमें क्रमसे] दो, सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, बीस और बाईस [सागरोपम] तथा इससे आगे ग्रैवेयकादिकोंमें तेतीस सागरोपम तक एक एक सागर अधिक, इस प्रकार यह उत्कृष्ट [आयुप्रमाण जानना चाहिये] ॥३५३॥ रत्नप्रस्तारमें जो विमान ऊपर ऊपर हैं वे महान् हैं, श्रेणिमय विमान विशेष रूपसे महान् हैं (?) । ॥३५४॥ उक्त विमान निर्मल शीतल जलसे परिपूर्ण एवं पद्मों व उत्पलोंसे शोभायमान ऐसी वापियोंसे तथा उद्यानोंसे प्रेमी जीवोंके लिए बहुत रमणीय हैं ॥३५५॥ तप, विनय व शीलसे संयुक्त संयतासंयत और संयत मनुष्य तथा कितने ही तिर्यंच भी सुरालयमें उत्पन्न होते हैं ॥३५६॥

१ क अद्धुट्ठा. ताण होंति. २ उ श पुण तिन्नवे, क पुणो चिण्णवे. ३ क प ब गेवज्जेण. ४ उ भणिय, ब श भणिय. ५ उ प ब सव्वट्ठमणुत्तराणं, श सवट्ठमणुत्तराणं. ६ क प ब अट्ठदस. ७ उ श उत्तो. ८ क जाव. ९ उ क प ब जाव. १० उ तेहिंतो महल्लाइ, श तेहिंतो महलारि. ११ क हेट्ठिमआई. १२ उ श विमलेजलं, प ब विमलजल. १३ उ श पउमप्पलेवसोहेहिं, क प ब पउमप्पलोवसोहाहिं. १४ उ श य बहुयोरमाइं य. १५ प ब संजुदा. १६ प ब कोइ.

एक्कं पि साहुदाणं दादूणं सविभवेण सोधीए[1] । पावदि पुण्णं जीवो अपत्तपुव्वं भवसदेसु ॥ ३५७
देवेसु वि इंदत्तं पाविंति[2] अणंतयं विसोधिं[3] च । केवलजिणठाणं पि य सम्मत्तगुणेण पाविंति[2] ॥ ३५८
सव्वट्ठविमाणादो उवरिं गंतूण होदि णायव्वा । इसिपब्भारा पुढवी[4] माणुसखेत्तप्पमाणेण[5] ॥ ३५९
सेदादवत्तसरिसा अट्ठेव य जोयणा दु मज्झम्हि । अंते अंगुलमेत्ता रुंदा पुढवी दु रयदमया ॥ ३६०
तत्थ दु णिट्ठियकम्मा सिद्धा[6] सुहसादापिंडसव्वस्सं[7] । अव्वाबाधमणंतं अक्खयसोक्खं अणुभवंति ॥ ३६१
तस्स[8] दु णत्थि समाणं ससुरासुरमाणुसम्मि लोयम्मि । जेण समं उवमाणं तिलतुसमेत्तं पि[9] कीरेज्ज ॥ ३६२
चिंतेमि[10] पवरणगरं[11] उवमिज्ज चिलादयावणंतं पि[12] । ण य होज्ज तस्स उवमा[13] तिहुयणे[14]सोक्खेण मोक्खस्स[15] ॥
अट्ठविहकम्ममुक्का परमगदिं उत्तमं अणुप्पत्ता । सिद्धा साधियकज्जा कम्मविमोक्खे ठिदा[16] मोक्खं ॥ ३६४
मुणिदपरमत्थसारं मुणिगणसुरसंघपूजियं परमं । वरपउमणंदिणमियं मुणिसुव्वदजिणवरं वंदे ॥ ३६५

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे बाहिरउवसंहारदीव-सायर-णरयगदि-देवगदि-सिद्धखेत्त-वण्णणो णाम एयारसमो उद्देसो समत्तो ॥ ११ ॥

स्वविभवानुसार शुद्धिपूर्वक एक साधुदानको ही अर्थात् मुनियोंको आहारादि देकर जीव जो पुण्य प्राप्त करता है वह पहिले सैकड़ों भवोंमें प्राप्त नहीं हुआ ॥ ३५७ ॥ जीव सम्यक्त्व गुणसे देवोंमें भी इन्द्र-पदको प्राप्त करते ह तथा अनन्त विशुद्धि एवं केवलजिन स्थान (अरहन्त पद) को भी पाते हैं ॥ ३५८ ॥ सर्वार्थ विमानसे ऊपर जाकर मानुषक्षेत्र प्रमाण (४५००००० योजन) ईषत्प्राग्भार पृथिवी जानना चाहिये ॥३५९॥ रजतमय वह पृथिवी श्वेत छत्रके सदृश होकर मध्यमें आठ योजन व अन्तमें एक अंगुल प्रमाण विस्तीर्ण (मोटी) है ॥३६०॥ उस ईषत्प्राग्भार पृथिवीपर (सिद्धक्षेत्रमें) अष्ट कर्मको नष्ट कर चुकनेवाले सिद्ध जीव सुख-साताके पिण्ड रूप सर्वस्वसे सहित, एवं बाधासे रहित अनन्त अक्षय सुखका अनुभव करते हैं ॥३६१॥ उस सुखके समान सुरलोक, असुरलोक व मनुष्यलोकमें कोई सुख नहीं है जिसके साथ उसकी तिल-तुष मात्र भी तुलना की जा सके ॥ ३६२ ॥ मैं श्रेष्ठ नगरका चिन्तन करता हूं जहां अनादिसे अनन्त काल तक उस सुख की उपमा दी जा सके (?) किन्तु उस मोक्षसुखकी तीनों लोकोंके सुखसे तुलना नहीं हो सकती ॥३६३॥ आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित, उत्तम परमगतिको प्राप्त तथा कृतकृत्य सिद्ध जीव कर्मोंके छूटनेपर मोक्षमें स्थित हुए ॥ ३६४ ॥ उत्तम परमार्थके ज्ञाता, मुनिगण एवं सुरसमूहसे पूजित, और श्रेष्ठ पद्मनन्दिसे नमस्कृत मुनिसुव्रत जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूं ॥ ३६५ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें बाहिर उपसंहार स्वरूप दीप-सागर-नरकगति-देवगति-सिद्धक्षेत्रका वर्णन करनेवाला ग्यारहवां उद्देश समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

---

१ क सविसावेण सोधीए, प सविभत्रेण सोधाए, श सविभविणिहिधीए. २ क प ब पावंति. ३ उ श असोधिं. ४ क प ब ईसिपब्भारा पुढवी. ५ प ब पमाणेण. ६ उ श विद्धा. ७ क सुहसावपिंडमच्चत्तं, प ब सहसावपिंडमच्चत्तं. ८ उ प च श तत्थ ९ क प ब तु. १० उ श चित्तेमि. ११ प ब णगदं. १२ उ श मि. १३ उ श ण य तस्स होदि उवमा. १४ उ श दिहुयण. १५ प सुक्खेण सोक्खस्स, सावखेण सोक्खस्स. १६ ब विदा.

[बारसमो उद्देसो]

णमिऊणं णमिणाहं[1] णवकेवलदिव्वलद्धिसंपण्णं। जोइसपडलविभागं[2] समासदो संपवक्खामि ॥ १
अट्ठेव जोयणसदा असीदिअहिएहिं उवरि गंतूणं। चंदस्स वरविमाणं फेणणिभं[3] होइ णायव्वं ॥ २
वणवेदिएहि जुत्ता वरतोरणमंडिया मणभिरामा। जिणपडिमासंछण्णा बहुभवणविहूसिया दिव्वा ॥ ३
पोक्खरणिवाविपउरा णाणावरकप्परुक्खसंछण्णा। सुरसुंदरिसंजुत्ता अणादिणिहणा समुद्दिट्ठा ॥ ४
विक्खंभायामेण य चंदाणं गाउदा हवे तिण्णि। तेरससयं च दंडा चउदालीसा समधियेगा ॥ ५
सोलस चेव सहस्सा अभिजोगसुरा हवंति चंदस्स। दिवसे दिवसे य पुणो वहंति[5] बिंबं विउव्वित्ता[6] ॥ ६
चत्तारिसहस्ससुरा दिव्वामलदेहरूवसंपण्णा। पुव्वेण दिसेण ठिया[7] कुंदेंदुणिभा महासीहा[8] ॥ ७
उच्छंगदंतमुसला[9] पभिण्णकरडा मुहा गुलगुलंता[10]। चत्तारिसहस्सगया[11] दक्खिणदो होंति णिद्दिट्ठा ॥ ८
संखिंदुकुंदधवला मणिकंचणरयणमंडिया दिव्वा। चत्तारि सहस्साइं हवंति अवरेण वरवसभा ॥ ९
मणपवणगमणदच्छा वरचामरमंडिया मणभिरामा। उत्तरदिसेण होंति[12] हु चत्तारिसहस्स वरतुरया ॥ १०

दिव्य नौ केवल-लब्धियोंसे सम्पन्न श्री नमिनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करके संक्षेपसे ज्योतिष पटलके विभागका कथन करते हैं ॥१॥ आठ सौ अस्सी योजन ऊपर जाकर फेन सदृश धवल उत्तम चन्द्रविमान है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥ ये विमान वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, मनको अभिराम, जिनप्रतिमाओंसे सहित, बहुत भवनोंसे विभूषित, दिव्य, प्रचुर पुष्करिणियों एवं वापियोंसे सहित, अनेक उत्तम कल्पवृक्षोंसे व्याप्त, सुरसुन्दरियोंसे संयुक्त और अनादि-निधन कहे गये हैं ॥३–४॥ चन्द्रोंके ये विमान विष्कम्भ व आयामसे तीन गव्यूति और तेरह सौ चवालीस धनुषसे कुछ ($\frac{16}{61}$ धनुष) अधिक हैं ॥ ५ ॥ चन्द्रके सोलह हजार आभियोग्य जातिके देव हैं जो प्रतिदिन विक्रिया करके उसके बिम्बको ले जाते हैं ॥६॥ इनमें दिव्य एवं निर्मल देह व रूपसे सम्पन्न तथा कुन्दपुष्प व चन्द्रके सदृश धवल महा सिंहके आकार चार हजार देव पूर्वदिशामें स्थित रहते हैं ॥ ७ ॥ ऊंचे उठे हुए दांत रूपी मूसलोंसे सहित, मदको बहानेवाले गण्डस्थलोंसे युक्त और मुखसे महा गर्जना करनेवाले ऐसे हाथीके आकार चार हजार देव दक्षिणमें निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ८ ॥ शंख, चन्द्र एवं कुंदपुष्पके सदृश धवल तथा मणि, सुवर्ण व रत्नोंसे मण्डित दिव्य उत्तम वृषभके आकार चार हजार देव पश्चिममें स्थित रहते हैं ॥ ९ ॥ मन अथवा पवनके सदृश गमनमें दक्ष, उत्तम चामरोंसे मण्डित और मनको अभिराम ऐसे उत्तम अश्वके आकार चार हजार देव उत्तर दिशामें होते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार सूर्यबिम्बको

---

१ क प णेमिणाहं. २ क विधाणं. ३ प ब फेणणितं. ४ उ श क तेरससदंदंडाणं. ५ उ श पुणो हवंति. ६ प ब वहंति विं विउव्विचा. ७ क विया, प ब ठिय. ८ उ श महाविमासीहा. ९ क उकंगदंतमुसला, प ब उछंगदंतमुसाला. १० उ श गुलिगुलिंता. प ब गुलगुलंता, ११ उ श गय. १२ शप्रतौ 'उत्तरदिसेण होंति' इत्यत आरभ्याग्रिमगाथास्थ 'होंति' पदपर्यन्तः पाठः स्खलितोऽस्ति.

एवं आदिच्चस्स वि[1] दुगुणट्ठसहस्सवाहणा होंति । अवसेसगहगणाणं अट्ठसहस्सा समुद्दिट्ठा[2] ॥ ११
णक्खत्ताणं णेया चत्तारि सहस्स होंति अभिओगा । ताराणं णिद्दिट्ठा बिण्णि सहस्सा सुरा होंति ॥ १२
जंबूदीवे लवणे धादगिसंडे य कालउदधिम्मि । पोक्खरवरद्धदीवे चंदविमाणा परिभवंति[3] ॥ १३
बेचदुबारससंखा बादाला दुराधिया य सदरी य[4] । चंदा हवंति णेया जहाकमेणं तु णिद्दिट्ठा ॥ १४
मणुसुत्तरादु परदो पोक्खरदीवम्मि ससिगणा णेया । बारससय चउसट्ठा समासदो[5] होंति णायव्वा ॥ १५
चदुदालसयं आदिं चत्तारि हवंति उत्तरा चंदा । पोक्खरवरद्धदीवे[6] अट्ठेव य होंति गच्छा दु ॥ १६
रूवूणं दलगच्छं [7]उत्तरगुणिदं तु आदिसंजुत्तं । गच्छेण पुणो गुणिदं सव्वधणं होइ णायव्वं[8] ॥ १७
एमेव[9] दु सेसाणं दीवसमुद्देसु आणणविधाणं । चंदाइच्चाण तहा णायव्वा होइ णियमेण ॥ १८
णवरि विसेसो जाणे आदिमगच्छा य दुगुणदुगुणा दु । उत्तरधणपरिमाणं चदुरा सव्वत्थ णिद्दिट्ठा ॥ १९

भी ले जानेवाले दुगुणे आठ अर्थात् सोलह हजार वाहन देव होते हैं । शेष ग्रहगणोंके वाहन देव आठ हजार कहे गये हैं ॥ ११ ॥ नक्षत्रोंके चार हजार और ताराओंके दो हजार आभियोग्य देव निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये ॥१२॥ चन्द्रविमान जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखण्ड, कालोद समुद्र और पुष्करार्द्ध द्वीपमें परिभ्रमण करते हैं अर्थात् ये यहां गतिशील हैं ॥ १३ ॥ [उपर्युक्त जम्बूद्वीपादिकोंमें] यथाक्रमसे दो, चार, बारह, ब्यालीस और दो अधिक सत्तर अर्थात् बहत्तर चन्द्र निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये ॥ १४ ॥ मानुषोत्तर पर्वतसे आगे पुष्करार्द्धद्वीपमें बारह सौ चौंसठ चन्द्रविमान हैं, ऐसा संक्षेपसे जानना चाहिये ॥ १५ ॥ पुष्करवर द्वीपमें आदी एक सौ चवालीस, और चय चार चन्द्र हैं । गच्छ यहां आठ है [अभिप्राय यह कि वहां आठ वलयस्थानोंमें उत्तरोत्तर चार चार बढ़ते हुए चन्द्रविमानोंका प्रमाण इस प्रकार हैं—१४४, १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२] ॥ १६ ॥ एक कम गच्छके अर्ध भागको चयसे गुणित करके प्राप्त राशिमें आदिको मिलाकर पुनः गच्छसे गुणा करनेपर सर्वधनका प्रमाण जानना चाहिये ॥ १७ ॥

उदाहरण—पुष्कर द्वीपके ८ वलयस्थानोंमेंसे प्रथम वलयमें १४४ चन्द्र हैं, अत एव यहां आदिका प्रमाण १४४ और गच्छका प्रमाण ८ है । प्रस्तुत करणसूत्रके अनुसार यहां समस्त चन्द्रोंका प्रमाण इस प्रकार आता है— $(\frac{८-१}{२}) \times ४ + १४४ \times ८ = १२६४$.

शेष द्वीप-समुद्रोंमें चन्द्रों व सूर्योंकी संख्या लानेके लिये नियमसे यही विधान जानना चाहिये ॥ १८ ॥ विशेषता यह है कि शेष द्वीप-समुद्रोंमें उनके प्रमाणको लानेके लिये आदी और गच्छ उत्तरोत्तर दुगुणे दुगुणे जानना चाहिये । उत्तरधनका प्रमाण सर्वत्र चार निर्दिष्ट

---

१ क आइच्च वि, प आदिच्चसा वे, ब आदिव्वस्स वे. २ शप्रतावतोऽग्र एवंविधाऽस्ति गाथैका—णक्खत्ताणं णेया चेत्ता हवंति होंति गच्छा दु । ताराणं णिद्दिट्ठा सेसगहणं अट्ठसहस्सा समुद्दि ॥ १२ ॥ ३ उ क श परिभवंति. ४ उ श सदलिया, प च सदळी य. ५ प व समासदा. ६ उ श दीवे. ७ शप्रतौ 'उत्तरगुणिदं' इत्यत आरभ्य 'पुणो गुणिदं' पर्यन्तः पाठस्त्रुटितोऽस्ति. ८ उ श नायव्वा, क णायव्वा ९ उ श एसेव.

पदगतमवहृकउत्तरसमाहृदं दलिदं आदिणा सहिदं[1] । गच्छगुणमुवचिदाणं[2] गणिदसरीरं विणिद्दिट्ठं ॥ ३०

पोक्खरवरउवहीदो सयंभुरमणो त्ति जाव[3] सलिलणिही । एदम्हि अंतरम्हि दु ससीण संखं पवक्खामि ॥२१

पोक्खरवरउवहीए चोदाल सदा हवंति आदीए[4] । जोयणलक्खे लक्खे चदु चदु चंदा पवड्ढंति ॥ २२

बत्तीससदसहस्सो पोक्खरजलहिस्स जाण विक्खंभं । तत्तो[5] दुगुणा दुगुणा दीवसमुद्दा य वित्थिण्णा ॥ २३

वलयाए वलयाए चदुरुत्तरसंठिया हवे चंदा । इगतीसं तह चउक्का मेलविदा होंति पिंडेण ॥ २४

वारुणिदीवादीए अट्ठासीदा हवंति बिण्णिसदा । पुणरवि चउरो चउरो लक्खे लक्खे य वड्ढंति ॥ २५

वारुणिवरजलधीए आदिम्मि हवंति ससिगणा णेया । छावत्तरि पंचसदा चदुचदुवड्ढी दु वलएसु ॥ २६

खीरवरे आदीए सदा दु एक्कारसा य बावण्णा । चंदविमाणा दिट्ठा लक्खे लक्खे य चदुरधिया ॥ २७

खीरोदसमुद्दम्मि दु तिण्णेव सदा हवंति चदुरधिया । बिण्णिसहस्सा णेया वलए वलए य चउवड्ढी ॥ २८

घदवरदीवादीए छादालसदा हवंति अट्ठहिया । बाणउदिसदा सोलस तेणेव कमेण जलहिम्मि ॥ २९

अट्ठारस य सहस्सा चत्तारिसदा हवंति बत्तीसा । खोदवरम्मि दु दीवे वलए वलए य चदुवड्ढी ॥ ३०

किया गया है ॥ १९ ॥ ....(?) ॥ २० ॥
पुष्करवर समुद्रसे स्वयम्भूरमण समुद्र तक इस अन्तरमें स्थित चन्द्रोंकी संख्या कहते हैं ॥ २१ ॥ पुष्करवर समुद्रके प्रथम वलयमें एक सौ चवालीस [दो सौ अठासी] चन्द्र स्थित हैं । आगे एक एक लाख योजनपर चार चार चन्द्र बढ़ते जाते हैं ॥ २२ ॥ पुष्करवर समुद्रका विष्कम्भ बत्तीस लाख योजन प्रमाण जानना चाहिये । इससे आगेके द्वीप-समुद्र उत्तरोत्तर दुगुणे दुगुणे विस्तृत हैं ॥ २३ ॥ वलय-वलयमें अर्थात् आगे प्रत्येक वलयमें स्थित चन्द्र उत्तरोत्तर चार चार अधिक हैं । तथा इकतीस चतुष्कोंको मिलानेपर पिण्डफल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ वारुणीवर द्वीपके आदिमें दो सौ अठासी [पांच सौ छयत्तर] चन्द्र हैं । पुनः आगे लाख-लाख योजनपर चार चार चन्द्र बढ़ते गये हैं ॥ २५ ॥ वारुणीवर समुद्रके आदिमें पांच सौ छयत्तर [ग्यारह सौ बावन] चन्द्र जानना चाहिये । इसके आगे सब वलयोंमें चार चारकी वृद्धि है ॥ २६ ॥ क्षीरवर द्वीपके आदिमें ग्यारह सौ बावन (?) और इसके आगे लाख लाख योजनपर चार चार अधिक चन्द्रविमान निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ २७ ॥ क्षीरोद समुद्रमें [प्रथम वलयमें] दो हजार तीन सौ चार (?) चन्द्रविमान जानना चाहिये । इसके आगे प्रत्येक वलयमें चारकी वृद्धि होती गई है ॥ २८ ॥ घृतवर द्वीपके आदिमें छयालीस सौ आठ (?) और उसी क्रमसे घृतवर समुद्रके आदिमें बानवे सौ सोलह (?) चन्द्रविमान जानना चाहिये ॥ २९ ॥ क्षौद्रवर द्वीपके आदिमें अठारह हजार चार सौ बत्तीस (?) चन्द्रविमान हैं । आगे वलय वलयमें चारकी वृद्धि होती गई है ॥ ३० ॥ क्षौद्रवर समुद्रके

---

१ श आहिणा सणिदं. २ श गच्छदुगुणवचिदाणं. ३ उ प जाम, श साम. ४ श पोक्खरवरउवहीदो सयंभुरवणो आदीए. ५ क प ब एत्तो. ६ प ब इगिवीस, ७ श चत्तारिसदा सोलस तेणेव.

छत्तीसं च सहस्सा अट्ठेव सदा हवंति चदुसट्ठा । खीदसमुद्दवरम्मि दु लक्खे लक्खे य चदुरधिया ॥ ३१
तेहत्तरिं[1] सहस्सा सत्तेव सदा हवंति अडवीसा । णंदीसरम्मि दीवे तेणेव कमेण ते चंदा ॥ ३२
एवं कमेण चंदा दीवसमुद्देसु होंति णिद्दिट्ठा । वड्ढंता वड्ढंता ताव[3] गया जाव[4] लोयंतं ॥ ३३
आइच्चाण वि एवं दीवसमुद्दाण तह य[5] वलएसु । परिवड्ढी णायव्वा समासदो होइ णिद्दिट्ठा ॥ ३४
तारागहरिक्खाणं एसेव कमेण ताण परिवड्ढी । णवरि विसेसो जाणे गुणगारा होंति अण्णण्णा[6] ॥ ३५
एदेसिं चंदाणं असंखदीवोदधीसु जादाणं । सव्वाणं मेलवणं कहेमि संखेवदो ताणं ॥ ३६
बत्तीसा खलु वलया पोक्खरउवहिम्मि होंति णायव्वा । वलयाए वलयाए चदुरहिया होंति ससिबिंबा ॥ ३७
वारुणिदीवे णेया वलया चउसट्ठि होंति णिद्दिट्ठा । अट्ठावीसा य सया वारुणिउवहिस्स विण्णेया[7] ॥ ३८
खीरवरणामदीवे बे चेव सया हवंति छप्पण्णा । वलयाण तह य संखा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ३९
अवसेससमुद्दाणं दुगुणा दीवाण तह हवे दुगुणा । एवं दुगुणा दुगुणा ताव गया जाव लोगंतं ॥ ४०
पढमवलएसु चंदा सायरदीवाण तह य सव्वाणं । मूलधणेत्ति य सण्णा विदुसेहिं[8] पयासिदा णेया ॥ ४१
जे वड्ढिदा दु चंदा वलए वलए हवंति णिद्दिट्ठा । ते उत्तरधणसण्णा उभओ पुण होइ सव्वधणं ॥ ४२

प्रथम वलयमें छत्तीस हजार आठ सौ चौंसठ (?) चन्द्र हैं । इसके आगे लाख लाख योजनपर वे चार चार अधिक हैं ॥ ३१ ॥ उसी क्रमसे नन्दीश्वर द्वीपमें तिहत्तर हजार सात सौ अट्ठाईस (?) चन्द्र हैं ॥ ३२ ॥ इस क्रमसे निर्दिष्ट वे चन्द्र द्वीप-समुद्रोंमें उत्तरोत्तर बढ़ते बढ़ते लोक पर्यन्त चले गये हैं ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार द्वीपों तथा समुद्रोंके वलयोंमें संक्षेपसे निर्दिष्ट की गई सूर्योंकी भी वृद्धि जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ इसी क्रमसे उन ताराओं, ग्रहों और नक्षत्रोंकी भी वृद्धि हुई है । विशेष इतना जानना चाहिये कि यहां गुणकार भिन्न भिन्न हैं ॥ ३५ ॥ असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें स्थित इन सब चन्द्रोंके सम्मिलित प्रमाणको संक्षेपसे कहते हैं ॥ ३६ ॥ पुष्कर समुद्रमें बत्तीस वलय जानना चाहिये । प्रत्येक वलयमें चार चार चन्द्रबिम्ब अधिक होते गये हैं ॥ ३७ ॥ वारुणी द्वीपमें चौंसठ वलय निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये । तथा वारुणी समुद्रमें एक सौ अट्ठाईस वलय जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ तथा क्षीरवर नामक द्वीपमें स्थित वलयोंकी संख्या सर्वदर्शियों द्वारा दो सौ छप्पन निर्दिष्ट की गई है ॥ ३९ ॥ शेष समुद्रोंके दुगुणे तथा शेष द्वीपोंके भी दुगुणे वलय हैं । इस प्रकार वे वलय लोक पर्यन्त दुगुणे दुगुणे होते गये हैं ॥ ४० ॥ सब समुद्रों तथा द्वीपोंके प्रथम वलयोंमें स्थित चन्द्रोंकी संख्याकी 'मूलधन' यह संज्ञा विद्वानों द्वारा प्रकाशित की गई जानना चाहिये ॥ ४१ ॥ वलय वलयमें जो चन्द्रोंकी वृद्धि निर्दिष्ट की गई है उसकी 'उत्तरधन' और इन दोनोंकी 'सर्वधन' संज्ञा है ॥ ४२ ॥ एक सौ चवालीस,

---

१ उ श समुद्दतडम्मि. २ श एवांकटि. ३ उ प ब ताम. ४ उ प ब जाम. ५ उ श दीवसमुद्दाणि तह वि ६ उ श अण्णेण्णा, क अण्णोण्णा, प ब अण्णण. ७ प ब वि णेया. ८ श सण्णा वि विदुसेहिं.

चउदालसदा णेया बत्तीसा तह य एगरूवं च । तिसु ठाणेसु णिविट्ठो संदिट्ठी मूलदव्वस्स ॥ ४३
सोलस चेव चउक्का इगितीसा तह य एगरूवं च । तिण्णेव होंति ठाणा उत्तरदव्वस्स संदिट्ठी[4] ॥ ४४
उवहिस्स पढमवलए जेत्तियमेत्ता हवंति ससिबिंबा । दीवस्स पढमवलए तेत्तियमेत्ता हवे दुगुणा ॥ ४५
एसो कमो दु जाणे[5] दीवसमुद्देसु थावरससीणं[6] । उत्तरधणपरिहीणं आदिधणं होइ णिद्दिट्ठं ॥ ४६
उवहिस्स दु आदिधणं वलयपमाणेण तह य संगुणिदे[7] । उत्तरहीणं तु पुणो मूलधणं होइ वलयाणं ॥ ४७
उत्तरधणमिच्छंतो उत्तररासीणं[8] तह य मज्झधणं । रूऊणेण य गुणिदे वलएण य होइ वड्ढिधणं ॥ ४८
दीवस्स पढमवलए गुणिदे वलएण ससिगणे[9] सव्वे[10] । वड्ढिधणं वज्जित्ता मूलधणं होइ दीवस्स ॥ ४९

....

सोलह बत्तीस तथा एक अंक, इन तीन स्थानोंमें मूल द्रव्यकी संदृष्टि निविष्ट है ॥ ४३ ॥ सोलह चतुष्क, इकतीस, तथा एक अंक, ये तीन ही स्थान उत्तर द्रव्यकी संदृष्टिमें हैं ॥ ४४॥ समुद्रके प्रथम वलयमें जितने चन्द्रबिम्ब होते हैं द्वीपके प्रथम वलयमें उससे दुगुणे मात्र होते हैं ॥ ४५॥ द्वीप-समुद्रोंमें स्थिरशील चन्द्रोंका यही क्रम जानना चाहिये। उत्तरधनसे हीन [सर्वधनको] आदिधन [मूलधन] निर्दिष्ट किया गया है ॥ ४६ ॥ तथा समुद्रके आदिधनको वलयोंके प्रमाणसे गुणित करनेपर वलयोंका उत्तरधनसे रहित मूलधन होता है ॥ ४७ ॥ उत्तर राशियोंके उत्तरधनकी इच्छा करके मध्यधनको [चौंसठ अंकोंसे भाजित करके] एक कम वलयप्रमाणसे [तथा चौंसठ संख्यासे] गुणित करनेपर वृद्धिधन प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

उदाहरण— विवक्षित गच्छकी मध्य संख्यापर जितनी वृद्धि होती है वह मध्यम धन कहलाता है। जैसे पुष्करवर नामक तीसरे समुद्रमें गच्छका प्रमाण ३२ है। इसमें प्रथम स्थानको छोड़कर शेष ३१ स्थानोंमें उत्तरोत्तर ४-४ चन्द्रोंकी वृद्धि हुई है। इस क्रमसे गच्छकी मध्य संख्या रूप १६वें स्थानपर होनेवाली वृद्धिका प्रमाण ६४ होता है। यही यहांका मध्यम धन है। अब इस मध्यम धनको पहिले ६४ संख्यासे विभक्त करके लब्धको एक कम गच्छसंख्या (३२) से गुणित करे, तत्पश्चात् उसे सब गच्छोंकी गुण्यमान राशिभूत ६४ से गुणा करे। इस प्रकारसे तीसरे समुद्रमें होनेवाली समस्त चन्द्रवृद्धिका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा—
$\frac{६४}{६४} \times (३२ - १) \times ६४ = १९८४$ उत्तरधन।

द्वीप [अथवा समुद्र] के प्रथम वलयमें स्थित समस्त चन्द्रसमूहको वलयप्रमाणसे गुणित करनेपर वृद्धिधनको छोड़कर द्वीप [अथवा समुद्र]का मूलधन होता है [जैसे तृतीय समुद्रमें २८८×३२=९२१६]

....

१ क चोदालसदं णेयं. २ क ठाणेसु य दिट्ठा, प-बप्रत्योः ४३तमगाथाया उत्तरार्द्धं तथा ४४तमगाथायाश्च पूर्वार्द्धं स्खलितमस्ति, श ठाणेयासु निविट्ठा. ३ उ श तिण्णि वि होंति ठाणा, ब तिण्णेव होंति वाणा. ४ उ श संदिट्ठा. ५ उ श एवं कमे दु जाणे. ६ क प व दीवसमुद्देण आदिरासीणं. ७ प ब संगुणिदो. ८ उ श उत्तररासी. ९ क ससिगुणे. १० प सव्वो.

चदुरुत्तर चदुरादी वड्ढिधणं तह य होइ वलयाणं[1] । समकरणं काऊणं वड्ढिधणं तह य घेत्तव्वं[2] ॥ ५०
वड्ढीणं[3] मज्झचंदे गुणिदे तह रूवहीणवलएण । वलयाणं सव्वाणं वड्ढिधणं होइ णायव्वा ॥ ५१
दीवोवहीण एवं सव्वाणं तह य होंदि णियमेण । मूलुत्तररासीणं मेलवणं तह य कायव्वा ॥ ५२
एवं मेलविदे पुण वलयाणं जे धणाणि[4] सव्वाणि । चदुगुणचदुगुणचंदा दीवसमुद्देसु ते होंति ॥ ५३
दीवोदहीण रूवा विरलेदूणं तु रूवपरिहीणं । चदुरो चदुरो य तहा दादूणं[5] तेसु रूवेसु ॥ ५४

॥ ४९ ॥ तथा चारको आदि लेकर जो वलयोंके उत्तरोत्तर चार चार चन्द्रोंकी वृद्धि हुई है, यह उनका वृद्धिधन है । इस वृद्धिधनको समकरण (संकलन) करके ग्रहण करना चाहिये ॥ ५० ॥

विशेषार्थ— गाथा ४८ के उदाहरणमें उत्तरधन लानेका एक प्रकार बतलाया जा चुका है । इसी उत्तरधनको प्राप्त करनेका यहां अन्य प्रकार बतलाया जा रहा है । यथा— प्रत्येक द्वीप अथवा समुद्रके जितने वलय हैं उनमेंसे चूंकि प्रथम वलयको छोड़कर शेष सब वलयोंमें यथाक्रमसे उत्तरोत्तर ४–४ अंककी वृद्धि हुई है, अतएव गच्छ (वलयसंख्या) मेंसे एक अंक कम कर शेष संख्याका संकलन करके उसे ४ (वृद्धिप्रमाण) से गुणा करना चाहिये। इस प्रकार जो राशि प्राप्त होगी वह विवक्षित द्वीप या समुद्रके वलयोंका उत्तरधन होगा । संकलनके लानेका सामान्य नियम यह है कि १ अंकको आदि लेकर उत्तरोत्तर १–१ अधिक क्रमसे जितने अंकोंका संकलन लाना इष्ट हैं उनमेंसे अन्तिम अंकमें १ अंक और मिलाकर उससे उक्त अन्तिम अंकके अर्ध भागको गुणित करनेसे उतने अंकोंका संकलन (जोड़) प्राप्त हो जाता है । जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, इनका संकलन— [$\frac{९}{२} \times (९ + १) = ४५$] । अब यहां उपर्युक्त नियमके अनुसार उदाहरणके रूपमें पुष्करवर समुद्र सम्बन्धी वलयोंका उत्तरधन निकाला जाता है— इस समुद्रमें वलयोंका प्रमाण ३२ है। अत एव उनका उत्तरधन इस प्रकार होगा— $\frac{३२ - १}{२} \times ३२ = ४९६$ यह १ अंकसे कम गच्छ (३२) का संकलन हुआ; $४९६ \times ४ = १९८४$ उत्तरधन ।

वृद्धियोंके मध्य चन्द्र (मध्यधन) को एक कम वलयप्रमाणसे [गुणित करके पुनः उसे चौंसठसे] गुणित करनेपर जो प्राप्त हो वह सब वलयोंका वृद्धिधन जानना चाहिये (देखिये गाथा ४८ का उदाहरण) ॥ ५१ ॥ इसी प्रकार नियमसे सब द्वीप-समुद्रोंका वृद्धिधन होता है। तथा मूल व उत्तर राशियोंका योग करना चाहिये ॥५२॥ इस प्रकार उन दोनों राशियोंके मिलानेपर वलयोंके जो सब धन हों वे आगेके द्वीप-समुद्रोंमें [अपने अपने मध्यधनसे अधिक] चौगुने चौगुने चन्द्र होते हैं ॥ ५३ ॥ एक कम द्वीप-समुद्रोंके अंकोंका विरलन कर तथा उन अंकोंके ऊपर चार चार अंक देकर परस्पर गुणा करनेपर जो प्राप्त हो

1 श वलयाण वधं. 2 उ श घेत्तव्वं. 3 उ वट्ठीण, श मट्ठीण. 4 उ श वणाणि. 5 उ श दहूणं, प ब दादूणं.

अण्णोण्णगुणेण[1] तहा आदिधणं संगुणं तदो किच्चा। इच्छोवहिदीवाणं इच्छधणं होइ णायव्वं[2] ॥ ५५
दीवोवहिपरिमाणं विरलेदूणं तु सव्वरूवाणि। अट्ठद्धं अट्ठद्धं दाऊणं[3] य तेसु रूवेसु ॥ ५६
अण्णोण्णब्भत्थेण य रूऊणेण य तिरूवभजिदेण। आदिधणं संगुणिदे सव्वधणं होदि बोद्धव्वो ॥ ५७
ते पुव्वुत्ता रूवा दुगुणित्ता विरलिदेसु रूवेसु। दो दो रूवं दादुं अण्णोण्णगुणेण लद्धेण ॥ ५८
रूवविहीणेणं तहा तिरूवभजिदेण लद्धसंखेण। आदिधणं संगुणिदे तह चेव य होदि सव्वधणं ॥ ५९
माणुसखेत्तबहिद्धा सेसोवहिदीवरूवं विरलित्ता। करणं काऊण तदो चंदाणं होइ सव्वाणं ॥ ६०
तह ते चेव य रूवा दुगुणित्ता विरलिदूण करणेणं। सो चेव होदि रासी दीवसमुद्देसु चंदाणं ॥ ६१
एवं होदि त्ति[11] पुणो रज्जुच्छेदा छरूवपरिहीणा। जंबूदीवस्स तहा छेदविहीणं तदो किच्चा[12] ॥ ६२
रज्जूछेदविसेसा[13] दुगुणित्ता तह य दोसु[14] पासेसु। विरलित्ता तेसु[15] पुणो दो दो दाऊण रूवेसु[16] ॥ ६३
अण्णोण्णगुणेण तहा दोसु वि पासेसु जादरासीणं। ताण पमाणं वोच्छं समासदो आगमबलेण ॥ ६४

[एक कम] उससे आदिधनको गुणित करके प्राप्त राशि प्रमाण इच्छित समुद्र या द्वीपका इच्छित धन होता है, ऐसा जानना चाहिये (विशेष जाननेके लिये देखिये षट्खंडागम पु. ४ पृ. १५९) ॥ ५४-५५ ॥ द्वीप-समुद्रों प्रमाण सब अंकोंका विरलन कर और उन अंकोंके ऊपर आठके आधे चार चार अंकोंको देकर परस्पर गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उसमेंसे एक कम करके शेषमें तीनका भाग दे। फिर लब्ध राशिसे आदिधनको गुणित करनेपर सब धनका प्रमाण होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५६-५७ ॥ पूर्वोक्त उन अंकोंको दुगुणे कर विरलित करे, फिर उन अंकोंके ऊपर दो दो अंक देकर परस्पर गुणित करनेपर जो लब्ध हो उसमेंसे एक कम करके शेषमें तीनका भाग दे। इस प्रकारसे जो संख्या प्राप्त हो उससे आदिधनको गुणित करनेपर सर्वधनका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ५८-५९ ॥ मनुष्य क्षेत्रके बाह्य भागमें स्थित शेष समुद्रों एवं द्वीपोंके अंकोंका विरलन कर करण (?) करनेपर सब चन्द्रोंका [प्रमाण] होता है ॥ ६० ॥ तथा करणके द्वारा उन्हीं अंकोंको दुगुणे कर विरलित करके द्वीप-समुद्रोंमें चन्द्रोंकी वही राशि होती है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार राजुके जितने अर्धच्छेद हैं उनमेंसे छह अंकोंको तथा जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंको भी कम करके राजुके अर्धच्छेदविशेषोंको दुगुणे कर व दोनों पार्श्वोंमें विरलित करके तथा उन अंकोंके ऊपर दो दो अंकोंको देकर परस्पर गुणा करनेपर जो दोनों पार्श्वोंमें राशियां उत्पन्न होती हैं उनका प्रमाण संक्षेपसे आगमानुसार कहते हैं ॥ ६२-६४ ॥ उभय पार्श्वोंमें चौंसठसे भाजित जो राजु निष्पन्न

१ उ श अण्णोणगुणेण, प ब अण्णेण गुणण. २ उ क श णायव्वा. ३ क अट्ठद्धं अट्ठद्धं दादूण, प ब अट्ठद्धं वा अट्ठद्धं दाहण. ४ प ब वायव्वा ५ उ श पुव्ववो. ६ ब विहीणेण. ७ उ श बहिद्धसोसोवहि. ८ उ श तत्तो. ९ उ श अह ते वय. १० उ विरलिदूण करणेणा, प ब विरलहण करणेण, श विराधिदूण करणेणा. ११ उ श होदि स. १२ उ श च्छेदविदूणं तदो विच्चा. १३ क विससो. १४ प ब दुगुणित्ता दोसु. १५ क तेदु. १६ उ श दाऊण तेसु रूवेसु.

घट्टुसट्ठिलक्खभजिदं उभये पासेसु[1] रज्जुणिप्पण्णं[2]। सो चेव दु णायव्वो[3] सेढिस्स असंखभागो[4] त्ति ॥ ६५
सेढिस्स सत्तभागो[5] चउसट्ठीलक्खजोयणविभत्तो[6]। एवं होदूण ठिदा[7] रासीणं छेदणा जे दु[8] ॥ ६६
सव्वाणि जोयणाणि य रासीणं भागहाररूवाणि[9]। दंडंगुलाणि य पुणो कायव्वं तह पयत्तेणं ॥ ६७
छप्पण्णा वेण्णिसदा[10] सूचीअंगुल करित्तु घेत्तूणं[11]। उभये पासेसु तहा[12] छेदाणं रासिमज्झादो ॥ ६८
सेढी हवंति अंसा संखेज्जा[13] अंगुला हवे छेदा। वामे दाहिणपासे णिदिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ६९
अंसो अंसगुणेण य छेदा छेदेण चेव[14] संगुणिदे। छेदंसाणं दिट्ठं[15] उप्पण्णाणं तु परिमाणं[16] ॥ ७०
पण्णाट्ठिं च सहस्सा पंचेव सया[17] तहेव छत्तीसा। पदरंगुलाणि जादा संखेज्जगुणेण[18] तच्छेदा[19] ॥ ७१
अंसादु समुप्पण्णं जगपदरं तह य[20] होइ णिदिट्ठं[21]। अवसेसे[22] जे वियप्पा ते संखेवेण च वोच्छामि[23] ॥ ७२
जो उप्पण्णो रासी जोइसदेवाण सो समुद्दिट्ठो। संखेज्जदिमे भागे भवणाणि हवंति णायव्वा ॥ ७३
सव्वे वि वेदिणिवहा सव्वे बहुभवणमंडिया रम्मा। सव्वे तोरणपउरा सव्वे सुरसुंदरीछण्णा ॥ ७४
णाणामणिरयणमया जिणभवणविहूसिया मणभिरामा। जोदिसगणाण णिलया णिदिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ७५

है उसे ही श्रेणिका असंख्यातवां भाग जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ श्रेणिके सातवें भागको चौंसठ लाखसे विभक्त करे, ऐसा होकर स्थित जो राशियोंके अर्धच्छेद हैं, तथा राशियोंके भागहार रूप जो सब योजन हैं, प्रयत्नपूर्वक उनके दण्ड एवं अंगुल करना चाहिये ॥ ६६–६७ ॥ तथा उभय पार्श्वोंमें अर्धच्छेदोंकी राशिके मध्यमेंसे दो सौ छप्पन अंगुल करके ग्रहण करना चाहिये ॥ ६८ ॥ वाम व दाहिने पार्श्वमें अंश श्रेणि होते हैं तथा संख्यात अंगुल छेद होते हैं, ऐसा सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ ६९ ॥ अंशोंको अंशोंसे तथा छेदोंको छेदोंसे गुणित करनेपर उत्पन्न छेदों व अंशोंका प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है ॥ ७० ॥ संख्येयगुणसे वे छेद पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस प्रतरांगुल होते हैं तथा अंशोंसे जगप्रतर उत्पन्न होता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है। अवशेष जो और विकल्प हैं उनका संक्षेपसे कथन करते हैं ॥ ७१–७२ ॥ जो राशि उत्पन्न होती है वह ज्योतिषी देवोंका प्रमाण कहा गया है। संख्यातवें भागमें उनके भवन होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ७३ ॥ ज्योतिषी देवसमूहके सब ही भवन सर्वदर्शियों द्वारा वेदीसमूहसे सहित, सब ही बहुत भवनोंसे मण्डित, रमणीय, सब ही तोरणोंसे प्रचुर, सब ही देवांगनाओंसे परिपूर्ण, नाना मणियों एवं रत्नोंके परिणाम रूप, जिनभवनसे विभूषित तथा मनोहर निर्दिष्ट किये गये हैं ॥ ७४–७५ ॥ संक्षेपसे निर्दिष्ट किये गये ज्योतिषियोंके

---

१ क उभयो फासेहु, प ब उभयपासेहु. २ प व रज्जुणिपण्णं. ३ उ श णायव्वा. ४ क यसंखभागो. ५ उ श भागा, ब भाग. ६ उ श जोयणेहि य विमत्ता, प व जोयणेविमत्तो. ७ प ब तट्ठिदा. ८ क ससीणं छेदणा जे दु, प ब रासीणं छदणा जे दु, श रासीणं ताण पमाण वोच्छं. ९ प या रासीएं भागहार, ब य रासाएं तागहार. १० प ब वेदिसदा. ११ उ घेत्तणा, श व्वेतुगा. १२ उ ताह, श ताहा. १३ श हवंति असंखेज्जा. १४ उ श अंसो अंसगुणिणे य छेदं च्छेदे च्छेव. १५ उ दिट्ठा, श णिदिट्ठा. १६ प ब परिमाणा. १७ प ब पंचसया. १८ उ श नदा संखिज्जगुणेण. १९ उ तेच्छेदा, प व ते छेदा. २० उ श या. २१ श णिदिट्ठा. २१ उ श अविसेस, २३ उ श ते संखेवेण वोच्छामि.

बिंबाणि समुद्दिट्ठा जोदिसयाणं समासदो णेया। एत्तो[1] जोदिसरासी समासदो संपवक्खामि ॥ ७६
जो पुव्वुत्ता संखा रज्जुस्स दु छेदणाणं[3] किंचूणा। विरलित्ता तेसु पुणो चउ चउ दादूण[4] रूवेसु ॥ ७७
अण्णोण्णगुणेण तदो[5] रूऊणेण[6] य तिरूवभजिदेण। पोक्खरउवहीचंदे गुणिदेण य होदि मूलधणं ॥ ७८
उत्तरधणमवि एवं आणिज्जो चेव तेण[7] करणेण। णवरि विसेसो णेओ[8] रूवं पक्खित्तु[9] वलएसु ॥ ७९
रूवं पक्खित्ते पुण रिणरासिचउक्कसोलसादी य[10]। दुगुणा दुगुणो[11] गच्छदि सयंभुरमणोदधी जाव ॥ ८०
एवं पि आणिऊणं[12] पुव्वुत्तविहाणकरणजोगेण। उत्तरधणम्मि मज्झे सोधित्ता सुद्धअवसेसं[13] ॥ ८१
मूलधणे पक्खित्ते सव्वधणं तह य होदि णिद्दिट्ठं। चंदाणं णायव्वा आइच्चाणं तु एमेव ॥ ८२
चदुकोडिजोयणेहि य अडदाला सदसहस्से[14] भागेहिं। सेढी दु समुप्पण्णो[15] दोसु वि पासेसु णायव्वा ॥ ८३
सा चेव होदि रज्जू[16] चउसट्ठीलक्खजोयणेहि पविभत्ता[17]। एवं होदूण ठिदा[18] रासीणं छेदणा जे दु[19] ॥ ८४
ते अंगुलाणि किच्चा पुणरवि अण्णोण्णसंगुणे जादं। जोदिसगणाणं[20] बिंबा णिदिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥ ८५
जो उप्पण्णो[21] रासी पंचसु ठाणेसु तह य काऊणं। सगसगगुणगारेहिं गुणिदव्वं[22] तह पयत्तेण ॥ ८६

बिम्ब जानने योग्य हैं। आगे संक्षेपमें ज्योतिषियोंकी राशिका कथन करते हैं ॥ ७६ ॥ राजुके अर्धच्छेदोंकी जो पूर्वोक्त संख्या है, कुछ कम उसका विरलन करके तथा उन अंकोंके ऊपर चार चार अंक देकर परस्पर गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसमेंसे एक अंक कम कर शेषमें तीनका भाग दे। इस प्रकारसे जो लब्ध हो उससे पुष्कर समुद्रके चन्द्रोंको गुणित करनेपर मूलधन प्राप्त होता है ॥ ७७-७८ ॥ इसी प्रकार उसी करणके द्वारा उत्तरधनको भी ले आना चाहिये। विशेष इतना जानना चाहिये कि वलयोंमें एक अंकका प्रक्षेप किया जाता है ॥ ७९ ॥ एक अंकका प्रक्षेप करनेपर फिर ऋणराशि चतुष्क व सोलह आदि स्वयम्भूरमण समुद्र तक दुगुणे दुगुणे क्रमसे जाती है ॥८०॥ इस प्रकार पूर्वोक्त विधानकरणके योगसे लाकर और उसे उत्तरधनके मध्यमेंसे कम करके शुद्धशेषको मूलधनमें मिला देनेपर चन्द्रोंका सर्वधन होता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है। इसी प्रकार ही सूर्योंका भी सर्वधन जानना चाहिये ॥८१-८२॥ दोनों ही पार्श्वोंमें चार करोड़ अड़तालीस लाख योजनोंसे विभक्त जगश्रेणि उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ वही चौंसठ लाख ($\frac{4480000000}{7}$) योजनोंसे विभक्त राजु होती है। ऐसा होकर स्थित राशियोंके जो अर्धच्छेद होते हैं उनके अंगुल करके फिरसे भी परस्पर गुणित करनेपर ज्योतिषी समूहोंके बिम्बोंका प्रमाण होता है, ऐसा सर्वदर्शियों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ ८४-८५ ॥ उक्त प्रकारसे जो राशि उत्पन्न हुई है उसको पांच स्थानोंमें रख करके प्रयत्नपूर्वक अपने अपने

१ उ एत्ते चे, श एत्ते. २ उ ब श जे. ३ उ श छेदणा दु. ४ क दो दा दादूण. ५ क तहा, प ब तहो. ६ प ब रूवेणेण. ७ क तेण चेव. ८ क णेया. ९ श पक्खित्ति. १० उ श सोलसादीसु ११ क दुगुण-दुगुणेण. १२ क एवं वियाणिदूणं. १३ प सुव्वअवसेसं, ब सव्वअवसेसं. १४ उ श दससहस्स. १५ उ श समप्पण्णा, क प ब समुप्पण्णो. १६ उ श ते चेव होंति रज्जु १७ क प ब जोणणविभत्ता. १८ प ब दिट्ठा. १९ श ढिदा सीणं छेदनाओ. २० श जोदिसगणाणि. २१ क प ब जे उप्पण्णा. २२ क गुणगारेहि य गुणिदव्वं.

एगेगअट्ठवीसा अट्ठासीदा तहेव[1] रूवेहिं । गुणिदे चंदाइच्चा णक्खत्ता गहगणा होंति ॥ ८७

छावट्ठिं च सहस्सा[2] णव चेव सया पणहत्तरिं[3] होंति । गुणगारा णायव्वा ताराणं कोडकोडीओ ॥ ८८

पंचेव य रासीओ मेलावेदूण तह य एयत्थं । जोदिससुराणं[4] दव्वं उप्पण्णं होदि तह य णायव्वो[5] ॥ ८९

[6]गुणगारभागहारा ओवट्टेदूण[7] तह य अवसेसं । जोदिसगणाण दव्वं[8] होदि पुणो तह य णायव्वा ॥ ९०

पण्णट्ठिसहस्सेहि य छत्तीसेहि य सदेहिं पंचेहिं । पदरंगुलेहि भजिदे जगपदरं होदि उप्पण्णं ॥ ९१

णउदी सत्तसदेहि य धरणीदो सव्वहेट्ठिमा तारा । णवसु सदेसु य उड्ढं जे[9] तारा सव्वउवरिमिया ॥ ९२

एवं जोदिसपडलव्वेहुलियं[10] दस सदं वियाणाहि । तिरियं लोगक्खेत्तं लोगंत घणोदधिं पुट्ठा ॥ ९३

णउदुत्तरसत्तसदं दस सीदी चदुदुग तियचउक्कं । तारारविससिरिक्खा बुहभग्गव [गुरु] यंगिरारसणी[11] ॥ ९४

चंदस्स सदसहस्सं सहस्स रविणो सदं च सुक्कस्स । वासाहिएहि पल्लं लेहट्ठं वरिसणामस्स ॥ ॥ ९५

सेसाणं तु गहाणं पल्लद्धं आउगं मुणेदव्वा । ताराणं तु जहण्णं पादद्धं पादमुक्कस्सं ॥ ९६

गुणकारोंसे गुणित करे ॥ ८६ ॥ उक्त पांच गुणकारोंमें एक (चन्द्र), एक (सूर्य), अट्ठाईस (नक्षत्र) तथा अठासी (ग्रह) अंकोंसे गुणित करनेपर चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र एवं ग्रहसमूहका प्रमाण होता है ॥ ८७ ॥ छयासठ हजार नौ सौ पचत्तर कोड़ाकोड़ि (६६९७५००००००००००००) यह ताराओंका गुणकार जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ तथा इन पांचों राशियोंको एकत्र मिलानेपर समस्त ज्योतिषी देवोंका द्रव्य होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८९ ॥ तथा गुणकार और भागहारका अपवर्तन करके अवशेष ज्योतिर्गणोंका द्रव्य होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९० ॥ पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस प्रतरांगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर समस्त ज्योतिषी देवोंका प्रमाण उत्पन्न होता है ॥ ९१ ॥ पृथिवीसे सात सौ नव्बै [योजन ऊपर जाकर] सबसे नीचे तारा स्थित हैं । नौ सौ योजन ऊपर जाकर जो तारा स्थित हैं वे सबसे ऊपर हैं ॥९२॥ इस प्रकार ज्योतिषपटलका बाहल्य एक सौ दश योजन प्रमाण जानना चाहिये। तिर्यग्लोक क्षेत्र लोकान्तमें घनोदधि वातवलयसे स्पृष्ट है ॥ ९३ ॥ चित्रा पृथिवीसे सात सौ नव्वै योजन ऊपर जाकर तारा, इससे दश योजन ऊपर सूर्य, उससे अस्सी योजन ऊपर चन्द्र, उससे चार योजन ऊपर नक्षत्र, उससे चार योजन ऊपर बुध, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र, उससे तीन योजन ऊपर [गुरु], उससे तीन योजन ऊपर अंगारक (मंगल) और उससे तीन योजन ऊपर शनि स्थित है ॥ ९४ ॥ उत्कृष्ट आयु चन्द्रकी एक लाख वर्षोंसे अधिक एक पल्य, सूर्यकी एक हजार वर्षोंसे अधिक एक पल्य, शुक्रकी सौ वर्षोंसे अधिक एक पल्य, बृहस्पतिकी पूरा एक पल्य तथा शेष ग्रहोंकी अर्ध पल्य प्रमाण जानना चाहिये। ताराओंकी जघन्य आयु पादार्ध अर्थात् पल्यके आठवें भाग ($\frac{1}{8}$) और उत्कृष्ट पाव ($\frac{1}{4}$) पल्य प्रमाण जानना चाहिये।

---

१ क तहेय, प तहेयं, ब य तहेयं. २ क प ब णवयसया. ३ उ श पणत्तरी. क पणतहत्तरिं, प ब पणहत्तरिं. ४ प ब सुराणा. ५ क दव्वं होंति गुणो तहय णायव्वा, श दव्वं होदि पुणो तह य णायव्वा. ६ कप्रतौ नोपलभ्यते गाथेयम् (९०इतीयं गाथासंख्याप्यत्र नोपलभ्यते). ७ प ब भागहारं उवट्ठेदूण. ८ उ जोदिसगणा दिव्वं, श जोदिसगणा दव्वं. ९ क जा. १० उ क प ब श पडल वेहुलियं. ११ उ दुह-भमंत्रअंगियारमणी, श दुहं भगूवअंगियारमणी (कप्रतावेतस्या ९४तमगाथाया अग्रे " तारा यो. ७९० रवि ८० शशि १० नक्षत्र ४ बु ४ शु ३ बृ ३ मं ३ शनि ३ " इत्यधिकः पाठोऽस्ति).

एगट्ठिभाग जोयणस्से ससिमंडलं तु छप्पण्णं । रविमंडलं तु अडदालीसं एगट्ठिभागाणं ॥ ९७

सुक्कस्स हवदि कोसं[2] कोसं[3] देसूणयं विहप्फदिणो[4] । सेसाणं तु गहाणं तह मंडलमद्धगाउदियं ॥ ९८

गाउदचउत्थभागो णायव्वा सव्वडहरियो तारा । साहिय तह मज्झिमया उक्कस्सा अद्धगाउदिया ॥ ९९

तारंतरं जहण्णं[6] णायव्वा सत्तभागगाउदियं । पण्णासा मज्झिमया उक्कस्सं जोयणसहस्सा ॥ १००

रविससिअंतर डहरं लक्खूणं[7] तिहि सदेहिं सट्ठाहिं[8] । एगं च सदसहस्सं[9] छस्सद सट्ठी य उक्कस्सं ॥ १०१

णवणउदिं च सहस्सा छच्चेव सदा जहण्ण चत्ताला । एवं[10] च सदसहस्सा छस्सद सट्ठी य[11] उक्कस्सं ॥ १०२

इगिवीसेक्कारसदं[12] आबाधा हवदि अत्थसेलस्सं[13] । दुगुणं पुण गिरिसहिदं जोदिसरहिदस्स वित्थारं ॥ १०३

जोदिसगणाण संखा भणिदा जा जा हु[14] जंबुदीवम्हि । ताओ दुगुणा दुगुणा बोद्धव्वा खीलवज्जाओ[15] ॥ १०४

[शेष सूर्यादिकोंकी जघन्य आयु पल्योपमके चतुर्थ भाग ($\frac{1}{4}$) प्रमाण है] ॥ ९५-९६ ॥ चन्द्र-मण्डलका [उपरिम तलविस्तार] योजनके इकसठ भागोंमेंसे छप्पन भाग ($\frac{56}{61}$) तथा सूर्यमण्डलका उन इकसठ भागोंमेंसे अड़तालीस भाग प्रमाण है ॥ ९७ ॥ शुक्रके विमानतलका विस्तार एक कोश, बृहस्पतिके विमानतलका कुछ कम एक कोश, तथा शेष ग्रहोंके मण्डलका विस्तार अर्ध कोश प्रमाण है ॥ ९८ ॥ सब लघु ताराओंका विस्तार एक कोशके चतुर्थ भाग प्रमाण, मध्यम ताराओंका एक कोशके चतुर्थ भागसे कुछ अधिक, तथा उत्कृष्ट ताराओंका अर्ध कोश प्रमाण है ॥ ९९ ॥ ताराओंका जघन्य अन्तर एक कोशके सातवें भाग ($\frac{1}{7}$), मध्यम अन्तर पचास योजन, और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन प्रमाण है ॥ १०० ॥ एक लाख योजनमेंसे तीन सौ साठ योजन कम करनेपर जो शेष रहें (१००००० − ३६० = ९९६४० यो.) उतना [जम्बूद्वीपमें] एक चन्द्रसे दूसरे चन्द्र तथा एक सूर्यसे दूसरे सूर्यके जघन्य अन्तरका प्रमाण होता है । उनके उत्कृष्ट अन्तरका प्रमाण एक लाख छह सौ साठ योजन है ॥ १०१ ॥ उपर्युक्त जघन्य अन्तरका प्रमाण निन्यानवै हजार छह सौ चालीस और उत्कृष्ट अन्तरका प्रमाण एक लाख छह सौ साठ [योजन] है ॥ १०२ ॥ अस्तशैल (मेरु) और ज्योतिष विमानोंका अन्तर ग्यारह सौ इक्कीस योजन प्रमाण है । इसको दुगुणा करके मेरुके विस्तारको मिला देनेपर ज्योतिषी देवोंसे रहित क्षेत्रका विस्तारप्रमाण होता है ॥ १०३ ॥ ज्योतिर्गणोंकी जो जो संख्या जम्बूद्वीपमें कही गई है, लवण समुद्रमें स्थिर ताराओंसे रहित उनकी संख्या उससे दुगुणी जानना

---

१ उ श एकट्ठा भागे जोयणस्स, क एगट्ठिभागजोयण. २ क प ब कोसो. ३ ब कोसो. ४ उ श देसूणयं विहप्फदिणे, क देसूणयं च विहप्फदिणो, प ब देसणयं वियप्फुदिणो. ५ प णादव्वा सव्वाइहरिया ब णादव्वा इहरिया. ६ प ब तारंतार जुद्धाणं. ७ उ श लक्खाणं. ८ उ-शप्रत्योः 'सट्ठाहि' इत्येतत् पदं नोपलभ्यते. ९ उ श एवं न सदसहस्सा, प ब एयं च सदसहस्सा. १० उ श छट्ठी छसदा य. ११ उ श एवं. १२ प ब सीदं. १३ उ हवदि हच्छसेलस्स, क हवदि अच्छसेलस्स, प ब हवादि अछेसलस्स, श अवदि हवच्छसेळस्स. १४ प ब सणिदा जा दु. १५ उ श बोधव्वा लवण खिकवज्जाओ, क बोधव्वा खिलवज्जाओ, प ब बोधव्वा खिळवजाउ.

खीलो पुण विण्णेया अवट्ठिदा होंति जंबुदीवम्हि । पिंडग्गेणं दु ताओ जिणदिट्ठा होंति छत्तीसा ॥ १०५
बे चंदा इह दीवे चत्तारि य सायरे लवणतोए । धादगिसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥ १०६
बादालीसं चंदा कालसमुद्दम्मि होंति बोद्धव्वा । पोक्खरवरद्धदीवे बावत्तरि ससिगणा भणिदा ॥ १०७
बे चंदा बे सूरा णक्खत्ता खलु हवंति छप्पण्णा । छावत्तरी य गहसद जंबूदीवे अणुचरंति ॥ १०८
अट्ठावीसं रिक्खाै अट्ठासीदं च गहकुलं भणिदं । एक्केक्कं चंदस्स दु परिवारो होदि णायव्वो ॥ १०९
छावट्ठिं च सहस्सा णव य सया पण्णहत्तरी होंति । एयससीपरिवारो ताराणं कोडिकोडीओ ॥ ११०
जोइसवरपासादा अणादिणिहणा सभावणिप्पण्णा । वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा ॥ १११
बहुदेवदेविपउरा जिणभवणविहूसिया परमरम्मा । वेरुलियवज्जमरगयकक्केयणपउमरायमया ॥ ११२
अद्धट्ठकम्मरहियं अणंतणाणुज्जलं अमरमहियं । वरपउमणंदिणमियं अरिट्ठणेमिं जिणं वंदे ॥ ११३

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे जोइसलोयवण्णणो णाम बारसमो उद्देसो समत्तो ॥ १२ ॥

चाहिये ॥ १०४ ॥ जम्बूद्वीपमें अवस्थित जो स्थिर तारा जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा देखे गये हैं वे समुदित रूपमें छत्तीस हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ १०५ ॥ चन्द्र और सूर्य यहां जम्बूद्वीपमें दो, लवण समुद्रमें चार तथा धातकीखण्ड द्वीपमें बारह हैं ॥ १०६ ॥ कालोद समुद्रमें ब्यालीस चन्द्र जानना चाहिये । अर्ध पुष्करवर द्वीपमें बहत्तर चन्द्रगण कहे गये हैं ॥ १०७ ॥ जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र, दो सूर्य, छप्पन (२८ × २) नक्षत्र तथा एक सौ छयत्तर (८८ × २) ग्रह संचार करते हैं ॥१०८॥ अट्ठाईस नक्षत्र तथा अठासी ग्रहकुल; यह एक एक चन्द्रका परिवार होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १०९ ॥ छयासठ हजार नौ सौ पचत्तर कोड़ाकोड़ि तारे एक चन्द्रके परिवार स्वरूप होते हैं ॥ ११० ॥ उपर्युक्त ज्योतिषी देवोंके उत्तम प्रासाद अनादि-निधन, स्वभावसे उत्पन्न, वन-वेदियोंसे युक्त, उत्तम तोरणोंसे मण्डित, दिव्य, बहुत देव-देवियोंसे प्रचुर, जिनभवनसे सुशोभित, अतिशय रमणीय; तथा वैडूर्य, वज्र, मरकत, कर्केतन एवं पद्मराग मणियोंके परिणाम रूप होते हैं ॥ १११-११२ ॥ जो आठके आधे अर्थात् चार घातिया कर्मोंसे रहित, अनन्त ज्ञानसे उज्ज्वल, देवोंसे पूजित एवं श्रेष्ठ पद्मनन्दिसे नमस्कृत हैं उन अरिष्टनेमि जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूं ॥ ११३ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें ज्योतिर्लोकवर्णन नामक बारहवां उद्देश समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

---

१ श पीला. २ प ब पिंडगोण. ३ उ अट्ठाशीसनखत्ता, श अट्ठावीसा नषता. ४ उ एक्केक्के मंदस्स, श एक्केक्के स्वंदस्सः ५ उ परिवारे हिदि, श परीवारो हिदि. ६ उ प ब श अद्धट्ठ. ७ क वण्णणा.

[तेरसमो उद्देसो]

पासजिणिंदं पणमिय पणट्ठघणघादिकम्ममलपडलं । परमेट्ठिभासिदत्थं पमाणभेदं पवक्खामि[1] ॥ १
दुविधो य होदि कालो ववहारो तह य परमत्थो । ववहार मणुयलोए परमत्थो[2] सव्वलोयम्मि ॥ २
संखेज्जमसंखेज्जं अणंतयं तह य होदि तिवियप्पो । भाणुगदीए दिट्ठो समासदो कम्मभूमिम्मि ॥ ३
कालो[3] परमणिरुद्धो अविभागी[4] तं विजाण समओ त्ति । सुहुमो अमुत्ति[5]अगुरुग[6]लहुवत्तणालक्खणो कालो[7] ॥ ४
आवलि असंखसमया संखज्जावलिसमूह उस्सासो । सत्तुस्सासो थोवो सत्तत्थोवा लवो भणिदो ॥ ५
अट्ठतीसद्धलवा[8] णाली बेणालिया मुहुत्तं तु । एयसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥ ६
तीसमुहुत्तं दिवसं तीसं दिवसाणि मासमेक्को दु । वे मासाणि उडू णं तिण्णिउडू अयणमेक्को दु ॥ ७
वस्सं बेअयणं पुण पंच य वस्साणि होंति जुगमेगं । बिण्णिजुगं दसवस्सं दसगुणिदं होदि वस्ससदं[9] ॥ ८
वस्ससदं दसगुणिदं वस्ससहस्सं तु होदि परिमाणं । वस्ससहस्सं दसगुण दसवस्ससहस्समिदि जाणे[10] ॥ ९
दसवस्ससहस्साणि य दसगुणियं वस्ससदसहस्सं तु । एत्तो अंगपमाणं वोच्छामि य वस्सगणणाए ॥ १०

दृढ घातिया कर्म रूप मलके समूहको नष्ट कर देनेवाले पार्श्व जिनेन्द्रको प्रणाम करके अरहन्त परमेष्ठीके द्वारा उपदिष्ट प्रमाणभेदका कथन करते हैं ॥ १ ॥ व्यवहार और परमार्थके भेदसे काल दो प्रकारका है । इनमें व्यवहारकाल मनुष्यलोकमें और परमार्थकाल सर्व लोकमें पाया जाता है ॥ २ ॥ संख्येय, असंख्येय और अनन्त इस प्रकारसे कालके तीन भेद हैं । यह काल कर्मभूमिमें संक्षेपसे सूर्यगतिके अनुसार देखा जाता है ॥ ३ ॥ जो काल परमनिरुद्ध (परमनिकृष्ट) अर्थात् विभागके अयोग्य अविभागी है उसे समय जानना चाहिये । यह काल सूक्ष्म, अमूर्तिक व अगुरुलघु गुणसे युक्त होता हुआ वर्तना स्वरूप है ॥ ४ ॥ असंख्यात समयोंकी एक आवली, संख्यात आवलियोंके समूह रूप उच्छ्वास, सात उच्छ्वासोंका स्तोक, और सात स्तोकोंका एक लव कहा गया है ॥ ५ ॥ साढ़े अड़तीस लवोंकी नाली, दो नालियोंका मुहूर्त, और एक समयसे हीन शेष मुहूर्तको भिन्नमुहूर्त कहते हैं ॥ ६ ॥ तीस मुहूर्तोंका दिन, तीस दिनोंका एक मास, दो मासोंकी ऋतु, और तीन ऋतुओंका एक अयन होता है ॥ ७ ॥ दो अयनोंका वर्ष, पांच वर्षोंका एक युग, दो युग प्रमाण दश वर्ष और दश वर्षोंको दशसे गुणित करनेपर सौ वर्ष होते हैं ॥ ८ ॥ सौ वर्षोंको दशसे गुणित करनेपर सहस्र वर्ष और सहस्र वर्षोंको दशसे गुणित करनेपर दश सहस्र वर्षोंका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ९ ॥ दशगुणित दशवर्षसहस्रका वर्षशतसहस्र (एक लाख वर्ष) होता है । आगे वर्षगणनासे अंगप्रमाण

१ श भासदव्वि परमच्छो पवक्खामि. २ क प ब तह य होइ परमत्थो. ३ उ श काले. ४ प ब अठाणगी. ५ उ श अमोत्ति. ६ उ क प ब श अगरुग. ७ ब वत्तणालक्खणो कालो, श वत्तणलक्खणो काले. ८ उ अट्ठत्तीसदलवा, श अट्ठत्तीसदलव. ९ उ श वस्समदं. १० श दसगुणिदसवस्ससहस्सं दस जाणे.

वाससदसहस्साणि दु चुलसीदिगुणं हवेज्ज पुव्वंगं । पुव्वंगसदसहस्सा चुलसीदिगुणं हवे पुव्वं[1] ॥ ११
पुव्वस्स दु परिमाणं[2] सदरिं खलु कोडि सदसहस्साणिं[3] । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासकोडीणं ॥ १२
पुव्वं पव्वं णउदं कुमुदं पउमं च णलिण कमलं च । तुडियं अडडं अममं हाहा हूहू य[4] परिमाणं ॥ १३
लहवि दु लदं लदा वि य महालदंगं महालदा य[5] पुणो । सीसपकंपिय हत्थप्पहेलियं[7] हवदि अचलप्पं ॥
एवं एसो कालो संखेज्जो होदि वस्सगणणाए । गणणाअवादिक्कंतो हवदि य कालो असंखेज्जो ॥ १५
अंतादिमज्झहीणं अपदेसं णेव इंदिए गेज्झं । जं दव्वं अविभागी तं परमाणू मुणेयव्वा ॥ १६
जस्स ण कोइ अणुदरो सो अणुओ होदि सव्वदव्वाणं । जावे परं अणुत्तं तं परमाणू मुणेयव्वा ॥ १७
सत्थेण सुतिक्खेण य छेत्तुं भेत्तुं च जं किर ण सक्कं[9] । तं परमाणुं सिद्धा[10] भणंति आदिं पमाणेण[11] ॥ १८
परमाणूहिं य णेया णंताणंतेहि मेलिदेहि[12] तहा । ओसण्णासण्णेत्ति य खंधो[13] सो होदि णादव्वो ॥ १९

कालका कथन करते हैं ॥ १० ॥ चौरासीसे गुणित एक लाख वर्ष प्रमाण अर्थात् चौरासी लाख वर्षोंका एक पूर्वांग और चौरासीसे गुणित एक लाख पूर्वांग प्रमाण एक पूर्व होता है ॥११॥ पूर्वका प्रमाण सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ (७०५६०००००००००) जानना चाहिये ॥ १२ ॥ [इसी विधानसे अपने अपने अंगके साथ — यथा पूर्वांग-पूर्व व पर्वांग-पर्व इत्यादि] पूर्व, पर्व, नयुत, कुमुद, पद्म, नलिन, कमल, त्रुटित, अटट, अमम, हाहा, हूहू लता [लतांग], लता, तथा महालतांग, महालता, शीर्षप्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचलात्म, इस प्रकार वर्षोंके गणनाक्रमसे यह काल संख्येय है । गणनासे रहित काल असंख्येयं होता है ॥ १३–१५ ॥ जो द्रव्य अन्त, आदि व मध्यसे रहित; अप्रदेशी, इन्द्रियोंसे अग्राह्य (ग्रहण करनेके अयोग्य) और विभागसे रहित हो उसे परमाणु जानना चाहिये ॥ १६ ॥ सब द्रव्योंमें जिसकी अपेक्षा अन्य कोई अणुतर न हो वह अणु होता है। जिसमें आत्यन्तिक अणुत्व हो उसे सब द्रव्योंमें परमाणु जानना चाहिये ॥ १७ ॥ जो अतिशय तीक्ष्ण शस्त्रसे छेदा-भेदा न जा सके उसे सिद्ध अर्थात् केवलज्ञानी परमाणु कहते हैं। यह प्रमाणव्यवहारकी अपेक्षा आदिभूत है, अर्थात् आगे कहे जानेवाले अवसन्नासन्नादिके प्रमाणका मूल आधार परमाणु ही है ॥१८॥ अनन्तानन्त परमाणुओंके मिलनेसे अवसन्नासन्न नामक स्कन्ध होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥ उन आठ अवसन्नासन्न द्रव्योंसे एक सन्ना-

---

१ उ पुव्वंगं सदसहस्सा चुलसीदि हवे गुणं पुव्वं, श पुव्वंगं सदसहस्साणि दु चूलसीदिगुणं हवेज्ज पुव्वंगं. २ उ श पुव्वसट्ठ परिमाणं. ३ क कोडिसहस्साणि ४ उ श तुडियं अडडंगममं हाह हूहू य, क तडियं तुडडं अममं हाहा हूहू य, प व तुडियं तुडडं अमम हाहा हूहू य. ५ श अहा विदलदा. ६ श य महागदंमगहालदा य. ७ उ श हत्थापहेलियं, क हत्थं पहेलियं, प व हत्थापहेहियं. ८ उ अणुत्तं परमाणू, प व अणुत्तं तं परमाणं, श अणुत्तं तु परमाणू. ९ उ क प व सक्का. १० उ क प व परमाणू सिद्धं, श ते परमाणू सिद्धं. ११ उ प व श आदिप्पमाणेण, क आदिप्पमाणो. १२ उ मेलिदाहि, श मेलिदाहि. १३ उ ओसण्णासण्णेत्ति खंधो, श हसण्णासण्णेत्ति खंधो.

अट्ठेहिं तेहिं दिट्ठा ओसण्णासण्णएहि[1] दव्वेहि[1] । सण्णासण्णो त्ति[1] तदो खंधो णामेण सो होइ ॥ २०
अट्ठेहिं तेहिं णेया सण्णासण्णेहि तह य दव्वेहि[2] । ववहारियपरमाणू णिद्दिट्ठो सव्वदरिसीहिं ॥ २१
परमाणू तसरेणू रहरेणू अग्गयं च वालस्स । लिक्खा जूवा य जवो अट्ठगुणविवड्ढिदा कमसो ॥ २२
अट्ठेहि जवेहिं पुणो णिप्फण्णं अंगुलं तु तं तिविहं । उच्छेहणामधेयं पमाणमादंगुलं[4] चेव ॥ २३
एक्केक्काणं ताणं तिविहा जाणाहि अंगुलवियप्पा । घणपदरसूचिअंगुल समालदो होदि णिद्दिट्ठा ॥ २४
उच्छेहअंगुलेहि[5] य पंचेव सदेहिं तह य[6] घेत्तूणं । णामेण समुद्दिट्ठो होदि पमाणंगुलो एक्को २५
परमाणुँआदिएहि य आगंतूणं तु जो समुप्पण्णो । सो सूचिअंगुलो त्ति[8] य णामेण य होदि णिद्दिट्ठो ॥ २६
जम्हि य जम्हि य काले भरहेरावएसु होंति जे मणुया । तेसिं तु अंगुलाइं[9] आदंगुल णामदो होइ ॥ २७
उच्छेहअंगुलेण य उच्छेहं तह य होइ जीवाणं । णारयतिरियमणुस्साणं[10] देवाणं तह य णायव्वा ॥ २८
सव्वाणं कलसाणं भिंगाराणं[11] तहेव दंडाणं । धणुफलिहे[12]सत्तितोमरहले[13]मुसलरहाण सव्वाणं ॥ २९
सगडाणं जुग्गाणं[14] सिंहासणचामरादवत्ताणं । आदंगुलेण दिट्ठा घरसयणादीण परिमाणं ॥ ३०

सन्न नामक स्कन्ध होता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ॥ २० ॥ उन आठ सन्नासन्न द्रव्योंसे एक व्यावहारिक परमाणु (त्रुटिरेणु) होता है, ऐसा सर्वदर्शियोंके द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ॥ २१ ॥ परमाणु, त्रसरेणु, रथरेणु, [क्रमशः उत्तम, मध्यम व जघन्य भोगभूमिज तथा कर्मभूमिजके] बालका अग्रभाग, लिक्षा, यूक और यव, ये क्रमसे आठगुणी वृद्धिको प्राप्त हैं ॥ २२ ॥ पुनः आठ यवोंसे एक अंगुल निष्पन्न होता है। वह अंगुल उत्सेध, प्रमाण और आत्मांगुलके भेदसे तीन प्रकार है ॥ २३ ॥ उनमेंसे एक एक अंगुलके सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल, इस प्रकार संक्षेपसे तीन तीन भेद जानना चाहिये ॥ २४ ॥ तथा पांच सौ उत्सेधांगुलोंको ग्रहण कर नामसे एक प्रमाणांगुल होता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ॥ २५ ॥ परमाणु आदिकोंके क्रमसे आकर जो अंगुल उत्पन्न हुआ है वह नामसे 'सूच्यंगुल (उत्सेधसूच्यंगुल)' निर्दिष्ट किया गया है ॥ २६ ॥ भरत और ऐरावत इन दो क्षेत्रोंमें जिस जिस कालमें जो मनुष्य होते हैं उनके अंगुल नामसे आत्मांगुल कहे जाते हैं ॥ २७ ॥ उत्सेधांगुलसे नारकी, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव, इन जीवोंके शरीरका उत्सेधप्रमाण होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २८ ॥ सब कलश, भृंगार, दण्ड, धनुष, फलक (या धनुष्फलक) शक्ति, तोमर, हल, मूसल, रथ, शकट, युग, सिंहासन, चामर, आतपत्र तथा गृह व शयनादिकोंका प्रमाण आत्मांगुलसे कहा गहा है ॥ २९-३० ॥ द्वीप, उदधि, शैल, जिनभवन,

१ उ श ओसण्णासण्णिगएहि, क ओसण्णासण्णिएहें, प ब उसण्णसण्णेहि. २ उ प श दिव्वेहिं. ३ क प ब सण्णासण्णेत्ति. ४ उ पमाणअदंगुलं, श पमाणआदंगुलं. ५ उ उच्छेहसूचिअंगुलहि, क प ब नरसूचिअंगुलेहि, श तुच्छेहसूचिअंगुलहि. ६ क तहेव ७ उ श परिमाणु ८ क प ब वि. ९ उ श अंगुलाएं. १० उ श णिरियतिरिमणुस्साणं, प ब णरतिरियमनुस्साणं. ११ प ब सव्वाणलसालं भिंगाराणं. १२ क धणुफलह, प ब भणफलिह. १३ उ श हल. १४ उ श जुगाणं, प ब जंगाणं.

दीवोदधिसेलाणं जिणभवणाणं णदीण कुंडाणं । खेत्तादीण पमाणं पमाणं तह अंगुले दिट्ठा ॥ ३१
छहिं अंगुलेहिं पादो वेपादेहि य तहा विहत्थी दु । बेहिं विहत्थीहि तहा हत्थो पुण होइ णायव्वा ॥ ३२
बेहत्थेहि य किक्खू बेकिक्खूहिं य हवे तहा दंडो । दंडधणुज्जुगणाडी अक्खं मुसलं च चदुरदणी ॥ ३३
बेदंडसहस्सेहि य गाउदमेगं तु होइ णायव्वो । चउगाउदेहि य तहा जोयणमेगं विणिद्दिट्ठं ॥ ३४
जं जोयणवित्थिण्णं तं तिगुणं परिरएण सविसेसं । तं जोयणमुव्विद्धं पल्लं पलिदोवमं णाम ॥ ३५
ववहारुद्धारद्धा पल्ला तिण्णेव होंति णायव्वा । संखा दीवसमुद्दा कम्मट्ठिदी वण्णिया तदिए ॥ ३६
एगाहिं बीहिं तीहि य उक्कस्सं जाव सत्तरत्ताणं । संणद्धं संणिचिदं भरिदं वालग्गकोडीहिं ॥ ३७
वस्ससदे वस्ससदे एक्केक्कं अवहदरस्स जो कालो । सो कालो णायव्वो णियमा एक्कस्स पल्लस्स ॥ ३८
ववहारे जं रोमं तं छिण्णमसंखकोडिसमयेहिं । उद्धारे ते रोमा दीवसमुद्दा दु एदेण ॥ ३९
उद्धारे जं रोमं तं छिण्ण संदेगवस्ससमयेहिं । अद्धारे ते रोमा कम्मट्ठिदी वण्णिया तदिए ॥ ४०

नदी, कुण्ड तथा क्षेत्रादिकोंका प्रमाण प्रमाणांगुलसे निर्दिष्ट किया गया है ॥ ३१ ॥ छह अंगुलोंसे एक पाद, दो पादोंसे एक वितस्ति तथा दो वितस्तियोंसे एक हाथ होता है; ऐसा जानना चाहिये ॥३२॥ दो हाथोंसे एक किष्कु (रिष्कु) और दो किष्कुओंसे एक दण्ड होता है। दण्ड, धनुष, युग, नाली, अक्ष और मूसल, ये सब चार रत्नि प्रमाण होते हैं। इसीलिये इन सबको धनुषके पर्याय नाम जानना चाहिये ॥३३॥ दो हजार दण्डोंसे एक गव्यूति (कोश) होती है, ऐसा जानना चाहिये। तथा चार गव्यूतियोंसे एक योजन निर्दिष्ट किया गया है ॥ ३४ ॥ जो एक योजन विस्तीर्ण, विस्तारकी अपेक्षा कुछ अधिक तिगुणी परिधिसे संयुक्त तथा एक योजन उद्वेध (अवगाह) से युक्त हो ऐसे उस गर्तविशेषका नाम पल्य व पल्योपम है ॥ ३५ ॥ व्यवहार, उद्धार और अद्धा, इस प्रकार पल्य तीन प्रकारके होते हैं। इनमें व्यवहारपल्य उद्धारपल्यादि रूप संख्याका कारण है। उद्धारपल्यसे द्वीप-समुद्रोंकी संख्या तथा तृतीय अद्धापल्यसे कर्मोंकी स्थिति वर्णित है ॥ ३६ ॥ एक दिन, दो दिन, तीन दिन अथवा उत्कर्षसे सात दिन तकके [मेढ़ेके] करोड़ों बालाग्रोंसे उपर्युक्त पल्य (गड्ढा) को अत्यन्त सघन रूपमें भरना चाहिये ॥ ३७ ॥ फिर उसमेंसे सौ सौ वर्षमें एक एक बालाग्रके अपहृत करनेमें (निकालनेमें) जो काल लगे वह काल नियमसे एक पल्य प्रमाण जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ व्यवहार पल्यमें जितने रोम होते हैं उनको असंख्यात करोड़ वर्षोंके समयोंसे खण्डित करनेपर जो राशि प्राप्त हो उतना उद्धार पल्यके रोमोंका प्रमाण होता है। इससे द्वीप-समुद्रोंका प्रमाण जाना जाता है ॥ ३९ ॥ उद्धार पल्यमें जो रोमप्रमाण है उसे एक सौ वर्षोंके समयोंसे खण्डित करनेपर जो प्राप्त हो उतने रोम अद्धार पल्यमें होते हैं। इस तृतीय पल्यसे कर्मोंकी स्थिति वर्णित है ॥ ४० ॥ इन दश कोड़ाकोड़ी पल्योंके

१ उ श पम्मण. २ क प ब किखू. ३ उ श बेकक्खूहि, क प ब बेकिखूहि. ४ उ होदि जाणाहि, प ब होदि णिद्दिट्ठा. ५ उ श सणिचंदं. ६ क अहवतस्स, प ब अवहरस्स. ७ उ श छिण्णमसंखवस्सकोडि. ८ उत्तरार्धभागोऽयमस्या गाथाया नोपलभ्यते उप्रतौ. ९ उ अद्धोर तो रोमा, प ब अद्धारे रोमा, श अद्धारे तोरे.

पुदेसि पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिदं । तं सागरोवमस्स दु उवमा एक्कस्स परिमाणं[1] ॥ ४१
दस सागरोवमाणं पुण्णाओ होंति कोडिकोडीओ । ओसप्पिणीय कालो सो चेवुस्सप्पिणीए वि[2] ॥ ४२
पल्लो सायर सूची पदरो घणंगुलो[3] य जगसेढी[4] । लोगपदरो[5] य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वा ॥ ४३
सव्वण्हुसाधणत्थं पच्चक्खपमाण तह य अणुमाणं । होदि उवमा पमाणं अविरुद्धं आगमपमाणं ॥ ४४
सुहुमंतरिदपदत्थे दूरत्थे जो[6] मुणेइ णाणेण । सो सव्वण्हू जाणइ धूमणुमाणेण जह अग्गी ॥ ४५
रागो दोसो मोहो तिण्णेदे जस्स णत्थि जीवस्स । सो णवि मोसं भासदि तस्स पमाणं हवे वयणं ॥ ४६
सो दु पमाणो दुविहो पच्चक्खो तह य होदि य परोक्खो[7] । पच्चक्खो दु पमाणो दुविधो सो होदि णायव्वो ॥ ४७

बराबर एक सागरोपमका प्रमाण होता है ॥ ४१ ॥ पूर्ण दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण एक अवसर्पिणी काल और उतना ही उत्सर्पिणी काल भी होता है ॥ ४२ ॥ पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणि, लोकप्रतर और लोक, ये आठ उपमा मानके भेद जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ सर्वज्ञसिद्धिके लिये प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमा प्रमाण और अविरुद्ध आगम प्रमाण है; अर्थात् इन चार प्रमाणोंके द्वारा सर्वज्ञ सिद्ध होता है ॥ ४४ ॥ जो सूक्ष्म (परमाणु आदि), अन्तरित (राम-रावणादि) और दूरस्थ (मेरु आदि) पदार्थोंको प्रत्यक्ष रूपसे जानता है उसे सर्वज्ञ समझना चाहिये, जैसे धूमानुमानसे अग्निका ज्ञान ॥ ४५ ॥

विशेषार्थ— इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि सर्वज्ञकी सिद्धि इन्द्रियप्रत्यक्षके द्वारा सम्भव नहीं है, तथापि उसकी सिद्धि निम्न अनुमान प्रमाणसे होती है— सूक्ष्म, अन्तरित (कालान्तरित) और दूरस्थ (देशान्तरित) पदार्थ किसी न किसी व्यक्तिके प्रत्यक्ष अवश्य हैं; क्योंकि, वे अनुमानके विषयभूत हैं; जो जो अनुमानका विषय होता है वह वह किसी न किसीके प्रत्यक्षका भी विषय होता ही है, जैसे अग्नि । अर्थात् धूमको देखकर चूंकि अग्निका अनुमान होता है अत एव वह अनुमानकी विषयभूत है, और इसीसे वह अनेक व्यक्तियोंके लिये प्रत्यक्ष भी है । इसी प्रकार चूंकि उपर्युक्त सूक्ष्मादि पदार्थ भी अग्निके ही समान अनुमानके विषयभूत हैं, अत एव वे भी किसी न किसीके प्रत्यक्ष अवश्य होने चाहिये । अब इनका जो प्रत्यक्ष ज्ञाता है वही सर्वज्ञ है । इस अनुमानसे सर्वज्ञ सिद्ध होता है ।

जिस जीवके राग द्वेष और मोह ये तीन दोष नहीं हैं वह असत्य भाषण नहीं करता, अत एव उसका वचन प्रमाण होता है ॥ ४६ ॥ वह प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकार है । इनमें जो प्रत्यक्ष प्रमाण है वह भी दो प्रकार जानना चाहिये— प्रथम सकल प्रत्यक्ष और

---

१ क उवमा एकम्स परिमाणं, प ब उवमा परिमाणं. २ उ सो चोदुस्सप्पिणिए वि, प ब सो चेउ-सप्पिणीए वि, श सो.चोदुसप्पिणिए वि. ३ उ श पदरो यणंगुलो. ४ उ श जगसेदी. ५ उ श लोगापदरो, क पदरो. ६ क पदत्थे पच्चक्खं जो, प दवत्ते पच्चक्खं जो, ब धम्मोपच्चक्खं. ७ क होदि परोक्खो.

पच्चक्खो तह सयलो पढमो विदिओ य वियलपच्चक्खो। सयलो केवलणाणं[1] ओहीमणपज्जवा वियला ॥ ४८
खइओ एयमणंतो तिकालसव्वत्थगहणसामत्थो। बाधारहिदो णिच्चो णिद्दिट्ठो सयलपच्चक्खो[2] ॥ ४९
दव्वे खेत्ते काले भावे जो परिमिदो दु अवबोधो। बहुविधभेदपभिण्णो सो होदि य वियलपच्चक्खो ॥ ५०
पुग्गलसीमेहिं[3] ठिदो पच्चक्खो सप्पभेद अवधी दु। देसावधि परमावधि सव्वावधिएहि तिवियप्पो ॥ ५१
परमणगदाण अत्थं[4] मणेण अवधारिदूण अवबोधो। रिजुविपुलमदिवियप्पो मणपज्जवणाण पच्चक्खो ॥ ५२
विदिओ दु जो पमाणो तह चेव य होदि सो परोक्खो त्ति[5]। दुविधो सो वि परोक्खो मदिसुदभेदेण णिद्दिट्ठा ॥
बुद्धिपरोक्खपमाणो बहुविहभेदेहि सो दु संभूदो। तस्स दु भेदवियप्पं किंचि समासेण वोच्छामि ॥ ५४
उग्गहईहावायाधारणभेदेहिं चदुविधो होइ। इंदियभेदेण पुणो अट्ठावीसा समुद्दिट्ठा[6] ॥ ५५
अभिमुहणियमियबोहण आभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं। बहुयादि उग्गहादि य कय छत्तीसा तिसद भेदा ॥

द्वितीय विकल प्रत्यक्ष। इनमें सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञान और विकल प्रत्यक्ष अवधि व मनःपर्यय ज्ञान हैं ॥४७–४८॥ सकल प्रत्यक्ष क्षायिक, एक, अनन्त, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंके ग्रहण करनेमें समर्थ, बाधारहित और नित्य निर्दिष्ट किया गया है ॥ ४९ ॥ जो ज्ञान द्रव्य क्षेत्र, काल और भावमें परिमित (परिमाणयुक्त) तथा बहुत प्रकारके भेद-प्रभेदोंसे युक्त है वह विकल प्रत्यक्ष है ॥ ५० ॥ अवधिज्ञान पुद्गलसीमाओंसे स्थित, अर्थात् रूपी द्रव्यको विषय करनेवाला, प्रत्यक्ष अर्थात् इन्द्रियोंकी अपेक्षा न करके आत्ममात्रसापेक्ष और प्रभेदोंसे सहित है। मूलमें वह देशावधि, परमावधि और सर्वावधि इन तीन भेदोंसे संयुक्त है ॥ ५१ ॥ जो ज्ञान दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको मनसे निर्धारित करके जानता है वह प्रत्यक्ष स्वरूप मनःपर्यय ज्ञान कहा जाता है। इसके ऋजुमति व विपुलमति, इस प्रकार दो भेद हैं ॥५२॥ द्वितीय जो प्रमाण है वह 'परोक्ष' कहा जाता है। वह परोक्ष भी मति और श्रुतके भेदसे दो प्रकार कहा गया है ॥ ५३ ॥ परोक्ष प्रमाण स्वरूप जो बोध है वह बहुत प्रकारके भेदोंसे संयुक्त है। संक्षेपसे उसके कुछ भेद-विकल्पोंका कथन करते हैं ॥ ५४ ॥ इनमें मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, इन भेदोंसे चार प्रकार है। पुनः इन्द्रियभेद (इन्द्रिय ५ व अनिन्द्रिय १) से उसके अट्ठाईस भेद कहे गये हैं ॥ ५५ ॥ अभिमुख होकर नियमित रूपसे पदार्थको जो जाने वह आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) कहलाता है। यह इन्द्रियज और अनिन्द्रियज स्वरूपसे दो प्रकारका है। फिर उसके बहुआदिक एवं अवग्रहादिकी अपेक्षा तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ॥ ५६ ॥

विशेषार्थ— यहां "अभि— अर्थाभिमुखः, नि— नियतो नियतस्वरूपः; बोधो बोधविशेषोऽभिनिबोधः; अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकम्" इस निरुक्तिके अनुसार आभिनिबोधिक-ज्ञानका स्वरूप यह बतलाया गया कि जो 'अभि' अर्थात् पदार्थके सन्मुख होकर 'नि' अर्थात्

१ उ श केवलणाणो. २ का सामत्थो. ३ उ श पुग्गलसीमेहि. ४ उ श परमणगदाण अत्थो, प ब परमाणगदं तु अत्थं. ५ क परोक्खो दु. ६ श इंदियजं बहुयादिउग्गहादिवअट्ठावीसा तीसदभेदा समुद्दिट्ठा.

विसईविसएहि जुदो[1] सण्णिवादस्स[2] जो दु अवबोधो[3] । समणंतरादिगहिदे अवग्गहो सो हवे[4] णेओ[5] ॥ ५७
अवगहिदत्थस्स पुणो[6] सगसगविसएहि जादसारस्स । जं च विसेसग्गहणं ईहाणाणं भवे तं तु ॥ ५८
ईहिदअत्थस्स[7] पुणो थाणू पुरिसो[8] त्ति बहुवियप्पस्स । जो णिच्छियावबोधो[9] सो दु अवाओ वियाणाहि ॥ ५९
तह य अवायमदिस्स[10] कुंजरसद्दे त्ति णिच्छिदत्थस्स । कालंतरअविसरणं सा होदि य धारणाबुद्धी ॥ ६०
सोदूण देवदेत्ति[11] य सामण्णेण य[12] विचाररहिदेण । जस्सुप्पज्जइ[13] बुद्धी अवग्गहं तस्स णिद्दिट्ठं ॥ ६१
हरिहरहिरण्णगब्भा ताणं मज्झेसु को दु सव्वण्हू । एवं जस्स दु बुद्धी[14] ईहाणाणं हवे तस्स ॥ ६२

प्रतिनियत स्वरूप जो 'बोध' अर्थात् ज्ञानविशेष होता है वह आभिनिबोधिक [मतिज्ञान] कहा जाता है। वह सामान्यतया अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे चार प्रकारका है। इनमेंसे प्रत्येक स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियों और छठे मनकी सहायतासे पदार्थको ग्रहण करते हैं। इस प्रकार निमित्तभेदसे उसके चौबीस (४ × ६ = २४) भेद होते हैं। इनमें भी अवग्रह दो प्रकारका है— व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह। जो प्राप्त पदार्थको ग्रहण करता है वह व्यञ्जनावग्रह तथा जो अप्राप्त पदार्थको ग्रहण करता है वह अर्थावग्रह कहलाता है। अब चूंकि व्यञ्जनावग्रह प्राप्त (अव्यक्त) पदार्थको ही विषय करता है, अत एव वह अप्राप्यकारी चक्षु और मनको छोड़कर शेष स्पर्शनादि चार इन्द्रियोंकी ही सहायतासे पदार्थको ग्रहण करता है। इस प्रकार उसके ४ भेद ही होते हैं। इनको पूर्वोक्त २४ भेदोंमें मिला देनेसे २८ भेद हुए। इनमेंसे प्रत्येक बहु व बहुविध आदि रूप बारह प्रकारके पदार्थको ग्रहण करते हैं, अत एव विषयभेदसे उसके तीन सौ छत्तीस (२८ × १२ = ३३६) भेद हो जाते हैं।

विषयी और विषयसे युक्त सन्निपातके अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है वह अवग्रह है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५७ ॥ अपनी अपनी विशेषताओंके साथ जिसके सारांशको ग्रहण कर लिया गया है ऐसे अवग्रहगृहीत पदार्थके विषयमें जो विशेष ग्रहण होता है वह ईहा मतिज्ञान है ॥ ५८ ॥ यह स्थाणु है या पुरुष, इस प्रकार बहुत विकल्प रूप ईहित पदार्थके विषयमें जो निश्चित ज्ञान होता है उसे अवाय जानना चाहिये ॥ ५९ ॥ यह 'हाथीका शब्द है' इस प्रकार अवाय मतिज्ञानके द्वारा निश्चित अर्थका कालान्तरमें विस्मरण न होना, वह धारणा ज्ञान कहा जाता है ॥ ६० ॥ 'देवता' इस प्रकार सुनकर जिसके विचार रहित सामान्यसे बुद्धि उत्पन्न होती है उसके अवग्रह निर्दिष्ट किया गया है ॥ ६१ ॥ विष्णु, शिव और हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), [ये देव कहे जाते हैं।] उनके मध्यमें सर्वज्ञ कौन है, इस प्रकार जिसके [ईहात्मक] बुद्धि होती है उसके ईहाज्ञान होता है ॥६२॥

---

१ उ विसईविसएहि जुदा, क विसएविसएहिं जदा, प ब विसएविसएहिं जुदा. २ उ श सन्निवादस्स. ३ प ब अवधा. ४ उ श अवे. ५ क प ब णेया. ६ उ अवग्गहिदरथस पुण्णो, क प ब अविगादिदत्थस्स पुणो, श अवग्गहिदत्थ पुण्णो. ७ उ ईहिअत्थस्स, प ब अहियअत्थस्स, श इहिअत्थस्स. ८ क पुरिसे. ९ उ प ब श णिच्छयअवबोधो. १० उ श अवादयमहिस्स. ११ उ श देवदात्ति. १२ उ श वि. १३ उ श जस्सुप्पज्जहि. १४ क प्रतावतोऽग्रे ' अवायणाणं हवे तस्स ॥ ६४ ॥ ' इत्येतल्लिखित्वा ६५तमा गाथा प्रारब्धा.

जो कम्मकलुसरहिओ सो देवो णत्थि एत्थ संदेहो । जस्स दु एवं बुद्धी अवायणाणं[1] हवे तस्स ॥ ६३
रागद्दोसविरहिदं सव्वण्हू ण य कदावि[2] विस्सरदि । एवं खलु जस्स मदी धारणणाणं हवे तस्स ॥ ६४
जो दु अवग्गहणाणो[3] सो दुवियप्पो जिणेहि पण्णत्तो । अत्थावग्गह पढमो तह वंजणवग्गहो विदिओ ॥ ६५
दूरेण य जं गहणं इंदियणोइंदिएहिं अत्थिक्कं[4] । अत्थावग्गहणाणं णायव्वं तं समासेण ॥ ६६
पासित्ता जं गहणं रसफरसणसद्दगंधविसएहिं । वंजणवग्गहणाणं णिद्दिट्ठं तं वियाणाहि[5] ॥ ६७
मणचक्खूविसयाणं णिद्दिट्ठा सव्वभावदरिसीहिं । अत्थावग्गहबुद्धी णायव्वा होदि एक्का दु ॥ ६८
अवसेसइंदियाणं अवग्गहादीणि[6] होंति णिद्दिट्ठा । अट्ठावग्गहणाणं तहवग्गहवंजणं चेव ॥ ६९
सव्वेदे मेलविदा अट्ठावीसा हवंति मदिभेदा । छच्चदुगुणिदेण तदो चदु पक्खित्तेण ते होंति ॥ ७०
बहुबहुविहखिप्पेसु य अणिस्सरिद[7] अणुत्त तह धुवत्थेसु[8] । उग्गहईहादीया भेदा तह होंति पुव्वुत्ता[9] ॥ ७१
एक्केक्कविहेसु तहा णीसरिदाखिप्पउत्तयधुवेसु । धारणवायादीयाँ[10] होंति पुणो तेसु णायव्वा ॥ ७२

जो कर्म-मलसे रहित होता है वह देव है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; इस प्रकार जिसके निश्चय रूप बुद्धि होती है उसके अवायज्ञान होता है ॥ ६३ ॥ राग-द्वेष रहित सर्वज्ञ होता है, इस बातको जो कभी नहीं भूलता है उसके धारणाज्ञान होता है ॥ ६४ ॥ इनमें जो अवग्रह ज्ञान है उसे जिनदेवने दो प्रकार कहा है— प्रथम अर्थावग्रह तथा द्वितीय व्यञ्जनावग्रह ॥६५॥ दूरसे ही जो चक्षुरादि इन्द्रियों तथा मनके द्वारा विषयोंका ग्रहण होता है उसे संक्षेपसे अर्थावग्रह ज्ञान जानना चाहिये ॥ ६६ ॥ छूकर जो [वर्ण], रस, स्पर्श, शब्द और गन्ध विषयका ग्रहण होता है उसे व्यञ्जनावग्रह निर्दिष्ट किया गया जानो ॥ ६७ ॥ सर्वज्ञोंके द्वारा निर्दिष्ट एक अर्थावग्रह ज्ञान ही मन और चक्षुके विषयमें होता है, ऐसा जानना चाहिये [अभिप्राय यह कि व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मनको छोड़कर शेष चार ही इन्द्रियोंसे होता है, किन्तु अर्थावग्रह चक्षु और मनके द्वारा भी होता है] ॥ ६८ ॥ शेष इन्द्रियोंके अवग्रहादिक चारों निर्दिष्ट किये गये हैं । उनमें अवग्रह दो प्रकारका है— अर्थावग्रह व व्यञ्जनावग्रह ॥६९॥ इन सबको मिलानेपर मतिज्ञानके अट्ठाईस भेद होते हैं । वे भेद छह (इन्द्रियां ५ व मन १) को चार (अवग्रहादि) से गुणा करने और उनमें चार जोड़ने (६ × ४ + ४ = २८) से होते हैं ॥ ७० ॥ वे पूर्वोक्त अवग्रह-ईहादिक भेद बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त तथा ध्रुव, इन छह पदार्थोंके विषयमें होते हैं ॥ ७१ ॥ तथा एक, एकविध, निःसृत, आक्षिप्र, उक्त और अध्रुव, इन छह पदार्थोंके विषयमें धारणा व अवाय आदि ज्ञान होते हैं, ऐसा जानना चाहिये

१ उ श अवायणणाणं. २ उ श कदाचि. ३ प ब अवग्गहणोणो. ४ श गहणं रमपरसणसद्दक्कं. ५ क बियाणेहिं. ६ उ अवग्गाहादोण्णि, क प ब अवग्गहादी य. ७ उ अणुसरिद, क अणिसरिस, प ब अणिसारिस. ८ उ श धुवचेद्द, क प ब धुवंतेद्द ९ श पुणोव्वुत्ता. १० उ धारणपायादीया, प ब धारवायादीया, श धारनपम्पादिया.

णयणेहिं बहुं पस्सदि बहुसद्दं सुणदि बहुरसं[1] खादि । बहुगंधं अग्घायदि बहुफासं विंददे जीवो ॥ ७३
अत्थं बहुयं[2] चिंतइ परोक्खबुद्धी दु होइ जीवस्स । एवं अत्थुवलद्धी[3] अवग्गहादी मुणेयव्वा ॥ ७४
बहुवे बहुविहभेदे खिप्पे तहणिस्सिदे अणुत्ते[4] य । होंति धुवे इदरेसु वि अवग्गहादी चदुवियप्पा ॥ ७५
एवं होंति[5] त्ति तदो बहुवादी बारसेहिं संगुणिदा । ईहादिअट्ठवीसा[6] तिण्णिसदा होंति छत्तीसा ॥ ७६
बिदिओ दु जो पमाणो मदिपुव्वो तह य होदि सुदणाणो । सो वि अणेगवियप्पो णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहि ॥
धूमं दट्ठूण तहा[7] अग्गीउवलद्धी जह[8] फुडो होइ । णदिपूरं दट्ठूण[9] य उवरि वरिट्ठो त्ति जह बोहो[10] ॥ ७८
जह आगमलिंगेण य लिंगी सव्वण्हु पायडो होइ । मदिपुव्वेण तह च्चिय सुदणाणो पायडो[11] होइ ॥ ७९
देवासुरिंदमहियं अणंतसुहपिंडमोक्ख[12]फलपउरं । कम्ममलपडलदलणं पुण्ण पवित्तं सिवं भद्दं ॥ ८०
पुव्वंगभेदभिण्णं[13] अणंतअत्थेहिं संजुदं दिव्वं । णिच्चं कलिकलुसहरं णिकाचिदमणुत्तरं विमलं[14] ॥ ८१

॥ ७२ ॥ जीव नयनोंसे बहुत देखता है (चाक्षुष बह्ववग्रह), बहुत शब्द सुनता है (श्रोत्रज बह्ववग्रह), बहुत रसको खाता है (रसनेन्द्रियज बह्ववग्रह), बहुत गन्धको सूंघता है (घ्राणज बह्ववग्रह), और बहुत स्पर्शको जानता है (स्पर्शनेन्द्रियज बह्ववग्रह) ॥ ७३ ॥ जीव बहुत अर्थका चिन्तन करता है (अनिन्द्रियज बह्वग्रह), यह जीवकी परोक्षबुद्धि है। इस प्रकारकी अर्थोपलब्धि रूप अवग्रहादि ज्ञान जानना चाहिये ॥ ७४ ॥ बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव तथा इनसे इतर (अल्प, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त व अध्रुव) इन अर्थभेदोंमें अवग्रहादि रूप चार प्रकारके ज्ञान होते हैं ॥ ७५ ॥ इस प्रकार ईहादिक अट्ठाईस भेदोंको बहु आदिक बारह प्रकारके पदार्थोंसे गुणित करनेपर वे तीन सौ छत्तीस (२८×१२=३३६) होते हैं ॥ ७६ ॥ मतिज्ञानके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाला जो द्वितीय श्रुतज्ञान प्रमाण है वह भी जिनेन्द्रोंके द्वारा अनेक भेद युक्त निर्दिष्ट किया गया है ॥ ७७ ॥ जिस प्रकार धूमको देखकर स्पष्टतया अग्निकी उपलब्धि होती है, जिस प्रकार नदीपूरको देखकर उपरिम वृष्टिका बोध होता है, तथा जिस प्रकार आगम रूप साधनसे साध्य रूप सर्वज्ञ प्रकट है; उसी प्रकार मतिज्ञानके निमित्तसे श्रुतज्ञान प्रकट होता है [अभिप्राय यह है कि धूमदर्शन (मतिज्ञान) से होनेवाला अग्निका अनुमान, नदीप्रवाहसे होनेवाला उपरिम वृष्टिका अनुमान, तथा आगमान्यथानुपपत्ति रूप हेतुसे होनेवाला सर्वज्ञके अस्तित्वका अवबोध, यह सब ज्ञान मतिज्ञानपूर्वक उत्पन्न होनेसे श्रुतज्ञानके अन्तर्गत है।] ॥ ७८-७९ ॥ पूर्व व अंग रूप भेदोंमें विभक्त, यह श्रुतज्ञान प्रमाण देवेन्द्रों व असुरेन्द्रोंसे पूजित, अनन्त सुखके पिण्ड रूप मोक्ष फलसे संयुक्त, कर्म रूप मलके पटलको नष्ट करनेवाला, पुण्य, पवित्र, शिव, भद्र, अनन्त अर्थोंसे संयुक्त, दिव्य, नित्य, कलि रूप कलुषको दूर करनेवाला, निकाचित, अनुत्तर, विमल, सन्देह रूप अन्ध-

१ उ श महुरसं. २ क बहुवं. ३ उ प ब अवुद्धलद्धी. ४ उ श यसुत्ते. ५ उ श होदि. ६ उ श अट्ठवीसे. ७ उ तद्धूण जहा, श तद्ठूण जहा. ८ उ श तह. ९ उ श णदिपूरं दद्धूण, प ब णादिपुरं दट्ठूणं. १० क प ब देवो. ११ उ श पयडो. १२ उ क प ब श सोक्ख. १३ प ब पुग्गलभेदभिण्णं. १४ उ श विउलं.

संदेहतिमिरदलणं बहुविहगुणजुत्त सग्गसोवाणं । मोक्खग्गदारभूदं णिम्मलवरबुद्धिसंदोहं ॥ ८२

सव्वण्हुमुहविणिग्गय[1] पुव्वावरदोसरहिद परिसुद्धं[2] । अक्खयमणादिणिहणं[3] सुदणाणपमाण णिद्दिट्ठं[4] ॥ ८३

वत्तिपमाणेण तहा वयणपमाणं तदो पुणो होदि । वत्तारो[5] वि वियाणह अट्ठारसदोसपरिहीणो ॥ ८४

जो खुहतिसभयहीणो[7] दोसो तह रोगमोहपरिचत्तो[8] । चिंताजरादिरहिदो[9] सो सव्वण्हू समुद्दिट्ठो ॥ ८५

जो मिच्चुजरारहिदो मदविब्भमसेदखेदपरिहीणो । उप्पत्तिरदिविहीणो[10] सो परमेट्ठी वियाणाहि ॥ ८६

णिंदाविसादहीणो जो सुरमणुएहिं पूजिदो णाणी । अट्ठद्धकम्मरहिदो सो देवो तिहुयणे सयले[11] ॥ ८७

जो कल्लाणसमग्गो अइसयचउतीसभेदसंपुण्णो । वरपाडिहेरसहिदो सो देवो होदि सव्वण्हू ॥ ८८

सो जगसामी णाणी[12] परमेट्ठी वीदराग जिणचंदो । जगणाहो जगबंधू हरिहरकमलासणो बुद्धो ॥ ८९

अरहंतपरमदेवो तिहुयणणाहो जगुत्तमो वीरो । पुरुसोत्तमो महंतो तिहुयणतिलओ जगुत्तुंगो[13] ॥ ९०

तवणो[14] अणंतणाणी अणंतविरिओ अणंतसुहणामो । अजरो[15] अमरो अरहो पूय पवित्तो सुहो भद्दो[16] ॥ ९१

कारको नष्ट करनेवाला, बहुत प्रकारके गुणोंसे युक्त, स्वर्गकी सीढ़ी, मोक्षके मुख्य द्वारभूत, निर्मल एवं उत्तम बुद्धिके समुदाय रूप, सर्वज्ञके मुखसे निकला हुआ, पूर्वापरविरोध रूप दोषसे रहित, विशुद्ध, अक्षय और अनादि-निधन कहा गया है ॥ ८०–८३ ॥ व्यक्ति (अथवा वक्तृ) की प्रमाणतासे वचनमें प्रमाणता होती है। जो क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित हो उसे वक्ता (हितोपदेशी) जानना चाहिये ॥ ८४ ॥ जो क्षुधा, तृषा व भयसे हीन; राग, द्वेष व मोहसे परित्यक्त; तथा चिन्ता व जरा आदिसे रहित है वह सर्वज्ञ कहा गया है ॥ ८५ ॥ जो मृत्यु व जरासे रहित, मद, विभ्रम, स्वेद व खेदसे परिहीन; तथा उत्पत्ति व रतिसे विहीन है उसे परमेष्ठी जानना चाहिये ॥ ८६ ॥ जो निन्दा व विषादसे हीन, देवों एवं मनुष्योंसे पूजित, ज्ञानी और चार घातिया कर्मोंसे रहित है वह सकल त्रिभुवनमें देव है ॥ ८७ ॥ जो सम्पूर्ण कल्याणोंसे युक्त, चौंतीस अतिशयभेदोंसे परिपूर्ण और उत्तम प्रातिहार्योंसे सहित है वह सर्वज्ञ देव है ॥ ८८ ॥ वह जगत्का स्वामी, ज्ञानी, परमेष्ठी, वीतराग, जिन-चन्द्र, जगन्नाथ, जगबन्धु, हरि (विष्णु), हर (शिव), कमलासन (ब्रह्मा), बुद्ध, अरहन्त परमदेव, त्रिभुवननाथ, जगोत्तम, वीर, पुरुषोत्तम, महान्, त्रिभुवनतिलक, जगोत्तुंग; अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य व अनन्त सुख रूप अनन्तचतुष्टयसे सहित; अजर, अमर, अर्हत्, पूत, पवित्र, शुभ, भद्र, चन्द्र, वृषभ, कमल इत्यादि एक हजार आठ नामोंका धारक होता है। जो गुण अर्थात् इन

१ उ श सुह. २ उ श दोसरहिद संपरिसुद्धं, प ब दोसपरिसुद्धं. ३ प ब अक्खयणादिणिहणं. ४ उ श पमाण णिद्दिट्ठं. ५ उ श जहा. ६ क वत्तारो, श वत्तारे. ७ उ श तिसयहीणो. ८ क प ब परिच्चित्तो. ९ क प ब चिंताजराहिं रहिदो. १० प ब विहूणो. ११ उ श तिहुयणे सयलो, प ब तिहुयणो सयलो. १२ प ब णाणो. १३ क प ब जगत्तुंगो. १४ उ श नवणे, प ब तवणे. १५ उ श अरजो. १६ उ श पूयवित्तो सुहो भद्दे.

चंदो वसहो[1] कमलो अट्ठुत्तरं[2] तह सहस्स-णामधरो। जो गुणणामसमग्गो सो देवो णत्थि संदेहो ॥ ९२
गब्भावयारकाले[3] जम्मणकाले तहेव णिक्खमणे[4]। केवलणाणुप्पण्णे[5] परिणिव्वाणम्मि समयम्मि ॥ ९३
पंचसु ठाणेसु जिणो[6] पंचमहाणामपत्तकल्लाणो[7]। महदाइड्ढिसमुदए[8] सुरिंदइंदेहि[9] परिमहिओ ॥ ९४
सेदमलरहिददेहो गोखीरसमाणवण्णवररुहिरो। वरवइरसुसंघदणो[10] समचउरसरीरसंठाणो ॥ ९५
अदिसयरूवेण जुदो णवचंपय[11]सुरहिगंधवरदेहो। अट्ठसयलक्खणधरो अणंतबलविरियसंपण्णो[12] ॥ ९६
पियहियमहुरपलावो सभावदसअदिसएहि[13] संजुत्तो[14]। सो सव्वण्हू होहिदि[15] णिद्दिट्ठो आगमपमाणे[16] ॥
गाउय तह सयचउरो सुभिक्खणिरुवद्दओ[17] हवइ देसो। जहिं जहिं विहरइ अरहो तहिं तहिं होइ णायव्वो ॥
गगणेण पुणो वच्चइ अकालमिच्चू तहेव परिहीणो। उवसग्गभुत्तिरहिदो सव्वाभिमुहो जिणो होइ ॥ ९९
तह सव्वविज्जसामी छाही देहस्स तह य परिहीणो। अच्छिणिमेसविरहियो णहलोमावड्ढिणिट्ठवणो[18] ॥ १००
घादिक्खयजादेहि य दसभेदहि[19] अदिसएहिं[20] जुदो। एवं जो संजादो सो देवो[21] तिहुयणक्खादो ॥ १०१

सार्थक नामोंसे समग्र है वह देव होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९-९२ ॥ जो जिन देव गर्भावतारकाल, जन्मकाल, निष्क्रमण, केवलज्ञानोत्पत्तिकाल और निर्वाणसमय, इन पांच स्थानों (कालों) में पांच महाकल्याणकोंको प्राप्त होकर महा ऋद्धियुक्त सुरेन्द्र-इन्द्रोंसे पूजित है तथा स्वेद व मलसे रहित देहका धारक (१-२), गायके दूधके समान वर्णवाले (धवल) उत्तम रुधिरसे संयुक्त (३), उत्तम वज्रर्षभनाराचसंहननसे सहित (४), समचतुरस्रशरीरसंस्थानसे संयुक्त (५), अतिशय (अनुपम) रूपसे युक्त (६), नव चम्पकके सदृश सुरभि गन्धसे परिपूर्ण उत्तम देहका धारक (७), एक सौ आठ लक्षणोंको धारण करनेवाला (८), अनन्त बल-वीर्यसे सम्पन्न (९); और प्रिय, हित एवं मधुर भाषण करनेवाला (१०); इस प्रकार इन दश जन्मातिशयोंसे संयुक्त है वह सर्वज्ञ है; इस प्रकार आगमप्रमाणमें निर्दिष्ट किया गया है ॥९३-९७॥ जहां जहां अरहंत भगवान् विहार करते हैं वहां वहां चार सौ कोश (एक सौ योजन) प्रमाण देश सुभिक्षसे संयुक्त होकर (१) उपद्रव (हिंसा) से रहित होता है (२) ॥९८॥ जिन भगवान् अकाल मृत्युसे रहित होते हुए आकाश-मार्गसे गमन करते हैं (३), तथा उपसर्ग व भोजनसे रहित होकर (४-५) सर्वाभिमुख (चतुर्मुख) रहते हैं (६) ॥९९॥ तथा वे सब विद्याओंके स्वामी (७), देहकी छायासे विहीन (८), अक्षिनिमेषसे विरहित (९) और नखों व रोमोंकी वृद्धिके विनाशक होते हैं (१०)। इस प्रकार जो घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए इन दश अतिशयोंसे युक्त होता है वह त्रिभुवनमें 'देव' विख्यात है

१ उ श विसभो. २ उ श अढुत्तर सह. ३ उ श कालो. ४ उ श निखमणो, क प ब णिक्खवणे. ५ प ब केवलणाणुप्पण्णो. ६ क जिणा, ब जिणे. ७ व कल्लाणे. ८ उ दूठिसमुदओ, श दूट्ठिसमुदयो. ९ प ब सुरंदइंदेहि. १० उ सुसंघधणो, श सुसंपण्णो. ११ क प ब वरचंपय. १२ उ अणंतवरविरियसंप्पण्णो, श अणंतवरविरियसंपुण्णो. १३ उ श सभासंदेसअदिसएहि, प सभावदसअदिएहिं, ब सभावअदिएहि. १४ क जो जुत्तो. १५ उ श सव्वण्हू होइदि, क सव्वण्हू हो हवदि, प ससवण होहदि, ब ससट्ठाराद्दू होहदि. १६ उ प ब श पमाणो. १७ उ श णिरवद्दिओ. १८ उ श लोमावड्ढिनिट्ठवणो, ब लोमवट्ठिणिट्ठवणो. १९ उ प दसभेदेहि, क दसेहिं भेदेहिं, ब दसभेहिं. २० उ श अदेसएहि. २१ प ब दवो.

अदिसयवयणेहि जुदो मागधअद्धेहि दिव्वघोसेहि[1] । तस्स दु रूवं दट्ठं मेत्तीभावो दु जीवाणं ॥ १०२
जत्थच्छइ जिणणाहो होदि पुणो तत्थ विउलवणसंडो । सव्वरिदूहिं समग्गो णाणाफलकुसुमसंपण्णो ॥ १०३
दप्पणतलसमपट्टा रयणमई होदि दिव्ववरभूमी[2] । जहिं जहिं विहरइ णाहो परमाणंदो दु जीवाणं ॥ १०४
वादो वि मंदमंदो सुगंधगंधुद्धुरेण गंधेण । फेडंतो वहइ पुणो तणकंडयसक्करादीणि ॥ १०५
जोयणमेत्तपमाणे गंधोदगवुट्ठि णिवडइ खिदीए । इंदस्स दु आणाए देवेहि विउव्विया संता ॥ १०६
वरपउमरायकेसरमउल[3]सुखप्फासकणयदलणिचयं[4] । पायण्णासे कमलं पुर-पच्छे[5] सत्त ते होंति ॥ १०७
फलभारणमियसालीजवादि[6]बहुसारसस्सधिदरोमं[7] । हरिसिद इव वरधरणी पस्संती जिणवरविभूदिं ॥ १०८
सरए णिम्मलसलिलं सर इव गयणं तु भादि रयरहिदं[8] । छदुइदिसतिमिरादी[9] पहुदि तहा जिम्हभावं च ॥
कंचणमणिपरिणामो आरसहस्सेहि संजुदो दिव्वो । वरधम्मचक्क पुरदो गच्छइ देवेहिं परियरिओ ॥ ११०

॥ १००-१०१ ॥ जिन भगवान् दिव्य घोषवाले अर्धमागधी रूप अतिशयवचनों (दिव्यध्वनि) से युक्त होते हैं (१), उनके रूपको देखकर जीवोंमें मैत्री भाव उत्पन्न हो जाता है (२) ॥ १०२ ॥ जिनेन्द्र देव जहां स्थित होते हैं वहांका विशाल वनखण्ड छह ऋतुओंसे परिपूर्ण होकर नाना फल-फूलोंसे सम्पन्न होता है (३) ॥ १०३ ॥ वहांकी दिव्य उत्तम रत्नमय भूमि दर्पणतलके समान पृष्ठवाली हो जाती है (४) । जहां जहां जिनेन्द्र भगवान् विहार करते हैं वहां जीवोंको परमानन्द प्राप्त होता है (५) ॥ १०४ ॥ वहां सुगन्ध गन्धसे उत्कट ऐसे गन्धसे संयुक्त मंद-मंद वायु भी तृण-कण्टकों व कंकडोंको नष्ट करती हुई बहने लगती है (६) ॥ १०५ ॥ एक योजन प्रमाण पृथिवीपर इन्द्रकी आज्ञासे देवों द्वारा विक्रियासे निर्मित गन्धोदककी वृष्टि गिरती है (७) ॥ १०६ ॥ भगवान्के विहार समय पादन्यास करनेमें उत्तम पद्मराग मणिमय केसरसे युक्त, मृदुल व सुखकर स्पर्शवाले तथा सुवर्णमय पत्रसमूहसे संयुक्त ऐसे कमलकी रचना होती है । वे कमल आगे पीछे सात होते हैं (८) ॥ १०७ ॥ फलभारसे झुकी हुई शाली धान्य व जौ आदि रूप श्रेष्ठ बहुत शस्यरूपी रोमांचको धारण करनेवाली उत्तम पृथिवी मानों हर्षित होकर जिनेन्द्रकी विभूतिको ही देख रही है (९) ॥ १०८ ॥ तालावमें निर्मल जल और आकाश तालावके समान रजसे रहित होकर शोभायमान होता है (१०-११), छह और दो अर्थात् आठों दिशायें अन्धकार आदिसे रहित हो जाती हैं तथा जीवोंमें कुटिल भाव नहीं रहता १२ (?) ॥ १०९ ॥ सुवर्ण एवं मणियोंके परिणाम रूप एवं हजार आरोंसे संयुक्त दिव्य उत्तम धर्मचक्र देवोंसे वेष्टित होकर आगे चलता है (१३)

---

१ प ब अदिसयणेहिं जुदो मागधदिव्वेहि घोसेहिं. २ क प ब दिव्व होइ वरभूमी. ३ क प ब पउल. ४ प सुक्खसकणय, ब सुक्खकसकणय. ५ क पुरिपिट्ठे, प ब दुरपिट्ठे. ६ उ श नविया. ७ प ब जावदि. ८ उ श विदिरोमं, क प ब विदिरोमं. ९ प ब रइरहिदं. १० उ श च्छदुइदिसतिमिरादी, क छदुइदिसतिमिरादि, प ब छडइदिसितिमिरीदी.

जो मंगलेहिं सहिदो अदिसयगुणचउदसेहिं संजुत्तो । देवकदेहि य दिव्वो[1] सो एक्को जगवई होइ ॥ १११
छत्तधयकलसचामरदप्पणसुवदीकथालभिंगारा[2] । अट्ठवरमंगलाणि य पुरदो गच्छंति देवस्स ॥ ११२
वेरुलियरयणदंडा मुत्तादामेहिं मंडिया पवरा । देवेहिं परिग्गहिदा[3] सिदादवत्ता विरायंति ॥ ११३
मरगयदंडुत्तुंगा मणिकंचणमंडिया मणभिरामा । पवणवसेण[5] णच्चंता विजयपडाया मुणेयव्वा ॥ ११४
वेरुलियवज्जमरगयकक्केयणपउमरायपरिणामा । पप्फुल्लकमलवयणा कलसा सोहंति रयणमया ॥ ११५
कणयमयचारुदंडा संखिंदुतुसारहारसंकासा । सुरदेविकरयलच्छा[6] सोहंति य चामरा बहवा ॥ ११६
आइच्चमंडलणिभा णाणामणिरयणदंडकयसोहा । देवकुमारकरत्था दप्पणपंती[7] विरायंति ॥ ११७
णाणाविहवत्थेहिं[8] य कयसोहा तह य मंडवग्गेसु[9] । देवेहि परिग्गहिदो सुवदीका ते विरायंति ॥ ११८
पुप्फक्खएहिं[10] भरिदा कुंकुमकप्पूरचंदणादीहिं । रयणमया वरथाला सोहंति विलासिणिकरत्था ॥ ११९
वज्जिंदणीलमरगयपवालवरकणयरयदपरिणामा । अच्छरसाण सिरत्था भिंगारा ते विरायंति ॥१२०
अमरेहि परिग्गहिदा पुरदो अट्ठेव मंगला जस्स । गच्छंति जाण होदि हु[11] सो जगसामी ण संदेहो ॥ १२१

॥ ११० ॥ जो मंगलोंसे सहित होकर इन देवकृत चौदह (१४) अतिशय रूप गुणोंसे संयुक्त है वह एक ही देव जगत्‌का स्वामी होता है ॥१११॥ छत्र, ध्वजा, कलश, चामर, दर्पण, सुप्रतीक (सुप्रतिष्ठ), थाल [बीजना] और भृंगार, ये आठ उत्तम मंगलद्रव्य जिनेन्द्र देवके आगे चलते हैं ॥ ११२ ॥ वैडूर्यरत्नमय दण्डसे युक्त, मुक्तामालाओंसे मण्डित और देवोंसे परिगृहीत श्रेष्ठ धवल छत्र विराजमान होते हैं ॥ ११३ ॥ मरकतमय उन्नत दण्डसे संयुक्त, मणि एवं सुवर्णसे मण्डित, मनको अभिराम और पवनसे प्रेरित होकर नृत्य करनेवाली ऐसी विजयपताका जानना चाहिये ॥ ११४ ॥ वैडूर्य, वज्र, मरकत, कर्केतन और पद्मराग इनके परिणाम रूप और विकसित कमलसे संयुक्त मुखवाले ऐसे रत्नमय कलश सुशोभित होते हैं ॥ ११५ ॥ सुवर्णमय सुन्दर दण्डसे संयुक्त; शंख, चन्द्र, तुषार व हारके सदृश धवल और देवांगनाओंके हाथोंसे लक्षित ऐसे बहुतसे चामर शोभायमान होते हैं ॥ ११६ ॥ सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान तथा नाना मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित दण्डसे सुशोभित ऐसी कुमार देवोंके हाथोंमें स्थित दर्पणपंक्तियां विराजमान होती हैं ॥११७॥ मण्डपके अग्र भागोंमें नाना प्रकारके वस्त्रोंसे शोभायमान व देवोंसे परिगृहीत सुप्रतीक (सुप्रतिष्ठ) विराजमान होते हैं ॥११८॥ पुष्पों व अक्षतोंसे तथा कुंकुम, कपूर व चन्दन आदिसे परिपूर्ण ऐसे विलासिनियोंके हाथोंमें स्थित उत्तम रत्नमय थाल शोभायमान होते हैं ॥ ११९ ॥ अप्सराओंके सिरपर स्थित ऐसे वे वज्र, इन्द्रनील, मरकत, प्रवाल, उत्तम सुवर्ण और चांदीके परिणाम रूप भृंगार विराजमान होते हैं ॥ १२० ॥ जिसके आगे देवोंसे परिगृहीत आठों मंगलद्रव्य चलते हैं वह निःसन्देह जगका स्वामी है, ऐसा जानो ॥१२१॥ वैडूर्य-

---

१ उ प ब श देवेहि कदो दिव्वो. २ प ब धयलस. ३ उ श सुवदीकचोल, क सुदीवथाल, प च सुवदीकचोलि. ४ क परिग्गहा, प ब परिग्गहिया. ५ क पवणवसा. ६ उ श सुरसंदरियंसच्छा, क प सुरदेविकरयलत्था, च सुरदेविकरयलछा. ७ श तह य मंडलग्गे दप्पणपंती. ८ उ श णाणामणिवत्थेहि. ९ उ क प ब श मंगलग्गेसु. १० क पुष्फदखदहि, प ब पप्फक्खएहि, ११ प ब दाण देहि ढ, श जाण होंति हु.

वेरुलियरयणखंधो पवालमिदुपल्लवद्धवरसाहो । मरगयपत्तच्छण्णो असोयवरपायवो दिव्वो ॥ १२२
मंदारकुंदकुवलयणीलुप्पलवउलकमलणिवहेहिं । गुंजंतमत्तमहुयर णिवडइ कुसुमाण वरवुट्ठी ॥ १२३
सत्तसयकुभासेहि य अट्ठारसदेसभाससंजुत्ता । दिव्वमणोहरवाणी णिद्दिट्ठा लोयणाहस्स ॥ १२४
कडयकडिसुत्तकुंडलमउडादिविहूसिदा परमरूवा । जक्खिंदा जिणणाहं चामरणिवहेहि विज्जंति ॥ १२५
फलिहसिलापरिघडियं कंचणमणिरयणजालविच्छुरियं । सिंहासणं महग्घं सपायपीढं मणभिरामं ॥ १२६
सयलघणतिमिरदलणं दिणयरसयकोडिकिरणसंकासं । भामंडलं विरायइ तिहुयणणाहस्स णायव्वा ॥ १२७
पवलपवणाभिघादयपक्खुभियसमुद्दघोसघणसद्दं । दुंदुभिरवं मणहरं बहुविहसद्देहि[1] संजुत्तं ॥ १२८
वेरुलियविमलदंडं मुत्तामणिहेमदामलंबंतं । छत्तत्तयं विरायइ तिहुयणणाहस्स रमणीयं ॥ १२९
एदेहि बाहिरेहि य अब्भंतरगुणगणेहि संजुत्तो । सो होदि देवदेवो जो मुक्को कम्मकलुसादो[2] ॥ १३०
मोहणिकम्मस्स खए खाइयसम्मत्तं[3] होइ जीवस्स । तह य जहाखादं पुण चारित्तं णिम्मलं तस्स ॥ १३१
णाणावरणस्स खए होइ अणंतं तु केवलं णाणं । बिदियावरणस्स खए केवलवरदंसणं होइ ॥ १३२

रत्नमय स्कन्धसे सहित, प्रवाल रूप मृदु पल्लवोंसे व्याप्त ऐसी उत्तम शाखाओंसे सहित और मरकतमय पत्तोंसे आच्छन्न, ऐसा दिव्य उत्तम अशोकवृक्ष सुशोभित होता है ॥ १२२ ॥ मन्दार, कुन्द, कुवलय, नीलोत्पल, बकुल और कमलोंके समूहोंसे गूंजते हुए मत्त भ्रमरोंसे युक्त कुसुमोंकी उत्तम वृष्टि गिरती है ॥ १२३ ॥ तीन लोकके प्रभु जिनेन्द्र देवकी दिव्य एवं मनोहर वाणी (दिव्यध्वनि) सात सौ कुभाषाओं तथा अठारह देशभाषाओंसे संयुक्त निर्दिष्ट की गई है ॥ १२४ ॥ कटक, कटिसूत्र, कुण्डल एवं मुकुट आदिसे विभूषित और अतिशय सुन्दर रूपसे संयुक्त ऐसे यक्षेन्द्र चामरसमूहोंसे जिनेन्द्रदेवको हवा करते हैं ॥ १२५ ॥ सुवर्ण, मणि एवं रत्नोंके समूहसे खचित और पादपीठसे सहित ऐसा मणिमय शिलाके ऊपर रचा गया महार्घ सिंहासन मनोहर प्रतीत होता है ॥ १२६ ॥ समस्त घने अन्धकारको नष्ट करनेवाला एवं सौ करोड़ सूर्योंकी किरणोंके सदृश तेजसे संयुक्त ऐसा त्रिलोकीनाथका भामण्डल सुशोभित होता है ॥ १२७ ॥ प्रबल पवनसे ताड़ित होकर क्षोभको प्राप्त हुये समुद्रके निर्घोष अथवा मेघके समान शब्द करनेवाला एवं बहुत प्रकारके शब्दोंसे संयुक्त ऐसा दुंदुभीका शब्द मनोहर होता है ॥ १२८ ॥ वैडूर्यमणिमय निर्मल दण्डसे युक्त और लटकती हुई मुक्ता, मणि एवं सुवर्णकी मालाओंसे सुशोभित ऐसे त्रिभुवननाथके रमणीय तीन छत्र विराजमान होते हैं ॥ १२९ ॥ जो इन बाह्य गुणों [प्रातिहार्यों] एवं अभ्यन्तर गुणगणोंसे संयुक्त तथा कर्म-मलसे रहित होता है वह देवोंका देव है ॥ १३० ॥ मोहनीय (दर्शनमोहनीय) कर्मका क्षय होनेपर जीवके क्षायिक सम्यक्त्व तथा [चारित्रमोहनीयके क्षयसे] उसके निर्मल यथाख्यात चरित्र होता है ॥ १३१ ॥ ज्ञानावरणका क्षय होनेपर अनन्त केवलज्ञान और द्वितीय आवरण अर्थात् दर्शनावरणका क्षय

१ श मणविहसद्देहि. २ प ब कम्मकलिसादो. ३ उ श सम्मत्त.

दाणंतराय खइए अभयपदाणं तु होइ जीवस्स । लाभंतराय खइए दुल्लभलाभं[1] हवे तस्स ॥ १३३

भोगंतराय खीणे असेसभोगं तु होदि णायव्वा । उवभोगकम्म खइए उवभोगं होइ जीवस्स ॥ १३४

विरियंतराय खीणे अणंतविरियं हवे समुद्दिट्ठं । णवकेवललद्धिजुदो[2] सो सव्वण्हू ण संदेहो ॥ १३५

अमरिंदणमियचलणो अट्ठारससहस्स[3]सीलधरो । चुलसीदिसयसहस्स[4]णिम्मलगुणरयणसंपण्णो ॥ १३६

तस्स वयणं पमाणं पदत्थगब्भं तु तेण उद्दिट्ठं । मोक्खाभिलासिणा खलु घेत्तव्वं तं पयत्तेण[5] ॥ १३७

होनेपर उत्तम केवलदर्शन होता है ॥ १३२ ॥ दानान्तरायके क्षीण होनेपर जीवके क्षायिक अभयदान और लाभान्तरायके क्षीण होनेपर उसके दुर्लभ क्षायिक लाभ होता है ॥ १३३ ॥ भोगान्तरायके क्षीण होनेपर जीवके समस्त क्षायिक भोग और उपभोगान्तराय कर्मके क्षीण होनेपर क्षायिक उपभोग होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३४ ॥ वीर्यान्तरायके क्षीण होनेपर अनन्त वीर्य प्रगट होता है, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है । जो उपर्युक्त इन नौ केवललब्धियोंसे संयुक्त होता है वह सर्वज्ञ है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १३५ ॥ जिसके चरणोंमें देवोंके इन्द्र नमस्कार करते हैं तथा जो अठारह हजार शीलोंका धारक एवं चौरासी लाख निर्मल गुण रूपी रत्नोंसे सम्पन्न है, उसका तत्त्वार्थविषयक वचन प्रमाण है । मोक्षाभिलाषी जीवको उस (सर्वज्ञ) के द्वारा निर्दिष्ट पदार्थस्वरूपको प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये ॥ १३६-१३७ ॥

विशेषार्थ—(१) प्रस्तुत गाथामें जो आप्तके अठारह हजार शीलों व चौरासी लाख गुणोंका निर्देश किया है उनमें अठारह हजार शीलोंकी उत्पत्तिका क्रम इस प्रकार है— ३ योग (मन, वचन व कायकी शुभ प्रवृत्ति), ३ करण (मन, वचन व कायकी अशुभ प्रवृत्ति), ४ संज्ञायें (आहार, भय, मैथुन व परिग्रह), ५ इन्द्रियां, १० काय (स्थावर ६ व त्रस ४) और १० धर्म (उत्तमक्षमादि); इन सबको परस्पर गुणित करनेसे उपर्युक्त संख्या प्राप्त होती है । यथा—३ × ३ × ४ × ५ × १० × १० = १८००० । इनके उच्चारणका क्रम निम्न प्रकार है— (१) मनोगुप्त, मनःकरणविमुक्त, आहारसंज्ञाविरत स्पर्शनेन्द्रियवशंगत, पृथिवीसंयमसंयुक्त और उत्तमक्षमाधारक; यह प्रथम शीलभेद हुआ । (२) वाग्गुप्त, मनःकरणविमुक्त, आहारसंज्ञाविरत, स्पर्शनेन्द्रियवशंगत, पृथिवीसंयमसंयुक्त और उत्तमक्षमाधारक । इसी प्रकारसे आगेके तृतीयादि भेदोंको भी समझना चाहिये ।

(२) चौरासी लाख गुणोंकी उत्पत्तिका क्रम इस प्रकार है — हिंसादिक ५, कषाय ४, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, पापक्रिया स्वरूप मंगुल ३ (मनोमंगुल, वाङ्मंगुल व कायमंगुल),

१ क प ब दुल्लहलाभं. २ उ श केवलिलद्धिजुदो. ३ उ क श अट्ठारस तह सहस्स. ४ उ प ब श सदसहस्सा. ५ उ घेत्तव्वं तप्पयत्तेण, ब घेतव्वं पयत्तेण, श घेतव्वं वप्पयत्तेण.

जं तेण कहिय धम्मं[1] अणंतसोक्खस्स कारणं सो हुं[2] । तं धम्मं घेत्तव्वं सिवमिच्छंतेणं[3] पुरिसेण ॥ १३८
अवि चलइ मेरुसिहरं चालिज्जंतं पि[4] सुरवरभडेहिं । णो जिणवरेहिं दिट्ठं संचलइ पयासियं सत्थं ॥ १३९
परमेट्ठिभासिदत्थं उड्ढाधोतिरियलोयसंबद्धं[5] । जंबूदीवणिबद्धं पुव्वावरदोसपरिहीणं ॥ १४०
गणधरदेवेण पुणो अत्थं लद्धूण गंथिदं गंथं । अक्खरपदसंखेज्जं अणंतअत्थेहि[6] संजुत्तं ॥ १४१

मिथ्यादर्शन, प्रमाद, पिशुनता, अज्ञान और अनिग्रह (स्वेच्छाचरण), इस प्रकार ये २१ सावद्यभेद होते हैं । इनको अतिक्रम (विषयाकांक्षा), व्यतिक्रम (विषयोपकरणोंका अर्जन), अतिचार (व्रतशिथिलता) और अनाचार (व्रतभंग), इन ४ से गुणित करनेपर वे चौरासी (२१×४=८४) होते हैं । पृथिवीकायिकादि रूप दश कायभेदोंको एक दूसरेसे गुणित करनेपर वे सौ (१० × १० = १००) हो जाते हैं । इन सौ भेदोंसे उपर्युक्त चौरासी भेदोंको गुणित करनेसे वे चौरासी सौ (८४ × १०० = ८४००) होते हैं । अब इनको क्रमसे १० शील-विराधनाओं, १० आलोचनाभेदों और १० शुद्धियोंसे गुणित करनेपर वे सब भेद चौरासी लाख हो जाते हैं । यथा— ८४००×१०×१०×१०=८४००००० । इनके उच्चारणका क्रम इस प्रकार है— (१) हिंसाविरत, अतिक्रमदोषरहित, पृथिवीकायिक जनित पृथिवीकायिकविराधनामें सुसंयत, स्त्रीसंसर्गवियुक्त, आकम्पितआलोचनादोषसे रहित और आलोचनशुद्धिसे संयुक्त; यह प्रथम गुणभेद हुआ । आगे हिंसाविरतके स्थानमें क्रमशः असत्यविरतादिको ग्रहण कर शेषका ज्योंका त्यों उच्चारण करना चाहिये । इस प्रकारसे २१ स्थानोंके बीतनेपर 'अतिक्रमदोषरहित' के स्थानमें 'व्यतिक्रमदोषरहित' आदिको ग्रहण कर पुनः शेषका पूर्वोक्त क्रमसे ही उच्चारण करना चाहिये (विशेष जाननेके लिये मूलाचारका शीलगुणाधिकार देखिये) ।

उस सर्वज्ञ देवने जिस धर्मका उपदेश दिया है वह अनन्त सुख (मोक्षसुख) का कारण है । अत एव मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषके द्वारा वह धर्म ग्रहण करने योग्य है ॥ १३८ ॥ उत्तम देव सुभटोंके द्वारा चलाये जानेपर कदाचित् मेरुशिखर विचलित भी हो सकता है, परन्तु जिनेन्द्रोंके द्वारा उपदिष्ट व प्रकाशित शास्त्र चलायमान नहीं हो सकता । अर्थात् वह पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपका निरूपक होनेसे प्रतिवादियोंके द्वारा अखण्डनीय है ॥ १३९ ॥ ऊर्ध्व, अधः व तिर्यक् लोकसे सम्बद्ध जो जम्बूद्वीपनिबद्ध शास्त्र है उसका विषय चूंकि परमेष्ठी द्वारा भाषित है, अत एव वह पूर्वापर [विरोध रूप] दोषसे रहित है ॥ १४० ॥ अरहन्तके द्वारा उपदिष्ट उपर्युक्त अर्थको ग्रहण कर फिर गणधर देवके द्वारा वह ग्रन्थके रूपमें रचा गया । वह अक्षरों व पदोंकी अपेक्षा संख्येय होकर भी अनन्त अर्थोंसे संयुक्त है ॥ १४१ ॥ आचार्यपरम्परासे प्राप्त

---

१ प ब धम्मा. २ क सोढुं, प ब से हु. ३ उ श सिवमच्छंतेण, प ब सिवमिच्छंतेण. ४ क सु. ५ ब क, प ब श संबंधं. ६ उ श अणंतअत्थेहि.

आयरियपरंपरेण य गंथत्थं[2] चेव आगयं सम्मं[3] । उवसंधरित्तु[4] लिहियं समासदो होइ णायव्वं ॥ १४२
णाणाणरवइमहिदो विगयभओ[5] संगभंगउम्मुक्को । सम्मद्दंसणसुद्धो संजमतवसीलसंपण्णो ॥ १४३
जिणवरवयणविणिग्गयपरमागमदेसओ[6] महासत्तो । सिरिणिलओ[7] गुणसहिओ सिरिविजय[8]गुरु त्ति विक्खाओ ॥
सोऊण तस्स पासे जिणवयणविणिग्गयं अमदभूदं । रइदं किंचुद्देसे[9] अत्थपदं तह य[10] लद्धूणं ॥ १४५
चउरो इसुगारणगा[11] मंदरसेला हवंति पंचेव । सामलिदुमा य पंच य जंबूरुक्खादिया पंच ॥ १४६
विंसदि जमगणगा पुण णाभिगिरी[12] तेत्तिया समुद्दिट्ठा । विंसदि देवारण्णा तीसेव य भोगभूमी दु[13] ॥ १४७
कुलपव्वदा वि तीसा चालीसा दिसगया णगा णेया । सट्ठी विभंगसरियाओ[14] महाणदी होंति[15] सदलीया ॥ १४८
पउमदहादि य तीसा[16] वक्खारणगा हवंति सयमेगं । सत्तरि सय वेदड्ढा रिसभगिरी तेत्तिया चेव ॥ १४९
सदलि सय राजधाणी छक्खंडा तेत्तिया समुद्दिट्ठा । चत्तारिसया कुंडा पण्णासा होंति णायव्वा ॥ १५०

उक्त समीचीन ग्रन्थार्थको ही उपसंहार कर यहां संक्षेपसे लिखा गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १४२ ॥ नाना नरपतियोंसे पूजित, भयसे रहित, संगभेदसे विमुक्त, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध; संयम, तप व शीलसे सम्पन्न, जिनेन्द्रके मुखसे निर्गत परमागमके उपदेशक, महासत्त्वशाली, लक्ष्मीके आलयभूत और गुणोंसे सहित ऐसे श्री विजय गुरु विख्यात हैं ॥ १४३–१४४ ॥ उनके पासमें जिन भगवान्‌के मुखसे निकले हुए अमृतस्वरूप परमागमको सुनकर तथा अर्थ-पदको पाकर कुछ (१३) उद्देशोंमें यह ग्रन्थ रचा है ॥ १४५ ॥ मानुषक्षेत्रके भीतर चार इष्वाकार पर्वत (दो धातकीखण्डमें व दो पुष्करार्द्धमें), पांच मन्दर पर्वत, पांच शाल्मलि वृक्ष और पांच ही जम्बूवृक्षादि भी हैं । वहां बीस (जं. द्वी. ४ + धा. ८ + पु. ८) यमक पर्वत, उतने ही नाभिगिरि, बीस देवारण्य और तीस (६ + १२ + १२) भोगभूमियां निर्दिष्ट की गयी हैं । कुलपर्वत भी तीस, दिग्गज पर्वत चालीस (८ + १६ + १६), विभंगा नदियां साठ (१२ + २४ + २४), और गंगादिक महानदियां सत्तर (१४ + २८ + २८) जानना चाहिये । पद्मद्रहादि तीस (६ + १२ + १२), वक्षार पर्वत एक सौ (२० + ४० + ४०), वैताढ्य पर्वत एक सौ सत्तर (३४ + ६८ + ६८), और ऋषभगिरि भी उतने मात्र (३४ + ६८ + ६८) ही हैं । एक सौ सत्तर (३४ + ६८ + ६८) राजधानियां, उतने (१७०) ही छह खण्ड, तथा चार सौ पचास { (१४ + ६४ + १२) + (२८ + १२८ + २४) +

१ उ श अयारिय, क आयरिय. २ क गंथं तं. ३ क रम्मं ४ उ श उवसंहरिथ. ५ उ श विगयभमु. ६ उ श विणिग्गयमागमदेसओ. ७ उ सिरितिलओ. श सिरियालओ ८ उ श रिसिविजय, प ब सिरविजय. ९ क किंचुद्देसं, प ब विंचिद्देसं, श किंचिद्देसे. १० उ प ब श तह व. ११ उ इसुगाओ तु नगा, श इसुगा तु नगा. १२ प ब णाभिगिरीया. १३ उ प ब श भोगभूमीसु. १४ उ श सट्ठि विभंगा सरिया. १५ उ श होदि. १६ उ श पउमदहादिअसीदा, क प ब पउमदहादियसिदा.

बावीससदा णेया पण्णासा तोरणा समुद्दिट्ठा । कुंडाणं णायव्वा महाणदीणं विभंगाणं ॥ १५१

अड्ढाइज्जा दीवा वे उवही माणुसम्मि खेत्तम्मि । अण्णे वि बहुवियप्पा णायव्वा तत्थ जे होंति ॥ १५२

अहतिरियउड्ढलोएसु तेसु जे होंति बहुवियप्पा दु । सिरिविजयस्स महप्पं[1] ते सव्वे वण्णिदा[2] किंचि ॥ १५३

गयरायदोसमोहो सुदसायरपारओ मइपगब्भो । तवसंजमसंपण्णो विक्खाओ माघणंदिगुरू ॥ १५४

तस्सेव य वरसिस्सो सिद्धंतमहोवहम्मि धुयकलुसो[4] । णव [नव] णियमसीलकलिदो गुणजुत्तो सयलचंदगुरू ॥

तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरणसंजुत्तो । सम्मदंसणसुद्धो सिरिणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १५६

तस्स णिमित्तं लिहियं जंबूदीवस्स तह य पण्णत्ती । जो पढइ सुणइ एदं सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥ १५७

पंचमहव्वयसुद्धो दंसणसुद्धो य णाणसंजुत्तो । संजमतवगुणसहिदो रागादिविवज्जिदो[5] धीरो ॥ १५८

पंचाचारसमग्गो छज्जीवदयावरो विगदमोहो । हरिसविसायविहूणो णामेण य वीरणंदि त्ति ॥ १५९

तस्सेव य वरसिस्सो सुत्तत्थवियक्खणो[6] मइपगब्भो । परपरिवादणियत्तो णिस्संगो सव्वसंगेसु ॥ १६०

सम्मत्तअभिगदमणो णाणे[7] तह दंसणे चरित्ते य । परितत्तिणियत्तमणो[8] बलणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १६१

(२८ + १२८ + २४) } कुण्ड जानना चाहिये । महानदियों, विभंगानदियों और कुण्डों सम्बन्धी तोरण बाईस सौ पचास निर्दिष्ट किये गये जानना चाहिये । उक्त मानुष क्षेत्रमें अढ़ाई द्वीप, दो समुद्र तथा अन्य भी जो वहां बहुतसे विकल्प ज्ञातव्य हैं; इनके अतिरिक्त अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोकमें जो बहुत विकल्प हैं; श्री विजय गुरुके माहात्म्यसे यहां मैंने उन सबका किंचित् वर्णन किया है ॥ १४६-१५३ ॥ राग, द्वेष व मोहसे रहित; श्रुत-सागरके पारगामी, अतिशय बुद्धिमान् तथा तप व संयमसे सम्पन्न ऐसे माघनन्दि गुरु विख्यात हैं ॥ १५४ ॥ जिन्होंने सिद्धान्तरूपी समुद्रमें अवगाहन करके कर्म-मलको धो डाला है तथा जो नवीन [तप], नियम व शीलसे सहित एवं गुणोंसे युक्त थे ऐसे सकलचन्द्र गुरु उनके ही उत्तम शिष्य हुए हैं ॥ १५५ ॥ इनके ही उत्तम शिष्य निर्मल व उत्तम ज्ञान-चारित्रसे संयुक्त और सम्यग्दर्शनसे शुद्ध ऐसे श्री नन्दिगुरु विख्यात हुए ॥ १५६ ॥ उनके निमित्त यह जम्बूद्वीपकी प्रज्ञप्ति लिखी गयी है । इसको जो पढ़ता व सुनता है वह उत्तम स्थान (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ १५७ ॥ पांच महाव्रतोंसे शुद्ध, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध, ज्ञानसे संयुक्त, संजम व तप गुणसे सहित, रागादि दोषोंसे रहित, धीर, पंचाचारोंसे परिपूर्ण, छह कायके जीवोंकी दयामें तत्पर, मोहसे रहित और हर्ष-विषादसे विहीन ऐसे वीरनन्दि नामक आचार्य हुए हैं ॥ १५८-१५९ ॥ उनके ही उत्तम शिष्य बलनन्दि गुरु विख्यात हुए । ये सूत्रार्थके मर्मज्ञ, अतिशय बुद्धिमान्, परनिन्दासे रहित, समस्त परिग्रहोंमें निर्ममत्व, सम्यक्त्वसे अभिगत मनवाले और ज्ञान, दर्शन व चरित्रके विचारमें मन लगानेवाले थे ॥ १६०-१६१ ॥ उनके शिष्य गुणगणोंसे कलित; त्रिदण्ड अर्थात् मन, वचन

---

१ क सिरिय. २ उ श महप्पे. ३ उ श विण्णिदा, प ब वणिदा. ४ उ श धुयकलुसो, क-प-बप्रतिषु तु गाथेयंपाऽनुपलभ्यास्ति. ५ श रोगादिविवज्जिदो. ६ श सुतत्थोवियक्खणो. ७ उ श णाणेण, प ब णामे. ८ श परितविनियमणो.

तस्स य गुणगणकलिदो तिदंडरहिदो तिसल्लपरिसुद्धो । तिण्णि वि गारवरहिदो सिस्सो सिद्धंतगयपारी ॥
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो[1] णाणदंसणचरित्ते[2] । आरंभकरणरहिदो णामेण य पउमणंदि त्ति ॥ १६३
सिरिविजयगुरुसयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं[3] । मुणिपउमणंदिणा खलु लिहियं[4] एयं समासेण ॥ १६४
सम्मदंसणसुद्धो कदवदकम्मो सुसीलसंपण्णो । अणवरयदाणसीलो जिणसासणवच्छलो वीरो[5] ॥ १६५
णाणागुणगणकलिओ णरवइसंपूजिओ कलाकुसलो । वारा-णयरस्स[6] पहू णरुत्तमो सत्तिभूपालो[7] ॥ १६६
पोक्खरणिवाविपउरे बहुभवणविहूसिए परमरम्मे । णाणाजणसंकिण्णे धणधण्णसमाउले दिव्वे[8] ॥ १६७
सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहि मंडिए रम्मे । देसम्मि पारियत्ते[10] जिणभवणविहूसिए दिव्वे ॥ १६८
जंबूदीवस्स तहा पण्णत्ती बहुपयत्थसंजुत्तं । लिहियं[11] संखेवेण वाराए[12] अच्छमाणेण ॥ १६९
छदुमत्थेण विरइयं जं किं पि[13] हवेज्ज पवयणविरुद्धं । सोधंतु सुगीदत्था पवयणवच्छल्लताए णं[14] ॥ १७०
पुव्वंगविउलविडवं वत्थुवसाहाहि[15] मंडियं परमं । पाहुडसाहाणिवहं[16] अणिओयपलाससंछण्णं[17] ॥ १७१

व कायकी दुष्प्रवृत्तिसे रहित; माया, मिथ्यात्व व निदान रूप तीन शल्योंसे परिशुद्ध; रस, ऋद्धि और सात इन तीन गारवोंसे रहित; सिद्धान्तके पारंगत; तप, नियम व समाधिसे युक्त; ज्ञान, दर्शन व चारित्रमें उद्यक्त; और आरम्भ क्रियासे रहित पद्मनन्दि नामक मुनि (प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिता) हुए हैं ॥ १६२-१६३ ॥ श्री विजय गुरुके पासमें अतिशय विशुद्ध आगमको सुनकर मुनि पद्मनन्दिने इसको संक्षेपसे लिखा है ॥ १६४ ॥ सम्यग्दर्शनसे शुद्ध, व्रत क्रियाको करनेवाला, उत्तम शीलसे सम्पन्न, निरन्तर दान देनेवाला, जिनशासनवत्सल, वीर, अनेक गुणगणोंसे कलित, नरपतियोंसे पूजित, कलाओंमें निपुण और मनुष्योंमें श्रेष्ठ ऐसा शक्ति भूपाल 'वारा' नगरका शासक था ॥ १६५-१६६ ॥ प्रचुर पुष्करिणियों व वापियोंसे संयुक्त, बहुत भवनोंसे विभूषित, अतिशय रमणीय, नाना जनोंसे संकीर्ण, धन-धान्यसे व्याप्त, दिव्य, सम्यग्दृष्टि जनोंके समूहसे सहित, मुनिगणसमूहोंसे मण्डित, रम्य और जिनभवनोंसे विभूषित ऐसे दिव्य पारियात्र देशके अन्तर्गत वारा नगरमें स्थित होकर मैंने अनेक विषयोंसे संयुक्त इस जम्बूद्वीपकी प्रज्ञप्तिको संक्षेपसे लिखा है ॥ १६७-१६९ ॥ मुझ जैसे अल्पज्ञके द्वारा रचे गय इसमें जो कुछ भी आगमविरुद्ध लिखा गया हो उसको विद्वान् मुनि प्रवचनवत्सलतासे शुद्ध करलें ॥ १७० ॥ अंग-पूर्व रूप विशाल विटपसे संयुक्त, वस्तुओं (उत्पादपूर्वादिके अन्तर्गत अधिकारविशेषों) रूप उपशाखाओंसे मण्डित, श्रेष्ठ, प्राभृतरूप शाखाओंके समूहसे सहित, अनुयोगों रूप पत्तोंसे व्याप्त, अभ्युदय रूप प्रचुर

१ प ब उज्जंतो. २ उ श चरित्तो. ३ प ब परिसुद्धं ४ क रइयं. ५ क धीरा. ६ प ब चाराणयरस्स. ७ क प ब संतिभूपालो. ८ उ समाउले दिव्वो, श समाउलो दिव्वो. ९ नोपलभ्यते गाथेयं कप्रतौ १० श परियत्ते. ११ क प ब रइयं. १२ उ श वारए. १३ क किंचि. १४ उ श सुगीदत्था तं पवयणवच्छलताए. १५ उ श वच्छवसाहाहि. १६ उ श पाहुडसाहाहि वहुं. १७ श पलालसछण्णं.

अब्भुदयकुसुमपउरं णिस्सेयसअमदसादफलणिवहं । सुददेवदाभिरक्खं सुकप्पतरुं णमंसामि ॥ १७२

चारुगुणसलिलपउरं संजमउत्तुंगउम्मिसंघायं । णिम्मलतवपायालं समिदिमहामच्छसंछण्णं ॥ १७३

जमणियमदीवपउरं वरगुत्तिगंभीरसीलमज्जादं । णिव्वाणरयणणिवहं धम्मसमुद्दं णमंसामि ॥ १७४

घणघादिकम्ममहणं केवलवरणाणदंसणपईवं । भव्वयणपउमबंधुं तिलोयणाहं गुणसमिद्धं ॥ १७५

विबुधवइमउडमणिगणकरसलिलसुधोयचारुपयकमलं । वरपउमणंदिणमियं वीरजिणिंदं णमंसामि ॥ १७६

॥ इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे पमाणपरिच्छेदो णाम तेरसमो उद्देसो समत्तो ॥ १३ ॥

पुष्पोंसे परिपूर्ण, अमृतके समान स्वादवाले निश्रेयस रूप फलोंके समूहसे संयुक्त और श्रुतदेवतासे रक्षणीय ऐसे श्रुत रूप कल्प-तरुको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १७१-१७२ ॥ सुन्दर गुणों रूप जलकी प्रचुरतासे संयुक्त, संयम रूप उन्नत ऊर्मिसमूहसे सहित, निर्मल तप रूप पातालोंसे परिपूर्ण, समितियों रूपी महामत्स्योंसे व्याप्त, यम-नियम रूप प्रचुर द्वीपों (जलजन्तुविशेषों) से संयुक्त, श्रेष्ठ गुप्तियों एवं गम्भीर शील रूप मर्यादासे सहित और निर्वाण रूप रत्नसमूहसे सम्पन्न ऐसे धर्म रूप समुद्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १७३-१७४ ॥ दृढ़ घातिया कर्मोंको नष्ट करनेवाले, केवलज्ञान व केवलदर्शन रूप उत्तम दीपकसे युक्त, भव्य जनों रूप पद्मोंको विकसित करनेके लिये सूर्य समान, तीनों लोकोंके अधिपति, गुणोंसे समृद्ध, विबुधपतियों अर्थात् इन्द्रोंके मुकुटोंमें स्थित मणिगणोंके किरण रूप जलमें भले प्रकार धोये गये सुन्दर चरण-कमलोंसे संयुक्त और श्रेष्ठ पद्मनन्दिसे नमस्कृत ऐसे वीर जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूं ॥ १७५-१७६ ॥

॥ इस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंग्रहमें प्रमाणपरिच्छेद नामक तेरहवां उद्देश समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

१ उ णिस्सेयसअमदमादफल, श णिस्सेयअमदमादफल. २ श देवदाभिरुक्खं. ३ प ब चारुणगुण. ४ क संयम. ५ उ श पइवं ६ उ श भव्वायण. ७ प ब तिलोयणामं ८ उ श विउधवइ.

गाथानुक्रमणिका

ध

गणित-गाथानुक्रमणिका

भौगोलिक शब्द-सूची

(क्षेत्र, पर्वत, नदी, द्वीप-समुद्र, कूट एवं नगर आदि के नाम)

विशेष-शब्द-सूची

आमेर प्रतिके पाठ-भेद

पृष्ठ	गाथा	मुद्रित पाठ	आमेर प्रतिका पाठ
१	६	परंपरया पएणत्तिं	परंपरागयपएणत्ती
२	१०	सुधम्मणामेण × × × णिद्दिट्ठं	सुधम्मणाहस्स × × × संदिट्ठं
,,	१६	जसपालो	जयपालो
,,	१८	आयरियपरंपरया	आयरियपरंपरागय
,,	,,	समत्थं	महत्थं
४	३०	तिस्सेव	तस्सेव
६	५१	सणाहं	सहाणं
७	६७	चदुसहिय	चदुरधिय
८	७३	मणिमयवरतोरणेसु	मणिमयमणितोरणेसु
१२	२३	चदुगुणिदं	चदु दुगणं
,,	,,	घेत्तूण	खेत्तूण
,,	२५	वग्गविसेसस्स	वग्गविसुद्धस्स
१३	२७	उग्गाढेहि	अवगाढेहि
१६	६३	मुणिगणसहिया × × × रम्मा	मुणिगणमहिया × × × ५
१७	७०	य वरा	अवरा
,,	७१	धूम	धूव
१८	८०	आसत्थतालतिंदुग	अस्सत्थसालकेंदुग
१६	८८	पंचासा	पएणासा
२०	१००	पमाणगणगेहि	पमाणगणणेहि
,,	१०३	दीहत्तं	जीवा हु
२१	१०६	रम्मा	दिव्वा
,,	११३	विण्णि	वेण्णि
२२	११५	विण्णि वि वीसा	वेण्णि वि वासा
,,	१२०	वरलक्खणवंजणेहि संजुत्ता	वरवेंजणलक्खणेहि परिपुण्णा
,,	,,	भत्तेहि पारिंति	भंतेसु भुंजंति
२३	१२६	मज्जवर········वत्थमल्लंगा	मज्जंगा तूरंगा भूपण जोइस गिहय········वत्थमज्भंगा
२४	१४०	गल्लिंद	वज्जिंद
,,	१४२	सुणहा	सुणया
२५	१४७	अकम्मभूमीसु	ण कम्मभूमीसु

२५	१५४	उववज्जिदूण	उववण्णिऊण
२६	१५८	परमरूवा	परमरम्मा
२७	१७४	दीवमज्झम्मि	दीवअद्धम्मि
३०	२०२	भरहवंसणामाणं	भरहणामवंसाणं
,,	२०३	ईदीहिं	ईहादीहिं
३१	२१०	अच्चुयं विमलणाणं	अब्भुवं अमलणाणं
३२	१	अचलणाणं	सयलणाणं
,,	७	एयार कला णेया	एयारस कल णेया
,,	६	अद्धकलसहिया	अद्धकलमधिया
,,	१०	अद्धट्ठम	अट्ठद्धय
३४	३१	सदो	सया
३५	३२	संपण्णा	संछण्णा
,,	३४	फुरंतदिव्ववरमउडा	पुरंतसिहरवरमउडा
,,	,,	णिज्झर	णिब्भर
३६	४६	कोसहिया	कोसा य
३७	५४	कयच्चवण	कयकव्वण
,,	५८	पवरच्छराहि	पवरच्छरादि
३८	६८	तहा	गिहा
३६	७६	तस्स	तेण
,,	,,	वाधारिय	वरधारिय
,,	७७	देसूणएक्ककोसं	देसूणयं च कोसं
४०	८४	समुप्पण्णा	समुद्दिट्ठा
४२	१०८	सत्तविभागेहि	सत्तहि भागेहि
४३	११८	सिरिदेविपादरक्खा	सिरिदेविआदरक्खा
४४	१२१	य दूदा य	य पभूदा य
,,	१२६	देवीणं	देवाणं
४५	१३४	परिगेहा	वरगेहा
४६	१४६	सिहरिजस्स	सिहरिणस्स
४७	१५७	मज्झम्मि य	मज्झिम्मि दु
४८	१६१	परिखित्ते मंडिए……रम्मे	परिखित्तो……मंडिओ…रम्मो
,,	१६३	निसधो त्ति धराचलो	णिसधतडाचलो
४६	१७२	कदच्चवण	कयव्वण
,,	१७३	णिवहा जलधारापायजणियझंकारा	णिकरा जलधाराघायसद्दगंभीरा
,,	१७५	पइसंति	पविसंति
५०	१८३	लंवंत	पलयंत
,,	१८७	विहूसियंगीओ	विहूसियंगाओ

५०	१८९	मियंकवयणाओ	मयंकपवगाओ
५१	१९२	रोहिदा सा	रोहिदा वि य
५२	२०७	मिरीइवेल्लि	मरीचिवल्लि
५३	२११	सहस्साणं	सहस्साइं
,,	२१३	वट्टफलं	वट्टिफलं
५४	२१७	सत्तभूमिया	सत्तमत्तभूमिया
५७	६	पइट्ठो	पइठो
,,	८	कच्छियापुट्ठि	कवलीयापुट्ठि
५८	९	सिहरो	सिहरे
६२	४७	वर	णव
,,	४८	कत्थुरिय	कप्पूरिय
,,	५४	णंदीसर चेय णाम दीवस्स	णंदीसरणामधेयदीवस्स
६३	५६	वुव्वुद	धुव्वद
,,	५७	कयव्वण	कयव्वण
६४	६६	भद्दसालवणे	भद्दसालरण्णे
६६	८६	णंदणवणम्मि	दंसणवणम्मि
६८	१११	भिंगा	भंभा
७१	१३६	तलभागे	तलभागो
,,		(आमेर प्रतिमें गाथा १४१-४२ के मध्यमें यह गाथा अधिक पायी जाती है—)	सयजोयणआयामा वित्थार तदद्ध होंति णिद्दिट्ठा। अट्ठेव जोयणाइं उत्तुंगाओ वरसिलाओ ॥
७२	१५१	दिव्वा	दिव्वे
७३	१६३	किरणोहा	किरणाभा
७६	१९२	संछण्णा	संजुत्ता
७८	२०५	आदिधणं × × × सव्वाणं ॥	आदिगुणं × × × णायव्वं ॥
,,	२०७	उच्छंग	उत्तुंग
,,	२१०	हत्थिहडाणं	हत्थिवडाणं
७९	२१७	चरिमाणं	चरमदेहा
८३	२५५	एगेगदिसाभागे णायव्वा तस्स णागस्स ॥	बहुवण्णचंचियाइं णेयाइं भवंति णागस्स ॥
८४	२६५	दप्पुप्पाइय	दप्पुप्पाई
८६	२८७	विविहेहिं	बहुएहिं
,,	२९२	देसयं पउमणाहं	देसिगं पउमाभं
८७	३	पासादे	पासादो
८९	२५	फलिहमणिभित्ति	फलिहमयभित्ति
९३	७१	पलियंकासणसंगद	पलियंकणिसण्णगदा

९५	८३	भूसिदंगीओ	भूसियंगाओ
,,	९०	णंदणवणेसु ....॥	अच्चंति य वंदंति य सुरपवरा सव्वकालम्मि ॥
९६	९८	वाणरपिट्ठम्मि	वाणरपट्टम्मि
,,	१०१	गच्छ	गोंच्छ
९७	१०६	सोभाहिं	सोहाहिं
९८	११६	भोज्जमादीहिं	भोजणादीहिं
,,	१२०	कुंडलदीवेसु	कुंडलदीवे वि
९९	१२२	वणमंडवा वि	वणसंडवावि
१००	६	सदा णउत्तरा	सदाणि उत्तरा
,,	७	चउगुणिदं	विगिदुगुणं
१०१	१४	कंचणणगाण	कंचणयाणं
१०२	२७	पंचसदा अंतरेक्केक्का	पंचसए अंतरे य एक्केक्का
१०३	३१	अंतेसु	अंते य
,,	३२	विमल	कमल
१०४	४४	पच्छिमेण	पच्छिमेसु
१०५	५६	तह पुणो जाइ	गंतूणं
११०	१०८	सिरीयं ढोऊण य णिम्मिया	सिरीया होऊण य णिम्मला
,,	११०	उवहसंता	उवहसंति
,,	१११	व	वि
११२	१३१	रयणसंवेसंछण्णा	रयणभवणसंछण्णा
,,	,,	कुसुम	सुरभि
११३	१४२	चदुसहस्साणि	होंति चत्तारि
११५	१६३	सामलि	संबलि
११६	१७२	जुवला जुवला	जुवलजुवला य
१२१	३५	कुलाउल	कुलालकुल
१२४	६०	ण वि होंति	ण होंति
,,	६३	पयासया	पयासगा
,,	६४	संबद्धा	सव्वण्हू
१२६	८६	वि य होंति य विक्खंभा	वि य एवं विक्खंभा
१३०	११६	वाणं	ठाणं
,,	१२४	सुग्घडइ तं	उग्घडइ तस्स
१३२	१३८	सयलं	णाइ
,,	१४२	वररयणो × × × कयरक्खो	जलरयणो × × × दढरक्खो
१३४	९	गणणिवहो	गणगहणो
१३५	१६	वेदड्ढेण य	वेदड्ढणगेण
१३७	४१	चउकूडतुंग	बहुभवणतुंग

१३८	४५	सुद्धकय	सुट्ठकय
,,	४६	तह य	तत्थ
,,	४८	दिव्वा	रम्मा
१४०	७०	धम्माधण	धण्णधण
१४१	७४	धरणिवहा	वरणिवहा
१४२	९०	होंति सव्वाणं	होंति देवसंघाणं
,,	९३	तिण्णिपरिसेहि	तीहिं परिसाहिं
१४४	११२	पासादवरेहि	पासादवरेहिं
१४६	१२८	तुंगो	गंतुं
१४८	१४५	अंकावदि	संखावदि
१५१	१७८	वरणगरखेडकव्वडमडंव	वरखेडकव्वडजुदो मडंब
१५२	१९०	पणवण्णाणि हवंति	पणवण्णाणि य हवंति
१५४	७	दिट्ठा	दीहा
१५६	५७	सिंधूसरिएहिं	सिंधूसरिण्ण
,,	५९	उत्तुंगपहायसंछण्णा	कंचणपायाररमणीया
,,	६०	सोदवाहिणी	सोमवाहिणी
१६०	६९	वणसंडविहूसिया	वणसंडविराइया
१६१	८३	तिहिं	तहिं
१६६	१६५	चच्चर	चव्वर
१७२	१९६	जक्खा	जुत्ता
१७५	१७	सत्तत्तीसा य जोयणा भणिया	जोयण भायाण सत्तत्तीसा य
१७६	५०	दीवा	दिव्वा
१८०	५६	मेसमुहा	मेंढमुहा
१८३	९२	विक्खंभकदीय कदी	विक्खंभं दीवकदी
,,	९३	छछस य	छच्च सयं
१८५	९	भरहेसु	भरहे य
१८६	१०	सगडुढ्ढियावाहा	सगडढ्ढियावाहा
,,	१५	भागसदं	सदभागं
,,	१७	सिगिदालीसा	णिगिदालीसा
,,	१९	उवदित्ताणं	ओवदित्ताणं
१९१	६३	वरभवणा	पासादादि
१९७	११७	गोमज्जए	गोमज्झगे
,,	११९	वच्चगे…पण्णारसेत्ति	वव्वगे…पण्णारसेत्ति
१९९	१३७	पढमादिय उक्कस्सं विदियादिय साधियं हवे जहण्णं तु ।	पढमादियमुक्कस्सं विदियादिसु साधियं जहण्णत्तं ।

२००	१४६	थडगे थरणगे	घडगे घडगे
,,	१५१	तसिदो	तविदो
२०१	१५८	तत्तकवल्लिम्हि ते दु छुब्भंति	तत्तकडल्लीहिं ते दु गब्भंति
,,	१६१	पीडंति चादुरोधा	पीलंति चादुचोप्पा
,,	१६२	छुद्धा	बूढा
२०२	१६४	झाडेहि	फाडेहि
,,	१६८	सासिज्जंति	सासिज्झंति
२०३	१७१	तत्थ	तं तु
,,	१७३	तत्तचुल्लीहि	तत्थ चुल्लीसु
,,	,,	सिमिसिमंतेण	मिसिमिसंतेण
२०५	१६६	मंगलुस्सविदसोहं	मंगलस्स किदसोहं
२०६	२०४	पमुदिदपकीलिदं रम्मं	पमुदिदपक्खिल्लदं रम्मं
२०७	२१२	लोगंतं	लोगंता
,,	२१५	णयराणिमाणि	णियराणिमाणि
२१०	२३६	विलवंती	विलवेंती
२११	२४६	रूवसाराहिं	रूवसोहाणं
२१२	२५६	सुस्सरसरा	सुस्सरसमीरा
,,	२६४	अट्ठण्ह वि देवीणं	अट्ठण्हं देवीणं
२१३	२६७	य ताओ	वि ताओ
,,	२७४	पायाइगय	पायालगय
२१४	२७७	पढमिल्लयकच्छाए	पढमाए कच्छाए
,,	२८२	दासि	दास
,,	२८३	तहा	तहिं
,,	२८४	तस्स वि य	सत्त वि य
२१७	३०४	जलजलं ति	जयंजलत्ति
२१८	३२१	जत्थ	तत्थ
२१६	३२६	सपुण्णाणं	समुप्पण्णा
,,	३२६	तत्थ	सत्थ
,,	३३१	देवसम्मिदं	देवसंसदं
२२१	३४६	तह य	ताण
२२२	३६४	मोक्खं	मोक्खे
२२३	५	तेरससयं च दंडा	तेरससद दंडाणं
२२५	२०	दलिद आदिणा	दलिदमादिण्णा
२२६	३५	अण्णाण्णा	अण्णोण्णा
२२७	४३	ठाणेसु णिविट्ठा	ठाणेसु दिट्ठा
२२६	५६	अट्ठद्धं अट्ठद्धं दाऊण	अट्ठट्ठं अट्ठट्ठं दादूण

२३०	६५	उभये	उभश्रो
२३१	७६	जोदिसरासी	जोदिसरासिं
,,	७७	चउ चउ दादूण	दो दो दादूण
,,	७८	तदो	तद्दा
,,	८१	एवं पि आणिऊणं	एवं वियाणिदूणं
,,	८६	जो उप्पण्णो	ते उप्पण्णा
२३२	८८	णव चेव सया पण्णहत्तरिं	णवयसया पण्णहत्तरिं
,,	९०	गुणगारभागहारा······	× × ×
,,	९२	जे	जा
२३३	१०१	रविससिअंतर डहरं लक्खूणं तिहि सदेहि सट्ठाहि।	रविससिजहण्णअंतर लक्खं ऊणं तिसदेहि सट्ठाहि।
२३५	८	होंति	होदि
२३७	२५	उच्छेहअंगुलेहि	वरसूचिअंगुलेहि
२३८	३६	छिण्णमसंखकोडिसमएहि	छिण्णमसंखेज्जवाससमएहि
,,	,,	दीवसमुद्दा दु एदेण	तक्कालो तत्तियो चेव
,,	४०	सदेगवस्स	असंखेज्जवास
,,	,,	कम्मठिदी वण्णिया तदिए	तत्तियमेत्तो य तक्कालो
२४०	४८	वियलपचक्खो	वियलसयलक्खो
२४१	६१	देवदेत्ति	देवदत्तेत्ति
२४४	८५	चिंताजरादि	चिंतारुजाहि
,,	८६	जिणचंदो	जिणयंदो
२४५	९७	संजुत्तो······होहिदि	जो जुत्तो······होहदि
,,	१०१	दसभेदहि	दसेहि भेदेहि
२४६	१०८	जवादिवहुसारसस्सविदरोमं	जवादिसस्सं सुरा विकुव्वंति
२४७	११४	पवणवसे	पवणवसा
,,	११६	पुप्फक्खएहिं	पुप्फक्खदेहि
२५०	१३६	जिणवरेहि	जिणवरेण
२५२	१५५	तस्सेव य············	× × ×

क्षेत्र-मान

जं. प. १३, १६–२३; ३२–३४.	ति. प. १, १०१–१०७; ११४–१६	अनु. सू. पृ. १२६	ज्योतिष्करण्ड ७३–७६
अनन्तानन्त परमाणु = अवसन्नासन्न	अनन्तानन्त परमाणु=उवसन्नासन्न	अनन्त व्यावहारिक परमाणु = १ उसण्हसण्हिया	८ परमाणु = त्रसरेणु
८ अवसन्नासन्न = सन्नासन्न	८ उवसन्नासन्न = सन्नासन्न	८ उसण्हसण्हिया = १ सण्हसण्हिया	८ त्रसरेणु = रथरेणु
८ सन्नासन्न = व्यावहारिक परमाणु	८ सन्नासन्न = त्रुटिरेणु	८ सण्हसण्हिया = १ ऊर्ध्वरेणु	८ रथरेणु=बालाग्र
८ व्या. परमाणु = त्रसरेणु	८ त्रुटिरेणु = त्रसरेणु	८ ऊर्ध्वरेणु = १ त्रसरेणु	८ बालाग्र = लिक्षा
८ त्रसरेणु = रथरेणु	८ त्रसरेणु = रथरेणु	८ त्रसरेणु = १ रथरेणु	८ लिक्षा = यूका
८ रथरेणु = वालाग्र	८ रथरेणु = उत्तम भो. बालाग्र	८ रथरेणु = १ दे. कु. उ. कु. मनुष्य बालाग्र	८ यूका = यवमध्य
८ वालाग्र = लिक्षा	८ उ. भो. बा.=म. भो. ,,	८ दे. कु. उ. कु. म. बालाग्र = १ हरि-रम्यक वर्ष बालाग्र	८ यवमध्य = अंगुल
८ लिक्षा = यूक	८ म. भो. ,, = ज. ,, ,,	८ ह. र. वर्ष मनुष्य बालाग्र = १ हैम. हैर. मनुष्य बालाग्र	६ अंगुल = पाद
८ यूक = यव	८ ज. ,, ,, = कर्मभूमि,,	८ हैम. हैर. मनुष्य बालाग्र = १ पूर्वापरविदेह म. बालाग्र	२ पाद = वितस्ति
८ यव = उत्सेधांगुल	८ कर्मभूमि बा० = लिक्षा	८ पूर्वापरवि. मनुष्य बालाग्र = १ भ. ऐ. मनुष्य बालाग्र	२ वितस्ति = हस्त
६ अंगुल = पाद	८ लिक्षा = यूक	८ भ. ऐ. म. बालाग्र=१ लिक्षा	४ हस्त = दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष, मुसल
२ पाद=वितस्ति	८ यूक = यव	८ लिक्षा = १ यूका	२००० धनुष = योजन
२ वितस्ति = हस्त	८ यव = उत्सेध सूच्यंगुल	८ यूका = १ यवमध्य	
२ हस्त = किष्कु	६ उत्सेधांगुल = पाद	८ यवमध्य = १ अंगुल	
२ किष्कु=दण्ड, धनुष, युग, नाली, अक्ष, मुसल	२ पाद = वितस्ति	६ अंगुल = पाद	
२००० दण्ड = गव्यूति, कोश	२ वितस्ति = हस्त	१२ ,, = वितस्ति	
४ गव्यूति = योजन	२ हस्त = रिक्कु (किष्कु)	२४ ,, = रत्नि	
	२ रिक्कु = दण्ड, धनुष, युग, मुसल, नाली	४८ ,, = कुच्छी	
	२००० धनुष = कोश	९६ ,, = दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष, मुसल	
	४ कोश = योजन	२००० धनुप = गव्यूति	
		४ गव्यूति = योजन	

काल-मान

क्रमिक संख्या	जं. प. (दि.) १३, ४–१४	१ जं. प. (श्वे.) पृ. ३६–४० २ अनु. सू. पृ. ३४२-४३	ज्यो. क. ८-१०, २६-३१, ६२-७१	क्रमिक संख्या	जं. प. (दि.) १३, ४–१४	१ जं. प. (श्वे.) पृ. ३६–४० २ अनु. सू. पृ. ३४२–४३	ज्यो. क. ८-१०, २६-३१; ६२-७१
१	समय	समय	समय	२६	कुमुद	हुहु	कमल
२	आवली	आवली	उच्छ्वास-निःश्वास	२७	पद्मांग	उत्पलांग	महाकमलांग
३	उच्छ्वास	आनप्राण	स्तोक	२८	पद्म	उत्पल	महाकमल
४	स्तोक	स्तोक	लव	२९	नलिनांग	पद्मांग	कुमुदांग
५	लव	लव	नालिका	३०	नलिन	पद्म	कुमुद
६	नाली	मुहूर्त	मुहूर्त	३१	कमलांग	नलिनांग	महाकुमुदांग
७	मुहूर्त	अहोरात्र	अहोरात्र	३२	कमल	नलिन	महाकुमुद
८	दिवस	पक्ष	पक्ष	३३	त्रुटितांग	अत्थिनेपुरांग	त्रुटितांग
९	मास	मास	मास	३४	त्रुटित	अत्थिनेपुर	त्रुटित
१०	ऋतु	ऋतु	संवत्सर	३५	अटटांग	आउअंग (अयुतांग)	महात्रुटितांग
११	अयन	अयन	पूर्वांग	३६	अटट	आउ (अयुत)	महात्रुटित
१२	वर्ष	संवत्सर	पूर्व	३७	अममांग	नयुतांग	अडडांग
१३	युग	युग	लतांग	३८	अमम	नयुत	अडड
१४	दशवर्ष	वर्षशत	लता	३९	हाहांग	प्रयुतांग	महाअडडांग
१५	वर्षशत	वर्षसहस्र	महालतांग	४०	हाहा	प्रयुत	महाअडड
१६	वर्षसहस्र	वर्षशतसहस्र	महालता	४१	हूहूअंग	चूलितांग	ऊहांग
१७	दशवर्षसहस्र	पूर्वांग	नलिनांग	४२	हूहू	चूलित	ऊह
१८	वर्षशतसहस्र	पूर्व	नलिन	४३	लतांग	शीर्षप्रहेलिकांग	महाऊहांग
१९	पूर्वांग	त्रुटितांग	महानलिनांग	४४	लता	शीर्षप्रहेलिका	महाऊह
२०	पूर्व	त्रुटित	महानलिन	४५	महालतांग		शीर्षप्रहेलिकांग
२१	पर्वांग	अडडांग	पद्मांग	४६	महालता		शीर्षप्रहेलिका
२२	पर्व	अडड	पद्म	४७	शीर्षप्रकंपित		
२३	नयुतांग	अववांग	महापद्मांग	४८	हस्तप्रहेलित		
२४	नयुत	अवव	महापद्म	४९	अचलात्म		
२५	कुमुदांग	हुहुअंग	कमलांग				